सागर-विश्वविद्यालय की डी० फिल्० उपाधि के लिए स्वीकृत शोध-प्रबन्ध

हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासों का अनुशीलन

(१६००—१६६३)

ब्रजभूषण सिंह 'आदर्श'

•

रचना प्रकाशन
४५ ए, खुल्दाबाद
इलाहाबाद-१

©
प्रथम संस्करण १९७०

•

प्रकाशक
जीत मल्होत्रा
रचना प्रकाशन
इलाहाबाद–१

•

मुद्रक
राधा मुद्रणालय
२००, भारती भवन
इलाहाबाद–३

मूल्य
पैंतीस रुपये

आमुख

वर्तमान जनतान्त्रिक युग के हिन्दी साहित्यिक जगत् मे उपन्यास वस्तुतः साहित्यिक विधा के रूप में शीर्ष स्थान प्राप्त कर सका है अतएव हम कह सकते हैं कि उपन्यास अपने साहित्यिक क्षेत्र मे यथार्थ जनतान्त्रिक विधा है, जिसमें आधुनिक जीवन की अनेकमुखी विविधता, जटिलता और विशदता का समावेश उसके जनतान्त्रिक रूप का ही द्योतक है। उसमे ससार के समस्त क्रिया कलाप और मनुष्य की सामाजिक-राजनीतिक, आर्थिक और नैतिक समस्याओ का व्यापक एव सशक्त प्रतिबिम्ब देखा जा सकता है। सच तो यह है कि *मानव-जीवन की व्यापकता ही उपन्यास की व्यापकता बन गयी है*। गद्यात्मक साहित्य विधा होने के कारण उसका अभिव्यक्ति-क्षेत्र असीम है तथा वह अनेक नयी प्रविधियो को समयानुसार विकसित करता हुआ मानव और समाज की प्रत्येक समस्या एव अवस्थान के साथ चरण मिलाते हुए उत्तरोत्तर प्रगतिशील है। शायद यही उसकी विशिष्ट लोकप्रियता का कारण भी है।

सर्वाधिक लोकप्रिय विधा होने पर भी आलोचको ने अभी उसे अपेक्षित महत्वपूर्ण दृष्टि से देखने का अपेक्षित प्रयास नही किया है। यह प्रवृत्ति केवल हिन्दी के ही आलोचको में है, ऐसा नही कहा जा सकता, यूरोप मे भी दीर्घकाल तक उपन्यास की महत्ता स्वीकार नही की गयी थी। उपन्यास लेखक बनना तो दूर रहा, लोग उपन्यास-पाठक भी कहलाना पसन्द नही करते थे। जैसा कि टामस मैकाले के शब्दो से स्पष्ट होता है :

"A novel reader—a commodious name, invented by ignorance and applied by envy in the same manner as men without learning call a scholar a pedant and men without principle call a christian a methodist."

किन्तु समय के परिवर्तन के साथ अब वहाँ उपन्यास जीवन की व्याख्या का समर्थ माध्यम माना जाने लगा है। इतना ही नही, अपने जनतन्त्रीय किन्तु कलात्मक रूप मे वह साहित्य के सर्वाधिक नोबुल पुरस्कार प्राप्त कर एक नया कीर्तिमान भी स्थापित कर सका है। उपन्यास के प्रभेद-विस्तार के इस युग मे उपन्यास भले ही कैसा भी रूप क्यो न ग्रहण कर ले, किन्तु उसका साफल्य मानव-जीवन की व्याख्या मे ही नीहित है। उसका ध्येय केवल जीवन के वास्तविक स्वरूप का प्रतिबिम्ब ही प्रस्तुत करना नहीं होता, अपितु वह जीवन को परिवर्तित कर मानव की उन्नततम संस्कृति का दिग्दर्शन कराता है। मानव-जीवन की विभिन्न परिस्थितियो मे प्रतिक्रियात्मक सम्भावना का

साहित्य पर प्रकाशित दो तीन अन्य ग्रथो मे भी समाजवादी यथार्थवादी उपन्यासो का मूल्याकन किया गया है, जो इने गिने पृष्ठो तक ही सीमित है। सक्षेप मे कहा जा सकता है कि एकाध दर्जन उपन्यासो का जो उल्लेख यत्र-तत्र मिलता है, वह दाल मे नमक जैसा ही है। फलत निवेदित विषय की महत्ता और नवीनता अधिक व्यापक अध्ययन अन्वेषण की अपेक्षा कर रही थी।

इसम सन्देह नही कि राजनीतिक उपन्यासो की हिन्दी मे एक सुनिश्चित परम्परा है और उसे आधार बनाकर भारतीय राजनीति के परिप्रेक्ष मे वैज्ञानिक पद्धति मे उसका विश्लेषणात्मक अध्ययन किया जा सकता है। साहित्य का यह गुण है कि वह एक ओर जहाँ बाह्य परिस्थितियो से प्रभाव ग्रहण करता है, वहीं दूसरी ओर बाह्य परिस्थितियो के निर्माण मे सहयोगी भी होता है। कहना न होगा कि वर्तमान शताब्दी ने मानव-जीवन को नयी दृष्टि प्रदान की है और साहित्य मे—विशेषत उपन्यास मे उसका गहरा सकेत है, जिसकी उपेक्षा किसी भी दृष्टि से असम्भव है। इन्ही अनेक दृष्टियो से आधुनिक हिन्दी उपन्यास के सम्बन्ध म हमने उनका विवेच्य-काल सन् १९०० से १९६३ ई० निश्चित किया है। इसमे हमारा मूल उद्देश्य था कि हम समानान्तर रूप से विकसित भारतीय राजनीति और हिन्दी उपन्यास के विकास को उसके समग्र रूप म देख सकें। यह एक सयोग ही कहा जायेगा कि भारतीय राजनीति और हिन्दी उपन्यास का विकास समानान्तर एव समान गति से हुआ है। भारतीय राजनीति का जहाँ एक पक्ष राजनीतिक स्वतत्रता की प्राप्ति था, वहीं उसकी प्राप्ति के मार्क्सवादी, गाँधीवादी मार्ग भी थे, साथ ही साम्प्रदायिक, सामाजिक आदि अनेको विघ्नकारी समस्याएँ भी थी। स्वातत्र्योत्तर भारतीय शासन पद्धति की स्थापना की समस्या भी थी। अनेक समस्याएँ भारतीय उपन्यास की अपनी समस्याएँ रही हैं, अत एव विवेचनात्मक दृष्टिकोण से हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासो को दो वर्गों मे विभाजित किया जा सकता है -वादसापेक्ष और वादनिरपेक्ष। इसके अतिरिक्त हम उन्हे राजनीतिक एव अशत: राजनीतिक रूप मे भी देख सकते हैं। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध मे मूल्याकन के समय इन्ही आधारो को मान्यता देकर राजनीतिक प्रतिमानो को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया है। उपन्यास के प्रभेद विस्तार से हम उसके राजनीतिक स्वरूप के कारण भले ही उसे राजनीतिक उपन्यास की सज्ञा दे दें, किन्तु इससे उपन्यास के तत्व एव रूप विधान मे किसी प्रकार का अन्तर नही होता है। राजनीतिक उपन्यास म राजनीतिक दृष्टि होने पर भी उसका उत्कर्ष भी उन्हीं तत्वो पर आधारित होता है, जो उपन्यास के मूलभूत आधार होते हैं। अत. राजनीतिक उपन्यासो की सफलता अथवा असफलता के मूल्याकन की आधार-पीठिका भी यही तत्व हो सकते हैं।

शोध विषय से सम्बन्धित प्रस्तुत प्रबन्ध का प्रथम अध्याय भूमिका और विषय

प्रवर्तन है। इसके अन्तर्गत उपन्यास की व्युत्पत्ति तथा आधुनिक, पाश्चात्य और भारतीय समीक्षकों के उपन्यास सम्बन्धी विचारों का आश्रय लेते हुए राजनीतिक उपन्यास की समन्वित परिभाषा बनाने का प्रयास किया है। उपन्यास के स्वरूप, मूल तत्व, भेदोपभेद आदि से सम्बन्धित सैद्धान्तिक विवेचन के साथ राजनीतिक उपन्यास की व्याप्ति और प्रन्यर्थिता का निरूपण भी किया गया है। स्वरूप-विश्लेषण में मौलिक उद्भावना है, क्योंकि राजनीतिक उपन्यास की अभी तक कोई निश्चित परिभाषा हिन्दी में नहीं है।

द्वितीय अध्याय में भारतीय राजनीति के क्रमिक विकास का तटस्थ विवरण देने का प्रयत्न है। इसमें सन् १९०० से वर्तमान समय तक की राजनीतिक घटनाओं और परिस्थितियों का राजनीतिक उपन्यासों को युगीन यथार्थ स्थिति में समझने में सुविधा के विचार से निष्पक्ष आलेखन है। बिना इसके उपन्यासों का अनुशीलन सम्भव नहीं था।

तृतीय अध्याय में प्रेमचन्द पूर्व-युग के हिन्दी उपन्यासों में राजनीतिक तत्वों को ढूंढने का प्रयत्न है। इसमें यह तथ्य भी स्पष्ट किया गया है कि जिस प्रकार भारतीय राजनीति ने सुधारवादी सामाजिक आन्दोलनों से अपना मार्ग प्रशस्त किया है, उसी के अनुरूप हिन्दी के राजनीतिक उपन्यास भी सामाजिक उपन्यासों के मध्य से आगे आये हैं। यही कारण है कि अंशतः राजनीतिक उपन्यासों में दोनों का सम्मिश्रण हो गया है। हिन्दी के प्रारम्भिक उपन्यासों में राजनीतिक पक्ष का अनुशीलन कर आगे सन् १९२० से १९६३ तक के राजनीतिक उपन्यासों के क्रमिक विकास का संक्षेप में आलेखन है। इसके पूर्व हिन्दी साहित्य में किसी ने भी राजनीतिक उपन्यासों की सुव्यवस्थित परम्परा का निर्देशन नहीं किया है, अतः इस दृष्टि से यह मौलिक प्रयास ही कहा जायगा।

चतुर्थ अध्याय में हिन्दी के प्रथम राजनीतिक उपन्यासकार प्रेमचन्द के व्यक्तित्व का उद्घाटन करते हुए उनके राजनीतिक एवं अंशतः राजनीतिक उपन्यासों का समसामयिक राजनीतिक परिस्थिति में अध्ययन है। इसके पूर्व प्रेमचन्द के उपन्यासों का जो अध्ययन विद्वानों ने किया है, वह उनके सामाजिक, समस्या-प्रधान, मानवतावादी स्वरूप को व्यक्त करता है। रामदीन गुप्त ने गांधीवाद के परिप्रेक्ष में उनके कथा-साहित्य का जो अनुशीलन किया है, वह भी वाद विशेष से सम्बद्ध होने के कारण एकांगी हो गया है। इस अध्याय में प्रेमचन्द के उपन्यास-साहित्य का भारतीय राजनीति के परिवेश में अध्ययन के कारण उसका व्यापक स्वरूप सामने आया है। कुछ आलोचकों ने भ्रमवश जासूसी उपन्यास धारा में आतंकवादी राष्ट्रवादी धारा को प्रेमचन्द-पूर्व-युग की प्रवृत्ति माना है। श्री दुर्गाप्रसाद खत्री से पत्र व्यवहार करने पर मुझे ज्ञात हुआ कि

उनके 'रक्त-मडल' (चार भाग) और 'सफेद शैतान' (चार भाग) का रचना-काल सन् १६२८ से १६३७ तक का है। इससे ये प्रेमचन्दयुगीन कृतियो के रूप मे उन आलोचको के मत का खण्डन करती हैं। प्रेमचन्द के गांधीवादी दृष्टिकोण के समानान्तर दुर्गाप्रसाद खत्री के जासूसी उपन्यासों की आतकवादी राष्ट्रवादी धारा युगानुरूप ही है। अत. इस अध्याय मे खत्री जी के इस राजनीतिक वैशिष्ट्य का भी मूल्याकन किया गया है।

पचम अध्याय मे प्राक् स्वाधीनता युगीन प्रमुख राजनीतिक उपन्यासकारो के समस्त राजनीतिक उपन्यासो का विस्तृत अध्ययन और अनुशीलन किया गया है। अध्याय के प्रारम्भ मे सन् १९३६ से १९४७ ई० तक की राजनीतिक स्थिति पर प्रकाश डालते हुए यशपाल, अंचल और रागेय राघव के उपन्यासो का विशेष मूल्यांकन किया गया है।

छठवें अध्याय मे प्राक् स्वाधीनता-युग के उन उपन्यासकारो के उपन्यासों की विवेचना की गयी है, जिसमे राजनीतिक प्रासंगिक चर्चा समन्वित है। इसके अन्तर्गत जैनेन्द्र, इलाचन्द्र जोशी और अज्ञेय के राजनीतिक एव अंशतः राजनीतिक उपन्यासो का मूल्याकन है। यह 'त्रयी' हिन्दी मे 'मनोविश्लेषणवादी उपन्यासकार' के रूप मे ही अधिक प्रतिष्ठित है और इस पूर्वग्रह के कारण उनके उपन्यासो का राजनीतिक स्वरूप सम्मुख न आ सका था। प्रस्तुत अध्याय मे प्रथम बार उनके उपन्यासो मे राजनीतिक तत्वो का विशद् अध्ययन किया गया है। साथ ही प्राक् स्वाधीनता-युगीन राजनीतिक उपन्यासों की उपलब्धियो अभावो का संक्षिप्त आलेख भी है।

सातवें अध्याय मे स्वातन्त्र्योत्तर काल के प्रमुख राजनीतिक उपन्यासकारो और उनके उपन्यासो की विस्तृत चर्चा है। अनेक विद्वानो का मत है कि हिन्दी मे राजनीतिक उपन्यासो की कोई सुव्यवस्थित परम्परा नही है। शोध प्रबन्ध के चतुर्थ, पचम, षष्ठ, सप्तम, अष्टम अध्याय मे किये गये राजनीतिक उपन्यासो के मूल्याकन से उनके भ्रम का निःसन्देह उन्मूलन हो जायेगा। प्रस्तुत अध्याय के विस्तृत कलेवर मे ही ५० से अधिक राजनीतिक उपन्यासो की विवेचना इस तथ्य को पुष्ट करती है कि हिन्दी मे राजनीतिक उपन्यासो की अटूट शृखला है। फलत. असहयोग आन्दोलन से चीनी आक्रमण तक की समस्त राजनीतिक घटनाएँ एव विचार-धाराएँ इनमे स्थान पा सकी हैं।

आलोच्य अध्याय मे आचार्य चतुरसेन, वृन्दावनलाल वर्मा, मन्मथनाथ गुप्त, गुरुदत्त आदि के राजनीतिक उपन्यासो की विस्तृत विवेचना प्रथम बार इस शोध प्रबन्ध मे ही की गयी है।

आठवें अध्याय मे उन स्वतन्त्र्योत्तरकालीन उपन्यासों का अनुशीलन है, जो आचलिकता के क्रोड मे राजनीति को प्रस्फुटित करते हैं। इसमे नागार्जुन, रेणु, भैरव-

प्रसाद गुप्त आदि उपन्यासकार है जो मूलत आचलिक उपन्यासकार के रूप मे जाने जाते हैं, यद्यपि उनके इन उपन्यासों का मूल स्वर राजनीतिक ही है, जिसका स्पष्टीकरण यहाँ हुआ है। अध्याय के प्रारम्भ मे आचलिकता का राजनीतिक स्वरूप भी स्पष्ट किया गया है।

नवम् अध्याय मे राजनीतिक उपन्यासो का औपन्यासिक तत्वो के आधार पर उसकी युगान्तरकारी उपलब्धियो और अभावो का आकलन करते हुए उनके स्वरूप का निरूपण है।

दसवें अध्याय मे विभिन्न राजनीतिक विचारधाराओ और सिद्धातो के परिवेश मे राजनीतिक उपन्यासो मे अनेक प्रभावो का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

ग्यारहवें अन्तिम अध्याय मे राजनीतिक उपन्यासो के वैचारिक एवं साहित्यिक प्रदेय तथा भविष्य की सम्भावना पर विचार व्यक्त किया गया है।

इस तरह प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का विषय भारतीय राजनीति, विभिन्न राजनीतिक विचारधाराओ और उपन्यास-साहित्य के 'सगम' के रूप मे विविधमुखी और व्यापक है। इन पर समग्ररूप से विचार करने के लिए आलोच्य विषय तथा कालावधि की सामयिक राजनीति एव साहित्य की गहन, सूक्ष्म एव तटस्थ दृष्टि आवश्यक थी और इसका यथासम्भव पालन किया गया है।

हिन्दी के राजनीतिक उपन्यास प्रारम्भिक अवस्था से ही विशिष्टता लिए हुए हैं। राजनीतिक ज्ञानवृत्ति और राष्ट्रीय भावना के क्षेत्र मे उनके महत्वपूर्ण योगदान को देखकर हम निस्सकोच कह सकते है कि लोकतान्त्रिक समाजवाद की लक्ष्य प्राप्ति मे भावी राजनीतिक उपन्यास निर्माणकारी भूमिका का निर्वाह करेंगे। किन्तु इतना होने पर भी हम कहना चाहेंगे कि सामयिक घटनाओं के चित्रण अथवा राजनीतिक सिद्धांतों के प्रचारवादी ध्येय से उपन्यास के साहित्यिक मूल्य मे वृद्धि नहीं होती। हम यह मानते हैं कि जीवन के उन्नयन मे सहायक हर प्रवृत्ति अच्छी है, किन्तु उसकी सार्थकता आदर्श के व्यापक परिवेश में ही है। साहित्य का उद्देश्य राजनीति जैसा सकुचित नही होता। सम्भवत- इसीलिए माखनलाल चतुर्वेदी ने 'उपन्यास तत्व एव रूप-विधान' की प्रस्तावना मे लिखा है - "घटनाएँ बिम्ब बनाती हैं, वे इतिहास के काम आ सकती है। उन घटनाओ मे समय के आर-पार देखने की ताकत भी है। किन्तु प्रथम दिन राजनीति और दूसरे दिन इतिहास कहलाने वाली घटनाओ मे जितनी मर कर जीने की क्षमता है, उतनी कदाचित् जीवित रहने की क्षमता नहीं। इसीलिए ससार के प्रतिभाशालियो को घटनाओ के बिम्ब का प्रतिबिम्ब उपस्थित करना पड़ा।" वस्तुतः उपन्यास की सार्थकता भी इसी मे है।

प्रस्तुत प्रबन्ध सर्वश्री आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी जी के निरीक्षण निर्देशन मे

हुआ है, जो हिन्दी साहित्य के मर्मज्ञ विचारक एवं अधिकृत विद्वान् हैं। मेरी दृष्टि में तो पंडित जी आलोचना-साहित्य के पारसमणि हैं, जो अपने स्पर्श से लौह को स्वर्ण बनाने की क्षमता से युक्त हैं। इसका अनुभव मुझे तब हुआ, जब मैं स्थानीय साहित्यिक मित्रों के साथ उनके दर्शन को गया और शोध-कार्य की दीक्षा लेकर लौटा। और फिर जनसम्पर्क अधिकारी और शोध छात्र दोनों का कार्य साथ-साथ चलने लगा। यह पंडित जी के व्यक्तित्व का प्रभाव है कि दिन को 'शासकीय सेवक' और रात्रि को 'सरस्वती-साधक' बन मैं वर्षों एकनिष्ठ भाव से शोध कार्य हेतु धैर्य-शक्ति संजो सका। इस साधना में जो प्राप्त कर सका, उसका श्रेय वस्तुतः श्रद्धेय वाजपेयी जी के कुशल निर्देशन को ही है।

अपने इस शोध कार्य में मुझे जिन आत्मीय जनों से विशेष रूप से डॉ० राम-कुमार सिंह 'कुमार' से जो सक्रिय सहयोग मिला, उनका भी मैं हृदय से आभारी हूँ।

ब्रजभूषण सिंह 'आदर्श'

सागर,
जन्माष्टमी,
३० अगस्त, १९६४

अनुक्रमणिका

० ० ०

हिन्दी के
राजनीतिक उपन्यासों का अनुशीलन

अध्याय १

हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासों का स्वरूप संस्थापन

- > उपन्यास : शब्द व्युत्पत्ति
- > भारतीय तथा पाश्चात्य मत
- > उपन्यास का पारिभाषिक स्वरूप
- > उपन्यास के मूल तत्व
- > औपन्यासिक विभेदों के आधार
- > कथा वस्तु
- > कथानक में कल्पना का स्थान
- > शैलीगत प्रभेद
- > वर्ण्य वस्तु के आधार पर उपन्यासों का वर्गीकरण
- > वर्ण्यवस्तु और पात्र
- > पात्रों का वर्गीकरण
- > निष्कर्ष
- > समाज और राजनीति का पारस्परिक सम्बन्ध
- > राजनीतिक उपन्यास : नूतन क्षितिज
- > राजनीतिक उपन्यासों में युगीन समस्याएँ
- > राजनीतिक उपन्यासों की व्याप्ति और सीमा
- > राजनीतिक उपन्यासों का स्वरूप संस्थापन
- > राजनीतिक एवं ऐतिहासिक उपन्यासों की पार्थक्य रेखा

उपन्यास शब्द व्युत्पत्ति

उपन्यास वर्तमान युग की देन है जो गद्य-साहित्य का कलात्मक एवं कल्पनात्मक रूप है, जिसका आधार कथा है। 'उपन्यास' शब्द संस्कृत भाषा का है, किन्तु प्राचीन संस्कृत साहित्य में इसका प्रयोग उस अर्थ में कभी नहीं हुआ, जिसमें वह आज व्यवहृत किया जाता है। उपन्यासकार प० किशोरीलाल गोस्वामी ने 'प्रणयिनी परिणय' के 'उपोद्घात' में उपन्यास के सम्बन्ध में मत व्यक्त करते हुए लिखा है कि 'जिस प्रकार साहित्य के प्रधान अंगों में 'नाटक' का प्रचार प्रथम यहाँ ही हुआ था, उसी तरह 'उपन्यास' की सृष्टि भी प्रथम यहाँ ही हुई थी यह अयौक्तिक नहीं है, परन्तु किसी-किसी महाशय का यह कथन है कि 'उपन्यास' पूर्व समय में यहाँ प्रचलित नहीं था, वरन् यह अंग्रेजों की देखा-देखी लोगों ने 'नोवेल के स्थान में उपन्यास की कल्पना कर ली है इत्यादि। परन्तु उन महात्माओं को प्रथम इसकी मीमांसा कर लेनी चाहिए, क्योंकि 'उपन्यास' उप-नी उपसर्ग पूर्वक आस धातु इन शब्दों से बना है यथा उप (समीप) नी (उपन्यास) आस (रचना) अर्थात् इसकी रचना उत्तरोत्तर आश्चर्यजनक एवं कुछ छिपी हुई कथा क्रमशः समाप्ति में स्फुटित हो और चमत्कार भी 'उपन्यासस्तु वाङ्मुखम्' अर्थात् वाङ्मुखी वाचा यह अर्थ उपन्यास के तात्पर्य से ही घटता है, इत्यादि प्रमाणों से उपन्यास भी प्राचीन काल से भारतवर्ष में प्रचलित है और 'दशकुमार चरित्र' 'वासवदत्त,' 'श्री हर्ष चरित्' 'कादम्बरी' आदि उपन्यास इसकी प्राचीनता में जाज्वल्यमान प्रमाण हैं[1]।'

भारतीय तथा पाश्चात्य मत

इस अभियान के उद्भावक की सूझ की प्रशंसा डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भी यों की है—'उपन्यास वस्तुतः ही 'नवल' अर्थात् नया और ताजा साहित्यांग है, परन्तु फिर भी जिस मेधावी ने कथा, आख्यायिका आदि शब्दों को छोड़कर अंग्रेजी 'नावेल' का प्रतिशब्द उपन्यास माना था उसकी सूझ की प्रशंसा किये बिना नहीं रहा जाता। जहाँ उसने इस नये शब्द के प्रयोग से यह सूचित किया कि यह साहित्यांश पुरानी कथाओं और आख्यायिकाओं से भिन्न जाति का है वहीं इसके शब्दार्थ के द्वारा (उप = निकट, न्यास = रखना) यह भी सूचित किया कि इस विशेष साहित्यांश के द्वारा ग्रन्थकार पाठक के निकट अपने मन की कोई विशेष बात, कोई अभिनव मत रखना चाहता है। इस

---

१ किशोरीलाल गोस्वामी : प्रणयिनी परिणय, उपोद्घात, पृष्ठ १

लिए यद्यपि यह शब्द पुरानी परम्परा के अनुकूल नहीं पड़ता, तथापि उसका प्रयोग उपन्यास की विशिष्ट प्रकृति के साथ बिलकुल बेमेल नहीं कहा जा सकता[1]।"

आलोचक गुलाब राय जी की भी मान्यता है कि अंग्रेजी शब्द नाविल (Novel) मे, जिसका अर्थ नवीन है, ऊपर की कहानी का तत्व भरा हुआ है। मराठी भाषा मे अंग्रेजी शब्द के आधार पर 'नवल कथा' शब्द गढ लिया गया है। मराठी मे उपन्यास को 'कादम्बरी' भी कहते है। यह एक व्यक्तिवाचक नाम जातिवाचक बनाने का अच्छा उदाहरण है। उपन्यास शब्द प्राचीन नहीं है, कम से कम उस अर्थ मे, जिसका आजकल व्यवहार होता है। सस्कृत लक्षण ग्रन्थो मे 'उपन्यास' शब्द है। यह नाटक की सधियो का एक उपभेद है (प्रतिमुख सधि का) इसकी दो प्रकार से व्याख्या की गई है। 'उपन्यास प्रसादनम्' अर्थात् प्रसन्न करने को उपन्यास कहते हैं। दूसरी व्याख्या इस प्रकार है 'उपपति कृतो ह्यर्थ उपन्यास प्रकीर्तित' अर्थात् किसी अर्थ को युक्तियुक्त के रूप मे उपस्थित करना उपन्यास कहलाता है। सभव है कि उपन्यासो मे प्रसन्नता देने की शक्ति तथा युक्तियुक्त रूप मे अर्थ को उपस्थित करने की प्रवृत्ति के कारण इस तरह की कथात्मक रचनाओ का नाम उपन्यास पडा हो, किन्तु वास्तव मे नाटक साहित्य के उपन्यास शब्द और आजकल के उपन्यास मे नाम का ही साम्य है। उपन्यास का शब्दार्थ है, सामने रखना[2]।

उपरोक्त कथनो से यह स्पष्ट हो जाता है कि उपन्यास अंग्रेजी के नावेल का पर्यायवाची है। अंग्रेजी 'नावेल' शब्द की व्युत्पत्ति लैटिन नोवस या नोवेलस तथा फ्रेन्च नोवो से है, जो सस्कृत के 'नव' के विकसित रूप ज्ञात होते है। नावेल का अर्थ नया, असाधारण या विचित्र है और जिस कहानी मे नया, कल्पित तथा रोमानकारी विवरण हो उसे नावेल कहते है[3]।

जोसेफ टी शिपले का कथन है कि नाविल इटालियन 'नूवेला' से निकला हुआ है और मोटे रूप मे समाचार का समकक्ष है, वह एक नये प्रकार की चुटकुलो से भरी हुई एक ऐसी कथा का सकेत करता है जो आसन्नकालीन और सत्य दोनो है[4]।

हिन्दी मे नावेल के लिए उपन्यास नामकरण के सम्बन्ध मे बाबू ब्रजरत्न दास का मत विचारणीय है। उनके अनुसार हिन्दी मे या भारतीय भाषाओ मे जब पाश्चात्य

१ प० हजारी प्रसाद द्विवेदी का लेख, 'साहित्य-संदेश', उपन्यास अक, अक्टूबर-नवम्बर, १९४०, पृष्ठ ४२
२. गुलाब राय, काव्य के रूप, पृष्ठ १६५
३ ब्रजरत्नदास : हिन्दी उपन्यास साहित्य, पृष्ठ ९
४ जोसेफ टी शिपले, डिक्शनरी ऑव वर्ल्ड लिटरेचर

प्रभाव के कारण वहाँ की सी कहानियाँ लिखी जाने लगीं तब उसके लिए नामकरण करने की आवश्यकता पड़ी। नामकरण इस प्रकार किया गया। संस्कृत में न्यास (नि + अस) शब्द के कई अर्थ हैं—धरोहर, थाती, सौंपना, मन्त्रों से अंग-प्रत्यङ्ग देवताओं को सौंपना, त्यागना, मानसिक सन्तोष आदि। उपन्यास (उप-न्यास) के अर्थ भी धरोहर, थाती, प्रोल, उपक्रम, मर्दन आदि है और इसमे बड़ी कहानी का भावार्थ ग्रहण किया जाता है। हिन्दी में भारतेन्दु काल में नवन्यास शब्द भी इस अर्थ में दो एक सज्जनों ने प्रयुक्त किया था। नव शब्द का अर्थ नया, नौ संख्या, प्रशंसा बनावटी, प्रशंसा, उत्सव आदि है और इसी में न्यास शब्द का संयोग कर यह शब्द बना लिया गया था, पर इसका प्रचार नहीं हुआ। बंगला में रोमान्स के लिए इसी प्रकार रमन्यास शब्द बना पर वह भी नहीं चला। नावेल शब्द से मिलता-जुलता नवल शब्द भी बंकिम बाबू के समय प्रयुक्त हुआ था और उपन्यासकार के बदले नवल कथाकार या नवलकार का भी उपयोग किया गया था पर ये शब्द उसी समय अप्रयुक्त हो गये। अब केवल उपन्यास शब्द ही विशेष प्रचलित है[1]।

उपन्यास का पारिभाषिक स्वरूप

'उपन्यास' शब्द की व्युत्पत्ति और उसकी मीमांसा उसकी परिभाषा निर्धारित करने में अत्यन्त सहायक सिद्ध हुई है। उसके शब्दार्थ में पाठकों के निकट मन की विशेष बात या अभिनव मन युक्ति-युक्ति रूप में रखने का जो भाव निहित है उससे उपन्यास की परिभाषा को दिशा निर्देश मिला है।

यों उपन्यास शब्द के सदृश्य ही उपन्यास की परिभाषा के सम्बन्ध में भी अनेक मत हैं। स्काट जेम्स का मत है कि 'उपन्यास एक कला है, क्योंकि उससे एक ऐसी वस्तु का प्रदर्शन होता है, जिसे कलाकार जीवन अथवा जीवन के सत्य के रूप में भी स्वीकार करता है और इसीलिए कि इन तत्वों को एक ग्राह्य शक्ति से समन्वित करके ग्राह्य रूप में सग्रथित करता है तथा इस तथ्य के लिए हमें प्रेरित करता है कि जो उसने देखा है वह हम देख सकें और उससे आनन्द प्राप्त करें[2]।' वाल्टर एस० कैंपबेल के अनुसार 'उपन्यास एक लम्बी गद्य वर्णना है, जिसमें मानव चरित्र का उद्घाटन होता है। मानव चरित्र विविध रूपों में हमारे समक्ष आता है।[3] हिन्दी के उपन्यास-सम्राट प्रेमचन्द ने भी उपन्यास को मानव चरित्र का चित्र माना है। उन्होंने लिखा है

---

१. ब्रजरत्नदास : हिन्दी उपन्यास साहित्य, पृष्ठ ६–१०

२ स्काट जेम्स : द मेकिंग आव द लिटरेचर, पृष्ठ ३५५–५६

३ वाल्टर एस० काम्पबेल : द कम्पलीट नावल, पृष्ठ १३६

कि 'मैं उपन्यास को मानव-चरित्र का चित्र-मात्र समझता हूँ। मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व है[१]। राल्फ फाक्स भी उपन्यास को मानव जीवन का गद्य मानते है। उनके अनुसार 'उपन्यास गद्य मे लिखी गई कथामात्र नहीं है, वह मनुष्य के जीवन का गद्य है। उपन्यास वह प्रथम कला रूप है जो समग्र मनुष्य को समझने और अभिव्यक्त करने का प्रयास करता है। • • यथार्थ की एक दूसरी ही दृष्टि उपन्यास प्रस्तुत करता है। काव्य, नाटक, सिनेमा, चित्रकला या संगीत द्वारा प्रस्तुत यथार्थ से निश्चय ही उपन्यास का यथार्थ भिन्न है। ये सब यथार्थ के उन पहलुओं को भले ही व्यक्त कर सकें जो उपन्यास की पहुँच के बाहर है, परन्तु किसी एक पुरुष, स्त्री या बच्चे का सम्पूर्ण जीवन भली प्रकार अंकित कर सकने मे इनमे से कोई भी समर्थ नहीं[२]।'

'उपन्यास एक ऐसी कृति है, जिसमे मनुष्य की सबसे बडी शक्तियाँ प्रदर्शित होती हैं, जिसमे मानवीय प्रकृति का अत्यन्त गम्भीर ज्ञान, उसकी विविधता के सुखद निरूपण, प्रत्युतपन्न मति और विनोद के सुन्दरतम उन्मेष, उत्तम चुनी हुई भाषा मे जगत के समक्ष प्रस्तुत किये गये हैं[3]।' मास ने भी उपन्यास को 'वास्तविक जीवन या यथार्थवादी विधि से अंकित करने वाला' निरूपित किया है तथा जेम्स ने लिखा है कि 'उपन्यास एक सजीव वस्तु है। वह पूर्ण और अखण्ड है। किसी अन्य जीव के समान जिस अनुपात मे उसमे सजीवता है, उस अनुपात तक मेरे विचार से यह पाया जायगा कि प्रत्येक भाग मे दूसरे भागो का भी कुछ अंश है।' इस संदर्भ मे क्लारारीव का मत भी द्रष्टव्य है। 'प्रोग्रेस आव रोमान्स' मे वे लिखते हैं कि **'उपन्यास यथार्थ जीवन और व्यवहार का तथा उस काल का जिसमे वह लिखा गया है, एक चित्र है।'**

मार्क्सवाद के रूप मे प्रचलन के उपरान्त क्रांति की प्रेरणा रूसी साहित्य का दायित्व माना जाने लगा। इसका प्रभाव अन्य देशो की भाषाओ के साहित्य पर भी पडा। फिलिप हेण्डर्सन ने उपन्यासकार के इस राजनीतिक दायित्व की ओर इंगित किया है[४]। हावर्ड फास्ट ने भी यह स्वीकार किया है कि उपन्यासकारो को जन क्रान्ति की प्रेरणा देने वाले उपन्यासो की रचना मे सहयोग देना

१ प्रेमचन्द : साहित्य का उद्देश्य, पृष्ठ ५४
२ राल्फ फक्स : द नावल एण्ड द पीपुल, पृष्ठ २०
३ एलीजाबेथ ड्यू द माडर्न नावेल, पृष्ठ ५
४ हेंडरसन . नावल टु डे पृष्ठ १५

चाहिए क्योंकि यह उसका अनिषेध्य कर्तव्य है[१]। सुप्रसिद्ध रूसी उपन्यासकार गोर्की का भी कथन है मेरे मत में कलाकार अपने देश का सुपुत्र है, और जो सबों में अधिक औत्सुक्य और विवेक के साथ देश के लिए काम करता है। वह दूसरों से अच्छी तरह जानता है कि स्वतन्त्रता के बिना संस्कृति और कला का अस्तित्व नहीं है, अतः अपने देश की दुर्दशा में उसकी जनता के हृदय को जगाकर उसमें वीरता का आवेग भरना उसका कर्तव्य है[२]।'

इसमें सन्देह नहीं कि उपन्यास का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। सम्भवतः इसीलिए उसकी तुलना करते हुए हमिश मिलेश ने लिखा है कि 'उपन्यास उन कीटाणुओं की आँखों के समान है, जिनमें आठ सौ अस्सी काँच हैं और जो उचित रूप से पृथ्वी के दृश्यों की आठ सौ अस्सी चित्रावलियाँ प्रस्तुत करते हैं[३]।' कहा गया है कि 'उपन्यास व्यर्थ बकवास के अतिरिक्त और सब कर सकता है[४]। अर्थात् उपन्यास का अस्तित्व विस्तृत है और वह सब कुछ है।

कहने का तात्पर्य यह कि 'साहित्य क्षेत्र में उपन्यास ही एक ऐसा उपकरण है जिसके द्वारा सामूहिक मानव जीवन अपनी समस्त भावनाओं और चिन्ताओं के साथ सम्पूर्ण रूप में अभिव्यक्त हो सकता है। मानव जीवन के विविध चित्रों को चित्रित करने का जितना अवकाश उपन्यासों में मिलता है उतना अन्य साहित्यिक उपकरणों में नहीं[५]।'

इस तरह उपन्यास की विभिन्न परिभाषाओं के पीछे हमें जिस प्रधान गुण का संकेत मिलता है, वह है मानव जीवन की व्याख्या। आधुनिक मानव का जीवन राजनीति से बहुत अंशों तक परिचालित एवं प्रभावित है। इस रूप में उसका सामाजिक जीवन सामयिक राजनीति से अपने को पूर्णरूपेण पृथक नहीं कर सकता है। वस्तुतः आज के मानव की सामाजिक एवं राजनीतिक समस्याएँ एक दूसरे की पूरक हो गई हैं। मानव जीवन की इसी विशाल चित्रपटी पर उपन्यासकार उसके सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और राजनीतिक परिवेश का आदर्श एवं यथार्थवादी दृष्टिकोण को सत्य व कल्पना के रंग भरके परिधान के साथ चित्रित करता है। सम्भवतः उसके इसी वैशिष्ट्य के कारण उपन्यास को जनतन्त्रीय साहित्यिक विधा कहा गया है।

---

१. हावर्ड फास्ट : लिटरेचर एण्ड रियल्टी पृष्ठ १५
२ मैक्जिम गोर्की लिटरेचर एण्ड लाइफ पृष्ठ १४
३. हैमिश मिलेश फ्रांस पृष्ठ ३१–३२
४. एच० जी० वेल्स : टेन्डेन्सीज आव द माडर्न नावल
५ आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी : नया साहित्य : नये प्रश्न

उपन्यास के मूल तत्व

उपन्यास साहित्य के विकास के साथ उसके प्रकार भी वृद्धिशील हैं। उपन्यास का वर्गीकरण दो प्रकार से किया गया है—विशेष तत्व के आधार पर या वर्ण्य वस्तु के आधार पर।

पाश्चात्य उपन्यास समीक्षक हडसन ने उपन्यास के मूल तत्वो पर विचार व्यक्त करते हुए लिखा है—"उपन्यास जीवन की प्रतिकृति है। इसलिए उसका सम्बन्ध मानव-व्यापारो, क्रिया-कलापो और घटनाओ से होता है। इसी को उपन्यास की कथावस्तु कहते हैं। इन घटनाओ का विधाता मानवसृष्टि उपन्यास का पात्र कहलाता है। उपन्यास जगत मे पात्रो की बातचीत को कथोपकथन कहते हैं। ये जीवन घटनाएं किसी विशिष्ट स्थान पर घटित होती हैं। इस समय और स्थान को ही, परिस्थिति वातावरण अथवा देशकाल कहते हैं। शैली का तत्व भी इसमे आवश्यक है। इन पाच तत्वो की अपेक्षा एक छठा तत्व रहता है। प्रत्येक उपन्यास मे लेखक जाने या अनजाने जीवन और उसकी कुछ समस्याओ का उद्घाटन तथा विवेचन करता है।[1] इससे किसी दृष्टि का पता चलता है। यह उपन्यासकार का जीवनदर्शन है।[2]

इस प्रकार हडसन के मतानुसार कथानक, चरित्र-चित्रण, कथोपकथन, समय और स्थान अन्विति, शैली और कथित अथवा निहित जीवन-दर्शन ही किसी उपन्यास सदृश गद्यात्मक कृति के प्रमुख अग हैं।[3] उपन्यास के उपर्युक्त मूल तत्वो को प्रायः सभी विद्वानो की सहमति प्राप्त है। इन मूल तत्वो के आधार पर उपन्यासो के प्रमुखतः तीन विभेद किये जाते हैं : घटना-प्रधान, चरित्र प्रधान और घटना चरित्र प्रधान तथा नाटकीय।

औपन्यासिक विभेदो के आधार

कथा वस्तु

मूल तत्वो के आधार पर उपन्यास के वर्गीकरण के लिए जिन दो तत्वो का होना अनिवार्य है वे हैं कथावस्तु और पात्र। अन्य तीन तत्व कथोपकथन, देशकाल और शैली इन्हीं दो तत्वो के प्रमुख सहायक होकर उनको गति प्रदान करते हैं।

कथानक उपन्यास की आधारशिला है। 'कथानक ही वह वस्तु होती है, जिस पर उपन्यास का भवन खडा होता है। इसीलिए इसे उपन्यास का ढांचा माना जाता

१. शिव नारायण श्रीवास्तव : हिन्दी उपन्यास, पृष्ठ ८

२. डब्लू० एच० हडसन : एन इन्ट्रोडक्शन टू द स्टडी आव लिटरेचर, पृष्ठ १३०

३. डब्लू० एच० हडसन : एन इन्ट्रोडक्शन टू द स्टडी आव लिटरेचर, पृष्ठ १३१

है। उपन्यास के अन्य तत्व अप्रधान उपकरणो की भाति कार्य करते हैं। इस दृष्टि से इन सब तत्वो मे प्रधानत कथानक के योग से ही उपन्यास की रचना होती है।[1] इसी को यो भी कहा जाता है कि 'जिस प्रकार चित्रकार पहले एक ढाचा तैयार करके उसमे तूलिका से रङ्ग भरता है, उसी प्रकार यह उपन्यास का ढाचा है। वस्तु वह मार्ग है जिसपर चलकर पात्र किसी निर्दिष्ट स्थान पर पहुचते हैं।'[2] कथानक सत्य के निकट कल्पना के पुट के साथ हो सकता है। वह मौलिक, रोचक और चरित्रों एवं व्यापारों को कार्य-करण शृंखलाबद्ध करने वाला हो जिससे जीवन क्षो का महत्व स्पष्टतया उभरे और अभिव्यक्ति अनुभूतियुक्त हो। इसीलिए कहा गया है कि कथानक की सफलता घटनाओ के नियोजन और जीवन की विभिन्नावस्थाओ के कुशलपूर्ण चित्रण पर आधारित होनी है।

कथानक मे कल्पना का स्थान

कथानक मे कल्पना का सम्मिश्रण अनेक विद्वानो ने अनिवार्य माना है। डॉ० रामअवध द्विवेदी का मत है कि 'कथासरिता तो धारा के समान है और उन परिस्थितियो को, जिनके बीच मे से होकर धारा अग्रसर होती है, हम सरिता के किनारो से तुलना कर सकते हैं। उपन्यास मे वैयक्तिक जीवन का निरूपण सामाजिक अथवा जातीय जीवन की पृष्ठभूमि बनाकर होता है, अतएव उसमे यथार्थ के साथ कल्पना का मेल अनिवार्य है।'[3] किन्तु कल्पना को आधार-युक्त होना चाहिए। इस सन्दर्भ मे हेनरी जेम्स ने स्पष्ट लिखा है कि 'अगर किसी लेखक की बुद्धि कल्पना कुशल है तो वह सूक्ष्मतम भावो से जीवन को व्यक्त कर देती है। वह वायु के स्पन्दन को जीवन प्रदान कर सकती है। लेकिन कल्पना के लिये कुछ आधार अवश्य चाहिये। जिस तरुण लेखिका ने कभी सैनिक छावनिया नहीं देखीं उससे यह कहने मे कुछ भी अनौचित्य नहीं कि आप सैनिक जीवन मे हाथ न डालें।'[4]

कथावस्तु की दृष्टि से उपन्यास दो श्रेणियो मे वर्गीकृत किये जा सकते हैं— (१) शिथिल या असम्बद्ध कथावस्तु के उपन्यास, (२) सगठित अथवा सम्बद्ध कथा-वस्तु युक्त उपन्यास। शिथिल वस्तु उपन्यासो मे घटनाधिक्य से कथानक की एकसूत्रता को आघात पहुँचता है। इसके विपरीत सगठित वस्तु-उपन्यास मे

१. डॉ० शभुनारायण टण्डन, हिन्दी उपन्यास का उद्भव और विकास, पृ० ४१
२. ताराशकर पाठक · हिन्दी के सामाजिक उपन्यास, पृ० १२
३. डॉ० राम अवध द्विवेदी : आलोचना, उपन्यास विशेषांक पृ० ३३
४. डॉ० श्यामसुन्दर दास · साहित्यालोचन, पृ० १६२

क्रमबद्धता रहती है पर घटनाओं का स्वातन्त्र महत्व कम हो जाता है। इसमें नायक का महत्व ही विशिष्ट नहीं होता वरन् घटनाओं में एकसूत्रता होती है।

कथानक के भी दो विभेद हो सकते हैं जिन्हें आधिकारिक व प्रासंगिक कहा जाता है। इनमें आधिकारिक कथावस्तु प्रमुख होती है तथा प्रासंगिक कथा-वस्तु का उपयोग उसके सहायतार्थ होना चाहिये। कथानक को मुख्यतः तीन शैलियों में प्रस्तुत किया जा सकता है। डॉ० श्यामसुन्दर दास के मतानुसार 'उपन्यासों की कथा कहने के तीन ढंग हैं। पहले में तो उपन्यासकार इतिहासकार का स्थान ग्रहण करके और वर्णनीय कथा से अपने को अलग रखकर अपने वस्तु विधान का क्रमशः उद्घाटन करता हुआ पढ़ने वालों को अपने साथ लिए हुये अन्तिम परिणाम तक पहुँचा कर अपना अभिप्रेत भाव उत्पन्न करता है। दूसरे ढङ्ग में उपन्यासकार नायक का आत्मचरित्र उसके मुँह से अथवा कभी-कभी किसी उपपात्र या गौण पात्र के मुँह से कहलाता है। तीसरा ढङ्ग वह है, जिसमें प्रायः चिट्ठियों आदि के द्वारा कथा का उद्घाटन किया जाता है। तीसरा ढङ्ग बहुत कम और पहला ढङ्ग बहुत अधिक काम में लाया जाता है। पहले ढंग का अनुसरण करने में ग्रन्थकार को अपना कौशल दिखाने का पूरा-पूरा अवसर मिलता है। दूसरे और तीसरे ढंग का अनुसरण करने में उसे कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। इनमें से सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि वह अपनी समस्त सामग्री का यथोचित उपयोग नहीं कर सकता।[1]

शैलीगत प्रभेद

इस प्रकार शैली की दृष्टि से कथानक के जो विभेद हैं वे ये हैं —वर्णनात्मक, आत्मकथात्मक और पत्रात्मक व डायरी शैली।

आत्मकथात्मक शैली में उपन्यासकार नायक नायिका या अन्य किसी पात्र का स्थान ग्रहण कर प्रत्येक घटना चक्र का वर्णन स्वयं करता है जिससे वह केवल उन्हीं बातों का विवरण प्रस्तुत कर सकता है, जिसे उसने अपने, चरित्र के अनुसार स्वयं देखा या अनुभव किया हो। नायक के चरित्र-चित्रण के महत्व की दृष्टि से इस शैली का विशेष स्थान हो सकता है। "नायक के चरित्र चित्रण की दृष्टि से उपन्यास की यह शैली सर्वोत्तम है, क्योंकि स्वयं कथा कहने के कारण नायक अपने अन्तस्तल तक की बातों का अत्यन्त प्रभावपूर्ण वर्णन कर सकता है, परन्तु इस शैली में एक दोष है कि नायक के अतिरिक्त अन्य चरित्रों का सुन्दर चित्रण नहीं हो पाता। उसके अतिरिक्त कथा के सौन्दर्य की भी इस शैली से पर्याप्त क्षति होती है। इसमें वर्णनात्मक शैली के उपन्यासों की भांति मनोवैज्ञानिक चित्रण तथा

१. डा० श्यामसुन्दर दास : साहित्यालोचन, पृ० १६२

प्रकृति के सुन्दर चित्र नहीं मिल सकते । साधारणतः यह शैली केवल उन्हीं उपन्यासो के लिए उपयुक्त है जहां केवल एक ही प्रधान चरित्र हो और अन्य सभी चरित्र बहुत साधारण और संख्या मे कम हो।

वर्ण्यवस्तु के आधार पर उपन्यासो का वर्गीकरण

कथानक मे वर्ण्यवस्तु के विचार से उपन्यास के सामाजिक, प्रागैतिहासिक, ऐतिहासिक, धार्मिक, राजनीतिक आदि विभेद किये जाते हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के मतानुसार 'उपन्यासो और कहानियो के सामाजिक और ऐतिहासिक ये दो भेद तो बहुत प्रत्यक्ष है ' किन्तु वे ये मानते हैं कि 'कथावस्तु के स्वरूप और लक्ष्य के अनुसार हिन्दी के उपन्यासो में' अन्य भेद भी मिलते है। उनके अनुसार जो भेद दिखलाई देते हैं, वे ये है —

१—घटना-वैचित्र्य प्रधान अर्थात् केवल कुतूहलजनक जैसे जासूसी और वैज्ञानिक, आविष्कारो का चमत्कार दिखानेवाले ।

२—मनुष्य के अनेक पारस्परिक सम्बन्धों की मार्मिकता पर प्रधान लक्ष्य रखने वाले।

३—समाज के भिन्न भिन्न वर्गों की परस्पर स्थिति और उनके संस्कार चित्रित करने वाले।

४—अन्तर्वृत्ति अथवा शील वैचित्र्य और उनका विकास क्रम अंकित करने वाले।

५—भिन्न-भिन्न जातियो और मतानुयायियो के बीच मनुष्यता के व्यापक सम्बन्ध पर जोर देने वाले।

६—समाज के पाखण्डपूर्ण कुत्सित पक्षो का उद्‌घाटन और चित्रण करने वाले।

७—बाह्य और आभ्यन्तर प्रकृति की रमणीयता का समन्वित रूप मे चित्रित करने वाले, सुन्दर और अलंकृत पद विन्यास युक्त उपन्यास[1] ।

इस सूची से भी शुक्ल जी को सन्तोष नहीं हुआ और सम्भवतः इसी से वे लिखते हैं 'अनुसन्धान और विचार करने पर इसी प्रकार और दृष्टियो से भी कुछ भेद किये जा सकते हैं। सामाजिक और राजनीतिक सुधारो के जो आन्दोलन देश मे चल रहे हैं, उनका आभास भी बहुत से उपन्यासों में मिलता है। प्रवीण उपन्यासकार उनका समावेश और बहुत सी बातो के बीच कौशल के साथ करते हैं[2] ।'

---

१. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास

२ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास

आचार्य शुक्ल के उपरोक्त कथन से केवल यह तात्पर्य लेना चाहिए कि उपन्यास एक लचीला साहित्याग है और वर्ण्यवस्तु के आधार पर उसके अनेक विभेद किये जा सकते है। कुछ विद्वान इतने विस्तार मे न जाकर वस्तु विवेचन की दृष्टि से उसे ऐतिहासिक, ऐय्यारी जासूसी, पारिवारिक व सामाजिक विभेदो तक सीमित मानते हैं, जिसे युक्तिसगत नहीं कहा जा सकता।

वस्तुत जीवन की विविधता के अनुरूप कथावस्तु और कथावस्तु के निर्णायक तत्वों मे भी एकता मे अनेकता के दर्शन होते है। अपनी रुचि के अनुसार लेखक उसका चयन कर जीवन की गाथा को सुसगठित रूप मे सवारने का प्रयत्न करता है। कथानक उपन्यास का अनिवार्य अग है फिर चाहे वह चरित्र प्रधान हो, भाव प्रमुख हो या नाटकीय।

पूर्व मे कहा जा चुका है कि यही तत्व वर्ण्यवस्तु के आधार पर भी उपन्यास का वर्गीकरण करता है। यह कहा जा सकता है कि कथानक का स्वरूप चाहे कुछ भी क्यो न हो और अभिव्यक्ति के हेतु वह किसी भी शैली को क्यो न अपनाये, वर्ण्यवस्तु के प्रति उसकी एकनिष्ठ भावना आवश्यक है। उपन्यासकार की सफलता इसी मे है कि वह अपने पाठक का तादात्म्य वर्ण्य वस्तु के सत्य से कराकर उसकी विचार प्रक्रिया को गतिशील बनाये। सच तो यह है कि मानवजीवन की व्याख्या करने के कारण उपन्यास का चित्रफलक अत्यन्त व्यापक है। इस रूप मे उसके सीमान्तर्गत जीवन के सभी अगो का समावेश हो जाता है और जिसे वह स्वानुभव से सार्वजनिक बनाता है। यह वर्ण्य वस्तु की विशिष्टता है और इसके आधार पर भी उपन्यासो का वर्गीकरण किया जा सकता है। कथानक के आधार पर श्रीनारायण अग्निहोत्री ने जो पाच वर्ग बनाये हैं वे निम्नानुसार हैं—

(१) ऐतिहासिक तथ्यो को कल्पना की रगीनी के साथ प्रस्तुत करने वाले,
(२) वाद एव प्रचार की दृष्टि से गढे हुए,
(३) अद्भुत वैज्ञानिक तथ्यो से पूर्ण,
(४) वातावरण को प्रमुखता देने वाले, और
(५) मनोविश्लेषण को प्रमुखता देने वाले[१]।

किन्तु शिवनारायण श्रीवास्तव के मतानुसार 'वर्ण्यवस्तु के विचार से धार्मिक सामाजिक, राजनीतिक, प्रागैतिहासिक, ऐतिहासिक, आर्थिक, यौन और प्राकृतिक (प्रकृति का अकन करने वाले) आदि अनेक भेद किये जा सकते है। इन सभी प्रकार के उपन्यासो की प्रधान विशेषताओं का ध्यान रखते हुए इनके मुख्य चार भेद करना

---

१ श्रीनारायण अग्निहोत्री : उपन्यास तत्व एव रूप विधान, पृष्ठ ३६—३७

सुविधाजनक होगा, यथा घटना प्रधान, चरित्र प्रधान, घटना-चरित्र-सापेक्ष या नाटकीय और ऐतिहासिक[1]। स्पष्ट है कि वे वर्ण्यवस्तु को अपेक्षित महत्व नहीं प्रदान करना चाहते।

इसी प्रकार डा० सुषमा धवन ने अपने शोध प्रबन्ध मे उपन्यासो की सामाजिक, व्यक्तिवादी, मनोविश्लेषणवादी, समाजवादी और ऐतिहासिक श्रेणियां ही निर्धारित की हैं। यह वर्गीकरण भी अपूर्ण है क्योकि उन्होने राजनीतिक उपन्यासो को समाजवादी कठघरे तक सीमित कर दिया है।

वस्तुत उपर्युक्त मत इस तथ्य के ही परिचायक हैं कि वर्ण्य-वस्तु के आधार पर उपन्यास अनेक श्रेणियो मे विभाजित किया जा सकता है और उनमे से एक आधार राजनीतिक भी हो सकता है। हम कह सकते है कि उद्दिष्ट विषय के विचार से उपन्यास के ये उपभेद अपनी सार्थकता सिद्ध कर सकते हैं।

वर्ण्य-वस्तु और पात्र

कथा-वस्तु के बाद उपन्यास का प्रमुख तत्व पात्र या चरित्र चित्रण माना जाता है। इस रूप मे राजनीतिक वर्ण्य वस्तु के सदृश पात्र भी राजनीतिक दल या सिद्धान्त के कारण राजनीतिक हो सकता है। राजनीतिक पात्र के रूप मे स्वभावत वह राजनीति से सम्बद्ध होकर राजनीति को अभिव्यक्ति देगा। उपन्यासकार का अपना योग भी इसमे कम महत्वपूर्ण नही होता। इस सदर्भ मे ई० एम० फोरस्टर का कथन द्रष्टव्य है। वे कहते हैं कि 'उपन्यास की विशेषता है कि लेखक अपने पात्रो के विषय मे बात कर सकता है। उसी प्रकार उनके द्वारा उनकी वार्ता के समय हमारे सुनने का आयोजन भी कर सकता है। वह आत्मश्लाघा को छू सकता है और उस स्तर से गहराई मे जाकर उपचेतना का ससर्ग पा सकता है। वह उपचेतना के गहराते अस्तित्व को सीधे व्यापार मे ला सकता है तथा वह इसे स्वागत भाषण से सम्बद्ध कर सकता है। पात्र के गुण-दोषों का लेखा ही उसका चरित्र है। पात्र समाज का एक अश है जो समाज के गुण-दोषादि से सचालित होता है। उपन्यास का पात्र भी मानवता के नाते इसी उधेड़बुन मे पड़ा हुआ एक सांसारिक जीव है। इसका हृदय एक छोटा ससार है जिसमे गुण-दोषादि द्वन्दों को हृदय तथा मस्तिष्क रूपी दो चक्की के पाटों मे पीस कर चटनी तैयार की जाती है।' पात्र के चरित्र मे उत्थान-पतन और परिवर्तन करने वाली अन्तस् की इस अटूट शृङ्खला का नाम ही अन्तर्द्वन्द्व है। जो उपन्यासकार इस अन्तर्द्वन्द्व की अभिव्यक्ति जितनी सुन्दरता

२ शिवनारायण श्रीवास्तव : हिन्दी उपन्यास, पृष्ठ ४१६

से करता है वह चरित्र चित्रण की दृष्टि से उतना ही सफल माना जाता है । भले ही ही उपन्यास के पात्र किसी राजनीति से परिचालित क्यो न हो ।

हेनरी जेम्स का कथन है कि—The great source of character creation is ofcourse the novelist's own self Some form of self p ojection must always take place, of reincarnation in the fictional character विकासोन्मुख चरित्र के माध्यम से ही उपन्यासकार अपने जीवन दर्शन को प्रस्तुत करने मे समर्थ होता है । किन्तु यह होने पर भी जेम्स का कथन है—This is not to say that the novelist often puts people just as they are into his books a thing which his acqaint ance seem to fear and hope For life and art are very different things and existance in one is very different from existence in the other सम्भवत यही कारण है कि कुछ पात्र यथार्थता के लक्षणो से युक्त होते हुए भी यथार्थ नहीं होते ।

पात्रो का वर्गीकरण

उपन्यास अपनी समग्रता म मानवजाति या समाज का छाया चित्र होता है । इस दृष्टि से उपन्यास के पात्र किसी वर्ग के प्रतिनिधि हो प्रतिनिधित्व कर सकते हैं । W Somerset Maugham का तो कहना है कि—The writer does not copy his originals, he takes what he wants from them, a few originals that have caught his attention a turn of mind that has fir d his imagination, and therefrom constructs his character

इस तरह वे राजनीतिक पात्र भी होते हैं और साधारण पात्र भी किन्तु उपन्यास म उनकी अपनी विशिष्ट भूमिका होती है । वस्तुत पात्र और वर्ण्य-वस्तु अन्योन्याश्रित होते हैं और यह तथ्य राजनीतिक उपन्यासा के लिए भी उतना ही सत्य है जितना किसी भी उपन्यास के लिए ।

निष्कर्ष

उपन्यास साहित्य के अध्ययन के उपरान्त हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि उसके चरणो के साथ-साथ उसमे रचनागत एव विषयगत वैभिन्य होता गया है । इस भिन्न भिन्न स्वरूपो क कारण उनका वर्गीकरण किया जाने लगा और उनके प्रकार भेद की व्याख्या की जाने लगी । इस दृष्टि से उपन्यासो का विभाजन पूर्ण नहीं कहा जा सकता क्योकि

भविष्य में औपन्यासिकों की रचना वृद्धि के अनुसार इसमें परिवर्तन एवं परिवर्धन सम्भाव्य है। कथानक एवं चरित्र-चित्रण के आधार पर औपन्यासिक विभेदों की चर्चा ऊपर की जा चुकी है। मूल रूप से यह कहा जा सकता है कि उपन्यास के वर्गीकरण का मूल धार कोई विशेष तत्व अथवा विशेष विषय की प्रधानता ही होता है। प्रत्येक उपन्यास में एकाधिक तत्वों का समावेश होता है, किन्तु उनकी पृथक् सत्ता होती है, अपना विशेष संदेश या उद्देश्य होता है। एकाधिक तत्वों के सम्मिश्रित होने से तथा उनका समुचित विश्लेषण न कर पाने से वर्गीकरण में भ्रम उत्पन्न होना स्वाभाविक है।

समाज और राजनीति का पारस्परिक सम्बन्ध

विषय की दृष्टि से देखा जाये तो मानव जीवन को दो प्रवृत्तियाँ ही मुख्यतः प्रभावित करती हैं। एक वैयक्तिक और दूसरी सामाजिक। कहा गया है कि मूलभूत प्रवृत्तियों का ही औपन्यासिक प्रवृत्तियों का आधार माना जा सकता है जिसके 'चार रूप प्राप्त होते हैं जो समकालीन समाज में चेतना के चार विभिन्न स्तरों के प्रतिबिम्ब हैं [१]।' डा० धवन ने इन चार रूपों को सामाजिक, व्यक्तिवादी, मनोविश्लेषणवादी और समाजवादी उपन्यासों के अन्तर्गत रखा है तथा ऐतिहासिक उपन्यासों को पृथक् स्थान दिया है जिनमें सामाजिक एवं समाजवादी प्रवृत्तियाँ समाहित होती हैं।

उपर्युक्त वर्गीकरण के आधार पर उन्होंने सामाजिक प्रवृत्ति का वैज्ञानिक रूप समाजवादी प्रवृत्ति में देखा है और इस दृष्टि से राजनीतिक उपन्यास का क्षेत्र अस्पष्ट हो जाता है। सामाजिक परिप्रेक्ष्य में राजनीतिक उपन्यास के कार्य-क्षेत्र का मूल्यांकन समुचित एवं युक्तिसंगत नहीं है ऐसा हम नहीं मानते। साहित्य, समाज और राजनीति में अटूट सम्बन्ध है। प्रेमचन्द के शब्दों में ये चीजें माला जैसी ही हैं। जिस भाषा का साहित्य अच्छा होगा उसका समाज भी अच्छा होगा। समाज के अच्छा होने पर मजबूरन राजनीति भी अच्छी होगी। ये तीनों साथ-साथ चलने वाली चीजें हैं—इन तीनों का उद्देश्य ही जो एक है। साहित्य इन तीनों की उत्पत्ति के लिए एक बीज का काम देता है। साहित्य और समाज और राजनीति का सम्बन्ध बिलकुल पास है। समाज आदमियों के समूह को ही तो कहते हैं। समाज में जो हानि लाभ तथा सुख-दुख होता है यह आदमियों पर ही होता है न। राजनीति में जो सुख-दुख होता है वह आदमियों पर ही होता है न। राजनीति में जो सुख दुख होता है, वह आदमियों पर ही पड़ता है। साहित्य से लोगों को विकास मिलता है। साहित्य से

---

१ डा० सुषमा धवन : हिन्दी उपन्यास, पृष्ठ ६

आदमी की भावनाएं अच्छी और बुरी बनती हैं। इन्हीं भावनाओं को लेकर आदमी जीता है और इन तीनों चीजों की उत्पत्ति का कारण आदमी ही है[1]।

साहित्य समाज को जिस सुचारु और सुव्यवस्थित ढंग से प्रभावित कर इच्छानुसार मोड़ सकता है उतना कोई अन्य साधन नहीं। सम्भवतः इसीलिए लेनिन ने कहा कि एक अच्छा साहित्यिक किसी राजनीतिक कर्मठ से कम नहीं होता। गोर्की को जितने के लिए स्वतन्त्रता देनी चाहिए और लेनिन ने ही गोर्की से कहा था कि तुम अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में कम्यूनिज्म के प्रचार के लिये जो कार्य कर रहे हो, वह बहुत गहरा है और निश्चय ही मानवता का कल्याण करने वाला है[2]।'

यही कारण है कि मानव-कल्याण के प्रश्न को हल करने के समय साहित्य और राजनीति को पृथक् नहीं किया जा सकता। मनुष्य को जहाँ सामाजिक प्राणी की सज्ञा दी जाती है, वहीं सुप्रसिद्ध दार्शनिक अरस्तू ने उसे राजनीतिक प्राणी भी बताया है। राजनीति को साहित्य से पृथक् करना जीवन को एकांगी बना देना है। रोमा रोलां ने एक जगह लिखा है 'जो कोई मानव समाज के भविष्य के लिए युद्ध करना चाहता है उसे राजनीतिक क्षेत्र में युद्ध करना चाहिए, पर अपने मस्तिष्क की स्वाधीनता को किसी भी हालत में न छोड़ना चाहिए क्योंकि मानसिक स्वाधीनता ही उसे युद्ध-क्षेत्र पर हावी बनाए रखेगी[3]।'

व्यक्ति से परिवार बनता है। जो समाज का व्यष्टि रूप है और इसीलिए उसका अंग भी। सम्भवतः इसीलिए आचार्य नरेन्द्रदेव ने कहा था कि "सच्चे साहित्यकार का कर्तव्य हो जाता है कि वह मनुष्य को समाज से पृथक् करके, अमूर्त मानवता के स्वतन्त्र प्रतीक के रूप में सीमित न कर उसे सामाजिक प्राणी के रूप में देखे—ऐसे समाज के सदस्य के रूप में जिसमें निरन्तर संघर्ष हो रहा है और इस संघर्ष के कारण जो प्रतिक्षण परिवर्तनशील है[4]।" जब हम मानवजीवन का विश्लेषण करते हैं तो दो तथ्य स्पष्ट रूप से सम्मुख आते हैं। मनुष्य चिन्तनशील प्राणी है और इसलिए वह अपने ढंग से विचार कर काम करना चाहता है, किन्तु सामाजिक प्राणी होने के कारण प्रत्येक मनुष्य मनमानी नहीं कर सकता। ऐसी स्थिति में एक व्यक्ति की इच्छाएं दूसरे व्यक्ति से टकराती हैं और इन्हें नियमित रखने के लिए राजनीतिक सिद्धान्त शासन की

---

१. शिवरानी देवी: प्रेमचन्द घर में, पृष्ठ ६४-६५
२. रांगेय राघव: प्रगतिशील साहित्य के मानदण्ड, पृष्ठ ५६
३. 'मधुकर' पाक्षिक के मार्च १९४५ के अंक के पृष्ठ ४२७ में।
४. आचार्य नरेन्द्रदेव: राष्ट्रीयता और समाजवाद, पृष्ठ ५५६

आवश्यकता होनी है। इस रूप में राजनीतिक सिद्धान्त की मूल समस्या यथासम्भव विशाल पैमाने पर सामाजिक कल्याण को बढाने के लिए राज्य की सत्ता तथा व्यक्ति की स्वतन्त्रता के बीच सामजस्य स्थापित करना है।

साहित्यकार भी समाज में रहने वाला एक प्राणी है और यह सम्भव नहीं है कि वह युगीन भावधाराओं से परे रह सके। हम इस कथन से सहमत है कि 'तत्कालीन सामाजिक संस्कारों का प्रतिबिम्ब उसके साहित्य पर पडता है और जो राजनीतिक विचारधाराओं या कर्तव्य को समझने में जिस राजनीतिक चर्चा को अस्पृश्य समझा जाता था, उसे 'पेट्रोनाइज' किया जाने लगा है। अब यह माना जाने लगा है कि हम साहित्य मे समाज का, सामाजिक जीवन का, सामाजिक विचारधाराओं का वादो का सम्बन्ध मानते हैं, किन्तु अनुवर्ती रूप में। साहित्य की अपनी सत्ता के अन्तर्गत उसके निर्माण में इनका स्थान हैं। ये उपादान और हेतु हुआ करते हैं [1]।

साहित्य और राजनीति का पारस्परिक सम्बन्ध

सामाजिक परिप्रेक्ष्य में राजनीतिक तत्वों के बढते हुए प्रभाव और साहित्य में उसे 'अस्पृश्य' न समझे जाने का तथ्य पूर्व पृष्ठों में उद्घाटित हो चुका है। हिन्दी उपन्यास साहित्य के प्रारम्भिक वर्षों में राजनीतिक चर्चा को निषिद्ध माना जाता रहा। प्रेमचन्द के पूर्व हिन्दी उपन्यास साहित्य में राजनीतिक चर्चा प्राय नहीं है और आग्ल शासन में यह सम्भव भी नहीं था। प्रेमचन्द ही प्रथम उपन्यासकार हैं जिन्होंने राजनीतिक पृष्ठभूमि पर उपन्यासो की रचना की। किन्तु उस काल तक महात्मा गाधी के नेतृत्व में स्वाधीनता आन्दोलन अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँच गया था और जनता राजनीतिक चेतना से अभिभूत थी। भारतीय राजनीतिक चेतना सामाजिक अन्दोलनो के मार्ग से प्रशस्त हुई और साहित्य में विशेषत हिन्दी उपन्यास में भी वह सामाजिक उपन्यासो के मध्य विस्तारित हुई। सम्भवत. इसका कारण यह है कि 'सामाजिक तथा राजनीतिक आन्दोलन स्वभावत घुले मिले से चलते ही हैं और धर्म समाज का एक अग हो गया है। इसी से एक के नेता प्राय अन्य दो को भी साथ ही समेटते हुए अपने विचार प्रकट करते रहते हैं। कुछ सामाजिक समस्याओं को लेकर बहुत से उपन्यास, नाटक आदि लिखे गये पर कोरी राजनीति को लेकर बहुत कम। ऐसा अवश्य हुआ है कि सामाजिक समस्याओं के साथ राजनीतिक कथा भी उपन्यासों में मिली जुली चली है [2]। ऐसे उपन्यास व उपन्यासकार भी जो सामाजिक परिप्रेक्ष्य में राजनीतिक विचार या

---

१. आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी : नया साहित्य : नये प्रश्न, पृष्ठ १७

२ ब्रजरत्नदास : हिन्दी उपन्यास साहित्य, पृष्ठ १८८-१८९

तत्सबंधी आन्दोलनों का चित्रण करते थे कटु आलोचनाओं के शिकार होने से न बच पाते थे। हिन्दी उपन्यास-साहित्य पर विचार व्यक्त करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि "सामाजिक उपन्यासों में देश में चलने वाले राष्ट्रीय तथा आर्थिक आन्दोलनों का भी आभास बहुत कुछ रहता है। ताल्लुकेदारों के अत्याचार, भूखे किसानों की दारुण दशा के बड़े चटकीले चित्र उनमें पाये जाते है। इस सम्बन्ध में हमारा केवल यही कहना है कि हमारे निपुण उपन्यासकारों को केवल राजनीतिक दलों द्वारा प्रचारित बातें लेकर ही न चलना चाहिए, वस्तुस्थिति पर अपनी व्यापक दृष्टि भी डालनी चाहिए।" उन्होंने साहित्य और राजनीति को दो पृथक् वर्गो में विभाजित किया और साहित्य को राजनीति के ऊपर रहने की घोषणा उस समय की जब कि सामाजिक उपन्यासों में राष्ट्रीय आन्दोलनों का आभास मात्र दिखलाई दे रहा था। उन्होंने अपना मत व्यक्त किया, 'साहित्य को राजनीति के ऊपर रहना चाहिए, सदा उसके इशारों पर ही न नाचना चाहिए।' यह कथन उन साहित्यकारों के पूर्वग्रह के समक्ष है जो राजनीति को हेय दृष्टि से देखते आए हैं। आचार्य नरेन्द्रदेव के शब्दों में–'हमार के साहित्यिकों का सदा से यह कायदा रहा है कि वह राजनीतिज्ञों के हस्तक्षेप का विरोध करते आए है। वह राजनीति को सदा से ही तिरस्कार की दृष्टि से देखते आए हैं और राजनीतिज्ञों से वे सदा सशंक रहते हैं। यह बात अकारण नहीं है। किन्तु जो लोग सामाजिक जीवन को ही बदलना चाहते हैं वह कैसे साहित्य की उपेक्षा कर सकते है? साहित्य की प्रत्येक कृति चाहे उसका स्वरूप और विषय कुछ भी क्यो न हो कुछ न कुछ राजनीतिक परिणाम अवश्य उत्पन्न करती है। यदि लेखक राजनीतिक परिस्थिति से परिचित हो और बुद्धिपूर्वक लेखन क्रिया को सम्पन्न करे तो उस क्रिया का परिणाम इच्छानुकूल हो सकता है। इससे हम अवश्य चाहेंगे कि हमारे साहित्यिक वर्तमान राजनीति का ज्ञान प्राप्त करें। यदि वह जीवन से सम्पर्क रखना चाहते है और एक सफल कलाकार बनना चाहते हैं तो इस युग में जब वर्गसंघर्ष प्रबल वेग से चल रहा है वह कैसे अपने को इससे अलग कर सकते है। जीवन की कथा ही यह है। इसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती[१]।

राजनीतिक उपन्यास : नूतन क्षितिज

उपर्युक्त दो उद्धरणों से उपन्यास के दो आधारभूत तत्वों की ओर ध्यान जाता है और वे हैं समसामयिक राजनीतिक आन्दोलनों का चित्रण व राजनीतिक विचार-धारा

१ युक्त प्रान्तीय राजनीतिक सम्मेलन के बरेली मे हुए १९ वें अधिवेशन मे आचार्य नरेन्द्रदेव का अध्यक्षीय भाषण।

का समावेश। वस्तुत ये तत्व ही राजनीतिक उपन्यास की आधारशिला है जो उन्हे सामाजिक एव ऐतिहासिक उपन्यासो से पृथक् कर अलग अस्तित्व प्रदान करते हैं।

राजनीतिक उपन्यास की परिभाषा अभी तक निर्धारित न होने का कारण यही है कि आलोचक व इतिहासकार उसका पृथक् रूप में अस्तित्व मानने में हिचकते रहे। कहीं उन्होने इस कोटि के उपन्यासो को समाजवादी उपन्यासो में परिगणित किया और कहीं साम्यवादी। डॉ० सुषमा धवन ने समाजवादी उपन्यास की परिभाषा देते हुये लिखा है 'हिन्दी में समाजवादी अथवा प्रगतिवादी उपन्यास का विवेचन करते हुए उन्हीं रचनाओ को इस कोटि में रखा जाता है जिनमें मार्क्सवादी सिद्धान्तो का प्रतिपादन किया गया हो[1]।' इसी.को शैलीगत विशेषता के अन्तर्गत मानकर 'समाजवादी यथार्थवाद' कहा गया है[2]। स्पष्ट है कि इस भ्रान्ति का मूल कारण यह है कि राजनीतिक उपन्यास का वर्गीकरण विशिष्ट राजनीतिक विचारधारा के आधार पर किया जाता रहा है न कि उसके समग्र स्वरूप के अन्तर्गत। समाजवादी राजनीतिक विचारधारा के उपन्यासो का मूल्यांकन भी उसके अन्तर्राष्ट्रीय प्रभाव के कारण किया गया यह बात हमें स्पष्टरूप से समझ लेनी चाहिए। इसके फलस्वरूप ही अन्य राजनीतिक विचारधाराओ को अभिव्यक्ति देने वाले उपन्यासो की अनचाहे और अनजाने उपेक्षा हुई और राजनीतिक उपन्यासो का स्वरूप सम्थापन न हो सका। गाँधीवादी, क्रान्तिकारी अथवा हिन्दुस्तान की पृष्ठभूमि पर रचित उपन्यासो का मूल्यांकन या तो किया ही नहीं गया और यदि किया भी गया तो वह सतही बनकर रह गया। उपन्यास मे समसामयिक युग की राजनीतिक समस्याओं, आन्दोलनो या राजनीतिक विचारधाराओ के प्राधान्य को देखकर ही उसे *राजनीतिक उपन्यास* की संज्ञा दी जा सकती है। ऐसा करने पर ही इस प्रवृत्ति को रोका जा सकेगा जो राजनीतिक उपन्यास को समाजवादी, साम्यवादी, प्रगतिवादी, गाँधीवादी आदि विभिन्न कटघरो मे रखकर उनका मूल्यांकन कर उसकी विशिष्टता को आघात पहुँचाती है।

राजनीतिक उपन्यास मे राजनीतिक घटनाओ या विचारधारा का समाहार कलात्मक रूप से किया जाना चाहिए। उपन्यास के मूल तत्वो के सम्बन्ध मे पूर्व मे विचार किया जा चुका है और राजनीतिक उपन्यासो मे वे तत्व एकाधिक रूप से उसके कलात्मक-सौष्ठव को श्रीमडित कर सकते हैं। राजनीतिक उपन्यास मे कथावस्तु, पात्र, कथोपकथन, स्थान, देशकाल और शैली आदि तत्वो के माध्यम से समसामयिक राजनीतिक स्थिति और उसके स्वरूप को प्रस्तुत किया जा सकता है। आगामी अध्यायो मे

१ डॉ० सुषमा धवन : हिन्दी उपन्यास, पृष्ठ २८३

२ शिवनारायण श्रीवास्तव : हिन्दी उपन्यास (ऐतिहासिक सर्वेक्षण), पृष्ठ ४७४

राजनीतिक उपन्यासो के विश्लेषण के अवसर पर इसका विशद रूप से विचार किया गया है।

उपर्युक्त विवेचन के अनुसार यह स्पष्ट हो जाता है कि वर्ण्यवस्तु म राजनीतिक प्रभाव को दृष्टिगत रख उन्हे राजनीतिक उपन्यास की संज्ञा देना सर्वथा उपयुक्त है। ऐसे राजनीतिक उपन्यासो मे सम-सामयिक राजनीतिक घटना या घटनाओ, राजनीतिक पात्र या पात्रो अथवा राजनीतिक सिद्धान्तो का प्राधान्य एव अकन रहता है। कभी-कभी अन्य प्रवृत्ति के कारण उपन्यास में राजनीतिक अश गौण हो जाता है और इस रूप मे उसका सगठित स्वरूप सम्मुख न आकर आंशिक रूप म ही बिखर कर रह जाता है। ऐसी स्थिति मे भी राजनीतिक प्रवृत्ति (बिखर जाने पर भी) के विचार तरगो का उच्छ्वास राष्ट्रीय जीवन को तरगित करता है। अत ऐसे उपन्यासो को भी पूर्णत राजनीतिक न होने पर भी अश-राजनीतिक विभाग के अन्तर्गत स्वीकार किया जाना चाहिये।

इन्हीं आधारभूत सिद्धान्तो के द्वारा स्वतन्त्र रूप म सन् १९०० से आज तक की भारतीय राजनीति के आधार पर हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासो का अध्ययन एव उनका मूल्य निर्धारण प्रस्तुत शोध ग्रन्थ का प्रतिपाद्य है।

राजनीतिक उपन्यासो मे युगीन समस्याएँ

साहित्य को समाज का दर्पण कहा गया है क्योंकि उसमे विशेष ऐतिहासिक परिस्थिति से उत्पन्न विचार, भावना, अन्त प्रेरणा तथा संवेदना प्रतिबिम्बित होती है। साहित्य और समाज का पारस्परिक अभिन्न सम्बन्ध है। साहित्य का स्रष्टा व्यक्ति है। इस व्यक्ति की अपनी अभिरुचियां, आशाकाक्षाएँ तथा अन्त प्रेरणाएं होती हैं। इसके निर्माण मे सामाजिक परिस्थितियां अपना प्रभाव डालती हैं। समाज का दैनंदिन जीवन ही व्यक्ति साहित्यकार का वस्तु-सत्य है। उसकी यह सामाजिकता समस्याओ के साथ है और राजनीतिक परिस्थितियो या कारणो के परिणामस्वरूप है। मनुष्य सामाजिक होने के साथ-साथ राजनीतिक प्राणी भी है। साहित्यकार सामाजिक परिपार्श्व म उसको राजनीतिक परिस्थितियो से पृथक नही कर सकता। यदि साहित्य मे समाज से स्वतन्त्र शाश्वत जीवन चेतना है तो दूसरी ओर वह अपने युग की प्रतिच्छाया भी होता है और युगानुकूल पडने वाले भाव और विचारो की छाया से वह अपने को विमुक्त नहीं कर सकता।

स्वय प्रेमचन्द ने इस सत्य को स्वीकारा है। उनके मतानुसार *'जब क्रान्ति का युग हो, जब पुराने और जर्जर के स्थान पर नये और उन्नत समाज के लिये, निर्माण*

के लिए संघर्ष हो रहा हो, तो लेखक का काम पक्षपात के साथ लोगों को संघर्ष के लिए तैयार करना है[१]।' कहना न होगा कि मानव के इस संघर्ष से साहित्यिक अलिप्त नहीं रह सकता क्योंकि उसका एक प्रमुख दायित्व स्वस्थ और सुखी समाज का निर्माण होता है।

उपन्यास 'जनतन्त्रीय साहित्यिक विधा' है और इसका क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है। फील्डिंग ने 'टाम जोन्स' की भूमिका में उपन्यास के महाकाव्यत्व पर प्रकाश डालते हुए उसे मानव प्रकृति का अध्ययन कहा है। राल्फ फाक्स ने उपन्यास को मनुष्य के जीवन का गद्य माना है। उसके शब्दों में 'उपन्यास गद्य में लिखी गई कथा मात्र नहीं है, वह मनुष्य के जीवन का गद्य है। उपन्यास वह प्रथम कला रूप है जो समग्र मनुष्य को समझने और अभिव्यक्त करने का प्रयास करता है। .. यथार्थ की एक दूसरी ही दृष्टि उपन्यास प्रस्तुत करता है। काव्य, नाटक, सिनेमा, चित्रकला या संगीत द्वारा प्रस्तुत यथार्थ से निश्चय ही उपन्यास का यथार्थ भिन्न है। ये सब यथार्थ के उन पहलुओं को भले ही व्यक्त कर सकें जो उपन्यास की पहुँच के बाहर है, परन्तु किसी एक पुरुष, स्त्री या बच्चे का सम्पूर्ण जीवन भली प्रकार अंकित कर सकने में इनमें से कोई भी समर्थ नहीं[२]।' उपन्यास एक अत्यन्त समर्थ किन्तु लचीली विधा है। यह सामूहिक मानव जीवन की और उसके संघर्षों की कलात्मक अभिव्यक्ति है। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के मतानुसार 'साहित्य क्षेत्र में उपन्यास ही एक उपकरण है जिसके द्वारा सामूहिक मानव जीवन अपनी समग्र भावनाओं एवं चिन्ताओं के साथ सम्पूर्ण रूप में अभिव्यक्त हो सकता है। मानव जीवन से विविध चित्रों को चित्रित करने का जितना अवकाश उपन्यासों में मिलता है, उतना अन्य साहित्यिक उपकरणों में नहीं। किसी भी युग का समाज युगीन आदर्शों, दुर्बलताओं तथा आकांक्षाओं का पुञ्जीभूत रूप है जिससे सामूहिक मानवजीवन परिचालित होता है। यह रूप परिवर्तनशील होता है। मनुष्य स्वभावत सामाजिक प्राणी होने से समाज में रहकर उसमें निरन्तर सुधार करते रहने के लिए प्रयत्नशील रहता है। ये प्रयत्न ही कालान्तर में राजनीतिक स्वरूप ग्रहण कर आन्दोलन का रूप लेते हैं और सफलीभूत होने पर समाज के कल्याणार्थ शासन द्वारा नियमित होते हैं।'

राजनीतिक उपन्यास अपने अति व्यास रूप में युगचेतना के इसी रूप को ग्रहण कर सामाजिक परिपार्श्व में मनुष्य के संघर्षशील व्यक्तित्व को प्रस्तुत कर उसकी व्याख्या

१ प्रेमचन्द चिन्तन और कला, पृष्ठ १६४

२. राल्फ फाक्स : द नावल एण्ड द पीपुल, पृष्ठ २०

करता है। वह युगीन समस्याओं को तो प्रस्तुत करता ही है उसके माध्यम से अन्तर्निहित गम्भीर सत्य को प्रस्फुरित करता है।

समाज और व्यक्ति राजनीति के अन्योन्याश्रित सम्बन्ध होने से राजनीतिक उपन्यासों का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। समाज और व्यक्ति की समस्याएँ राजनीतिक की समस्याएँ बन जाती है। इस रूप मे आकर वे विषय की गम्भीरता और सप्राणता के अनुसार युगेनर और सार्वभौमिक हो जाती हैं।

साहित्य और समाज का भी पारस्परिक अभिन्न सम्बन्ध है जो गभीर और व्यापक है। दोनो का स्वरूप संस्थागत है। साहित्य समाज या सामाजिक जीवन का व्याख्याता होता है और उसे स्पन्दन देता है। इस व्यापक चित्रपटी के अन्तर्गत वे सभी युगीन समस्याए आ जाती है जो मानव और समाज को प्रभावित कर उसे राजनीति से असम्पृक्त नहीं रहने देतीं। रंगभेद, धर्मभेद, जातिभेद, भाषाभेद आदि के माध्यम से समाजगत झगडे किस तरह राजनीतिक रूप ले लेते हैं उसके उदाहरण हम आए दिन देखते ही रहते है।

आधुनिक राजनीति विचार और कार्य को संचालित कर व्यक्ति और समाज को अपने अधिकार मे कर रही है। वह विस्तारवादी है और गाँधी जी सर्प के रूप में उसके स्वरूप को स्वीकार कर कहते थे कि 'राजनीति हम सभी को सर्प के घेरे के समान घेरे हुए है और जिससे चाहे कोई कितना ही प्रयास करे बाहर नहीं निकल सकता।'

राजनीति के इस विशाल स्वरूप को लेकर भिन्न-भिन्न युगीन समस्याओं पर विचार करना हमारा उद्देश्य नहीं। हिन्दी उपन्यास साहित्य में जो युगीन समस्याए राजनीतिक स्वरूप में आई हैं, उन पर पृथक् रूप से आगे विचार किया गया है।

राजनीतिक उपन्यासों की व्याप्ति और सीमा

अरस्तू ने लिखा है कि मनुष्य एक राजनीतिक प्राणी है। राजनीति की जडे मनुष्य की भावना से जुड़ी हुई है। राजनीतिक सिद्धान्त की मूल समस्या यथासम्भव और यथाविधि व्यापक आधार पर सामाजिक कल्याण का समाधान प्रस्तुत करना है जो व्यष्टि और समष्टि के बीच सामजस्य उत्पन्न करे।

साहित्य के भी उद्देश्यों में उद्देश्य प्रधान सामाजिक धारा और व्यक्ति-मूलक ऐकान्तिक धारा के दो प्रमुख रूप मानव-कल्याण का दिशा-निर्देश करते हैं। इस भावभूमि पर साहित्य और राजनीति दोनों का स्वरूप लोक मांगलिक और मानवतावादी होता है।

विचारशील और गतिशील प्राणी होने के नाते मनुष्य जीवन को अधिकाधिक पूर्ण बनाने के लिए सदा से प्रयत्नशील रहा है और अपनी इस प्रक्रिया में आने वाले बाधक तत्वों को दूर करने के समाधानों की खोज करता रहता है। यह परिवर्तनशीलता मनुष्य की सहज स्वाभाविक प्रवृत्ति है जो समाज, धर्म, अर्थ और राजनीति सभी क्षेत्रों को प्रभावित करती रहती है। विचारों के संघर्षों से प्राप्त समाधान ही बौद्धिक निरूपण ही एक विशिष्ट जीवन-दर्शन बन जाता है। इस तरह मनुष्य, साहित्य और राजनीति संयुक्त होकर एक ऐसे त्रिभुज का निर्माण करते हैं जिसकी तीनों भुजाएं समान होती हैं और इनसे बनने वाला कोण जीवन की समग्रता या लोकमांगलिक होता है।

साहित्य और राजनीति एक दूसरे के पूरक हैं। दोनों एक दूसरे से तरंगित और प्रभावित होते हैं। अज्ञेय का मत है कि 'साहित्य और राजनैतिक को दो पृथक् और विरोधी तत्व मान लेना किसी प्राचीन युग में भी उचित न होता, आज के-से संघर्ष युग में वह मूर्खतापूर्ण-सा ही है[1]।' यह सर्वमान्य सत्य है कि जीवन और साहित्य एक-दूसरे के उसी भांति अन्योन्याश्रित हैं जैसे जीवन और राजनीति। जीवन की विविध समस्याओं का समाधान खोजते हुए ये तत्व जन-जीवन के इतने निकट आ गये हैं कि इन्हें अब विलग करना साधारण कार्य नहीं। दोनों को सक्रिय रूप से सामाजिक उत्तरदायित्व का निर्वाह करना है और जिसका धरातल समान है। अब साहित्य 'केवल निष्क्रिय मानसिक रसास्वादन की वस्तु नहीं हो सकता, साहित्य का भी सामाजिक उत्तरदायित्व है और वह दायित्व केवल 'श्रुति स्मृति सदाचार' की रक्षा करने का दायित्व नहीं है, केवल प्रचलित श्रेणी विशेष द्वारा प्रतिष्ठित आदर्श के अनुगमन का दायित्व नहीं है, समाज के ढांचे को आमूल बदल देने का दायित्व है[2]।'

इसी संदर्भ में क्रिस्टोफर काडवेल के मत को भी नहीं भुलाया जा सकता जो साहित्य को एक सामाजिक प्रक्रिया मानता है। उसका कथन है कि "Art is a social function. This is not a marxist demand, but arises from the very way in which art forms are defined Only those things are recognised art forms which have a conscious social function The phantasies of a dreamer are not art They only beacome art when they are given music, forms of

१. अज्ञेय त्रिशंकु, पृष्ठ ७३
२ महेन्द्रचरण राय · मार्क्सवाद और साहित्य, पृष्ठ १६७

words, when they are clothed in socially recognised symbols and ofcourse in the process the-e is a modification · No chai ca sounds constitute music, but sounds selected from a socially recognised scale and played on socially developed instruments "[1]

स्पष्ट है कि साहित्य एक सामाजिक प्रक्रिया है, इसीलिए वह कला है और इसी मे उसका महत्व है। साहित्य और राजनीति सामाजिक यथार्थ रूपी रथ के उन दो पहियो के सदृश्य है जो अलग-अलग होने पर भी एक दूसरे के पूरक है।

उपन्यास की परिभाषा के सम्बन्ध मे विवेचना करते हुए यह बताया जा चुका है कि वह 'मनुष्य के जीवन का गद्य' है और 'मानव जीवन का चित्र मात्र' हो युगानुरूप 'यथार्थ और व्यवहार' का चित्र प्रस्तुत करता है। इसीलिए उसे जनतान्त्रिक विधा भी कहा गया है। आधुनिक उपन्यास-साहित्य की विवशता है कि वह अधिक दूर तक यथार्थ की उपेक्षा नहीं कर सकता। यह उसके विकास का स्वस्थ और प्राणवान लक्षण है जो सामाजिक यथार्थ के परिवेश में मानव के जीवन-सघर्षो को अभिव्यक्ति देते हुए सामयिक राजनैतिक प्रेरणा-स्रोतो से सजीवित होता है।

इतना होने पर भी साहित्य और राजनीति की अपनी सीमाए भी हैं और उपन्यास साहित्य भी उससे अपने को पृथक् नहीं रख सकता। उपन्यास जीवन की व्याख्या सत्य के आधार या उनमें निहित सदाचार, धर्म अथवा आदर्श के आधार पर करता है। केवल राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में जीवन की व्याख्या एकागी होगी यदि उसमें मानव जीवन को प्रभावित करने वाले रागो, मनोवेगो और नियमो का चित्रण न हो। कला का एक आध्यात्मक पक्ष भी है जिसे भुलाना उपन्यासकार के लिए कभी भी उपयुक्त नहीं। ये सम्भाव्य आदर्श तथा जीवन के तात्विक तथ्य जीवन्त साहित्य के गुण हैं। यही कारण है कि गाधी जी ने राजनीति को आध्यात्मिकता से अनुप्राणित करने का प्रयास किया। ये राजनीति को (मानव) धर्म का साधन मानते थे। उनका कहना था– 'मुझे विश्व के नश्वर वैभव की चाह नहीं है, मैं तो स्वर्ग के साम्राज्य अर्थात् आध्यात्मिक विमुक्ति के लिए प्रयास कर रहा हूँ। इसलिए मेरी राष्ट्रभक्ति भी अनन्त शाति और स्वातव्य के देश की ओर मेरी यात्रा का एक पड़ाव मात्र है। इससे स्पष्ट है कि मेरे लिए धर्म से रहित राजनीति की कोई सत्ता नहीं है। राजनीति धर्म का साधन मात्र है। धर्मरहित राजनीति मृत्यु का फदा है, क्योकि वह आत्म का हनन करती है।'

---

१. Christopher coudwell : Study in a Dying Culture, P, 44

वे *राजनीति की तुलना सर्प के घेरे से करते थे* । वे राजनीति के बढते हुए प्रभाव को स्पष्ट देख रहे और अनुभव कर रहे थे कि 'राजनीति हम सभी को सर्प के घेरे के समान घेरे हुए है और जिससे चाहे कोई कितना ही प्रयास करे बाहर नहीं निकल सकता । मैं उस सर्प से सग्राम करना चाहता हूँ मैं राजनीति में धर्म का सम्मिलन करने की कोशिश कर रहा हूँ ।'

जीवन और राजनीति में जो सम्बन्ध होना चाहिए यह गाँधी जी के उपर्युक्त कथनो में समाहित है । इसी भाति राजनीति का भी साहित्य में उतना ही स्थान होना चाहिए जहाँ तक वह कला और जीवन में उचित सामजस्य करे । क्रिस्टोफर काडवेल का कथन है–

"Ours is simply a demand that you should square life with art and art with life, that you should make art living cannot you see that their separation is precisely what is evil and bourgeois[1] ?"

जीवन को यदि केवल राजनीति के दर्पण से ही देखा गया तो जो प्रतिबिम्ब दिखलाई देंगे वे सजीव सप्राण न होकर खडित होगे । इसीलिए प्रेमचन्द ने भी कहा था कि 'जब साहित्य की रचना किसी सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक मत के प्रचार के *लिए की जाती है, तो वह अपने ऊचे पद से गिर जाता है–इसमें कोई सन्देह नहीं ।'* वे साहित्यकार को राजनीति के आगे मशाल दिखाती हुई चलने वाली सच्चाई मानते थे । उन्होंने लिखा है कि 'साहित्यकार का लक्ष्य केवल महफिल सजाना और मनोरजन का सामान जुटाना नहीं है–उसका दरजा इतना न गिराइये । वह देशभक्ति और राजनीति के पीछे चलने वाली सच्चाई भी नहीं, बल्कि उनके आगे मशाल दिखाती हुई चलने वाली सचाई है[२] । यहाँ यह द्रष्टव्य है कि यह कथन उस उपन्यासकार की सचाई की आवाज है जो हिन्दी का प्रथम राजनीतिक उपन्यासकार है और जिसके अधिकांश उपन्यास सामयिकता के चित्रण से आच्छादित हैं ।

उपन्यास की रचना सिद्धान्त या मत विशेष को लेकर ही नहीं की जानी चाहिए क्योंकि उपन्यास का मार्ग एकांगी नहीं होता । प्राथमिक निष्ठा राजनीतिक मतवादो या शास्त्रीय सिद्धान्तो के प्रति नहीं हो सकती । उपन्यासकार को तो अपनी प्रेरणा व्यष्टि और समष्टि जीवन से ग्रहण करना होगी । मत और सिद्धान्त तो तभी स्थान प्राप्त कर सकेंगे जब वे निकट ग्राह्य हों और व्यवहारिक मानवीय धरातल पर

---

१. Christopher Coudwell Illusion and Reality, Page 289

२. प्रेमचन्द · साहित्य का उद्देश्य, पृष्ठ १५

ग्राकर रूपायित हो। मानव तत्व की महत्ता का बोध उपेक्षित नहीं किया जा सकता और उन्हीं प्रयोगों को मान्यता प्राप्त हो सकती है जो मानव सत्य की सिद्धि के लिए हो।

इस सत्य से इन्कार नहीं किया जा सकता कि जब तक व्यक्ति और समाज राजनीति से प्रभावित होते रहेंगे साहित्य अपने को उनसे पूर्णतः निरपेक्ष नहीं रख सकता। परन्तु यह स्मरण रखना होगा कि दोनों के एक दूसरे के पूरक होने पर भी अपने क्षेत्र हैं और साहित्य का क्षेत्र राजनीति से कहीं अधिक व्यापक और पवित्र है।

विगत चालीस वर्षों की अवधि मे हिन्दी उपन्यास साहित्य के अन्तर्गत राजनीतिक उपन्यासो की सृष्टि सख्या और प्रयोग की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। राजनीतिक चेतना और स्वाधीनता के लिए हुए राष्ट्रीय आन्दोलन की आँधी इस आलोच्यावधि मे जिस तीव्रता से राष्ट्र मे व्याप्त हुई हिन्दी के राजनीतिक उपन्यास उसी संक्रान्तिकाल की देन हैं। इस अन्धड़-तूफान के शान्त होने पर अवांछनीय रूप से उडने वाली गर्द स्वय ही बैठ जायेगी और उसके बाद राजनीति के उचित सामंजस्य से जो राजनीतिक उपन्यास लिखे जायेंगे वे लोक मांगलिक भूमिका पर होगे। इस धारणा के लिए पर्याप्त आधार है इसका सबसे प्रथम प्रमाण हिन्दी राजनीतिक उपन्यास में दिखलाई देने वाला क्रमिक विकास ही है जो राजनीति के ऊबड़-खाबड पथ को छोड समतल पर आ गया है।

इसके साथ ही हमे विरासत मे प्राप्त जीवन की प्राचीन भारतीय परम्परा को भी विस्मृत नहीं करना चाहिए। हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि भारतीय मनोभूमि प्रकृति से धर्म-नीतिक है। परिस्थितियो की विवशता तक ही राजनीतिक उद्बोध उस स्वीकार्य है किन्तु मूलत उसकी महत्वाकाक्षा राजनीतिक नहीं है। उसके मूल्य मानवीय हैं जिसके प्रति जनमानस की दृढ़ आस्था है। इतिहास इस तथ्य का साक्षी है कि भारतीय मानस राजनीतिक उथल-पुथल के अधीन गिरता-उठता नहीं रहा और न उसके आदर्श ही अम्लान या खडित हुए। भारतीय जीवन धर्मोन्मुख है अत. नीति-रीति के नियमन के लिए राज्य के कानून से अधिक सामाजिक मान्यता पर उसका अवलम्ब अधिक रहा है। यही कारण है कि लोक-जीवन को व्यवस्थित और सतुलित करने वाली सस्थाएं भी सत्ता प्रधान न होकर भाव प्रधान हैं[1]।

लोक जीवन और साहित्य का स्वरूप सदैव समान नहीं होता और उसमे

---

१. साप्ताहिक हिन्दुस्तान, दिनाक १८ दिसम्बर, १९६० मे प्रकाशित जैनेन्द्र के एक लेख के आधार पर।

युगानुसार परिवर्तन होते रहते है। इतना होने पर भी वह अपनी प्राचीन परम्परा से एकदम नहीं कट जाता।

साहित्य को मतवाद के प्रचार का साधन मात्र मानना एक भूल होगी क्योंकि उसकी अपनी जीवन सापेक्ष्य स्वतन्त्र सत्ता होती है। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी का मत है कि 'साहित्य केवल मतवाद के प्रचार का साधन नहीं बना करता, और न प्रत्यक्ष और प्रतिदिन बदलने वाले किसी राष्ट्रीय कार्यक्रम का सगी ही बन सकता है। यह 'पार्लेटियरी' वृत्ति उसे शोभा नहीं देती।'

दूसरे शब्दो मे कला के साथ ही युग और सामाजिक परिवेश राजनीतिक उपन्यास का उपयुक्त मार्ग हो सकता है। इस सन्दर्भ मे दर्शन के इन शब्दो की सार्थकता विचारणीय है 'जो चिन्तक या आलोचक गुलामी प्रथा का, निरकुश शासन का, उत्पादन और व्यवसाय के एकाधिकार का, उत्पीडन का समर्थन करता है वह अपने नेक पेशे के प्रति विश्वासघात करता है। वह भले आदमियो की सगत मे बैठने का अधिकारी नहीं है। इतना काफी नहीं है कि किसी कलाकृति मे कला का नैपुण्य हो, अनोखी सूझ-बूझ हो और कला का प्रशसनीय निखार हो, सवार हो, प्रत्युत यह भी आवश्यक है कि उसमे युग और सामाजिक परिवेश के प्रति अपना दायित्व चुकाने की गम्भीर प्रेरणा हो।'

राजनीतिक उपन्यासों का स्वरूप सस्थापन

उपन्यास जीवन की व्याख्या है। प्रजातान्त्रिक शासन व्यवस्था ने मानव जीवन को एक नई सामाजिक मान्यता दी। साहित्य मे भी इसका अपेक्षित प्रभाव पडा और तदानुसार जीवन की व्याख्या मे भी परिवर्तन आया जिसे सामाजिक यथार्थ की सज्ञा मिली। इस स्थिति तक पहुँचने के लिए मानव समाज को अनेक सघर्ष करना पडे। भारतीयो को यह सम्मान एव अधिकार प्राप्त करने के लिए कई दशाब्दि तक सघर्ष-शील रहना पडा और तब जाकर कहीं सन् १९४७ मे उन्हे स्वतन्त्रता प्राप्त हुई। अन्य स्वतन्त्र राष्ट्रो की अपेक्षा भारतीय भाषाओ के उपन्यासो मे राजनीतिक सघर्ष इसीलिए पर्याप्त अन्तर स आया।

यूरोपीय साहित्य मे जर्मनी मे गेटे ने सर्वप्रथम मध्यवर्ग के परिवार को नायक बनाया और यथार्थवाद की भूमिका पर हस्ताक्षर किया। फ्रास के स्तादन ने पूँजीवादी वर्ग की ह्रासोन्मुखी दशाओ का चित्रण कर यथार्थवादी प्रवृत्ति को पुष्ट किया। बाल्जाक ने इस दिशा मे महत्वपूर्ण पार्ट अदा किया और दैनिक जीवन की नई समस्याओ को अपने उपन्यासो मे अकित किया। बाद मे टालस्टाय ने इन्हीं समस्याओ को सुचारु ढग से कलात्मक रूप दिया। रूसी लेखको ने शोषित जीवन के सहज और स्पष्ट चित्रों

से उपन्यास साहित्य को पुष्ट किया । इन उपन्यासकारो मे तुर्गनेव व दास्ताएव्स्की के नाम उल्लेखनीय हैं । गोर्की के उपन्यासो ने रूसी साहित्य की शृङ्खला मे एक नई कड़ी जोड़ी । उसने सर्वहारा वर्ग की मार्मिक अवस्था का चित्रण पूर्ण मनोयोग से साथ किया और यथार्थवाद मे सामाजिक सघर्ष को समुचित स्थान मिला । इन्हीं दिनों मार्क्स के सिद्धान्तो की प्रतिस्थापना हुई जिसने समाज की आर्थिक व्यवस्था को अपनी आधार-शिला घोषित किया । इस परिवर्तन से रूसी साहित्य मे सामूहिक मानवीय चेतना के विश्वास को समर्थन मिला ।

गोर्की प्रेमचन्द के समकालीन थे और रूस मे हो रहे सामाजिक राजनीतिक और साहित्यिक परिवर्तन को मनोयोग से देख रहे थे । साहित्य मे यथार्थवाद के माध्यम से प्रविष्ट सामाजिक यथार्थ के महत्व को और अपने देश मे हो रहे राष्ट्रीय आन्दोलन मे उसकी आवश्यकता पर वे गम्भीरता से विचार कर रहे थे । प्रेमचन्द हिन्दी के प्रथम राजनीतिक उपन्यासकार है जिन्होने भारतीय राष्ट्रीय जीवन के नये क्षितिजो के उन्मेश तथा समस्याओ को अपने उपन्यासो मे स्थान दिया । गाँधीवाद के सिद्धान्तो तथा गाँधीजी के नेतृत्व मे हुए राष्ट्रीय आन्दोलन का व्यापक चित्रण ही प्रेमचन्द के उपन्यासो की सबसे बड़ी सफलता है । स्वाधीनता प्राप्ति के उपरान्त प्रेमचन्दोत्तर काल मे राजनीतिक स्वाधीनता को सवैधानिक रूप से स्वीकृति मिलने से तथा मार्क्सवादी विचारधारा के प्रभाव के परिणामस्वरूप समाजवादी प्रवृतिया का आग्रहपूर्वक प्रतिपादन उपन्यास की विषयवस्तु बनी । द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी जीवनदर्शन के अनुरूप सर्वहारा वर्ग की स्थिति का चित्रण कर आर्थिक वैषम्यता का साग्रह चित्रण वर्ग-संघर्ष की चेतना से उपन्यास का शृगार किया जाने लगा जो वर्गबद्ध चरित्रगत विशेषता बन कर सम्मुख आया । साहित्य सामूहिक चेतना की स्वीकृति का माध्यम बन गया ।

जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है उपन्यास का वर्गीकरण उसके मूल तत्वो के अथवा वर्ण्य वस्तु के आधार/पर किया जा सकता है । राजनीतिक उपन्यास की मूल विशेषता उसकी सम-सामयिक राजनीतिक घटनाएँ, राजनीतिक चरित्र और राजनीतिक विचारधारा ही हो सकती है। राजनीतिक घटनाओ और चरित्र की प्रधानता के कारण जहां उसका एक स्वरूप चरित्र प्रधान या घटना चरित्र सापेक्ष्य हो सकता है वहां वह राजनीतिक वर्ण्य वस्तु, देशकाल व उद्देश्य को लेकर भी राजनीतिक स्वरूप ग्रहण कर सकता है । उसका क्षेत्र अत्यन्त विशाल है । कल्पना व यथार्थ के समन्वय से वह कलात्मक रूप धारण कर युगीन आन्दोलनो एव राजनीतिक सिद्धान्तों को जनसाधारण के लिए ग्राह्य बना सकता है । ज्ञान और आनद दोनो की पूर्ति राजनीतिक उप-

न्यासों से सम्भाव्य है और इसके लिए उपन्यास आदर्श और यथार्थवादी दोनों हो सकता है।

प्रस्तुत प्रबन्ध में सन् १९०० से सन् १९६३ की अवधि को लेकर ही हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासों के अनुशीलन का प्रयास किया गया है। वस्तुतः यही कालावधि भारत के राजनीतिक संघर्ष का काल है। स्वाधीनता आन्दोलन तथा राजनीतिक प्रगति की युगीन समस्याएं और उनके समाधान के प्रयास इस कालावधि में स्पष्ट रूप से देखे जा सकते हैं जिनका प्रभाव हिन्दी उपन्यास साहित्य पर पड़ा। समसामयिक घटनायें ही कालान्तर में ऐतिहासिक स्वरूप ग्रहण कर लेती हैं। प्रश्न उठता है कि फिर राजनीतिक तथा ऐतिहासिक उपन्यासों की सीमा रेखा क्या हो?

राजनीतिक एवं ऐतिहासिक उपन्यासों की पार्थक्य रेखा

यदि हम मोटे रूप से विचार करें तो यह कहा जा सकता है कि बीता हुआ क्षण ही इतिहास है। इस दृष्टिकोण से तो बीती हुई प्रत्येक सम-सामयिक घटना इतिहास का रूप ग्रहण कर सकती है। किन्तु सत्य को इस रूप में सर्वमान्य नहीं माना गया है। इतिहास की परिभाषा देते हुए कहा गया है कि इतिहास पुरानी घटनाओं तथा आन्दोलनों, उनके कारणों और अन्तर-संबंधों का लिपिबद्ध विवरण है। स्पष्ट है कि इतिहास बीते हुए क्षण की अपेक्षा पुरानी घटनाओं की कहानी है। प्रश्न उठता है कि व्याख्याकारों को 'पुरानी' से कितने वर्षों की अवधि का अन्तर स्वीकार्य है। इस सम्बन्ध में पुरातत्व एवं प्राचीन इतिहास विशेषज्ञों का मत ही माना जाना चाहिए जो १०० वर्ष से अधिक बीते समय को ही ऐतिहासिक समय मानते हैं।

हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासों का अध्ययन करते समय इसी आधार को स्वीकार विगत सौ वर्षों की कालावधि में हुए राजनीतिक कार्य-कलाप या सिद्धान्तों के प्रतिबिम्बन को ही लिया गया है। राजनीतिक उपन्यासों का उचित सीमा-निर्धारण भी यही हो सकता है।

● ○ ●

अध्याय २

भारतीय राजनीति का क्रमिक विकास : एक सर्वेक्षण

> राष्ट्रीय एकता के प्रेरणा स्रोत

> अखिल भारतीय कांग्रेस

> आतंकवादी आन्दोलन

> साम्प्रदायिकतावादी राजनीतिक संस्थाएं

मुस्लिम लीग

हिन्दू महासभा

> जनसंघ

> साम्यवादी दल

राष्ट्रीय एकता के प्रेरणा-स्रोत

औद्योगिक और राजनीतिक क्रान्तियों ने यूरोप में जिस नवयुग का प्रारम्भ किया भारत भी उसकी प्रवृत्तियों से अपने को पृथक् न रख सका। अंग्रेजी और आंग्ल-साहित्य के सम्पर्क से इस प्रक्रिया में भारतीय राजनीति को विशिष्ट दिशा-निर्देश भी मिला।

सन् १८५७ के विद्रोह ने भारतीय जनता की राजनीतिक चेतना को कालान्तर में विकसित किया। वस्तुत यह ऐतिहासिक परम्परा का पुनरागमन तथा जनता की आत्मा की मुक्ति का उज्ज्वल स्वरूप था। भारतीय राष्ट्रवादी आन्दोलन के विकास के अनेक आधारभूत कारण हैं। इनमें सबसे प्रमुख ब्रिटिश साम्राज्यवाद है। वस्तुत ब्रिटिश साम्राज्यवाद के कारण ही देश को एकता प्राप्त हुई तथा इसके कारण ही लोगों ने एक राष्ट्र के रूप में सोचना प्रारम्भ किया। यह इतिहास सम्मत तथ्य है कि अंग्रेजों के भारत में आने के पूर्व दक्षिण के लोग कुछ थोड़ी अवधि को छोड़कर देश के शेष भाग से अलग थे।

इस सत्य को भी स्वीकार करना ही होगा कि ब्रिटिश शासन के कारण ही भारतीयों को यूरोपीय देशों के सम्पर्क में आना पड़ा। यूरोप में १९ वीं शताब्दी में राष्ट्रीयता तथा स्वतन्त्रता की भावना चरम उत्कर्ष पर थी। यूरोपीय देशों के स्वातन्त्र्य संघर्ष के क्रियात्मक दृष्टान्तों से भारत में भी मुक्ति, स्वतन्त्रता तथा अधिकारों के विचार क्रमश जोर पकड़ने लगे। लार्ड रानल्डशे के शब्दों में "पश्चिमी ज्ञान की नई शराब नवयुवक भारतीयों के मस्तिष्कों में पड़ी। उन्होंने मुक्ति तथा राष्ट्रीयता के स्रोत से उसका पूर्ण पान किया। उनके सम्पूर्ण दृष्टिकोण में क्रान्ति की भावना ने प्रवेश किया।"

राष्ट्र के सम्मुख इस प्रकार के अनेक दृष्टान्त थे जहां जनता के उचित और और सगठित संघर्ष के सामने ब्रिटिश शासन को झुकना पड़ा था।

यूरोपीय जन-जागृति के साथ ही जिस अन्य कारण को विस्मृत नहीं किया जा सकता वह था देश-व्यापी असन्तोष। राजनीतिक अधिकारों से वंचित जनता आर्थिक रूप से भी विपन्न थी। भारत की आर्थिक पद्धति को शासकों ने अपनी आवश्यकता के अनुसार ढाल दिया था और भारतीय जनता के हितों की पूर्ण रूप से उपेक्षा की जाती थी। वल्न्ट का कथन है कि "भारतीय अर्थ की बुराई यह थी कि भारतीय वित्त मंत्री इंग्लैंड के हितों का भारत के हितों की अपेक्षा अधिक ध्यान रखते थे। अंग्रेज अधिकारियों का भारतीय जनता के प्रति व्यवहार अपमानजनक था।" कानून भी केवल ब्रिटिश

शासको के हित के साधन थे। भारतीयो की हत्या एक साधारण कृत्य बन गई थी और सर थियोडोर मोरिसन ने सन् १८९० ई० मे इस तथ्य का उद्घाटन करते हुए लिखा था कि "यह एक अवाछनीय तथ्य है तथा जिसे छिपाने का कोई लाभ नही कि अग्रेजो के द्वारा भारतीयो की हत्या प्रतिदिन होने वाली घटना है।" राष्ट्र के सभी बुद्धिमान् विचारक और सुधारवादी देश के इस आर्थिक शोषण और अत्याचारो से विक्षुब्ध और क्रुद्ध थे।

भारत की गरीब पीडित जनता के अनेक सजीव चित्र स्वय अग्रेज विद्वानो ने खीचे है। भारत सरकार के खुले व्यापार की नीति देश के विकास की बाधक थी और इसके परिणामस्वरूप जनता का आर्थिक स्तर शोचनीय हो गया था। सर विलियम हटर ने १८८० म इस तथ्य से लोगो को परिचित कराया कि 'लगभग ४ करोड व्यक्ति यहा भारत मे) अपर्याप्त भोजन पर अपना निर्वाह करते है।' स्वय भारत मन्त्री लार्ड सैलिसबरी ने सन् १८७५ मे स्वीकार किया 'ब्रिटिश शासन भारत का रक्तशोषण कर के उसे रक्तहीन, दुर्बल बना रहा।' ब्रिटिश शासक थे और भारतीय शोषित और उपयुक्त कारणो से दोनो के मध्य कटुता पर्याप्त रूप से बढती जा रही थी।

भारतीय राजनीति के बीज रूप मे अकुरित यह आक्रोश सामाजिक आन्दोलनो मे निहित है। राष्ट्रीयता की यही भावना गौरवपूर्ण अतीत के स्मरण से राजाराम मोहन राय, स्वामी दयानन्द, रामकृष्ण परमहस, विवेकानन्द आदि समाज सुधारको की वाणी से व्यक्त हुई। स्वामी दयानद ने अपने अनुयायियो पर प्रबल राष्ट्रीय प्रभाव डाला और श्रीमती ऐनी बेसेन्ट के शब्दो म—'दयानद ने ही "भारत भारतीयो का" नारे को बुलन्द किया।' विवेकानन्द के प्रभाव के सम्बन्ध म भी निवेदिता का कथन है कि वह अतुलनीय है क्योकि 'उसकी उपास्य देवी उसकी मातृभूमि।'

इस तरह सामाजिक आन्दोलनो के परिवेश मे ध्वनित राष्ट्रीयता के स्वर का प्रभाव समसामयिक साहित्य और जीवन पर पडा।

परिवहन तथा सचार के विकसित साधनो के कारण ये विचार एक भाषा के साहित्य मे पहुँच कर सारे देश मे छाने लगे।

नये ज्ञान-विज्ञान आधुनिक विचारधाराओ से परिचय प्राप्त कर लेने के कारण सुशिक्षित भारतीय राजनीतिक एव राष्ट्रीय आकाक्षाओ की पूर्ति हेतु सगठित हो अपने आन्दोलनो को चलाने का स्वप्न सजोने लगे थे।

अखिल भारतीय काग्रेस

सन् १८५७ के विद्रोह तथा काग्रेस की स्थापना के बीच की अवधि भारतीय राष्ट्रीयता का बीज बोने की अवधि थी। सन् १८८५ मे ये बीज अकुरित हुए और काग्रेस की स्थापना हुई। 'काग्रेस का इतिहास हिन्दुस्तान की आजादी की लडाई का

इतिहास है[1]।' यों प्रारम्भ में इसका उद्देश्य राजनीतिक न था। किन्तु एक वर्ष बाद ही सन् १८८३ में दादा भाई नोरोजी ने अध्यक्ष पद से इस बात की घोषणा की कि कांग्रेस एक शुद्ध राजनीतिक संस्था है और उसका उन सामाजिक प्रश्नों से कोई सम्बन्ध नहीं है, जिनके बारे में मतभेद पाया जाता है[2]।

कांग्रेस के इतिहास को अध्ययन की दृष्टि से दो कालों में विभाजित किया जा सकता है—

१ — स्वाधीनता पूर्व कांग्रेस . सन् १८८५ से १९४७ तक।

२ स्वातन्त्र्योत्तर कांग्रेस सन् १९४७ से वर्तमान तक।

प्रथम चरण को तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—

१—प्रथम चरण — सन् १८८५ से १९०५ तक

२ द्वितीय चरण — सन् १९०६ से १९१८ तक

३—तृतीय चरण — सन् १९१९ से १९४७ तक

प्रथम चरण को हम नरम राष्ट्रीयता का युग कह सकते हैं क्योंकि प्रथम दो दशक में कांग्रेस क्रांतिकारी नहीं बनी थी। इस युग में इसके नेता ब्रिटिश सम्राट के प्रति निष्ठा और आज्ञाकारिता की भावना को प्रकट करते थे।

द्वितीय चरण अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में सन् १९०४ में रूस और जापान में युद्ध प्रारम्भ हुआ और जापान की विजय से राष्ट्रीयता की एक नयी लहर प्रवाहित हुई।

---

१ सन् १८८५ में कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन में अध्यक्ष ने कांग्रेस का उद्देश्य इस तरह बताया—

(क) साम्राज्य के भिन्न भिन्न भागों में देश हित के लिए लगन से काम करने वालों की आपस में घनिष्ठता और मित्रता बढ़ाना है।

(ख) समस्त देश-प्रेमियों के हृदय से प्रत्यक्ष मैत्री-व्यवहार द्वारा वंश, धर्म और प्रान्त सम्बन्धी सम्पूर्ण पूर्व-दूषित संस्कारों को मिटाना और राष्ट्रीय ऐक्य की समस्त भावनाओं का पोषण और परिवर्धन करना।

(ग) महत्वपूर्ण और आवश्यक सामाजिक प्रश्नों पर भारत के शिक्षित लोगों में अच्छी तरह चर्चा होने के बाद परिपक्व सम्मतियाँ प्राप्त हों, उनका प्रामाणिक संग्रह करना।

(घ) उन तरीकों और दिशाओं का निर्णय करना जिनके द्वारा भारत के राजनीतिक देश हित के कार्य करें।

—पट्टाभि सीतारमय्या . संक्षिप्त कांग्रेस का इतिहास, पृष्ठ १२

२ आचार्य नरेन्द्र देव : राष्ट्रीयता और समाजवाद, पृष्ठ १६

सन् १९०५ में रूस की क्रान्ति से भी देशभक्तों को नवीन स्फूर्ति मिली और आशा की क्षीण रेखा भारतीय राजनीतिक क्षितिज पर दिखलाई दी। अपने द्वितीय चरण में ही कांग्रेस ने संघर्षपूर्ण स्थिति में प्रवेश किया। साम्प्रदायिक भावना का विस्तार होने से मुसलमानों ने कांग्रेस छोड़ दी यद्यपि कांग्रेस ने साम्प्रदायिक एकता के लिए भरसक प्रयत्न किये।

तीसरा चरण . सन् १९१९ के भारत सरकार अधिनियम की स्वीकृति के साथ प्रारम्भ हुआ तथा इसकी समाप्ति भारत की स्वतन्त्रता के साथ १९४७ में हुई। इस काल को गाँधी युग कहा जा सकता है[1]। इसी समय में पाकिस्तान के विचार ने जन्म लिया और इसकी समाप्ति स्वयं पाकिस्तान की स्थापना के साथ हुई। जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है कि प्रथम चरण में कांग्रेस ने किसी प्रकार के क्रान्तिकारी कदम नहीं उठाये। वस्तुत: वह नरम दलीय थी और इसीलिए अपनी मांगों के प्रति उदार और नम्र थी। वह और उसके अनुयायी ब्रिटिश न्याय-भावना में विश्वास करते थे और आन्दोलन तथा अवैधानिक कार्यों के प्रति अरुचि रखते थे। फलत उनकी कार्यवाही प्रार्थनाओं तथा अपीलों तक सीमित थी। यह तत्कालीन परिस्थितियों का परिणाम था और डॉ० पट्टाभि सीता रामय्या के शब्दों में—"हम उन्हें उनके उस दृष्टिकोण के लिए, जिसके द्वारा भारतीय राजनीतिक सुधार के रूप में उन्होंने कार्य किया, इतने अधिक दोष नहीं दे सकते, जिस प्रकार हम आजकल के किसी भवन की नींव के रूप में दब फुट गड़ी हुई ईंट और गारे को दोष नहीं दे सकते। उन्होंने हमारे लिए यह सम्भव कर दिया कि हम भवन की एक के पश्चात् एक ऊपर की मंजिलें खड़ी कर सकें—औपनिवेशिक स्वराज्य, साम्राज्यान्तर्गत होम रूल (अपना शासन) स्वराज्य तथा इन सबमें ऊपर पूर्ण स्वतन्त्रता[2]।

स्पष्ट है कि कांग्रेस की यह प्रारम्भिक नरम और भक्तिपूर्ण नीति देश व जनता पर कोई विशेष प्रभाव न डाल सकी। सन् १८९२ के भारतीय कौंसिल अधिनियम के द्वारा नरम दल को कोई उपलब्धि नहीं हुई। देश के साधनों पर विदेशी प्रभुत्व के कारण आर्थिक बोझ बढ़ने से जनता में गहरा असन्तोष व्याप्त होने लगा। असन्तोष का एक कारण १८९७ का अकाल भी था जिसने दो करोड़ आबादी का ७० हजार वर्गमील क्षेत्र प्रभावित हुआ। जनता जब इस विषम स्थिति में थी तब सरकार महारानी विक्टोरिया का राज्याभिषेक मनाकर अनावश्यक उत्सवों में धन का व्यय कर रही थी। कांग्रेस इस स्थिति का धैर्य के साथ अध्ययन कर रही थी और जनता के साथ थी। सन् १८९९

१. पट्टाभि सीतारामय्या : संक्षिप्त कांग्रेस का इतिहास, पृष्ठ १

२. पट्टाभि सीतारामय्या : संक्षिप्त कांग्रेस का इतिहास, पृष्ठ ६९

में कांग्रेस के अध्यक्ष पद से सर विलियम वैडरबर्न ने कहा था—"मैं जनता को छोड़कर किसके लिए क्या करूं? जनता में उत्पन्न होकर जनता के द्वारा विश्वास किया जाकर मैं जनता के लिए ही मरूँगा। इन्हीं दिनों पूना में प्लेग का प्रकोप हुआ और पूना के प्लेग कमिश्नर रेन्ड की अमानुषिक एवं अव्यावहारिक कार्यवाहियों ने जनता को उत्तेजित कर दिया था। यह रोष इतना उत्कट था कि रेन्ड और उसके साथी को घात्कर बन्धुओं ने गोली से उड़ा दिया गया। राजनीतिक क्षितिज पर गदर के बाद यह नई क्रान्तिकारी लाली थी जो आतंकवादी राजनीति के रूप में सम्मुख आई।

आतंकवादियों की इस हिंसात्मक प्रवृत्ति ने कांग्रेस में भी उग्रता की भावना उत्पन्न की। तिलक ने जनता की तात्कालिक मन स्थिति को पहचान कर कहा, "राजनीतिक अधिकारों के लिए लड़ना ही होगा। नरम दल वालों का विचार है कि ये अधिकार प्रेरणा से प्राप्त किये जा सकते हैं। हमारा विचार है कि उनकी प्राप्ति केवल दृढ़ दबाव से ही हो सकती है।"

इस तरह एक ओर जहाँ राजनीतिक अधिकार प्राप्त करने के लिए प्रयास हो रहे थे वहाँ दूसरी ओर लार्ड कर्जन उन्हें कुचलने के लिए प्रयत्नशील था। उसका तो मत था कि भगवान ने अंग्रेजों को भारत पर शासन के लिए चुना है तथा भारत को स्वतन्त्रता प्रदान करना भगवान की इच्छा के विरुद्ध है। इसीलिए उसने ऐसे नये अधिनियम बनाये जो भारतीयों के अधिकारों को सीमित करते थे। कलकत्ता निगम अधिनियम बना जिसके अनुसार सदस्य संख्या ७५ से २५ कर दी गई और वे ही सदस्य कम किए गए जो कलकत्ता के जन प्रतिनिधि थे। दूसरा भारतीय विश्वविद्यालय अधिनियम था जिसके द्वारा सिण्डीकेट, सीनेट तथा फैकल्टियों की सदस्य-संख्या कम कर अंग्रेजों को महत्त्व दिया गया तथा भारतीय विद्यालय भी सरकारी हो गये। सरकारी गोपनीयता अधिनियम (१९०४) भी पारित किया गया जिसके कारण सरकार के अधिकारों में वृद्धि हुई। 'विद्रोह' शब्द की परिभाषा विस्तृत कर दी गई और अब नागरिक मामलों के उन सरकारी तथा समाचार पत्रों की आलोचना के सम्बन्ध में भी कार्यवाही की जा सकती थी, जो सरकार को सन्देह तथा घृणा के योग्य सम्भावित कर सकते थे।

सन् १९०५ में बंग-विच्छेद कर कर्जन ने मानो बढ़ती हुई अशान्ति की अग्नि में पूर्णाहुति दी। जनता का अनुमान था कि यह कार्य बंगालियों की शक्ति क्षीण करने और कलकत्ते की राजनीतिक प्रधानता को छिन्न-भिन्न करने का षड्यन्त्र है। इसका घोर विरोध हुआ और राष्ट्रीयता के रूप में 'वन्देमातरम्' का स्वर घर-घर गूँज उठा। सरकार का भी दमनचक्र तेजी से चला। प्रत्येक प्रान्त ने बंगाल के प्रश्न के साथ अपनी

समस्याओं को जोड कर आन्दोलन को तीव्रतर बना दिया। 'राजभक्त भारत की कमर टूट गई और सारे देश मे एक नई जागृति पैदा हो गई[1]।' बग-विच्छेद के सम्बध मे ए० सी० मजुमदार का मत है कि 'लार्ड कर्जन का बगाल के विभाजन का उद्देश्य न केवल बगाली प्रशासन को मुक्त करना था, अपितु एक मुस्लिम प्रान्त बनाना था, जहाँ इस्लाम प्रभुत्वशाली हो सके तथा उसके अनुयायी महत्त्वशाली बन सकें।' इस आन्दोलन को तीव्र बनाने मे अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं ने भी योग दिया। जापान द्वारा रूस की तथा अबीसीनिया द्वारा इटली की पराजय को 'पूर्व की उन्नति का एक चिह्न, समझा गया[2]। काग्रेस का गरम दल सक्रिय हुआ और बहिष्कार, स्वदेशी और राष्ट्रीय शिक्षा के विचारो ने जोर पकडा।

द्वितीय चरण

सन् १९०६ मे दादा भाई नौरोजी ने काग्रेस का उद्देश्य स्पष्ट करते हुए कहा कि हमारा सार आशय केवल एक शब्द स्वशासन या स्वराज्य मे आ जाता है। इग्लैंड या उपनिवेशो मे जो शासन प्रणाली है, वही भारत मे जारी की जाय[3]।' काग्रेस को शक्तिशाली बनाने के लिए प्रान्तीय स्तर पर समिति सगठन का तथा जिला शाखाएँ प्रारम्भ करने का निर्णय लिया गया। बग-भग को आधार बना कर कांग्रेस का प्रथम आन्दोलन सन् १९०६ से १९११ तक चला। सरकार ने उनका तीव्रता से दमन भी किया, किन्तु बाद मे सन् १९११ मे बग भग रद्द करने की शाही घोषणा की गई। सन् १९०७ मे काग्रेस ने स्वदेशी, बहिष्कार और राष्ट्रीय शिक्षा के क्रियात्मक प्रस्तावों को अपनाया। स्वदेशी का आन्दोलन सम्पूर्ण राष्ट्र मे व्याप्त हो गया। इधर आतंकवादी गतिविधियाँ भी सक्रिय हुईं। सन् १९१४ मे महासमर प्रारम्भ हुआ और काग्रेस ने स्वशासन की पुन माँग रखी। इस समय काग्रेस मे दो दल थे—एक नरम दल और दूसरा राष्ट्रीय दल। लोकमान्य तिलक जून १९१४ मे मण्डाले जेल से रिहा हुए। तिलक राष्ट्रीय दल के थे और उन्होंने राष्ट्रीय दल के पुन० सगठन एव होम रूल आन्दोलन के लिए सन् १९१५-१६ मे अथक प्रयत्न किया। सन् १९१६ मे श्रीमती बेसेंट ने भी राजनीति मे प्रवेश कर होमरूल आन्दोलन को लोकप्रिय बनाया। तिलक ने कहा कि नरम दलीय देश को अपने लक्ष्य तक नहीं पहुँचा सकते और देश की आजादी के लिए गरम दल ही मार्गप्रदर्शक बन सकता है। तिलक ने एक नया नारा दिया— 'स्वराज्य मेरा जन्म सिद्ध अधिकार है। मैं इसे लेकर रहूँगा।' एक अन्य सभा मे उन्होने

१. डा० पट्टाभि सीतारामय्या : सक्षिप्त काग्रेस का इतिहास, पृष्ठ ६५

२. डा० पट्टाभि सीतारामय्या : भारत का सवैधानिक इतिहास पृष्ठ २४६

३. डा० पट्टाभि सीतारामय्या : सक्षिप्त काग्रेस का इतिहास, पृष्ठ ५७

कहा—'हम स्वय अपने भाग्य के विधाता हैं और उसे तभी बना सकते हैं जब हम उसे बनाने का पक्का इरादा कर लें। स्वराज्य हमसे दूर नहीं है। यह उसी क्षण हमारे पास आ जायेगा जिस क्षण हम अपने पाँवो पर खड़ा होना सीख लेंगे।' इसमें सन्देह नहीं कि होमरूल आन्दोलन ने जनता में जागरूकता उत्पन्न की। एनी बेसेन्ट के शब्दो में मैं भारत की लम्बी बन्दूक हूँ जो सब सोने वालो को जगाये' जिससे वे जाग सकें तथा अपनी मातृभूमि के लिए कार्य कर सकें।' वस्तुत यह योजना केवल राष्ट्रीय उग्रवादियो को क्रान्तिकारियो के साथ समभौतापूर्ण सन्धि से अलग रखने तथा साम्राज्यांतर्गत स्थिति मे उन्हे सन्तुष्ट बनाये रखने के लिए थी। उनके राजनीतिक सुधार का उद्देश्य देहाती परिषदो, जिला बोर्डों, नगरपालिका व प्रान्तीय विधान सभाओ के द्वारा पूर्ण स्थानीय शासन तक सीमित था। यह कहा गया कि इनके अधिकार स्वय शासन करने वाले उपनिवेशो की विधान सभाओं के समान होंगे, चाहे उन्हें किसी भी नाम से पुकारा जाये। इनके साथ ही साम्राज्य की ससद मे भी भारत का सीधा प्रतिनिधित्व होगा जब उस सस्था मे साम्राज्य के स्वय शासन करने वाले राज्य होगे। यह भारतीय जनता का अधिकार निरुपित किया गया। इस सदर्भ मे एनी बेसेन्ट का यह कथन नहीं भुलाया जा सकता—"भारत अपने पुत्रों के रुधिर से तथा अपनी पुत्रियो के गर्वपूर्ण आँसुओ से इतनी अधिक स्वतन्त्रता तथा इतने अधिक अधिकारो के बदले मे सौदा नहीं करना चाहता। भारत एक जाति के रूप मे इस बात का दावा करता है कि उसे साम्राज्य के लोगों मे न्याय का अधिकार प्रदान किया जाए। भारत ने इसके लिए युद्ध से पूर्व मांग की, भारत इसके लिए युद्ध के पश्चात् मांग करेगा, किन्तु पुरस्कार के रूप मे नहीं, अपितु एक अधिकार के रूप मे वह इसके लिए कहता है।"

होमरूल आन्दोलन के साथ-साथ विप्लववादियो के आन्दोलन की गतिविधियाँ भी उत्कर्ष पर थी। एनी बेसन्ट बन्दी की गई और उनकी मुक्ति के लिए व्यापक आन्दोलन हुआ, तिलक ने तो निष्क्रिय सघर्ष की धमकी दी। महायमर के कारण देश मे अशान्ति का वातावरण निर्मित हो रहा था, अत परिस्थितियो को विपरीत देख सन् १९१७ मे राज्य सचिव ने उत्तरदायी शासन देने का आश्वासन दिया।

कांग्रेस के नरम और गरम दलो में एकता स्थापित हुई तथा हिन्दू-मुस्लिम समभौता के परिणामस्वरूप राष्ट्रीय आन्दोलन को नई दिशा मिली। रूसी क्रान्ति की सफलता एव आत्मनिर्णय के अधिकार से अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक परिस्थितियो मे परिवर्तन आया। भारतीय जन-मानस के असन्तोष को देखकर नए भारत मत्री श्री मान्टेग्यू ने ब्रिटिश शासन की नई नीति की घोषणा की। इसमे कहा गया कि ब्रिटिश साम्राज्य का उद्देश्य भारतीय स्वशासन सस्थाओं का क्रमिक विकास कर उन्हें ब्रिटिश साम्राज्या-

न्तर्गत स्वशासन की दिशा मे अग्रसर करना है । कुछ ही समय बाद सन् १९१९ मे माण्टेग्यू चेम्सफोर्ड बिल के रूप मे इन सुधारो को कानून के रूप मे परिणित भी कर दिया गया । इस विधेयक मे द्विविध शासन प्रणाली, कौंसिल मे सदस्यो की नामजदगी, राज्य परिषद्, सर्टिफिकेशन और वीटो का अधिकार, आर्डिनेन्स बनाने का अधिकार और ऐसी तमाम पीछे हटाने वाली बातें थीं । डॉ० पट्टाभि सीतारामय्या के शब्दो मे 'साहित्यिक दृष्टि से यह ऊँचे दरजे की चीज थी । यह ब्रिटिश राजनीतिज्ञो द्वारा तैयार किये गये राजनैतिक लेखो के समान, भारत को स्वशासन देने के सम्बन्ध मे एक निष्पक्ष बयान था । उसमे सुधारो के मार्गों की रुकावटो का बडी स्पष्टना के साथ वर्णन किया गया था और फिर भी जोर दिया गया था कि सुधार अवश्य मिलना चाहिए[1] ।' इन सुधारो वाले माण्टेग्यू बिल के साथ शासन ने रौलट बिल जैसा कानून भी बनाया । इसके अनुसार किसी भी व्यक्ति को राजद्रोह के अपराध मे बन्दी किया जा सकता था । वस्तुत इन बिलो के पीछे शासन के दो उद्देश्य निहित थे । एक ओर जहाँ वह माण्टेग्यू बिल से उदार दल के नेताओ को अपना समर्थक बनाना चाहती थी वहीं दूसरी ओर रौलट बिल के द्वारा उग्र राष्ट्रीय तत्त्वो को विनष्ट भी करना चाहती थी । अग्रेजो की इस कूटनीति को पहचान कर गाधी जी ने इस दमनकारी बिल का राष्ट्रीय स्तर पर विरोध किया । उन्होंने इसे अन्यायपूर्ण स्वाधीनता के सिद्धान्तो को घातक बताया । सारे देश ने इस आन्दोलन का समर्थन किया । इस आन्दोलन को लेकर पजाब मे अमृतसर के जलियावाला बाग मे सरकार ने सामूहिक हत्याकाण्ड का षड्यन्त्र रचा । अमृतसर का यह पूर्व नियोजित सामूहिक हत्याकाण्ड, दिल्ली और वीरमगाव के गोली-काण्ड, पजाब मे फौजी कानून के भीषण दमनकारी कृत्य आदि ने भारतीय जनता के के सुपुप्त आत्म-सम्मान को बुरी तरह झकझोर डाला । वस्तुत राष्ट्रीय जन-जागृति के इतिहास मे 'जलियावाला हत्याकाण्ड' का एक विशिष्ट स्थान है । सरकार इस जन आन्दोलन से भयभीत हो उठी और उसने अपने पक्ष मे सामन्ती राजाओ की शक्ति को सगठित किया । इन नवीन परिस्थितियो मे काग्रेस ने सन् १९२० मे कलकत्ता मे एक विशेष अधिवेशन का आयोजन कर काग्रेस की भावी योजना पर विचार विमर्श किया । उसी वर्ष नागपुर अधिवेशन मे काग्रेस ने अहिंसात्मक असहयोग-आन्दोलन को स्वीकृत कर 'शातिपूर्ण एव वैधानिक तरीको से स्वराज्य-प्राप्ति' को अपना ध्येय घोषित किया । वस्तुत साम्राज्य के भीतर स्वायत्त शासन की असफलता स्पष्ट रूप मे सम्मुख आ चुकी थी । प० जवाहरलाल नेहरू ने 'मेरी कहानी' मे स्वायत शासन की इस स्थिति पर प्रकाश डालते हुए लिखा है - "सरकार ने म्युनिसिपैलिटी के शासन का फौलादी चोखटे

---

१ डॉ० पट्टाभि सीतारामय्या, सक्षिप्त काग्रेस का इतिहास, पृष्ठ ८३

मे जैसा ढांचा बनाया, वह आमूल परिवर्तन या नवीन सुधारों को रोकने वाला था—म्युनिसिपैलिटिया हमेशा ही सरकार के कर्ज से दबी रहती हैं और इसलिए पुलिस की निगाह के अलावा सरकार जिस दूसरी निगाह म्युनिसिपैलिटी को देखती है वह है कर्ज देने वाली साहूकार की निगाह ।'

ऐसी स्थिति मे गांधी जी ने सत्याग्रह की घोषणा कर नये युग का सूत्रपात किया। यह वह युग था जब पंजाब के अत्याचार और खिलाफत के प्रश्न पर जनता अत्यन्त व्यग्र हो रही थी। गांधी जी द्वारा उठाया गया यह कदम कांग्रेस की नई नीति का प्रतीक है जिसका मूल स्वर विद्रोह था। इसके साथ ही कांग्रेस की आग्रहपूर्ण प्रार्थनाओं और नपे-तुले प्रस्तावों के स्थान पर स्वावलम्बन और दृढ़ आत्मविश्वास की भावना का उदय होता है। गांधी जी ने अपने १० मार्च के घोषणा-पत्र मे असहयोग-आन्दोलन की रूपरेखा प्रस्तुत करते हुए कहा - 'यदि हमारी मांगें स्वीकार न हुईं तो हमें क्या करना चाहिए, इस पर विचार कर लेना आवश्यक है। एक जंगली मार्ग खुल्लम-खुल्ला या छिपे हुए युद्ध का है। इस मार्ग को छोड़िए, क्योंकि वह अव्यवहार्य है। यदि मैं सबको समझा सकूं कि यह उपाय हमेशा बुरा है, तो हमारे सब उद्देश्य शीघ्र सिद्ध हो जायें। कोई व्यक्ति या कोई राष्ट्र हिंसा के त्याग द्वारा जो शक्ति उत्पन्न कर सकता है, उसका मुकाबला नहीं कर सकता। अतएव हमारे लिए असहयोग ही एकमात्र औषधि है। यदि यह सब तरह की हिंसा से मुक्त रखी जाय तो यही सबसे अच्छी और रामबाण औषधि है। यदि सहयोग-द्वारा हमारा पतन होता हो और हमारे धार्मिक भाव को आघात पहुँचता हो, तो असहयोग हमारे लिए कर्तव्य हो जाता है[१]।' खिलाफत के प्रश्न पर भारत तथा ब्रिटेन की सरकार में सुलह न हो सकी और गांधी जी के लिए असहयोग आन्दोलन को मूर्त रूप देना आवश्यक हो गया।

असहयोग आन्दोलन के लिए कांग्रेस ने जो रूपरेखा प्रस्तुत की वह इस प्रकार थी—

(क) सरकारी उपाधियों तथा अवैतनिक पदों को छोड़ दिया जाय और म्युनिसिपल बोर्ड तथा अन्य संस्थाओं मे जो लोग नामजद हुए हों, वे इस्तीफा दे दें,

(ख) सरकारी दरबारों आदि द्वारा किये जाने वाले सरकारी और अर्द्ध-सरकारी उत्सवों मे भाग लेने से इनकार किया जाय,

(ग) राजकीय तथा अर्द्ध राजकीय स्कूलों तथा कालेजों से छात्रों को धीरे-धीरे निकाल लिया जाय,

---

१. डॉ० बी० पट्टाभि सीतारामय्या : संक्षिप्त कांग्रेस का इतिहास, पृष्ठ १०४

(घ) वकीलों तथा मुवक्किलों द्वारा ब्रिटिश अदालतों का धीरे-धीरे बहिष्कार किया जाय और पंचायती अदालतों की स्थापना की जाय,

(ङ) फौजी, क्लर्की तथा मजदूरी करने वाले लोग मेसोपोटामिया में नौकरी करने के लिए भरती होने से इनकार करें,

(च) नई कौंसिलों के चुनाव के लिए खड़े हुए उम्मीदवार अपने नाम उम्मीदवारी से वापस ले लें, और

(छ) विदेशी माल का बहिष्कार किया जाय।[१]

इसके साथ ही स्वदेशी वस्त्रों को अपनाने और प्रत्येक घर में हाथ की कताई और बुनाई को पुनरुज्जीवित करने पर विशेष बल दिया गया।

असहयोग आन्दोलन के देशव्यापी प्रचार करने के लिए गांधी जी ने व्यापक दौरा किया। उनका कहना था कि अगर लोग निष्ठा के साथ इस कार्यक्रम को अपना लें तो स्वराज्य एक साल में ही मिल जायगा। अहिंसा और सत्य का परिपालन सत्याग्रही का अनिवार्य कर्तव्य निरूपित किया। आन्दोलन ने सारे राष्ट्र में नई हलचल पैदा की। स्त्रियों और मजदूरों ने भी इसमें भारी संख्या में भाग लिया। मुस्लिम लीग ने भी कन्धा से कन्धा मिलाया किन्तु दुख है कि उनका यह सहयोग पहला और अन्तिम बन कर रह गया। यद्यपि गांधी जी ने आन्दोलन में अहिंसक मार्ग को अपनाने पर जोर दिया था, किन्तु ब्रिटिश सरकार के दमन-चक्र से जनता उत्तेजित हो गई और चौरा-चौरी में हिंसात्मक घटनाएं घटित होने से असहयोग आन्दोलन स्थगित कर दिया गया। गांधी जी इस निश्चय पर पहुँचे कि आन्दोलन की सार्थकता उस समय ही है जब जनता अहिंसा के मर्म को गम्भीरता से समझ कर वैसा आचरण करे। गांधी जी द्वारा आन्दोलन वापस लेने की देश-व्यापी प्रतिक्रिया हुई और नेताओं तथा जनता ने गांधी जी की तीव्र आलोचना की। सी० आर० दास, मोतीलाल नेहरू, लाजपत राय जैसे वरिष्ठ नेताओं ने इस निश्चय के प्रति अपना असन्तोष व्यक्त किया। आन्दोलन के स्थगित होने के कारण साम्प्रदायिक तनाव में भी वृद्धि हुई। स्वयं पं० जवाहरलाल जी अपनी आत्मकथा में यह स्वीकार करते है कि यदि यह आन्दोलन स्थगित किए जाने के बजाय सरकार द्वारा इसका दमन किया जाता तो सम्भव है कि बाद के वर्षों में फैलने वाली साम्प्रदायिक कटुता और दंगों का विस्तार इस सीमा तक न हुआ होता। आन्दोलन के स्थगन से जनता का उत्साह कुंठित हो गया और नेताओं में मतभेद उत्पन्न होने के कारण राष्ट्रीय एकता को धक्का पहुँचा।

इसी वर्ष देश में कई अन्य घटनाएं भी हुईं जिनमें से प्रिन्स आफ वेल्स के आग-

१ डॉ० बी० पट्टाभि सीतारामय्या : संक्षिप्त कांग्रेस का इतिहास, पृ० २१०-११

मन का बहिष्कार, भोपाल-विद्रोह, रेलवे-मजदूरों की हड़ताल प्रमुख थीं। युवराज का सभी स्थानों पर बहिष्कार किया गया और शासन ने कठोरता के साथ इनका दमन किया। फलत सम्पूर्ण देश मे प्रदर्शन, लाठी चार्ज और गोलीकाण्ड की घटनाएँ हुई।

असहयोग आन्दोलन की असफलता और अंग्रेजो की कूटनीतिक चालो के परिणामस्वरूप राष्ट्रीय एकता को आघात लगा। मुस्लिम लीग ने सदैव के लिए राष्ट्रीय आन्दोलन मे काग्रस का साथ छोड़ दिया। काग्रेस मे भी अनेक दल बन गये। किन्तु गाधी जी अपनी असहयोग नीति पर अटल थे। असहयोग आन्दोलन के बाद के सात वर्ष का काल राजनीतिक दृष्टि से निष्क्रियता और आत्ममथन का है। साथ ही यह साम्प्रदायिकता के नग्न नृत्य का इतिहास भी है। मुस्लिम लीग काग्रेस से पृथक हो चुकी थी और मुस्लिम हितो का नारा बुलन्द करने लगी थी। उसकी प्रतिक्रिया हिन्दुओ मे भी हुई और हिन्दू महासभा को गतिविधियों मे सक्रियता आई। काग्रेस की मुस्लिम तुष्टीकरण की नीति से कट्टर हिन्दू पथी क्षुब्ध थे और अपना पृथक मार्ग बनाने के प्रयत्न मे थे। हिन्दू महासभा का अखिल भारतीय स्तर पर गठन किया गया और राष्ट्रीय स्वय सेवक की स्थापना हुई। साम्प्रदायिक भावना का तीव्रता से विस्तार हुआ और साम्प्रदायिक दगो की जैसे अटूट शृखला स्थापित हो गई।

भारतीयों के बढ़ते हुए असन्तोष को लक्ष्य करते हुए सन् १९२७ मे साइमन कमीशन की नियुक्ति की घोषणा की गई और कमीशन का उद्देश्य भारत मे उत्तरदायी शासन स्थापित करने के लिए सुभावों का एकत्रीकरण बताया गया। काग्रेस ने साइमन कमीशन के बहिष्कार करने का निर्णय लिया, फलत सभी स्थानो पर जनता ने उसका घोर विरोध किया। लाहौर मे तो लाला लाजपतराय के नेतृत्व मे प्रदर्शन करने वालो पर भीषण लाठी चार्ज किया गया जिसमे लाला लाजपतराय को सगीन चोट पहुची। कलकत्ता काग्रेस (सन् १९२८) ने इसके विरुद्ध निन्दा का प्रस्ताव पारित किया। इस घटना ने क्रान्तिकारियों मे नई जान डाल दी और कुछ समय बाद ही उन्होंने लाला लाजपतराय के हत्यारे पुलिस अधिकारी साण्डर्स की हत्या कर दी। इसी वर्ष ८ अप्रैल को लेजिस्लेटिव असेम्बली मे बम फेंका गया और भगतसिंह और उनके साथी दत्त इस प्रकरण मे पकड़े गये। सारे देश मे इसकी प्रतिक्रिया हुई और भगतसिंह भारतीय युवको के आराध्य बन गये। काग्रेस की नीति में परिवर्तन हुआ और मद्रास अधिवेशन मे उसने पूर्ण स्वाधीनता का प्रस्ताव पास किया और अपने आपको साम्राज्यवाद विरोधी अन्तर्राष्ट्रीय लीग के साथ सम्बद्ध करने का निर्णय लिया।

इन्हीं दिनों साम्यवादी दल के नेतृत्व मे मजदूर आन्दोलन तीव्र हो रहा था। २० मार्च

१९२९ को यू० पी०, बम्बई और पंजाब आदि प्रांतो म पुलिस ने एक साथ अनेक मकानों पर छापा मारा और मजदूर आन्दोलन के वरिष्ठ नेताओ को साम्यवाद के प्रचार के अभियोग म गिरफ्तार किया। इन नेताओ पर मेरठ म मुकदमा चलाया गया जो मेरठ काण्ड के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

इन राजनीतिक गतिविधियो से सारा राष्ट्र आन्दोलित हो रहा था। राजनीतिक कैदियो के साथ अधिकारियो का व्यवहार अमानवीय था। उन्हे नाना प्रकार की यन्त्रणाएँ दी जाती थीं। फलत यतीन्द्रनाथ दास और पूँजी विजया ने क्रमश ६४ और १६४ दिन के ऐतिहासिक आमरण अनशन किये और शहादत पाई। इन वीरो के लिए कांग्रेस ने सैद्धान्तिक मतभेदो के बावजूद लाहौर अधिवेशन म शोक प्रस्ताव किया और कहा कि 'इन लोगो के आत्मघात के लिए भारतवर्ष की विदेशी सरकार जिम्मेदार है[1]।' इन्हीं दिनों लार्ड इरविन की ट्रेन को बम से उडाने का असफल प्रयत्न किया गया।

२६ जनवरी १९३० को सम्पूर्ण राष्ट्र ने स्वराज्य दिवस मनाया और कांग्रेस ने लाहौर अधिवेशन में 'शान्तिपूर्ण और उचित उपायों से पूर्ण स्वाधीनता की प्राप्ति' को अपना ध्येय घोषित किया। इस तरह प्रथम असहयोग आन्दोलन के उपरान्त १९३० तक किसी आन्दोलन का आयोजन न हो सका। स्वराज्य पार्टी कौंसिलो म जाकर भी कोई महत्त्वपूर्ण कार्य न कर सकी। उनकी गतिविधियाँ अलाभकारी भडग तक सीमित रहीं। सन् १९३० म गाधी जी के नेतृत्व मे सविनय अवज्ञा आन्दोलन प्रारम्भ हुआ और पूर्ण स्वराज्य को स्वतन्त्रता का ध्येय स्वीकार किया गया। १२ मार्च १९३० को गाधी जी ने अपनी ऐतिहासिक डाडी यात्रा प्रारम्भ की और नमक कानून भग किया। उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया और जिसके विरोध म जगह जगह प्रदर्शन और हडतालें आयोजित हुईं। शोलापुर और पेशावर म कई दिन तक जनता का राज्य रहा। पेशावर म गढवाली सैनिको ने प्रदर्शनकारियो पर गोली चलाने से इन्कार कर दिया। जनता के इस उग्र भैरव रूप को देखकर सरकार ने समझौतावादी दृष्टिकोण अपनाया और और २६ जनवरी १९३१ को गाधी जी को मुक्त कर दिया। दो माह बाद गाँधी जी और वाइसराय म 'गाधी इरविन पैक्ट' हुआ जिसके अनुसार गाधी जी ने आन्दोलन स्थगित कर दिया और द्वितीय गोलमेज परिषद म कांग्रेस के प्रतिनिधि के रूप म भाग लेना स्वीकार कर लिया। एक बार फिर देश के मज़दूर और युवक वर्ग ने गाधी जी के इस निर्णय का तीव्र विरोध किया। गोलमेज़ परिषद् मे गाधी जी को कुछ हासिल न हो सका। कहा गया है कि इस परिषद् का आयोजन ही इस उद्देश्य से किया गया था कि

१ (स०) कन्हैयालाल कांग्रेस के प्रस्ताव, पृष्ठ ४९६

स्वराज्य की माग को बातचीत और कानूनी दाव-पेंच की भूलभुलैया में भटका कर गुमराह किया जा सके। गांधी-इरविन समझौते के द्वारा जो समय और अवसर मिला, नौकरशाही ने उसका लाभ उठाकर अपनी तैयारियाँ पूरी कर लीं। विभिन्न प्रान्तों में संकटकालीन आर्डिनेन्स जारी कर दिये गये। देश का वातावरण अत्यधिक तनावपूर्ण हो गया। गांधी जी के स्वदेश लौटने पर उन्हें अन्य प्रमुख नेताओं के साथ गिरफ्तार कर कांग्रेस को गैरकानूनी घोषित कर दिया गया। द्वितीय गोलमेज परिषद् में भारत को नया विधान देने का जो ढोंग रचा गया था उसके अनुसार केवल तीन निर्णय हुए। प्रान्तीय स्तर पर स्वशासन के अधिकारों में वृद्धि की जाय, यद्यपि गवर्नर को जो विशेषाधिकार दिये गये उसके कारण बढ़े हुए अधिकारों का कोई वास्तविक मूल्य न था। केन्द्र में संघराज्य की स्थापना का जो निर्णय लिया गया उसमें राजाओं को प्रमुख स्थान मिला तथा लीग की इच्छानुसार दो राष्ट्रों की नीति के लिए वैधानिक भूमिका का निर्माण हो गया। तीसरा निर्णय ब्रिटिश साम्राज्य के आर्थिक हितों की रक्षा का था। दूसरे शब्दों में अछूतों को विशेष प्रतिनिधित्व देकर हिन्दू जाति से पृथक करने का षड्यन्त्र रचा गया। इस पर गांधी जी ने यरवदा जेल में आमरण अनशन की घोषणा की। उन्होंने अपना अनशन २० सितम्बर से प्रारम्भ किया। इस घटना से सारा देश चिंतित हो उठा और दलित जातियों से समझौता होने पर गांधी जी ने अपना अनशन समाप्त किया। आत्मशुद्धि के लिए सन् १९३३ में गांधी जी ने इक्कीस दिन के उपवास की घोषणा की और इस पर सरकार ने उन्हें जेल से रिहा कर दिया। उनकी रिहाई से देश में उत्तेजना न फैले, इस ध्येय से गांधी जी ने छह माह के लिए सविनय अवज्ञा आन्दोलन को स्थगित कर दिया। गांधी जी के इस निर्णय की कटु आलोचना हुई। विट्ठल भाई पटेल और सुभाषचन्द्र बोस जैसे वरिष्ठ नेताओं ने अपने वक्तव्य में कहा—"सविनय अवज्ञा आन्दोलन को स्थगित किए जाने की श्री गांधी की ताजा कार्यवाही असफलता की स्वीकारोक्ति है—हमारा यह स्पष्ट मत है कि राजनीतिक नेता के रूप में गांधी जी असफल हो चुके हैं। समय आ गया है कि कांग्रेस का नवीन सिद्धान्त के आधार पर नए तरीकों से पुनर्गठन किया जाए, जिसके लिए नया नेतृत्व अत्यावश्यक है[1]।" इन्हीं विचारों के कारण सन् १९३४ में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी स्थापित हुई। सच तो यह है कि रूसी समाजवाद ने भारतीय राजनीतिज्ञों का ध्यान इस ओर आकर्षित किया। सन् १९३४ में आचार्य नरेन्द्रदेव की अध्यक्षता में पटना में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी का जो अधिवेशन हुआ उसमें सौ से अधिक प्रतिनिधियों ने भाग लिया। समाजवादियों ने कांग्रेस के विधान सभा कार्यक्रम का विरोध कर शक्तिशाली संगठन

१. आर० पामदत्त, इण्डिया टुडे, पृष्ठ ३५३—फुटनोट

बनाने पर जोर दिया। इसी वर्ष सरकार ने भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी को अवैध घोषित कर दिया। समाजवादी विचारधारा का उन्मेष हुआ और जवाहरलाल नेहरू के कांग्रेस अध्यक्ष निर्वाचित होने के कारण उसे मान्यता प्राप्त हुई। कांग्रेसाध्यक्ष के रूप म दिये गये भाषण म उन्होंने कहा था कि मुझे विश्वास है कि दुनिया और भारत की समस्याओं का समाधान समाजवाद म है—मैं चाहता हू कि कांग्रेस एक सोशलिस्ट सघटन बनकर दुनिया की उन शक्तियो का हाथ बटाय, जो नयी सभ्यता का निर्माण करने म लगी हुई हैं।" इसके पूर्व सन् १९३३ म भी उन्होने कहा था कि 'आज ससार को कम्युनिज्म और फासिज्म म से एक चुनना है। मैं तो पूरे तौर पर कम्युनिज्म के साथ हूँ। कम्युनिज्म के मूल सिद्धान्त और इतिहास का वैज्ञानिक विश्लेषण दोनो सही है[1]।" यह वह समय था जब अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति करवट ले रही थी और विश्व पर द्वितीय महायुद्ध के बादल घुमडने लगे थे।

भारत म समाजवादी विचारधारा के अभ्युदय होने पर भी जनता का विश्वास और श्रद्धा कांग्रेस और उसके कार्यक्रम के ऊपर ही रही आई। अहिंसक आन्दोलनो की असफलता के बाद भी गाधी जी ही जनता के सर्वमान्य नेता थे। उनकी सफलता का रहस्य बतलाते हुए यह ठीक ही कहा गया है कि गाधी जी के राजनीतिक मार्ग के अतिरिक्त अन्य कोई उपयुक्त मार्ग न था। लिबरल का वैधानिक सुधार आन्दोलन जनता को आकर्षित नहीं कर सकता था। स्वराज्य पार्टी की कौंसिलो म अडग की नीति लाभकर सिद्ध न हुई। साम्प्रदायिक दल केवल फूट को जन्म देते थे। क्रांतिकारी आन्दोलन वीरता तथा उत्साहवर्धक होते हुए भी जनता म जडे न जमा सका था। समाजवादी आन्दोलन के लिए उपयुक्त परिस्थितियाँ तैयार नही थी। दूसरा कारण यह था कि गाधी जी की सत्याग्रह युद्ध पद्धति म सम्पूर्ण जनता भाग ले सकती थी, अत गाधी जी भारतीय जनता के शीघ्र जननायक हो गये थे[2]।

राजनीतिक चेतना के विस्तार के कारण जो विभिन्न राजनीतिक विचार-धाराओं के प्रतिफलन से हुई, कांग्रेस को पुन उग्र रूप धारण करना पडा। कांग्रेस के फैजपुर अधिवेशन म जवाहरलाल नेहरू ने स्पष्ट किया कि 'हमारे सामने असली उद्देश्य यह है कि देश की सारी साम्राज्यवाद विरोधी शक्तियो का एक सयुक्त मोर्चा तैयार किया जाय। कांग्रेस ऐसा सयुक्त सार्वजनिक मोर्चा पहले भी थी और अब भी है और यह बात लाजिमी है कि जो कुछ काम हो, उसकी धुरी और बुनियाद कांग्रेस ही हो।

---

१ रामगोपाल भारतीय राजनीति, पृष्ठ ३७७

२ डॉ० चण्डीप्रसाद जोशी हिन्दी उपन्यास समाजशास्त्रीय विवेचन, पृष्ठ १६६

संगठित मजदूरों और किसानों के सक्रिय सहयोग से यह मोर्चा और भी मजबूत होगा और हमें इसके लिए कोशिश करनी चाहिए।' इसी अधिवेशन में विश्व युद्ध होने पर भारत द्वारा अंग्रेजों को किसी भी प्रकार का सहयोग न देने का निर्णय किया गया।

कांग्रेस की प्रतिष्ठा का ज्ञान सरकार को प्रान्तीय धारा-सभाओं के चुनाव में बहुमत में आने पर हो गया। इन चुनावों में १५८५ स्थानों में से ७११ कांग्रेस को प्राप्त हुए और पांच प्रान्तों में उसका बहुमत रहा। चार प्रान्तों में वह सबसे बड़ी पार्टी के रूप में आई तथा केवल पंजाब और सिन्ध में वह अल्पमत में रही। चुनाव के उपरान्त मन्त्रिमण्डल का गठन स्वाधीनता इतिहास की एक महत्त्वपूर्ण घटना है। डॉ० पट्टाभि सीतारामय्या के शब्दों में 'अमल में जब मन्त्रिमण्डल बनाये गये तब उसने राष्ट्रीय संगठन के मेहराब की बुनाई की। असहयोग का रास्ता बदला, लेकिन सहयोग का वक्त अभी नहीं आया था। सब बनाने से ऐक्ट के जिस हिस्से का सम्बन्ध था उसके विरोध में कांग्रेस के रुख में कोई फर्क नहीं आया था[१]।'

प्रान्तीय शासन प्राप्त होने पर भी कांग्रेस कानून के बन्धनों के कारण कुछ विशेष कार्य न कर सकी। ऐसे भी उदाहरण देखने में आए जहाँ सत्ता-प्राप्ति के कारण कांग्रेसी कार्यकर्ताओं ने जन-हित की उपेक्षा कर वैयक्तिक स्वार्थ-साधन की पूर्ति की। कांग्रेस में मतभेद की खाई गहरी होने लगी और फलतः सुभाषचन्द्र बोस ने कांग्रेस के अन्तर्गत सन् १९३८ में अग्रगामी दल स्थापित किया। एक वामपक्षीय संगठन समिति गठित हुई जिसमें फारवर्ड ब्लाक, सोशलिस्ट, नेशनल फ्रन्ट (कम्युनिस्ट), रेडिकल डमोक्रेटिक पार्टी, किसान सभा और मजदूर संगठन के लोग शामिल थे। दल ने पूर्ण राजनीतिक स्वतन्त्रता और स्वतन्त्र समाजवादी सरकार की स्थापना अपना ध्येय घोषित किया।

पारस्परिक मतभेद की इस स्थिति में सन् १९३९ में द्वितीय महायुद्ध प्रारम्भ हुआ। वायसराय ने स्वेच्छा से भारत के इस युद्ध में शामिल होने की घोषणा की। कांग्रेस ने वायसराय के इस कदम की भर्त्सना करते हुए घोषित किया कि "हम ब्रिटेन की कोई सहायता नहीं दे सकते क्योंकि इसका अर्थ ब्रिटेन की उस साम्राज्यवादी नीति का समर्थन होगा जिसे मिटाने के लिए कांग्रेस सदैव प्रयत्नशील रही है। सन् १९३९ दिसम्बर माह में इन्हीं कारणों से कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलों ने त्याग-पत्र दे दिया। रामगढ़ कांग्रेस अधिवेशन में भी इसका तीव्र विरोध किया गया। सविनय अवज्ञा आन्दोलन का निश्चय किया गया तथा उसका नेतृत्व एक बार फिर गांधी जी के हाथों सौंपा गया। गांधी जी ने सेनापति की हैसियत से आदेश दिया—"हर

---

१ डॉ० बी० पट्टाभि सीतारामय्या : संक्षिप्त कांग्रेस का इतिहास, पृष्ठ ३१४

कांग्रेस समिति सत्याग्रह समिति बन जाय और कांग्रेसजनों की पहरिस्त बनायें जो सबके प्रति सद्भावना से प्रेरित हो जिन्हें किसी प्रकार की अस्पृश्यता मे विश्वास न हो, जो नियमित रूप से कताई करते हो और जो दूसरे कपडे छोडकर केवल खादी पहनने के आदी हो।" ऐसे व्यक्तियो को 'सक्रिय सत्याग्रही' कहा गया। दूसरे प्रकार के ऐसे सत्याग्रही 'निष्क्रिय सत्याग्रही' कहे गये जिन्हे सत्याग्रह के मूल सिद्धान्तों मे विश्वास था किन्तु वे कताई न करते थे और सत्याग्रह कर जेल जाने को तैयार न थे।

गाधी जी ने स्वभावानुसार वायसराय से समझौता द्वारा हल निकालने का प्रयत्न किया। किन्तु इसका कोई परिणाम न निकला। सरकार ने दमनात्मक रुख अपनाया यद्यपि तब तक सत्याग्रह प्रारम्भ नहीं हुआ था। हजारो व्यक्ति गिरफ्तार कर लिये गये और विवश हो १७ अक्टूबर १९४० को युद्ध विरोधी अन्दोलन का श्रीगणेश विनोबा जी द्वारा किया गया। उनके सम्बन्ध मे बोलते हुए गाधी जी ने कहा 'मेरे बाद विनोबा अहिंसा के सबसे अच्छे व्याख्याकार हैं, वे मूर्तिमान् अहिंसा है, उन्होने एक खास इलाके मे रचनात्मक कार्य करने मे अपने को सलग्न कर रखा है, उनमे मुझसे अधिक एकाग्रचितता है। उनकी युद्ध से घृणा विशुद्ध अहिंसा से उपजी है।"

आन्दोलन से सरकार को झुकना पडा और वायसराय ने अपनी कौंसिल मे सात नरम दलीय सदस्यो को सम्मिलित किया। युद्ध सलाहकार कौंसिल बनाई गई और सत्याग्रहियो को जेल से छोडना प्रारम्भ किया। गाधी जी परिस्थिति को परख रहे थे और उन्होने कहा "अब जब तक कि आतक और अफवाहो को खत्म करने के लिए लोगो की अधिक आवश्यकता है, मैं उन्हे जेल नहीं भेजना चाहता।" उन्होने सत्याग्रहियो से रचनात्मक कार्य मे सलग्न होने का निर्देश दिया।

जापान की विजय और उसकी प्रेरणा से मोहनसिंह के नेतृत्व मे राष्ट्रीय सेना के गठन से देश मे नवीन जागृति आई। अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति को देखते हुए कांग्रेस के नेतृत्व मे भारत का असहयोग ब्रिटिश सरकार के लिए समस्या बन गई थी। इस गत्यवरोध को दूर करने के लिए स्टैफर्ड क्रिप्स एक योजना लेकर मार्च १९४२ मे भारत आये। इस योजना मे कहा गया था कि नये भारतीय यूनियन का ऐसा डोमिनियन स्थापित किया जाय तो ब्रिटिश ताज के प्रति निष्ठा द्वारा ब्रिटेन व दूसरे राष्ट्रमण्डलीय राष्ट्रो से सम्बन्ध रखे लेकिन हर अर्थ मे उनके समान और बराबर हो—आतरिक या परराष्ट्र सम्बन्धी किसी मामले मे किसी के अधीन न हो।

क्रिप्स विभिन्न राजनीतिक दलो के प्रतिनिधियो से मिले, किन्तु उनकी

समझौता-वार्ता असफल रही। इधर जापान की विजय भारतीयों के लिए प्रेरणा का स्रोत बन गई थी और देश उसे सहानुभूतिपूर्ण नेत्रों से देख रहा था। क्रिप्स-योजना की असफलता से जनता में रोष की भावना व्याप्त हो गई। युद्ध के कारण भारत के कष्ट बढ़ रहे थे और समस्या के निराकरण का कोई मार्ग दिखलाई नहीं पड़ता था। गांधी जी के शब्दों में "भारत एक शव के समान है जो मित्र राष्ट्रों के कन्धों पर भारी बोझ की तरह लदा हुआ है। भारत की समस्या का केवल एक हल है कि अंग्रेजी राज का अन्त हो।"

बयालीस के आन्दोलन की भूमिका तैयार हो रही थी। गांधी जी ने इस आन्दोलन के लिए प्रत्येक भारतीय का आह्वान किया। उन्होंने कहा "इसी क्षण से तुममें से हर स्त्री-पुरुष को अपने को स्वाधीन मानना चाहिए और इस तरह काम करना चाहिए मानो तुम आज़ाद हो और साम्राज्यवाद के चंगुल में जकड़े हुए नहीं हो।" उन्होंने जनता को "मरो या करो" का मन्त्र दिया। आन्दोलन प्रारम्भ होने के पूर्व ही बम्बई में ९ अगस्त को गांधी जी तथा कार्य समिति के सदस्यों को गिरफ्तार कर लिया गया और कांग्रेस गैर कानूनी घोषित कर दी गई। नेताओं के बिना आन्दोलन आरम्भ हो गया और देखते ही देखते उसने भयंकर रूप धारण कर लिया। सरकार ने नृशंसता से आन्दोलन का दमन किया। अनुमान के अनुसार पुलिस की गोली, बम और मार से १५,००० से कम व्यक्ति नहीं मरे। आन्दोलन की विकरालता के सम्बन्ध में भारत सरकार की सूचना में कहा गया कि "९४० मारे गये, १६३० घायल हुए, ५३८ बार गोली चलाई गई, ६०,२२९ व्यक्ति गिरफ्तार हुए, ६० बार फौज बुलाई गई। पटना, भागलपुर, नदिया, मुंगेर, तालचेरा और तमलुक में ६ बार हवाई जहाज़ों से बम बरसाये गये। ३१८ रेलवे स्टेशन जलाये गये, १२,००० स्थानों पर टेलीफोन व टेलीग्राफ के तार काटे गये, ९४५ डाकखाने लूटे और जलाये गये, ५९ रेलगाड़ियाँ पटरी से उतारी गईं, रेलवे १८ लाख रुपये के डिब्बों व इंजनों की क्षति हुई, ९ लाख रु० की ट्रकों की क्षति, स्टेशनों के नष्ट होने से ८॥ लाख रु० की क्षति हुई। यद्यपि कांग्रेस की नीति अहिंसा थी पर क्रुद्ध हो जाने पर जनता ने हिंसात्मक नीति को भी अपना लिया था। सोशलिस्टों और वे जिन्हें अहिंसा में विश्वास नहीं था हिंसात्मक कार्यों की प्रेरणा देते थे।

जिस समय बयालीस की क्रान्ति ज़ोर पकड़ रही थी सुभाषचन्द्र बोस ने 'दिल्ली चलो' का नारा बुलन्द किया और आज़ाद हिन्द फ़ौज के साथ स्वदेश को स्वाधीनता दिलाने हेतु बर्मा से आगे बढ़े। यह ठीक ही कहा गया है कि यदि भारत में क्रान्ति का आरम्भ न होता तो सिंगापुर में आई० एन० ए० का मोर्चा न बांधा जाता।

अनायास ही महायुद्ध ने पलटा खाया और सन् १९४४ म जापान तथा आजाद हिन्द फौज को असफलता का मुह देखना पडा। आजाद हिन्द फौज को जगह-जगह आत्मसमपरण करना पडा। इन घटनाओ ने विश्व का ध्यान भारत की ओर आकर्षित किया और अन्तर्राष्ट्रीय दबाव के कारण ब्रिटेन को उदार दृष्टिकोण अपनाने के लिए बाध्य होना पडा। सन् १९४५ म ब्रिटेन मे मजदूर दल की विजय हुई और फलत भारत सम्बधी नीति मे परिवतन आया। आजाद हिन्द फौज के अधिकारियो पर मुकदमा चलाया गया जिससे देश एक बार फिर जाग्रत हो उठा। जनता के विरोध को देखकर अभियुक्तो को मुक्त कर दिया गया। अभी यह घाव ताजा ही था कि फरवरी १९४६ मे नाविक विद्रोह हो गया। बम्बई उसके निकट १२ नौ सैनिक शिविरो व २० नगर डाले २० जहाजो के २० हजार कमचारी इस विद्रोह मे शामिल थे। लीग और काग्रेस ने इसका विरोध किया किन्तु बयालीस की क्रान्ति का विरोध करने वाली कम्युनिस्ट पार्टी ने नाविक विद्रोह का समथन किया।

ऐसी स्थिति मे ब्रिटिश पार्लियामेंट ने भारत की राजनीतिक स्वाधीनता की योजना प्रस्तुत करने हेतु एक मिशन की नियुक्ति की। मार्च १९४६ म पूर्ण स्वाधीनता देने की घोषणा भी कर दी गई। कैबिनेट मिशन ने राजनीतिक दलो के नेताओ से चर्चा की पर अपने मतव्य म असफल रही। अन्तत एक अस्थायी सरकार का गठन किया गया। मुस्लिम लीग ने इसका विरोध किया और पाकिस्तान की माग पर जोर दिया। सारे देश मे साम्प्रदायिक दगे हुए और कलकत्ता, नोआखाली और बिहार के भीषण दगे भारतीय इतिहास के काले पृष्ठ बन गये।

राष्ट्र की इस विषम आन्तरिक स्थिति म प्रधान मत्री एटली ने जून १९४८ तक भारत छोड़ देने का एलान किया। काग्रेस और मुस्लिम लीग दोनो पुन सक्रिय हुए। ३ जून १९४७ को देश विभाजन की घोषणा हुई और अनचाहे रूप मे काग्रेस को इसे स्वीकार करना पडा। यह एक दुखद घटना थी और स्वय गाधी जी ने इसे ३२ वर्षो के सत्याग्रह सग्राम का लज्जाजनक परिणाम बताया। देश विभाजन के साथ देश स्वाधीन हुआ और काग्रेस दल सत्तारूढ हुआ।

आतकवादी आन्दोलन

स्वाधीनता आन्दोलन म आतकवादियो की हिंसात्मक प्रणाली का भी एक विशिष्ट योग रहा है। सन् १८५७ के विद्रोह की असफलता ने हिंसात्मक कायप्रणाली की अग्नि पर पानी डाल दिया था, किन्तु उसकी चिनगारी भीतर ही भीतर सुलगती रही। आतकवादी आन्दोलन इसके नवीन रूप म सामने आया। वस्तुत आतकवाद

उग्र राष्ट्रवाद की एक अवस्था थी जो कांग्रेस के तिलक पक्षीय राजनीतिक उग्रतावाद से भिन्न थी। आतंकवादी कांग्रेस की अपीलों और प्रेरणाओं के शान्तिपूर्ण संघर्षों पर विश्वास न करते थे। उनका विश्वास था कि पशुबल से स्थापित किये गये साम्राज्यवाद को हिंसा के द्वारा ही परास्त किया जा सकता है।

सन् १८९९ में चाफेकर बन्धुओं ने रैण्ड और रिहर्स्ट की हत्या कर भारतीय राजनीति में आतंकवादी कार्य का सूत्रपात किया और बंग-भंग ने विप्लवकारियों के संगठन को प्रेरणा दी। सन् १९०४ में इसके विरुद्ध जापान की विजय ने शस्त्रवाद के प्रति भारतीयों को प्रेरणा दी। 'शस्त्र-शक्ति का संगठन कर हिंसात्मक उपायों से भारत को विदेशी शासन से मुक्त किया जा सकता है, यह विचार पुनः जोर पकड़ने लगा। रैण्ड और रिहर्स्ट हत्याकाण्ड में श्यामजी कृष्ण वर्मा का सक्रिय सहयोग कहा जाता है। ये स्वामी दयानन्द सरस्वती के शिष्य थे जिन्होंने यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया था कि 'सुशासन कभी स्वशासन का स्थान नहीं ले सकता' और 'कोई कितना ही करे, परन्तु जो स्वदेशी राज्य होता है, वह सर्वोपरि उत्तम होता है।' स्वामी दयानन्द से प्रेरणा पा श्याम वर्मा ने देश को स्वतन्त्र कराने के लिए विदेश जाकर सामरिक ज्ञान प्राप्त कर एक ऐसे संगठन बनाने का प्रयास किया जो शस्त्रशक्ति पर आधारित हो। श्याम जी कृष्ण वर्मा लन्दन गये और उन्होंने वहाँ इंडियन होमरूल सोसायटी को जन्म दिया।

इस प्रकार लन्दन पहुँचे छात्रों में विनायक दामोदर सावरकर भी थे जो बाद में श्याम जी कृष्ण वर्मा के लन्दन से भाग निकलने पर इंडिया हाउस में क्रान्तिकारी दल के नेता हुए।

महाराष्ट्र के अतिरिक्त विप्लववादियों का एक केन्द्र बंगाल में भी स्थापित हुआ। अरविन्द घोष के भाई वारेन्द्र घोष व स्वामी विवेकानन्द के भाई भूपेन्द्र नाथ दत्त ने बंगाल में क्रान्तिकारी विचारों का प्रचार किया। क्रान्तिकारियों के लिए जो कार्यक्रम बनाया गया उसमें जिन बातों पर जोर दिया गया वे थीं—

(१) भारत के शिक्षित लोगों में दासता के विरुद्ध घृणा पैदा करने के लिए अखबारों में प्रबल प्रचार किया जावे।

(२) बेकारी और भुखमरी का भय भारतीयों के मन से निकाला जाये और मातृभूमि के प्रति प्रेम पैदा किया जावे।

---

१ सत्यकेतु विद्यालंकार: भारत का राष्ट्रीय आन्दोलन और नया इतिहास, पृष्ठ ६०

(३) सरकार को बन्देमातरम् के जुलूसों और स्वदेशी सम्मेलनों मे लगाया जाए।
(४) युवकों को शस्त्र चलाना सिखाया जाये और अनुशासनबद्ध किया जाये।
(५) हथियार बनाये जावें, विदेशों से खरीदे जायें, और चोरी से देश मे लाये जायें।
(६) आतंकवादी आन्दोलन के लिए छापे और डकैतियां मारकर धन हासिल किया जाए।

क्रान्तिकारी हिंसात्मक प्रणाली पर विश्वास करते थे। बंगाल मे इनकी गतिविधियां अत्यन्त सक्रिय रहीं और प्राय लोग क्रान्तिकारी आन्दोलन को विशेषकर बंगाल का ही आन्दोलन मानते हैं और वहां इसकी सफलता का श्रेय वहाँ की हृदयगत परिस्थितियो को देते हैं।[1]

ये क्रान्तिकारी समितियां गुप्त रूप से कठोर अनुशासनबद्ध होकर कार्य करती थी। इनमे बंगाल की अनुशीलन सर्वाधिक कट्टर थी और प्रत्येक सदस्य को अनेक प्रतिज्ञाएं लेनी पड़ती थी।

प्राथमिक प्रतिज्ञा मे समिति से कभी पृथक न होने, समिति के नियमो तथा नेताओ के आदेशो का पूर्णत पालन करने व नेता के सम्मुख सत्य भाषण करने की प्रतिज्ञा लेनी पड़ती थी।

क्रान्तिकारियों को यह प्रतिज्ञा लेनी पड़ती थी—"ओम् बन्देमातरम्"—ईश्वर, पिता, माता, गुरु, नेता तथा सर्वशक्तिमान के नाम यह प्रतिज्ञा करता हूं कि (१) मैं इस समिति से तब तक अलग न होऊगा जब तक कि इसका उद्देश्य पूर्ण न हो जाए। मैं पिता, माता, भाई, बहिन, घर गृहस्थी किसी के बन्धन से नहीं बंधूंगा और न कोई भी बहाना न बनाकर दल का काम परिचालक की आज्ञा के अनुसार करूंगा। मैं वाचालता तथा जल्दबाजी छोड दल के हरेक काम को ध्यान से करूँगा।

ओउम् बन्देमातरम्—

१—ईश्वर, अग्नि, माता, गुरु तथा नेता को गवाह मानकर मैं प्रतिज्ञा करता हू कि मैं दल की उन्नति के हरेक काम को करूँगा, इसके लिए यदि जरूरत हुई तो प्राण तथा जो कुछ मेरे पास है सबको बलिदान कर दूँगा। मैं सभी आज्ञाओं को मानूंगा तथा उन सभी के विरुद्ध काम करूंगा, जो हमारे दल के विरुद्ध हैं और उनको जहाँ तक हो नुकसान पहुचाऊगा।

---

१ मन्मथनाथ गुप्त : भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन का इतिहास, पृष्ठ ३८

२—मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि दल की भीतरी बातो को लेकर किसी से तर्क नहीं करूंगा और जो दल के सदस्य हैं उनसे भी बिना जरूरत नाम या परिचय न पूछूंगा[1]।

क्रातिकारियो के सिद्धान्त क्या थे, उसका ज्ञान २ सितम्बर १९०९ को १५ जोराबागान स्ट्रीट कलकत्ता की तलाशी मे प्राप्त उस "सामान्य सिद्धान्त" पर्चे से होता है जिसका उल्लेख सिडीशन रिपोर्ट मे इस तरह उद्धृत किया गया है—

(क) देश की क्रातिकारी शक्तियो का ठोस सगठन तथा दल की शक्तियो का ऐसी जगह विशेष जोर देना, जहाँ उसकी सबसे बडी जरूरत है।

(ख) दल के विभागो का बहुत बारीकी से विभाजन यानी एक विभाग मे काम करने वाला आदमी दूसरे को न जाने, किसी भी हालत मे एक आदमी दो विभागो का नियन्त्रण न करे।

(ग) खास करके सैनिक तथा आतकवादी विभागो के लोगो मे कडा से कडा अनुशासन हो यहाँ तक कि बहुत त्यागी सदस्य भी इससे बरी न हो।

(घ) बातें बहुत ही गुप्त रखी जाए, जिसको जिस बात को जानने की जरूरत नहीं, वह उसे न जाने, किसी विषय मे बातचीत दो सदस्यो मे उतनी ही हद तक हो जितनी की सख्त जरूरत हो।

(ङ) इशारो का तथा गुप्त लिपि का प्रयोग हो।

(च) दल एकदम से सब काम मे हाथ न डाल दें अर्थात् धीरे-धीरे दृढता के साथ आगे बढता जाए। (१) पहले तो पढे-लिखे लोगो मे एक केन्द्र की सृष्टि की जाय, (२ फिर जनता मे प्रचार भावनाओ की जागृति की जाय, (३) फिर सैनिक तथा आतकवाद विभाग का सगठन किया जाय, (४) फिर एक साथ आन्दोलन करें, (५) फिर विद्रोह हो जो क्रान्ति का रूप ले ले।

दल के उद्देश्य की पूर्ति के लिए धन आवश्यक था तथा उसकी पूर्ति के लिए डकैतियाँ तथा गुप्त हत्याए करने का प्रावधान था। डकैतियो के सबध मे कहा गया था कि यह धनियो से टैक्स वसूल करना है। बाद मे इसे जबर्दस्ती चन्दा वसूल करना बताया गया। क्रातिकारी दल विशेषत राष्ट्रभक्त युवको को अपने आन्दोलन का प्रमुख अग बनाना चाहता था। यह तथ्य बगाल के नवयुवको के नाम प्रसारित अपील से स्पष्ट है जिसमें कहा गया -

'क्या शक्ति के उपासक बगाली रक्तपात से हिचकिचायेंगे ? इस देश मे अग्रेजो की सख्या डेढ़ लाख से अधिक नही है, और हर जिले मे कितने थोडे अफसर हैं। यदि आपका इरादा पक्का हो तो एक ही दिन मे ब्रिटिश हुकूमत खत्म कर सकते हैं। अपना

---

१ मन्मथनाथ गुप्त . भारतीय क्रांतिकारी आन्दोलन का इतिहास, २०२-३

जीवन दे दो और उससे पहले एक जीवन खत्म कर दो। यदि आप बिना खून किये स्वतंत्रता की वेदी पर अपना बलिदान कर देंगे तो देवी की पूजा पूरी न होगी।'

बंगाल में क्रान्तिकारियों का प्रभाव अनेक वर्षों तक रहा और राजनीतिक हत्या व डकैतियों का क्रम अबाध गति से चला। बंगाल में विप्लववादियों के कार्यों में सन् १९०७ में बंगाल के गवर्नर की गाड़ी को उड़ा देने के षड्यन्त्र, मुजफ्फर हत्याकाण्ड (१९०८), अलीपुर षड्यन्त्र (१९०९), वर्हा डकैती (१९०८) अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यों पूरे प्रान्त में समय-समय पर क्रान्तिकारी षड्यन्त्र चलते ही रहे और उसकी व्यापकता का अन्दाज इसी से लगाया जा सकता है कि 'समूचे बंगाल षड्यन्त्र केस में १,३०८ मनुष्य थे। २१० विप्लव हुए। हत्याओं के लिए की गई १०१ चेष्टाएँ असफल हुईं। ३९ मामले चले, जिसमें ८४ आदमियों की साधारण और ६३ आदमियों को कड़ी सजाएँ मिलीं। ८२ आदमियों की जमानतें और मुचलके हुए। हथियारबन्दी कानून के अभियोग में ५९ मामले चले जिसमें ५८ आदमियों को सजाएँ दी गई[1]। बंगाल में आतंकवादियों ने पुलिस अधिकारियों, मजिस्ट्रेटों, सरकारी वकीलों, सरकारी गवाहों किसी को भी नहीं छोड़ा[2]। उनका संगठन दिनों दिन बढ़ रहा था। सिडीशन कमेटी की रिपोर्ट में कहा गया है कि ढाकावाली समिति इन संस्थाओं में सबसे तगड़ी थी। यदि और पार्टियाँ न होतीं, केवल यही समिति होती, तो भी इसका अस्तित्व सरकार के लिए बहुत बड़ा खतरा होता। १९१० से ही यह समिति फैलने लगी। बाद के सालों में यह सारे बंगाल में फैल गई और दूसरे प्रान्तों में भी इसकी शाखाएँ फैल गईं। बंगाल के बाहर इसके सदस्य असम, बिहार, पंजाब, संयुक्त प्रदेश, मध्यप्रदेश तथा पूना में काम कर रहे थे[3]। सारा बंगाल क्रान्तिकारी गतिविधियों से वर्षों तक आन्दोलित रहा और मन्मथनाथ गुप्त के शब्दों में 'मानना पड़ेगा कि जाति की मुरझाई हुई मनोवृत्ति पर शहीदों के खून की यह वर्षा काफी उत्तेजक साबित हुई। बंगाली जाति करीब-करीब एक बे-रीढ़ की जाति थी। इन लोहे की रीढ़ वालों ने उसे एक रीढ़दार जाति बना दिया[4]।

पंजाब में भी क्रान्तिकारियों की गतिविधियां अत्यन्त सक्रिय रहीं। विप्लव

---

१. शंकरलाल तिवारी बेढब ' भारत सन् ५७ के बाद, पृष्ठ ३२

२. उदाहरणार्थ—अलीपुर षड्यन्त्र में डी० एस० पी०, सरकारी वकील और मुखबिर नरेन गोसाईं की हत्या, सन् १९१६ में डिप्टी सुपरिन्टेन्डेन्ट बसन्त चटर्जी तथा सी० आई० डी० के मधुसूदन भट्टाचार्य की हत्या।

३. मन्मथनाथ गुप्त : भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन का इतिहास, पृष्ठ ६५

४ मन्मथनाथ गुप्त : भारतीय क्रांतिकारी आन्दोलन का इतिहास, पृष्ठ ५१

वादियो के बढते हुए प्रभाव को देखकर पंजाब के गवर्नर सर डेनजिल इवटसन ने १९०७ मे एक रिपोर्ट मे लिखा था "पूर्व तथा पश्चिम पंजाब मे ये विचार पढे-लिखे लोगो मे, विशेषकर वकील, मुन्शी और छात्रो मे फैले हैं, किन्तु मध्य पंजाब मे तो ये विचार हर श्रेणी मे फैले मालूम देते है, लोगो मे बडी बेचैनी तथा असन्तोष है। लाहौर से आन्दोलनकारी आ-आकर अमृतसर और फिरोजपुर में राजद्रोह का प्रचार करते रहे है, फिरोजपुर मे इनको काफी सफलता मिली, जिससे अमृतसर मे ये इतने सफल न रह सके। ये रावलपिंडी, स्यालकोट तथा लायलपुर मे अंग्रेजो के विरुद्ध बडे जोर-शोर से प्रचार-कार्य कर रहे हैं। लाहौर मे तो इस प्रचार-कार्य का कुछ कहना ही नहीं, इसमे सारे शहर मे एक गहरी बेचैनी फैली है[1]। सन् १९१२ को दिल्ली मे वायसराय पर बम फेंका गया जिसमें उनका क अंगरक्षक मारा गया और वे घायल हुए। १७ मई १९१३ को लाहौर के लारेन्स बाग मे भी इन्हीं लोगो द्वारा रखे गये बम का विस्फोट हुआ था। वायसराय बमकाण्ड मे लाला अमीरचन्द, अवधविहारी व बालमुकुन्द को फासी की सजा हुई। अमीरचन्द का लिखा हुआ एक परचा मिला था जिसमे लिखा था. "भारत सवैधानिक सुधारो मे कुछ भी हासिल नहीं कर सकता। एकमात्र तरीका जिससे हम स्वतन्त्रता प्राप्त कर सकते हैं, वह है क्रान्ति का तरीका। इतिहास यह बताता है कि उत्पीड़िको ने किसी भी देश को अपनी खुशी से कभी आजादी नही दी और वे हमेशा तलवार से ही मुक्त किये गये[2]।' अवधविहारी से फांसी के दिन जब उनसे अंतिम इच्छा पूछी गई तो उन्होंने कहा—"मैं तो चाहता हूँ ऐसी प्रचण्ड क्रांति की आग सुलगे जिससे यह सारी ब्रिटिश सत्ता ही नष्ट हो जाए[3]।"

असहयोग आन्दोलन की असफलता के कारण आतकवादी गतिविधियाँ अत्यधिक सक्रिय हो उठीं। बगाल के अतिरिक्त उत्तर भारत मे भी क्रांतिकारियो ने अपना सगठन बनाया। इन्हीं दिनो क्रान्तिकारी शचीन्द्रनाथ सान्याल ने उत्तर भारत मे एक दल स्थापित किया था। दोनो के ध्येय और उपाय समान थे अत. दोनो को संयुक्त करने के याग किये गये और हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोशियेशन की स्थापना हुई। इसका विधान भी बनाया गया जिसके अनुसार इसका उद्देश्य सशस्त्र तथा सगठित क्रांति द्वारा भारत के सम्मिलित राज्यो का प्रजातन्त्र संघ की स्थापना निश्चित किया गया।

---

१ मन्मथनाथ गुप्त : भारतीय क्रांतिकारी आन्दोलन का इतिहास, पृष्ठ ६७
२ मन्मथनाथ गुप्त : भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन का इतिहास, पृष्ठ ७४
३ मन्मथनाथ गुप्त भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन का इतिहास, पृष्ठ ७५

प्राक असहयोग युग म क्रान्तिकारी आन्दोलन का क्षेत्र मध्यवित्त श्रेणी तक सीमित था। इस अवधि म अनेक हत्याएँ हुई, डाके डाले गय और बहुत लोगो को फासी व काले पानी की सजा हुई बहुत से षडयन्त्र हुए जिनका विस्तार अमरीका, यूरोप तथा एशिया म था। क्रान्तिकारियो का सम्पर्क जनता स न था। वे थोडे से ही लोगो तक सीमित थे। इतना होने पर भी राजनीतिक क्षत्र को उनने दूर तक प्रभावित किया और कहा गया है कि सन् २१ तक जितने भी सुधार ब्रिटिश सरकार की ओर से किये गये उनम क्रान्तिकारियों के कार्यों का प्रभाव है।

सन् १९१७ तक क्रातिकारी आन्दोलन बहुत कुछ शान्त हो गया था। गाधी जी के नेतृत्व म एक नये आन्दोलन ने करवट ली। असहयोग असफल होने पर क्रान्तिकारी सगठित हुए और हिंसात्मक गतिविधिया पुन सक्रिय हुई। आतकवादियो की कुछ महत्वपूर्ण घटनाएँ ये हैं—शखारी टोला डकैती (१९२३) चटगाव डकैती (दिसम्बर १९२३) टेगट हत्या का असफल प्रयत्न—ब्रूस हत्या प्रयत्न (१९२४) काकोरी षडयन्त्र (१९२५) बब्बर अकाली आन्दोलन (१९२३) बोमेनी युद्ध (१९२३) देवघर षडयन्त्र, मनमाड बम मामला दक्षिणेश्वर बम मामला सैंडर्स हत्या काण्ड असम्बली बमकाड (१९२९) लाहौर षडयन्त्र (१९२८) वायसराय की गाडी पर बम (२३ दिसम्बर १९२९) मुसावल बमकाण्ड, गाडोदिया स्टोर डकैती (१९३०) अल्फ्रेड पार्क घटना (१९३१) चटगाँव शस्त्रागार काण्ड (१९३०) भासी बमकाण्ड (१९३०) पजाब के लाट पर हमला (१९३०) लौमिगटन रोड काड (१९३१) असनुल्ला हत्याकाण्ड (१९३०) लोमैन हत्याकाण्ड (१९३०) मैमनपुर काण्ड (१९३०) सिमसन हत्याकाण्ड (१९३०)।

बगाल सरकार की रिपोट के अनुसार १९३० म १० सफल हत्याए हुई व ५१ क्रान्तिकारियो को फासी हुई। मुख्यत बगाल म ही क्रातिकारी काय हुए। बिहार मे पटना षडयन्त्र (१९३१) मोतीहारी षडयन्त्र (१९३१) बम्बई म हडसन हत्या प्रयत्न (१९३१) व हैंक्वस्ट हत्याकाड (१९३१) भी उल्लेखनीय हैं।

उत्तर प्रदेश मे क्रान्तिकारी आजाद के शहीद होने तथा बगाल म लेवाग हत्या काण्ड के साथ इस धारा का प्राय अन्त हो गया। छिटपुट आतकवादी गिरोह कायम रहे और कुछ घटनाएँ होती रहीं पर आतकवाद का युग समाप्त हो गया। वस्तुत आतक वादी कार्यक्रम कभी सुव्यवस्थित या शृखलाबद्ध न रहा। तत्कालीन राजनीतिक परि स्थितियो के अनुसार ही वे उद्देश्य प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील रह और सम्भवत इसीलिए सन् १९०५ सन् १९२० तथा सन् १९३० के निकट वर्षों म काग्रेस आन्दोलनो के समय इनकी गतिविधिया तीव्रतम रहीं। उनके कार्यक्रमों से निकट का कोई सम्बन्ध न होने पर भी जनता उनके कार्यों से प्रभावित होती थी और उनके प्रति वीरपूजा का भाव

रखती थी। दूसरे शब्दों में जनता उनकी अनुयायी नहीं थी किन्तु श्रद्धा अवश्य करती थी।

गांधीयुग में ही आतंकवादियों का प्रभाव क्षीण हो गया क्योंकि गांधी जी सत्य और अहिंसा के सबल प्रवर्तक के रूप में राष्ट्र के प्रतीक बन गये थे। वे आतंकवादियों के हिंसात्मक कार्यों की खुले रूप में आलोचना करते थे। क्रांतिकारी सुखदेव के पत्र का उत्तर देते हुए उन्होंने 'यंग इण्डिया' में लिखा था—

(१) क्रान्तिकारी कार्यवाइयों से हम ध्येय के निकट नहीं पहुँचे।
(२) इसके कारण देश का सैनिक व्यय बढ़ गया है।
(३) इनके कारण सरकार का दमनचक्र बढ़ गया है जिससे देश का कोई लाभ नहीं हुआ।
(४) जब-जब क्रांतिकारियों द्वारा किसी की हत्या हुई, तब-तब उस स्थान के लोगों पर उसका बुरा प्रभाव पड़ा।
(५) क्रान्तिकारियों द्वारा जन-समुदाय की जाग्रति में कोई सहायता नहीं पहुँची।
(६) जन-समुदाय पर इनके कामों का असर बुरा पड़ा है।
(७) भारत की भूमि तथा उसकी परम्परा क्रान्तिकारी हत्याओं के उपयुक्त नहीं है। इस देश के इतिहास से जो सहायता मिलती है, उससे मालूम होता है कि राजनीतिक हिंसा यहाँ उन्नति नहीं कर सकती।
(८) यदि क्रान्तिकारी, जन-समुदाय को अपने मत में परिवर्तन कर लेने का विचार करते हैं, तो उस हालत में हमें स्वाधीनता प्राप्त करने के लिए बहुत ज्यादा तथा अनिश्चित समय तक प्रतीक्षा करनी पड़ेगी।
(९) यदि जन-साधारण हिंसात्मक काम को समर्थक हो भी जाय तो उसका परिणाम अन्त में अच्छा नहीं हो सकता। यह उपाय, जैसा कि दूसरे देश में हुआ है, स्वयं इस उपाय के संचालकों को ही नष्ट कर देता है।
(१०) क्रांतिकारियों के सामने उनके विपरीत उपाय अहिंसा की सार्थकता का भी प्रत्यक्ष प्रदर्शन हो चुका है। उन्होंने देखा कि अहिंसात्मक आन्दोलन, क्रान्तिकारियों की स्फुट हिंसा तथा कुछ कुछ अहिंसात्मक आन्दोलन वालों की हिंसा के होते हुए भी कैसे बराबर अपनी गति पर चलता रहा।
(११) क्रांतिकारी भी इस बात को मान लें कि उनके आन्दोलन ने अहिंसात्मक आन्दोलन को कोई लाभ नहीं पहुँचाया, बल्कि हानि ही पहुँचाई है। यदि देश का वातावरण पूर्ण रीति से शान्त रहता तो हम अपने लक्ष्य को अब से पहिले ही प्राप्त कर चुके होते।

इसम सन्देह नही कि गाधी जी के अहिंसात्मक दृष्टिकोण से आतकवादी आन्दोलन वाछित सफलता प्राप्त कर सका, किन्तु यह भी सत्य है कि आतकवादी प्रवृत्ति ने राष्ट्रीय आन्दोलन को बढाने का उत्प्रेरक का कार्य किया और इस रूप म कांग्रेस का पूरक बना।

बीसवी सदी के प्रारम्भिक वर्षों मे राष्ट्रीय आन्दोलन त्रिमुखी था—(१) क्रान्तिकारी आन्दोलन, जो आतकवाद के उपायो मे विश्वास करता था, (२) उग्र राष्ट्रीय आन्दोलन, जो कांग्रेस की नरम नीति को अपर्याप्त समझकर अधिक उग्र नीति का समर्थक था, (३) कांग्रेस का आन्दोलन जो नरम नीति पर चलना चाहता था।

ये तीनो धाराए गगा के उस पवित्र सगम के सदृश थीं, जहा गगा, यमुना और सरस्वती मिलकर एकाकार होकर भी अपना-अपना अस्तित्व बनाये रखती हैं।

साम्प्रदायिकतावादी राजनीतिक संस्थाएं

मुस्लिम लीग

भारतीय राजनीति का अध्ययन करते समय यह तथ्य स्पष्ट रूप से सम्मुख आता है कि राजनीतिक दल अपने प्रारम्भिक रूप म धार्मिक स्वरूप म अवगुठित हैं। कांग्रेस प्रथम और प्रमुख राजनीतिक सस्था है। इसके पूर्व जो सामाजिक आन्दोलन हुए उसमे अधिकाश का नेतृत्व हिन्दू सुधारको ने किया और यही कारण है कि धम के रूप म नये युग की नयी वाणी ध्वनित हुई। वस्तुत यह हिन्दुत्व का पुनर्जागरण था। स्वामी विवेकानन्द ने १८९३ मे शिकागो मे सर्वधम-सम्मेलन मे हिन्दू धर्म की महत्ता पर भाषण दिया था। वे राष्ट्र की स्वाधीनता और आध्यात्मिक कार्य दोनो को राष्ट्रीयता के परिप्रेक्ष म देखते थे। अरविन्द का कथन है कि स्वाधीनता जीवन का लक्ष्य है और हिन्दुत्व ही हमारी यह आकांक्षा पूरी कर स कता है। किसी ने कहा तुम्हारा धर्म और सस्कृति औरो के बराबर है, किसी ने कहा, तुम्हारा धर्म और सस्कृति सबसे ऊची है। यह सब तो हुआ, पर साथ ही ये लोग हिन्दू थे, इनकी भाषा हिन्दी थी, इनके व्याख्यानो म ऐसे दृष्टान्त तथा ऐसे युगो का उल्लेख रहता था जिसे हिन्दू ही समझ सकते थे। नतीजा यह हुआ कि इनकी वाणियो से पुष्ट होकर जो राष्ट्रीयता बनी, उसका रूप बहुत कुछ हिन्दू हो गया[1]।

कांग्रेस पर भी प्रारम्भ मे इसका कुछ प्रभाव दिखाई देता है। तिलक हिन्दू पुनर्जागरण के परिमाण थे और कोई आश्चर्य नहीं कि उन्होने भारत की स्वाधीनता के

१ मन्मथनाथ गुप्त भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन का इतिहास पृष्ठ ८

लिए हिन्दू उत्सवों और हिन्दू संगठन पर बड़ा बल दिया। थियोसोफिकल सोसायटी ने भी इस दिशा में कार्य किया और शिरोल के कथनानुसार 'थियोसोफिस्ट विचारधारा ने हिन्दू पुनर्जागरण को नई प्रेरणा दी और किसी हिन्दू ने इस आन्दोलन में इतना काम नहीं किया जितना श्रीमती बेसेंट ने।'

साम्प्रदायिकता का यह रूप आगे चलकर उलट तथा विकृत हो गया। एक ओर जहां हिन्दू अपनी नवजाग्रत चेतना अपने प्राचीन गौरवमय इतिहास से पुष्ट कर रहे थे वहां अंग्रेज भारत में मुस्लिम शासकों के उत्तराधिकारी बन कर उनकी उपेक्षा करते थे। 'मुस्लिम भारत' के लेखक मुहम्मद नारमन के कथनानुसार 'ब्रिटिश लोगों ने निश्चय कर लिया था कि नई शक्ति के विस्तार तथा जारी रखने के लिए एकमात्र उपाय यही है कि मुसलमानों को दबाया जाये तथा उन्होंने जान-बूझ कर ऐसी नीतियां, अपनायीं, जिनका उद्देश्य मुसलमानों का आर्थिक नाश करना था तथा उनकी बौद्धिक रोकथाम तथा सामान्य पतन के लिए कार्य करना था।'

सन् १८५७ के पूर्व वहाबी आन्दोलन में मुसलमानों ने भाग लिया था और जिसे ब्रिटिश सरकार ने कठोरतापूर्वक दबा दिया था। सन् १८५७ के विद्रोह के मुख्य नेता भी मुसलमान थे। यही कारण है कि सन् १८५७ के बाद अंग्रेजों ने मुसलमानों को दबाने की नीति का अवलम्बन किया।

भारत के नवजागरण काल में धार्मिक आन्दोलनों के कारण हिन्दू और मुसलमान एक दूसरे के समीप न आ सके। अंग्रेजों ने इसका लाभ उठाते हुए स्थिति के अनुकूल 'फूट डालो और राज्य करो' की नीति को प्रश्रय देकर साम्प्रदायिक भावना का विस्तार किया।

मुस्लिम आंग्ल प्राच्य कालेज अलीगढ़ के प्रिंसिपल मि० बैक के प्रयत्नों से मुसलमानों के नेता सर सैय्यद अहमद खां ने कांग्रेस तथा हिन्दुओं पर आक्रमण करना आरम्भ कर दिया। उनकी नीति का आधार हिन्दुओं के द्वारा मुसलमानों पर शैक्षणिक, आर्थिक तथा राजनीतिक रूप से स्थायी महत्व का भय था। बैक ने ही अंग्रेज़ला बिन के विरुद्ध मुसलमानों के विरोध को संगठित कर मुसलमानों को कांग्रेस में सम्मिलित होने से रोका। बैक ने लिखा है—"कांग्रेस का उद्देश्य देश के राजनीतिक नियन्त्रण को अंग्रेजों से हिन्दुओं को हस्तान्तरित करना है। मुसलमानों की इन मांगों के साथ किसी प्रकार की सहानुभूति नहीं हो सकती।" उसी का कथन है कि "भारत में संसदीय प्रणाली बहुत अनुपयुक्त है और यदि उत्तरदायी संस्थाएं यहां बनाई गई तो यह परीक्षण असफल ही होगा। मुसलमानों को हिन्दू बहुमत के अधीन रहना होगा जिसे मुसलमान बहुत नापसन्द करेगा और मुझे निश्चय है कि वह आसानी से इसे स्वीकार नहीं करेगा।"

सन् १९०५ मे बग भग हुआ। जी० एन० सिह के अनुसार इसका उद्देश्य हिन्दुओ और मुसलमानो को अलग कर एक ऐसा मुस्लिम प्रान्त बनाना था जहा धार्मिक मतभेदो के आधार पर शासन हो। फलत सन् १९०६ मे भारत सरकार ने जब वैधानिक क्षेत्र मे भारत को अधिक रियायतें देने का निश्चय किया तो मुसलमानो की ओर से सर आगा खान ने मुसलमानो के लिए अलग निर्वाचन-क्षेत्रो की माँग की।

लार्ड मिण्टो ने उस दिन को जिस दिन मुसलमानो का प्रतिनिधि मण्डल उनसे मिला, भारतीय इतिहास म एक महत्त्व का दिन बताया है। यह स्पष्ट है कि लार्ड मिन्टो ही साम्प्रदायिक चुनावा का वास्तविक पिता था यद्यपि ब्रिटिश अधिकारियो ने भी अपना भाग लिया[1]।

इन परिस्थितियो मे सन् १९०६ म भारतीय मुस्लिम लीग की स्थापना हुई। इसका उद्देश्य था "सरकार से प्राप्त होने वाली सब प्रकार की व्यवस्था का यथा सम्भव समर्थन किया जाए तथा सम्पूर्ण देश म अपने सह धर्मियो के हितो की रक्षा तथा वृद्धि के लिये प्रयत्न किया जाए और तथाकथित राष्ट्रीय महासभा के बढते हुए प्रभाव को रोका जाए, जिसकी चेष्टा यह रही है कि भारत म अग्रेजी शासन का भारत म मिथ्या प्रतिनिधित्व किया जाये अथवा जिससे वैसी दयनीय स्थिति उपस्थित हो जाये तथा पढे लिखे युवको के लिए जो ऐसी सस्था के अभाव मे काग्रेस दल मे सम्मिलित हो गये है, सावजनिक जीवन के लिये उनकी योग्यता तथा उपयोग के अनुसार अवसर ढूँढा जाय।"

सन् १९११ म बग भग कानून के रद्द कर देने पर मुसलमानो को अपने अग्रेज मित्रा के ऊपर अविश्वास हुआ तथा १९१२ १३ म बालकन युद्धो के कारण यूरोप मे टर्की की शक्ति क्षीण हुई और उसे मुसलमानो ने धर्मयुद्ध सा समझा। भारतीय मुसलमानो ने इन घटनाओ पर तीव्र रोष प्रकट किया। सन् १९१३ म मुस्लिम लीग के विधान म परिवर्तन हुए और सर आगा खान के अध्यक्ष पद से त्याग पत्र देने से लीग का नेतृत्व एम० ए० जिन्ना के हाथो आ गया। लीग ने भी भारतवासियो को स्व शासन देने की माग की और इस तरह काग्रेस के वह निकट आई। डॉ० पट्टाभि सीता रामय्या ने लिखा है कि 'सन् १९१३ की कराची-काग्रेस म हिन्दू और मुसलमानो ने अपने भेदभाव मिटा दिये और मुस्लिम लीग के इस विचार को, कि ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत भारतवासियो को स्वशासन दिया जाय, पसन्द किया और हिन्दू मुसलमानो के बीच मेल एव सहयोग का भाव बढाने वाले मुस्लिम लीग के कथन

१ भारत का सवैधानिक इतिहास, पृष्ठ ३१६

को पसन्द किया[1]।" इसी सद्भावना के साथ लीग तथा कांग्रेस के अधिवेशन कई वर्षों तक एक ही स्थान पर होते रहे। सन् १९१६ में कांग्रेस तथा लीग दोनों के वार्षिक अधिवेशन लखनऊ में हुए और लखनऊ पैक्ट बना। दोनों संस्थाओं ने एक संयुक्त योजना तैयार की जिसे कांग्रेस लीग योजना के नाम से पुकारा जाता है। मुस्लिम लीग ने कांग्रेस की स्वशासन की मांग मानी और कांग्रेस ने लीग की पृथक् साम्प्रदायिक चुनाव-क्षेत्रों की माग स्वीकार की। तत्कालीन परिस्थितियों में लिया गया यह निर्णय एक राजनीतिक भूल सिद्ध हुआ और अन्ततः इसके कारण ही भारत-विभाजन हुआ। ब्रिटिश पार्लियामेन्ट ने इस पैक्ट को हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच हुए एक समझौते की संज्ञा दी और सन् १९२६ और १९३५ के शासन विधानों में पृथक निर्वाचन की व्यवस्था की।

किन्तु साम्प्रदायिक आधार पर हुई यह मैत्री स्थायी न रह सकी। असहयोग आन्दोलन के समय मलाबार में मोपला विद्रोह के समय मुसलमानों द्वारा हिन्दुओं को बलात् मुसलमान बनाने के कारण साम्प्रदायिक वैमनस्यता बढ़ी। हिन्दुओं ने आत्मरक्षा के लिए संगठन का आन्दोलन किया और स्वामी श्रद्धानन्द ने हजारों मल्कानों की शुद्धि की। मुसलमानों ने इसका विरोध किया। इन दंगों से क्षुब्ध हो गाँधी जी ने २१ दिन के उपवास का व्रत लिया। इसी अवसर पर एकता परिषद् का सम्मेलन हुआ और सदस्यों ने प्रतिज्ञा की कि वे धर्म और मत की स्वतन्त्रता के सिद्धान्त का पालन कराने का अधिक से अधिक प्रयत्न करेंगे और उत्तेजन मिलने पर भी इनके विरुद्ध किये गये आचरण की निन्दा करने में कोई कसर न रखेंगे।

किन्तु इसका कोई प्रभाव न पड़ा और सन् १९२५ व २६ में पुनः अनेक साम्प्रदायिक दंगे हुए। सन् १९२६ में कलकत्ता छः सप्ताह तक हत्याकांड और अव्यवस्था का अखाड़ा बना रहा।

गांधी जी इन दंगों से अत्यन्त निराश हो गये थे। उन्होंने कलकत्ता के मिर्जापुर पार्क में जो भाषण दिया उसमें उन्होंने कहा—"मैंने अपनी अयोग्यता स्वीकार कर ली है। मैंने स्वीकार कर लिया है कि इस रोग की औषधि बताने वाले वैद्य की विशेषता मुझमें नहीं है। मैं तो नहीं देखता कि हिन्दू अथवा मुसलमान मेरी औषधि को स्वीकार करने के लिए तैयार हैं। यदि हमारे भाग्य में यही बदा है कि एक होने से पहले हमें एक-दूसरे का खून बहाना चाहिए तो मेरा कहना है कि जितनी जल्दी हम यह कर डालें हमारे लिए उतना ही अच्छा है। यदि हम एक-दूसरे का सिर तोड़ने पर

१ डा० पट्टाभि सीतारामय्या : कांग्रेस का इतिहास, पृष्ठ ५०

उतारू हैं तो हमें ऐसा मर्दानगी के साथ करना चाहिए हम झूठ-मूठ के आँसू न बहाने चाहिए, और यदि हम एक दूसरे के साथ दया नहीं करना चाहते तो हमें किसी दूसरे से सहानुभूति की याचना नहीं करना चाहिए।"

सन् १९२७ में भी साम्प्रदायिक दंगों की बाढ़ देखकर अगस्त १९२७ में एक बिल पारित किया गया जिसका मुख्य सार यह था—

"जो कोई व्यक्ति सम्राट् की प्रजा के किसी वर्ग की धार्मिक भावनाओं पर जान-बूझकर और बुरे इरादे से चोट पहुँचाने के लिए मौखिक या लिखित शब्दों से या दृश्य-संकेतों से उस वर्ग के धर्म या धार्मिक भावनाओं का अपमान करेगा या अपमान करने का प्रयत्न करेगा, उसे दो साल की सजा मिलेगी या जुर्माना होगा या उस पर सजा व जुर्माना दोनों होंगे।"

साम्प्रदायिक विद्वेष के तनावपूर्ण वातावरण में एकता-सम्मेलन पुनः आयोजित किया गया। इसमें साम्प्रदायिक दंगों की भर्त्सना की गई और अहिंसा के वातावरण बनाने की अपील की। सम्मेलन ने कांग्रेस की महासमिति को हिन्दू मुस्लिम एकता के प्रचार का अधिकार प्रदान किया।

कांग्रेस सदैव से ही हिन्दू मुस्लिम ऐक्य के लिए प्रयत्नशील रही, किन्तु लीग के असहयोगात्मक रवैये से कांग्रेस की राजनीतिक प्रगति कुण्ठित होती रही। डॉ० पट्टाभि सीतारामय्या का कथन है कि 'ब्रिटिश सरकार गांधी जी के लिए कोई समस्या न थी। अलबत्ता हमारे दो आन्तरिक शत्रु अवश्य थे—कांग्रेस अपने प्रति मुस्लिम लीग के रुख का मुकाबला कैसे करेगी और कांग्रेस किस हद तक लोगों को अहिंसा पर अमल करा सकेगी'[1]। द्वितीय महायुद्ध के समय भारत में शान्ति रखने और युद्ध के लिए अधिकाधिक सहयोग प्राप्त करने के लिए ब्रिटिश सरकार *भी कांग्रेस और लीग के* मतभेद को अपने ढङ्ग से तौलना चाहती थी। लीग अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए समयानुकूल परिस्थितियों को आधार बनाकर आगे बढ़ती थी। यह तथ्य मुस्लिम लीग की १८ सितम्बर १९३९ की वर्किंग कमेटी के निम्न कथन से स्पष्ट है

"यदि मुसलमानों की ओर से पूर्ण, प्रभावशाली और सम्मानपूर्ण सहयोग अपेक्षित है तो उनमें 'सुरक्षा और सन्तोष' की भावना पैदा करना होगी[2]।' इस *स्थिति का लाभ उठाकर भारत की स्वाधीनता के प्रश्न को ब्रिटिश* सरकार यह कहकर टाल देती थी कि 'साफ तौर पर यह पता चलता है कि इन दोनों बड़े दलों के बीच

---

१. डॉ० पट्टाभि सीतारामय्या संक्षिप्त कांग्रेस का इतिहास, पृष्ठ ३५०

२ डॉ० पट्टाभि सीतारामय्या संक्षिप्त कांग्रेस का इतिहास, पृष्ठ ३५१

गहरा मतभेद है'।" इस निर्णय के उपरान्त निराशापूर्ण स्थिति की घोषणा के साथ नये ढङ्ग से सोचने तथा निकट भविष्य की आशा का राग अलापा जाता।

मि० जिन्ना कांग्रेस की इस विवशता से लाभ उठाने के लिए सभी सम्भव प्रयत्न बिना झिझक करते थे। कांग्रेस साम्प्रदायिक दंगों के भय के कारण सविनय आन्दोलन को प्रारम्भ करने पर हिचक रही थी और श्री जिन्ना दो राष्ट्रों के सिद्धान्त आधार पर पाकिस्तान के पृथक् निर्माण की ओर उन्मुख हो रहे थे। इससे साम्प्रदायिक दंगों को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रोत्साहन मिलता था। गांधी जी के नेतृत्व में कांग्रेस मुसलमानों को अलग नहीं मानती थी और उनको साथ लेकर ही स्वाधीनता की मांग करती थी। रामगढ़ में कांग्रेस की विषय निर्वाचिनी समिति और खुले अधिवेशन में गांधी जी ने स्पष्ट रूप से कहा था : 'मेरा अब यही विश्वास है कि हिन्दू-मुसलमानों के समझौता के बिना स्वराज्य नहीं मिल सकता।' स्पष्ट है कि कांग्रेस समझौतावादी दृष्टिकोण रखती थी, किन्तु जिन्ना उसे हिन्दू संस्था मानते थे और राष्ट्रीय मुसलमानों को हिन्दू व मुसलमान दोनों में से किसी का भी प्रतिनिधि नहीं मानते थे।[२] लीग या जिन्ना किसी की मध्यस्थता नहीं चाहते थे और इस तरह हिन्दू-मुस्लिम समस्या सुलझने नहीं पाती थी। ब्रिटिश सरकार इसका लाभ उठाती थी।[3] एमरी ने कामन सभा में खेद प्रकट किया कि वायसराय को शासन-परिषद् की स्थापना में असफलता मिली, क्योंकि मुस्लिम लीग ने खास तौर पर हिन्दुओं के मुकाबले में एक निश्चित प्रतिनिधित्व की मांग की और भविष्य के लिए भी यही शर्त रखी।[४]

कांग्रेस इन सबसे विचलित न होती थी और यही कारण है कि उसने १९४०-४१ के व्यक्तिगत सत्याग्रह में अपने १३ सूत्री रचनात्मक कार्यक्रम में हिन्दू-मुस्लिम अथवा साम्प्रदायिक एकता को सम्मिलित किया और धार्मिक प्रश्नों से अपने को पृथक् रखा।[५] ब्रिटिश राजनीतिज्ञ कांग्रेस के प्रभाव को लीग के सामने जान-बूझकर कम आंकते थे

---

१ डॉ० पट्टाभि सीतारामय्या : संक्षिप्त कांग्रेस का इतिहास, पृष्ठ ३५२

२. डॉ० पट्टाभि सीतारामय्या : संक्षिप्त कांग्रेस का इतिहास, पृष्ठ ३८२

३. डॉ० पट्टाभि सीतारामय्या : संक्षिप्त कांग्रेस का इतिहास, पृष्ठ ३९४

४ डॉ० पट्टाभि सीतारामय्या : संक्षिप्त कांग्रेस का इतिहास, पृष्ठ ३९५

५. गांधी जी ने 'राष्ट्रीय' झण्डा और 'हिन्दू' पताका के प्रश्न के सम्बन्ध में सिमोगा 'हिन्दू-महासभा' के मन्त्री को एक पत्र में लिखा था—'मुझे पता चला है कि गणपति-उत्सव के अवसर पर आयोजित जुलूस में राष्ट्रीय झंडे का प्रयोग किया गया है। मन्दिरों पर राष्ट्रीय झण्डा लगाना गलती है। कांग्रेस एक राष्ट्रीय संस्था है। कारण कि उसके द्वार सभी जातियों और धर्मों के लिए बिना किसी

क्योकि इससे ही उनके राजनीतिक स्वार्थो की पूर्ति सम्भव थी। सन् १९४२ मे लार्ड सभा मे भारत विषयक बहस मे उपभारत मन्त्री ड्यूक श्राफ डीवनशायर ने अपने भाषण मे कहा था—"ऐसा मालूम होता है कि मुस्लिम लीग का असर और उसकी ताकत निश्चित रूप से बढ रही है। काग्रेस के दावे को चुनौती दी जा रही है और महान् मुस्लिम जाति हमेशा ही उसके दावे को चुनौती देती रहेगी।"

भारत मे राजनीतिक दबाव को बढते हुए देख कर और द्वितीय महायुद्ध के कारण उत्पन्न अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियो को दृष्टिगत रख ब्रिटिश शासन भारतीय जनता को भुलावे मे रखने के लिए क्रिप्स मिशन का स्वाग रचा जो असफल रहा। अनेक राजनीतिज्ञ ब्रिटिश सरकार की इस चाल से तग आकर मुस्लिम लीग की माग को स्वीकार कर एक दृढ मोर्चा तैयार करने का विचार करने लगे थे। इनमे से एक श्री राजगोपालाचार्य थे। काग्रेस भी इस निष्कर्ष पर पहुँच चुकी थी कि 'साम्प्रदायिक समस्या को सुलझाने का शक्ति भर प्रयत्न किया है, परन्तु विदेशी सत्ता की उपस्थिति मे यह काम असम्भव हो गया है और वर्तमान अवास्तविकता के स्थान पर वास्तविकता की स्थापना तभी हो सकती है जब विदेशी प्रभुता और हस्तक्षेप का अन्त कर दिया जाय[1]।' वे ब्रिटिश सरकार को किसी भी कीमत पर उखाड फेंकना चाहते थे और सन् १९४२ का आन्दोलन उसी का प्रतिफल था। इस आन्दोलन मे भी लीग की प्रतिक्रिया अनुकूल नहीं थी। सन् १९४१ मे लीग ने अपने मद्रास अधिवेशन मे अपने ध्येय मे भारत मे पाकिस्तान की स्थापना अथवा मुस्लिम बहुल प्रान्तो का एक पृथक् स्वायत्त शासन प्राप्त सघ बनाना स्वीकृत कर लिया था और उसके लिए प्रयत्नशील थी। लीग की वर्किंग कमेटी ने २२ अगस्त १९४२ को अपने एक प्रस्ताव मे ब्रिटिश सरकार से मुसलमानो के लिए आत्मनिर्णय का अधिकार प्रदान करने और पाकिस्तान की स्थापना के हक मे मुसलमानो के मतदान के बाद तुरन्त ही उसे कार्यान्वित करने की माग करते हुए दूसरी किसी भी पार्टी से देश मे एक अस्थायी सरकार स्थापित करने की माग की। लीग ने युद्ध प्रयत्नो मे सरकार को सहयोग नहीं दिया। उन्होने कहा—"भारत कभी भी अपनी समस्याओ का हल ढूँढने मे सफल नहीं हो सका है, और अतीत मे ब्रिटेन ने अपना हल भारत के ऊपर लादा है। इस समय वे ब्रिटेन से यह पक्का वादा ले लेना चाहते है कि लडाई के बाद उन्हें पाकिस्तान मिल जायगा और इसके बदले मे वे एक अस्थायी सरकार मे इस शर्त पर शामिल होने को तैयार होंगे कि उन्हे भी

भेदभाव के खुले हैं। कांग्रेस का हिन्दू या दूसरे इसी किस्म के त्योहारों उत्सवों से कोई सम्बन्ध नहीं है।"

१ डॉ० पट्टाभि सीतारामय्या : सक्षिप्त कांग्रेस का इतिहास, पृष्ठ ४२९

हिन्दुमा जितनी ही सीटें मिलें।" लीग के अन्य नेता भी इसी के अनुसार वक्तव्य देते थे। लीग ने अपने संगठन को सुदृढ़ बनाना शुरू किया और जिन्ना ने नवम्बर १९४२ में दिल्ली में भारत के मुसलमानों से पाकिस्तान हासिल करने के लिए कटिबद्ध रहने की अपील करते हुए कहा कि या तो हम पाकिस्तान लेकर रहेंगे या फिर अपना अस्तित्व ही मिटा देंगे। लीग की पाकिस्तान की माग भारत की स्वाधीनता के मार्ग का रोड़ा सिद्ध हो रही थी। श्री जिन्ना ने लीग के २४वें दिल्ली अधिवेशन (१९४३) में अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा था "कांग्रेस की स्थिति वैसी ही है, जैसे पहिले थी। सिर्फ वह दूसरे शब्दों और भाषा में बताई गई है, किन्तु इसका मतलब है अखण्ड हिन्दुस्तान के आधार पर हिन्दू-राज और इस स्थिति को हम कभी स्वीकार न करेंगे।" वह पाकिस्तान की स्थापना प्रत्येक स्थिति में अनिवार्य मानते थे। ब्रिटिश सरकार इस स्थिति को भली भांति जानती थी और स्वाधीनता देने में असमर्थता व्यक्त करती थी। एमरी कांग्रेस को दोषी बताकर कहते थे कि कांग्रेस ने संघ वाले प्रस्ताव को न मानकर भूल की है और इसके परिणामस्वरूप रियासतों में असन्तोष की वृद्धि हुई है और प्रान्तों में कांग्रेस के तानाशाही तरीके से मुसलमान भी संघ-योजना के कट्टर विरोधी हो गये हैं। सन् १९४२ में लीग के प्रभाव में ५ मंत्रिमण्डल कार्य कर रहे थे। उनके प्रधान मंत्रियों को लीग के अध्यक्ष ने दल के संगठन को सुदृढ़ बनाने पर जोर दिया गया। युद्ध काल में मंत्रिमण्डलों को स्थापित कर ब्रिटिश सरकार स्वाधीनता के प्रश्न को दूर रखना चाहती थी। लीग के सदस्य और मुसलमानों में भी इससे व्यापक असन्तोष व्याप्त हो रहा था और वास्तविक राष्ट्रीय जागृति के लक्षण स्पष्ट रूप से दिखलाई दे रहे थे। सन् १९४४ में जिन्ना ने अपने वक्तव्य में कहा "यदि ब्रिटिश सरकार सच्चे हृदय से भारत में शान्ति स्थापित करने को उत्सुक है तो उसे भारत को दो स्वाधीन राष्ट्रों में बाँट देना चाहिए—पाकिस्तान मुसलमानों के लिए, जिसमें देश का एक चौथाई भाग शरीक होगा और हिन्दुस्तान हिन्दुओं के लिए जिसमें समस्त भारत का तीन चौथाई भाग होगा।

हिन्दू महासभा

मुस्लिम साम्प्रदायिकता की प्रतिक्रिया के स्वरूप ही बीसवीं शती के प्रारम्भ में हिन्दू महासभा का आविर्भाव हुआ। सन् १९३७ में कांग्रेस के पद ग्रहण के अनिवार्य परिणाम के रूप में साम्प्रदायिक समस्या ने गम्भीर रूप धारण कर लिया। इस अवसर का लाभ उठाकर साम्प्रदायिक संस्थाएं राजनीतिक संस्थाओं के रूप में सामने आईं। प्रारम्भ में हिन्दू महासभा और मुस्लिम लीग का कार्य हिन्दुओं और

मुसलमानो के धार्मिक और सास्कृतिक स्वत्वो का सरक्षण समझा जाता था और काग्रेस के साथ उनका समझौता हो सकता था। किन्तु सन् १९३९ मे उनका विरोध मौलिक सिद्धान्तो और विचारधारा के रूप मे प्रकट हुआ। लीग के दो राष्ट्रो के सिद्धान्त के विरुद्ध हिन्दू महासभा ने 'भारत हिन्दुओ के लिए' तथा 'अखण्ड भारत' का नारा बुलन्द किया।

हिन्दू महासभा मे एक अश ऐसे लोगो का था जो ब्रिटिश साम्राज्यशाही से लड़कर देश मे हिन्दू राज्य की स्थापना का स्वप्न देखता था। सन् १९३७ मे कांग्रेस-मन्त्रिमण्डलो की स्थापना से यह वर्ग सतुष्ट था। काग्रेस मे हिन्दुओ की मुख्यता होने के कारण इसका यह विश्वास हो चला था कि आगे चलकर देश मे हिन्दू राज्य कायम हो सकेगा। किन्तु साम्प्रदायिक दगो के समय काग्रेसी मन्त्रिमण्डलो द्वारा जो नीति अपनायी गई उसकी वजह से यह वर्ग भी निराश हो गया। ब्रिटिश शासन असन्तुष्ट हिन्दुओ का समर्थन प्राप्त कर काग्रेस के प्रभाव को न्यून सिद्ध करना चाहता था। अतः सन् १९४० मे भारत के वाइसराय ने हिन्दू महासभा को परामर्श के लिए आमन्त्रित किया। जिस प्रकार काग्रेस और लीग को भारत सरकार ने सदा से अधिकृत सस्थाओ के रूप मे स्वीकार कर लिया था उसी प्रकार उसने ८ अगस्त १९४० के वक्तव्य मे पहली बार हिन्दू महासभा को भी अधिकृत सस्था मान लिया। हिन्दू महासभा जनता से काग्रेस के आन्दोलनो से विमुख रहने का प्रचार करती थी। सन् १९४२ मे गाधी जी और उनके साथियो की गिरफ्तारी के अवसर पर श्री सावरकर ने हिन्दुओ को सलाह दी कि वे 'काग्रेस-आन्दोलन मे किसी प्रकार की भी मदद न करें। 'इस सन्दर्भ मे डॉ० पट्टाभि सीतारामय्या का कथन उल्लेखनीय है—'इसमे आश्चर्य की कोई बात नहीं थी, क्योंकि वह भारतीय राष्ट्रवाद के स्थान पर हिन्दुत्व और हिन्दू साम्प्रदायिकता का प्रचार कर रहे थे। काग्रेस के जेल जाने के बाद मुस्लिम बहुल प्रान्तो मे मन्त्रिमण्डल बनाने मे उन्होने विभिन्न प्रान्तो मे अलग-अलग कारणो से हिन्दुओ को भाग लेने के लिए प्रोत्साहित किया, लेकिन इन सभी मामलो मे वास्तव मे वह मुस्लिम लीग की नीति का अनुसरण कर रहे थे। लीग की भाति उन्हें भविष्य के बजाय अपने तात्कालिक उद्देश्य की अधिक परवाह थी, भारतीय आजादी के बजाय साम्प्रदायिक लाभ का अधिक ध्यान था और ब्रिटेन के विरुद्ध लड़ने के बजाय उसके साथ मिलकर काम करने की नीति अधिक पसन्द थी'[1]।'

इसी तथ्य का उद्घाटन करते हुए आचार्य नरेन्द्र देव ने 'सघर्ष' के दिनाक २० अगस्त १९३९ के अक मे अपने एक लेख मे लिखा था :

---

१ डॉ० पट्टाभि सीतारामय्या : संक्षिप्त काग्रेस का इतिहास, पृष्ठ ४८१

"अपने साम्प्रदायिक स्वरूप, प्रतिगामी कार्यक्रम और साम्राज्यशाही समर्थन के कारण साम्प्रदायिक संस्थाओं के नेताओं को इस राज्य-शक्ति में उनके इच्छानुसार भाग नहीं मिल पाया और उनकी चाह उनके मन में ही दबी रहकर खटक रही है। कहने को हिन्दू सभा .. आदि साम्प्रदायिक संस्थाओं का उद्देश्य अपने सम्प्रदाय के सर्वसाधारण लोगों की भलाई के लिए प्रयत्न करना रहा है, पर यदि इन संस्थाओं द्वारा किये जाने वाले कार्य पर ध्यान दें तो हमें पता चलेगा कि व्यवहार रूप में ये संस्थाएं मुट्ठी भर सामन्तों, राजाओं, तालुकेदारों, जमींदारों और शहर के कुछ अनुदार मध्यम श्रेणी के लोगों की संस्थाएं रही हैं, जो कि धर्म के नाम पर अपने वर्ग का स्वार्थ-साधन करने, सरकारी नौकरियों और एसेम्बली में सीटें आदि प्राप्त करने के काम में लाई जाती रही हैं।"

वस्तुत ब्रिटिश सरकार इन साम्प्रदायिक संस्थाओं का उपयोग भारत की स्वतन्त्रता के 'ब्रेक' के रूप में करती थी।

यही साम्प्रदायिक संस्थाएं राजनीतिक स्वरूप में आगे चलकर समाज के प्रतिगामी वर्गों की ताकत को सुरक्षित रखने वाली संस्थाएं बन गई। साम्राज्यवाद द्वारा घोषित एवं विस्तारित होने से ये संस्थाएं फासिस्ट विचार-धारा से अनुप्राणित है। द्वितीय महायुद्ध के समय फासिस्ट विचार धारा अत्यन्त बलवती थी। पूंजीवाद का ह्रास हो रहा था और सम्पूर्ण विश्व दो गुटों में बंट गया था। एक ओर प्रगतिशील शक्ति थी जो पूंजीवादी समाज-व्यवस्था को हटा कर समाजवादी व्यवस्था लाना चाहती थी, दूसरी ओर वे फासिस्ट थे जो मौजूदा पूंजीवादी व्यवस्था को ही सैनिक शासन के बल पर रखना चाहते थे।

ऐसे संक्रान्ति-काल में फासिस्ट राष्ट्रों ने भारत को अपना विशेष कार्य क्षेत्र बनाने का प्रयत्न किया। हिटलर के आर्यजाति की श्रेष्ठता के सिद्धान्त के नाम पर हिन्दू युवकों में नाजी विचारधारा का प्रचार किया जा रहा था।

अपनी संकीर्ण राजनीतिक विचारधारा के कारण ये साम्प्रदायिक संस्थाएं विशाल देश को मार्ग-दर्शन देने में असमर्थ रहने के कारण विस्तार न पा सकीं। सन् १९४७ में भारत विभाजन के पश्चात् हिन्दू महासभा पृष्ठभूमि में चली गई और सन् १९४८ में गांधी हत्याकाण्ड के बाद महासभा की कार्यकारिणी समिति ने अपनी राजनीतिक गतिविधियों को समाप्त करने का निश्चय किया। किन्तु बाद में पुन राजनीतिक रंगमंच पर आई और आम चुनावों में भाग लेकर इसने कुछ स्थान भी जीते।

जनसंघ

इसी शृंखलान्तर्गत भारतीय जनसंघ को भी परिगणित किया जाता है जो 'एक देश, एक संस्कृति तथा एक भारतीय राष्ट्र' के आदर्श का उद्घोष करता है।

इस नवोदित राजनीतिक दल की स्थापना सन् १९५१ में हुई और उसका ध्येय आम चुनावों में भाग लेना था।

जनसंघ की चुनाव-घोषणा के अनुसार यह दल उद्योगों के सार्वजनिक स्वामित्व को चाहता है और विशेषकर उन उद्योगों को जो देश की जरूरी सुरक्षा के लिए आवश्यक सामग्री का उत्पादन करते हैं। पार्टी उपभोक्ता तथा उत्पादक के हित के लिए व्यक्तिगत उद्योग को राज्य व्यवस्था तथा सामान्य नियन्त्रण के अन्तर्गत उद्योगों को बढ़ाने के ध्येय से बढ़ावा देना चाहती है। उसका यह मत है कि मुनाफाखोरी तथा आर्थिक शक्ति के कुछ सीमित व्यक्तियों तक एकत्र होने से रोकने हेतु एकीकरण तथा संधियों के द्वारा नियन्त्रण रखना चाहिए। वह क्रमिक वैज्ञानिकीकरण तथा उद्योगों के विकेन्द्रीकरण को चाहती है। पार्टी वर्ग, जाति अथवा नस्ल का बिना प्रचार किए हुए भारत के समस्त नागरिकों को समान अधिकार देना चाहती है तथा धर्म के आधार पर अल्पसंख्यकों तथा बहुसंख्यकों का भेद स्वीकार नहीं करती है। वह गो-हत्या-विरोध करने की प्रतिज्ञा करती है तथा हिन्दी को अखिल भारतीय रूप में, दूसरी भारतीय भाषाओं को साथ में पूरा प्रोत्साहन देते हुए कार्य करने को उत्सुक है। वह संस्कृत को विशेष प्रोत्साहन देने को कृतसंकल्प है तथा राष्ट्रीय स्तर पर नवयुवकों व महिलाओं को सैनिक शिक्षा दिलाना चाहती है।

सन् १९५४ में पार्टी ने कुछ सिद्धान्तों में परिवर्तन किये। परिवर्तित घोषणा के अनुसार घरेलू उद्योग-धन्धों का बड़े पैमाने पर होने वाले उद्योगों की उत्पत्ति के क्षेत्रों की सीमा पर, सैनिक दृष्टिकोण से महत्त्वपूर्ण उद्योगों के राष्ट्रीयकरण पर तथा कुछ अन्य उद्योगों के ऊपर राज्य के नियन्त्रण पर, पाश्चात्य तरीकों के विपरीत कृषि के तरीकों में स्वदेशी तरीकों को अपनाने पर जोर दिया गया है। तृतीय आम चुनाव में भाग लेकर इस दल ने कुछ प्रदेशों में महत्त्वपूर्ण स्थान बना लिया है।

साम्यवादी दल

राजनीतिक दल के रूप में साम्यवादी दल का गठन सन् १९२४ में हुआ था किन्तु प्रारम्भ से ही भारत सरकार ने इसे अवैध घोषित कर दिया था। फलत: अधिकांश साम्यवादी कांग्रेस के अन्तर्गत ही अपना कार्य करते रहे। सन् १९२८ तक साम्यवादी कार्यकर्ता कांग्रेस के मंच से अपना संगठन करते रहे और कहीं-कहीं इसकी कार्यकारिणी समिति के सदस्य तक थे। प्रारम्भिक वर्षों में उनकी संख्या बहुत स्वल्प थी और वे मुख्यत: ट्रेड यूनियनों तथा विद्यार्थियों के संगठन-कार्य तक सीमित थे। तदुपरान्त कम्युनिस्ट इन्टरनेशनल के संकेत पर ये कांग्रेस से पृथक् हो जनान्दोलन से दूर हो गये। सन् १९२८ में कम्युनिस्ट इन्टरनेशनल ने निश्चय किया कि उपनिवेशों में राष्ट्रीय

सुधारवादी संस्थाओं से दल को अपने से पृथक् रखना चाहिए। इसके परिणामस्वरूप कम्युनिस्ट सन् १९३०-३२ के सत्याग्रह-आन्दोलनों का विरोध करते रहे। सन् १९३१ में कम्युनिस्ट पार्टी ने समस्त राष्ट्रीय अल्प समुदायों को आत्मनिर्णय का अधिकार दे रखा है। सन् १९३४ की थीसिस में उन्होंने लिखा कि "कम्युनिस्ट पार्टी के सामने सबसे जरूरी काम एक ऐसी संस्था का निर्माण करना है जो साम्राज्यवाद का विरोध करने के लिए समस्त शोषित वर्ग के संयुक्त मोर्चे की अभिव्यक्ति हो। कम्युनिस्ट पार्टी के प्रभाव में तैयार किए हुए क्रांतिकारी कार्यकर्ता इस मोर्चे के मूलाधार होंगे और क्रांतिकारी ट्रेड यूनियन, किसान-सभाएँ और युवक संघ के क्रांतिकारी अंशों के सामूहिक सम्बन्ध के आधार पर यह संस्था बनायी जायेगी। इसे हम साम्राज्य-विरोधी लीग कह सकते हैं। सब शोषित वर्गों की मांगें इसके प्रोग्राम में शामिल की जायेंगी और राष्ट्रीय स्वतन्त्रता, मजदूर और किसान राज्य आदि इसके नारे होंगे। यह एक सर्वसाधारण की संस्था होगी जिसमें सभी शोषित वर्ग के लोग सम्मिलित होंगे। इस लीग की स्वतन्त्र सत्ता होगी[1]।

साम्राज्य-विरोधिनी होने पर भी सन् १९४२ के आन्दोलन में इनका रुख ब्रिटिश सरकार की ओर था और इसने कांग्रेस के जन आन्दोलन का विरोध किया। इस विचार परिवर्तन का कारण रूस का जर्मनी के विरुद्ध युद्ध में सम्मिलित होना था। भारत सरकार ने भी उनके इस रुख को देखकर सन् १९४३ में कम्युनिस्ट पार्टी से प्रतिबन्ध हटा लिया और तब से वह स्वतन्त्र रूप से कार्य कर रही है। सन् १९४३ में ब्रिटिश सरकार को इसने युद्ध के समय पूर्ण सहायता प्रदान कर द्वितीय महायुद्ध को 'जनता का युद्ध' घोषित किया।

राष्ट्रीय समस्याओं के प्रति साम्यवादियों के विचार समय-समय पर परिवर्तित होते रहे हैं और ये परिवर्तन मूलतः रूस और अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों के आधार पर निर्भर होते हैं। जब तक पाकिस्तान नहीं बना था तब तक वे लीग की पाकिस्तान की माँग का समर्थन करते रहे और सन् १९४६ के आम चुनावों में कांग्रेस के विरुद्ध लीग के साथ मिलकर लड़े। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद इन्होंने साम्प्रदायिक संस्थाओं के विरुद्ध छेड़े गये जिहाद में नेहरू सरकार को सहायता देने का वचन दिया पर श्री रणदिवे के नेतृत्व में इन्होंने देश के विभिन्न भागों में हिंसात्मक कार्य करना प्रारम्भ कर दिया। अतः पश्चिमी बंगाल की सरकार ने साम्यवादी दल को गैर कानूनी घोषित कर दिया और बम्बई सरकार ने इसके साप्ताहिक 'जनयुग' पर पाबन्दी लगा दी[2]।

---

१. आचार्य नरेन्द्र देव

२. ज्योतिप्रसाद सूद, भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन तथा संविधान, पृष्ठ ४६२

दल की नीतियो म इन परिवर्तनो का कारण यह अलिखित नियम प्रतीत होता है कि इन नीतियो का निर्धारण देश म प्रचलित अवस्थाओ के अनुसार न होकर रूस की वैदेशिक नीति के अनुसार होगा । भारतीय साम्यवादी दल म यह एक स्वाभाविक विरोध है। भारतीय साम्यवादी पथ प्रदर्शन के लिए मास्को की ओर देखते हैं और प्रेरणा लेते है। वे मास्को को उन सब वस्तुओ का सार मानते हैं जो आधुनिक हैं, प्रगतिशील है और गतिमान है[1] । इस भाति वे प्रथम साम्यवादी है, बाद मे भारतीय ।

साम्यवाद एक अन्तर्राष्ट्रीय विचारधारा है और भारतीय साम्यवादी भी रूस की तरह यहाँ मार्क्स और लेनिन के अनुसार ही मजदूरो का अधिनायकत्व स्थापित करना चाहते है। इनका उद्देश्य है मजदूरो को रक्तमय क्रांति के लिए सगठित करना जो पुरानी व्यवस्था और उसके आदर्शो को पूर्णतया समाप्त करके एक ऐसी सामाजिक एव आर्थिक व्यवस्था को जन्म दे, जो मार्क्स और लेनिन के सिद्धान्तो पर आश्रित हो और भारतीय प्रकृति और प्रतिभा के प्रतिकूल हो। यह दल भारत की प्राचीन भूमि पर एक ऐसी विदेशी सस्कृति थोपना चाहता है जो भौतिकवाद और नास्तिकवाद म विश्वास करती है और जीवन के आध्यात्मिक आदर्शों की, जिन्हे भारत न सदा से बडा महत्त्व दिया है, अवहेलना करती है। साम्यवादियो की सफलता का अर्थ होगा भारत की प्राचीन सस्कृति एव सभ्यता की मृत्यु[2] । साम्यवाद एव गाधीवाद के सिद्धाता की विस्तृत विवेचना ग्यारह अध्याय म की गई है अत उसकी पुनरावृत्ति नहीं की जा रही है।

---

१ डॉ० एन० व्ही० राजकुमार इण्डियन पोलिटिकल पार्टीज, पृष्ठ ७०

२ ज्योतिप्रसाद सूद भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन तथा सविधान पृष्ठ ४६३

अध्याय ३

हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासों का क्रमिक विकास

- प्रारम्भिक हिन्दी उपन्यास और राजनीति–१८८२ से १९१९ ई०
- साहित्य और राजनीति
- हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासों का विकास–१९२० से १९६३ ई०
- स्वाधीनता-पूर्व हिन्दी के राजनीतिक उपन्यास
- समाजवादी चेतना से अनुप्राणित उपन्यास
- स्वाधीनतोत्तर राजनीतिक उपन्यास
- हिन्दू राष्ट्रीयतावादी विचार-धारा
- राजनीतिक सिद्धान्तों से समन्वित उपन्यास

(क) प्रारम्भिक हिन्दी उपन्यास और राजनीति—सन् १८८२ से १९१९ तक

हिन्दी का सर्वप्रथम मौलिक उपन्यास श्री निवासदास लिखित 'परीक्षा गुरु' माना जाता है। इससे पूर्व तीन उपन्यासों—श्रद्धाराम फुल्लौरी कृत 'भाग्यवती' भारतेन्दु हरिश्चन्द्र कृत 'पूर्णप्रभा चन्द्रप्रकाश' और मुंशी ईश्वरी प्रसाद तथा कल्याण राय कृत 'वामा शिक्षक' का उल्लेख मिलता है। इसमें से 'पूर्ण प्रभाचन्द्र प्रकाश' गुजराती से अनूदित है। अत उसे मौलिक उपन्यासों की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'भाग्यवती' नामक उपन्यास की चर्चा करते हुए लिखा है कि 'भाग्यवती' नाम का एक सामाजिक उपन्यास भी सम्वत् १९३४ में उन्होंने (श्रद्धाराम फुल्लौरी) लिखा, जिसकी बड़ी प्रशंसा हुई।" इस पर भी आचार्य शुक्ल मानते है कि 'परीक्षा गुरु' ही 'अंग्रेजी ढंग का पहला मौलिक उपन्यास है'। इस कथन से स्पष्ट है कि 'भाग्यवती' यदि मौलिक भी है तो आधुनिक ढङ्ग का नहीं है अथवा यदि आधुनिक ढङ्ग का है तो मौलिक नहीं। यही कारण है कि अधिकांश विज्ञों ने 'परीक्षा गुरु' को हिन्दी का प्रथम मौलिक उपन्यास माना है, जो सन् १८८२ ई० में प्रकाशित हुआ था। डॉ० श्रीकृष्ण लाल और अम्बिका दत्त व्यास ने भी यही मत व्यक्त किया है। इधर डॉ० कोतमिरे के शोध प्रयासों से 'वामा शिक्षक' नामक एक नये उपन्यास पर प्रकाश पड़ा है, जिसका रचना-काल सन् १८७२ ई० कहा गया है। यह एक चरित्र प्रधान उपदेशात्मक उपन्यास है, जिसमें स्त्री-शिक्षा की आवश्यकता पर विचार किया गया है।

सच तो यह है कि भारतेन्दु-काल में हिन्दी में उपन्यास-रचना की ओर साहित्यकारों का ध्यान आकर्षित होने लगा था। स्वयं भारतेन्दु ने इस दिशा में प्रयत्न किये। फलत उनकी प्रेरणा और प्रोत्साहन से अनेक बंगला उपन्यासों का अनुवाद हुआ तथा मौलिक उपन्यास रचना के प्रयास किये गये। इस सन्दर्भ में बाबू ब्रजरत्नदास का कथन है 'यद्यपि भारतेन्दु जी ने एक भी पूरा उपन्यास नहीं लिखा है, पर एक पत्र से ज्ञात होता है कि इन्हीं के उत्साह दिलाने से उस समय स्वर्गीय श्री गोस्वामी राधाचरण जी ने 'दीप-निर्वाण' तथा 'सरोजिनी' का उल्था किया और बाबू गदाधरसिंह ने 'कादम्बरी' का संक्षिप्त तथा 'दुर्गेश नन्दिनी' का पूरा अनुवाद किया था। प० रामशकर व्यास द्वारा 'मधुमती' और बाबू राधाकृष्ण द्वारा 'स्वर्णलता' अनूदित हुई थी। 'चन्द्र प्रभापूर्ण प्रकाश', 'राधा रानी', 'सौन्दर्यमयी' आदि भी इसी प्रकार अनूदित हुए थे[1]।' निष्कर्ष यह कि भारतेन्दु ने अनूदित उपन्यासों की परम्परा

१. बाबू ब्रजरत्नदास : भारतेन्दु, पृष्ठ १९४

से हिन्दी उपन्यास का मार्ग दर्शन किया। हिन्दी मे अनूदित उपन्यासों ने साहित्य-प्रेमियो का ध्यान आकर्षित किया और साहित्यिको को उपन्यास-रचना की प्रेरणा दी। इन उपन्यासों का सूत्रपात समाज की आलोचना के रूप मे हुआ। कुछ ही समय में हिन्दी उपन्यास-साहित्य ने साहित्यिक विद्या के रूप मे स्थान बना लिया और उसमे सामाजिक समस्याओ का समावेश किया जाने लगा। अत यह कहा जा सकता है कि नवीन जागरण के प्रभाव से हिन्दी मे जिन उपन्यासो की सृष्टि हुई— वे सामाजिक अथवा ऐतिहासिक हैं। ये इस युग के उपन्यासकारो की वर्तमान और अतीत के प्रत्यक्न की लालसा-भावना के द्योतक हैं।

शिवनारायण श्रीवास्तव ने प्रेमचन्द पूर्व युग के मौलिक हिन्दी उपन्यासो को पाँच श्रेणियों मे विभाजित किया है—

(१) सामाजिक,
(२) ऐयारी-तिलस्मी,
(३) जासूसी,
(४) ऐतिहासिक और
(५) भाव-प्रधान[1]।

प्रारम्भिक हिन्दी उपन्यास राजनीतिक घटनाओ की अपेक्षा पुनरुत्थानवादी आन्दोलन से अधिक प्रभावित रहे हैं। इसका एक कारण यह है कि हिन्दी उपन्यास और भारतीय राजनीतिक संगठन, दोनों प्राय साथ-साथ ही विकसित हुए हैं। इस दृष्टि से हम हिन्दी उपन्यास को कांग्रेस का अग्रज भी कह सकते हैं। कांग्रेस की स्थापना (सन् १८८५) से भारतीय राजनीति की सुव्यवस्थित परम्परा प्रारम्भ हुई। कांग्रेस-पूर्व-काल (सन् १८२१-८४ तक) वस्तुत पुनरुत्थानवादी युग था और राममोहन राय से दयानन्द सरस्वती तक व्याप्त इस युग में प्राचीन संस्कृति के आत्म-गौरव द्वारा राष्ट्र के अभ्युत्थान की कल्पना की गई। हिन्दी के प्रथम मौलिक उपन्यास 'परीक्षा गुरु' के प्रकाशन के साथ-साथ कांग्रेस-पूर्व-काल की समाप्ति होती है, किन्तु युगीन चेतना का प्रभाव भारतीय सामाजिक जीवन पर बाद के तीन दशकों तक मिलता है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि पुनरुत्थानवादी प्रभाव प्राक् गाधी-युग तक रहा और उसने सामाजिक-राजनीतिक विचारो को प्रभावित किया।

हिन्दी के प्रारम्भिक उपन्यासो मे भी इसका प्रत्यक्ष प्रभाव परिलक्षित होता है। भारतीय समाज की दयनीय अवस्था ने समाज-सुधारकों को प्रेरणा दी। उन्होंने अनुभव किया कि सांस्कृतिक अनियाय एवं सामाजिक जातिभेद भारतीय जीवन के विकास में

१. शिवनारायण श्रीवास्तव : हिन्दी उपन्यास, पृष्ठ २३

बाधक हैं और नवीन युग के अनुरूप नहीं है। यही कारण है कि राममोहन राय ने कम से कम राजनीतिक लाभ एवं सामाजिक सुख के लिए धर्म रीति में कुछ परिवर्तन पर जोर दिया। इस युग में राममोहन राय के प्रभाव के बाद हिन्दू धर्म को ही सम्मान्य बनाने की प्रवृत्ति बलवती रही। इसने पाश्चात्य सभ्यता के प्रति विरक्ति के भाव का प्रसार किया। फलतः राजनीतिक आर्थिक पक्ष सामाजिक धार्मिक पक्ष से पृथक् माना गया। स्वामी दयानन्द और उनके आर्य समाज ने पुनरुत्थानवादी आन्दोलन को गतिशील बनाया। पाश्चात्य सभ्यता को घातक बनाया गया और आत्म-गौरव द्वारा राष्ट्रोत्थान के सिद्धान्त को प्रमुखता दी गई। मूल रूप से इसकी प्रेरणा विदेशीय न होकर भारतीय आत्म-विश्लेषण की है। मूलतः आर्य समाज के दो पक्ष हैं—एक तो वैदिक विचार धारा में निष्ठा, दूसरा वैदिक सिद्धान्तों के आधार पर सामाजिक कुरीतियों का निराकरण।

इस तरह इस युग में सनातनधर्मी और आर्य समाजी, ये दो विचार-धाराएँ समानान्तर रूप से चल रही थीं। सनातनधर्मी प्राचीन रीति नीति एवं विश्वासों के समर्थक थे। इसके विरुद्ध ब्रह्म समाज, आर्य समाज, रामकृष्ण मिशन आदि सामाजिक कुरीतियों के उन्मूलन एवं भारतीय सभ्यता-संस्कृति के अनुरूप समाज के नवसंगठन का प्रयास कर रहे थे। इतना होने पर भी दोनों कुछ प्रश्नों पर एकमत थे। सभी हिन्दू नेता इस्लाम और ईसाइयत तथा पाश्चात्य सभ्यता से हिन्दू धर्म को बचाने में एकमत रहे। राजनीतिक गतिविधियाँ अत्यन्त क्षीण थीं और सामाजिक-सांस्कृतिक आन्दोलन तक ही एक नए समाज के निर्माण का स्वप्न सीमित था।

प्रेमचन्द पूर्व-युग के सामाजिक उपन्यासों में इन्हीं समस्याओं का चित्रण मिलता है। इस युग के अधिकतर सामाजिक उपन्यास वैदिक और पौराणिक अथवा आर्य समाजी और सनातनधर्मी विचारधारा का आन्तरिक विरोध ही चित्रित करते हैं। इन विचार-धाराओं की दृष्टि से सामाजिक उपन्यासों की तीन श्रेणियाँ बन सकती हैं—

१—सनातनधर्मी

२—आर्य समाजी

३—सुधारवादी

इन धार्मिक आन्दोलनों को अभिव्यक्ति देने के कारण उपन्यास में उपयोगिता के एक बाह्य पक्ष को स्वीकृति मिली और इससे भावी राजनीतिक उपन्यास का मार्ग प्रशस्त हुआ।

सर्वश्री लज्जाराम शर्मा मेहता, गंगाप्रसाद गुप्त, किशोरीलाल गोस्वामी इत्यादि उपन्यासकारों की कृतियों में सनातन धर्म तथा सर्वश्री श्यामबिहारी वर्मा, कृष्णलाल वर्मा, रुद्रदत्त शर्मा आदि के उपन्यासों में आर्य समाज के सिद्धान्तों का आग्रहपूर्वक प्रति

पादन किया गया है। सर्वश्री अयोध्यासिंह उपाध्याय, ब्रजनन्दन सहाय, मन्नन द्विवेदी आदि उपन्यास-लेखकों की रचनाएं सुधारवादी दृष्टिकोण से समन्वित हैं। इस युग के कुछ प्रमुख सामाजिक उपन्यासों और उनमें बीज रूप में निहित राजनीतिक भावना की चर्चा यहां अप्रासंगिक न होगी।

परीक्षा गुरु

हिन्दी में उपन्यासों का प्रारम्भ सामाजिक रचनाओं से हुआ और 'परीक्षा गुरु' इस उपन्यास-वाटिका का पहला सुरभित पुष्प है। इसमें युगानुरूप सुगन्ध और सौन्दर्य दोनों हैं। लेखक के शब्दों में यह 'संसारी वार्ता है, जिसमें अनुभव द्वारा उपदेश की छटा और कल्पना के सहारे समकालीन जीवन का यथार्थ जीवन दोनों का चित्रण है। लेखक का आग्रह व्यवहार-नीति पर था, इसलिए इसमें धर्म और राजनीति की चर्चा प्रत्यक्ष रूप में नहीं है। वस्तुत उसकी दृष्टि उन राष्ट्रीय समस्याओं पर है, जो सामाजिक और आर्थिक हैं। अपनी समग्रता में आलोच्य उपन्यास शिक्षाप्रधान अथवा उपदेशप्रधान है। उसमें ब्रिटिश सरकार द्वारा बलपूर्वक स्वाधीनता के अपहरण करने की वृत्ति पर क्षोभ है, जो वह लेडी जेन ग्रे के वक्तव्य के माध्यम से सांकेतिक रूप से नीति-कथन के रूप में प्रस्तुत करता है—

'इंगलैंड की गद्दी बाबत एलिजाबेथ और मेरी के बीच विवाद हो रहा था, उस समय लेडी जेन ग्रे को उसके पिता, पति और स्वसुर ने गद्दी पर बिठाना चाहा, परन्तु उसको राज का लोभ न था। वह होशियार, विद्वान और धर्मात्मा स्त्री थी। उसने उनको समझाया कि मेरी निस्वत मेरी और एलिजाबेथ का ज्यादा हक है और इस काम से तरह तरह के बखेड़े उठने की सम्भावना है। मैं अपनी वर्तमान अवस्था में बहुत प्रसन्न हूँ। इसलिए मुझको क्षमा करो, पर अन्त में उसको अपनी मरजी के उपरांत बड़ों की आज्ञा से राजगद्दी पर बैठना पड़ा, परन्तु दस दिन नहीं बीते, इतने में मेरी ने पकड़कर उसे कैद किया और उसके पति समेत फांसी का हुक्म दिया। वह फांसी के पास पहुँची। उस समय उसे अपने पति की लटकते देखकर तत्काल अपनी याददास्त में यह तीन वचन लाटिन, यूनानी, और अंग्रेजी में क्रम से लिखे कि 'मनुष्य जाति के न्याय ने मेरी देह को सजा दी परन्तु ईश्वर मेरे ऊपर कृपा करेगा। और मुझको किसी पाप के बदले यह सजा मिली होगी तो अज्ञान अवस्था के कारण मेरे अपराध क्षमा किये जायेंगे। और मैं आशा रखती हूँ कि सर्वशक्तिमान परमेश्वर और भविष्यत काल के मनुष्य मुझ पर कृपा दृष्टि रखेंगे।' उसने फांसी पर चढ़ कर सब लोगों के आगे एक वक्तृता दी, जिसमें अपने मरने के लिए अपने सिवाय किसी को दोष न दिया। वह बोली कि 'इंगलैंड की गद्दी पर

बैठने के वास्ते उद्योग करने का दोष मुझ पर कोई नहीं लगावेगा। परन्तु इतना दोष अवश्य लगावेगा कि वह औरो के कहने से गद्दी पर क्यो बैठी ? उसने जो भूल की वह लोभ के कारण नही, केवल बडो के आज्ञावर्ती होकर की थी सो यह कहना मेरा फर्ज था परन्तु किसी तरह करो जिसके साथ मैंने यह अनुचित व्यवहार किया उसके हाथ मे प्रसन्नता स अपने प्राण देने को तैयार हू' यह कहकर उसने बडे धैर्य से अपनी जान दी।[1] अनावश्यक रूप स इस प्रसग-कथा को जोडने का एकमात्र उद्देश्य अग्रेजो द्वारा अनैतिक रूप से भारत पर कब्जा जमाने और भविष्य म उसके लिए निश्चित दण्ड विधान का सकेत देना है। इस कथा स यह सिद्ध किया गया है कि जेन ग्रे को जब साधारण अपराध से फासी का दण्ड मिला तो उनका अजाम न जाने क्या होगा, जिन्होने अनाचार और अत्याचार से राज्य स्थापित किया।

एक दूसरे प्रसग म लेखक ने भारतीय रईसों के प्रति भी अपना आक्रोश व्यक्त किया है—'मुल्क म अकाल हो, गरीब विचारे भूखा मरते हो, आपके यहाँ दिन रात य हा-हा, ही ही, हो रहेगी—परमेश्वर ने आपको मनमानी मौज करने के लिए दौलत दे दी फिर औरो के दुख-दर्द म पडने की आपको क्या जरूरत रही।' स्पष्ट है कि लेखक तत्कालीन धनिक वर्ग की राष्ट्रीय सामाजिक उपेक्षा-वृत्ति को देश के लिए घातक समझता है और उन्हे अराष्ट्रीय ही मानता है।

इस युग के उपन्यासो मे युगीन राजनीति समग्रता मे न आकर सामाजिक समस्याओ के परिवेश मे साकेतिक रूप से व्यक्त हुई है। सच तो यह है कि सन् १८५७ के विद्रोह की असफलता के नैराश्य से ग्रस्त भारतीय जनता को धार्मिक व सामाजिक चेतना के माध्यम से ही सपुष्ट किया जा सकता था।

अत राष्ट्रीयता का जो स्वरूप इन उपन्यासो म अकित हुआ है वह जातीयता तथा अतीत गौरव के रूप मे मिलता है। इसके साथ ही राजभक्ति की भावना का उन्मेष भी कई उपन्यासो मे दिखलाई देता है। ऊपरी सतह पर परस्पर विरोधिनी दिखलाई पडने वाली ये प्रवृत्तियाँ वस्तुत. तत्कालीन राजनीतिक स्थिति के अनुकूल है। इस युग म जहाँ एक ओर नव-जागरण का प्रतीक माना जाता था, वहीं दूसरी ओर नेतागण एव समाज-सुधारक ब्रिटिश सरकार की अनेक नीतियो के कारण क्षुब्ध भी थे। उदाहरणार्थ काग्रेस के उदारवादी दल को ही लिया जा सकता है, जो स्वत राजभक्ति-भावना स मुक्त न था। स्वय डॉ० पट्टाभि सीतारामय्या ने लिखा है कि सन् १८८५ १९१५ की अवधि मे काग्रेस ने 'राजभक्ति की शपथ भी कई बार ली। सन् १९०१ मे महारानी विक्टोरिया की मृत्यु और १९१० मे सम्राट् एडवर्ड की मृत्यु पर

१ डॉ० श्रीकृष्णलाल - श्रीनिवास ग्रन्थावली, पृष्ठ २२८

कांग्रेस को अपनी राजभक्ति फिर प्रकट करने का अवसर मिला। एडवर्ड और जार्ज पंचम के स्वागत-सम्बन्धी प्रस्ताव भी पास किये गये।'[1] प्रारम्भ में कांग्रेस की माँगें प्रार्थनाओं तक सीमित थीं। जनता के साथ उसका सीधा सम्पर्क नहीं था और कुछ बड़े लोगों के हाथों में ही उसका नेतृत्व था। 'आदर्श हिन्दू' के पात्र प० प्रियानाथ एवं उनके इस कथन में युगीन राजनीति का स्पष्ट चित्र देखा जा सकता है—'प० प्रियानाथ राजनीतिक कामों के विषय में प्राय उदासीन से हैं। उनका मत है कि जब इस विषय का आन्दोलन करने में सैकड़ों बड़े बड़े आदमी दत्तचित्त हैं, तब मैं अपना सिर क्यों खपाऊँ।' वे यह भी मानते हैं कि 'जिन बातों को देने का सरकार ने वादा कर लिया है अथवा आप जिन पर अपना स्वत्व समझते हैं, उन्हें सरकार से मांगे। जब माता पिता भी बेटे-बेटी को रोने से रोटी देते हैं, तब राजा से मांगने में कोई बुराई नहीं है। तुम ज्यों-ज्यों मांगते जाते हो, त्यों-त्यों धीरे-धीरे वह देती भी जाती है। किन्तु काम वही करो, जिससे तुम्हारे 'नराणाम् च नराधिप.' इस भगद्वाक्य में बट्टा न लगे। भगवान के इस वचन से जब राजा ईश्वर का स्वरूप है, तब उसकी गवर्नमेन्ट शरीर न होने पर भी उसका शरीर है। इसलिए नियमबद्ध आन्दोलन करना आवश्यक व अच्छा है, किन्तु जो मुटमर्दी करने वाले हैं, जो उपद्रव करके डराने वाले हैं, अथवा जो अपने मिथ्या स्वार्थ के लिए औरों के प्राण लेने पर उतारू होते हैं, उनके बराबर दुनियाँ में कोई नीच नहीं। वे राजा के कट्टर दुश्मन हैं। सचमुच देशद्रोही हैं।'[2] वस्तुतः ये विचार कांग्रेस की तत्कालीन नीति के अनुरूप राजभक्ति से प्रभावित तथा क्रांतिकारी प्रयासों के विरोध में हैं। प्रकारान्तर से राजभक्ति का यह स्वरूप किशोरीलाल गोस्वामी के सामाजिक उपन्यासों में भी मिलता है। दोनों में अन्तर केवल यह है कि लज्जाराम मेहता ने राजभक्त का खुला प्रदर्शन किया है, जब कि गोस्वामी जी ने मात्र सकेत या ब्रिटिश शासन की प्रशस्तियाँ लिखकर। राधाकृष्णदास ने भी 'निस्सहाय हिन्दू' में अंग्रेजी राज्य के सुख-साज के कारण राजभक्ति की दुहाई के साथ अधिक कर लगाने की नीति पर दुःख भी प्रकट किया है। देशवासियों की अकर्मण्यता और दुरवस्था, दोनों का वर्णन कर उद्‌बोधन का प्रयास भी आलोच्य उपन्यास में मिलता है। एक समीक्षक के शब्दों में 'इस उपन्यास के द्वारा निम्न वर्ग को पहली बार मंच पर लाया गया। निम्नवर्गीय जीवन की दरिद्रता और दुर्दशा का प्रथम बार इस उपन्यास में दर्शन होता है।' उपन्यास गो-वध की समस्या पर आधारित है और मुस्लिम पात्र अब्दुल अजीज और उसकी पत्नी भी गो-वध निवारण

---

१. डॉ० पट्टाभि सीतारामय्या: संक्षिप्त कांग्रेस का इतिहास, पृष्ठ ९५
२. लज्जाराम: आदर्श हिन्दू, भाग ३, पृष्ठ २४०

के लिए बलिदान हो जाते है। इस तरह यह एक समस्यामूलक उपन्यास है जिसे जातीय धरातल से उठाकर सास्कृतिक स्तर दिया गया है।

इस युग के कतिपय सामाजिक उपन्यासो म राष्ट्रीयता का धधला स्वरूप भी देखा जा सकता है। धूमिल होते पर भी यह राष्ट की सुख समृद्धि की आकाक्षा तथा अतीत गौरव की एक झलक देता है। सच तो यह है कि विवेच्य काल के उपन्यासकारो ने हिन्दू सस्कृति और उसके आदर्शो के प्रति ही विशेष अभिरुचि प्रदर्शित की है। फलत उनकी राष्ट्रीयता किंचित बदल कर जातीयता के अधिक निकट प्रतीत होती है। प्राचीन गौरव तथा सस्कृति इस युग के राष्ट्र प्रम की वाहिका के रूप म सम्मुख आई। आय समाज ने इस प्रवृत्ति को विकसित करने म महत्वपूण भूमिका अदा की। अतीत के प्रति अनुरागमयी दृष्टि इस युग के सामाजिक तिलस्मी एव ऐतिहासिक उपन्यासो मे मिलती है। राष्ट्रीय उद्योग धधो के विकास कृषि सुधार शिक्षा आदि की योजनाए भी कुछ उपन्यासो मे निर्देशित है किन्तु उनकी व्यापकता प्राप्त नहीं हो सकी है। हिन्दू गृहस्थ म हरसहाय ग्रामीण जीवन को देशी उद्योगो तथा कृषि विकास के नए परिवेश मे देखने का प्रयत्न किया है[1]। ब्रजनन्दन सहाय के अरण्यबाला म इस तरह की योजनाए महात्मा प्रमानन्द के माध्यम स प्रस्तुत की गई है—

कल काटे का जहा-तहा कारखाना खोलो। तुम्हे कपडा लोहा चमडा आदि सब पदार्थों का कारखाना खोलना होगा। ऐसा उपाय करना होगा कि अपने नित्य के व्यवहार के आवश्यक पदार्थो के लिए यहा के रहने वालो को दूसरो का मुह न जोडना पडे। दूसरी बात यह है कि तुम्हारा देश कृषिप्रधान है अतएव यथेष्ट धन व्यय कर यहा के खेतो को उपजाऊ बनाने का यत्न करो। कृषको को खेती की सामग्री आधुनिक रीति से तैयार करा दो जो कृषक तुमसे खेती-बारी के लिए ऋण मागे उसे बिना सूद का दो[2]। वस्तुत यह योजना काग्रस की आर्थिक नीति के अनुरूप तथा अग्रेजी राज्य की आर्थिक नीति के विरुद्ध मोर्चाबन्दी की है हिन्दू गृहस्थ का एक पात्र ग्रामीण उद्योग की दिशा म आगे आकर दियासलाई का कारखाना प्रारम्भ करने के ध्येय स आवश्यक निधि एकत्र करने के लिए विविध राजनीतिक सभाओ की सहयोग प्राप्ति को उत्सुक है। उसके इस काय की सराहना भी की जाती है आपका काय वस्तुत भारतवर्ष का हित करनेवाला है। इस काम से केवल इस देश के दीन लोगो का ही पेट न भरेगा किन्तु भारतवर्ष से विदेश को प्रतिवर्ष जाने वाला हजारो रुपया बच

---

१ लज्जाराम शर्मा मेहता हिन्दू गृहस्थ, पृष्ठ ६५

२ ब्रजनन्दन सहाय अरण्यबाला, पृष्ठ ३२५

जावेगा[१]।'' 'परीक्षा गुरु' के पात्र भी शिक्षा-विस्तार तथा आर्थिक उन्नति के लिए प्रयत्नशील है। वे जानते है कि राष्ट्र प्राकृतिक साधनो से सम्पन्न है और यदि उनका समुचित उपयोग किया जावे तो देश खुशहाल हो सकता है। एक पात्र के शब्द हैं. 'हिन्दुस्तान की भूमि मे ईश्वर की कृपा के उन्नति करने के लायक सब सामान बहुतायत से मौजूद है केवल नदियों के पानी ही से बहुत तरह की कलें चल सकती है।' उद्योग एव व्यापार की सफलता राष्ट्रीय एकता पर निर्भर है। इसीलिए उपन्यासकार इस ओर ध्यानाकर्षित करते हुए कहता है—"जब तक हिन्दुस्तान मे और देशो से बढकर मनुष्य के लिए वस्त्र और सब तरह के सुख की सामग्री तैयार होती थी, रक्षा के उपाय ठीक-ठीक बन रहे थे, हिन्दुस्तान का वैभव प्रतिदिन बढ़ता जाता था, परन्तु जब से हिन्दुस्तान का एका टूटा और देशो मे उन्नति हुई, बाफ और बिजली आदि कलो के द्वारा हिन्दुस्तान की अपेक्षा थोडे खर्च, थोडी मेहनत और थोडे समय मे सब काम होने लगा। हिन्दुस्तान की घटती के दिन आ गए.. ।" निश्चय ही देश की आर्थिक समृद्धि से सम्बन्धित ये प्रश्न एव उनके समाधान राष्ट्रीयता के रूप मे ही आए है।

आलोच्य काल के अनेक उपन्यासो मे अग्रेजी शिक्षा-व्यवस्था की अव्यावहारिक पक्ष पर प्रकाश डालते हैं। इन उपन्यासो मे यद्यपि राष्ट्रीयता शिक्षा सम्बन्धी कोई सुसम्बद्ध योजना नही मिलती है। जो विचार व्यक्त किये गए है, वे धार्मिक मताग्रह से ग्रस्त है। इन उपन्यासकारों की दृष्टि मे अग्रेजी शिक्षा का ध्येय भारतीय नागरिको को क्लर्क बनाने तक सीमित था। कांग्रेस भी समय समय पर नौकरशाही की इस प्रवृत्ति की कटु आलोचना करती रहती थी। उपन्यास-लेखको का भी आग्रह है कि भारतीय नागरिक विदेशी शासको की नौकरी करने के बजाय देश की सुख-समृद्धि के लिए व्यापार व्यवसाय को अपनावे। शिक्षा सम्बन्धी विचारधारा की इसी परम्परा मे राष्ट्रभाषा या जातीय भाषा की आवश्यकता पर विचार करते है। 'अरण्यबाला' मे इस सन्दर्भ मे कहा गया है "शिक्षा तुम्हे अपने देश की भाषा मे देनी होगी। किन्तु लोगो की विदेशीय विविध भाषाओ को सीखना तो दूसरी बात है, किन्तु शिक्षा या माध्यम तुम्हें जगन्मान गुणागरी नागरी ही को रखना पड़ेगा।"[२] खेद है कि राष्ट्रभाषा के रूप मे हिन्दी को जिस आवश्यकता को हमारे प्रारम्भिक उपन्यासकारो ने पराधीनता के युग मे ही पहचान लिया था, स्वाधीनता के बाद भी वह राष्ट्र के कर्णधारो के लिए समस्या ही बनी हुई है।

---

१. लज्जाराम शर्मा मेहता हिन्दू गृहस्थ, पृष्ठ ६८
२ ब्रजनन्दन सहाय अरण्यबाला, पृष्ठ ३२७

भ्रष्टाचार का विरोध

ब्रिटिश शासन-काल मे भ्रष्टाचार अनेक स्तरो पर व्याप्त था। पूर्व प्रेमचन्द युग के उपन्यासकारो ने प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष प्रणाली से इसका विरोध किया है। हिन्दी उपन्यास-साहित्य मे पुलिस विभाग के भ्रष्टाचार का व्यापक चित्रण मिलता है। प्रारम्भिक उपन्यासो से लेकर वर्तमान युग तक इस परम्परा का शृ खलाबद्ध रूप देखा जा सकता है और जो स्वतन्त्र शोध का विषय हो सकता है। 'आदर्श दम्पति' मे अमरफीलाल की जाच की आड मे पुलिस के भ्रष्टाचार का एक सजीव चित्र अकित है।[1] किशोरीलाल गोस्वामी के 'चन्द्रावली' मे भी पुलिस विभाग की घूसखोरी पर व्यग्य किया गया है। नियुक्तियो मे भ्रष्टाचार का एक उदाहरण 'हिन्दू-गृहस्थ' मे इस प्रकार आया है—

"वहाँ के हाई स्कूल मे एक मास्टरी खाली थी। इस विज्ञापन के प्रकाशित होते ही हेडमास्टर के पास अर्जियो का ढेर लग गया। बडी सिफारिशें आई। मीयाद पूरी होने पर हेडमास्टर साहब ने उम्मीदवारो की गिनती की तो २० रुपया की नौकरी के लिए तीन एम० ए०, पन्द्रह बी० ए० और छप्पन-एन्ट्रेंस निकले। उस जगह पर एक साहब के लडके के खानसामा का लडका जो एन्ट्रेंस फेल था, भर्ती हुआ। साहब ने उसके लिए बहुत कोशिश की थी। बस इसी कारण से उसे नौकरी मिल गई[2]।"

प्रेमचन्द-पूर्व-युग मे हिन्दी उपन्यासो का मुख्य विषय सामाजिक तथा घटनात्मक था, फिर भी ऐतिहासिक उपन्यास भी काफी सख्या मे लिखे गये। किशोरीलाल गोस्वामी हिन्दी के प्रथम ऐतिहासिक उपन्यास-लेखक है। अन्य उपन्यासकारो मे गगाप्रसाद गुप्त, जयरामदास गुप्त, बलदेवप्रसाद मिश्र, गिरिजानन्द तिवारी, मिश्रबन्धु इत्यादि के नाम उल्लेखनीय है। राजनीतिक दृष्टि से इन उपन्यासो का महत्त्व यही है कि इनके माध्यम से राष्ट्र को आत्म-विश्वासी बनने की प्रेरणा मिली। इन उपन्यासकारो का प्रेरणा-स्रोत मुख्यत मध्यकाल था। फलतः युगीन राजनीतिक सामाजिक वातावरण के कारण राजपूतों का मुसलमानों के साथ सघर्ष उपन्यास की कथावस्तु बनी। कर्नल टॉड का 'राजस्थान का इतिहास' अनेक ऐतिहासिक कथानको का आधार बना और आत्म-गौरव की भावना को (जिसे स्थूल रूप मे राष्ट्र-प्रेम भी कहा जा सकता है) अभिव्यक्ति मिली। राष्ट्रीयता के राजनीतिक एव सामाजिक विचार भी इन इस उपन्यासो मे प्रतिबिम्बित हुए।

हिन्दू-मुस्लिम साम्प्रदायिक भावना जड पकडती जा रही थी। सर सैयद

---

१ लज्जाराम शर्मा मेहता - आदर्श दम्पति, पृष्ठ २

२. लज्जाराम शर्मा मेहता हिन्दू गृहस्थ, पृष्ठ ७

अहमद खाँ ने कांग्रेस के विरोध में सन् १८८८ में ही 'अपर इण्डिया एसोसिएशन' की की स्थापना कर ली थी। धार्मिक आन्दोलनों द्वारा उद्भूत सांस्कृतिक जागरण के इस नवयुग में धार्मिक-राजनीतिक कारणों से मुसलमानों को कुत्सित रूप में चित्रित करना आश्चर्यजनक नहीं कहा जा सकता। पराधीनता के शिकंजे में फँसे होने के कारण ब्रिटिश सत्ता का विरोध करना इन उपन्यासकारों के लिए सम्भव नहीं था। अतः अपने आक्रोश को व्यक्त करने के लिए उन्होंने उन मुसलमान शासकों के काल को विषय बनाया, जो अनाचार और अत्याचार के लिए ब्रिटिश शासन का प्रतीक बन सकता था। वस्तुतः प्राचीन संस्कृति का आश्रय लेने का अर्थ ही था पाश्चात्य एवं मुस्लिम दोनों संस्कृति के प्रति घृणा की भावना। प्राचीन इस्लाम के वैभव का गौरव भी हिन्दुओं के लिए विदेशी तत्त्व था। लोकमान्य तिलक ने शिवाजी को राष्ट्रीय योद्धा के रूप में देखा। फलतः मुसलमानों को उपन्यास में मलिन रूप में चित्रित करने की प्रवृत्ति आई। किशोरीलाल गोस्वामी ने 'हीराबाई या बेहयाई का बोरका,' 'लखनऊ की कब्र या शाही महलसरा,' 'रजिया बेगम या रंगमहल में हलाहल' आदि उपन्यासों में पूर्वग्रह से मुसलमान शासकों को कुत्सित रूप में चित्रित किया है। इन ऐतिहासिक उपन्यासों में राजनीतिक तत्त्व भी बीज रूप में दिखलाई पड़ते हैं। 'रंग महल में हलाहल' में एक स्थल पर कहा गया है—"आपस की नाइत्तिफाकी के बीज, दूसरे की तरक्की पर जलने ने ही हिन्दुस्तान को मुद्दत से ख्वाब कर रखा है[1]।" 'नूतन ब्रह्मचारी' में भी ऐसा ही कथन मिलता है "जहाँ एकता है वहाँ यह कब सम्भव है कि कोई बाहरी आकर अपना प्रभुत्व जमा सके[2]।" इन उदाहरणों से हम कह सकते हैं कि इन उपन्यासकारों के सम्मुख राष्ट्रीय एकता की भावना थी, भले ही तत्कालीन स्थितियों में वे उसे स्पष्टता के साथ व्यक्त न कर सके हों। इस राष्ट्रीय एकता के लिए वे समाज को वैदिक पद्धति पर संगठित करने को उत्सुक थे। इसके लिए वे धर्म साध्य और साहित्य को साधन के रूप में देखते थे। 'लीलावती व आदर्श सती' में कहा गया है कि "अभी भी कुछ नहीं बिगड़ा है, यदि अंग्रेजी बाज जरा बाज आए और अपने समाज को उसी पुरानी रीति से सम्पन्न करें, जो वैदिक और वर्तमान-काल के उपयुक्त हो[3]।" 'तारा' में भी ब्रिटिश शासन-व्यवस्था की प्रशंसा के साथ ही देश की दयनीय स्थिति का अंकन भी किया है। वस्तुतः इन उपन्यासकारों में हिन्दू राष्ट्रीयता का स्वर ही प्रबल था।

प्रेमचन्द-पूर्व-युग में सामाजिक एवं ऐतिहासिक उपन्यासों में ही राजनीति का

---

१ किशोरीलाल गोस्वामी : रंग महल में हलाहल, पृष्ठ १७

२. बालकृष्ण भट्ट : नूतन ब्रह्मचारी, पृष्ठ २१

३ किशोरीलाल गोस्वामी : लीलावती वा आदर्श सती, पृष्ठ १२३

सांकेतिक रूप मिलता है। यह भी स्पष्ट तथा प्रभावोत्पादक नहीं कहा जा सकता। तिलस्मी ऐयारी, जासूसी एवं भाव प्रधान उपन्यासों में तो यह क्षीण स्वरूप भी नहीं दिखलाई देता। महेन्द्र चतुर्वेदी ने पूर्व-प्रेमचन्द युग के 'जासूसी डकैती उपन्यास के सर्वेक्षण में दुर्गाप्रसाद खत्री के उपन्यासों में 'राष्ट्रीय चेतना का आलोक घटनाओं के अंबार में से फूटता हुआ' देखा है।[1] किन्तु वास्तविकता तो यह है कि दुर्गाप्रसाद खत्री के इन उपन्यासों का रचना काल सन् १९२७ से १९३४ है और इस दृष्टि से ये प्रेमचन्दयुगीन उपन्यास हैं।[2]

इस युग के तिलस्मी ऐयारी उपन्यास कुतूहल और मनोरंजनप्रधान हैं और राजनीति से उनका किंचित् सम्बन्ध नहीं है। देवकीनन्दन खत्री के 'चन्द्रकान्ता' एवं 'चन्द्रकान्ता सन्तति' में तिलस्मी तथा ऐयारी हथकण्डों का चमत्कार भरा है। इन उपन्यासों के सम्बन्ध में यह कथन उचित ही है कि "इनका उद्देश्य केवल मनोरंजन करना था और इसकी सृष्टि के निमित्त वे पाठक की कुतूहल-वृत्ति जगाकर उसका परितोष करते हैं। इनका प्रयत्न होता है, इस यथार्थ जगत् की जानी-पहचानी धरती से उठाकर हमें एक ऐसे लोक में पहुँचा देना जहाँ की हर चीज आश्चर्यमयी हो, मन में कौतुक जगाये।"[3] वस्तुतः यह प्रवृत्ति राजनीति की यथार्थ एवं वैचारिक प्रवृत्ति के विपरीत है, अतः इन उपन्यासों में राजनीतिक तत्त्वों का अभाव आश्चर्यजनक नहीं माना जाना चाहिए। जहाँ मात्र मनोरंजन ही उपन्यास का ध्येय हो, वहाँ समाज के उपेक्षित तथा शोषित जन-जीवन की अपेक्षा की भी नहीं जानी चाहिए।

इस युग के उपन्यासों की दूसरी धारा जासूसी उपन्यासों से सम्बन्धित है। प्रत्यक्ष रूप से राजनीति से असम्पृक्त रहते हुए भी कुछ जासूसी उपन्यासों में डाकू पात्रों को आतंकवादी क्रान्तिकारियों के धरातल पर लाने का प्रयास मिलता है। एक मूल्यांकन में कहा गया है कि 'डाका डालने वाले पात्र नायक की गरिमा से मंडित भी किये गये क्योंकि उनका उद्देश्य अत्याचारी धनाढ्यों को दंडित करके असहायों की की सहायता करना होता था। इन उपन्यासों में चित्रित उदार-हृदय डाकू वीर और अभिमानी होते हैं किन्तु उनकी राहें तो नैतिक एवं वैधानिक राहों को काटकर ही चलती हैं--फलतः युग की नैतिक भावना उन्हें क्षमा नहीं करती।' इसी श्रेणी में वे उपन्यास भी आते हैं जिनमें भारतीय स्वतन्त्रता के लिए प्रयत्न करने वाले हिमालय आन्दोलनकारियों की कथाएँ कही गई हैं। उत्साही देशभक्तों के कार्य-कलाप को केन्द्र

१. महेन्द्र चतुर्वेदी : हिन्दी उपन्यास : एक सर्वेक्षण, पृष्ठ ३६

२ देखिए परिशिष्ट—१

३. महेन्द्र चतुर्वेदी : हिन्दी उपन्यास : एक सर्वेक्षण, पृष्ठ २६

बनाकर लिखे जाने वाले ये उपन्यास अपना विशेष महत्त्व रखते हैं[1]। गोपालराम गहमरी इस युग के प्रमुख जासूसी उपन्यासकार हैं, जिन्होंने यूरोपीय जासूसी उपन्यासों की प्रवृत्ति को हिन्दी में अवतरित किया। जासूसी उपन्यासों में डाकुओं के जिस स्वरूप को क्रान्तिकारी आभास के रूप में दर्शाया गया है वह दुर्गाप्रसाद खत्री के के उपन्यासों में ही मिलता है उसके पूर्व के उपन्यासों में नहीं।

प्रेमचन्द-पूर्व-युग के हिन्दी उपन्यासों में राजनीतिक तत्वों का स्पष्ट रूप नहीं उभर सका। कुछ सामाजिक उपन्यासों में राष्ट्रीय भावना का जो रूप दिखाई भी पड़ता है, वह सीमित एवं अविकसित है। सामाजिक तथा ऐतिहासिक उपन्यासों में धर्म-प्रचार की प्रवृत्ति के कारण जिस राष्ट्रीयता का रूप उभरता है, उसे हिन्दू राष्ट्रीयता का पर्याय ही माना जा सकता है। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से देखा जाए तो बीसवीं शती के प्रारम्भ में जो सामाजिक आन्दोलन हुए, वे मूलतः जातीय भावना से ही अनुप्राणित हैं। उनकी राष्ट्रीयता अथवा देशोद्धार की भावना जाति को जगाकर सुगठित करने तक ही सीमित थी। उसमें राष्ट्रीय भावना का वह व्यापक रूप स्पष्ट नहीं हो सका था, गांधी-युग में दिखाई पड़ता है। सनातनधर्मी उपन्यासकारों की हिन्दू राष्ट्रवादिता तात्कालिक युग के अनुरूप ही है। इसी दृष्टिकोण के कारण ये लेखक मुसलमानों के प्रति अनुदार रहे हैं और असहिष्णुता का परिचय देते हैं। ब्रिटिश शासन-व्यवस्था के दमनात्मक कानूनों के कारण इन उपन्यासकारों के लिए राष्ट्रीय भावनासमन्वित उपन्यासों की रचना करना एक टेढ़ी खीर थी। हम इनकी तुलना उस चक्की के साथ कर सकते हैं, जिसके असमान पाटों में एक है राजभक्ति का और दूसरा राष्ट्र-प्रेम का। इस विषम अवस्था में इनका ध्यान राजनीतिक समस्याओं से हटकर सामाजिक प्रश्नों में उलझना स्वाभाविक था। इन उपन्यासों में एक विशिष्टता मध्य वर्ग के पात्रों की उद्भावना भी है, जिसे राजनीतिक प्रभाव ही माना जाना चाहिए। 'परीक्षा गुरु' के मध्यवर्गीय पात्र राष्ट्रीय चेतना से युक्त हैं और शिक्षा के विकास के लिए स्कूल-कालेजों की स्थापना करते हैं। किशोरीलाल गोस्वामी के पात्रों को भी मध्यवर्गीय ही कहा जा सकता है। मध्य वर्ग अंग्रेज़ी शासन की देन है, अतः उसकी ब्रिटिश शासन के प्रति राज-भक्ति की भावना स्वाभाविक ही थी। यही कारण है कि राष्ट्रीय भावना के बावजूद भी वे विदेशी सत्ता का सक्रिय विरोध नहीं करना चाहते थे। जो राजनीतिक स्वर मुखरित हुए भी, वे इन सुधारवादी एवं उपदेशात्मक सामाजिक उपन्यासों में ही। हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासों की यही पृष्ठभूमि है, जिस पर आगे चलकर राजनीतिक उपन्यासों का प्रासाद निर्मित हुआ। प्रेमचन्द के पदार्पण तक हिन्दी उपन्यासों का प्रासाद निर्मित हुआ।

---

१ महेन्द्र चतुर्वेदी : हिन्दी उपन्यास : एक सर्वेक्षण, पृष्ठ ३१–३२

प्रेमचन्द के पदार्पण तक हिन्दी उपन्यासकार उपन्यास के महत्व से अवगत हो गए थे। 'राधाकान्त' की भूमिका में ब्रजनन्दन सहाय ने इस ओर उपन्यासकारों का ध्यान आकर्षित करते हुए लिखा था—"भविष्य में उपन्यास आदि ही के सहारे लोग समाज, देश तथा जाति की रीति-नीति एवं आचार विचार से अवगत होते हैं। • उपन्यास लेखकों को उपन्यास बहुत सोच विचार कर लिखना उचित है।" यदि यह दृष्टिकोण दो दशक पूर्व निर्मित हो जाता तो हिन्दी साहित्य को बंग भंग और क्रान्ति कारी आन्दोलन पर दो-एक अच्छे राजनीतिक उपन्यासों की उपलब्धि हो सकती थी।

(ख) हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासों का विकास

साहित्य और राजनीति

साहित्य में राजनीतिक तत्वों को समुचित स्थान देने का विरोध सदैव से किया जाता रहा है। इधर कुछ समय से समाज में राजनीतिक के प्रभावकारी विस्तार के परिणामस्वरूप राजनीतिज्ञों ने अपनी-अपनी मान्यताओं के अनुरूप जन-जीवन के बीच विचार धाराओं को प्रसारित करने के लिए साहित्य का आश्रय लिया। फलतः लेखकों द्वारा भी उनकी कृतियों में राजनीतिक विचारों का समर्थन किया जाने लगा। अनेक विचारक इस तथ्य को स्वीकार करने लगे हैं कि जन जागरण के इस युग में वर्तमान राजनीतिमय जीवन से साहित्य को विलग नहीं किया जा सकता। साहित्य अन्य विशेषताओं के साथ राष्ट्रीयता के वास्तविक स्वरूप के प्रकटीकरण से माध्यम के रूप में जब स्वीकृति किया जाने लगा तब वह समाज और उसके वर्ग सघर्ष से अपने को पृथक नहीं रख सकता। यह कहा गया है कि 'समाज के अन्तर्गत विभिन्न स्वार्थों के संघर्ष और उसके फलस्वरूप समाज में होने वाले परिवर्तन की प्रक्रिया का अध्ययन करते हम सामाजिक विकास में बोधपूर्वक सहायता दे सकते हैं[1]। इतना ही नहीं अपितु समाज के यथार्थ चित्रण और उसकी आशाओं और आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति करना साहित्यकारों का दायित्व माना जाने लगा है। आचार्य नरेन्द्र देव के शब्दों में "साहित्यिक अपने कर्तव्य का तभी निर्वाह कर सकता है, जब कि वह जीवन की गहराई से अध्ययन करे, वह समाज की जीवन-सरिता में ऊपरी तट पर स्चारित होने वाली प्रवृत्तियों तक ही अपनी दृष्टि को सीमित न रखे, अन्त सलिला सरस्वती की भांति नीचे रहकर

१ आचार्य नरेन्द्र देव : राष्ट्रीयता और समाजवाद, पृष्ठ ५६४

प्रच्छन्न रूप से कार्य करने वाली शक्तियों का भी अध्ययन करे। यह अध्ययन जन-जीवन से अलग रहकर नहीं किया जा सकता, प्रगतिशील साहित्यिक को जीवन की समस्याओं का अध्ययन करना होगा, अपनी रचनाओं में उसी समाज के वर्तमान रूप का चित्रण करना होगा, जनता की मूक अभिलाषाओं को वाणी देनी होगी, इतिहास का अध्ययन करके उसकी जीवन-प्रदायिनी शक्तियों का समर्थन करते हुए जनता का मार्ग-दर्शन करना होगा[1]।

उपन्यास को साम्यवादी लेखक रैल्फ फाक्स संसार की काल्पनिक संस्कृति के लिए पूँजीवादी सभ्यता की महत्वपूर्ण भेंट के रूप में स्वीकार करता है। उनके अनुसार उसका सबसे महान् साहसिक अभियान उपन्यास के रूप में ही हुआ है। उपन्यास में उस पूँजीवादी सभ्यता ने मानव की खोज की है। स्पष्ट है कि वह उपन्यासों का उद्भव राजनीति से मानता है। वस्तुतः यह एक ऐसी लचीली किन्तु सामर्थ्यवान विधा है जो समग्र मानव जीवन को उसकी युग-चेतना के प्रवाह के साथ ध्वनित करने की क्षमता रखता है। आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी ने उपन्यास की व्याख्या करते हुए उपन्यास के इस गुण का उल्लेख किया है। उनका युक्तियुक्त कथन है कि 'साहित्य क्षेत्र में उपन्यास ही एक ऐसा उपकरण है, जिसके द्वारा सामूहिक मानवजीवन अपनी समस्त भावनाओं एवं चिन्ताओं के साथ सम्पूर्ण रूप से अभिव्यक्त हो सकता है। मानव-जीवन के विविध चित्रों को चित्रित करने का जितना अवकाश उपन्यासों में मिलता है उतना अन्य साहित्यिक उपकरणों में नहीं[2]। साहित्य के जितने रूप विधान हो सकते हैं उनमें उपन्यास एक ऐसी विधा है जो परिस्थितिजन्य रूप धारण कर सकती है। उसके सम्बन्ध में प्राय सभी परिभाषाएं इस एक निष्कर्ष पर पहुँचती हैं कि उसमें मानव-जीवन का प्रतिनिधित्व और वास्तविकता की सेवा में नियोजित कल्पना का योग आवश्यक है।

व्यक्ति और समाज एक दूसरे के अन्योन्याश्रित है और इसी रूप में ही वे अपने विकास का मार्ग खोज रहे हैं। साहित्य भी सामूहिक मानव-जीवन एवं समाज का अभिन्न होने के नाते उससे पृथक् नहीं रह सकता। साहित्य केवल शब्दों का समूह नहीं है। उसमें राजनीति और संस्कृति का समावेश होता है[3]। विद्वानों का एक दूसरा पक्ष इस समावेश को अनुवर्ती रूप में ही स्वीकारता है। आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी के अनुसार 'हम साहित्य से समाज का, सामाजिक जीवन का, सामाजिक विचार-धाराओं

---

१. राल्फ फाक्स : नावल एण्ड द पीपुल, पृष्ठ ६०
२. आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी : नया साहित्य : नये प्रश्न, पृष्ठ १
३. रांगेय राघव : प्रगतिशील साहित्य के मानदण्ड, पृष्ठ ६०

का-वादो का सम्बन्ध मानते हैं, किन्तु अनुवृर्ती रूप में। साहित्य की अपनी सत्ता के अन्तर्गत उसके निर्माण मे इनका स्थान है। ये उसके उपादान और हेतु हुआ करते हैं नियामक और अधिकारी नही। साहित्य की अपनी स्वतंत्र सत्ता है, यद्यपि वह सत्ता जीवन सापेक्ष्य है[1]। वे ये भी मानते हैं कि "न केवल साहित्य का सृजन उन-उन समयो के सामयिक यथार्थ, अथवा वर्गीय सघर्ष की स्थिति विशेष से परिचालित होता है, वह उस समय के सत्ताधारी वर्ग का प्रति निधित्व भी करता है और साथ ही उसका प्रचार-प्रसार, अस्वाद और उपयोग भी वर्गीय सीमाओ से वेष्ठित होता है। यदि कोई वर्गीय साहित्य सामान्य जन-समाज तक पहुँचता है, तो उक्त सत्ताधारी वर्ग के ही लाभ के लिए।"

उपन्यास स्वय मे एक सम्पूर्णता होती है जो उपन्यासकार के व्यक्तिगत विचाराग्रहो से प्राप्त ससार के अनुभवो और जीवन दर्शन का दर्पण होती है। उपन्यास उसके रचियता के मस्तिष्क का प्रतिबिम्ब होता है। काल के भवर जाल मे पडकर परिस्थितियाँ युगानुरूप परिवर्तित होती रहती हैं और कितना ही अच्छा नियम अथवा मत क्यों न हो, वह कालबाधित होने के कारण तथा मानव की अपूर्णता के कारण समय के अन्तर पर अपने को वर्तमान के उपयुक्त नही पाता। समय के अनुरूप सत्य की उपलब्धि प्रयोगात्मक क्रियाओ द्वारा एक मानवीय चेष्टा है।

हिन्दी मे राजनीतिक उपन्यास का जन्म परिस्थिति-जन्य है जो सामाजिक उपन्यास की परिसीमा से आगे बढा हुआ एक साहसिक प्रयास है। हिन्दी उपन्यास का शैशव अति क्षीण सामाजिक एव राजनीतिक वातावरण मे प्रारम्भ हुआ था। सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक समस्याए उग्र रूप मे नहीं थी। अवकाश की मात्रा अधिक थी और मनोरजन के साधन के रूप मे उपन्यास पाठको के अवकाश के मित्र थे। हिन्दी के प्रारम्भिक उपन्यास मनोरजन प्रधान थे किन्तु प्राचीन नैतिक आदर्शों के अनुरूप ज्ञानवार्ता पुट भी उनमें निहित रहता था।

हिन्दी उपन्यास के आरम्भिक वातावरण मे समयक्रम से परिवर्तन हुआ। जागरण-काल के पश्चात् भारतीय इतिहास मे बीसवी शताब्दी के आरम्भ के दशको मे भारतीय जीवन मे क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए। भारतीय राजनीति के क्रमिक विकास का अध्ययन आगामी परिच्छेद मे किया गया है, उसकी पुनरावृत्ति यहाँ अभीष्ट नहीं। सामाजिक एवं राजनीतिक चेतना से उत्पन्न विचार जगत का परिवर्तन तत्कालीन साहित्य मे भी परिलक्षित होने लगा। शिक्षा के प्रसार के कारण पाश्चात्य सभ्यता और सस्कृति से सम्पर्क बढा। अग्रेजी साहित्य अनुशीलन मे वृद्धि हुई। साधारण

---

१. आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी : नया साहित्य : नये प्रश्न, पृष्ठ १८

जनता भी नागरिक अधिकारों के प्रति सजग हो उठी। सन् १९२० से महात्मा गाँधी के नेतृत्व में राजनीतिक गतिविधियाँ तीव्र गति से संचालित हुई और स्वाधीनता प्राप्ति तक का यह युग राजनीतिक संघर्षकाल रहा। राजनीतिक जागृति ने कांग्रेस के साथ हिन्दू महासभा, मुस्लिम लीग और कम्युनिस्ट पार्टी को जनता के सम्मुख प्रस्तुत किया। इसका जन-साधारण और उपन्यास पर अपेक्षित प्रभाव पड़ा। 'देश की राजनीतिक परिस्थियों ने भी उपन्यास-रचना-विधान के उद्देश्य को प्रभावित किया है। विभिन्न राजनीतिक दलों के पोषकों-समर्थकों ने अपनी-अपनी मान्यताओं के अनुरूप जन-जीवन के बीच विचार-धाराओं को प्रसारित किया। फलत. लेखकों के द्वारा भी उसी रूप में उनकी कृतियों में विचारों का समर्थन किया गया। आधुनिक काल में भारत के राजनीतिक क्षेत्र में जहाँ एक विशाल जन-समूह महात्मा गाँधी का अनुयायी था वहीं मार्क्सवादी विचारधारा का प्रचार भी उत्तरोत्तर विकास करता जाता था। यह स्थिति नितान्त स्वाभाविक थी। जन-जागरण-काल में विचारों की स्वतन्त्रता का विशेष स्थान होता है। परन्तु, यदि विभिन्न राजनीतिक वादों का जन्म एवं विकास भारत में भी हुआ तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। ये राजनीतिक वाद मुख्यत. गाँधीवाद, समाजवाद एवं साम्यवाद के रूप में आए[1]।'

यह आश्चर्यजनक साम्य है कि भारतीय राजनीति और हिन्दी राजनीतिक उपन्यास का विकास समानान्तर रूप से हुआ। भारतीय राजनीतिक चेतना का प्रारम्भ सन् १८८५ में कांग्रेस की स्थापना से सुव्यवस्थित हुआ। कांग्रेस का एक राजनीतिक उद्देश्य था, परन्तु साथ ही वह राष्ट्रीय पुनरुत्थान के आन्दोलन का प्रतिपादन करने वाली संस्था भी थी[2]।

जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है कि सन् १८८५ से १९०५ तक कांग्रेस का युग नरम राष्ट्रीयता का था। "इस समय कांग्रेस की राजनीति जनता की राजनीति न थी। न जनता उसे समझती थी और न जनता को वह समझाने की जरूरत ही समझी जाती थी[3]।" यह वस्तुतः बड़े आश्चर्य की बात है कि राजनीतिक जागृति अत्यन्त मन्द गति से हुई और पूर्ण स्वाधीनता का निश्चय करने में अर्द्ध शताब्दी का समय लगा गया।

हिन्दी उपन्यास को इस पृष्ठभूमि में देखने से स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय राजनीति के सदृश्य ही सन् १८८२ से १९०५ तक का समय हिन्दी उपन्यास का

---

१. श्रीनारायण अग्निहोत्री : उपन्यास तत्व एवं रूप-विधान, पृष्ठ १६५
२. डॉ० पट्टाभि सीतारामय्या : संक्षिप्त कांग्रेस का इतिहास, पृष्ठ ७
३. आचार्य नरेन्द्र देव . राष्ट्रीयता और समाजवाद, पृष्ठ १३७

निर्माण काल था। भारतीय राजनीति के समान ही हिन्दी उपन्यास भी विकास के लिए संघर्ष कर रहा था, किन्तु संघर्ष की गति शिथिल होने से विशेष उपलब्धि नही मिलती। इनमे यथार्थ चित्रण का अभाव है तथा शृङ्गारिक भावना का परिपोषण ही विशेष रूप से किया गया।

राजनीतिक विचार-धारा के क्षीण होने पर भी उसका कुछ-न-कुछ प्रभाव तो समाज पर पड ही रहा था जो समाज की समस्याओ के प्रति पूर्णतः विरक्त न था।

सम-सामयिक चित्रण राजनीतिक उपन्यास का गुण है और उसका बीज इस काल मे अकुरित हुआ पर अनुवर्रक भूमि के कारण पनप न सका।

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन का तीसरा चरण महात्मा गाँधी के नेतृत्व मे सन् १९१९ से आरम्भ हुआ और उसकी समाप्ति भारत की स्वतत्रता के साथ सन् १९४७ मे हुई। भारतीय राजनीति और हिन्दी उपन्यास दोनो की दृष्टि से यह कालावधि विकास काल कही जा सकती है। भारतीय राजनीति का नेतृत्व कर रहे थे महात्मा गाँधी और हिन्दी उपन्यास का मुन्शी प्रेमचन्द।

गाँधी जी ने राजनीति को नया रूप दिया और प्रेमचन्द ने उपन्यास को नई अभिव्यक्ति जो सम-सामयिक राजनीति से प्रभावित थी। दोनो अपने अपने क्षेत्र मे प्रयोग कर रहे थे और दोनो का ध्येय था परिष्कार कर स्वाधीनता की प्राप्ति। गाँधी जी की समस्त राजनीतिक विचारसरणि की आधार-शिला उनके धार्मिक एव नैतिक विश्वास थे। किन्तु उनका धर्म सकुचित और साम्प्रदायिक नही था। वह विश्वजनीन था। उन्होने राजनीति को आध्यात्मिकता का रूप प्रदान किया। वे राजनीतिक विशुद्धता के लिए बाह्य धार्मिक आडम्बर के पक्षपाती न होकर हृदय की मानवता पर जोर देते थे। उनकी दृष्टि मे ईश्वर और सत्य दो पर्यायवाची शब्द थे। ससार सत्य की सुदृढ नीव पर ठहरा हुआ है। वे सत्य का जीवन के विविध क्षेत्रो मे समावेश मानते थे। राजनीति भी इससे अछूती नही। वे मानवतावादी थे।

प्रेमचन्द भी मानवतावादी थे और साहित्य को उसके साधन के रूप मे मानते थे। उनका कथन है "साहित्य की सृष्टि मानव समुदाय को आगे बढाने उठाने के वास्ते ही होती है।" "हमे तो सुन्दर भावो को चित्रित करके मानव हृदय को ऊपर उठाना है। नही तो साहित्य की महत्ता और आवश्यकता क्या रह जायेगी[१]। गाँधी जी राजनीति को मानव जीवन के उन्नयन का साधन मानते थे तो प्रेमचन्द भी साहित्य को राजनीतिक से पृथक् देखने के हिमायती न थे। उनके अनुसार 'साहित्य का आधार

---

१. प्रेमचन्द : कुछ विचार, पृष्ठ ८८

जीवन है। इसी नीव पर साहित्य की दीवार खड़ी होती है।[1] उनका स्पष्ट मत है कि "साहित्य का उद्देश्य जीवन के आदर्श को उपस्थित करना है, जिसे हम जीवन मे कदम-कदम पर आने वाली कठिनाइयो का सामना कर सकें। अगर साहित्य से जीवन का सही रास्ता न मिले तो ऐसे साहित्य से लाभ हो क्या? ......अगर उससे हमे जीवन का अच्छा मार्ग नहीं मिलता तो उस रचना से हमारा कोई फायदा नही।[2]

गाँधी जी राजनीति को जीवन से अलग नही मानते थे और प्रेमचन्द साहित्य को राजनीति से। दोनो का लक्ष्य तत्कालीन समाज को संघर्ष के लिए गतिशील बनाना था जिससे राष्ट्रीय आन्दोलनो को बल मिले। उनका उद्देश्य मानव-जीवन की उन्नता के लिए प्रयास करना था इन राष्ट्रीय परिस्थितियो मे प्रेमचन्द ने कलम उठाई और प्रथम बार हिन्दी उपन्यास को विशुद्ध राजनीतिक संस्पर्श मिला।

सच तो यह है कि उपन्यासकार प्रेमचन्द गाँधीयुग की साहित्यक देन है और उनके उपन्यासो मे गाँधी युग और गाँधीवाद दोनो साकार हो उठें गाँधीयुग मे राष्ट्रीय विचारों का चरम उत्कर्ष दिखाई पड़ता है। स्वाधीनता की भावना का उत्थान होता है और हिन्दी के प्रथम राजनीतिक उपन्यासकार के रूप मे प्रेमचन्द अपने उपन्यासो मे इसे सजाते सवारते हैं। गाँधी जी के जन आन्दोलन के तीन पक्ष थे

१—व्यक्ति को उत्पीडित करने वाली सामाजिक-धार्मिक रूढियों के विरुद्ध आन्दोलन,

२—राष्ट्रीय निर्धनता के फलस्वरूप आर्थिक व्यवस्था के विरुद्ध आन्दोलन, और

३ विदेशी शासन सत्ता के विरुद्ध आन्दोलन।

प्रेमचन्द के उपन्यासो मे उपर्युक्त तीनो स्वरूप उरेहे गये हैं। उपन्यास-साहित्य मे राजनीतिक तत्वों को प्राधान्य देकर उन्होने जिस नूतन परम्परा को प्रारम्भ किया, वह निरन्तर विकासोन्मुख है इस क्रमिक विकास का अध्ययन करने के लिए हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासो को दो वर्ग मे विभाजित किया जा सकता है—

(१) स्वाधीनता-पूर्व-हिन्दी के राजनीतिक उपन्यास,

(२) स्वातन्त्र्योतर हिन्दी के राजनीतिक उपन्यास

स्वाधीनता-पूर्व-हिन्दी के राजनीतिक उपन्यास

जैसा कि हम पूर्व मे ही निर्देशित कर चुके हैं, हिन्दी के राजनीतिक उपन्यास का प्रारम्भ प्रेमचन्द के 'प्रेमाश्रम' से होता है। प्रेमचन्द-पूर्व युग के हिन्दी के सामाजिक

---

१ प्रेमचन्द पृष्ठ ७८१

२ प्रेमचन्द हंस, जनवरी, पृष्ठ १६३५

उपन्यासो मे राजनीतिक चर्चा का प्रायः अभाव है और जहां-कहीं कुछ संकेत मिलता भी है, उसे अत्यधिक महत्व नहीं दिया जा सकता। इसका महत्व राजनीतिक उपन्यासो के अध्ययन की दृष्टि से उतना ही है, जितना चूना-गारे का भवन निर्माण मे। इस तरह स्वाधीनतापूर्व-राजनीतिक उपन्यासो का रचना-काल सन् १९२२ से १९४७ तक निर्धारित होता है। यह विवेच्य-काल वस्तुत राष्ट्रीय आन्दोलनो का युग था। आन्दोलन की सफलता के लिए जनता को जागृत करना अत्यावश्यक था और साहित्य इसकी महत्वपूर्ण धुरी बन सकता था। अतः भारतीय राजनीतिज्ञो का ध्यान साहित्य और साहित्यकार की ओर जाना स्वाभाविक था। महात्मा गांधी ने स्वय सन् १९२२ मे मध्य प्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन के ५ वें नागपुर अधिवेशन के लिए प्रेषित अपने सन्देश मे ऐसी रचनाओं के सृजन पर जोर दिया था जिनसे राजक्रान्ति मे सहयोग मिले।[1] समय की इस पुकार से भारतीय साहित्यकार भी अपरिचित नहीं थे। स्वय प्रेमचन्द ने अनेक स्थलो पर साहित्य और राजनीतिक के पारस्परिक सम्बन्ध को न केवल अनिवार्य बतलाया, अपितु अपने उपन्यासो मे भारतीय जनता द्वारा समर्थित राष्ट्रीय आन्दोलन और साम्राज्यशाही का व्यापक अकन किया।

आलोच्यकाल के ये राजनीतिक उपन्यास वस्तुतः जन-जागरण के उपन्यास हैं। विषय-सौष्ठव की दृष्टि से इनके निम्न स्वरूप दिखलाई पड़ते हैं :—

१—राष्ट्रीय आन्दोलन एवं गांधी-दर्शन से समन्वित उपन्यास।

२—समाजवादी चेतना से अनुप्राणित उपन्यास।

दुर्गा प्रसाद खत्री के जासूसी उपन्यासो मे भी आतकवादी कार्यविधि एवं विचार पद्धति का अभास मिलता है और जिसे राष्ट्रीय आन्दोलन के अन्तर्गत ही स्वीकार किया जाना चाहिए।

प्रेमचन्द, सियारामशरण गुप्त और जैनेन्द्र की 'त्रयी' ने गांधी-दर्शन को अपने उपन्यासो मे स्वीकृति दी है। प्रेमचन्द के उपन्यासो मे गांधीयुग और गांधी-दर्शन दोनो का व्यापक चित्रण है। उनके 'प्रेमाश्रम', 'रगभूमि' और 'कर्मभूमि' मे गांधी जी के जन-आन्दोलन के उन तीनो पक्षो को अभिव्यक्ति मिली है, जिसका उल्लेख हम पूर्व ही मे कर चुके हैं। सियारामशरण गुप्त ने 'गोदे' 'नारी' और 'अंतिम आकांक्षा' उपन्यास मे गांधीवाद के तात्विक स्वरूप को ग्रहण कर उसके सत्य और अहिंसा का प्रतिष्ठान पन कर हृदय-परिवर्तन से सामाजिक सुधार की परिकल्पना की है। जैनेन्द्र के 'सुनीता,' 'सुखदा' 'विवर्त' आदि उपन्यासो मे गांधीवाद को बौद्धिक रूप से स्वीकार किया गया है। जैनेन्द्र के उपन्यासो मे क्रान्तिकारियो के जीवन को भी निकट से देखने का प्रयास किया

१. देखिए परिशिष्ट २

गया है, जिसका प्रेमचन्द एव सियारामशरण गुप्त के उपन्यासो मे अभाव है । प्रेमचन्द ने वीरमालसिंह जैसे एकाध क्रान्तिकारी पात्र की उद्भावना अवश्य की है, किन्तु उनका आग्रह गाँधीवादी पात्रो पर ही अधिक रहा है । जैनेन्द्र मे फ्रायड की काम-पीडा और गांधीवादी आत्म पीडा का जो सम्मिश्रण देखने को मिलता है वह उनके रहस्य-वादी दृष्टिकोण को स्पष्टीकरण देता है । यही कारण है कि वे सामाजिक असगतियो का निषेध आत्मपीडा के सिद्धान्त को अपना कर करना चाहते हैं । इस 'त्रयी' के उप-न्यासो मे विदेशीय शासन सत्ता के विरुद्ध आन्दोलन का चित्रण केवल प्रेमचन्द के उपन्यासों मे ही मिलता है । जैनेन्द्र के 'विवत' मे क्रान्तिकारियो के आन्दोलन की रूपरेखा अस्पष्ट तथा असगतिपूर्ण है । सियारामशरण गुप्त के उपन्यासो मे तो आन्दो-लन की विरल छाया भी नही है । उनकी आस्था आन्दोलनों मे नहीं अपितु गांधीवादी नैतिक सिद्धान्तों मे है जिसका मूलाधार मानवता है । उनके गाँधीवादी उपन्यासो मे सामाजिक चेतना के दर्शन तो होते है किन्तु उसमे सामाजिक-सघर्ष का अभाव है ।

समाजवादी चेतना से अनुप्राणित उपन्यास

गाँधीवाद के प्रति प्रेमचन्द के विचार-परिवर्तन का जो आभास 'मगल सूत्र' मे दिखलाई पडता है, वह वस्तुत भारतीय राजनीति मे प्रविष्ट समाजवादी विचार-दर्शन (सन् १९३४) का ही प्रतिफलन है । भारत के राजनीतिक, आर्थिक और साहित्यिक क्षेत्र मे इसकी सक्रिय भूमिका सन् १९३१ के उपरान्त मिलती है । इस विचार-धारा ने द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के प्रचार-प्रसार का एक नूतन मार्ग प्रशस्त किया । कहा गया है कि "द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद बहिर्मुखी दृष्टिकोण सम्पृक्त क्रान्ति और विद्रोह के मार्ग पर चलने वाला सम्मोन्मुख भौतिक जीवन-दर्शन है जो जीवन के किसी आध्यात्मिक सत्य मे विश्वास न करके इसी नाना रूपात्मक पचभूत मय जगत को जीवन का अन्तिम सत्य उद्घोषित करता है । वह इस विश्व मे पदार्थ से ऊपर अन्य किसी वस्तु या विचार की सत्ता नही मानता । उसके अनुसार इस विश्व मे केवल एक ही सत्ता है-अधिभौ-तिक । आध्यात्मिक तथा अधिदैविक सत्ताओ का वस्तुत कोई अस्तित्व नही है, वह केवल मन की छलना है ।"

इन मार्क्सवादी सिद्धान्तो को राहुल सांकृत्यायन, यशपाल, रांगेय राघव और 'अचल' ने अपने प्राक् स्वाधीनता युगीन उपन्यासो मे स्वीकृति प्रदान की । राहुल अपने राजनीतिक उपन्यासो मे केवल क्रांतिकारी प्रयत्नो पर निर्भर नहीं करते । 'जीने के लिए' (१९४०) का पात्र कहता है - "मेरे दिल मे बाल जीवन से ही देश-सेवा की कितनी उमगें है, तुम यह भी जानते हो कि देश की स्वतन्त्रता के लिए मेरा चित कितना उत्तेजित हो जाता है । और यदि इक्के-दुक्के बम और पिस्तौल चलाने पर मुझे

विश्वास होता, तो मैं कब का उसमें लग गया होता।" दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि उनके उपन्यासों में भावात्मक क्रान्ति को स्थान नहीं है। उनमें राजनीतिक स्वतन्त्रता की उपादेयता को लेकर शोषण वृत्ति के विरुद्ध विवेकपूर्ण क्रान्ति की संयोजना की गई है। उनमें विचारों की प्रौढ़ता मिलती है। उदाहरण स्वरूप विभिन्न जातियों एवं वर्गों की एकता और शोषण पर यह कथन द्रष्टव्य है—

"सभी वर्गों की एकता को मैं अच्छा समझता हूँ, लेकिन यह सम्भव नहीं। राजा-महाराजाओं और धनियों का स्वार्थ नहीं है, जो कि साधारण जनता का। रेजिडेण्ट के सामने महाराज चाहे सटक जाते हों, लेकिन प्रजा की इज्जत, धन और प्राण के साथ वे खेल खेल सकते हैं। शोषण हानिकारक है, लेकिन जातियों का सहयोग बड़ी लाभदायक चीज है। उस सहयोग से दोनों देशों को बहुत से राजनैतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और सामाजिक फायदे हो सकते हैं। हमारे देशवासी अब कभी-कभी दबी जबान से सहयोग का जिक्र करने लगे हैं तो भी वे शोषण ही का दूसरा नाम सहयोग रहना चाहते हैं। लेकिन हिन्दुस्तानी इस भुलावे में नहीं आ सकते। हिन्दुस्तानी न कायर है न निर्बुद्धि।"

राहुल जी के राजनीतिक कथानक पर आधारित उपन्यासों में ऐसे विवरण प्रचुरता से आकर मार्क्स के राजनीतिक सिद्धान्तों को पाठकों के लिए ग्राह्य बनाने में सहयोग देते हैं। राहुल ने ऐतिहासिक उपन्यासों में मार्क्स के सिद्धान्तों का प्रतिपादन विशेष रूप से किया है, किन्तु वह हमारे शोध-प्रबन्ध से सम्बन्धित नहीं है।

भौतिकवादी दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति यशपाल के उपन्यासों की विशेषता है। 'दादा कामरेड' (१९४१) मार्क्सवादी चेतना से युक्त उनका प्रथम उपन्यास है जिसमें तत्कालिक राजनीतिक धारणाओं का अंकन है। प्राक् स्वाधीनता युग में गाँधीवाद, आतंकवाद और साम्यवाद की किरणें प्रकाशमान थीं। आलोच्य उपन्यास में लेखक ने अहिंसा को अनुपयुक्त सिद्ध करते हुए मार्क्स की हिंसात्मक शक्ति को प्रमुखता देते हुए प्रगतिशील जीवन का चित्रण किया है। उपन्यास का मूल उद्देश्य साम्यवादी चेतना को विकासोन्मुख चित्रित करते हुए गाँधीवादी तथा आतंकवादी प्रवृत्तियों को ह्रासोन्मुख बताना है। आलोच्यावधि में यशपाल के 'देश द्रोही' और 'पार्टी कामरेड' उपन्यास भी प्रकाशित हुए। 'देश द्रोही' में ब्यालीस की क्रान्ति में 'पार्टी कामरेड' में नाविक विद्रोह की राष्ट्रीय घटनाओं को लेकर जिस कथानक की सृष्टि की गई है, वह मार्क्सवादी विचार-धारा का ही पोषण करती है। स्वाधीनतोत्तर काल में भी यशपाल ने इस विचार धारा की आधार पीठिका पर अनेक उपन्यासों की रचना की जिनका उल्लेख आगे किया गया है। स्वाधीनता पूर्व युग में जिन उपन्यासों में समाजवादी चेतना की पृष्ठभूमि में राजनीतिक आलेखन मिलता है, उनमें 'अंचल' के 'चढ़ती धूप'

(१९४५), 'नई इमारत' (१९४७) एव 'उल्का' (१९४७) तथा रांगेय राघव के 'घरौंदे' व 'विषाद मठ' (१९४६) उल्लेख योग है। 'चढती धूप' में सन् १९३२ से १९३९ तक के घटना काल के समाजवादी चेतना के परिप्रेक्ष्य मे छात्र समुदाय के युगानुकूल मनोभावो को उरेहा गया है। 'नई इमारत' मे बयालीस की क्रान्ति तथा सामयिक राजनीतिक वातावरण अकित है। इस राजनीतिक घटना के माध्यम से स्वतन्त्रता और समाजवाद को अभिव्यक्ति दी गई है। 'उल्का' मे नारी-समस्या का समाधान समाजवादी ढग से प्रस्तुत किया गया है। रागेय राघव का 'घरौंदे' अश- राजनीतिक है जिसमे प्रसगानुसार वर्ग-सघर्ष का एक चित्र अकित है। पूँजीवादी व्यवस्था से उत्पन्न विषमताओ की सफल व्यजना भी मिलती है। 'विषाद मठ' मे बगाल के दुर्भिक्ष को लेकर पूँजीवादी के विरुद्ध सामाजिक चेतना को प्रबुद्ध करने का प्रयत्न किया गया है।

इलाचन्द्र जोशी कृत 'सन्यासी' और 'निर्वासित' भी इसी युग के अश-राजनीतिक उपन्यास है जिसमे सामयिक राजनीति की चर्चा की गई है । 'निर्वासित' इस दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण है जिसमे द्वितीय महायुद्ध के प्रारम्भ से कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल की स्थापना की कालावधि को लेकर मध्य वर्ग पर पड़ने वाली युद्धकालीन प्रतिक्रियाओं का अकन किया गया है । इसके साथ ही वर्ग में विभाजित सामाजिक शोषण और क्राति परक पक्षो की अभिव्यजना भी मिलती है। इस युग का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण उपन्यास भगवतीचरण वर्मा का 'टेढेमेढ़े रास्ते' है जो भारतीय राजनीतिक धरातल के व्यापक चित्रफलक पर विभिन्न राजनीतिक विचारधाराओं के परस्परिक विरोध को चित्रित करता है। एक आलोचक के मतानुसार 'सम-सामयिक भारतीय जीव मे क्रियाशील विभिन्न विचार धाराओ, उनके प्रेरणा स्रोतो और कार्य-पद्धतियो का अपने अनुभव के अनुसार विश्लेषण करने का कलात्मक प्रयत्न 'इस उपन्यास मे किया गया है। वर्मा जी ने किसी विशिष्टवद का प्रतिपादन न कर के तत्कालीन राजनीतिक वातावरण को कथानक का आधार बनाया है। गाँधीवाद के प्रति विरोध मम'व युगानुकूल ही कहा जायेगा।

इस तरह प्राक्-स्वाधीनता युग के उपन्यासो मे तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों एव राजनीतिक सिद्धान्तो का समाहार मिलता है। इस युग के उपन्यासों ने मूलत. सामयिक राजनीतिक गतिविधियो से प्रेरणा लेकर अपना मार्ग बनाया अत. मुख्यत गाँधी-दर्शन ही इन कृतियों मे अपनी समग्रता के साथ प्रस्तुत हो सका है। जिन उपन्यासो मे आतकवादी प्रवृति का चित्रण हुआ है, उनका भी उद्देश्य गाँधीवादी की आस्था को पुष्ट करना रहा है।

स्वाधीनतोत्तर राजनीतिक उपन्यास

स्वाधीनतोत्तर काल को राजनीतिक उपन्यास का उत्कर्ष काल कहा जा सकता है। सच तो यह है कि इस युग के अधिकांश उपन्यासों में किसी न किसी रूप में राजनीतिक प्रभाव ढूंढा जा सकता है विशुद्ध राजनीतिक दृष्टि से भी राजनीति समन्वित उपन्यासों की एक बड़ी शृंखला दिखाई पड़ती है।

स्वाधीनता-पूर्व उपन्यासकारों में जैनेन्द्र, यशपाल, इलाचन्द्र जोशी, रांगेय राघव, चतुरसेन शास्त्री, गुरुदत्त-वर्तमान काल में भी राजनीतिक उपन्यासों की रचना निरन्तर कर रहे हैं। जैनेन्द्र के 'सुखदा' 'विवर्त' और 'व्यतीत' स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त की औपन्यासिक कृतियाँ हैं जो राजनीतिक संस्पर्श से युक्त हैं। 'सुखदा' में कथा-पूर्व-दीप्ति पद्धति से 'हिंसा के सूक्ष्म रूप महत्त्वाकांक्षा का सुखदा के व्याज से बारीक विवेचन करते हुए लेखक ने स्थूल पक्ष की ओर भी ध्यान दिया है। इसीलिए अनेक क्रान्तिकारियों (पात्रों) की उद्भावना की गई है। क्रान्ति की कथा वर्णित कर अहिंसा का प्रतिष्ठापन करना ही 'सुखदा' का मुख्य लक्ष्य है। 'विवर्त' में भी हिंसावृत्ति का खण्डन और अहिंसा की श्रेष्ठता प्रतिपादित करने का प्रयास है। इसमें जितेन नामक क्रान्तिकारी के हृदय-परिवर्तन का चित्रण गाँधी-दर्शन की आधार-पीठिका पर किया गया है। इस युग के राजनीतिक उपन्यासों में गाँधीवाद का ह्रास दिखाई देता है। गाँधीवाद या सर्वोदय को जिन उपन्यासों में स्थान दिया गया है, उनमें 'ज्वालामुखी' (१९५६) 'बूंद और समुद्र' (१९५६), 'अनबुझी प्यास' (१९५०), 'कठपुतली' (१९५३), 'दुखमोचन' (१९५७), 'बयालिस' (१९४८), 'निशिकान्त' (१९५५) आदि प्रमुख हैं। 'बूंद और समुद्र' में सर्वोदयी भावना का उज्ज्वल स्वरूप उभरा है। इस उपन्यास की मूल भावना सर्वोदय समाज की स्थापना है। बाबा राम जी के रूप में सन्त विनोबा की वाणी ही मुखरित हो उठी है। शेष अन्य उपन्यासों में गाँधी युग की घटनाएँ चित्रित हैं और उनके अनुरूप गाँधीवाद के एकाधिक सिद्धान्तों को सहेजना स्वाभाविक ही है। 'ज्वालामुखी,' और 'बयालीस' सन् १९४२ की क्रान्ति पर तथा 'कठपुतली' राष्ट्र-विभाजन के कथानक पर आधारित उपन्यास हैं। 'अनबुझी प्यास' में कांग्रेस के असहयोग आन्दोलन से प्रभावित बुन्देलखण्ड क्षेत्र का चित्रण है।

उपन्यास साहित्य में गाँधीवाद के ह्रास का कारण समाजवादी चेतना का तीव्र गति से विस्तार होता है। विगत दो दशकों में रचित समाजवादी यथार्थवादी व न्यासों की एक सुदृढ़ शृंखला मार्क्सवादी जीवन-दर्शन से अनुप्राणित है। यशपाल, नागार्जुन, भैरवप्रसाद गुप्त, अमृतराय, अमरकान्त, इलाचन्द्र भिक्षु, नित्यानन्द वात्स्यायन, महेन्द्रनाथ, रांगेय राघव, राजेन्द्र यादव, हिमांशु श्रीवास्तव, 'कैफ' आदि के राजनीतिक

उपन्यास मार्क्सवाद से प्रभावित है। इन उपन्यासो मे यह सिद्ध करने का प्रयास किया गया है कि भौतिक *जगत का अस्तित्व मनुष्य के चिन्तन से स्वतन्त्र है।* भौतिक शक्तियो मानव चेतना को बदलती है और मानव चेतना भौतिक शक्तियो को बदलती है। इस प्रकार भौतिक परिस्थितियो को बदलना हुआ मानव स्वयं को भी बदलना है।[1] यशपाल कृत 'मनुष्य के रूप' और 'झूठा सच' मे मार्क्सवाद का कलात्मक प्रकन है। 'मनुष्य के रूप' मे सामाजिक विषमता के कारण मनुष्य के बनते बिगडते रूप, पूँजीवादी अनैतिकता तथा राष्ट्रीय आन्दोलन के चित्र तथा साम्यवादियो की कार्य पद्धति का चित्रण मिलता है। वृहदाकार 'झूठा-सच' विभाजन की पृष्ठ भूमि पर निम्न मध्यवर्गीय पजाबी जन समाज का सजीव चित्र प्रस्तुत करता है। रागेय राघव के 'हुजूर' मे वर्तमान समाज के शोषण और आर्थिक वैषम्य के चित्रो के माध्यम से युग सत्य को समाजवादी दृष्टिकोण से अभिव्यक्त करता है। रागेय राघव का 'सीधा-सादा रास्ता,' अमृतराय का 'बीज' और भैरवप्रसाद गुप्त कृत 'मशाल,' 'गगा मैया' और 'सती मैया का चौरा' उपन्यासो मे प्रगतिशील चेतना की अभिव्यक्ति मिली है।

इस युग के बाद निरपेक्ष राजनीतिक उपन्यासो का एक अन्य वर्ग भी है जिसके कथानक राष्ट्रीय आन्दोलनो को लेकर चले हैं। मन्मथनाथ गुप्त द्वारा भारतीय स्वातन्त्र्य सग्राम के सन् १९२१ से स्वाधीनता प्राप्ति तक की व्यापक पृष्ठ भूमि पर रचित उपन्यास-सप्तक-- 'जागरण' 'रैन अधेरी' 'रगमच', 'अपराजित' प्रतिक्रिया' और 'सागर सगम' की गणना इसी श्रेणी के अन्तर्गत की जा सकती है। निसन्देह भारतीय स्वाधीनता सग्राम की राजनीतिक घटनाओ, राजनीतिक दलो की गतिविधियो एव राजनीतिक विचार धाराओ को इतने विस्तृत चित्रफलक मे समेटने का यह एक साहसिक प्रयत्न है। 'रैन अधेरी' के 'दो शब्द' मे लेखक ने कहा है - "स्वतन्त्रता आन्दोलन हमारी गगा की ही तरह है जिसमे न जाने कहा-कहा से छोटी-बडी धाराएँ आकर मिली हैं। यह कहना कि उसमे केवल एक ही धारा थी, या यहाँ तक कहना कि उसमे प्रमुख रूप से एक ही धारा थी, सत्य का अपलाप है। इसमे अलग अलग धाराएँ आई और वे मिलकर एक बहुत तगडी धारा मे परिणत हो गई, जिसके सामने ब्रिटिश साम्राज्य के पाव उखड गये और उसे बोरिया बिस्तर बाँध कर यहाँ से कूच करना पडा।[1] इसी आधार पर लेखक ने विवेच्य काल की राजनीतिक तरगो को उपन्यास मे रूपायित किया है। इतना होने पर भी पूर्वग्रह के कारण क्रान्तिकारियों की गतिविधियो को काग्रेस के क्रिया-कलापो की तुलना मे प्रमुखता मिल गई है।

इस वर्ग के अन्य उपन्यासो मे यज्ञदत्त शर्मा कृत 'दो पहलू' और 'इन्सान'

---

१ रैल्फ फाक्स : नावल एन्ड दी पीपुल, पृष्ठ १ ५

रघुवीरशरण मित्र कृत 'बलिदान' गोविन्ददास कृत 'इन्दुमति' चतुरसेन शास्त्री कृत धर्मपुत्र' भगवतीशरण वर्मा कृत 'भूले बिसरे चित्र' मिश्रबन्धुओ का 'स्वतन्त्र भारत' विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

स्वाधीनता प्राप्ति के उपरान्त के राष्ट्रीय वातावरण को लेकर भी विविध राजनीतिक उपन्यासो की रचना भी कतिपय उपन्यासकारो ने की है। ऐसे उपन्यासो मे अनन्तगोपाल शेवडे कृत 'भग्न मन्दिर' अमृत राय कृत 'हाथी के दात' उपेन्द्रनाथ 'अश्क' कृत 'बडी-बडी आँखें' चतुरसेन शास्त्री कृत 'उदयास्त' और 'बगुले के पंख' नागार्जुन कृत 'हीरक जयन्ती' 'रेणु' कृत 'मैला आचल' और 'परती परिकथा' यज्ञदत्त कृत 'अन्तिम चरण' 'निर्माण पथ' और 'बदलती राहे' वृन्दावनलाल वर्मा कृत 'अमर बेल' की परिगणित किया जा सकता है।

इनमे से 'बगुले के पख' 'भग्न मन्दिर' 'हाथी के दात तथा 'हीरक जयन्ती' व्यग प्रधान उपन्यास है तथा सत्तारूढ दल और उसके तथा कथित जन-प्रतिनिधियो के भ्रष्टाचार व काले कारनामो का पर्दाफाश करते है। 'अश्क' का प्रतीकात्मक उपन्यास 'बडी-बडी आखें' वर्तमान प्रशासन व्यवस्था पर प्रच्छन्न व्यग्य है इन लघुकाय उपन्यासो मे काग्रेस-सरकार के विभिन्न कमजोर पक्षो पर आघात कर उसकी कथनी और करनी मे अन्तर निरूपित किया गया है। 'रेणु' यज्ञदत्त, वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यास मे वर्तमानयुग के निर्माणात्मक गतिविधियो को अभिव्यजित करने का प्रयत्न है। यज्ञदत्त के 'बदलती राहे' और वृन्दावनलाल वर्मा के 'अमरबेल' मे सहकारी भावना से नव-निर्माण का सन्देश दिया गया है।

हिन्दू राष्ट्रीयतावादी विचार-धारा

भारतीय राजनीति मे हिन्दू राष्ट्रीयतावाद का विस्तार मुस्लिम लीग की प्रतिक्रिया के रूप मे हुआ और राष्ट्र विभाजन तथा काग्रेस की मुस्लिम तुष्टीकरण की नीति से उसका संवर्द्धन हुआ। स्वाधीनता के उपरान्त राजनीतिक वैचारिक स्वतन्त्रता के कारण इस विचार-धारा में गतिशीलता आई। हिन्दुत्व पर असीम आस्था के रूप मे राजनीतिक उपन्यासो का एक नवीन अध्याय गुरुदत्त के उपन्यासो से आरम्भ हुआ। सन् १९४२ से १९६२ तक दो दसक की अवधि में गुरुदत्त के ६६ से अधिक सामाजिक, राजनीतिक, ऐतिहासिक आदि उपन्यास प्रकाशित हो चुके है। इनके प्राय सभी उपन्यासो मे हिन्दु संस्कृति या हिन्दू राष्ट्रीयवाद की जमकर वकालत की गई है। इस प्रवृत्ति को आधार बनाकर गुरुदत्त ने एक ओर जहाँ काग्रेस और गाधीवाद के कतिपय सिद्धान्तो की कटु आलोचना की है, वहाँ दूसरी ओर मार्क्सवादी का भी जमकर विरोध किया है। इनके अधिकाश राजनीतिक उपन्यासो मे साम्प्रदायिक भावना के कारण

मुस्लिम पात्रों का मलिन चित्रण प्राप्त होता है जो साहित्य की दृष्टि से उचित नहीं कहा जा सकता।

राजनीतिक सिद्धान्तों से समन्वित उपन्यास

कुछ उपन्यासकारों ने विभिन्न राजनीतिक विचार-धाराओं का अध्ययन मनन कर उन्हें समन्वित करने का प्रयत्न भी किया है। इलाचन्द्र जोशी कृत 'निर्वासित', 'मुक्तिपथ' और 'जिप्सी' तथा चतुरसेन शास्त्री कृत 'उदयास्त' आदि उपन्यासों को इसी कोटि में रखा जा सकता है। मनोविश्लेषणवादी उपन्यासकार इलाचन्द्र जोशी के सम्बन्ध में यह कथन उपयुक्त है कि—"वास्तव में जोशी जी अपने गम्भीर चिन्तन तथा गहन अनुभूति के आधार पर व्यक्ति और समाज की समस्याओं का विश्लेषण तथा समाधान करना चाहते हैं। इसलिए उनका दृष्टिकोण मार्क्सवादी और मनोविश्लेषणवाद के समन्वय की ओर उन्मुख है[1]।" मनोविश्लेषणवाद ही नहीं अपितु सर्वोदय भावना का समन्वय भी उनमें मिलता है और इस आधार पर ही वे 'समश्रम साधना' की उपयुक्तता को 'मुक्ति पथ' में प्रतिपादित करने का प्रयास करते हैं। चतुरसेन जी ने भी 'उदयास्त' में सत्य व अहिंसा के माध्यम से जिस समाजवाद का स्वप्न संजोया था वह 'लोकतांत्रिक समाजवाद' के रूप में कांग्रेस द्वारा इसी वर्ष स्वीकृति पा चुका है।

स्वातन्त्र्योत्तर काल के राजनीतिक उपन्यासों के अनुशीलन से निम्नांकित तथ्य प्राप्त होते हैं—

(१) गांधीवाद का ह्रास-गामी युगीन राजनीतिक विचारों का इस युग के उपन्यासों में स्पष्ट ह्रास दिखाई पड़ता है। इसके विपरीत समाजवादी चेतना विकासोन्मुख है। स्वाधीनताभारत में राजनीतिक स्वतन्त्रता के सिद्धान्त को स्वीकार्य किये जाने से विभिन्न राजनीतिक दलों को अपने राजनीतिक विचारों के प्रचार-प्रसार का सुयोग मिला। हिन्दी उपन्यास इन विचारों का समर्थ वाहक बना। गांधीवाद, सर्वोदय, साम्यवाद, समाजवाद और हिन्दू-राष्ट्रीयतावाद के राजनीतिक सिद्धान्त उपन्यास के परिवेश में खण्डन अथवा मण्डन के लिए प्रयुक्त होने लगे। इनमें से मार्क्सवाद का प्रभाव हिन्दी उपन्यासों में सर्वाधिक उभरा है।

(२) स्वाधीनतउपरान्त राष्ट्रीयता का जो स्वरूप जन-साधारण में व्याप्त हुआ उसने राष्ट्रीय आन्दोलनों की ऐतिहासिक घटनाओं को गौरव के रूप में प्रतिष्ठित किया। इस रूप में राजनीतिक जगत की छोटी-बड़ी घटनाएं राष्ट्र प्रेम की

---

१ सुषमा धवन : हिन्दी उपन्यास, पृष्ठ २०४

प्रेरणा-स्रोत बन उपन्यास-साहित्य मे अंकित हुई। सन् १९२० से १९४७ तक की प्रमुख घटनाएं एव सामयिक राजनीतिक इतिहास उपन्यासो का वर्ण्य विषय बना।

सक्षेप मे भारतीय राजनीति और राजनीतिक उपन्यासो का क्रमिक विकास तुलनात्मक दृष्टि से इस रूप मे हुआ है :—

प्रथम चरण — सन् १८८५ से १९२० तक . राष्ट्रीय चेतना का आभास
द्वितीय चरण — सन् १९२१ से १९३६ तक . गांधी-वाद और राष्ट्रीय आन्दोलनो की अभिव्यक्ति
तृतीय चरण — सन् १९३७ से १९६३ तक जनवाद प्रभावित राष्ट्रीय भावना का चित्रण।

प्रथम चरण के हिन्दी उपन्यासो मे राष्ट्रीय भावनाओ की सशक्त अभिव्यक्ति का अभाव है। इसमें नवजागरण का सास्कृतिक पक्ष ही अधिक उभरा है। कतिपय उपन्यासों मे राजभक्ति और राष्ट्रभक्ति का विचित्र मिश्रण है। कुछ उपन्यासो मे भारतेन्दु युग की प्रवृत्ति के अनुसार आर्थिक व्यवस्था की आलोचना और मातृभाषा का प्रेम भी प्रकट हुआ है जिसे राष्ट्रीय चेतना के प्रारम्भिक रूप मे ग्रहण किया जा सकता है।

द्वितीय चरण को गांधी युग कहा जाता है। गाधी जी के नेतृत्व मे राजनीतिक गतिविधियां अत्यधिक सक्रिय हुई है और सामाजिक समस्याए भी राजनीतिक परिवेश मे प्रस्तुत होने लगीं। आन्दोलनो के साथ राजनीतिक विचारधाराओ विशेषत: गाधीवाद का प्रचार भी दिनोदिन बढते गया। रूस की राजक्रान्ति के बाद मार्क्सवाद का बीजारोपण भी हुआ, किन्तु उसकी गति मजदूर आन्दोलन तक ही सीमित रही। इस युग के एकमात्र राजनीतिक उपन्यासकार प्रेमचन्द का उपन्यास साहित्य मूलत: राष्ट्रीय साहित्य है। उनके उपन्यासमे गांधी-दर्शन अपनी समस्त विशिष्टताओ के साथ चित्रित है इसी युग मे जैनेन्द्र और सियारामशरण गुप्त ने अपने उपन्यासो मे गाधीवाद के अध्यात्मिक एव तात्विक स्वरूप का कथानक मे समावेश किया।

तृतीय चरण मे राष्ट्रीयता अपने उत्कट स्वरूप मे प्रकट होती है और जन-क्रान्ति के समकक्ष तक जा पहुँचती है। इस युग के राजनीतिक उपन्यासो की मूल प्रवृत्तियां पूर्व मे ही निर्देशित की जा चुकी है। वस्तुत: यह काल राजनीतिक उपन्यासकारो का उत्कर्ष काल है और आज के उपन्यासकार केवल सामयिक चित्रण ही नहीं करते प्रत्युत भविष्य की दिशाओ का निर्देशन भी करते हैं।

● ● ●

अध्याय ४

प्रेमचन्द युगीन राजनीतिक उपन्यासों का अध्ययन

> प्रेमचन्द युगीन राजनीतिक स्थिति, राजनीतिक प्रवृत्तियाँ

> प्रेमचन्द का व्यक्तित्व—जन्म, पारिवारिक स्थिति, शिक्षा, व्यवसाय

> साहित्यकार प्रेमचन्द—उपन्यास के रूप मे

—प्रेमचन्द के उपन्यास एवं रचना काल

—राजनीतिक दृष्टिकोण

—प्रेमचन्द के प्रेरणा स्रोत

> प्रेमचन्द के प्राक् गांधीयुगीन उपन्यासों मे राजनीतिक तत्व

> प्रेमचन्द के राजनीतिक उपन्यास

* प्रेमाश्रम—हिन्दू मुस्लिम ऐक्य की समस्या, अन्य राजनीतिक समस्याएँ, कौंसिल-चुनाव, समाजवाद का संकेत।
* रंगभूमि—राजनीतिक पृष्ठभूमि, अहिंसक क्रान्ति का समर्थन, राजनीतिक घटनाएँ।
* कर्मभूमि—कर्मभूमि का कर्मयोग, नारी चेतना का विकास, लगानबन्दी आन्दोलन और सामयिक राजनीति, हृदय परिवर्तन का गांधीय सिद्धान्त, हिन्दू-मुस्लिम एकता, अहिंसा, स्वावलम्बन और आत्मनिर्भरता।

> प्रेमचन्द के अन्य—राजनीतिक उपन्यास

* कायाकल्प—सामायिक राजनीतिक प्रश्न, रियासतों और देशी नरेशों की समस्या, अन्य राजनीतिक संकेत, अलौकिक प्रसंग और गांधीवाद।
* गबन – राजनीतिक घटनाएँ, नौकरशाही की भूमिका बनाम पुलिस का नग्न नृत्य, स्वराज की कल्पना, गांधीवाद की गूंज।
* गोदान – मजदूर आन्दोलन, समानवादी चेतना, निष्कर्ष

> जासूसी उपन्यासों मे राजनीतिक तत्व

दुर्गाप्रसाद खत्री के 'रक्त मंडल' और 'सफेद शैतान' सरकार परस्त व्यक्तित्व, राजनीतिक स्वरूप।

प्रेमचंद-युगीन राजनीतिक स्थिति

उपन्यास सम्राट प्रेमचद का जन्म सन् १८५७ के विद्रोह के २३ वर्ष उपरान्त सन् १८८० ई० को हुआ थ । इसीलिए जब वे तरुणावस्था मे थे तब भारतीय जनता मे राजनीतिक चेतना क्रमश विकासोन्मुख थी और साम्राज्यवाद की असगतियो से परिचित व त्रस्त हो मुक्ति का मार्ग ढूंढ रही थी। उन्नीसवी शती मे यूरोप मे राष्ट्रीयता तथा स्वतत्रता के लिए जो सघर्ष चल रहे थे भारतीय जनता उसे पूरी तरह से समझने का प्रयास कर रही थी। यूरोप के देशो के स्वातन्त्र्य-सघर्ष के क्रियात्मक दृष्टान्तो से प्रेरणा या भारतीयो मे भी देश की स्वाधीनता के लिए सघर्ष की भावना बलवती हो रही थी। मुक्ति, स्वतत्रता तथा अधिकारो के प्रति सचेष्ट प्रयत्नो को देखकर ही लार्ड रानल्डशे ने कहा है कि "पश्चिमी ज्ञान की नयी शराब नवयुवक भारतीयो के मस्तिष्को मे पडी। उन्होने मुक्ति तथा राष्ट्रीयता के स्रोत से उसका पूर्ण पान किया। उनके सम्पूर्ण दृष्टिकोण मे क्राति की भावना ने प्रवेश किया।" राष्ट्र की आर्थिक स्थिति चिन्तनीय थी और लोगो के लिए जीवन यापन एक जटिल समस्या थी। इस सबध म सर विलियम हटर का कथन, जो उन्होने सन् १८८० मे दिया है अत्यन्त महत्वपूर्ण है। वे लिखते है 'लगभग ४ करोड व्यक्ति यहा अपर्याप्त भोजन पर अ ना निर्वाह करत है।" स्वय भारत मन्त्री लार्ड सैलिसबरी ने १८७५ मे इस सत्य को स्वीकार करते हुए स्पष्ट रूप से कहा था कि 'ब्रिटिश शासन भारत का रक्तशोषण करके उसे रक्तहीन, दुर्बल बना रहा है।"

आर्थिक दुरवस्था ने असतोष को व्यापक बनाया और सभी बुद्धिमान विचारक और सुधारवादी लोग विक्षुब्ध हो क्रातिकारी ढग से सोचने विचारने के लिये विवश हुए। अनेक समाज सुधारको ने जनता मे अपने विचारो के माध्यम से राष्ट्रीयता के अनुकूल भूमि तैयार की। कर्नल अर्काट के कथनानुसार 'स्वामी दयानद ने अपने अनुयायियो पर प्रबल राष्ट्रीय प्रभाव डाला।' श्रीमती ऐनी बेसेन्ट ने भी स्वीकार किया है कि 'दयानद ने ही भारत भारतीयो का है, इस नारे को बुलन्द किया।' दयानद सरस्वती के अतिरिक्त स्वामी विवेकानद का योगदान भी विस्मृत नही किया जा सकता। उनके सबध मे निवेदिता का कथन है कि 'उनकी उपास्य देवी उनकी मातृभूमि थी।' इस तरह राजा राममोहन राय, स्वामी दयानद, स्वामी रामकृष्ण परमहस व स्वामी विवेकानद सामाजिक सुधार के साथ राष्ट्रीयता की भावना को विस्तरित कर रहे थे।

प्रेमचद के जन्म के पूर्व-सामाजिक एव राष्ट्रीय कार्यों से निर्मित इस पृष्ठ भूमि पर ही सन् १८८५ मे काग्रेस की स्थापना हुई। काग्रेस का इतिहास हिन्दुस्तान की

आजादी की लडाई का इतिहास है[1]। जिस समय कांग्रेस की स्थापना हुई प्रेमचद की आयु पांच वर्ष की थी और इस तरह वे जीवन भर कांग्रेस द्वारा लडी जाने वाली आजादी की लडाई को कर्मयोगी की गतेज दृष्टि से देखते रहे।

कांग्रेस के स्वाधीनता आंदोलन को तीन चरणो मे विभाजित किया जा सकता है। प्रथम चरण सन् १८८५ से १९०५ तक का माना जाता है। इस अवधि में *प्रेमचन्द आर्थिक वैषम्य से जूझते हुए शिक्षा प्राप्त कर जीविकोपार्जन मे जुट गये थे।* वे मध्यवर्गीय परिवार के थे और प्रतिदिन होने वाले आर्थिक अभावो से भलीभांति परिचित हो चुके थे। यह नरम राष्ट्रीयता का युग था। कांग्रेस का स्वरूप भी सौम्य था, क्रांतिकारी नहीं। इसके नेता ब्रिटिश सम्राट के प्रति निष्ठा और आज्ञाकारिता की भावना को प्रकट करते थे। इन परिस्थितियो मे परिवर्तन आया और सन् १९०६ से १९१८ की अवधि मे कांग्रेस ने संघर्षपूर्ण स्थिति मे प्रवेश किया। यह कांग्रेस के स्वाधीनता आंदोलन का द्वितीय चरण था। इस अवधि मे साम्प्रदायिकता का विस्तार हुआ तथा अंग्रेजो की कूटनीति के कारण मुसलमानो ने कांग्रेस का साथ छोड दिया। तीसरा चरण सन् १९१९ के भारत सरकार अधिनियम की स्वीकृति के साथ आरम्भ हुआ और इसकी समाप्ति सन् १९४७ मे भारत की स्वतन्त्रता के साथ हुई। इस चरण को "गांधीयुग" भी कहा जा सकता है[2]। इस युग मे नरमदल वालों ने कांग्रेस को छोड दिया तथा पाकिस्तान के निर्माण का विचार साकार हुआ।

प्रेमचन्द की मृत्यु सन् १९३६ मे हुई और इस तरह वे गांधीयुग के संघर्ष और नैराश्य को ही देख सके उसकी उपलब्धि को नही। उन्होंने राजनीतिक भारत के तीनो चरणो को निकट से देखा और सन् १९०१ से १९३६ तक का भारत उनकी सूक्ष्म दृष्टि का केन्द्र रहा। प्रेमचन्द का यह युग भारतीय जनता के राष्ट्रीय संघर्ष का युग है। उन्होंने देखा था कि प्रारम्भिक वर्षों मे कांग्रेस का दृष्टिकोण समझौतावादी था। अपनी मांगो के प्रति वह नम्र थी। संस्था के कर्णधार एव अनुयायी ब्रिटिश न्याय भावना मे विश्वास करते थे और आंदोलन अथवा अवैधानिक उपायो मे विश्वास न करते थे। यह भारत का राजनीतिक उदयकाल था और 'हम उन्हें उनके इस दृष्टिकोण के लिए, जिनके द्वारा भारतीय राजनीतिक सुधार के नेताओ के रूप मे उन्होने कार्य किया, इससे अधिक दोष नहीं दे सकते, जिस प्रकार हम आजकल के किसी भवन की नीव के रूप मे दब कुट गडी हुई इंट और गारे को दोष नही दे सकते। उन्होंने हमारे लिए यह सम्भव कर दिया कि हम भवन की एक के पश्चात एक ऊपर की मंजिलें खडी

---

१. डॉ० पट्टाभि सीतारमैय्या . "सं० कांग्रेस का इतिहास"

२ डॉ० पट्टाभि सीतारमैय्या : "स० कांग्रेस का इतिहास"

कर सकें औपनिवेशिक स्वराज्य, साम्राज्यान्तर्गत होम रूल (अपना शासन) स्वराज्य तथा इन सबसे पूर्ण स्वातन्त्र्य[1]।

जनता स्वाधीनता-संग्राम की रीढ़ बन चुकी थी। कांग्रेसाध्यक्ष सर विलियम वेडरबर्न ने सन् १८९९ में अध्यक्ष पद से कहा था। 'मैं जनता को छोड़कर किसके लिए कार्य करूँ ? जनता में उत्पन्न होकर जनता के द्वारा विश्वास किया जाकर मैं जनता के लिये ही मरूँगा।

प्रेमचन्द ने लेखन कार्य इस प्रथम चरण में ही प्रारम्भ किया था और उनके प्रारम्भिक उपन्यास में सामाजिक सुधार के लिए प्रस्तुत दृष्टिकोण तत्कालीन राजनीतिक स्थिति का ही परिचायक है। इस कलावधि में वे देश के साधनों पर विदेशी प्रभुत्व के कारण बढ़ते हुए आर्थिक बोझ और उससे फैलाते हुए असंतोष सन् १८९७ ई० के भयंकर दुर्भिक्ष और बम्बई प्रांत में फैले प्लेग से उत्पन्न आतंकवादी प्रक्रियाओं को सूक्ष्म दृष्टि से देखते रहे और अपने उपन्यासकार को राष्ट्रीय कथानक के लिए तैयार करते रहे। वे समझ गये थे कि राजनीतिक वातावरण में निकट भविष्य में जो परिवर्तन अवश्यम-भावी हैं उसके लिए जनता को तैयार होना है। लोकमान्य तिलक ने भी इन्हीं दिनों कहा था कि 'राजनीतिक अधिकारों के लिए लड़ना ही होगा। नरमदल वालों का विचार है कि ये अधिकार प्रेरणा से प्राप्त किये जा सकते हैं। हमारा विचार है कि उनकी प्राप्ति केवल दृढ़ दबाव से ही हो सकती है।'

प्रेमचन्द जी पारिवारिक अर्थाभाव के कारण सन् १८९९ में सरकारी अध्यापक के रूप में नियुक्त हो शासकीय सेवा में आये। पिता की मृत्यु हो चुकी थी और एक भरे-पूरे परिवार का बोझ उनके कंधों पर था। राजनीतिक वातावरण अस्थिर था और दुर्भिक्ष ने राष्ट्रीय आर्थिक स्थिति को विषम बना दिया था। इतना होने पर भी उनका पूर्ववर्ती व समकालीन हिन्दी उपन्यास-साहित्य सुधारवादी या तिलस्मी ही था। प्रेमचन्द ने देखा कि उन्हें स्वयं आगे आकर एक नई परम्परा बनानी होगी। किन्तु उनके सामने भी अनेक कठिनाइयां थीं। सन् १९०४ में सरकारी गोपनीयतावाला अधिनियम स्वीकृत हो चुका था। इस अधिनियम ने शासन के हाथों प्रचंड शक्ति सौंप दी। 'विद्रोह' शब्द की परिभाषा विस्तृत हो गई और नागरिक मामलों के उन सरकारी रहस्यों तथा समाचारपत्रों की आलोचना के संबंध में कार्यवाही की जा सकती थी जो सरकार को सन्देह तथा घृणा के योग्य संभावित कर सकते थे। सन् १९०५ में बंग-भंग के विरुद्ध आंदोलन के दमन में शासन का उग्र रूप सामने आ चुका था।

---

१. डॉ० पट्टाभि सीतारमैय्या, स० कांग्रेस का इतिहास

राष्ट्रीवादी आंदोलन यद्यपि एक रूप धारण करने जा रहा था तथापि वह समय ऐसा न था जिनमे शासकीय सेवा में रहते हुए कोई उपन्यासकार अपनी राष्ट्रीय भावनाओं को अभिव्यक्ति दे सके।

द्वितीय चरण मे आंदोलन ने उग्र रूप धारण किया। उग्रतावादी जिन साधनों को अपना अस्त्र मानते थे वे थे बहिष्कार, स्वदेशी तथा राष्ट्रीय शिक्षा। असहयोग आंदोलन के संबंध में बी० सी० पाल का कथन था 'जो कुछ हम कर सकते हैं वह यह है, हम सरकार को नौकरी करने वाले आदमी बिलकुल न दें तो हम सरकार को असभव बना सकते है। अरविन्द घोष ने स्पष्ट रूप से घोषणा की 'हमारे सभी आंदोलनों मे स्वतन्त्रता जीवन का लक्ष्य है, तथा एकमात्र हिन्दुत्व ही हमारी आकांक्षा की पूर्ति कर सकता है।' उग्रतावादियों का स्मरण करते हुए देसाई ने लिखा है 'उग्रतावादी नेता हिन्दुओं के वैदिक प्राचीन, अशोक तथा चन्द्रगुप्त के महान शाली शासनकाल को, राणाप्रताप तथा शिवाजी के वीरतापूर्ण कार्यों, झांसी की रानी, लक्ष्मीबाई तथा १८५७ के नेताओं के देश-प्रेम पूर्ण कार्य्य की स्मृतियों को ताजा करते हैं।' इस युग के सर्वमान्य नेता लोकमान्य तिलक ने भी हिन्दुत्व की भावना पर विशेष जोर दिया।' 'तिलक भी हिन्दू पुनर्जागरण के परिणाम थे और कोई आश्चर्य नहीं कि उन्होंने भारत की स्वाधीनता के लिए हिन्दू उत्सवों और हिन्दू सगठन पर बड़ा बल दिया।' थियोसोफिकल सोसायटी ने भी इस दिशा मे कार्य किया तथा शिरोल के मतानुसार 'थियोसोफिस्ट विचारधारा ने हिन्दू पुनर्जागरण को नई प्रेरणा दी और किसी हिन्दू ने इस आंदोलन में इतना काम नहीं किया जितना श्रीमती बेसेन्ट ने।'

कांग्रेस आंदोलन के इस द्वितीय चरण मे लोकमान्य तिलक व ऐनी बेसेंट ने महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया। तिलक जी ने देश का तूफानी दौरा किया और जनता को एक नया नारा दिया 'स्वराज्य मेरा जन्म सिद्ध अधिकार है, मैं इसे लेकर रहूँगा।' उग्रतावादी नेताओं की विचारधारा और हिन्दुत्व की भावना ने जनता को प्रभावित किया और घबराकर सरकार ने भी अनेक दमनात्मक कानून बनाये। लोकमान्य तिलक गिरफ्तार कर माडले जेल मे रखे गये और इस तरह १९१४ तक भारतीय राजनीतिक से अलग रहे। सन् १९१५ मे श्रीमती ऐनी बेसेंट के होम रूल संबंधी प्रस्तावों ने पुन. राजनीतिक वातावरण मे गरमी ला दी और गरमदलीय राजनीतिज्ञों का उत्कर्ष होने लगा। सरकार ने होम रूल आंदोलन का कठोरता के साथ दमन किया। श्रीमती ऐनी बेसेंट बन्दी कर ली गई। तिलक जी ने निष्क्रिय संघर्ष की धमकी दी और इस आंदोलन के फलस्वरूप सन् १९१९ में भारत-सरकार का अधिनियम स्वीकृत हुआ। प्रेमचन्द इन बदलती हुई परिस्थितियों में स्वयं का निर्माण कर रहे थे। राष्ट्र में हो रहे

परिवर्तनों से वे भिन्न थे और अपने को राष्ट्रीय कार्यों के लिए सौंपने को व्यग्र हो रहे थे।

तृतीय चरण में सन् १९२० में गांधी जी के नेतृत्व में असहयोग आंदोलन प्रारम्भ करने का निर्णय लिया गया। यह कांग्रेस का प्रथम सक्रिय क्रांतिकारी कदम था। इसके अनेक कारण थे। अब तक गांधी जी ब्रिटिश सरकार की न्यायप्रियता पर विश्वास करते थे और इसी विश्वास पर उन्होंने प्रथम महायुद्ध में अंग्रेज सरकार का पूरा साथ दिया था। किन्तु इसके उपरान्त भी जलियावाला बाग कांड, पंजाब में मार्शलला और हंटर कमेटी की जांच से अंग्रेजों की न्यायप्रियता से उनका विश्वास उठ गया। जनता में असंतोष तो था ही। कलकत्ता अधिवेशन में असहयोग का प्रस्ताव ८७३ के विरुद्ध १८५५ के बहुमत से पारित हुआ। कांग्रेस ने असहयोग का सात-सूत्री कार्यक्रम जनता के सामने रखा और उसका देश-व्यापी प्रचार करने के लिए गांधी जी ने दौरा किया। उनकी घोषणा थी कि अगर लोग पूरे मन से इस कार्यक्रम को अपना लें तो स्वराज एक साल में मिल जावेगा। असहयोगियों के लिए अहिंसा और सत्य का परिपालन आवश्यक प्रतिपादित किया। सारे देश में असहयोग आंदोलन का व्यापक प्रभाव पड़ा। कांग्रेस ने चालीस लाख स्वयंसेवक भरती किये बीस हजार चरखे बनवाये और सेठ जमनालाल बजाज ने प्रैक्टिस छोड़ने वाले वकीलों के लिए एक लाख रूपया सालाना देने की घोषणा की। कांग्रेस के आव्हान पर प्रिंस ऑफ वेल्स के भारत आगमन (१९२१) का बहिष्कार किया गया तथा बम्बई व कलकत्ता में सफल हड़तालें हुईं। ब्रिटिश सरकार का दमन चक्र चला। सैडीशस एक्ट पारित हुआ और करीब २५ हजार व्यक्ति पकड़े गये। इस दमन नीति के विरुद्ध कांग्रेस ने १९२१ में व्यक्तिगत और सामूहिक सविनय अवज्ञा आंदोलन का निर्णय लिया। जनता ने उत्साह के साथ भाग लिया किंतु चौरीचौरा कांड के फलस्वरूप गांधी जी ने आंदोलन वापस ले लिया। जनता अत्यन्त उग्र थी और उसने गांधी जी की कड़ी आलोचना की। जनता के मनोभाव को देखकर सरकार ने अवसर को उपयुक्त समझ गांधी जी को गिरफ्तार कर लिया और उन्हें ६ वर्ष का कारावास दिया गया।

राष्ट्र में हो रहे इन परिवर्तनों तथा गांधी जी के प्रभाव के सम्मोहन में प्रेमचन्द ने भी शासकीय सेवा से पद त्याग कर प्रकाशन का कार्य प्रारम्भ किया। प्रेमचन्द अब शासकीय बंधनों से मुक्त थे और राष्ट्रीय आंदोलन में अपना योग दान देने के लिए स्वतन्त्र। उनकी लौह-लेखनी उठी और वर्षों से संचित आकांक्षायें उपन्यास के विस्तृत चित्रफलक में चित्रित होने लगीं। सम-सामयिक राजनीतिक वातावरण को साहित्य का सबल मिला और इस तरह प्रेमचन्द की लेखनी से सूत्रपात हुआ राजनीतिक उपन्यासों की नवीन परम्परा का।

सन् १९२० से १९३६ तक भारतीय राजनीति मे भारी परिवर्तन हुए। सन् १९२१ मे मालाबार मे खिलाफत राज्य स्थापित करने से मोपला विद्रोह हो गया जिसने साम्प्रदायिक रूप ग्रहण कर लिया। असहयोग आदोलन के बाद गांधी जी के गिरफ़्तार हो जाने से कांग्रेस मे आपसी मतभेदो मे वृद्धि हुई और कर्मठ सेनानी सी० आर० दास ने कांग्रेस के अध्यक्ष पद से स्तीफा दे दिया। उन्होंने स्वाराज्य पार्टी स्थापित की जिसका उद्देश्य कांग्रेस द्वारा विधान मडलो में भाग लेकर कार्यक्रम को सफल बनाना था। वे चुनाव मे भाग लेने और वोट देने के अधिकार के औचित्य को स्वीकार करते थे। गाधी जी ने बहुमत को इस पक्ष मे देखकर मौन सम्मति दे दी। इस प्रकार कांग्रेस का कार्य रचनात्मक और स्वाराज्य पार्टी का विधान मडलो मे जाकर अवरोध उत्पन्न करना हो गया। यो दोनो का उद्देश्य स्वराज्य प्राप्ति था पर तरीको मे विभिन्नता थी। सन् १९२३ के चुनाव मे स्वराज्य पार्टी को अच्छी सफलता मिली किन्तु विधान मडलो मे जाकर भी वे विशेष कार्य न कर सके। सन् १९२६ मे स्वराज्य पार्टी भग हो गई, सन् १९२७ मे साइमन कमीशन की नियुक्ति हुई। साइमन कमीशन का सारे भारत मे विरोध किया गया पर बिना सहयोग के ही कमीशन ने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत कर दी। दिसम्बर १९२९ में कांग्रेस ने स्वातत्रता प्रस्ताव पारित कर स्वराज्य का अर्थ पूर्ण स्वतत्रता घोषित किया। २६ जनवरी ३० को स्वाधीनता दिवस के रूपमे मनाने के निश्चय के साथ गाधी जी के नेतृत्व मे सविनय अवज्ञा कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया। गांधी जी ने १२ मार्च ३० से प्रसिद्ध डाडी यात्रा प्रारम्भ की। सरकार ने दमनात्मक उपायो का अवलब लिया और हजारो व्यक्ति जेलो मे ठूस दिये गये। कांग्रस ने सन् १९३० मे होने वाले प्रथम गोलमेज सम्मेलन का बर्वहिष्कार किया। परिणाम स्वरूप ५ मार्च १९३१ को गाधी-इर्विन समझौता हुआ। गांधी जी कांग्रेस के सर्वाधिकारी प्रतिनिधि के रूप मे द्वितीय गोलमेज सम्मेलन मे सम्मिलित हुए। इस परिषद मे जिन्ना के हठस्वरूप विभिन्न सम्प्रदायो के प्रतिनिधित्व के सबंध मे कोई निर्णय न हो सका। भारत पहुँचने ही गांधी जी को गिरफ्तार कर लिया गया। भारी सख्या मे कांग्रेसी कार्यकर्ता भी गिरफ्तार किये गये। अगस्त १९३२ में रैम्जे मैकडानल्ड ने साम्प्रदायिक बटवारे के सबध मे ब्रिटिश सरकार के निर्णय की घोषणा की। कांग्रेस ने तीसरे गोलमेज सम्मेलन मे भाग लिया और मार्च १९३३ मे श्वेतपत्र के प्रस्ताव स्वीकृत किये गये। एक वर्ष उपरांत केन्द्रीय विधान मडल के चुनाव हुए जिसमें कांग्रेस को पर्याप्त सफलता मिली। साम्प्रदायिक निर्णय के सबध मे कांग्रेस मौन रही और १९३५ के अधिनियम के अनुसार चुनाव हुए। कांग्रेस ने चुनाव मे भाग लेकर अनेक प्रांतों मे बहुमत प्राप्त किया। इन्ही दिनों सन् १९३६ में प्रेमचन्द ने अपनी इहलीला समाप्त की।

राजनीतिक प्रवृत्तिया

प्रेमचन्द के जीवन-काल मे मुख्यतः दो प्रकार की राजनीतिक प्रवृत्तियां क्रियाशील थी—(१) अहिंसात्मक व (२) हिंसात्मक। कांग्रेस अहिंसात्मक तरीके से स्वराज्य प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील थी जबकि आतकवादी हिंसात्मक प्रणाली के अनुयायी थे। ये दोनो प्रवृत्तिया बलवती थीं। इनके अतिरिक्त सन् १९२४ मे साम्यवादी पार्टी स्थापित हुई थी जो शीघ्र ही भारत सरकार द्वारा अवैध घोषित कर दी गई। यह रूस की साम्यवादी पार्टी के सिद्धान्तो के अनुरूप थी। अवैध घोषित होने से अधिकाश साम्यवादी कार्यकर्त्ता कांग्रेस के मच से ही अपना कार्य करते रहे। उनका कार्यक्षेत्र ट्रेड यूनियनो तथा छात्रों के सगठन तक सीमित था।

प्रेमचन्द के अन्तिम दिनो मे कांग्रेस समाजवादी पार्टी की स्थापना हुई और इसने १९३४-३५ मे कांग्रेस के अन्दर वामपक्षी सगठन के रूप मे कार्य किया।

प्रेमचन्द के जीवन काल मे मुस्लिम साम्प्रदायिकता का विकास उत्कर्ष पर पहुँच गया था और हिन्दू महासभा भी हिन्दुओं के हितों के नाम पर सक्रिय हो रही थी।

इन सब राजनीतिक पार्टियो और विचारो के बावजूद कांग्रेस ही एकमात्र देशव्यापी राजनीतिक दल रहा और सन् १९२० से १९३६ का समय गाधी-युग के नाम से पुकारा गया। गांधी-युग की राजनीतिक विशेषता है गाधी-वाद की उपलब्धि जिसका समाहार बहुत कुछ प्रेमचन्द के राजनीतिक उपन्यासों मे हुआ।

प्रेमचन्द का व्यक्तित्व

जिस राजनीतिक वातावरण मे प्रेमचन्द का विकास हुआ उसका उल्लेख पूर्व मे किया जा चुका है जिससे प्रेमचन्द के व्यक्तित्व और कृतित्व को समझने में सुविधा हो।

जन्म

हिन्दी के प्रथम राजनीतिक उपन्यासकार प्रेमचन्द का जन्म निम्न मध्यवर्ग परिवार में ३१ जुलाई १८८० को वाराणसी से चार मील दूर लमही गाँव में हुआ। यह वह समय था जब राष्ट्र नई चेतना के साथ आगे बढ रहा था। हम अमृतराय जी के इन शब्दो से पूर्णत: सहमत हैं कि 'प्रेमचन्द का जन्म लगभग उसी समय हुआ था जब कि इन्डियन नेशनल कांग्रेस का। कांग्रेस का जन्म इस बात की परोक्ष स्वीकृति थी कि देश मे स्वतंत्रता की काफी सशक्त चेतना उस समय वर्तमान थी। स्वतन्त्रता की

भावना वातावरण मे थी। इसलिए यह स्वाभाविक था कि आरम्भ से ही प्रेमचन्द पर उसका प्रभाव पड़े[1]।

पारिवारिक स्थिति

प्रेमचन्द का साहित्यिक जीवन सन् १९०१ से प्रारम्भ हुआ और इस तरह बाल्यावस्था व तरुणावस्था के बीस वर्षों तक वे विषम आर्थिक तथा पारिवारिक परि-स्थितियो से जूझते रहे। इनके पिता मुन्शी अजायबलाल डाकखाने मे क्लर्क थे। उनकी आर्थिक स्थिति कभी सतोषजनक न रही। प्रारम्भ मे पन्द्रह बीस रुपये मासिक पाते थे, चालीस रुपये तक पहुँचते-पहुँचते उनका देहान्त हो गया[2]। वशानुगत कुछ काश्त थी जो जीवन-निर्वाह के लिए अपर्याप्त थी। इन आर्थिक परिस्थितियो के बीच जब उनके यहाँ पुत्र हुआ तो पिता व चाचा ने बालक का नामकरण क्रमश धनपतराय व नवाबराय रखा। नामकरण सम्भवत परिवार की आर्थिक एव सामाजिक स्थिति का विपर्यय था और जो अभिभावकों की ऐश्वर्य सम्बन्धी दमित आकाक्षाओं का प्रतीक माना जा सकता है। इन्हीं आर्थिक विषमताओ के बीच प्रेमचन्द ने सम्पूर्ण जीवन जिया। वे बाल्यावस्था का स्मरण कर एक स्थान पर लिखते हैं—"अबेरा के पुल का चमरौधा जूता मैंने बहुत दिनों तक नहीं पहना है। जब तक पिता जी जीवित रहे, तब तक उन्होंने मेरे लिए बारह आने से ज्यादा का जूता कभी नहीं खरीदा और चार आने से ज्यादा गज का कपड़ा नही खरीदा।" उनके ही शब्दो मे—"पैसो की दिक्कत तो मुझे हमेशा रहती थी। बारह आने महीना फीस लगती थी। उन बारह आनो मे से एक-आध आना हर महीने खा जाता था। जिस स्कूल मे मैं था, उसमे छोटी जाति के लोग थे। वे लोग मुझसे लेकर दो चार पैसे खा लेते थे। इसलिए फीस देने मे बड़ी दिक्कत होती थी।"

आर्थिक दुरवस्था तो थी ही मा का प्यार भी वे भरपूर न पा सके। आठ वर्ष के थे तो माँ की मृत्यु हो गई और पिता ने दूसरा विवाह कर लिया। माँ का स्नेह तो मिला नहीं, विमाता से भी उसकी पूर्ति न हो सकी। इस मनोव्यथा को प्रेमचन्द जी ने अपने कथा-साहित्य मे अनेक स्थलो पर पात्रो के माध्यम से भी व्यक्त किया। 'कर्मभूमि' के अमरकात का यह परिचय जैसे प्रेमचन्द का ही हो—'अमरकांत की माता का उसके बचपन ही मे देहान्त हो गया। समरकात ने मित्रो के कहने सुनने से दूसरा विवाह कर लिया था। उस सात साल के बालक ने नई मा का बड़े प्रेम से स्वागत किया, लेकिन उसे जल्द मालूम हो गया कि उसकी नई माता उसकी जिद और शरारतों को उस क्षमा

---

१ सपादक डॉ० इन्द्र नाथ मदान—'प्रेमचन्द : चिन्तन और कला,' पृष्ठ २०१

२ हसराज रहबर : 'प्रेमचन्द जीवन और कृतित्व,' पृष्ठ ६

दृष्टि से नही देखती जैसे उसकी मा देखती थी। वह अपनी मा का अकेला लाडला था। बडा जिद्दी, बडा नटखट। जो बात मुँह से निकल जाती, उसे पूरा ही करके छोड़ता। नई माता जी बात-बात पर डाटती थी। यहाँ तक कि उसे माता से द्वेष हो गया। जिस बात को वह मना करती, उसे अवबदा कर करता। पिता से भी ढीठ हो गया। पिता और पुत्र मे स्नेह का बन्धन न रहा।" हसराज रहबर के शब्दो मे— "निस्सदेह यह प्रेमचद की आत्मकथा है।" विमाता, पिता और पुत्र के उपर्युक्त हार्दिक विक्षोभो का सकेत 'सौतेली मा', 'अलग्योभा,' 'प्रेरणा' आदि कहानियो मे भी देखने को मिलता है। इस तरह 'दरिद्रता, विमाता का निठुर व्यवहार, पिता की अवहेलना और उदासीनता, यह वातावरण था जिनमे प्रेमचन्द का बचपन बीता[1]।'

शिक्षा

घर पर उर्दू व फारसी का अध्ययन कर शिक्षा का प्रारम्भ मदरसे से हुआ। उन्हे पढने-लिखने की ओर विशेष रुचि न थी जो मा-बाप का वात्सल्य प्राप्त न कर सकने का ही प्रतिफल था। 'धनपतराय को मदरसे से, मौलवी से और किताबो से कोई विशेष प्रेम न था[2]।' 'भावुक धनपतराय मदरसे से हफ्तो गैरहाजिर रहते थे, और खेतो बागो मे घूम कर प्रकृति से अनुभव प्राप्त करते, सिपाहियो की कवायद देखने और बैड सुनते थे। इस आवारगी मे उनका चचेरा भाई भी उनके साथ होता था, जो उम्र मे उनसे दो साल बडा था[3]।'

पिता का स्थानान्तर गोरखपुर होने पर वे स्कूल मे पढने लगे। मिडिल स्कूल मे शिक्षा के साथ-साथ तिलस्मे होशरूबा का शौक लगा। 'रोजाना वे अपने कम उम्र दोस्त के साथ स्कूल के बाद उसके मकान पर जाते थे। वहाँ तम्बाकू के बडे-बडे स्याह पिंडो के पीछे तम्बाकू फरोश और उसके अहबाब बैठकर बराबर हुक्का पीते और तिलस्मे होशरूबा पढते थे[4]।'

इस तरह बाल्यकाल की कटुताओ के बीच १३ वर्ष की आयु मे वे साहित्य की ओर आकृष्ट हुए। वह उर्दू के उपन्यासो का जमाना था और वे मौलाना शरर, प० रतननाथ सरशार, मिर्जा रुसवा की कृतियों मे आकठ डूब गये। रेनाल्ड के उपन्यास भी उन्हे बहुत प्रिय थे। साहित्याभिरुचि पाठ्य पुस्तको के अध्ययन मे बाधक सिद्ध हुई।

---

१ हसराज रहबर : 'प्रेमचन्द जीवन और कृतित्व,' पृष्ठ ८

२ हसराज रहबर : 'प्रेमचन्द जीवन और कृतित्व,' पृष्ठ १०

३ हसराज रहबर : 'प्रेमचन्द जीवन और कृतित्व,' पृष्ठ ११

४ हसराज रहबर . 'प्रेमचन्द जीवन और कृतित्व,' पृष्ठ १२

इन्हीं दिनों उनका विवाह भी कर दिया गया। यह घटना सन् १८९५ में हुई जब वे १५ वर्ष के थे। वे अभी मैट्रिक भी न कर पाये थे कि पिता का देहावसान हो गया और परिवार का उत्तरदायित्व उनके ही कंधों पर आ गया। उत्तरदायित्व आने से उन्हें बोध हुआ और पढने की इच्छा बलवती हुई। इस ओर उन्होंने ध्यान भी दिया पर सन् १८९८ में मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण कर उन्हें १८९९ में अठारह रुपये पर सरकारी अध्यापक हो जाना पड़ा।

इस समय तक इन्डियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना हुए ग्यारह वर्ष हो चुके थे। यह प्रथम सुव्यवस्थित राजनीतिक प्रयास था जिसने देश को एक नई प्रेरणा और दिशा-निर्देश दिया। इन्हीं दिनों आतंकवादियों की गतिविधियां भी सक्रिय हो रही थीं। सन् १८९७ में दो युवकों ने एक अंग्रेज का वध कर दिया था जिससे उन्हें फांसी दे दी गई। इस घटना से देश में रोष व्याप्त था। प्रेमचन्द इन घटनाओं का तटस्थ होकर मन और मस्तिष्क में आकलन कर रहे थे।

व्यवसाय

अध्ययन की लालसा बनी हुई थी और फलस्वरूप वे प्राइमरी शाला में अध्यापन करते हुए दो बार इन्टर की परीक्षा में बैठे पर असफल रहे। सन् १९०२ में इलाहाबाद ट्रेनिंग कालेज में भरती हुए और १९०४ में जूनियर क्लास की परीक्षा में अव्वल आये और जूनियर सर्टिफिकेट की सनद लेकर निकले। सन् १९१० में इटरमीडिएट की परीक्षा उत्तीर्ण करते समय वे गवर्नमेंट स्कूल में सरकारी अध्यापक थे। सन् १९१९ में वे जब गोरखपुर में अध्यापक थे उन्होंने बी० ए० किया। सन् १९२१ के असहयोग आंदोलन में उन्होंने सरकारी सेवा से त्याग पत्र दे काशी में प्रकाशन का कार्य प्रारम्भ किया। करीब डेढ वर्ष तक 'मर्यादा' का सम्पादन, फिर एक वर्ष काशी विद्यापीठ में अध्यापक रहे। अध्यापन छोड 'सरस्वती प्रेस' को प्रारम्भ किया। घाटा आया तो लखनऊ गये और गंगा पुस्तकमाला व फिर नवलकिशोर प्रेस में 'माधुरी' तथा साहित्य सुमन माला के सम्पादक रहे। सन् १९३० से 'हंस' का प्रकाशन संपादन प्रारम्भ किया और १९३४ में एक फिल्म कम्पनी में गये पर एक वर्ष रह कर लौट आये। जिन्दगी के लिए वे सदा संघर्ष करते रहे बिना किसी विश्रान्ति के और ८ अक्टूबर १९३६ को काशी में गोलोक वासी हुये। यह सत्य है कि 'प्रेमचन्द को सम्पन्न जीवन बिताना सारी उम्र नसीब न हुआ लेकिन वह अपने लिए और देश की जनता के लिए सदा सम्पन्न और समृद्ध जीवन के स्वप्न देखते रहे[1]।'

---

१. हंसराज रहबर : 'प्रेमचन्द जीवन और कृतित्व' पृष्ठ २६

साहित्यकार प्रेमचन्द

उपन्यासकार के रूप मे

प्रेमचन्द का रचनाकाल सन् १९०१ से माना जाता है। वे लिखते है, 'मैंने पहले-पहल १९०७ मे गल्प लिखना शुरू किया। डाक्टर रवीन्द्रनाथ के कई गल्प मैंने अंग्रेजी मे पढे थे, जिनका उर्दू अनुवाद कई पत्रिकाओ मे छपवाया था। उपन्यास तो मैंने १९०१ ही से लिखना शुरू किया। मेरा एक उपन्यास १९०२ मे निकला और दूसरा १९०४ मे लेकिन गल्प सन् १९०७ से पहले मैंने एक भी न लिखी। मेरी पहली कहानी का नाम था 'ससार का सबसे अनमोल रत्न'। वह १९०७ मे 'जमाना' उर्दू मे छपी। इसके बाद मैंने 'जमाना' मे चार-पांच कहानियाँ और लिखीं।'

साहित्य सृजन की प्रेरणा उन्हें मौलाना शरर, पं० रतन नाथ सरशार, मिर्जा रुसवा के कथा साहित्य और रेनाल्ड के उर्दू मे अनूदित उपन्यासो से छात्रावस्था मे ही मिली। इन दिनो वे केवल १३ वर्ष के थे। वे लिखते हैं कि 'मेरी पहली रचना का समय लगभग सन् १८९३ है जब धनपत की अवस्था कोई तेरह वर्ष होगी। सन् १८९४ मे एक नाटक लिखा जिसका नाम 'होनहार बिरवान के चिकने चिकने पात' था[१]। यह उनका प्रारम्भिक प्रयास था।

उपन्यास और उनका रचनाकाल

उपर्युक्त विवरणो से स्पष्ट है कि उपन्यास लेखन की ओर उनकी रुझान स्वाभाविक थी और सन् १९१६ से १९३६ के बीच उन्होंने हिन्दी मे अनेक महत्वपूर्ण उपन्यासो की रचना की। काल क्रमानुसार उनके उपन्यासो की तालिका प्रकाशनकाल सहित निम्नानुसार है -

१—वरदान	सन्
२—सेवासदन	सन् १९१८
३—प्रेमाश्रम	सन् १९२३
४—रगभूमि	सन् १९२५
५—कायाकल्प	सन् १९२६
६—निर्मला	सन् १९२७
७—प्रतिज्ञा	सन् १९२९
८—गबन	सन् १९३१

१. हसराज रहबर : 'प्रेमचन्द जीवन और कृतित्व' पृष्ठ ३६

९–कर्मभूमि सन् १९३२
१०–गोदान सन् १९३६
११–मंगलसूत्र (अपूर्ण)

प्रेमचन्द के उपन्यासो के प्रकाशन काल के सम्बन्ध मे विद्वानो मे मतभेद पाया जाता है। श्रीमती गीतालाल ने 'साहित्य' जनवरी, १९६० मे प्रेमचन्द के उपन्यासो के प्रकाशन काल का शोधपूर्ण विवेचन किया है। उनके काल निर्धारण से पूर्ण सहमति प्रकट करते हुए हम भी उपर्युक्त तिथियो को मान्यता दे रहे हैं।

उपर्युक्त तिथियों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि प्रेमचन्द के एकाध उपन्यास को छोड़कर उनके प्राय सभी हिन्दी उपन्यास गाँधी युगीन कृतियाँ हैं। यह युग भारतीय जनता के राष्ट्रीय सघर्ष का था और एक ईमानदार साहित्यकार के अनुरूप ही प्रेमचन्द ने उस सघर्ष का अपने उपन्यासो मे निर्वाह किया। वे अपने युग की सामाजिक, राजनीतिक एव आर्थिक परिस्थितियो व विचारधाराओ को सूक्ष्मता के के साथ आत्मसात् कर उन्हे आन्दोलन मे जूझती जनता तक पहुँचा कर अपने कर्तव्य का पालन करते रहे। यही कारण है कि प्राक् गाँधीयुगीन कृतियो को छोड़, प्रायः सभी उपन्यासो मे गाँधी युग के राजनीतिक वातावरण का सजीव चित्रण उनके उपन्यासो मे मिलता है। तत्कालीन भारत की प्रमुख समस्या राष्ट्र को साम्राज्यवादी शक्तियो से मुक्ति दिलानी थी। भारत की समग्र चेतना व कर्मशक्ति ब्रिटिश साम्राज्यवाद को उखाड़ फैंकने मे लगी हुई थी।

राजनीतिक दृष्टिकोण

प्रेमचन्द के जीवन पर सक्षिप्त विचार करते हुए हम यह पूर्व ही मे देख चुके हैं कि राष्ट्रीय आन्दोलन से उनका स्व[illegible] का कोई निकट सबध नही रहा। सिवाय इसके *कि सन् १९२१ मे असहयोग आन्दोलन में उन्होंने २२ वर्षीय शासकीय सेवा से पद-*त्याग कर दिया। आन्दोलन को उन्होने बौद्धिक रूप से देखा था और बुद्धिजीवी के रूप मे ही उसका प्रचार जनसाधारण मे करना चाहते थे।

पत्नी शिवरानी जी से हुई उनकी वार्ता मे इसका उल्लेख मिलता है—शिवरानी बोली—इसका मतलब है आप भी महात्मा गाँधी के चेले हो गये। प्रेमचन्द—*चेला बनने का मतलब किसी की पूजा करना नही, उसके गुणो को अपनाना होता है।* मैंने उन्हें अपना कर ही तो 'प्रेमाश्रम' लिखा जो सन् १९२२ में छपा है प्रेमचन्द ने कहा कि दलील की बात नहीं। वह भी मजदूरों-किसानो की भलाई के लिए आंदोलन चला रहे हैं और मैं भी कलम से यही कुछ कर रहा हूँ[1]।

---

१ शिवरानी देवी : 'प्रेमचन्द घर में'

स्पष्ट है कि प्रेमचन्द साहित्य में राजनीतिक चित्रण को महत्वपूर्ण मानते थे। इस रूप में वे साहित्यकार को आंदोलनकारी से कम स्वीकार नहीं करते। वे साहित्य, समाज और राजनीति में अटूट सम्बन्ध मानते थे। उनका कथन है 'ये चीजें माला जैसी ही हैं। जिस भाषा का साहित्य अच्छा होगा, उसका समाज भी अच्छा होगा। समाज के अच्छा होने पर भी मजबूरन राजनीति भी अच्छी होगी। ये तीनों साथ साथ चलने वाली चीजें हैं—इन तीनों का उद्देश्य ही जो एक है। साहित्य इन तीनों (शेष दोनों) की उपत्ति के लिए एक बीज का काम देता है। साहित्य और समाज और राजनीति का सम्बन्ध बिलकुल अटल है।'

वे इसकी विस्तृत व्याख्या करते है कि, 'समाज आदमियों के समूह को ही तो कहते हैं। समाज में जो हानिलाभ तथा सुख-दुख होता है वह आदमियों ही पर पड़ता है। साहित्य से लोगों को विकास मिलता है। साहित्य से आदमी की भावनाएं अच्छी और बुरी बनती हैं। इन्ही भावनाओं को लेकर आदमी जीता है और इन सब तीनों चीजों की उत्पत्ति का कारण आदमी ही है।'[१]

साहित्य को वे राजनीति से ऊँचे स्तर का मानते थे। उनकी दृष्टि में साहित्य राजनीति का मार्ग-दर्शक था। उनके शब्दों में 'साहित्य राजनीति के पीछे चलने वाली चीज नहीं, उसके आगे आगे चलने वाली एडवान्स गार्ड है। वह उस विद्रोह का नाम है, जो मनुष्य के हृदय में अन्याय अनीति और कुरुचि से उत्पन्न होता है।[२]'

साहित्य और राजनीति दोनों को वे समाज के उन्नयन के लिए समान रूप से उत्तरदायी मानते थे और इसी कारण उन्हें उपयोगिता की तुला पर तौलते थे। उनका स्पष्ट कथन है कि 'साहित्य की प्रवृत्ति अहंवाद या व्यक्तिवाद तक परिमित नहीं रह गई है। बल्कि वह मनोवैज्ञानिक और सामाजिक होती जाती है। तब वह व्यक्ति को समाज से अलग नहीं देखता है। इसलिए नहीं की वह समाज पर हुकूमत करे, उसे अपनी अपनी स्वार्थ-साधना का औजार बनाये मानो उसमें और समाज में सनातन शत्रुता है, बल्कि इसलिए कि समाज के अस्तित्व के साथ उसका अस्तित्व कायम है और समाज से अलग होकर उसका मूल्य शून्य के बराबर हो जाता है।[३] साहित्य को वे जीवन की समस्याओं पर विचार करने का साधन मानते थे। एक स्थल पर उन्होंने लिखा है, 'अब साहित्य केवल मन बहलाव की चीज नहीं है, मनोरंजन के सिवाय उसका और भी कुछ उद्देश्य है। अब वह केवल नायक-नायिका के संयोग-वियोग की कहानी

---

१. शिवरानी देवी : 'प्रेमचन्द घर में', पृष्ठ ६४-६५

२. प्रेमचन्द : 'कुछ विचार,' पृष्ठ ७४

३. प्रेमचन्द : 'कुछ विचार' पृष्ठ १७

नहीं सुनाता, किन्तु जीवन की समस्याओ पर भी विचार करता है और उन्हे हल करता है।[1] वे इस सत्य से भी परिचित थे कि साहित्य अपने काल का प्रतिबिम्ब होता है। जो भाव और विचार लोगो के हृदयों को स्पन्दित करते हैं, वही साहित्य पर भी अपनी छाया डालते हैं।[2]

इसमे सदेह नहीं कि शोषित और पीडित भारतीय जनता के यथार्थ अकन के प्रति प्रेमचन्द की यही विचार धारा उन्हें प्रेरणा देती रही। उन्होने भारतीय समाज और राजनीतिक सघर्ष को निकट से देखा और उसका 'फोटो ग्राफिक' चित्रण प्रस्तुत किया। ऐसा करना उनके लिये विवशता थी। उनके ही शब्दो मे 'जब हम देखते हैं कि हम भांति भांति के राजनीतिक बन्धनों मे जकडे हुए हैं, जिधर निगाह उठती है दु:ख और दरिद्रता के भीषण दृश्य दिखाई देते है, विपत्ति का करुण क्रन्दन सुनाई देता है, तो कैसे सभव है कि किसी विचारशील प्राणी का हृदय न दहल उठे।[3] और इन सबका चित्रण उपन्यास मे ही सहज संभव है, ऐसा वे मानते थे। सभी प्रकार के विचारो को अभिव्यक्ति देने मे उपन्यास समर्थ है और इसीलिए उन्होने कहा भी कि 'उपन्यास मे आपकी कलम मे जितनी शक्ति हो अपना जोर दिखाइए, राजनीति पर तर्क कीजिए, किसी महफिल के वर्णन मे दस-बीस पृष्ठ लिख डालिए, कोई दूषण नहीं।[4]' कहना न होगा कि उपन्यास में राजनीतिक चित्रण को वे दूषण नही मानते थे। यही कारण है कि राजनीतिक वातावरण की छाया उनके उपन्यासो मे व्याप्त है कहीं घनी, कहीं विरल।

उनके उपन्यास गाँधी युग की राजनीतिक चेतना से स्पन्दित हैं। उसमे राष्ट्र की असन्तोष पूर्ण आर्थिक दशा, किसानो और मजदूरो के निरन्तर शोषण और आर्थिक वैषम्य की कहानी का मार्मिक चित्रण तो है ही उनमे जागृति उत्पन्न करने का प्रयास भी है जिसके लिए कांग्रेस राजनीतिक रूप से प्रयत्नशील थी।

कांग्रेस ने किसानो की दयनीयावस्था से प्रेरित होकर सत्याग्रह आन्दोलन चलाया, स्वदेशी का नारा बुलन्द किया और असहयोग का मार्ग प्रशस्त किया। प्रेमचन्द ने इन प्रयासो के क्रमिक विकास को देखा था, उससे अत्यधिक प्रभावित भी थे और यही कारण है कि 'कर्मभूमि' और 'रङ्गभूमि' तत्कालीन राजनीतिक वातावरण

---

१. प्रेमचन्द : 'कुछ विचार' पृष्ठ ६
२ प्रेमचन्द : 'कुछ विचार' पृष्ठ ४६
३ प्रेमचन्द : कुछ विचार' पृष्ठ २४
४. प्रेमचन्द : 'कुछ विचार' पृष्ठ २४

ही कथ्य बना और जिनके पात्र ऐतिहासिक न होकर भी उस व्यापक आन्दोलन के पात्र हैं।

हिन्दी के उपन्यासकारो मे प्रेमचन्द ही एक ऐसे हैं जिनका मूल्याकन सर्वाधिक आलोचको ने विभिन्न दृष्टिकोणा से किया है। उनके उपन्यासो म समाज सापेक्ष्यता देख कर कुछ विद्वान उन्हे सामाजिक उपन्यासकार और कुछ उपन्यासो मे विभि न समस्याग्रो को देखकर समस्यामूलक उपन्या मकार मानते हैं। डॉ० राम विलास शर्मा ने प्रेमचन्द आलोचनात्मक परिचय' मे विभिन्न सामाजिक आर्थिक वर्गों के माध्यम से प्रेमचन्द के कथा-साहित्य का मूल्याकन किया है। इन्ही आधारो पर डॉ० त्रिलोकी नारायण दीक्षित ने उन्हें अ.नी पुस्तक 'प्रेमचन्द मे मार्क्सवादी चौखटे मे कसने का प्रयत्न किया। इसके ठीक विपरीत कुछ समीक्षको ने उन्हे गाँधीवाद का प्रचारक सिद्ध करने का प्रयास किया। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने मानवतावादी उपन्यासकार के रूप मे उन्हे देखा और लिखा, "यह मानने मे तो शायद कठिनाई अनुभव की जाय कि प्रेमचन्द गाधी-वादी या साम्यवादी सिद्धान्तों से कभी प्रभावित ही नही हुए परन्तु यह स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहं कि प्रेमचन्द पूर्णरूप से मानवतावादी थे।" शिल्प की दृष्टि से भी उनके उपन्यास साहित्य का वर्गीकरण यथार्थवादी और आदर्शोन्मुख यथार्थवादी के रूप मे किया गया। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी तो आदर्शोन्मुख यथार्थवाद की सत्ता ही नही मानते।

कहना न होगा कि विद्वानो के इन विभिन्न मतो के प्रतिपादन से प्रेमचन्द के सम्बन्ध मे स्पष्टीकरण कम और भ्रम की स्थिति अधिक निर्मित की गई है।

ऐसे उपन्यासकार को जिसने विभिन्न आधारा पर अनेक उपन्यासो की सृष्टि की हो किसी वर्ग के अन्तर्गत रखना उचित नही क्योंकि उससे मूल्याकन एकागी ही होगा। मेरे मत से तो समीक्षको के मूल्याकन रूपी पत्थरो से प्रेमचन्द का उपन्यास साहित्य रूपी दर्पण तडक गया है और प्रत्येक समीक्षक अपने टुकडे मे अपनी मान्यताम्रा का स्वरूप देखने का प्रयास कर रहा है। यदि राजनीतिक धरातल पर उनके समग्र उपन्यास साहित्य को देखा जाय तो जो अनेक विभाजन किये गय हैं व भ्रम फैला है वह बहुत अशो मे दूर हो सकता है। एक सजग साहित्यकार होने के नाते प्रेमचन्द अपने युग, देश और राष्ट्रीय आन्दोलन की परिस्थितियो से अपरिचित नहीं थे ऐसी स्थिति मे सच तो यह है कि उन्होने एक साहित्यिक कलाकार के यथार्थ दृष्टिकोण से सभी प्रकार की समकालीन परिस्थितियों का अकन किया है। अतएव उन्हे मुख्यत गाँधीवादी या जनवादी कहना उतना उचित नही।

प्रेमचन्द के प्रेरणा-स्रोत

प्रेमचन्द जी न केवल हिन्दी राजनीतिक उपन्यास अपितु हिन्दी उपन्यास साहित्य के युग प्रवर्तक हैं। राष्ट्रीय राजनीतिक परिस्थितियों ने उनके साहित्यकार को स्फुरित किया और उनके उपन्यास साहित्य मे तत्कालीन राजनीतिक व सामाजिक जीवन अपनी यथार्थता के साथ चित्रित हुआ। प्रेमचन्द गाँधी युग की साहित्यिक देन हैं और उन्हें हम चाहें तो 'हिन्दी साहित्य का गाँधी' भी कह सकते हैं। किन्तु उनके राजनीतिक उपन्यासों की रचना के पीछे जो साहित्यिक प्रेरणा थी वह बगला उपन्यास साहित्य की ही है, रूसी उपन्यास साहित्य की नही जैसा कि कभी-कभी कहा जाता है। वे बकिमचन्द्र और रवीन्द्रनाथ ठाकुर से प्रभावित थे। 'जमाना' के सम्पादक मुन्शी दया-नारायण निगम को ४ मार्च १९१४ को लिखे एक पत्र मे वे कहते है—"मुझे अभी तक यह मालूम नहीं हुआ, कि कौन सी तरजे-तहरीर (रचना-शैली) अख्तियार करूँ? कभी तो बकिम की नकल करता हूँ, कभी आजाद के पीछे चलता हूँ।' सन् १९१४ तक प्रेमचन्द ने हिन्दी मे उपन्यास नहीं लिखा था अतः बकिमचन्द्र की नकल करने का प्रश्न ही नहीं उठता। यहाँ 'नकल' से तात्पर्य प्रभावित होने से है। बकिमचन्द्र के कई उपन्यास तब तक हिन्दी मे अनूदित हो चुके थे और इनमे से 'आनन्दमठ' अपनी राज नीतिक चेतना के कारण बहुत लोकप्रिय भी हुआ था। इन्हीं दिनो शरत और रवीन्द्र बाबू के अनूदित उपन्यास भी हिन्दी पाठको के आकर्षण-केन्द्र थे और इनमे से कई राजनीतिक भाव भूमि पर आधारित थे। प्रेमचन्द्र ने १९०७ से गल्प लिखना प्रारम्भ किया था और रवीन्द्र बाबू के कई गल्प अग्रेजी से उर्दू मे अनूदित कर प्रकाशित करवाये थे। निश्चय ही उन्होने एक आगरूक पाठक के नाते 'आनन्दमठ' और 'गोरा' के प्रणेताओ और उनके राजनीतिक उपन्यासों से प्रेरणा प्राप्त की होगी। सन् १९१८ तक प्रेमचन्द का ध्यान कौमी जज़्बा की ओर नही गया था और मुकर्रमी अब्दुल्ला आसफअली खा साहब ने १९१८ मे प्रेमचन्द को सलाह दी—'उन्हे ऐसे किस्से और नावल लिखने चाहिए, जिससे कौमी जज़्बा की नश्वोनमा (राष्ट्रीय भावनाओ की अभिवृद्धि) मे मदद मिले। फौकल आदत वाकआत (अस्वाभाविक घटनाओ) से पाक हो।' इस पर प्रेमचन्द ने मुन्शी दयानारायण के मार्फत जबाब दिया था—'मिस्टर अब्दुल्ला की राय पर अमल करूँगा, हालांकि 'सुपरनेचरल एलीमेन्ट्स' आदमी की जिन्दगी मे शामिल हैं।' इसी बीच उन्होने असहयोग आन्दोलन और गाँधी जी के नेतृत्व से प्रभावित हो नौकरी से त्याग पत्र दिया और शासकीय बन्धनो से मुक्त हुए। इन परिस्थितियों में *'प्रेमाश्रम' का रचना हुई जिसने कौमी जज़्बा की नश्वोनमा की* इसमे किसे सन्देह हो सकता है। इसके लिए उन्हें बगला-साहित्य की पृष्ठभूमि मिली और स्वानुभूति से राष्ट्रीय समस्याओ के आकलन के साथ गाँधी-वादी राजनीति।

प्रेमचन्द के उपन्यासो के रचनाकाल के अनुसार उनके उपन्यासो को प्राक्-गाँधीयुगीन उपन्यास और गाँधी युगीन उपन्यास की श्रेणी मे वर्गीकृत किया जा सकता है।

उनके प्राक् गाँधीयुगीन उपन्यास वरदान, प्रतिज्ञा और सेवासदन हैं तथा शेष अन्य अर्थात् प्रेमाश्रम, रगभूमि, कायाकल्प, निर्मला, गबन, कर्मभूमि, गोदान और मगलसूत्र गाँधी युगीन कृतियाँ हैं।

प्राक्-गाँधीयुगीन उपन्यासो मे राजनीति

प्राक्-गाँधीयुग मे राजनीति की अपेक्षा सामाजिक सुधार की प्रवृति विशेष थी। आतकवादी गतिविधियाँ अवश्य सक्रिय थी किन्तु शासकीय सेवारत प्रेमचन्द को उनके यथातथ्य चित्रण मे अनेक बाधाएँ थी। हिन्दी मे सामाजिक उपन्यासो की उस परम्परा का भी अभाव था जिसके आधार पर राजनीतिक चेतना प्रस्फुटित होती। काग्रेस मे तिलक जैसे नेताओ का प्रभाव बढ रहा था पर राजनीतिक दृष्टिकोण अभी भी अस्पष्ट था। राजनीति और धर्म समाज की आड मे राह खोज रही थी। ऐसे युग मे जब केवल राष्ट्रीयता की भावना भर हो और राजनीतिक लक्ष्य अस्पष्ट न हो प्रेमचन्द के प्रारम्भिक उपन्यासो मे राजनीतिक चित्रण के अभाव का कारण सरलता से समझा जा सकता है। इतना होने पर भी 'वरदान,' 'प्रतिज्ञा' और 'सेवासदन' राजनीतिक वातावरण से शून्य नही। 'वरदान' मे जो प्रेमचन्द का सभवत प्रथम उपन्यास है देशभक्ति की सूक्ष्म रेखा दिखलाई देती है जो 'वरदान' के पात्रो के राष्ट्रीय आत्म गौरव के रूप मे व्यक्त हुई है। एक प्रसंग आता है कि विरजन के श्वसुर डिप्टी श्यामाचरण एक बार अग्रेज कलक्टर को सलाम करने गये। दो घटे प्रतीक्षा करने के बाद साहब बहादुर निकले और फिर कभी आने के लिए कहकर क्लब चले गये। डिप्टी साहब भविष्य मे फिर किसी अग्रेज से मिलने नही गये[१]। इस घटना से अग्रेज शासको की प्रवृत्ति और भारतीयो के राष्ट्रीय आत्म गौरव का स्पष्ट सकेत है। 'वरदान' के एक पात्र बाबू राधाचरण भी देश सेवा के लिए सरकारी नौकरी से इस्तीफा दे देते हैं[२]। भारतीयो की दीन-हीन अभाव ग्रस्त जनता का चित्रण भी मिलता है। गरीबी के घेरे किसान सख्ती से वसूल होने वाली लगान, पुलिस के हथकडे भी 'वरदान' मे देखे जा सकते हैं। प्लेग से सहस्रो व्यक्तियो की मृत्यु[३] और बाढ का प्रकोप[४] का उल्लेख भी है। ऐसा प्रतीत होता है कि

१. प्रेमचन्द : वरदान, पृ ठ २५-२६
२ प्रेमचन्द . वरदान, पृष्ठ १४६
३ प्रेमचन्द : वरदान, पृष्ठ ८८
४. प्रेमचन्द : वरदान, पृष्ठ १७१

'प्लेग' का जो विवरण 'वरदान' मे आया है वह सन् १८९७ मे हुए प्लेग का ही है जो पूना मे मिस्टर रेण्ड की हत्या के कारण राजनीतिक महत्व का बन गया था।

'प्रतिज्ञा' मे भी गाधीय सिद्धान्तो की हल्की सी झलक है। 'प्रतिज्ञा' १९०४-०५ मे प्रकाशित 'प्रेमा' का संशोधित सस्करण है जो डॉ० रामरतन भटनागर के अनुसार १९२९ मे प्रकाशित हुआ था। 'प्रतिज्ञा' की मूल समस्या विधवा-विवाह है और इसे केन्द्र बनाकर नारी-समस्या पर जो विचार व्यक्त किये गये हैं उन पर गांधी जी का प्रभाव मिलता है पर न्यूनांश में इसी प्रकार 'सेवासदन' मे वेश्याओ की समस्या ही प्रमुख है किन्तु उस सामयिक राजनीतिक घटनाओ का भी कुछ उल्लेख मिलता है। पदमसिंह के प्रस्ताव को स्थानीय नेतागण किस तरह सामाजिक प्रश्न से राजनीतिक समस्या बनाकर साम्प्रदायिक तनाव को जन्म देते है इसका प्रसग 'सेवासदन' मे देखा जा सकता है। रुस्तम भाई इस प्रवृत्ति को देखकर जैसे कांग्रेस कार्यक्रम की उद्घोषणा करते हैं 'मुझे यह देख कर शोक हो रहा है कि आप लोग एक सामाजिक प्रश्न को हिन्दू-मुसल्मानो के विवाद का स्वरूप दे रहे हैं। सूद के प्रश्न को भी यह रंग देने की चेष्टा की गयी थी। ऐसे राष्ट्रीय विषयो को विवाद ग्रस्त बनाने से कुछ हिन्दू साहूकारो का भला हो जाता है, किन्तु इससे राष्ट्रीयता को जो चोट लगती है उसका अनुमान करना कठिन है[1]।

साम्प्रदायिक हथकण्डो के सिवाय किसानो के शोषण, धन और धर्म के अपावन गठ बन्धन के चित्र चेतू और जमींदार महन्त रामदास की कथा-प्रसग से प्रस्तुत किये गये हैं। विदेशी शोषण का एक उदाहरण शाता मुगलसराय स्टेशन पर भारतीय और अग्रेज यात्री के बीच की वैषम्यता मे देखती है[2]।

हिन्दी उपन्यास मे 'सेवासदन' मे राष्ट्रभाषा के महत्व और उसके स्वरूप पर सर्वप्रथम उल्लेख करने का श्रेय प्रेमचन्द को है। यह बात अलग है कि यह प्रश्न भी गांधी जी के राजनीतिक विचार की ही प्रतिध्वनि है। गांधी जी ने १९०८ मे ही राष्ट्र भाषा के प्रश्न को उठाया था और १९१८ मे उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा था 'जब तक हम हिन्दी भाषा को राष्ट्रीय और अपनी-अपनी प्रान्तीय भाषाओ को उनका स्थान नहीं देते, तब तक स्वराज्य की सब बातें निरर्थक हैं[3]।

प्रेमचन्द भी गाधी जी से इस प्रश्न पर पूर्णतया सहमत थे और 'सेवासदन' में कई स्थलों पर गांधी जी के राष्ट्रभाषा सम्बन्धी विचारों को स्वीकृति दी गई है। उन्होंने

---

१. प्रेमचन्द : सेवासदन, पृष्ठ १८०

२ प्रेमचन्द : सेवासदन, पृष्ठ ८

३. गांधी जी : राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानी, पृष्ठ १५

अपने पात्र से कहलवाया है--'यह हमारे साथ कितना बड़ा अन्याय है, हम कैसे ही चरित्रवान् हो, कितने ही बुद्धिमान हो, कितने ही विचारशील हो, पर अंग्रेजी भाषा का ज्ञान न होने से उनका कुछ मूल्य नहीं, हमसे अधम और कौन होगा जो इस अन्याय को चुपचाप सहते हैं[1]।' कुमार अनिरुद्ध सिंह भी नहीं समझ पाते कि 'अंग्रेजी भाषा बोलने और लिखने मे लोग क्यो अपना गौरव समझते है[2]।' प्रेमचन्द के उपन्यास-साहित्य का अनुशीलन करने पर हम इस तथ्य पर पहुँचते हैं कि जिस प्रकार सामाजिक सुधारवादी आन्दोलन से भारतीय राजनीति का विकास हुआ उसी के अनुकूल सामाजिक सुधारवादी उपन्यास साहित्य से ही प्रेमचन्द की राजनीतिक विचार धारा। उनके प्रारम्भिक सामाजिक उपन्यासो की ही नींव पर उनके राजनीतिक उपन्यासो की रचना हुई।

प्रेमचन्द के राजनीतिक उपन्यास

प्रेमाश्रम

'प्रेमाश्रम' हिन्दी का प्रथम राजनीतिक उपन्यास है जिसमे तत्कालीन जमीदारी प्रथा के विरुद्ध लखनपुर के कृषको के संघर्ष की उज्जवल गाथा किसान जीवन के विशाल फलक पर अंकित की गई है। इसमे शोषक और शोषित वर्गों की सम-सामयिक राजनीतिक स्थिति को सामाजिक परिपार्श्व मे प्रस्तुत करने के कारण वर्ग संघर्ष का सजीव चित्रण है। वर्ग संघर्ष से तात्पर्य भारतीयो का विदेशी शासन एवं शोषण और देश की गरीबी आदि है।

गाँधी जी के राजनीतिक विचारो से प्रभावित हो शासकीय सेवा से त्यागपत्र देकर लेखन कार्य स्वीकार करने के कारण प्रेमचन्द जी के लिए यह स्वाभाविक ही था कि अपने प्रथम राजनीतिक उपन्यास मे वे गाँधीवाद के मूल सिद्धान्तो को स्थान देते। *'प्रेमाश्रम' मे किसानो की गाथा भी सोद्देश्य प्रस्तुत की गई है। उस समय की राजनीतिक* स्थिति पर यदि ध्यान दिया जाये तो यह तथ्य स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है कि महात्मा गाँधी के नेतृत्व मे कांग्रेस का विस्तार मध्यवर्गीय समाज से विस्तरित होकर निम्नवर्गीय समाज को समेटने के प्रयास मे था। कहा जाता है कि कांग्रेस ने १९०५-१९१९ के युग मे भारतीय किसानो की कठिनाइयों की ओर उतना ध्यान नहीं दिया था जितना उद्योग-पतियो की आवश्यकता की ओर[3]। कांग्रेस का नेतृत्व हाथों मे लेते ही

१. प्रेमचन्द : सेवासदन, पृष्ठ २८८

२. प्रेमचन्द : सेवासदन, पृष्ठ २५२

३. एन० जी० रंगा : सोशल बेक ग्राउन्ड आव इण्डियन नेशनलिज्म, पृष्ठ १६५

गाँधी जी ने इस दुर्लक्ष्य को अनुभव कर घोषणा की थी कि गाँव ही भारत के प्राण है और उनकी उपेक्षा करके स्वाधीनता के लक्ष्य को प्राप्त करना असंभव है। गाँवो की जनता से निकट का सम्पर्क रहने से प्रेमचन्द किसानों की हीनावस्था से भली भांति परिचित थे और जानते थे कि बिना उनके सक्रिय सहयोग के कोई भी आन्दोलन सफली भूत नही हो सकता। गाँधी जी के इस नये दृष्टिकोण को उपन्यास के माध्यम से स्थापित करने का इससे अच्छा सुयोग उन्हें भला और कब मिल सकता था। स्वयं प्रेमचन्द जी ने अपनी पत्नी से इस सत्य को स्वीकार किया है कि भारतीय किसानो और मजदूरों के सुख-चैन के लिए गाँधी जी जो राजनीतिक प्रयास कर रहे हैं, 'प्रेमाश्रम' उन्ही प्रयत्नों का साहित्यिक रूपान्तर है[1]। भारतीय किसानो मे राजनीतिक चेतना का विकास सन् १९१८ से प्रारम्भ हो गया था। उत्तर प्रदेश भारत का प्रमुख कृषि प्रधान क्षेत्र और राजनीतिक चेतना का केन्द्र था। यहीं सन् १९१८ ई० प्रयाग मे बाबा रामचन्द्र के नेतृत्व मे किसान सभा का गठन हुआ था। किसान सभा का लक्ष्य किसानो के प्रति होने वाले अन्यायो का शान्तिपूर्ण ढग से प्रतिकार करना था। सभा के सदस्यों को प्रतिज्ञा लेना पड़ती थी कि वे सदा शान्त रहेंगे, गैर कानूनी टैक्स नहीं देंगे, बेगार नहीं करेंगे, भूसा, रसद आदि बाजार भाव पर ही देंगे, नजराना नहीं देंगे इत्यादि। प्रयाग के अतिरिक्त परतापगढ़, रायबरेली, जौनपुर आदि जिलो मे किसान सभा का कार्यक्षेत्र फैल गया था। इन जिलो की गतिविधियों से प्रेमचन्द भिज्ञ थे और "प्रेमाश्रम" में वर्णित किसान-संघर्ष की गाथा किसान सभा के आन्दोलनो की प्रतिच्छाया है। गाँधी जी या कांग्रेस ने किसानों की समस्याओ को सन् १९३० मे उठाया था। आचार्य नरेन्द्रदेव के कथनानुसार "कांग्रेस के मच मे सबसे प्रथम हमे सन् १९३० मे जनता से सबध रखने वाले आर्थिक प्रश्नों की चर्चा सुनायी देती है और यह चर्चा उठी महात्मा जी द्वारा लार्ड इरविन के सम्मुख रखी गई मांगो के रूप मे। यह माग थी लगान को कम से ५० फीसदी कम कर देने की। इस माग का कारण यही था कि किसानों की आवाज अब कांग्रेस तक आने लगी थी। आर्थिक प्रश्नों की ओर कांग्रेस का ध्यान इस समय से बढ़ने लगता है। कराची कांग्रेस मे और उसके बाद लखनऊ कांग्रेस मे प० नेहरु ने जनता से सबध रखने वाले प्रश्नों को कांग्रेस द्वारा हाथ मे लेने की आवश्यकता पर जोर दिया। इसका कारण यह था कि इसके पहले बारडोली (गुजरात) और यू० पी० मे किसानों की समस्या राजनीतिक क्षेत्र मे आकर हमारी राष्ट्रीय लड़ाई की मुख्य हथियार बन गई थी[2]।'

१ शिवरानी देवी : प्रेमचन्द घर में, पृष्ठ ६५
२. आचार्य नरेन्द्र देव : 'राष्ट्रीयता और समाजवाद' पृष्ठ १३८

स्पष्ट है कि प्रेमचन्द द्वारा 'प्रेमाश्रम' मे वर्णित किसान संघर्ष तत्कालीन राजनीतिक समस्या थी जिसका समाधान गाँधीवादी दृष्टिकोण से हुआ है। उपन्यास का नायक है प्रेमशकर जो गाँधीवादी विचारो का वाहक है। वह अग्रेजो द्वारा निर्मित जमींदार या ताल्लुकेदारी की प्रथा को अनुचित मानता है। डिप्टी ज्वालासिह से वह स्पष्ट कहता है —"भूमि उसकी है जो उसको जोते। शासक को उसकी उपज मे भाग लेने का अधिकार इसलिए है कि वह देश मे शाति और रक्षा की व्यवस्था करता है, जिसके बिना खेती हो ही नही सकती। किसी तीसरे वर्ग का समाज मे कोई स्थान नही है[1]।" वह इस तीसरे वर्ग को देशद्रोही मानता है। उसके शब्दो मे 'इसे रियासत कहना भूल है। यह निरी दलाली है। नवाबो के जमाने मे किसी सूबेदार ने इस इलाके की आमदनी वसूल करने के लिए मेरे दादा को नियुक्त किया था। मेरे पिता पर भी नवाबो की कृपा दृष्टि बनी रही। इसके बाद अग्रेजो का जमाना आया और यह अधिकार पिता जी के हाथ से निकल गया। लेकिन राज विद्रोह के समय पिता जी ने तन मन से अग्रेजो की सहायता की। शाति स्थापित होने पर हमे वही पुराना अधिकार फिर मिल गया। यही इस रियासत की हकीकत है[2]।

यह है जमींदारी प्रथा का वह राजनीतिक कुत्सित रूप जो अग्रेजो ने साम्राज्य की सुरक्षा हेतु निर्मित किया था। प्रेमशकर और मायाशकर दोनो इस प्रथा के विरुद्ध होने पर गाँधीवादी होने के कारण जमीदारी या ताल्लुकेदारो का विरोध नहीं करते। मायाशकर के शब्दो मे—"भूमि या तो ईश्वर की है जिसने इसकी सृष्टि की या किसान की जो ईश्वरीय इच्छा के अनुसार इसका उपयोग करता है। राजा देश की रक्षा करता है इसलिए उसे किसानो से कर लेने का अधिकार है, चाहे प्रत्यक्ष रूप मे ले या कोई इससे कम आपत्तिजनक व्यवस्था करे। अगर किसी अन्य वर्ग या श्रेणी को मीरास, मिल्कियत, जायदाद अधिकार के नाम पर किसानो को अपना भोग्य पदार्थ बनाने की स्वच्छन्दता दी जाती है तो इस प्रथा को वर्तमान समाज व्यवस्था का कलक चिन्ह समझना चाहिए[3]। यहाँ यह स्मरणीय है कि नागपुर कांग्रेस (१९२०) मे पारित प्रस्ताव मे भी कांग्रेस ने सब देशी नरेशो से भी प्रार्थना की कि वे अपनी अपनी रियासतो मे पूर्ण उत्तरदायी शासन स्थापित करने के लिए शीघ्र से शीघ्र प्रयत्न करे[4]। स्पष्ट है कि कांग्रेस भी राजा, जमीदारी या ताल्लुकेदारी को दोषी नही मानकर प्रथा को ही तत्कालीन अव्यवस्था का मूल कारण मानती थी। इसका मूल राजनीतिक

---

१ प्रेमचन्द 'प्रेमाश्रम' पृष्ठ १४२

२ प्रेमचन्द 'प्रेमाश्रम' पृष्ठ २६५

३ प्रेमचन्द 'प्रेमाश्रम' पृष्ठ ३८२

४. डॉ० बी० पट्टाभि सीतारामय्या : 'स० कांग्रेस का इतिहास' पृष्ठ ११३

कारण यह था कि कांग्रेस अंग्रेजों के साथ-साथ देशी नरेशों या जमींदारों का विरोध कर उनको अपने विरुद्ध न करना चाहती थी क्योंकि इससे आन्दोलन क्षीण पड़ सकता था। कांग्रेस को जिन विषम राजनीतिक स्थितियों में आन्दोलन करना था उसके लायक उसका संगठन मजबूत न था और इसलिए वह बहुसंख्यक जमींदारों का विरोध कर विपत्ति मोल न लेना चाहती थी जमींदारी प्रथा का विरोध उस दोहरी धार वाली तलवार के समान था जो अंग्रेजी सत्ता और जमींदारी प्रथा पर आघात करती थी। प्रेमशंकर मानना है कि दोष जमींदारों, ताल्लुकेदारों और रईसों का नहीं वरन् प्रथा का है जिनके कारण समाज का बल, बुद्धि और विद्या में श्रेष्ठ तथा हृदय और मस्तिक के गुणों से अलंकृत यह अंग आलस्य, विलास और अविचार के बंधनों में जकड़ा हुआ है[1]। इस उपजीवी वर्ग की निस्सारता व्यक्त कर उनका आवरणयुक्त विरोध कांग्रेस की सामयिक राजनीति थी और प्रेमाश्रम' के उपन्यासकार ने उनका यथातथ्य अनुसरण अ ने काल्पनिक कथानक में कर राजनीतिक चेतना का प्रतिपादन किया है।

इसका एक मात्र उपाय था हृदय परिवर्तन द्वारा वह अहिंसात्मक सुधारवादी मार्ग, जिससे जमींदारों का सहयोग प्राप्त करते हुए अंग्रेजी सत्ता से जूझा जा सकता था। कांग्रेस अंग्रेजों और उनके द्वारा स्थापित जमींदारी के चक्रव्यूह में फंस कर अपनी शक्ति क्षीण नहीं करना चाहती थी। प्रेमचन्द तत्कालीन राजनीति के इस पक्ष से परिचित थे और इसीलिए उन्होंने जहां किसानों का श्रम के साधिकार उपभोग करने के लिए कटिबद्ध दिखाया है वहीं उपन्यास के नायक प्रेमशंकर के त्याग और निस्वार्थ सेवा से पराभूत मायाशंकर को जमींदारी की माया से निकाल कर सम्पूर्ण इलाका किसानों के बीच वितरित करते हुए बनाया है। हृदय परिवर्तन के कारण मायाशंकर आदर्शवादी बन जाते हैं। वे कहते हैं—'मुझे किसानों की गर्दन पर अपना जुआ रखने का कोई अधिकार नहीं। मैं आप सब सज्जनों के सम्मुख उन अधिकारों और स्वत्वों का त्याग करता हूँ जो प्रथा, नियम और समाज व्यवस्था ने मुझे दिये हैं। मैं अपनी प्रजा को अपने अधिकारों के बंधन से मुक्त करता हूँ। वह न मेरे असामी हैं, न मैं उनका ताल्लुकेदार हूँ। वह सब सज्जन मेरे मित्र हैं, मेरे भाई हैं, आज से वह अपनी जोत के स्वयं जमींदार हैं। अब उन्हें मेरे कारिन्दों के अन्याय और मेरी स्वार्थ-भक्ति की यन्त्रणायें न सहनी पड़ेंगी। वह इजाफे, एखराज, बेगार की विडम्बनाओं से निवृत्त हो गये।'[2]

इस प्रकार प्रेमचन्द ने किसानों की समस्याओं को प्रस्तुत करते समय शासन

---

१. प्रेमचन्द : 'प्रेमाश्रम', पृष्ठ १४२
२ प्रेमचन्द : 'प्रेमाश्रम,' पृष्ठ ३८३

की शोषक वृत्ति और निर्मम कृत्यो का चित्रण अवश्य किया है किन्तु उसका समाधान गाँधीवादी है। सामन्तवादी शोषक वर्ग में हृदय-परिवर्तन की यह संभाव्यता आकस्मिक रूप से सदिग्ध ही मानी जा सकती है बिना किसी प्रकार के सम-सामायिक राजनीतिक विचारो की प्रतिच्छाया के प्रेमचन्द ने गाँधीय राजनीतिक तरीको से समाज के घृणित स्वरूप को बदलने का स्वप्न सजोया है। 'रामराज्य' की स्थापना के लिए प्रेमशंकर द्वारा स्वेच्छा से अपने स्वत्वो का परित्याग कर अहिंसक क्रान्ति को प्रोत्साहित किया गया है। प्रेमशंकर के इस अनूठे उदाहरण से प्रभावित हो सुक्खू चौधरी भी चालीस बीघा जमीन गाँव के भूमिहीनो को बाँट देता है।[1] साहूकार भी इस सक्रामक वृत्ति से बच नही पाते। बिसेसर साह जो पहले रुपया ब्याज लेते थे अब रुपये सैकडा का ही सूद लेते हैं। इस सामाजिक क्रान्ति के कारण गाँव मे 'पहले जहाँ परस्पर द्वेष, ईर्ष्या, फूट, अहंकार आदि का बोलबाला था वहाँ अब सद्भाव, सहयोग और आत्मनिर्भरताजन्य सुख, शाति तथा आत्मोल्लास' की स्थिति आ जाती है[2]। और बलराज इसे ही रामराज्य की सज्ञा देता है।[3]

उपन्यास लेखक ने पात्रो का हृदय परिवर्तन गाँधीय सिद्धान्त के अनुसार कराया है और जो इसमे असमर्थ रहे उन्होंने आत्महत्या का पथ ग्रहण किया जैसे ज्ञानशंकर ने।

प्रेमाश्रम' के सम्बन्ध मे यह कथन उचित है कि—इसमे जहाँ तक यथार्थ का चित्रण है, उसके सत्य से क्या किसी को इन्कार होगा। लेकिन आदर्श के सम्बन्ध मे कहा जा सकता है कि यह भावुकता और स्वप्न की प्रेरणावश दिया गया है। इस सम्बन्ध मे स्पष्टीकरण दिया जा सकता है कि प्रेमचन्द साहित्य नदी के दो तटो के समान है जिसके इस ओर यथार्थ है, उस ओर आदर्श। इस छोर पर खडे प्रेमचन्द उस छोर का स्वप्न सजाते हैं और समाज को उस तक पहुँचने के लिए प्रेरित करते हैं।[4]' और उस छोर तक पहुँचाने वाली नौका है गाँधीवाद।

प्रेमचन्द की कल्पना का समाज 'विद्वज्जनो की एक छोटी सी सगत थी, विद्वानो के पक्षपात और अहंकार से मुक्त। वास्तव मे वह सारल्य सतोष और सुविचार की तपोभूमि थी। यहाँ न ईर्ष्या का संताप था, न लोभ का उन्माद, न तृष्णा का प्रकोप। यहाँ धन की न पूजा होती थी और न दीनता पैरो तले कुचली जाती थी। यहाँ न एक गद्दी लगा कर बैठता था और न दूसरा अपराधियो की भाँति उसके सामने हाथ बाँध

१ प्रेमचन्द : 'प्रेमाश्रम' पृष्ठ ३८८
२ प्रेमचन्द : 'प्रेमाश्रम' पृष्ठ ३८६
३ प्रेमचन्द : 'प्रेमाश्रम' पृष्ठ ३८६
४ राजेश्वर गुरु 'प्रेमचन्द : एक अध्ययन' पृष्ठ १६४

कर खड़ा होता था। वहाँ स्वामी की घुड़कियाँ, न थी न सेवक की दीन ठकुर सोहतिया। यहाँ सब एक दूसरे के सेवक, एक दूसरे के मित्र और हितैषी थे[1]।

हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य की समस्या

'प्रेमाश्रम' मे हिन्दू मुस्लिम एकता पर जोर दिया गया है और बताया गया है कि संघर्ष का कोई आर्थिक, सांस्कृतिक अथवा धार्मिक पहलू न होकर आपसी विद्वेष के पीछे साम्राज्यवादी षडयन्त्र ही प्रमुख है। गांधी जी के नेतृत्व मे कांग्रेस हिन्दू मुस्लिम ऐक्य के लिए प्रयत्नशील थी और परिणाम स्वरूप १९१६ की लखनऊ कांग्रेस मे साम्प्रदायिक एकता के लिए कांग्रेस-लीग समझौता स्वीकृत हो चुका था। सन् १९२१ मे कांग्रेस के अध्यक्ष पद पर निर्वाचित हकीम अजमल खाँ हिन्दू-मुस्लिम एकता के प्रतिमूर्ति थे। स्वयसेवकों को भी जो सात प्रतिज्ञाएँ लेनी पड़तीं थी उनमे एक थी—'मुझे साम्प्रदायिक एकता पर विश्वास है और उसकी उन्नति के लिए मैं सदैव प्रयत्नशील रहूँगा।' हिन्दू मुस्लिम ऐक्य की समस्या अंग्रेजो की राजनीतिक चाल थी और इसका उद्देश्य था दोनों सम्प्रदायों को आपस मे लडा कर कमजोर करना जिससे साम्राज्यवादी नीव सुदृढ हो सके। यह निर्विवाद है कि 'हिन्दू-मुस्लिम समस्या का आधार धार्मिक नहीं है, वरन् उसका विशिष्ट राजनीतिक पहलू है जिसने एकता के किसी भी प्रयत्न को कारगर सिद्ध नहीं होने दिया। ऊपरी तौर पर उसका रूप धार्मिक दिखाई देता है, लेकिन वास्तव मे धर्म का तो, राजनीतिक महत्वाकांक्षा को पूरा करने के लिए मात्र 'हथियार' के रूप मे नाम लिया गया।

प्रेमचन्द इस तथ्य से भलीभाँति परिचित थे। 'सेवासदन' मे इमामबाड़े का वली तेग अली से उन्होने कहलवाया है—'इस वक्त, उर्दू-हिन्दी का झगड़ा, गोरक्षी का मसला, मुदागाना इन्तखाब सूद का मुमाविजा कानून इन सबो से मजहबी तास्सुब के भड़काने मे मदद ली जा रही है[2]। इसका परिणाम हुआ कि 'पोलिटिकल मफाद का जोर है, हक और इन्साफ का नाम न लीजिए। अगर आप मुदर्रिस है तो हिन्दू लड़कों को फेल कीजिए। तहसीलदार है तो हिन्दुओं पर टैक्स लगाइये, मजिस्ट्रेट हैं तो हिन्दुओं को सजायें दीजिए अगर आपको हुस्न और इश्क का खब्त है तो किसी हिन्दू नाजनीन को उड़ाइये, तब आप कौम के खादिम, कौम के मुहसिन, कौमी किश्ती के मा खुदा सब कुछ है[3]।'

---

१. प्रेमचन्द : 'प्रेमाश्रम', पृष्ठ ६१४
२ प्रेमचन्द : 'सेवासदन,' पृष्ठ २४६
३. प्रेमचन्द : 'सेवासदन,' पृष्ठ १७४

'प्रेमाश्रम' मे भी हिन्दू-मुस्लिम सघर्ष के इन्ही मूल कारणो पर गभीरता से विचार किया गया है।

प्रेमाश्रम' में भी वर्णित अन्य राजनीतिक समस्यायें

भूमि समस्या

'प्रेमाश्रम' की प्रमुख समस्या भूमि समस्या है जिसकी नींव मे समाज व्यवस्था और आर्थिक पहलू है। तत्कालीन राजनीतिक चेतना की पृष्ठभूमि मे इस भूमि-समस्या को चित्रित किया गया है।

भूमि समस्या के प्रश्न को लेकर जमींदार और किसान के विविध रूप उपन्यास मे उभरे हैं। प्रेमचन्द ने जमीदारो के तीन स्तरो का उद्घाटन किया है। एक हैं ज्ञानेश्वर जो शोषण का प्रतीक है दूसरे है राय कमलानद—जो समझदार और विचार मे किसानों के समर्थक है। तीसरा प्रकार व्यक्त हुआ है गायत्री के चरित्र-चित्रण मे।

उसी का विश्लेषण करते हुए राजेश्वर गुरु की मान्यता है कि 'प्रेमाश्रम' मे जमीन्दारो की तीन पीढियाँ मिलती है। एक है लाला जटाशकर की, जो समाप्त हो चुकी है, दूसरी है लाला ज्ञानशंकर की, जिसके कारनामे सारे प्रेमाश्रम मे बिखरे पड़े हैं, तीसरी है मायाशकर की, जो साम्यवाद को स्वेच्छा से स्वीकार करता है। क्या इन तीनो पीढियो के द्वारा भारतीय समाज के तीन युगो का चित्रण नही किया गया है? भारतीय समाज मे सामन्तवाद, पूँजीवाद (या साम्यावाद) का ऐतिहासिक सजीव विवेचन 'प्रेमाश्रम' मे मिलता है।[1] वे यह भी मानते हैं कि 'प्रेमाश्रम' सामन्ती व्यवस्था के अन्त, पूँजी ाद और बुद्धिवाद के दुष्परिणाम और किसानो के दुर्दम साहस के साथ जाग उठने की कहानी है। इस तरह प्रेमाश्रम की मूल कथा किसान-जमींदार संघर्ष की कल्पना लेकर चलती है।[2]'

वस्तुत गुरु जी का मूल्याकन सतुलित न होकर पूर्वग्रह पर ही अधिक आधारित है विशेषकर साम्यवादी दृष्टि से। यथार्थ मे डाक्टर शा० की यह दृष्टि उनके अपने युग की है 'प्रेमाश्रम' के समय की नही। इस दृष्टि से प्रसिद्ध साम्यवादी आलोचक रामविलास शर्मा का मत विशेष रूप से द्रष्टव्य है—'प्रेमाश्रम मे वे उन किसानो की जिन्दगी की तस्वीर खीचना चाहते थे जिन्हें साहित्य के लक्षण ग्रन्थो मे जगह न मिलती थी। वे उस अत्याचार और अन्याय की कहानी सुनाना चाहते थे जिसे उपक्रम, उपसंहार, प्रयोजन और उत्पत्ति की चर्चा करने वाले सज्जन प्राय. भूल जाया करते थे।[3]'

१ राजेश्वर गुरु 'प्रेमचन्द एक अध्ययन' पृष्ठ १५३

२ राजेश्वर गुरु 'प्रेमचन्द . एक अध्ययन' पृष्ठ १५५

३ डॉ० रामविलास शर्मा : प्रेमचन्द और उनका युग' पृष्ठ ४२-४३

उपन्यास में एक ओर ज्ञानशंकर, प्रेमशंकर, गायत्री, कमलानन्द आदि जमींदार वर्ग के पात्र हैं, उनकी समस्याएँ हैं, उनकी कथा है, दूसरी ओर गौस खां, मनोहर, कादिर बलराज जैसे किसान हैं और उनकी समस्याएँ हैं और दोनों की समस्याएँ एक दूसरे की आश्रित हैं। किसान के शोषण का चित्रण करना था अतः जमींदारों का चित्रण भी आवश्यक था। समस्याओं का समाधान गांधीय सिद्धान्तों से करना था अतः अन्त में मायाशंकर और किसान दोनों वर्गों का सहकारिता की खेती में एक वर्गहीन समाज में विलय होता है। स्वयं प्रगतिवादी आलोचक डॉ० रामविलास शर्मा इस तथ्य को स्वीकार करते हैं। उनका कथन है 'प्रेमाश्रम में खूब विभिन्नता है, उसका ध्येय किसानों को सरकारी और जमींदारी शासन के नीचे पिसता हुआ दिखाना है। पूरा उपन्यास पढ़ने पर गाँवों का समाज, उसकी समस्याएँ, शोषणयंत्र की विचित्र गतिविधि, सभी से हमारा परिचय हो जाता है[1]।' राय साहब कमलानंद, जमींदार होते हुए भी उसकी असलियत पर आवरण डालने की चेष्टा नहीं करते। उनके शब्दों में—'इसे रियासत कहना भूल है, यह निरी दलाली है। इस भूमि पर मेरा क्या अधिकार है। मैंने इसे बाहुबल से नहीं लिया राज विद्रोह के समय पिताजी ने तन-मन से अंग्रेजों की सहायता की। शान्ति स्थापित होने पर हमें अधिकार मिल गया। यही इस रियासत की हकीकत है। हम केवल लगान वसूल करने के लिए रखे गये हैं। इसी दलाली के लिए हम एक दूसरे के खून से अपने हाथ रंगते हैं। इसी दीन हत्या को हम रोब कहते हैं। इसी कारिन्दगिरी पर हम फूले नहीं समाते...तुम कहोगे, यह सब कोरी बकबाद है। रियासत इतनी बुरी चीज है तो उसे छोड़ क्यों नहीं देते। हाँ, यही तो रोना है कि इस रियासत ने हमें विलासी, आलसी और अपाहिज बना दिया। हम अब किसी काम के नहीं रहे। प्रेमाश्रम में भूमि समस्या इतनी महत्वपूर्ण है कि जहाँ कहीं भी अन्य समस्याओं का उल्लेख है वह सब भूमि व्यवस्था के उद्घाटन अथवा उसके भयंकर रूप को सामने रखने में है।

राजसभा के चुनाव

'प्रेमाश्रम' में राजसभा के चुनावों का संकेत भी है। प्रेमाश्रम समाज के सभी उम्मीदवार राजसभा के लिए निर्वाचित होते हैं। जहाँ राजसभा के अन्य व्यक्ति राजसभा में जाकर सो गये, वहाँ प्रेमाश्रम समाज के लोगों में वह शिथिलता न थी। वहाँ लोग पहले से ही सेवाधर्म के अनुगामी थे, अब उन्हें अपने कार्यक्षेत्र को विस्तृत करने का मौका हाथ लगा[2]। कांग्रेस स्वराजदल की ही यह अभिव्यक्ति है।

---

१. सम्पादक—डॉ० इन्द्रनाथ मदान : 'प्रेमचन्द चिन्तन और कला,' पृष्ठ ११२

२. प्रेमचन्द : 'प्रेमाश्रम' पृष्ठ ६२६

साम्यवाद के विस्तार का संकेत

'प्रेमाश्रम' मे जमींदारो की तीन पीढियो का चित्रण है। एक है जटाशंकर की दूसरी ज्ञानशकर की और तीसरी मायाशकर की। जटाशकर का युग समाप्त हो चुका है और ज्ञानशंकर का उत्कर्ष पर। तीसरी पीढ़ी है मायाशंकर की जो भविष्य की सभावना है मायाशकर साम्यवाद की ओर उन्मुख है यद्यपि साम्यवाद की विवेचना लेखक का ध्येय नही है।

एक अन्य स्थल पर भी साम्यवाद की झलक दिखलाने की चेष्टा है--'तुम लोग तो मेरी हसी उडाते हो, मानो कास्तकार कुछ होता ही नही, वह जमींदार की बेगार ही भरने के लिए बनाया गया है। लेकिन मेरे पास जो पत्र आया है, उसमे लिखा है कि रूस मे कास्तकारो ही का राज है, वह जो चाहते हैं करते हैं। वहाँ हाल की बात है, काश्तकारो ने राजा को गद्दी से उतार दिया है और अब किसानो और मजदूरो की पचायत राज करती है[1]।'

समाजवाद या साम्यवाद सबधी दो चार उद्धरण अवश्य ढूंढे जा सकते हैं किन्तु उनके आधार पर राजेश्वर गुरू का यह कहना उचित नही है कि 'भारतीय समाज मे सामन्तवाद, पूँजीवाद और समाजवाद (या साम्यवाद) का ऐतिहासिक सजीव विवेचन 'प्रेमाश्रम मे मिलता है[2]।

रंगभूमि' और उसकी राजनीतिक पृष्ठभूमि

'रगभूमि' प्रेमचन्द का अत्यन्त महत्वपूर्ण राजनीतिक उपन्यास है और क्षेत्र 'प्रेमाश्रम' से कही व्यापक है। इसकी रचना जिन दिनो हुई गाँधी जी का सत्याग्रह आन्दोलन पूर्ण उत्कर्ष पर था। प्रथम सत्याग्रह आन्दोलन स्थगित हो चुका था और दूसरे सविनय अवज्ञा आन्दोलन के लिए राष्ट्र तैयार हो रहा था। 'प्रेमाश्रम' का गाँधीय उपन्यासकार इस सत्याग्रह आन्दोलन के चित्रण के लिए अपने को मानसिक-रूप से तैयार कर चुका था। गाँधीवादी राजनीतिक विचारधारा से अनुप्राणित होने के कारण ही 'रगभूमि' को आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने 'गाँधीवादी उपन्यास' कहा है। उनका मूल्याकन है कि रगभूमि गाँधीवादी उपन्यास इसलिए कहा जाता है कि यह गाँधी जी की राजनीतिक चेतना से अनुप्राणित है। रगभूमि प्रेमचन्द जी की उपन्यास कला का एक विकसित सोपान है। गाँधीवाद का प्रभाव साहित्य व जीवन पर जैसा

---

१ प्रेमचन्द . 'प्रेमाश्रम' पृष्ठ ६६

२ राजेश्वर गुरु 'प्रेमचन्द : एक अध्ययन' पृष्ठ ५५३

भी कुछ पढा, वह रगभूमि मे दिखलाई पडता है[1]। गाँधी जी के सामाजिक, राजनीतिक तथा आदर्श-मूलक विचारो से यह उपन्यास प्रभावित है।

'रगभूमि' की कथा का केन्द्र-बिन्दु है सूरदास एक अन्धा गरीब भिखारी। सूरदास का परिचय ही क्या ? 'भारतवर्ष मे अन्धे आदमियो के लिए न नाम की जरूरत होती है, न काम की। सूरदास उनका बना बनाया नाम है, और भीख मागना बना बनाया काम।' फिर भला उपन्यास के नायक सूरदास के और अधिक परिचय की क्या आवश्यकता। मानवीय गुणो से युक्त उसका चरित्र समुज्जवल है। स्पष्टवादिता, सत्यप्रेम, न्यायनिष्ठा, परोपकार, विनय, विवेक और उदारता के दुर्लभ गुणो से उसका जीवन विकसित है और इन्ही के कारण वह पांडेपुर का लोकप्रिय व्यक्तित्व बन गया है। सूरदास दस बीघा धरती जमीन का मालिक है जिस पर बनारस के उद्योगपति जान सेवक की दृष्टि पडती है। जान सेवक इस जमीन को प्राप्त कर सिगरेट का कारखाना खोलकर औद्योगिक विकास मे सहायक बनना चाहते है। सारे प्रलोभन के बाद भी सूर दास उस जमीन को बेचने को तैयार नहीं हुआ। वह जानता था कि कारखाने की स्थापना से गाँव की सुख-शांति नष्ट हो जायेगी और जीवन दूषित हो जायेगा। पर सूरदास की एक न चली और नगर-बोर्ड के प्रधान चतारी के राजा महेन्द्र प्रताप ने जबर्दस्ती उसकी जमीन जान सेवक को दिला दी। इस अन्याय का वह अहिंसात्मक ढग से विरोध करता है इसमे उसे सफलता भी मिलती है यद्यपि बाद मे वह जमीन निकल ही गई और कारखाना भी स्थापित हो गया।

कारखाना बन जाने पर कुलियो के आवास व्यवस्था की समस्या उपस्थित होने पर जान सेवक पांडेपुर को मुआवजा देकर खाली करा लेने की स्वीकृति प्राप्त कर लेते हैं। अन्य लोग तो विवश हो घर त्याग कर देते हैं पर सूरदास एक इच हिलने को भी तैयार नही। जनता की पूर्ण सहानुभूति उसके साथ है। सशस्त्र पुलिस जब उसकी झोपडी गिराने का प्रयत्न करती है विशाल जनसमूह विरोध व्यक्त करती है। गोली चलती है और अनेक व्यक्ति धाराशायी होते हैं। पुलिस पर इसका अत्यधिक प्रभाव पडता है और वे गोली चलाने से इकार कर देते है। इस पर गोरखो की फौज बुलाई गई। सूरदास जनता की हिंसात्मक वृत्ति के शमन के लिए भैरों के कन्धे पर बैठ कर आग्रह करता है—'आप लोग वास्तव मे मेरी सहायता करने नही आए हैं। हाकिमो के मन में, पुलिस के मन मे जो दया और धरम का खयाल आता, उसे आप लोगो ने जमा होकर क्रोध बना दिया है। मैं हाकिमो को दिखा देना कि एक दीन है। अन्धा आदमी एक फौज को कैसे पीछे हटा देता है, तोप का मुँह कैसे बन्द कर देता

---

१. आचार्य नदुलारे वाजपेयी : 'आधुनिक साहित्य', पृष्ठ १६४

है, तलवार की धार कैसे मोड़ देता है। मैं धरम के बल पर लड़ना चाहता था।' इसके आगे वह कुछ न कह सका। मिस्टर क्लार्क ने उसे कुछ बोलते देख यह समझा कि वह जनता को बगावत के लिए उसका रहा है। और उन्होंने पिस्तौल से उसका निशाना बना दिया। सूरदास भैरो के कंधे से जमीनपर गिर पड़ा।

रगभूमि की प्रधान समस्या औद्योगिक सभ्यता बनाम कृषि सभ्यता है जिसका उपन्यास मे प्रतिनिधित्व करते है जान सेवक व सूरदास। डॉ० सुषमा धवन के मत के अनुसार, जिसे हम भी उचित मानते है, 'उपन्यास का मूल उद्देश्य पारस्परिक प्रेम एव सहयोग पर आधारित प्राचीन सामन्ती ग्रामीण व्यवस्था और प्रतिद्वन्द्विता एव व्यवसायिक वृत्ति पर स्थित नवीन पूँजीवादी सभ्यता के बीच मौलिक सघर्ष को अत्यन्त विस्तृत तथा व्यापक रूप मे चित्रित करके औद्योगीकरण का विरोध करना है जो पूजीवादी सस्कृति व साम्राज्यवादी राजनीति का परिणाम व प्रतीक है[1]।''

भारत मे औद्योगीकरण का प्रारम्भ प्रथम महायुद्ध के उपरात हुआ और 'रगभूमि' के रचनाकाल तक उसका काफी विस्तार हो गया था। गाँधी जी औद्योगिकरण को शोषण और सामाजिक व नैतिक दुर्गुणो के विस्तार का सहायक मानते थे अत' उसका विरोध करते थे। उनका मत था कि आधुनिक अर्थशास्त्र का एक मात्र आधार भौतिक उन्नति है। धर्मनीति से उसका कोई सम्बन्ध नहीं रह गया है। वह पशुबल का पूजक और आत्मशक्ति का विरोधी है। इस अर्थशास्त्र का अनुगमन करने के कारण ही हमारे जीवन के दो अभिन्न अगो मे—नगर और देहात उद्योग एव कृषि परस्पर विरोध का अविर्भाव हो गया है[2]। वे मानते थे कि आज हमारे जीवन मे जो कृत्रिमता, अधार्मिकता तथा अनैतिकता बढ रही है, सामूहिक और केन्द्रीकृत उत्पादन ही उसका मुख्य कारण है। 'प्रेमाश्रम' मे प्रेमचन्द जी ने गृह-उद्योगो की सार्थकता प्रतिपादित की थी। वे गाँधी जी के इस कथन से सहमत थे *कि औद्योगीकरण* से गृह-उद्योग नष्ट होंगे और ग्रामीणो का आर्थिक स्तर गिर जायेगा। इसीलिए उन्होंने अपने एक पात्र से कहलवाया है—''उन्हे घर से निर्वासित करके दुर्व्यसन के जाल मे न फंसाए, उनके आत्माभिमान का सर्वनाश न करें और यह उसी दशा मे हो सकता है जब घरेलू शिल्प का प्रचार किया जाय और वह अपने गाव मे कुछ और बिरादरी की तीव्र दृष्टि के सम्मुख अपना अपना काम करते रहे।'

राय साहब घेरेलू शिल्प के मार्ग मे आये अवरोधो को दूर करने का उपाय भी सुझाते हैं—'हमे विदेशी वस्तुओ पर कर लगाना पडेगा। योरोपवाले दूसरे देशो से कच्चा

१. डॉ० सुषमा धवन . 'हिन्दी उपन्यास,' पृष्ठ ३३
२ गाँधी विचार दोहन, पृष्ठ ८७-८८

माल ले जाते हैं, जहाज किराया देते हैं, उन्हें मजूरों को कडी मजूरी देनी पडती है, उस पर हिस्सादारो को नफा भी खूब चाहिए। हमारा घरेलू शिल्प इन समस्त बाधाओ से मुक्त रहेगा और कोई कारण नही कि उचित सगठन के साथ वह विदेशी व्यापार पर विजय न पा सके। वास्तव मे हमने कभी इस प्रश्न पर ध्यान नही दिया। पूजीवाले लोग इस समस्या पर विचार करते हुए डरते है। वे जानते हैं कि घरेलू शिल्प हमारे प्रभुत्व का अन्त कर देगा। इसीलिए वे इसका विरोध करते हैं।

प्रेमचन्द जी ने 'रगभूमि' की भावना गांधी जी से ग्रहण की। 'रगभूमि' की मूल कथा वस्तु बनारस के व्यवसायी जान सेवक द्वारा सिगरेट के कारखाने के लिए सूरदास की दस बीघा जमीन हथियाने के सफल प्रयत्नो और अन्याय के प्रतिकार मे सूरदास के असफल सत्याग्रह को लेकर चली है। सूरदास धर्म, न्याय और सत्य के लिए आदर्श सत्याग्रही के रूप मे लडता है। वह मानता है कि सत्य को, न्याय को किसी सहायक की आवश्यकता नही है[1]। सत्य के प्रति उसकी प्रगाढ निष्ठा है और उसके लिए वह प्राणोत्सर्ग को भी तैयार रहता है। उसका विश्वास है कि 'बदनामी के डर से जो आदमी धरम से मुह फेर ले, वह आदमी नहीं है[2]। वह सत्य का अन्वेषक और अहिंसा का पुजारी है। यह कथन उचित ही है—"सूरदास की प्रतिमा भी गाँधीवादी आदर्श के साचे मे ढली हुई है। सत्य, अहिंसा और अस्तेय का उसमे ऐसा समावेश हो गया है कि वह आदर्श मूर्त हो जाता है[3]।" गाँधीवादी विचारधारा से ओतप्रोत होने के कारण ही इसे 'गाँधीवाद के उन्माद की विभोर अवस्था मे लिखित उपन्यास"[4] कहा गया है।

अहिंसक क्रान्ति का समर्थन

'रगभूमि' मे उपन्यासकार ने गाँधी जी के अहिंसा का समर्थन किया है। 'सूर दास, का अहिंसा पर गहरा विश्वास है। गाँधीवाद के इस सिद्धान्त पर भी उसकी आस्था है कि साध्य के समान उसे प्राप्त करने के साधन भी उच्च और श्रेष्ठ होना चाहिए। उसमे महात्मा गाँधी के अनासक्तिवाद की स्पष्ट अभिव्यक्ति है। वह जीवन की उपमा खेल से देता है और मानता है कि 'सच्चे खिलाडी कभी रोते नही, बाजी पर बाजी पर बाजी हारते हैं, चोट पर चोट खाते हैं, धक्के पर धक्के सहते हैं पर मैदान

---

१. प्रेमचन्द—'रगभूमि,' भाग १, पृष्ठ १६०
२ प्रेमचन्द—'रंगभूमि,' भाग १, पृष्ठ १६०
३ सुषमा धवन—'हिन्दी उपन्यास,' पृष्ठ ३४
४. डॉ० इन्द्रनाथ मदान (संपादक)—'प्रेमचन्द : चिन्तन व कला,' पृष्ठ ४६

पर डटे रहते हैं, उनकी त्योरियों पर बल नही पडते। खेल मे रोना कैसा ? खेल हसने के लिए, दिल बहलाने के लिए हैं, रोने के लिए नही[1]।' मरण शैय्या पर पडा हुआ वह कहता है, 'हमारा दम उखड जाता है, हाफने लगते हैं और खिलाडियो को मिलाकर नही खेलते, आपस मे झगडते हैं—कोई किसी को नहीं मानता। तुम खेलने में निपुण हो, हम अनाडी हैं। बस, इतना ही फरक है[2]।

वस्तुत सूरदास का यह अतिम सदेश सन् २१ के असफल असहयोग आन्दोलन से उत्पन्न राष्ट्रीय नैराश्य के प्रत्युत्तर म है जो आन्दोलनकारी जनता मे नई आशा का सचार करता है। प्रथम असहयोग आन्दोलन असफल होने पर भी जनता की नैतिक विजय का प्रतीक था क्योंकि अन्याय का प्रतिकार करना ही स्वय म एक असफलता है। इसी का सकेत देते हुए सूरदास कहता है—"हम हारे, तो क्या, मैदान से भागे तो नहीं, रोए तो नही धाधली तो नहीं की। फिर खेलेंगे, जरा दम ले लेने दो, हार-हार क तुम्ही से खेलना सीखेंगे और एक न-एक दिन हमारी जीत होगी, जरूर होगी[3]।'

इन्ही सिद्धान्तों की अभिव्यक्ति सूरदास के गीतो म भी मिलती है। इन गीतो के द्वारा स्वतन्त्रता-सग्राम के सेनानियो को गाँधी दशन का बोध कराने का सहेतुक प्रयत्न किया गया है।

सूरदास का गीत है—

शाति-समर मे कभी भूल कर धैर्य नहीं खोना होगा,
वज्र-प्रहार भले सिर पर हो, नहीं किन्तु रोना होगा।
अरि से बदला लेने का मन बीज नहीं बोना होगा,
घर में कान तूल देकर फिर मुझे नहीं सोना होगा।
देश दाग को रुधिर-वारि से हर्षित हो धोना होगा,
देश कार्य की भारी गठरी सिर पर रख ढोना होगा।
आँखें लाल, भवें टेढ़ी कर, क्रोध नहीं करना होगा,
बलि वेदी पर तुझे हर्ष से बढकर कट मरना होगा।
नश्वर है नर देह, मौत से कभी कहीं डरना होगा,
सत्य मार्ग को छोड स्वार्थ पथ पैर नहीं धरना होगा।

---

१ प्रेमचन्द—'रगभूमि,' पृष्ठ १२६
२ प्रेमचन्द—'रगभूमि,' पृष्ठ ५३१
३ प्रेमचन्द—'रगभूमि' पृष्ठ ५३१

होगी निश्चित जीत धर्म की, यही भाव भरना होगा,
मातृ-भूमि के लिए जगत मे जीना भी मरना होगा[1]।

सूरदास के उपर्युक्त गीत मे गाँधीवाद के मूलभूत सिद्धान्तो का निदर्शन है। सूरदास स्वाधीनता-संग्राम को अहिंसक युद्ध मानता है और इसमे प्रतिपक्षी के प्रति हिंसक प्रवृतियों को त्याज्य बताता है। उसका दृढ़ विश्वास है कि सत्य का मार्ग ग्रहण करने से धर्म की विजय सुनिश्चित है।

सूरदास का जीवन-संग्राम धर्म और नैतिक आदर्शों पर आधारित है और उसका यही अनासक्तिवाद उसके इस गीत मे देखने को मिलता है—

भई, क्यों रन से मुँह मोडै ?
बीरों का काम है लड़ना, कुछ नाम जगत मे करना,
क्यों निज मरजादा छोड़ै ?
भई, क्यों रन से मुँह मोडै ?
क्यों जीत की तुझको इच्छा, क्यों हार की तुझको चिन्ता,
क्यो दुख से नाता जोड़ै ?
भई, क्यों रन से मुँह मोडै
तू रगभूमि में आया, दिखलाने अपनी माया,
क्यों धरम-नीति को तोड़ै ?
भई, क्यों रन से मुँह मोडै ?[2]

गाँधी जी के सदृश्य सूरदास भी विजय और पराजय दोनो को स्वभाव से ग्रहण करने का उपदेश देता है। वह उस नैतिक क्रांति का समर्थक है जिसकी आधार शिला त्याग और आत्मशक्ति है।

प्रेमचन्द ने समसामयिक आतंकवाद के विरोध मे अहिंसक क्रांति का चित्रण सोद्देश्य किया है। प्रेमचन्द युग मे आतंकवादी गतिविधियां अपने उत्कर्ष पर थीं। गाँधी जी आतंकवादी प्रवृतियो के प्रसार को देश के लिए घातक मानते थे और उनकी दृष्टि मे अहिंसक क्रांति ही स्वाधीनता- सग्राम का एकमात्र हल था। वे मनुष्य की सद्वृत्तियों और हृदय-परिवर्तन के सिद्धान्त पर अगाध विश्वास करते थे। प्रेमच द जी ने 'रंगभूमि' मे इन सिद्धान्तो को पात्रो के जीवन मे घटित किया है। वीरपाल सिंह तथा विनय के

१. प्रेमचन्द : 'रंगभूमि' भाग १, पृष्ठ ५४
२ प्रेमचन्द . 'रंगभूमि' भाग १, पृष्ठ ३२४

चरित्रों की उद्भावना उपन्यास लेखक ने इसी उद्देश्य से की है। वीरपाल सिंह आतकवादी है तथा हिंसात्मक कृत्यो को साध्य की प्राप्ति का साधन मानते हैं। इसके विपरीत हैं उनके विरोधी विनय, जो रक्तपात पूर्ण हत्याकाड तथा लूटमार को सर्वथा अनुचित मानते हैं। प्रेमचन्द का यह दृष्टिकोण भी गाँधी जी की विचारधारा का प्रति रूप है। कहा गया है कि 'धन-बाहुल्य को दूर करने के लिए वह यथा सभव कानून द्वारा सम्पति जब्त करना या स्वामित्व का अधिकार छीनना नहीं चाहते थे। धनिकों को आर्थिक समता के आदर्श को अपनाने को और सम्पति का ट्रस्टी या सरक्षक की हैसियत से निर्धनो के लाभ के लिए उपयोग करने को तैयार करने के लिए गाँधी जी समझाने बुझाने शिक्षा, अहिंसक असहयोग और दूसरे अहिंसक साधना के प्रयोग के पक्ष मे थे।[1] उनका विश्वास था कि मनुष्य के देवत्व का आध्यात्मिक साधन से हृदय परिवर्तन कर सामाजिक व्यवस्था म क्राति की जा सकती है। साराशत गाधी जी के सिद्धान्त मार्क्सवाद के प्रतिकूल नही थे केवल उनके प्रतिपादन म मौलिक अतर था विनय इसी सिद्धान्त को अपना कर जसवतनगर म अहिंसक क्राति द्वारा आमूल परिवर्तन करता है। इसका परिणाम होता है–"जसवतनगर के प्रात म एक बच्चा भी नही है, जो उन्हे न पहचानता हो। देहात के लोग उनके इतने भक्त हो गए है कि ज्यो ही वह किसी गाँव मे जा पहुचते है, सारा गाव उनके दर्शनो के लिए एकत्र हो जाता है। उन्होने उन्हें अपनी मदद आप करना सिखाया है। इस प्रात के लोग अब अन्य जतुओ को भगाने के लिए पुलीस के यहाँ नही दौडे जाते, स्वय सगठित होकर उन्हें भगाते है, जरा-जरा से बात पर अदालतो के द्वार नहीं खटखटाने जाते, पचायतो मे समझौता कर लेते है, जहाँ कभी कुए न थे, वहा अब पक्के कुए तैयार हो गए है, सफाई की ओर भी लोग ध्यान देने लगे हैं, दरवाजो पर कूडा-करकट के ढेर नहीं जमा किए जाते। सामूहिक जीवन का फिर पुनरुद्धार होने लगा है।[2] किन्तु यह परिवर्तन आरोपित सा लगता है क्योकि यह परिवर्तन क्यो और कैसे हुआ इसका कोई चित्र सम्मुख नही आता। विनय भी गाँधीवादी पात्र है। वह कुवर भरतसिंह का इकलौता पुत्र है और सेवा भाव से जनसेवक बनने को आतुर है। वह धन-सम्पति को मानव की विषमता का कारण मानता है। उसके उद्गार है–"हम जायदाद के लिए अपनी आत्मिक स्वतत्रता की हत्या क्या करें हम जायदाद के स्वामी बन कर रहेगे, उसके दास बनकर नहीं। अगर सम्पति से निवृति न प्राप्त कर सके, तो इस तपस्या का प्रयोजन ही क्या?"[3] वह वर्ग-संघर्ष के स्थान पर

१. गोपीनाथ धावन–सर्वोदय तत्व 'दर्शन' पृष्ठ २०७
२ प्रेमचन्द–'रगभूमि' पृष्ठ २९३ (भाग-१)
३ प्रेमचन्द–'रगभूमि' ४४८

वर्ग-समन्वय का अनुयायी है। त्याग विनय के जीवन की प्रमुख वृत्ति है और इसकी चरम सीमा है उसका पैतृक सम्पत्ति से त्याग पत्र देना। विनय और सोफिया का प्रेम-आदर्श गांधी जी के आदर्शों के अनुकूल है मन आत्मिक सबंध है जो त्याग, बलिदान और सेवाभाव पर आधारित है।[१]

हृदय परिवर्तन की प्रक्रिया अनेक पात्रो में देखी जा सकती है। 'भैरो के हृदय की मलिनता का सूरदास के चरित्र की शुचिता से प्रक्षालन कर प्रेमचन्द ने गांधीवादी नीति के हृदय परिवर्तन के आदर्श को मूर्तिमान किया है।' भैरो के समान राजा महेन्द्र कुमार सिंह और जान सेवक में भी सद्भावना जाग्रत होती है और वे अपने अहं का परित्याग कर सूरदास से क्षमा-याचना करते हैं। इनमें आत्मग्लानि और अनुताप की भावना का आविर्भाव हृदय-परिवर्तन का ही सूचक है। राजा साहब कहते हैं - 'सूरदास, मैं तुमसे अपनी भूलो की क्षमा मागने आया हूँ। अगर मेरे बस की बात होती तो मैं आज अपने जीवन को तुम्हारे जीवन से बदल लेता।'[२] सामन्तशाही के प्रतीक राजा साहब का हृदय परिवर्तन तो होना ही है, पूंजीवादी प्रतीक जान सेवक भी सूरदास के सम्मुख नत हो जाते है। उनका कथन है—''मेरे हाथो तुम्हारा बडा अहित हुआ। इसके लिए मुझे क्षमा करना। लोकमत के अनुसार मै जीता और तुम हारे, पर मैं जीतकर भी दुखी हूँ, तुम हार कर भी सुखी हो।''[३]

इस प्रकार लेखक ने सामन्तवादी स्वार्थी दृष्टिकोण को सहानुभूति को जनता की की सहानुभूति और प्रेम में आवेष्ठित कर दिया है।

अन्य राजनीतिक घटनाएं

''रगभूमि' में प्रेमचन्द जी ने अनेक राजनीतिक समस्याओ तथा घटनाओ का आलेखन किया है। पूजीवाद को जन्म देने वाले यन्त्र परिचालित उद्योगो के गुण दोष, पूजीवादी-व्यवस्था की शोषण विधि,दासता के दिनो मे ध्वसावशिष्ट सामन्तवर्ग की मनोवृत्ति एव कार्यविधि, अग्रेज शासको का स्वेच्छाचार, पोलीटिकल एजेन्ट, द्वारा नियन्त्रित-निर्देशित देशी राज्यो की क्रूर एव भ्रष्टाचार पूर्ण शासन-नीति, कौंसिल के भारतीय मेम्बरो की उपहासास्पद तथा व्यर्थ स्थिति, और उठती हुई जनभावना तथा देशानुरक्ति के बडे ही सजीव चित्र' 'रगभूमि मे अकित हैं। १९२० के असहयोग आन्दोलन तथा शासन की दमनात्मक कार्यों की प्रतिच्छाया भी प्रस्तुत उपन्यास मे मिलती है।

---

१ सुषमा धवन—'हिन्दी उपन्यास' पृष्ठ ३५

२. प्रेमचन्द—'रंगभूमि,' पृष्ठ ५१७

३. प्रेमचन्द—'रंगभूमि,' पृष्ठ ५२४

सूरदास को केन्द्र बनाकर जो सत्याग्रह आन्दोलन चला है उसका गाँधीवादी विचारधारा के अनुकूल चित्रण है। सम सामयिक समूह की मनोवृति, भावनाओं के आवेश-प्रेरित उतार-चढाव, नौकरशाही की कार्य-पद्धति का विवरण भी सजीव है।

नारी जागरूकता की दृष्टि से सोफिया, जान्हवी और इन्दु का चित्रण विशिष्टता लिए है। कुंवर भरतसिंह राजा महेन्द्रप्रताप सिंह तथा जसवन्त नगर के महाराज सामन्त वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। इनके व्यंग-चरित्र अच्छे बन पड़े हैं।

कहा गया है 'औद्योगिकीकरण का विरोध, धार्मिक स्वतन्त्रता का पोषण, स्वाधीनता-प्राप्ति के लिए वैधानिक उपायों के प्रति अनास्था, सत्य अहिंसा में विश्वास, आत्मबल को जागरित करने की सत्प्रेरणा त्याग व बलिदान पर आधारित प्रेम का आदर्शस्वरूप गाँधीवादी जीवन-दर्शन के मूल्य तथा सिद्धान्त है जिनकी अभिव्यक्ति उपन्यास का मूल उद्देश्य है, ।

प्रेमचन्द अपने युग के सजग कथाकार थे और रंगभूमि के व्यापक चित्र फलक में उन्होंने स्वतन्त्रता पूर्व राष्ट्र की समस्त आर्थिक राजनीतिक और सामाजिक समस्याओं को उरेहा है।

उपन्यास की प्रमुख राजनीतिक समस्याएं है—औद्योगिकीकरण की व भारतीय रियासतों की। उपन्यास की आधिकारिक कथा, जिसका नायक है सूरदास औद्योगिकीकरण की समस्या को लेकर विस्तार पाती है। इसके साथ ही है विनय सोफिया की प्रेम कथा जो भारती रियासतों की तत्कालीन राजनीतिक स्थिति पर प्रकाश डालती है। उपन्यास का विस्तार इन्हीं समस्याओं को लेकर हुआ है अन ग्रामीण घटनाओं का चित्रण भी राजनीतिक दृष्टिकोण से किया गया है। इसमें संदेह नहीं कि प्रस्तुत उपन्यास में गाँधीवादी आदर्शों की प्रतिष्ठा करने का आग्रह प्रबल है पर गाँधीवादी दर्शन की अपूर्णता (रचना काल के समय जब कि गाँधी जी के ही शब्दों में वे प्रयोग कर रहे थे) से अनेक असंगतियां भी। ये असंगतियां प्रेमचन्द जी की नहीं तद्युगीन राजनीति की हैं।

कर्मभूमि' और उसका कर्मयोग

'प्रेमाश्रम' और 'रंगभूमि' की रचना के उपरांत प्रेमचन्द जी 'कर्मभूमि' में पुनः सशक्त राजनीतिक उपन्यासकार के रूप में सामने आए। यह कहा गया है कि "प्रेमचन्द की उपन्यास-कला'प्रेमाश्रम,' 'रंगभूमि' तथा कर्मभूमि' की त्रिवेणी में गाँधीवादी जीवन दर्शन से पूर्णतया प्रभावित हैं[1]।" 'कर्मभूमि' को मूल समस्या स्वाधीनता की समस्या

१. सुषमा धवन —'हिन्दी उपन्यास,' पृष्ठ ३९

है। अछूतो और किसानों की समस्याएं उसी राजनीतिक समस्या का अंग बन कर चित्रित हुई हैं। 'कर्मभूमि' की पृष्ठभूमि मे सविनय अवज्ञा-आन्दोलन और उत्तरप्रदेश के किसानो के लगानबंदी-आन्दोलन की गहरी छाप देखी जा सकती है। रामदीन गुप्त के शब्दो मे 'यही राष्ट्रीय आंदोलन प्रस्तुत उपन्यास का प्रेरणा स्रोत, है, आधार है। 'कर्मभूमि' मे भारत के इस स्वाधीनता संग्राम और तज्जन्य जन-जागृति के व्यापक प्रसार का अंकन किया है। इस आंदोलन मे हिन्दू और मुसलमान, नागरिक और किसान, विद्यार्थी और प्रोफेसर, अछूत और सवर्ण, युवक और वृद्ध, माताएं और बहिनें, दुकानदार और मजदूर—सभी सक्रिय रूप से भाग लेते है। सच्चे अर्थों मे जिस विशाल राष्ट्रीय स्तर पर यह आन्दोलन लड़ा गया था, 'कर्मभूमि' उसकी व्यापकता और गहराई का वास्तविक चित्र प्रस्तुत करता है[1]।' इसी व्यापकता के कारण उपन्यास में अछूत-समस्या राजनीतिक जागरण, नौकरशाही की दमनात्मक कार्यविधि, आर्थिक शोषण, किसानों की समस्या आदि प्रश्नो को राजनीतिक परिपार्श्व मे अंकित किया गया है। इन प्रश्नो का समाधान समझौतावादी ढंग से किया गया है जो मात्र गांधीवादी तरीका है। एक आलोचक का मत है—"कर्मभूमि मे एक प्रमुख पात्र के बलिदान के बाद हुई एक ओर जनता की जीत को तुच्छ करते हुए, जनता की आवाज को नजर अंदाज करके दूसरी ओर वे शासक और शोषित मे मेल करा देते हैं। वे समस्या के सफल अंत को 'कमेटी-वाद' मे बदल कर जनता के सारे बलिदान और त्याग को धूल मे मिला देते हैं।" वस्तुतः प्रेमचन्द जी का यह समझौतावाद गांधी जी की देन है जो प्रेमचन्द के सम्मुख गांधी-इरविन पैक्ट के रूप मे आई थी।

'कर्मभूमि' में दो कथाएं संग्रथित हैं, एक ग्राम की और दूसरी नगर की। दोनो एक दूसरे की पूरक हैं और उनको जोड़ने वाली कड़ी है अमरकान्त। गांव और नगर दोनो की कथावस्तु राजनीतिक है। गांव मे अमरकांत लगान बन्दी का आन्दोलन चलाता है और नगर मे अछूतो का। 'कर्मभूमि' के रचनाकाल की प्रमुख समस्या अछूतो की थी और प्रस्तुत उपन्यास में उसका वृहत चित्र अंकित है। इसीलिए अमरकांत की गाथा अछूत आन्दोलन की प्रेरणात्मक गाथा बन जाती है। प्रेमचन्द ही प्रथम उपन्यासकार हैं जिन्होंने व्यापक स्तर पर अछूतोद्धार को वाणी दी।

आलोच्य उपन्यास मे अछूतोद्धार-आन्दोलन शहर और ग्राम दोनो धरातलो पर उठाया गया है। अछूत समस्या के विविध पहलू हैं और उनमें से एक धार्मिक है। इसका समाधान हरिजनो के मन्दिर-प्रवेश तक सीमित है। अछूतोद्धार का दूसरा पक्ष सामाजिक और आर्थिक है और जो सामाजिक क्रांति की अपेक्षा रखता है। प्राचीन

---

१ रामदीन गुप्त– 'प्रेमचन्द और गांधीवाद,' पृष्ठ २३९-४०

समय से चली आ रही अछूत-समस्या 'कर्मभूमि' के रचनाकाल में राजनीतिक बन गई थी।

'कर्मभूमि' में चमारों की जीवन-व्यथा और संघर्ष का वर्णन है। अमर परदेशी के रूप में चमारों के गाँव में पहुँचता है। वह गाँधीवादी पात्र है अतः वह गाँव में पहुँच कर प्रसंगानुकूल घोषणा करता है — मैं जात-पात नहीं मानता माता जी। जो सच्चा है वह चमार भी हो, तो आदर के योग्य है जो दगाबाज झूठा, लम्पट हो वह ब्राह्मण भी हो तो आदर के योग्य नहीं।[1] गाँधी जी ने अछूतों को पृथक जाति मानने से इंकार किया था। उन्होंने गोलमेज परिषद् में कहा था— 'हम नहीं चाहते कि अस्पृश्यों का एक पृथक जाति के रूप में वर्गीकरण किया जाय। अस्पृश्यता जीवित रहे इसकी अपेक्षा मैं यह अधिक अच्छा समझूँगा कि हिन्दू-धर्म ही डूब जाय।' उन्होंने घोषणा की—' इस बात का विरोध करने वाला यदि सिर्फ मैं ही अकेला होऊँ तो भी अपने प्राणों की बाजी लगाकर मैं इसका विरोध करूँगा।[2]

महात्मा गाँधी के अछूतोद्धार-कार्यक्रम को दो विभिन्न क्षेत्रों में निषेधात्मक व रचनात्मक रूप में देखा जा सकता है। रचनात्मक कार्यक्रम उनकी कार्यविधि का अभिन्न अंग हुआ करता था। वे मानते थे कि अछूत समस्या को दूर करने के लिए अछूतों में व्याप्त कमजोरियों को पहले दूर करना होगा। इसी कार्यक्रम के अन्तर्गत उपन्यासकार ने अछूतों में व्याप्त कुरीतियों और कुप्रथाओं को हटाने और शिक्षा प्रसार पर विशेष जोर दिया है। हरिजन सेवक के रूप में अमर के प्रयासों से चमारों में नवीन चेतना का संचार होता है। वे दुर्व्यसनों का परित्याग कर नये जीवन का श्रीगणेश करते हैं। वे मुर्दा मांस खाना त्याग देते हैं। अछूतों की निरक्षरता और कुसंस्कारों को हटाने के लिए कर्मभूमि में प्रेमचन्द ने गाँधी के अछूतोद्धार से ही प्रेरणा ली है। गाँधी जी का मत था—' अछूतों में घुसी हुई मरदार मांस खाने की प्रथा ही बतलाती है कि उनकी दरिद्रता के दूर होने और उन्हें समझाने से यह आदत छूट सकती है।''[3] अमर के प्रयत्नों से अछूतों द्वारा मुर्दा मांस का परित्याग गाँधी जी के उपर्युक्त वक्तव्य का ही अनुसरण है। अछूतों का जीवन-परिवर्तन गाँधीवादी रक्तहीन क्रांति के अनुरूप होता है। गाँधी जी मुर्दामांस खाने के प्रबल विरोधी थे क्योंकि उनके अनुसार इसके कारण आत्मशुद्धि संभव नहीं है। १८ मार्च १९३३ को 'हरिजन' में इस विषय पर अपने विचार व्यक्त करते हुए उन्होंने लिखा था— But the eating of carrion is

१ प्रेमचन्द—कर्मभूमि, पृष्ठ १४८

२ पट्टाभि सीतारमैय्या—'संक्षिप्त कांग्रेस का इतिहास', पृष्ठ २४३

३ गाँधी विचार दोहन, पृष्ठ ४५

a most filthy habit, regarded as one of the heinous sin in Hindu scriptures, and it is essential that at this hour of self Purification our Harijan brethren should be helped to get rid of this habit. अमर जैसे गांधी जी के सिद्धान्तो का प्रचारक ही है जो चमारो के साथ उठ-बैठ कर उन्हे नया पथ दिखलाता है। उसकी दृष्टि मे चमार मुर्दामास या अखाद्य पदार्थ सेवी होने के कारण घृणित नहीं हुए क्योंकि उसके सामने गांधी जी का सिद्धात है जो गन्दे भोजन की अपेक्षा गन्दे विचार वाले को घृणित मानते थे।[1]

अछूतों की श्रद्धा अमर पर बढती जाती है। वे उसके कहने से मद्यपान सेवन भी छोड देते है। वे उसके इस तर्क से सहमत हो जाते है कि जहाँ सौ मे अस्सी आदमियों को दोनो जून भरपेट भोजन भी न मिलता हो, वहाँ शराब पीना गरीबो के खून पीने के बराबर है।[2] गांधी जी के अनुसार भी "जब लोग भुखमरी और नंगेपन के किनारे खडे हो तब शराब, अफीम, वगैरह के बारे मे सोचा भी नही जा सकता।"[3] अमर भी गांधी जी के सदृश्य इन कुप्रथाओं का उन्मूलन आत्मिक शक्ति के द्वारा ही सभव मानता है। वह कहता है—"फिर वही डाट-फटकार की बात ? अरे दादा ? डाट-फटकर से कुछ न होगा। दिलो मे पैठिये। ऐसी हवा फैला दीजिए कि ताडी-शराब से लोगों को घृणा हो जाय।"[4]

'कर्मभूमि' मे प्रेमचन्द जी ने कर्मयोग का सदेश दिया है और इसी कारण अछूत वर्ग क्षयी या दमित रूप मे चित्रित नहीं किया गया है। नगर मे अछूतोद्धार का जो आन्दोलन होता है उसमे अछूतो की विजय होती है और सघर्ष के अनन्तर उन्हें मन्दिर प्रवेश का अधिकार प्राप्त हो जाता है। अछूतो की यह विजय कितनी थोथी है उसका विवरण भी प्रेमचन्द प्रस्तुत करना नही भूलते। वे लिखते हैं—"दूसरे दिन मन्दिर मे कितना समारोह हुआ, शहर मे कितनी हलचल मची, कितने उत्सव मनाये गये, इनकी चर्चा करने की जरूरत नहीं। सारे दिन मन्दिर मे भक्तो का ताता लगा रहा। ब्रह्मचारी आज फिर विराजमान हो गये थे और जितनी दक्षिणा उन्हें आज मिली, उतनी शायद उम्र भर मे न मिली होगी। इससे उसके मन का विद्रोह बहुत कुछ

---

१ बापू के हरिजन, पृष्ठ ६८–७०
"गंदा भोजन करने वाला अछूत है या गन्दे विचार धारण करने वाला ? दोनों मे से कौन ज्यादा बुरा है ?"

२ प्रेमचन्द—'कर्मभूमि,' पृष्ठ १५५

३ गांधी साहित्य, भाग ४, पृष्ठ ५४

४ प्रेमचन्द—'कर्मभूमि,' पृष्ठ २८८

शात हो गया, किन्तु ऊँची जाति वाले सज्जन अब भी मन्दिर मे देह बचाकर आते और नाक सिकोड़े हुए कतरा कर निकल जाते थे।"[1]

गाँधी जी मन्दिर प्रवेश को सार्वजनिक जीवन मे अछूतों से समता का व्यवहार मानते थे। इस प्रसग से प्रेमचन्द जी ने यह बताने का प्रयत्न किया है कि मन्दिर प्रवेश से अछूतोद्धार सम्भव नहीं है क्योंकि इससे उनके आर्थिक एव सामाजिक जीवन मे ऐसा परिवर्तन नहीं आता जिससे वे शोषण से मुक्त हो सकें। स्वय गाँधी जी भी इससे सहमत थे और उन्होंने लिखा है— There is undoubtedly a difference of opinion as to the emphasis laid on temple entry as compared to the economic and political uplift ..... The fact is temple entry is not a substitute for any other uplift .. ... it is not impossible to conceive that untouchables may all become economically and politically superior to the caste-Hindus and may yet be treated as untouchables by caste-Hindus, no matter how poor and degraded they themselves may be ?" जैसा कि पूर्व ही कहा जा चुका है प्रेमचन्द जी को केवल मन्दिर-प्रवेश से सन्तोष न था और यही कारण है कि उन्होंने म्युनिस्पल बोर्ड के विरुद्ध निम्न जातियों के सघर्ष की योजना कर जन जागृति को नया मोड दिया। 'नगर की जनता अब उस दशा मे न थी कि उस पर कितना ही अन्याय हो और वह चुपचाप सहती जाय। उसे अपने स्वत्व का ज्ञान हो चुका था। उन्हे मालूम हो गया था कि उन्हे भी आराम से रहने का उतना ही अधिकार है, जितना धनियों को। एक बार सगठित आग्रह की सफलता देख चुके थे। अधिकारियों की यह निरकुशता यह स्वार्थपरता उन्हे असह्य हो गयी।'[2] म्युनिसिपल बोर्ड जब दलित वर्ग की झोपडियों को समूल नष्ट करने के लिए कटिबद्ध हो जाती है उस समय रेणुका देवी कहती है—"अब जनता इस तरह मरने को तैयार नहीं है। अगर मरना ही है तो इस मैदान मे, खुले आकाश के नीचे, चन्द्रमा के शीतल प्रकाश मे मरना बिलों मे मरने से ही कहीं अच्छा है।"[3] इस प्रकार मन्दिर प्रवेश की घटना दिशा निर्देशक बन जाती है और राजनीतिक चेतना का कारण होती है।

---

१. प्रेमचन्द—'कर्मभूमि,' पृष्ठ २१५
२ प्रेमचन्द—कर्मभूमि', पृष्ठ १४२
३. प्रेमचन्द—'कर्मभूमि', पृष्ठ ३६५

नारी चेतना का विकास

अछूतोद्धार आन्दोलन की विशिष्टता है नारी वर्ग द्वारा अछूत विरोधी तत्वों का खुला विरोध। नारी की धर्मपरायणता की इस संवेदनशीलता के द्वारा अस्पृश्यता की भावना की खाई पाटने का प्रयत्न किया है। इतनी ही नहीं 'कर्मभूमि' के नारी पात्र राजनीतिक गतिविधियों में सक्रिय रूप से भाग लेते हैं।

गाँधी जी स्वतन्त्रता आन्दोलन में नारी समुदाय के सहयोग की अनिवार्यता पर विशेष जोर देते थे। वे मानते थे कि यदि राष्ट्र की स्त्रियाँ पुरुषों के साथ न बढ़ेंगी तो सच्ची स्वतंत्रता कभी भी प्राप्त न होगी। स्वयं श्रीमती प्रेमचन्द ने असहयोग आन्दोलन में भाग लिया था और जेल गई थी। प्रेमचंद ने 'कर्मभूमि' में नारी पात्रों को गाँधी जी की कल्पना के अनुसार ही चित्रित किया है। प्रायः सभी प्रमुख नारी पात्र राष्ट्रीय आन्दोलनों में मुक्त रूप से भाग लेते दिखलाये गये हैं। सुखदा, सकीना, मैना, पठानिन, रेनुका देवी जहाँ एक ओर नगर के आन्दोलन का संचालन करती हैं वहाँ मुन्नी और सलोनी जैसी ग्रामीण महिलाएं ग्राम के आन्दोलन में पुरुषों के कंधा से कंधा मिलाकर बढ़ती है।

रेनुका देवी की सम्पूर्ण सम्पत्ति सेवा-आश्रम को देना गाँधीयुग की ही देन है।

इन नारी पात्रों में सुखदा एक सशक्त पात्र है। हृदय परिवर्तन के उपरांत गाँधीवादी विचार धारा की वाहक बन जाती है। वह जनता के आन्दोलन की संचालिका है, और अपनी मर्यादा को जानती है। वह कहती है—"तुम्हारे पास कितनी शक्ति है इसका उन्हें खयाल नहीं है, वे समझते है कि यह गरीब लोग हमारा कर क्या लेंगे। मैं कहती हूँ कि तुम्हारे ही हाथों सब कुछ है। हमें लड़ाई नहीं करनी है, फसाद नहीं करना है, सिर्फ हड़ताल करना है यह दिखाने के लिए कि तुमने बोर्ड के फैसले को मंजूर नहीं किया।"

लगान बंदी आन्दोलन और सामयिक राजनीति

'कर्मभूमि' में लगानबन्दी का जो आन्दोलन चित्रित किया गया है उसके मूल में सन् '२९-३०' का विश्व व्यापी संकट है जिसके कारण किसान की आर्थिक स्थिति विषम हो उठी थी। इसके साथ ही किसानों में राजनीतिक चेतना का विस्तार भी हो रहा था और सन् १९२८ में बारदोली के किसान-आन्दोलन की सफलता से उनके आत्म-विश्वास में वृद्धि हुई थी।

उत्तर प्रदेश के किसानों की स्थिति आर्थिक मंदी के कारण अत्यन्त दयनीय हो गयी थी और २८ मई १९३१ के 'यंग इंडिया' में गाँधी जी ने किसानों के नाम जो पत्र

प्रकाशित किया था उसमें लिखा था—"Bad as your condition was even in normal times the unprecedented fall this year in the prices of the crops usually grown by you made it infinitely worse" गांधी जी ने इसी सन्दर्भ में गवर्नर से नैनीताल जाकर भेंट कर उन्हें वस्तु-स्थिति से अवगत कराया था। किन्तु उन्होंने किसानों को सलाह दी थी कि वे किसी के भड़काने में न आयें और लगान की राशि में से जो वे दे सकें अवश्य भुगतान कर दें।

इस पृष्ठभूमि में स्वामी आत्मानद और अमरकांत की राजनीतिक भूमिका स्पष्ट हो जाती है। आत्मानद का मार्ग हिंसा का है वह चमारों की पंचायत में किसानों को महन्त जी (जो जमींदार भी है) का मकान तथा ठाकुर द्वारा घेर लेने और बलपूर्वक अपनी मांगें पूर्ण करवाने पर जोर देता है।[1] अमरकांत की दृष्टि में (जो कांग्रेस की दृष्टि है) हिंसक प्रयत्न अवांछनीय हैं और वह आन्दोलन को यथासम्भव कुंठित करने का प्रयत्न करता है। इतना ही नहीं अपितु वह अपने साथी स्वामी आत्मानन्द को गिरफ्तार करवाने की योजना भी रखता है। किसानों के आन्दोलन को सर्वनाश का मार्ग निरूपित करता है और उसकी प्रतिक्रियावादिता उस समय स्पष्ट हो जाती है जब वह गर्व से कहता है—"अगर धैर्य से काम लोगे तो सब कुछ हो जायगा। हुल्लड़ मचाओगे, तो कुछ न होगा, उल्टे और डंडे पड़ेंगे।"[2] कांग्रेस जमींदारों के अधिकारों पर अतिक्रमण नहीं करना चाहती थी। स्वयं गांधी जी ने इसी प्रसंग पर कहा था—Let me warn you against listening to the advice, if it has reached you, that you have no need to pay to Zamindars any rent at all I hope that you will not listen to such advice no matter who gives it. Congressmen cannot, we do not seek to injure the Zamindars we aim not to destruction of property.

कहना न होगा कि अमरकांत गांधी जी के निर्देशों का ही पालन करता है और यथार्थ से आंखें मूंद लेता है। यह ठीक ही कहा गया है कि 'लगान बन्दी—आन्दोलन के प्रति उसके दृष्टिकोण को हम उस युग के कांग्रेसी नेतृत्व के दृष्टिकोण का प्रतिनिधि मान सकते है।' वस्तुतः यह स्थिति गांधी इरविन पैक्ट से उत्पन्न हुई थी और 'कर्मभूमि के पात्र उसे अभिव्यक्ति देते हैं। अमर और समरकांत दोनों के वक्तव्यों में गांधीवादी सिद्धान्तों का समर्थन किया गया है। अमर के अनुसार आन्दोलनकारियों को त्याग, कष्ट सहन बलिदान और सत्य का मार्ग अपनाना चाहिए क्योंकि विजय का वास्तविक मार्ग

१. प्रेमचन्द—'कर्मभूमि', पृष्ठ २६३-६४
२ प्रेमचन्द—'कर्मभूमि' पृष्ठ ३०७

वही है। समरकान्त भी कहता है—'तुम धर्म की लडाई लड रहे हो। लडाई नहीं, यह तपस्या है। तपस्या मे क्रोध और द्वेष आ जाता है, तो तपस्या भग हो जाती है।'[1] वह नीतिपरता से शासको के हृदय-परिवर्तन पर विश्वास करता है—'आपको अपनी नीतिपरता से अपने शासको को नीति पर लाना है। यदि वह नीति पर ही होते, तो आपको यह तपस्या क्यो करनी पडती? आप अनीति पर उन्नति से नही, नीति से विजय पा सकते हैं।'[2]

उपन्यास का अन्त गांधीवादी दृष्टिकोण से होता है। सरकार किसानो की मांगो पर विचारार्थ एक सात सदस्यीय समिति गठित कर उसमे जनता के पाच सदस्य सम्मिलित करती है। शेष दो सदस्य सरकार का प्रतिनिधित्व करते हैं। अमरनाथ इस प्रसग पर जो वक्तव्य देता है वह जैसे गांधी जी की गूज हैं। 'हम इसके सिवाय और क्या चाहते है कि गरीब किसानो के साथ इन्साफ किया जाय और जब उस उद्देश्य को पूरा करने के इरादे से एक ऐसी कमेटी बनाई जा रही है, जिससे यह आशा नही की जा सकती कि वह किसानो के साथ अन्याय करे, तो हमारा धर्म है कि उसका स्वागत करें।

इस समझौते के बाद आदोलन से सम्बन्धित व्यक्ति उसी प्रकार मुक्त कर दिये जाते हैं जैसे सामयिक आदोलन की समाप्ति और समझौते पर कांग्रेस नेता। 'इस प्रकार महात्मा गांधी के सविनय अवज्ञा-आदोलन की भांति 'कर्मभूमि' का लगानबन्दी आंदोलन भी 'कमेटीवाद' और समझौते की भूलभुलैया मे खो जाता है।'[3]

हृदय-परिवर्तन का गांधीय सिद्धान्त

उपन्यास मे हृदय-परिवर्तन के गांधीय सिद्धांत को व्यापक स्वीकृति दी गई। वैयक्तिक और सामूहिक दोनो ढग से हृदय-परिवर्तन के अनेक उदाहरण 'कर्म भूमि' मे देखे जा सकते हैं।

नैना के बलिदान से सेठ धनीराम का हृदय परिवर्तन, अमरकांत के उपदेशो से समरकात का हृदय-परिवर्तन, हृदय परिवर्तन के कारण सलीम का पद-त्याग और सुखदा की राष्ट्रीय सेवा आदि वैयक्तिक हृदय-परिवर्तन के उदाहरण है। सामूहिक हृदय का उदाहरण अमर द्वारा चमारो के गांव की कायापलट है।

---

१. प्रेमचन्द—'कर्मभूमि' पृष्ठ ३५१
२ प्रेमचन्द—'कर्मभूमि' पृष्ठ ३५२
३. रामदीन गुप्त, 'प्रेमचन्द और गांधीवाद' पृष्ठ २५७

हिन्दू-मुस्लिम एकता का प्रयास

'कायाकल्प' मे प्रेमचन्द जी का साम्प्रदायिकता विरोधी स्वर ही उपन्यास की आत्मा है। 'कर्मभूमि' मे भी प्रेमचन्द ने हिन्दू मुस्लिम एकता पर अपना दृष्टिकोण प्रकट किया है। सलीम और अमरकान्त की मित्रता व पारस्परिक आचरण और समर काल का पठानिन के प्रति दया भाव के प्रसग इसी उद्देश्य से जोडे हैं।

अहिंसा, स्वावलवन और आत्म निर्भरता

गाँधी जी आत्मिक विकास के लिए अहिंसा, स्वावलबन और आत्म निर्भरता को बहुत महत्व देते है। 'कर्मभूमि' के पात्रों द्वारा भी इनका प्रतिपादन कराया गया है। सम्पूर्ण उपन्यास अहिंसा की उज्जवलता से मडित है। स्वामी आत्मानद और सलीम दो एक स्थल पर अपनी हिंसात्मक प्रवृत्ति प्रदर्शित अवश्य करते हैं किन्तु उसका उद्देश्य अहिंसा को गौरवान्वित करना ही है। 'कर्मभूमि' मे वर्णित आदोलनो मे भी अहिंसा का महत्व प्रतिपादित किया गया है और सामयिक राजनीतिक प्रभाव के कारण जो हिंसात्मक गतिविधियाँ अकित की गई है उनकी व्यर्थता भी वहीं सिद्ध कर दी गई है।

प्रेमचन्द के अंश-राजनीतिक उपन्यास

प्रेमचन्द के प्राय समस्त उपन्यासो मे राजनीतिक चेतना का सम्यक प्रस्फुटन मिलता है। 'गबन' गोदान' व 'मगल सूत्र' (अपूर्ण) मे सामाजिक समस्याएँ प्रमुख हैं, राजनीतिक प्रश्न गौण। इसीलिए उन्हें अश राजनीतिक उपन्यास ही मानना उपयुक्त होगा।

'कायाकल्प' और उसमे निहित राजनीति

प्रेमचन्द जी के 'कायाकल्प' मे भी गाँधीवाद के आध्यात्मिकता एव नैतिक पक्ष का चित्रण मिलता है। रामदीन गुप्त के मत से 'यू तो गाँधीवादी और नैतिकता किसी-न-किसी रूप मे मध्यवर्गीय प्रेमचन्द की सभी रचनाओ म पाई जाती है, किन्तु 'कायाकल्प' का तो मूल प्रतिपाद्य ही यह है।'[1] राजनीतिक सस्पर्श होने पर भी 'कायाकल्प' में ऐन्द्राजालिक कृत्यो और अतिमानवीय तत्वो की अधिकता है और जिसके कारण राजनीतिक स्वरूप पूर्ण रूपेण ऊभर नहीं सका है। एक आलोचक ने सत्य ही लिखा है कि 'कायाकल्प' मे ऐसे अन्धविश्वासो की ऐसी अनर्थक बहुलता है कि इसका

१. रामदीन गुप्त—'प्रेमचन्द और गांधीवाद' पृष्ठ २०५

मूल्य केवल आध्यात्मिक जगत की वस्तु बन कर आकाश मे उतराता रहता है। इसे वास्तविक जीवन के कटु अनुभव के बाद मानसिक-जगत् का विश्राम स्थल कहना ही ठीक होगा।'[1]

'कायाकल्प' को दो भागो मे विभाजित किया जा सकता है—एक का सम्बन्ध सामयिक राजनीतिक समस्याओ से है और दूसरे का कायाकल्प की अलौकिक रहस्यमयी शक्तियो से। दोनो मे से प्रथम भाग अधिक सबल है और जिसके अन्तर्गत सामन्तो और जागीरदारो की सस्कृति की वास्तविकता व हिन्दू मुस्लिम की समस्या पर ठोस विचार व्यक्त किये गये है।

राजेश्वर गुरु ने इन दोनो भागो को ही तीन खडो मे विभाजित किया है। उनके अनुसार—'कायाकल्प की कथा के तीन भाग है—एक भाग का सम्बन्ध हिन्दू-मुस्लिम-समस्या से है, दूसरे का किसान, प्रजा और राजा से है और तीसरा भाग राजा के अन्त पुर का यथार्थ चित्रण है।'[2]

हिन्दू-मुस्लिम समस्या

'सेवासदन' मे प्रेमचन्द जी ने सर्वप्रथम इस समस्या की ओर सकेत किया था। गाँधी जी के प्रयत्नो से लखनऊ पैक्ट के उपरान्त जो समझौता हुआ था उसके कारण कुछ वर्षों तक यह समस्या सुलझी सी प्रतीत होने लगी। किन्तु प्रथम सहयोग आदोलन के बाद और 'कायाकल्प' के रचनाकाल के समय राष्ट्र मे साम्प्रदायिक भावना पुन बलवती हुई। हिन्दू-मुस्लिम एकता के क्षेत्र मे प्रेमचन्द जी गाँधीजी के कट्टर समर्थक थे। उनके उपन्यास-साहित्य मे इस समस्या के कारणों और उसे सुलझाने का यथार्थ और स्थायी हल मिलता है। 'कायाकल्प' मे तो साम्प्रदायिक-भावना के विविध पक्षों का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया गया है।

आलोच्य उपन्यास मे साम्प्रदायिक समस्या गाय की कुरबानी को मुख्य विषय बना कर सम्मुख आई है। इस समस्त प्रकरण मे गाँधीवादी विचारधारा ही पात्रो के माध्यम से मुखरित हुई है।

यशोदानन्दन और महमूद छात्र जीवन से ही साम्प्रदायिक भेदो को भूल कर जन सेवा के क्षेत्र मे योगदान दे रहे हैं। समय के परिवर्तन के साथ दोनों पथच्युत हो साम्प्रदायिकता का मार्ग अपना लेते हैं। इतना ही नही अपितु अब आगरे मे गाय की कुर्बानी के प्रश्न को लेकर हुए हिन्दू-मुस्लिम दगे मे दोनो मित्र एक-दूसरे के प्राण के गाहक हो जाते हैं।

---

१ गगा प्रसाद पांडेय—'हिन्दी कथा साहित्य' पृष्ठ ५८

२ राजेश्वर गुरु—'प्रेमचन्द : एक अध्ययन' पृष्ठ १८८

यह भावना ऐसे मजहब की देन है जो स्वार्थी कठमुल्लों के इशारे पर चलता है। राधामोहन यशोदानन्दन को बताता है—'जिस दिन आप गये, उसी दिन पंजाब से मौलवी दीन मुहम्मद साहब का आगमन हुआ। खुले मैदान में मुसलमानों का एक बडा जलसा हुआ उसमें मौलाना साहब ने जाने क्या जहर उगला कि तभी से मुसलमानों को कुर्बानी की धुन सवार है। इधर हिन्दुओं की यह जिद है कि चाहे खून की नदी बह जाय, पर कुर्बानी न होने पायेगी। दोनों तरफ से तैयारियां हो रही हैं, हम लोग तो समझा कर हार गये।'[1]

साधारण सी बात मजहब के नशे में तूल पकड लेती है। इधर ख्वाजा साहब ने फतवा दिया, जो मुसलमान किसी हिन्दू औरत को निकाल ले जाये, उसे एक हजार हजों का सवाब होगा। उधर काशी के पंडितों ने घोषित किया एक मुसलमान का वध एक हजार गौ दानों से श्रेष्ठ है।

ख्वाजा महमूद और यशोदानन्दन के बीच जो लम्बी बहस होती है उसमें इंगित किया गया है कि यदि पारस्परिक भावनाओं का ध्यान रखा जाय तो ऐसे मामूली झगडे जो भी भीषण रूप लेते हैं सहज ही समाप्त हो सकते हैं। एक गाय के पीछे—एक पशु के पीछे इंसानों का खून बहाना कभी भी मानवीय नहीं कहा जा सकता।

चक्रधर यशोदनन्दन से कहता है—'अहिंसा का नियम गौओं के लिए ही नहीं, मनुष्यों के लिय भी तो है।

यशोदानन्दन—कैसी बातें करते हो, जी। क्या यहाँ खडे होकर अपनी आँखों से गौ की हत्या होते देखूं ?

चक्रधर—अगर आप एक बार दिल थाम कर देख लेंगे, तो यकीन है कि फिर आपको कभी यह दृश्य न देखना पडेगा।

यशोदा—हम इतने उदार नहीं हैं। ..

चक्रधर—तो फिर आइये, लेकिन उस गौ को बचाने के लिये आपको अपने एक भाई का खून करना पडेगा।'[2]

चक्रधर का यह वैयक्तिक रूप है जो गांधीवादी सिद्धान्तों के अनुरूप चित्रित किया गया है।

उसका यह कथन अत्यन्त मार्मिक है—'हर एक कुरबानी हिन्दुस्तान के २१ करोड हिन्दुओं के दिलों को जख्मी कर देती है, और इतनी बडी तादाद के दिलों को

१ प्रेमचन्द—'कायाकल्प', पृष्ठ ३९

२ प्रेमचन्द—'कायाकल्प,' पृष्ठ ३५

दुखाना बड़ी से बड़ी कौम के लिए भी एक दिन पछतावे का बाइस हो सकता है। हिन्दुओं से ज्यादा बेतअस्सुब कौम दुनिया में नहीं है, लेकिन जब आप उनकी दिलजारी और महज दिलजारी के लिए कुरबानी चाहते हैं, तो उनको सदमा जरूर होता है और उनके दिलों में जो शोला उठता है, उसका आप ख्याल नहीं कर सकते। अगर आपको यकीन न आये, तो देख लीजिए कि इस गाय के साथ ही एक हिन्दू कितनी खुशी से अपनी जान दे सकता है।'[१]

और चक्रधर अपनी जान देने को तैयार हो जाते हैं। उनके इस कृत्य से ख्वाजा का हृदय परिवर्तन होता है। वे इस घटना से अभिभूत हो कहते हैं—'काश, तुम जैसे समझदार तुम्हारे और भाई भी होते। मगर यहाँ तो लोग हमें मलिच्छ कहते हैं। यहाँ तक कि हमें कुत्तों से भी नजिस समझते हैं। उनकी थालियों में कुत्ते खाते हैं, पर मुसलमान उनके गिलास में पानी नहीं पी सकता है ।.. अब कुछ कुछ उम्मीद हो रही है कि शायद दोनों कौमों में इत्तफाक हो जाय।'[२]

वस्तुतः साम्प्रदायिक भावना उभाड़ने के पीछे अंग्रेज सरकार और उनके पिट्ठुओं की ही सक्रिय भूमिका थी। ख्वाजा महमूद इस तथ्य से परिचित होने पर अहल्या से कहते हैं—'दोनों कौमों में कुछ ऐसे लोग हैं, जिनकी इज्जत और सरवत दोनों को लड़ाते रहने पर ही कायम है ..मेरा तो कौल है कि हिन्दू रहो, चाहे मुसलमान रहो, खुदा के सच्चे बंदे रहो। सारी खूबियाँ किसी एक ही कौम के हिस्से में नहीं आई। न सब मुसलमान देवता हैं, इसी तरह न सभी हिन्दू काफिर हैं, न सभी मुसलमान मोमिन। जो आदमी दूसरी कौम से जितनी ही नफरत करता है, समझ लीजिए कि वह खुदा से उतनी ही दूर है।'[३]

गाँधी जी के सदृश प्रेमचन्द जी भी इन्सानियत का मार्ग ही धर्म का मार्ग मानते हैं। उनका कथन है "मैं तो नीति को ही धर्म समझता हूँ, और सभी सम्प्रदायों की नीति एक सी है—बुरे हिन्दू से अच्छा मुसलमान उतना ही अच्छा है जितना बुरे मुसलमान से अच्छा हिन्दू।"[४]

चक्रधर आधारहीन भय की भावना को ही इन झगड़ों के मूल में देखता है। वह मनोरमा से कहता है—"मुसलमानों को लोग नाहक बदनाम करते हैं। फिसाद से वे

१ प्रेमचन्द–'कायाकल्प,' पृष्ठ ३६-३७
२. प्रेमचन्द–'कायाकल्प,' पृष्ठ ४०
३. प्रेमचन्द–'कायाकल्प,' पृष्ठ ४२७
४ प्रेमचन्द–'कर्मभूमि,' पृष्ठ २२७

भी उतना ही डरते हैं, जितना हिन्दू। शांति की इच्छा भी उनमें हिन्दुओं से कम नहीं है। लोगों का यह ख्याल कि मुसलमान लोग हिन्दुओं पर राज्य करने का स्वप्न देख रहे हैं, बिलकुल गलत है। मुसलमानों को केवल यह डर हो गया है कि हिन्दू उनसे पुराना बैर चुकाना चाहते हैं, और उनकी हस्ती को मिटा देने की फ़िक्र कर रहे हैं। इसी भय से वे जरा-जरा सी बात पर तिनक उठते हैं और मरने मारने पर आमादा हो जाते हैं।"[1]

भय की यह भावना सचारित करने का श्रेय साम्राज्यवादियों को है क्योंकि इससे उनकी 'फूट करो और राज्य करो' की राजनीतिक ध्येय की पूर्ति होती है। उनका यह कार्य इतना सुव्यवस्थित ढङ्ग से होता था कि दूसरा को इसका आभास भी न हो पाता था। ख्वाजा महमूद की स्वीकरोक्ति है— 'खुदा गवाह है, मैंने इत्तहाद की कोशिश की। अब भी मेरा यह ईमान है कि इत्तहाद ही से इस बदनसीब कौम की नजात होगी। यशोदा भी इत्तहाद का उतना ही हामी था, जितना मैं, शायद मुझसे भी ज्यादा लेकिन खुदा जाने वह कौन सी ताकत थी, जो हम दोनों को बरसरेजङ्ग रखती थी। हम दोनों दिल से मेल करना चाहते थे, पर हमारी मर्जी के खिलाफ कोई जैबी ताकत हमको लड़ाती रहती थी।"[2]

यशोदानन्दन की पत्नी दोनों कौमों के पारस्परिक मेल-मिलाप में ही सुख और समृद्धि देखती है। यशोदानन्दन का वह मार्ग दर्शन करती है—"न मुसलमानों के लिए दुनियाँ में कोई दूसरा ठौर ठिकाना है, न हिन्दुओं के लिए। दोनों इसी देश में रहेंगे और इसी देश में मरेंगे। फिर आपस में क्यों लड़े मरते हो। न तुम्हारे निगले वे निगले जायेंगे न उनके निगले तुम निगले जाओगे, मिलजुल कर रहो।"[3]

यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि 'कायाकल्प' में सामयिक दूषित साम्प्रदायिक परिस्थितियों का यथार्थ चित्रण किया गया है। इस कथन से हम सहमत हैं कि 'प्रेमचन्द ने निर्भीकता और अन्तर्भेदनी दृष्टि के साथ कहा कि इस देश में हिन्दू मुस्लिम एकता ही स्वाभाविक स्थिति है, संघर्ष की अस्वाभाविक परिस्थितियों के लिए कोई तीसरी ताकत जिम्मेदार है। जिसके हाथ में कुछ स्वार्थ के पुतले खेलने के लिए तैयार रहते हैं। इस अस्वाभाविक परिस्थिति से मुक्ति का मार्ग इन्सानियत का आग्रह है और कायाकल्प में प्रेमचन्द साम्प्रदायिक घृणा को मानव प्रेम से जीतने के प्रयत्न में लगे दीखते हैं।'[4]

---

१. प्रेमचन्द—'कर्मभूमि,' पृष्ठ ५७
२ प्रेमचन्द—'कर्मभूमि,' पृष्ठ २६१
३ प्रेमचन्द—'कायाकल्प,' पृष्ठ १५९ ६०
४. 'नवभारत,' का दीपावली विशेषांक, सम्वत २०१८, पृष्ठ ३१७

रियासतों और देशी नरेशों की समस्या

'कायाकल्प' में चित्रित दूसरी राजनीतिक समस्या देशी रियासतों और नरेशों और खेतिहर प्रजा की है। 'रंगभूमि' में भी इस समस्या की ओर इंगित किया गया है। 'कायाकल्प' में पुनः इस समस्या को उठाकर देशी रियासतों और नरेशों की समसामयिक स्थिति और भविष्य की संभावनाओं का उल्लेख किया गया है।

ब्रिटिश-शासकों की साम्राज्यवादी चालों के मुहरों के रूप में पुनर्जीवित सामन्त प्रथा स्वतन्त्रता प्राप्ति में एक बड़ी अवरोधक शक्ति थी। रियासतों की प्रजा की स्थिति अत्यन्त शोचनीय थी। वह भयंकर शोषण का शिकार थी और उनकी मुक्ति का प्रश्न स्वाधीनता प्राप्ति का ही एक अंग था। रियासती जनता में जागृति का प्रसार करना और राजसत्ता की निरर्थकता सिद्ध करना आवश्यक था क्योंकि इसके द्वारा ही राष्ट्रीय आंदोलन को बल मिल सकता था। 'कायाकल्प' में प्रजा और राजा की यथार्थ स्थिति के चित्रण से वैषम्य दिखलाकर संघर्ष की स्वाभाविक स्थिति प्रस्तुत की गई है।

उपन्यास के प्रमुख सामन्ती पात्र हैं जगदीशपुर की महारानी देवप्रिया, दीवान ठाकुर हरिसेवक सिंह व नये राजा साहब ठाकुर विशालसिंह।

इसके विपरीत है चक्रधर, जो रियासती जनता में नवीन चेतना फूंकते हैं, राजा के तिलकोत्सव पर मजदूरों का संगठन कर जेल जाते हैं। चक्रधर कहता है—"सारा देश गुलामी की बेड़ियों में जकड़ा हुआ है, फिर भी हम अपने भाइयों की गर्दन पर छुरी रखने से बाज नहीं आते। इतनी दुर्दशा पर भी हमारी आँखें नहीं खुलतीं। जिनसे लड़ना चाहिए उनके तो तलवे चाटते हैं और जिनसे गले मिलना चाहिए उनकी गर्दन दबाते हैं और यह सारा जुल्म हमारे पढ़े लिखे भाई ही कर रहे हैं। हमारी शिक्षा ने हमें पशु बना दिया है। राजा साहब की जात से लोगों को कैसी-कैसी आशाएँ थीं, लेकिन अभी गद्दी पर बैठे छः महीने भी नहीं हुए और इन्होंने भी वही पुराना ढङ्ग अख्तियार कर लिया। प्रजा से डंडों के जोर से रुपये वसूल किये जा रहे हैं और कोई फरियाद नहीं सुनता[1]।"

रियासती अफसरों के अत्याचारों का चित्रण भी इसी सन्दर्भ में किया गया है। उनकी कमजोरी भी प्रकट की गई है। मनोरमा चक्रधर से कहती है—"अभी एक गोरा आ जाय तो घर में दुम दबाकर भागेंगे। उस वक्त जबान भी न खुलेगी। उससे जरा आँखें मिलादे तो देखिए, ठोकर जमाता है या नहीं। उससे तो बोलने की हिम्मत नहीं,

---

१ प्रेमचन्द—'कायाकल्प,' पृष्ठ १३२

बेचारे दीनों को सताये फिरते हैं। यह तो मरे को मारना हुआ। इसे हुकूमत नहीं कहते। यह चोरी भी नहीं है। यह केवल मुरदे और गिद्ध का तमाशा है।"[1]

समय के परिवर्तन के साथ जनता में राजनीतिक चेतना का जो उभार आया उसकी ओर 'रंगभूमि' में ही इंगित किया गया था। प्रेमचन्दजी ने अपने एक पात्र से कहलवाया है— अब वह जमाना नहीं रहा, जब राज रईसों के नाम आदर से लिए जाते थे, जनता को स्वयं ही उनमें भक्ति होती थी। वे दिन विदा हो गये। ऐश्वर्य भक्ति प्राचीन काल की राज्य भक्ति का एक अंश थी। प्रजा अपने राजा जागीरदार, यहाँ तक कि अपने जमींदार पर सिर कटा देती थी। यह सर्वमान्य नीति सिद्धान्त था कि राजा भोक्ता है, प्रजा भोग्य है। यही सृष्टि का नियम था लेकिन आज राजा और प्रजा में भोक्ता और भोग्य का सबंध नहीं है, जन सेवक और सेव्य का सम्बन्ध है।'[2] और इसके भी आगे यह कहा जा सकता है कि आज का युग तो जनता के ही राजा बनने का है।

'कायाकल्प' में गद्दी के उत्सव के समय हम जन-सेवक और सेव्य की भावना को तिरोहित होते देखते हैं। विलासिता और निर्धनता की विषमता से जनता में असंतोष होता है। पर राजा विशाल सिंह को इसकी जैसे कोई चिन्ता नहीं। वे कहते हैं— 'मैं प्रजा का गुलाम नहीं हूँ। प्रजा मेरे पैरों की धूल है। मुझे अधिकार है कि उसके साथ जैसा उचित समझूँ, वैसा सलूक करूँ। किसी को हमारे और हमारी प्रजा के बीच में बालने का हक नहीं।'[3]

किन्तु चक्रधर के नेतृत्व में संघर्ष होता है और वह गिरफ्तार होता है। चक्रधर मानता है कि उसकी गिरफ्तारी जनता के असंतोष को दूर करने का सही हल नहीं। वह मानता है कि 'जब तक असंतोष के कारण होंगे, ऐसी दुर्घटनाएं होंगी और फिर होंगी। मुझे आप पकड़ सकते हैं, कैद कर सकते हैं। इससे चाहे आपको शांति हो पर वह असंतोष अणुमात्र भी कम न होगा, जिससे प्रजा का जीवन असह्य हो गया है। असंतोष को भड़का कर आप प्रजा को शान्त नहीं कर सकते।'[4] यहाँ उस राजनीतिक सिद्धान्त की प्रतिध्वनि मिलती है जिसके अनुसार यह कहा जाता है कि असंतुष्ट प्रजा पर किसी प्रकार का शासन नहीं किया जा सकता।

रियासती वातावरण में चक्रधर जैसा गांधीवादी पात्र भी परास्त[1] हो जाता है,

---

१ प्रेमचन्द — कायाकल्प,' पृष्ठ १०३
२ प्रेमचन्द — रंगभूमि,' पृष्ठ ३६६
३ प्रेमचन्द — 'कायाकल्प,' पृष्ठ १४५
४. प्रेमचन्द — 'कायाकल्प,' पृष्ठ १५४ १५५

इस विडम्बना का चित्रण भी उपन्यास में प्रस्तुत है। सत्ता की प्राप्ति उसकी सद्वृत्तियों को भी नष्ट करने से नहीं चूकती। धन्नासिंह चक्रधर के इस परिवर्तन पर आश्चर्यचकित है। स्वयं चक्रधर भी मानते हैं—'आह मुझ पर भी प्रभुता का जादू चल गया। अब मुझे अनुभव हो गया कि इस वातावरण में रहकर मेरे लिए अपनी मनोवृत्तियों को स्थिर रखना असाध्य है।'[१]

उनकी आत्मा जीवित है और वे अपने कर्तव्य को पहिचान अर्धरात्रि में सबको निद्रामग्न छोड़ निष्क्रमण करते हैं। उस स्थिति में उन्हें राजा का विशाल महल सहस्र नेत्रों वाले पिशाच की भाँति प्रतीत होता है।

राजाओं के काले कारनामों को चित्रित करने पर भी प्रेमचन्द जी ने गाँधीय सिद्धान्त के अनुसार व्यक्ति को दोषी न मानकर परिस्थितियों को ही दोषी बतलाया है। स्वयं राजा साहब का स्पष्टीकरण इसी आधार पर दिया गया है। वे कहते हैं—"ईश्वर जानता है, मेरे मन में प्रजा हित के कैसे-कैसे हौसले थे। मैं अपनी रियासत में रामराज्य का युग लाना चाहता था, पर दुर्भाग्य से परिस्थिति कुछ ऐसी होती जाती है कि मुझे वे सभी काम करने पड़ते हैं, जिनसे मुझे घृणा थी। न जाने वह कौन सी शक्ति है, जो मुझे अपनी आत्मा के विरूद्ध आचरण करने के लिए मजबूर कर देती है मैं हिंसक-जन्तुओं से घिरा हुआ हूँ।'[२] इन्हीं हिंसक-जन्तुओं ने विशाल सिंह के प्रजावाद की भावना को कुण्ठित कर कार्यरूप में परिणत न होने दिया। वह सामन्तवादी मशीनरी का ही एक 'बोल्ट' बनकर राजसी विलासिता में जीवन-यापन करने को बाध्य हो गया।

एक आलोचक ने 'कायाकल्प' में जिन तीन तथ्यों को देखा है वे ये हैं—(१) इन रियासतों के नरेशों की स्थिति ब्रिटिश नौकरशाही के इशारों पर नाचने वाली कठपुतलियों से अधिक नहीं है, (२) निरंकुश अधिकारियों के बढ़ते हुए अत्याचारों के कारण इन रियासतों की जनता में भीतर-ही-भीतर असंतोष की आग धुमड़ रही है तथा (३) भीतर-ही-भीतर घुमड़ने वाला यह असंतोष जब एक व्यापक जनांदोलन का रूप ग्रहण करने लगता है तो विनय और चक्रधर सरीखे गाँधीवादी नेता अहिंसा के नाम पर उसके मार्ग पर आकर खड़े हो जाते हैं और इस प्रकार गाँधीवादी-नेतृत्व के प्रच्छन्न सहयोग से यह जनांदोलन कुचल दिया जाता है।[३]

---

१ प्रेमचन्द – 'कायाकल्प,' पृष्ठ ३३३

२ प्रेमचन्द –'कायाकल्प,' पृष्ठ १६०

३. रामदीन गुप्त –'प्रेमचन्द और गाँधीवाद,' पृष्ठ २११-१२

अन्य राजनीतिक सकेत

'कायाकल्प' मे उपर्युक्त दो प्रमुख राजनीतिक समस्याओ के अतिरिक्त कुछ अन्य राजनीतिक सकेत भी देखे जा सकते हैं। इनमें सम-सामयिक नेताओ मे जन सम्पर्कीय भावना का अभाव और मजदूरो मे समाजवादी चेतना का प्रस्फुटन मुख्य है।

जेल से जब चक्रधर छूटकर आता है तो अनुभव करता—'हमारे नेताओ मे यही तो बड़ा ऐब है कि वे स्वय देहातो मे न जाकर शहरो मे पड़े रहते है, जिससे देहातो की सच्ची दशा उन्हे नही मालूम होती, न मे उन्हें वह शक्ति ही हाथ आती है, न जनता पर उनका वह प्रभाव ही पड़ता है, जिसके बगैर राजनीति सफल हो ही नही सकती।'[1]

समाजवादी चेतना की उद्भावना मजदूरो के विरोध को लेकर की गई है। चमार और मजदूर जब हिंसात्मक कृत्यो के लिए उद्यत होते हैं, तब चक्रधर गांधीवाद फार्मूले के साथ सामने आता है। वह कहता है—"अगर तुम्हे खून की ऐसी प्यास है, तो मैं हाजिर हूँ। मेरी लाश को पैरो से कुचल कर तभी तुम आगे बढ सकते हो।"[2] इस अवसर पर एक मजदूर का कथन हैं—'हमारे एक सौ जवान भून डाले, तब आप कहाँ थे? यारो, क्या खड़े हो, बाबू जी क्या बिगड़ा है। मारे तो हम गये है न? मारो बढ़के।"[3] इतना ही नहीं, मजदूर के शब्द शोला बन जाते है—"भैया, तुम सान्त-सान्त बका करते हो, लेकिन उसका फल क्या होता है। हमे जो चाहता है, मारता है, जो चाहता है, पीसता है, तो क्या हम सान्त बैठे रहे? सान्त रहने से तो और भी हमारी दुरगत होती है। हमे सान्त रहना मत सिखाओ। हमे मरना सिखाओ, तभी हमारा उद्धार कर सकोगे।"[4]

मजदूरो के बीच पनप रही इस चेतना का सकेत मात्र देना ही गाँधीवादी प्रेमचन्द को अभीष्ट था अत उसका व्यापक स्वरूप उन्होने प्रस्तुत नही किया। एक प्रकार प्रेमचन्द का यहाँ पर गाँधी जी के अहिंसात्मक आन्दोलन द्वारा साधना की सिद्धि मे शकालु हृदय प्रतिबिम्बित हो रहा है। शायद उनकी चेतना साम्यवादी वर्ग सघर्ष की ओर मुडने सी लगती है।

---

१. प्रेमचन्द–'कायाकल्प,' पृष्ठ २५३
२ प्रेमचन्द–'कायाकल्प,' पृष्ठ ११६
३ प्रेमचन्द–'कायाकल्प,' पृष्ठ ११६
४. प्रेमचन्द–'कायाकल्प,' पृष्ठ ११७

अलौकिक प्रसंग और गांधीवाद

'कायाकल्प' में पुनर्जन्म के अलौकिक प्रसङ्ग राजनीतिक न होने पर भी गांधी जी की मान्यता को लेकर ही चित्रित हैं। गांधी जी का कथन है—"मैं पुनर्जन्म में उतना ही विश्वास करता हूँ जितना अपने वर्तमान शरीर के अस्तित्व में।" देवप्रिया के चरित्र को देखकर ऐसा लगता है प्रेमचन्द गांधी जी के प्रत्येक कथन को ब्रह्म-वाक्य मानते थे और उसे कथा का रूप दे देने को आतुर हो उठते थे। उनकी 'गांधीनिष्ठा' ने उन्हें जहाँ ऊपर उठाया है वहाँ दूसरी ओर उनके औपन्यासिक-स्वरूप को कुण्ठित भी किया है। 'कायाकल्प' के शैथिल्य का भी यही कारण है। फिर भी इस अलौकिक प्रसग को, जो सम्पूर्ण उपन्यास का पचमांश भी न होगा,[1] छोड़ देने पर 'कायाकल्प' सामयिक राजनीतिक चेतना से सुपुष्ट कृति है और अनेक समस्याओं को उद्घाटित करती है।

गबन

'गबन' में प्रेमचन्द जी ने वर्गगत असतुलन का चित्रण अत्यन्त मनोयोग से किया है। इसमें मध्यवर्गीय समाज की विभिन्न समस्याओं का कलात्मक अंकन है। एक विज्ञ आलोचक का भी मत है—"हमने इस उपन्यास को 'गहने की ट्रेजेडी' कहा है, परन्तु कहानी का मूल विषय यही होने पर भी समस्या का यह रूप एक अत्यन्त व्यापक समस्या का ही अंग है। यह समस्या है वर्गगत असंतुलन। गहने वर्ग श्रेष्ठता के ही प्रतीक हैं। हमारे इस पूंजीवादी समाज की सारी व्यवस्था वर्ग की विभिन्नता पर ही आश्रित है।"[2]

कथावस्तु के आरम्भ में आभूषण की समस्या को केन्द्र बनाकर मध्यवर्गीय भारतीय-नारी की समस्या को चित्रित किया गया है तथा प्रासंगिक रूप से कलकत्ता की कथा समावेश कर भारतीय स्वाधीनता की समस्या को अभिव्यक्ति दी गई है। कहा गया है कि प्रस्तुत उपन्यास में स्पष्टतः दो भाग हैं जिन्हें हम पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध अथवा क्रमशः प्रयाग और कलकत्ता की कथाएँ कह सकते हैं। कलकत्ता की कथा वस्तुतः राजनीतिक उपन्यासकार प्रेमचन्द की राजनीतिक आस्था का ही परिणाम है। आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी की मान्यता है कि इन कथाओं को एक ही उपन्यास में न जोड़कर यदि उनके आधार पर दो अलग-अलग उपन्यासों (एक शुद्ध पारिवारिक और दूसरा शुद्ध राजनीतिक) की रचना की जाती तो क्या अच्छा रहता।

---

१. शिवनारायण श्रीवास्तव—'हिन्दी उपन्यास,' पृष्ठ ६८
२. शिवनारायण श्रीवास्तव—'हिन्दी उपन्यास,' पृष्ठ ६८

प्रेमचन्द राजनीति को समाजनीति से पृथक नही मानते थे और उद्देश्य दोनो को साथ लेकर मानवतावादी दृष्टिकोण की स्थापना होता था, जो सामयिक दृष्टि से उचित भी था। वे कला को उपयोगितावाद की कसौटी पर कसते थे। कलकत्ते में प्रसंग को लेकर विस्तार पाने वाली कथा सोद्देश्य है और सामयिक राजनीति के अनेक पृष्ठों को प्रस्तुत करती है।

'गबन' मे राजनीतिक घटनाएँ

'गबन' मे स्वदेशी आन्दोलन और अवसरवादी नेताओ की कथनी और करनी के अन्तर की झलक स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। देवीदीन स्वदेशी आन्दोलन का सच्चा सेनानी है। वह 'दिखावटी' राष्ट्रभक्तों मे से नहीं है। उसके परिवार में ही राष्ट्र प्रेम का संस्कार रक्त मे व्याप्त है और उसके दो युवक पुत्र राष्ट्रीय बलिवेदी पर अपने जीवन की आहुति देते हैं। देवीदीन के त्याग और देश-प्रेम का मूल तब ही समझा जा सकता है जब सामयिक काग्रेसी नेतृत्व और उच्चवर्गीय नेताओ के साथ उसका मूल्यांकन किया जाय। और सामयिक राजनीतिक स्थिति (दलीय स्थिति भी कह सकते हैं) उसके ही शब्दो मे देखिए-"इन बड़े-बड़े आदमियो के किये कुछ न होगा। इन्हें बस रोना आता है, छोकरियो की भाँति बिसूरने के सिवा इनसे और कुछ नही हो सकता। बड़े-बड़े देश-भगतो को बिना विलायती शराब के चैन नहीं आता। उनके घर मे जाकर देखो तो एक भी देसी चीज न मिलेगी। दिखाने को दस-बीस कुरते गाढे के बनवा लिये, घर का और सब सामान बिलायती है। सब-के-सब भोग विलास मे अन्धे हो रहे हैं, छोटे भी और बडे भी। उस पर दावा यह है कि देश का उद्धार करेंगे। अरे तुम क्या देश का उद्धार करोगे ! पहले अपना उद्धार कर लो। गरीबो को लूटकर बिलायत का घर भरना तुम्हारा काम है। हाँ, रोये जाव, बिलायती सराबें उडाओ, बिलायती मोटरें दौडाओ, बिलायती मुरब्बे और अचार चखो, बिलायती बरतनों में खाओ, बिलायती दवाइयाँ पीयो, पर देश के नाम को रोये जाओ।"[1] यह स्थिति थी सम्य तथा उच्चवर्गीय कांग्रेसी नेतृत्व की, जो घड़ियाली आँसुओ की ओट मे अपनी स्वार्थ-सिद्धि मे मग्न थे। वस्तुत. गांधीवाद राष्ट्रीय आन्दोलन के साथ जो पूंजीवादी तत्व सहयोगी थे वे तब भी भ्रष्ट थे और स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त अपनी धनशक्ति और प्रमाद, नाप, व्यावहारिक कुशलता के कारण राजनीति पर हावी होकर आज के भ्रष्टाचार के प्रणेता हुए।

---

१. प्रेमचन्द–'गबन,' पृष्ठ २१८

नौकरशाही की भूमिका बनाम पुलिस का नग्न-नृत्य

अंग्रेजी शासन का एक प्रमुख स्तम्भ था पुलिस प्रशासन और उसके बेशुमार काले कृत्य, जिसके ऊपर टिका था अत्याचारी शासन। भारतीय स्वतन्त्रता का आंदोलन देशभक्त जनता के उज्ज्वल इतिहास का ही नहीं अपितु पुलिस के अत्याचारों का रोमांचक इतिहास भी है। प्रेमचन्द ने 'गबन' में पुलिस-अत्याचारों को बेझिझक अनावृत किया है। कलकत्ता पुलिस ने रामनाथ की झूठी साक्षी पर जिन १४ राजनीतिक कार्यकर्ताओं को डकैती केस में फँसाने का कुचक्र रचा उसमें १९२९-३० के कुख्यात मेरठ षडयन्त्र केस की गूंज है।[1] इस प्रसंग से पुलिस की उन धाँधलियों का पता चलता है जो राजनीतिक कार्यकर्ताओं को तंग करने के लिए अपनाई जाती थीं।

स्वराज्य की कल्पना

'गबन' में जन साधारण के स्वराज्य की कल्पना का चित्रण भी मिलता है। देवीदीन निम्न मध्य वर्ग का प्रतीक है और उसकी दृष्टि में स्वराज्य ही सुराज की यथार्थता है। वह सर्वोदयी भावना की समानता का समर्थक है और स्वराज्य होने पर उसकी ही प्रतिष्ठा चाहता है। वह स्वराज्य के लिए मंच पर उछलकूद मचाने वाले 'भाषणवीरों' से पूछता है—"जब तुम सुराज का नाम लेते हो, उसका कौन सा रूप तुम्हारी आँखों के सामने आता है ? तुम बड़ी-बड़ी तलब लोगे, तुम भी अंग्रेजों की तरह बंगलों में रहोगे, पहाड़ों की हवा खाओगे, अंग्रेजी ठाट बनाये घूमोगे, इस सुराज से देश का क्या कल्यान होगा। तुम्हारी और तुम्हारे भाई-बंदों की जिन्दगी भले आराम और ठाठ से गुजरे, पर देश का तो कोई भला न होगा।[2] वह स्वराज्य प्राप्ति पर जिसकी अपेक्षा करता है वह है—'तो सुराज मिलने पर दस-दस, पांच-पांच हजार के अफसर नहीं रहेंगे, ? वकीलों की लूट नहीं रहेगी ? पुलिस की लूट बन्द हो जायेगी।'[3] किन्तु सामयिक राजनीतिज्ञों के कृत्यों से उसे जो असंतोष है उसके कारण उसे आशंका है कि केवल स्वाराज्य से ही शोषण समाप्त न होगा और तथा कथित नेतागण अपना ही हित साधन करेंगे। वह धन और धर्म के अपावन गठबंधन से भी चिंतित है। युग-चेता कलाकार भविष्य का कितना सजग द्रष्टा होता है आज की इस शासन प्रणाली से प्रेमचन्द जी की वे भविष्य वाणियाँ पूर्ण रूपेण सत्य सिद्ध हो रही हैं।

---

१ रामदीन गुप्त -'प्रेमचन्द और गांधीवाद,' पृष्ठ २३६

२. प्रेमचन्द—'गबन' पृष्ठ २१८

३. प्रेमचन्द—'गबन' पृष्ठ २१८

गाँधीवाद की गूँज

यथार्थवादी उपन्यास होने पर 'गबन' गाँधीवादी आदर्शवादिता से अछूता नहीं। 'हृदय-परिवर्तन' की गाँधीय-आस्था जोहरा मे आकस्मिक रूप से प्रस्फुटित हुई है। जालपा का व्यक्तित्व केवल जोहरा को ही नहीं अपितु रामनाथ को भी प्रभावित करता है और वह अपने हृदय परिवर्तन के कारण अपने बयान बदलने को सहमत हो जाता है। हृदय-परिवर्तन को गाँधी जी सहज मानवीय प्रक्रिया के रूप मे देखते थे और उन्ही के स्वर में या कहे तर्क के रूप मे 'गबन' के एक पात्र के द्वारा कहा गया है—'जिस आदमी मे हत्या करने की शक्ति हो, उसमे हत्या न करने की शक्ति का न होना अचभे की बात है। जिसमे दौड़ने की शक्ति हो, उसमे खड़े रहने की शक्ति न हो, उसे कौन मानेगा ?'[1]

गोदान

'गबन' के उपरांत प्रेमचन्द का यथार्थवादी दृष्टिकोण 'गोदान' मे साहूकारों द्वारा किसान के शोषण की कहानी मे सम्मुख आया। 'गोदान' तक पहुँचते-पहुँचते प्रेमचन्द की गाँधीवादी राजनीति से प्रसूत आदर्शवादिता के रग बिरगे स्वप्न बिखर से गये। शिवनारायण श्रीवास्तव का मत है—'वे जितना ही आदर्श की ओर बढ़ते गये वह उनसे उतना ही दूर होता गया। अतएव मृत्यु की ओर बढते हुए प्रेमचन्द ने 'गोदान' देकर किंचित क्षोभ के साथ ही उठ उठकर गिर जाने वाले जीवन को नैराश्यपूर्ण कठोर वास्तविकता का नग्न परिचय कराया।'[2] रामदीन गुप्त की मान्यता है कि लगभग एक युग तक दक्षिण पथीय जीवन-दर्शन की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक उपयोगिता को परखने के पश्चात् 'गोदान' तक आते-आते प्रेमचन्द के सम्मुख उसकी निस्सारता भली भाँति प्रकट हो चुकी थी। महात्मा गाँधी के कार्य-क्रम और जीवन-दर्शन के प्रति की प्रेमचन्द की श्रद्धा-भक्ति की भावना खंडित हो चली थी और उनके आदर्श वाद मे दरारें पड़ने लगी थीं।'[3]

राजनीतिक उपन्यासकार प्रेमचन्द का यह एक मात्र एव सर्वोत्कृष्ट उपन्यास है जो 'किसी सामयिक आन्दोलन या हलचल को आधार बना कर नहीं चला है। किसी विशिष्ट सामाजिक, राजनीतिक या आर्थिक आन्दोलन को अपनी रचना का विषय न बनाकर गोदानकार ने भारतीय किसान के समूचे जीवन और उसके दुःख दर्द

१. प्रेमचन्द—'गबन' पृष्ठ ३२४
२. शिवनारायण श्रीवास्तव—'हिन्दी उपन्यास' पृष्ठ १०७
३ रामदीन गुप्त—'प्रेमचन्द और गाँधीवाद' पृष्ठ २५६

को ही वाणी प्रदान करने का प्रयास किया है।' 'गोदान' में किसान की ऋण-समस्या है जो उसके जीवन को बुरी तरह ग्रसित किये हुए है। गोदान-इन्हीं महाजनी शोषण की गाथा है जिसमें भारतीय कृषक के जीवन का सम्पूर्ण वृत्त आ जाता है। उपन्यास का नायक होरी भारतीय कृषक की विवशताओं का प्रतीक है। डॉ० रामविलास शर्मा का यह कथन सत्य है कि 'गोदान' की मूल समस्या शोषित तथा उत्पीड़ित कृषक के ऋण की समस्या है।'[1]

'गोदान' के रचनाकाल में भारतीय राजनीति में समाजवादी चेतना का विस्तार हो रहा था। एक ओर कांग्रेस के अन्तर्गत ही समाजवादी दल स्थापित हो गया था और दूसरी ओर साम्यवादी गतिविधियाँ भी जोर पकड़ रही थीं। गाँधीवाद आन्दोलनों की असफलता से कुंठित हो रहा था और जनता की आकांक्षाओं की पूर्ति में असमर्थ सिद्ध हो रहा था। प्रेमचन्द का राजनीतिक राजमार्ग गाँधीवाद था जो १९३६ में उस राजनीतिक चौराहे में आ मिला था जहाँ अन्य राजनीतिक विचारधाराओं के मार्ग आ मिले थे। 'गोदानकार' चौराहे पर पहुँच कर तटस्थ रूप से पर्यवलोकन करता है। राजमार्ग पर वह बहुत चल चुका है अधिक चलने का उसमें अब धैर्य नहीं। अन्य मार्ग अनजाने हैं जिस पर चलने से वह हिचकिचाता है। साम्यवाद मार्ग पर कुछ दूर वह चला पर लौट कर पुनः चौराहे पर आ गया। मार्ग की यह दूरी उसे यदि रुचि नहीं तो बुरी भी नहीं लगी पर यही 'गोदान' की राजनीतिक द्विविधा है।

मातादीन और सीलिया की कहानी पर गाँधीवाद का अवशिष्ट प्रभाव है। यह ठीक ही कहा गया है कि 'सिलिया उस युग की उपज है, जिसमें गाँधी जी के अछूतोद्धार कार्यक्रम की भावना व्याप्त थी। सिलिया चमारिन का निरन्तर स्वेच्छापूर्वक आत्म-त्याग अन्त में मातादीन के धर्म-पाखण्ड पर विजय प्राप्त करता है।' अन्यायी मातादीन का हृदय परिवर्तन भी गाँधीय सिद्धान्त का प्रतीक है।

मजदूर आन्दोलन

शक्कर मिल के मजदूरों की हड़ताल को लेकर 'गोदान' में मजदूर आन्दोलन को अभिव्यक्ति दी गई है जिसमें गाँधीवाद और साम्यवाद का अमेल गठबन्धन है। गाँधी दर्शन के अनुसार हड़ताल का कारण न्याय सगत, कार्य पद्धति अहिंसात्मक और अन्त समझौतावादी होता है। हड़ताल सत्याग्रह (सत्य के आग्रह) का प्रतिरूप है और वह अहिंसक प्रयत्नों से वर्ग समन्वय को प्रोत्साहित करता है। मजदूर-आन्दोलन का चित्रण युगानुरूप न होकर गाँधीवादी ढंग से हुआ है। मिल में आग लग जाने से मजदूर-हड़ताल

१. रामविलास शर्मा—'प्रेमचन्द और उनका युग,' पृष्ठ ११५

को अंत होना है और गोविन्दी कहती है—'मैं तो खुश हूँ कि तुम्हारे सिर से यह बोझ टला। अब तुम्हारे लड़के आदमी होंगे, स्वार्थ और अभिमान के पुतले नहीं। जीवन का सुख दूसरों को सुखी करने में है, उनको लूटने में नहीं। बुरा न मानना अब तक तुम्हारे जीवन का अर्थ था आत्मसेवा, भोग और विलास। दैव ने तुम्हे उसे साधना से वंचित करके तुम्हे ज्यादा ऊँचे और पवित्र जीवन का रास्ता खोल दिया है।'[1]

'गोदान' के रचनाकाल में मजदूर-आन्दोलन काफी सशक्त हो गया था और भारतीय राजनीति में उसकी महत्वपूर्ण भूमिका थी, पर 'गोदान' में इसका चित्रण नहीं मिलता जिसका कारण प्रेमचन्द पर गाँधीवाद का अवशिष्ट प्रभाव ही है। प्रेमचन्द ने इस प्रकरण से यह सिद्ध करना चाहा है कि हिंसक हड़ताल निस्सार होती है और शोषित और शोषक दोनों के लिए अहितकर भी।

प्रेमचन्द के राजनीतिक उपन्यास

प्रेमचन्द ने सामयिक राजनीति, राजनीतिक विचारधारा और राजनीतिक घटनाओं और राजनीतिक समस्याओं को कभी आँख से ओझल नहीं होने दिया। उनकी आत्मा व्यापक सहानुभूति के प्लावित थी और इसी मानवतावादी दृष्टिकोण के कारण उनमें सभी कोटि के व्यक्तियों के प्रति सहज आत्मीय भाव और निष्ठा थी। एक विज्ञ का मत है, और जो सत्य है कि 'प्रेमचन्द की दृष्टि सदा वर्तमान पर रही और इन्होंने केवल अपने काल की सामाजिक परिस्थितियों तथा समस्याओं को लेकर रचनायें की, जिन पर तत्कालीन राजनीतिक आंदोलनों तथा समस्याओं का पुट है।'[2]

प्रेमचन्द के उपन्यासों की राजनीतिक विशिष्टता गांधीय सिद्धान्तों के प्रति उनकी अटूट आस्था है। डॉ० नगेन्द्र के शब्दों में—'गांधी युग के प्रथम तीन चरणों के सामाजिक राजनीतिक, आर्थिक और साम्प्रदायिक जीवन के सभी पहलुओं और समस्याओं का जितना सांगोपांग और सटीक चित्रण प्रेमचन्द में मिलता है वैसा हिन्दी के ता किसी साहित्यकार में मिलता ही नहीं है, भारत के अन्य किसी साहित्यकार में भी मिलता है, इसमें संदेह है।'[3] उन्होंने सामयिक जन-जीवन को एकाग्रता से अंकित किया है और कहा गया है—'प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों में अपने युग अर्थात् गाँधीयुग के तीन चरणों के सामाजिक-राजनीतिक जीवन का अत्यन्त पूर्ण इतिहास दे दिया है। वास्तव में जिस समय उत्तर प्रदेश के इतिहास के काल-खंड का सामाजिक इतिहास

१ प्रेमचन्द—'गोदान' पृष्ठ २६५
२ ब्रजरत्नदास—'हिन्दी उपन्यास साहित्य' पृष्ठ २२३
३ डॉ० नगेन्द्र—'विचार और विवेचन' पृष्ठ ६०

लिखा जायगा, उस समय प्रेमचन्द के उपन्यासों से अधिक व्यवस्थित सामग्री अन्यत्र नहीं मिलेगी। और यदि इतिहासकार राजनीति से आतंकित होकर विवेक न खो बैठा तो वह उन्हें भी पट्टाभि के इतिहास और नेहरू और राजेन्द्र बाबू की जीवनियों से कम महत्व नहीं देगा।'[1]

गाँधीवाद में दृढ आस्था होने पर भी प्रेमचन्द ने तटस्थ राजनीतिक दृष्टि अपनाई और परिणाम स्वरूप उनके उपन्यासों में अन्य राजनीतिक विचार धारा का भी उसके सामयिक प्रभाव के अनुरूप क्षीण किन्तु स्पष्ट स्पर्श भी देखा जा सकता है। इन्हीं प्रभावों के कारण कतिपय आलोचक मानव मतवाद की पुष्टि हेतु वर्ग-चेतना के प्रभावों अश भी ढूढ लेते हैं। इससे इकार नहीं किया जा सकता कि प्रेमचन्द ने गाँधीवाद की जीवनदायिनी वर्षा के साथ समाजवादी बीर-बहूटियों से मानव जीवन की हरीतिमा में रग-वैविध्य उत्पन्न किया है। किन्तु इस हरीतिमा के लिए वर्षा ही अत्यावश्यक है यह वे नहीं भूले। इससे भी आगे उनका एक स्वतंत्र सामाजिक एवं राजनीति चितक का स्वरूप भी उभरता है। स्वराज्योपरात जिन परिस्थितियों की ओर जिनका विवरण पीछे दिया जा चुका है, उपन्यासकार ने जो संकेत किया था वह वर्तमान समय की कसौटी पर कितनी खरी उतर रही है, स्पष्ट है। अतएव हम कह सकते हैं कि प्रेमचन्द के भविष्य की पारदर्शी दृष्टि वादों से परे एक स्वतंत्र अस्तित्व भी रखती है।

उनके उपन्यास-साहित्य के अध्ययन से उनके विकासवादी समाजवाद की झलक मिलती है। वे कष्ट-सहिष्णुता, त्याग और अहिंसा द्वारा आध्यात्मिक दबाव वाली गाँधीवादी नीति के समर्थक हैं। वे क्रांति से डरते हैं क्योंकि उससे तानाशाही की सभावना रहती है। इन्द्रनाथ मदान को लिखे एक पत्र में उन्होंने इसका स्पष्ट संकेत दिया है—'हमारा उद्देश्य जनमत तैयार करना है इसलिए मैं सामाजिक विकास में विश्वास रखता हूँ। अच्छे तरीकों के असफल होने पर ही क्रांति होती है। मेरा आदर्श है, प्रत्येक को समान अवसर का प्राप्त होना। इस सोपान तक बिना विकास के कैसे पहुँचा जा सकता है, इसका निर्णय लोगों के आचरण पर निर्भर है। जब तक हम व्यक्तिगत रूप से उन्नत नहीं हैं तब तक कोई भी सामाजिक व्यवस्था आगे नहीं बढ सकती। क्रांति का परिणाम हमारे लिए क्या होगा यह सदेहास्पद है। हो सकता है कि वह सब प्रकार की व्यक्तिगत स्वाधीनता को छीन कर तानाशाही के घृणित रूप में हमारे सामने आ खड़ा हो। मैं शुद्धिकरण के के पक्ष में

---

१. डा० नगेन्द्र—'विचार और विवेचन,' पृष्ठ ६१

तो हूँ, उसे नष्ट करने के पक्ष मे नही। यदि मुझे यह विश्वास हो जाता और मैं जान लेता कि ध्वस से हमे स्वर्ग मिलेगा तो मैंने ध्वंस की भी चिन्ता नही की होती।'[1]

और उन्हें यह विश्वास कौन दिलाता अतः उन्होने सर्वहारा क्रांति का मार्ग न अपनाकर वैधानिक और शांति पूर्ण मार्ग को ही उचित समझा जो सामयिक राजनीतिक परिस्थितियों के अनुकूल था।

किसान समस्या को लेकर उन्होने शोषक और शोषितो का चित्रण किया। आक्रोश उत्पन्न करने वाली सामाजिक राजनीतिक असगतियो से परिचित कराया, विभिन्न राष्ट्रीय आंदोलनो के ध्येय को स्पष्ट किया और नई चेतना को भी स्वीकृति दी। उनका चित्रफलक इतना व्यापक है कि उसमे प्रत्येक प्रकार के दृष्टात मिल सकते हैं। इतना होने पर भी उनके राजनीतिक उपन्यास गाँधीवाद-सापेक्ष्य ही हैं और सामयिक जीवन के परिपार्श्व मे गाँधीय-सिद्धान्तो की सहानुभूतिक विवेचना ही उनका उद्देश्य है। गाँधीवाद की प्राण प्रतिष्ठा ही उनके उपन्यासो की विशिष्टता है जो हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासो मे आज भी अद्वितीय है।

समाजवादी चेतना

प्रेमचन्द्र का मूल्यांकन करते हुए डॉ॰ रामविलास शर्मा ने लिखा है—'उनका उद्देश्य सामयिकता व देशकाल की विशेषता से परे नहीं था, उनका साहित्य सामयिकता की सतह को छूने वाला साहित्य नही था, उसमे गहराई से डूबने वाला, देशकाल की विशेषताओ के परस्पर संबंध को चित्रित करने वाला साहित्य था।'[2]

स्वय प्रेमचन्द देशकाल की महत्ता से अपरिचित नही। वे मानते हैं कि 'साहित्यकार बहुधा अपने देशकाल से प्रभावित होता है। जब कोई लहर देश मे उठती है, तो सहित्यकार के लिए उससे अविचिलित रहना असभव हो जाता है। जीवन पर साहित्य से अधिक प्रकाश और कौन वस्तु डाल सकती है क्योकि अपने देशकाल का प्रतिबिब होता है।'[3]

देशकाल के अन्तर्गत ही समाजवादी चेतना का अकन प्रेमचन्द साहित्य मे मिलता है। उनका मत था—'कम्यूनिज्म चाहे फैले, चाहे न फैले परन्तु एक आदर्श समाज का आधार बदल गया है। दूसरी दुनिया के बारे मे भारतवर्ष जैसा रूढ़िवादी देश विचार मग्न रह सकता है लेकिन सारा ससार समाजवाद की और बढ रहा है। समाजवादी

१ सं॰ इन्द्रनाथ मदान—'प्रेमचन्द : चिन्तन और कला,' पृष्ठ २३१-३२

२ डॉ॰ रामविलास शर्मा—'प्रेमचन्द और उनका युग,' पृष्ठ १५२

३. प्रेमचन्द—'कुछ विचार,' पृष्ठ ७७

का नास्तिकतावाद और बिना जन्म और परम्परा का विचार किये सबको समान अवसर देना सच्चे धर्म के अधिक निकट है।'

रूस की क्रांति का सकेत 'प्रेमाश्रम' का एक कृषक पात्र देता है। स्वयं प्रेमचन्द रूस की इस समाजवादी व्यवस्था से प्रभावित थे—'यही शायद दुनियाँ का नियम हो गया है कि कमजोर को सहजोर चूसें। हाँ, रूस है जहाँ पर कि बड़ो को मार-मार कर दुरुस्त कर दिया गया, अब वहाँ गरीबो को आनद है। शायद यहाँ भी कुछ दिनों में रूस जैसा हो।'[1]

किन्तु 'गोदान' तक उनकी साम्यवादी आस्था उपन्यास मे प्रस्फुटित नही हुई। अपने युग की आर्थिक, राजनीतिक एव सामाजिक विषमताओ का चित्रण करने पर भी उसमे समाजवादी आग्रह नहीं है। यहाँ तक कि वे केवल भारतीय स्वाधीनता आंदोलनों के ही साथ थे। वे एक ऐसे आदर्श समाज की कल्पना अवश्य करते हैं जिसमें शोषित और शोषक का भेद न हो और मानव जीवन सुख और शांति पर आधारित हो। यह उनका मानववादी दृष्टिकोण था। जो व्यावहारिक रूप में जनवाद है। डॉ० नगेन्द्र का कथन है—'जनवाद के दो रूप हैं—एक दक्षिण पक्ष का जनवाद, जो जागरण-सुधार मूलक है, दूसरा वाम पक्ष का जनवाद, जो क्रांतिमूलक है। अपने युगधर्म के अनुकूल, युग-पुरुष गाँधी के प्रभाव मे, प्रेमचन्द ने जागरण-सुधार मूलक जनवाद को ही ग्रहण किया। गाँधीवाद के आध्यात्मिक पक्ष को वे नही अपना सके।'[2]

जागरण सुधार मूलक जनवाद के कारण उनकी दृष्टि आदर्शोन्मुख रही। किसानो और मजदूरो या दूसरे शब्दो मे शोषितो को अपने अधिकारो के लिए जागृत करने का जो प्रयास उन्होने किया वह गाँधीय सिद्धान्तो के अनुरूप तथा भावात्मक है। इसी कारण उनके उपन्यासों मे वर्ग-संघर्ष के रूप मे समाजवादी चेतना की स्थापना न हो सकी। उनके राजनीतिक उपन्यासो मे शोषितों की गाथा है और उसका प्रमुख पक्ष है आर्थिक समस्या किन्तु इतना होने पर भी उन्होंने उसका समाधान दे अर्थ वैषम्य को मार्क्सवादी सिद्धान्तानुसार सामाजिक जीवन की ग्रंथि नही बनने दिया। यही कारण है कि नई चेतना के प्रतिनिधि पात्र बलराज और गोबर शोषण का विरोध अपने वर्ग के आधार पर नहीं करते। जमींदारी प्रथा के खिलाफ होने पर भी वे जमीदारों के साथ सहानुभूति रखते हैं। उनकी सहानुभूति राजनीतिक नही वास्तविक है। 'पापी को उन्होंने क्षमा नही किया, शोषण के अपराधो की उन्होंने कही उपेक्षा नही की। उनके उपन्यास में दण्ड का निषेध नहीं है—उनमे एक ओर बहिष्कार से लेकर कारावास और मृत्यु तक

१ शिवरानी देवी—'प्रेमचन्द : घर मे,' पृष्ठ ६६

२ डॉ नगेन्द्र—'विचार और विवेचन' पृष्ठ ६६

और दूसरी ओर उपवास आदि से लेकर आत्मघात तक का दण्ड है।' वे भूमि और उद्योगों के राष्ट्रीयकरण की उपयुक्तता से अधिक महत्व विकासवादी मार्ग को देते थे। क्रांति का मार्ग उन्हें स्वीकार नहीं और अहिंसा ही उनका साध्य है। 'गोदान' और 'मंगल सूत्र' (अपूर्ण) में वे अवश्य कुछ विचलित हुए। कहा गया है कि 'मंगल सूत्र' में उनके भीतर का गाँधी या तो सो गया है, या उसकी मूर्ति अब उनके मंदिर में नहीं रह गई है। वे मानव के मन को दया धर्म सेवा नीति से जीत सकने को सम्भव नहीं मानते। गाँधी जी की तरह जिन्हें वे अब तक ट्रस्टी समझते रहे हैं आज उनसे लड़ने के लिए वे हथियार बाँधने का उपक्रम कर रहे हैं।'[1] प्रेमचन्द ने इस अपूर्ण उपन्यास के प्रारम्भिक पृष्ठों में समाजवादी दृष्टिकोण अवश्य दिया है किन्तु कौन कह सकता है, पूर्ण उपन्यास समग्र रूप में कौन सा प्रभाव निर्मित करता।

'मंगल-सूत्र' के रचनाकाल में समाजवादी विचारधारा जोर पकड़ रही थी और स्वयं कांग्रेस और उसके वरिष्ठ नेता उस पर गंभीरता से विचार कर रहे थे। पं० जवाहरलाल नेहरू ने सन् १९३४ में समाजवाद की सर्वसामान्य मूल कल्पना प्रस्तुत करते हुए कहा था कि "समाजवाद कई प्रकार का है। पर इसके सम्बन्ध में कुछ मूल-भूत मन्तव्यों पर सभी समाजवादी एकमत हैं। वे ये हैं—भूमि, खदानें और बड़े-बड़े कारखानों पर तथा उपार्जन और विभाजन के साधनों पर उदाहरणार्थ रेल, बैंक इत्यादि पर राज्य का नियन्त्रण स्थापित हो जाए। उद्देश्य यह है कि किसी व्यक्ति को ऐसा अवसर न दिया जाए कि वह उत्पादन और विभाजन के इन साधनों पर अधिकार करके दूसरे व्यक्तियों का शोषण कर सके, अथवा दूसरों की मेहनत की कमाई से स्वयं लाभान्वित होता रहे। लोकतन्त्र का अर्थ अधिकारों की समानता है। अधिकार मात्र एक वोट का ही नहीं, अपितु आर्थिक और सामाजिक समानता भी आवश्यक है।[2]

स्पष्ट है कि कांग्रेस का ध्येय लोकतन्त्र की स्थापना था और उसमें कल्पना सन्निहित थी लोकतंत्र की सफलता समाजवाद के बिना सम्भव नहीं। पण्डित नेहरू को इन्हीं दिनों काँग्रेसाध्यक्ष भी इसीलिए बनाया गया था क्योंकि वे 'गाँधीवाद और समाजवाद के मध्य सेतु' माने जाते थे। स्पष्टतः प्रेमचन्द में होने वाला यह परिवर्तन काँग्रेस में होने वाले परिवर्तन और समाजवाद के प्रति होने वाले आग्रह का ही द्योतक है न कि रूसी समाजवाद का। यदि ऐसा न होता तो वे 'गोदान' में (जो 'मंगल सूत्र' के कुछ माह पूर्व ही प्रकाशित हुआ था) मजदूरों की हड़ताल का चित्रण समाजवादी चेतनानुसार करते क्योंकि १९३५-३६ तक कानपुर, अहमदाबाद और बंबई में मजदूरों की बड़ी-बड़ी हड़तालें

१. राजेश्वर गुरु—'प्रेमचन्द : एक अध्ययन' पृष्ठ २४६
२ 'आजकल' (मासिक) वर्ष १६, अंक १२, पूर्णांक २३७, पृष्ठ ५

हो चुकी थी। स्पष्ट है कि प्रेमचन्द को कांग्रेस के सिद्धान्तों पर आस्था थी और समाजवाद की ओर वे भी उसी समय उन्मुख हुए जब कांग्रेस का रुख उस ओर हुआ। 'गोदान' और 'मंगलसूत्र' इसी काल की रचनायें हैं। यदि यह मान लिया जाए कि 'मंगलसूत्र, मे प्रेमचन्द अपनी ही जीवन-गाथा कहने जा रहे थे तो यह भी माना जाना चाहिए कि वह कांग्रेस और गाँधीवाद की सफलता और असफलताओं का राजनीतिक इतिहास होता। गाँधीवाद और समाजवाद की व्याख्या का वह कलात्मक संगम होता। किन्तु अपूर्ण उपन्यास के संभावित भावी रूप की चर्चा उपयुक्त नहीं। चार परिच्छेदों के इस अपूर्ण उपन्यास से केवल यह तथ्य मिलता है कि आदर्शवाद से हटकर वे सामाजिक यथार्थवाद की ओर झुक रहे थे और इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि 'दरिन्दों के बीच में, उनसे लड़ने के लिए हथियार बांधना पड़ेगा। उनके पंजों का शिकार बनना देवतापन नहीं, जड़ता है।'[1]

जासूसी उपन्यासों में राजनीतिक तत्व

दुर्गाप्रसाद खत्री के 'रक्त मन्डल' व सफेद शैतान'

प्रेमचन्द युगीन उपन्यास साहित्य में राजनीतिक संसर्श प्रेमचन्द के उपन्यासों के अतिरिक्त दुर्गाप्रसाद खत्री के 'रक्त मंडल' और 'सफेद शैतान' मे भी देखा जा सकता है। प्रेमचन्द गाँधीवाद के समर्थक थे और उनके उपन्यास वाद-सापेक्ष्य कहे जा सकते हैं। गाँधीवाद के सिवाय उन दिनों आतंकवादी प्रवृत्ति भी उत्कर्ष पर थी। यह गाँधीवाद की अहिंसक क्रांति के विरोध में हिंसात्मक कार्य-पद्धति पर आस्थावान थी। खत्री जी के 'रक्त मंडल' (चार-भाग) व 'सफेद शैतान' (चार भाग) में आतंकवादी गतिविधियों का संकेतात्मक स्वरूप प्रकट हुआ। 'रक्तमंडल' का प्रथम भाग सन् १९२८ में तथा चतुर्थ भाग सन् १९३० में प्रकाशित हुआ था। 'रक्तमंडल' के उपरांत सन् १९३४ मे 'सफेद शैतान' का प्रथम भाग और १९३७ में अंतिम याने चतुर्थ भाग निकला। इस प्रकार प्रेमचन्द के 'प्रेमाश्रम', 'रंगभूमि', 'कायाकल्प', 'गबन,' 'कर्मभूमि' और 'गोदान' के रचनाकाल मे इन उपन्यासों का प्रकाशन गाँधीवाद के प्रतिक्रिया स्वरूप भी माना जा सकता है।

औपन्यासिक दृष्टि से दुर्गाप्रसाद खत्री के ये उपन्यास देवकीनन्दन खत्री (पिता) के तिलस्मी उपन्यासों की श्रेणी में होते हुए भी साम्राज्य विरोधी भावना के कारण उनसे कुछ अलग भी हैं। शिल्प की दृष्टि से भी इनमें जो एक अन्तर स्पष्ट है वह है कथा

१ प्रेमचन्द स्मृति—'मंगल सूत्र', पृष्ठ २६३

का आगे की ओर गतिशील होना। गुलाबराय ने तिलस्मी और जासूसी उपन्यासो का मूल्यांकन करते हुए जो भेद बताया है उसके अनुसार तिलस्मी उपन्यासो मे घटना का क्रम आगे की ओर बढता है, पर जासूसी उपन्यासो मे पीछे की ओर आता है।

दुर्गाप्रसाद ने अनेक उपन्यास लिखे हैं जिनमे लाल पजा, प्रतिशोध रक्तमडल और सफेद शैतान एक ही शृंखला की कडी हैं और इनके प्रमुख पात्रो को हम एक के बाद दूसरे उपन्यास में अपने कार्यक्षेत्र का विस्तार करते हुए देख सकते हैं।

इन साम्राज्य विरोधी उपन्यासो मे पात्रो की दो विशिष्ट श्रेणियाँ हैं—एक श्रेणी मे लुटेरे, बलवाई, विद्रोही और क्रातिकारी हैं। भारत को ही नही अपितु सम्पूर्ण एशिया को साम्राज्यवादी पंजे से छुडाने के लिए प्रयत्नशील हैं। दूसरी ओर साम्राज्य वादी पोषक पात्रो के रूप मे गोरे अफसर, रजवाडे, रायबहादुर, खान बहादुर और नौकरशाही के प्रतिनिधिक पात्र हैं। इन दोनो शक्तियो का सघर्ष ही प्रस्तुत उपन्यासो का प्रतिपाद्य है। 'लालपजा' और 'प्रतिशोध' मे इस सघर्ष का प्रारम्भिक रूप दिखाई पड़ता है। पात्र आतकवादी हैं और किसी भी प्रकार का अपमान उन्हें सह्य नही। 'अदालत! अदालत! क्या मैं अदालत जाऊँ? हम लोग बेइज्जती का बदला अदालतो द्वारा नही लेते, बल्कि इससे लेते हैं! कहते हुए उन्होंने एक तमचा निकाल कर सामने के टेबुल पर रख दिया। दूसरे व्यक्ति ने एक क्षण तक साहब के लाल चेहरे को देखा और तब चुपचाप अपना पिस्तौल उनके तमचे के बगल म रख दिया।" यह एक प्रसग है 'लाल पजा' का, जो पात्रो के दृढ निश्चय और निर्भीकता का परिचय देता है।

'लाल पजा' मे नवयुवको के दल द्वारा सगठित रूप से आजादी के प्रयासो पर गदरपार्टी, रिपब्लिकन आर्मी और रिवोल्यूशनरी पार्टी के सिद्धाता का ही अस्पष्ट प्रभाव है। स्वय खत्री जी का कथन है–' येन केन प्रकारेण द्रव्य प्राप्त करना और उसे अस्त्र-शस्त्र की प्राप्ति मे लगाना इसी का कुछ वर्णन इस पुस्तक मे हैं। रोचकता के ख्याल से कुछ औपन्यासिक पुट दे दिया गया है परन्तु लक्ष्य वही है। प्राप्त द्रव्य की सहायता से नवयुवकों का एक दल दुर्गम स्थानो मे अपना जीवन बिताता है, और अस्त्र-शस्त्र बनाकर आजादी के शत्रुओ को मार भगाता और देश को स्वतन्त्र करता है।"[1]

वस्तुत यही पात्र आगे चलकर 'रक्तमडल' मे अधिक उभरते हैं। वे जनता की अपेक्षा वैज्ञानिक शक्ति पर अधिक विश्वास करते हैं और शस्त्रो के बल पर अग्रेजी साम्राज्यवाद को पलटने की योजना बनाते हैं। उनका कथन है–"विज्ञान के सहारे अग्रेजो ने भारत को गुलाम बनाया और विज्ञान के सहारे उन्हें पराजित किया जा

१. हिन्दी प्रचारक, माह अक्टूबर-नवम्बर ६०, पृष्ठ १०

सकता है।" आतंकवादी भी अस्त्र-शस्त्र-बम, पिस्तौल की शक्ति के सहारे आतंक की सृष्टि करते थे। खत्री जी के पात्र उनसे भी दो कदम आगे हैं। वे मृत्युकिरण, अलोपी वायुयान, एटमी बन्दूक और विषैली गैस का उपयोग करते हैं, जिससे जनता में संचार हो। आतंकवादियों द्वारा जो छुटपुट हमले या हत्याएँ होती थीं वे व्यक्तिवादी प्रयासों तक सीमित थीं और जन-साधारण इस तथ्य से परिचित था कि इक्के-दुक्के लोगों की मृत्यु से राष्ट्र स्वाधीन नहीं हो सकता। सम्भवतः यही कारण है कि खत्री जी ने ऐसे वैज्ञानिक अस्त्र-शस्त्रों की कल्पना की जो सामूहिक संहार कर सकें।

'रक्तमंडल' के रचनाकाल के रजवाड़ों की समस्या प्रमुख थी और स्वयं प्रेमचन्द ने इसका चित्रण अपने उपन्यासों में किया है। "रक्त मंडल" में भी इस समस्या का संकेत मिलता है। रक्तमंडल के सदस्यों की भावना है कि यदि देशी रियासतें हिम्मत से काम लें और सहयोग दें तो अंग्रेज साम्राज्यवाद को देश से बाहर निकालने में देर न लगे। लेकिन देशी रजवाड़े तो साम्राज्यवाद के पोषक हैं और ऐसा कुछ नहीं करना चाहते जिसके कारण उन पर किसी प्रकार की आँच आए। इनकी सेवा भक्ति देखिए—रियासत में लाट साहब का आगमन होने वाला है। उनके लिए विलायती ढङ्ग का स्नानागार और शौचालय बनवाने पर जी खोल कर व्यय होता है। लाट साहब के स्वागत में सारा नगर सजाया जाता है, महफिलों का आयोजन होता है। 'रक्तमंडल' को यह सह्य नहीं वह नवाब साहब को परवाना भेजता है—"मुल्क की गुलामी के इन दिनों में भी बीती हुई इज्जत की कुछ याद दिलाने वाली यहाँ की कुछ रियासतें हैं। वे भी जब बेहयाई का बुरका पहनकर ठोकर मारने वाले जूतों को सिर पर रखती हैं और जिसकी बदौलत गले का तौक गले में पड़ा, उन्हीं की इज्जत करते हैं तो कलेजों पर साँप लोट जाता है।"

'रक्त मंडल' में देशी रजवाड़ों का यही प्रतिक्रियावादी रूप उभर कर सामने आता है।

सरकार-परस्त व्यक्तित्व

सरकार परस्त पात्र के रूप में गोपालशंकर की अवतारणा की गई है। राय बहादुर और खानबहादुर जैसे पदवीधारी पात्र भी इसी श्रेणी के हैं। आतंकवादी गतिविधियों की आलोचना एक सामान्य बात थी। स्वयं गाँधी जी और उनके नेतृत्व में कार्य कर रही कांग्रेस आतंकवादियों के खिलाफ थी। किन्तु क्रांतिकारी अपने मार्ग को उचित मानते थे। गोपालशंकर 'रक्तमंडल' के कार्यों का विरोधी है। 'रक्तमंडल' उसे संदेश भेजता है—"हम तुम्हें बहुत दिनों से जानते हैं। वरन्—केवल सरकार की मदद

करते रहने पर भी हम लोगों ने तुम्हें कुछ नहीं कहा, क्योंकि हम लोग जानते हैं कि तुम बड़े भारी विद्वान हो और मुल्क तुम्हें इज्जत की निगाह से देखता है।

तुम्हें यकीन हो चाहे न हो, पर हम लोग ठीक कहते हैं कि जो हम काम कर रहे हैं, वह अपने देश के फायदे के लिए ही कर रहे हैं। हमारे काम में रुकावट डालने वाला चाहे कितना ही विद्वान क्यों न हो, पर देश का दुश्मन ही कहलायेगा और उसे इस दुनिया से उठा देना ही मुनासिब होगा।

पर साम्राज्यवादी शक्तियां प्रबल हैं और गोपालशंकर की पीठ पर उनका हाथ है जिससे 'रत्नमंडल' के पांव उखड़ जाते हैं और उसके सदस्य स्याम में शरण लेते हैं।

सदस्यों का स्याम में जाकर शरण लेना साहेश्य है और एशिया में साम्राज्यवादियों के विस्तार का दिग्दर्शन कराता है। स्याम में रत्नमंडल का नामकरण होना है 'त्रिकंटक' और ध्येय रहता है पूर्व को पश्चिम के साम्राज्यवादी पंजों से मुक्ति दिलाना। वस्तुतः यह विकसित अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का ही परिणाम है। रूस के उदाहरण ने विश्व की आंखें खोल दी थीं और साम्राज्यवाद का अन्तर्राष्ट्रीय विरोध होने लगा था। 'त्रिकंटक' भी इसी भावना का प्रतीक है। उसके ध्वज पर अंकित है—'एशिया के हाथ अलग रखो।'

स्याम में फ्रांसीसी उपनिवेशवादियों का प्रभुत्व है। एशिया में उपनिवेशवादियों का नेतृत्व करता है ब्रिटिश साम्राज्य और त्रिकंटक को नष्ट करने की जिम्मेदारी भी वही लेता है। भारत के लाट गोपालशंकर को बुलाते हैं और त्रिकंटक के दमन का भार सौंपते हैं। 'सन्देह शैतान' का रचनाकाल १९३४-३७ है और यह युग था जब आतंकवादी गतिविधियां प्रायः समाप्त हो गई थीं। कांग्रेस वैधानिक रूप से आन्दोलन कर रही थी किन्तु जनता के दुःख दूर नहीं हो रहे थे। अत्याचारों का ताना पूर्ववत् बना हुआ था। गोपालशंकर लाट साहब से कहता है—'उस समय आप लोगों की मदद करके मैंने भीषण भूल की। नहीं तो मेरे मन में उस समय तक, और ईश्वर जानता है कि मैं सत्य कहता हूँ, यह विश्वास था कि अंग्रेजों का हमारे देश में आना हमारे जगत के और समय के कल्याण का कारण हुआ है। मगर आज मेरी विचार धारा बदल गई है और मैं सोचने लगा हूँ कि यह सब मत आपका नहीं जमाने का है और यहां मेरे मुल्क में जो कोई भी होता हिन्दू, मुसलमान या ईसाई वही जमाने की चपेट में पड़कर वैसी ही उन्नति करता जो आप लोगों ने यहां आकर इस देश में की। माफ कीजियेगा, उस समय के और आज के मेरे दृष्टिकोण में अन्तर पड़ गया है और अभी हाल ही में जो शासन प्रणाली के परिवर्तन आपने किए हैं उनको और देखना हुआ मैं सोचने लगा हूँ कि क्या मैंने 'भयानक बाग' (रत्नमंडल के मुखिया) का विरोध

कर गलती तो नही की ? अगर आपने अद्भुत अस्त्र शस्त्रो की मदद से निकटक एशिया को स्वतन्त्र करते है तो मुझे उनके मार्ग मे बाधक होने का कोई कारण नही है, लेकिन अगर वे अत्याचार करेंगे, उसकी मदद से खुद अपना राज्य कायम करने की चेष्टा करेंगे तो आप विश्वास रखें, माई लार्ड, कि मेरे यन्त्र, मेरी बुद्धि, मेरा शरीर आगे बढेगा और उनके मार्ग का बाधक होगा।''

स्याम जाकर गोपालशकर उपनिवेशवादियो की बर्बरता को देखते है और उनका भ्रम दूर हो जाता है– ''अभी तक मैं समझता था कि काली, भूरी और पीली जातियो पर सफेद जाति का प्रभुत्व होना प्रकृति की दया है, इससे वे उन्नत होगी और अपनी दशा सुधारेंगी, पर आज मैं समझ गया हूँ कि परमात्मा का शाप उन पर पडा है ..मैं जान गया हूं कि क्रूरता और बर्बरता मे आप लोग नादिरशाह और चगेज से कहीं बढ़ कर है। ये लोग तो केवल शरीर के आभूषण और पीठ के कपडे उतार लिया करते थे, पर आप लोग तो शरीरो का रक्त तक खीच लेते हैं।''

खत्री जी के इन जासूसी उपन्यासो मे राजनीति का हृदय स्पन्दित है। राजनीतिक उपन्यासो के तत्वो के अभाव के उपरात भी पात्रो की राष्ट्रीय भावना ऐसी है जिसे आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दो मे, साहित्यिक या राजनीतिक लकलका कहकर नजर अन्दाज नहीं किया जा सकता 'जो पाठक को बेहोश तथा अभिभूत कर देता है।' नागर जी के मत से सहमत होते हुए हम भी यह कहना चाहेंगे कि ''जासूसी उपन्यासो की इस बाढ मे 'रक्तमडल' और 'सफेद शैतान' जैसे उपन्यासों की दूसरी कडी नहीं मिलती। इन दोनो उपन्यासो मे उभरकर आनेवाली साम्राज्यवादी विरोधी भावना, उपनिवेशी उत्पीडन और अनाचार से ग्रस्त अपने देश की और समूचे एशिया की जनता के प्रति सहानुभूति, इन उपन्यासो को एक ऐसी विशिष्टता प्रदान कर देती है जो अन्य उपन्यासो मे नही मिलती।''[1]

'रक्त मडल' के साम्राज्यवाद विरोधी तीव्र अभिव्यक्ति के कारण ही उसे ब्रिटिश सरकार द्वारा जब्त कर लिया गया था।

• • •

---

१ आलोचना, वर्ष ४, अंक १, पृष्ठ २००

अध्याय ५

प्राक् स्वाधीनता युग के राजनीतिक उपन्यास

> राजनीतिक स्थिति—समाजवादी चेतना का विस्तार, कांग्रेस की स्थिति, द्वितीय महायुद्ध की प्रतिक्रिया, बयालीस की क्रांति, दिल्ली चलो, बंगाल का अकाल, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक स्थिति, नाविक विद्रोह, अन्तरिम सरकार, स्वतंत्रता-प्राप्ति एवं देश-विभाजन।

> राजनीतिक उपन्यासकार एवं राजनीतिक उपन्यास

> उपन्यासकार यशपाल—व्यक्तित्व, राजनीतिक एवं साहित्यिक मान्यताएं

> यशपाल के राजनीतिक उपन्यास—

* दादा कामरेड
* देश द्रोही
* पार्टी कामरेड
* मनुष्य के रूप
* झूठा सच

> 'अंचल' के राजनीतिक उपन्यास—

* चढ़ती धूप
* नई इमारत
* उल्का

> रांगेय राघव के उपन्यासों मे राजनीतिक तत्व—

* विषाद मठ
* हुजूर
* सीधा सादा रास्ता

प्रेमचन्द जी की मृत्यु के उपरान्त भारतीय राजनीति में द्रुतगति से परिवर्तन हुए। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक विचारधाराओं का भी सम्यक विवेचन किया जाने लगा। कांग्रेस के लखनऊ अधिवेशन में जवाहरलाल जी नेहरू ने अपने भाषण में कहा था "दुनियां में दो प्रतिस्पर्धी राजनीतिक और आर्थिक ढांचे तैयार है, ये दोनों व्यवस्थाएँ इस समय एक दूसरे के प्रति सहनशील है, पर उनमें मौलिक विरोध है और वे दुनिया पर आधिपत्य जमाने के लिए लड रही है। एक व्यवस्था पूँजीवाद की है जो अनिवार्य रूप से उपनिवेशीकरण द्वारा साम्राज्यशाही शक्तियों को जन्म देती है, ये साम्राज्यवादी शक्तियाँ एक दूसरे को हड़प लेने को उतावली रहती है, दूसरी व्यवस्था सोवियत यूनियन के नये समाजवाद की है जो दिनोदिन उन्नति कर रहा है - यद्यपि बहुधा इसके लिए बडी कीमत चुकानी पडती है, यहाँ पूँजीवाद को समस्याएँ नहीं है।"

यहाँ यह स्मरणीय है कि प्रेमचन्द जी का झुकाव भी साम्राज्यवादी उपनिवेशवाद और पूँजीवाद के विरुद्ध और समाजवाद के पक्ष में था और जिसकी स्पष्ट झलक उनके अंतिम अपूर्ण उपन्यास 'मगल सूत्र' में दिखलायी पडती है।

समाजवाद के प्रति उन्मुख होने पर भी आलोच्यावधि में इस दिशा में ऐसा कुछ नहीं हुआ जिसे महत्वपूर्ण उपलब्धि माना जा सके। सन् १९३०–३४ के सविनय अवज्ञा आन्दोलनों में गांधी जी के सिद्धान्तों के मत-वैभिन्य होने पर कांग्रेस के एक पक्ष ने रचनात्मक कार्यों के स्थान पर किसान-मजदूर सगठन की आवश्यकता पर बल दिया जिससे अंग्रेजी साम्राज्यवाद के विरुद्ध सघर्ष किया जा सके।

समाजवादी विचारधारा को परिपुष्ट करने की दृष्टि से सन् १९३१ में कांग्रेस के अन्दर ही समाजवादी पार्टी की स्थापना की गई थी। समाजवादी दल ने अपना जो कार्यक्रम स्वीकार किया उसमें ४ मुद्दे प्रमुख थे—

(१) मजदूरों और किसानों को स्वतन्त्रता और समाजवाद की प्राप्ति के लिए शक्तिशाली रूप से सगठित कर जन-आन्दोलन को गतिशील बनाना।

(२) समस्त साम्राज्यवादी युद्धों का विरोध करना।

(३) वैधानिक प्रश्नों पर अंग्रेजी सरकार से कोई समझौता वार्ता न करना, और

(४) सत्ता प्राप्ति के बाद भारत का विधान बनाने के लिए संविधान सभा गठित करना।

कांग्रेस के वाम पक्ष का झुकाव मार्क्सवाद की तरफ होने से समाजवादी विचार धारा को गति मिली। अनेक महत्वपूर्ण नेताओं का समर्थन भी उसे प्राप्त हुआ।

इतना होने पर भी मार्क्सवाद की जड़ें गहरी न जा सकीं क्योंकि जनता का व्यापक सहयोग उसे प्राप्त न हो सका।

सन् १९३३-३४ में बिखरे हुए कम्युनिस्टों का संगठनात्मक एका होने पर उस कार्य को आगे बढ़ाने का अवसर आया द्वितीय महायुद्ध के समय प्रमुख कम्युनिस्टों को जेल में डाल दिया गया। किन्तु जून में जर्मनी के रूस पर हमला और रूस के मित्र राष्ट्रों के साथ सम्मिलित होने से युद्ध के प्रति कम्युनिस्टों का रुख बदल गया। उन्होंने युद्ध को 'लोकयुद्ध' कहा और सहयोग देने की इच्छा व्यक्त की। ऐसी स्थिति में अधिकांश कम्युनिस्ट बन्दी छोड़ दिए गये।

कांग्रेस की स्थिति

विभिन्न राजनीतिक विचारधाराओं के बावजूद भी जनता की आस्था कांग्रेस और उसके सिद्धान्तों के ऊपर थी। भारतीय राजनीतिक मुक्ति के लिए कांग्रेस अपने सिद्धान्तों पर अडिग थी किन्तु उसके साथ वह अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति को भी अपनी दृष्टि से ओझल नहीं होने देती थी। समाज वादी विचारधारा के बढ़ते हुए स्वरूप को देखते हुए जवाहरलाल जी नेहरू को कांग्रेस का अध्यक्ष चुना गया क्योंकि 'वह पुराने और नये में एक जोड़ने वाली कड़ी थे। वह गांधीवाद और साम्यवाद के बीच एक सेतु की तरह थे।'[1] राष्ट्र में समाजवादी चेतना को देखकर ही कांग्रेस ने समाजवादी कार्यक्रम हाथ में लिया। कांग्रेस के अध्यक्ष के साम्यवादी दृष्टिकोण की प्रबलता का आभास इसी से किया जा सकता है कि 'उनका तिलक भाषण में पूरा साम्यवाद का पक्ष था।'[2]

कांग्रेस ने प्रान्तीय धारा सभाओं के चुनाव के लिए एक चुनाव घोषणा पत्र तैयार किया। आचार्य कृपलानी ने जो मजदूर कमेटी के मंत्री थे, अपना कार्यक्रम बनाया और मजदूर यूनियनों के संगठनों और औद्योगिक समस्याओं के सम्बन्ध में सूचना एकत्र की। ये घटनाएँ इस तथ्य की परिचायक है कि कांग्रेस भी कुछ अंशों में समाजवाद से प्रभावित हो गई थी।

कांग्रेस की नीति में समाजवादी चिन्तन का प्रवेश अन्तर्राष्ट्रीय समाजवादी हलचल का परिणाम मानना चाहिए। सन् १९३६ में सोवियत रूस के नये विधान को स्वीकृति देने के लिए कांग्रेस में २०४० प्रतिनिधि एकत्र हुए थे। डॉ० पट्टाभि सीता

१ डॉ० पट्टाभि सीतारमैय्या — 'कांग्रेस का इतिहास,' पृष्ठ २६३
२ डॉ० पट्टाभि सीतारमैय्या — 'स० कांग्रेस का इतिहास,' पृष्ठ २६४

रमैय्या ने इसे बहुमुखी राष्ट्रीय उन्नति की अभिव्यक्ति निरूपित किया है। उनके शब्दों में 'पिछले बारह बरसों में जो आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक उन्नति हुई थी, उसकी यह अभिव्यक्ति थी। जरा सी देर में एक विशुद्ध खेतिहर देश, संसार की अभ्युन्नत शक्तियों में गिना जाने लगा था और वहीं खेती के साथ उद्योगों का भी समान रूप से विकास हो गया था।' सोवियत रूस की सफलता से एक तरफ मजदूरों और किसानों के अधिकारों पर जोर दिया जाने लगा, दूसरी तरफ फासिस्टवाद और साम्राज्यवाद का विरोध किया जाने लगा।

फैजपुर अधिवेशन (१९३७) में कांग्रेस ने विश्वयुद्ध होने पर ब्रिटिश साम्राज्यवाद को युद्ध सम्बन्धी सहायता न देने तथा सीमा से लगे राष्ट्रों से मैत्री सम्बन्धी प्रस्ताव पारित किया था। फैजपुर अधिवेशन के बाद ही चुनाव हुए और मद्रास, संयुक्त प्रान्त, मध्यप्रांत, बिहार और उड़ीसा में कांग्रेस का बहुमत रहा और पंजाब और सिंध में वह अल्प संख्यक थी। बंगाल, बम्बई, आसाम और सीमाप्रान्त में कांग्रेस सब से बड़ी पार्टी थी।

चुनाव के उपरांत मंत्रिमंडल बने और राष्ट्रीय जीवन में एक नई प्रक्रिया प्रारम्भ हुई।

कांग्रेस मंत्रिमंडल स्थापित होने पर किसानों और मजदूरों की स्थिति में कोई अन्तर नहीं आया और किसानों ने अपना संगठन कायम किया। इस बार उन्होंने हंसिया-हथौड़ा वाला लाल रंग का सोवियत झंडा अपनाया और किसानों और कम्युनिस्टों में यह झंडा अधिकाधिक चल पड़ा और पं० जवाहर लाल नेहरू के लगातार कहने सुनने पर भी स्थिति में सुधार नहीं हुआ।'[1] कुछ प्रान्तों में समाजवादियों ने कम्युनिस्टों का साथ देना शुरू कर दिया और कुछ में वे राष्ट्रवादियों में मिल गये। हिंसा और अहिंसा के बीच पुनः संघर्ष उठ खड़ा हुआ। जनता में मंत्रिमंडलों के प्रति गहरा असंतोष व्याप्त हो गया। और 'जनता आश्चर्य से पूछने लगी कि यह जमींदार किस तरह अब भी कायम है, पुलिस के जुल्म क्यों बदस्तूर जारी हैं, किसानों के कष्ट और दुःख अब भी क्यों दूर नहीं हो पाते, हिंसा के अभियोगों में दण्डित लोग अब भी क्यों जेलों में सड़ रहे हैं?'

सत्ता पाकर कांग्रेस के कार्यकर्त्ताओं का भी नैतिक पतन होने लगा था। स्वयं कांग्रेस महासमिति ने एक प्रस्ताव में कहा . 'नागरिक स्वतन्त्रता के नाम पर लोग— कुछ कांग्रेसजन भी—कत्ल, आगजनी लूटपाट और हिंसात्मक वर्गयुद्ध का प्रचार करते

१ डॉ० पट्टाभि सीतारमैय्या—'कांग्रेस का इतिहास,' पृष्ठ ३१८

पाये गये हैं, बहुत से अखबार झूठ और हिंसा का प्रचार कर रहे है, हिंसा के लिए उभार रहे है और प्रत्यक्ष झूठ को चला रहे हैं।'

इन्ही तथा अन्य कारणो से काग्रेस मे आपसी मतभेद होने लगा और सुभाष-चन्द्र बोस ने मतभेदो के कारण सन् १९३८ मे काग्रेस मे एक अग्रगामी दल (फारवर्ड ब्लाक) की स्थापना की। दल का कार्यक्रम त्रिसूत्री था—वामपक्षीय सदस्यो का सगठन, काग्रेस के बहुमत का समर्थन प्राप्त करना और आजादी के लिए राष्ट्रीय आन्दोलन का प्रारम्भ। इसने पूर्ण राजनीतिक स्वतन्त्रता व स्वतन्त्र सोशिलिस्ट सरकार की स्थापना का लक्ष्य स्वीकार किया और ब्रिटिश भारत और देशी रियासतो मे एक साथ साम्राज्य विरोधी आन्दोलन की तैयारी का नारा दिया।

द्वितीय महायुद्ध को प्रतिक्रिया

काग्रेस के आपसी मतभेद जिन दिनो चरम सीमा पर पहुँच रहे थे सन् १९३९ मे द्वितीय महायुद्ध का सूत्रपात हुआ जिससे भारतीय राजनीति मे आमूल परिवर्तन आ गया। द्वितीय महायुद्ध के प्रारम्भ होते ही वायसराय ने बिना किसी से सलाह लिये इस युद्ध मे भारत के शामिल होने की घोषणा कर दी। काग्रेस ने इसका विरोध किया और दिसम्बर १९३९ तक काग्रेस मत्रिमडलो ने इस्तीफा दे दिया।

रामगढ अधिवेशन (१९४०) मे मौलाना अबुलकलाम आजाद ने घोषणा करते हुए कहा, 'भारत नात्सीवाद या फासिस्टवाद का भविष्य सहन नही कर सकता पर ब्रिटिश साम्राज्यवाद से वह और भी ऊब चुका है। यदि भारत को स्वतन्त्रता का अपना अधिकार नहीं मिलता तो इसका अर्थ यही होगा कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद अपनी तमाम परम्पराओ और विशेषताओ के साथ पनप रहा है। और ऐसी हालत मे भारत इसकी विजय मे मदद करने के लिए किसी भी तरह तैयार न होगा।'

काग्रेस ने सविनय अवज्ञा का कदम उठाने का निश्चय किया और गाँधी जी इसके सेनापति बनाये गये।

गाँधी जी ने वायसराय से चर्चा कर कहा कि 'अगर हम सरकार से ऐसी घोषणा प्राप्त कर सकें कि काग्रेस युद्ध विरोधी तथा युद्ध की सरकारी तैयारियो से असहयोग का प्रचार कर सकेगी तो हम सविनय अवज्ञा आन्दोलन नही करेंगे।' वायसराय गाँधी जी के इस विकल्प को इसलिए स्वीकार नही कर सका क्योकि इससे युद्ध प्रयत्नो मे शिथिलता आती। दूसरे युद्ध सहायक विरोधी गतिविधियो के लिए सुभाष चन्द्र बोस को पहले ही सरकार ने गिरफ्तार कर लिया था।

भारत रक्षा कानून के नाम पर सरकार ने काग्रेस का दमन करना प्रारम्भ कर

दिया, यद्यपि उस समय तक सत्याग्रह प्रारम्भ न हो सका था। दो हजार व्यक्ति पकड़े गये और जनता के नागरिक अधिकारों पर आघात किया गया। सरकार की दमन-नीति को देखकर १७ अक्टूबर १९४० को युद्ध विरोधी आन्दोलन प्रारम्भ किया गया। विनोबा जी ने युद्ध विरोधी भाषण से इसका श्रीगणेश किया।

कांग्रेस के सविनय अवज्ञा आन्दोलन के फलस्वरूप अपनी कौंसिल में सदस्य संख्या में वृद्धि कर सात नरम दलीय भारतीय शामिल कर लिये। युद्ध सलाहकार कौंसिल की रचना भी हुई और सरकार ने अपना रूप बदला।

जापान के युद्ध में शामिल हो जाने के कारण एक नई स्थिति उत्पन्न हुई। जापान ने अंग्रेज सेना के मुख्य सेनापति कर्नल हण्ट को आत्म समर्पण के लिए विवश कर दिया और उसने १५ फरवरी १९४२ को सेना के ७० हजार सिपाहियों को हथियार रख देने की आज्ञा दी। इसमें ४० हजार हिन्दुस्तानी सिपाही थे जिन्हें जापानी सेनापति कर्नल फूजीवारा ने कैप्टन मोहनसिंह की कमान में इस देश की आजादी के युद्ध के लिए सौंप दिये। कुछ समय बाद मोहनसिंह से मतभेद होने पर जापानियों ने उन्हें गुप्त रूप से गायब कर दिया और राष्ट्रीय सेना को तोड़ देना पड़ा।

भारत में एक नई जागृति फैलने लगी। मार्च १९४२ में ब्रिटिश युद्ध मन्त्रिमंडल के सदस्य स्टैफर्ड क्रिप्स राजनीतिक गत्यावरोध दूर करने के लिये एक सुझाव लेकर भारत आये। सुझाव की भूमिका में कहा गया है 'ध्येय यह है कि नये भारतीय यूनियन का ऐसा डोमिनियन स्थापित किया जाय जो ब्रिटिश ताज के प्रति निष्ठा द्वारा ब्रिटेन व दूसरे राष्ट्र मण्डलीय राष्ट्रों से सबद्ध रहे लेकिन हर अर्थ में उनके समान और बराबर हो—आन्तरिक या परराष्ट्र सम्बन्धी किसी मामले में किसी के आधीन न हो।'

क्रिप्स ने प्रस्ताव पर विभिन्न राजनीतिक दलों के नेताओं से चर्चा की। कांग्रेस का मत था, 'यह एक ऐसी हुण्डी है जो भविष्य में ही भुन सकती है, चाहे इसे स्वीकार करो चाहे न करो।' क्रिप्स की यह समझौता-यात्रा असफल रही और इसने गहरी निराशा फैली।

गाँधी जी ने अप्रैल १९४२ को कांग्रेस महासमिति और कार्य समिति को सुझाव दिया कि—'क्रिप्स प्रस्ताव ने साम्राज्यवाद का नग्न रूप सामने रख दिया है, ब्रिटेन भारत की रक्षा में असमर्थ है, भारतीय और ब्रिटिश हितों में विरोधाभास है, जापान भारत से नहीं ब्रिटिश साम्राज्य से युद्ध कर रहा है, युद्ध में भारत का शामिल होना बिल्कुल रूप से ब्रिटिश निर्णय है और अंग्रेजों को भारत छोड़ देना चाहिए, ताकि भारतवासी देश की रक्षा कर सकें। भारत की जापान या अन्य देशों से कोई दुश्मनी नहीं है किन्तु जापान यदि भारत पर हमला करता है तो उसे अहिंसात्मक असहयोग

का सामना करना पड़ेगा।' मनेप म गाँधी जी का कथन था कि ब्रिटेन मित्रभाव और शान्तिपूर्ण ढग स भारत छोड दे।

बयालीस की क्रांति

इसी आधार पर गाँधी जी ने १९४२ के आन्दोलन का सगठन किया और बम्बई म महासमिति के ऐतिहासिक अधिवेशन म कहा— मैं फौरन आजादी चाहता हू आज रात का ही, कल सवेरे स पहले आजादी चाहता हू—अगर वह प्राप्त हो सके। अब आजादी साम्प्रदायिक एकता की प्रतीक्षा नहीं कर सकती। यदि वह एकता अभी प्राप्त हुई तो उसके लिए अब जितनी कुरबानी करना पडेगी, पहले उसस कम म काम चल जाता। पर काग्रेस को आजादी हासिल करनी है या उसे हासिल करने की कोशिश म मिट जाना है। और यह भी न भूलो कि जिस आजादी को पाने के लिए काग्रेस जूझ रही है वह सिर्फ काग्रेस जनो के लिए ही न होगी, वरन् भारत की ४० करोड जनता के लिए होगी। काग्रेस जनो को सदैव जनता के तुच्छ सेवक बने रहना है।

जनता मे उन्होने कहा 'इसी क्षण से तुमम मे हर स्त्री पुरुष का अपने को स्वाधीन मानना चाहिए और इस तरह काम करना चाहिए मानो तुम आजाद हो और साम्राज्यवाद के चगुल म जकडे हुए नहीं हो। यही स्वतन्त्रता का सत्व है। गुलामी की जजीर उसी वक्त टूट जाती है जिस क्षण गुलाम अपने को स्वतन्त्र मान लेता है।' गाँधी जी ने स्पष्ट रूप स निर्देश दिया था, 'कोई भी काम छिपाकर नहीं किया जायगा यह खुला विद्रोह है। इस सघर्ष म छिपाव पाप है। स्वाधीन व्यक्ति को छिपकर कोई काम नहीं करना चाहिए।' उन्होने जनता को 'करेंगे या मरेंगे' का क्रान्ति मन्त्र दिया।

गाधी जी वायसराय म मिलने के बाद यह आन्दोलन प्रारम्भ करना चाहते थे। किन्तु ९ अगस्त को प्रात ही उन्हे व काग्रेस कार्यसमिति क सदस्यो क साथ गिरफ्तार कर अज्ञात दिशा की ओर भेज दिया गया। काग्रेस समितियाँ अवैध घोषित कर द गई। जनता आश्चर्य चकित देखती रही और तीव्र आन्दोलन उठ खडा हुआ। सरकार का दमन चक्र चला।

आन्दोलन क सबध म गाधी जी ने गृह सचिव को अपने पत्र म लिखा था कि 'काग्रेस की नीति अहिंसा की है और इस बात म कोई सशय नहा है। काग्रेस नेताओ की अधाधुध गिरफ्तारियो से जनता इतनी क्रोधित हो गयी लगती है कि अपना आत्म सतुलन खो बैठी। मेरी धारणा है कि जो विनाश हुआ है उसके लिए काग्रेस नहीं, सरकार जिम्मेदार है।'

सरकार के दमन चक्र के कारण आन्दोलन ने गुप्त रूप धारण कर लिया और गुप्त उपायो से उसे जीवित रखा गया।

दिल्ली चलो

जिन दिनों सारे देश मे 'करो या मरो' की ललकार गूंज रही थी उन्ही दिनों सुभाषचन्द्र बोस जुलाई १९४३ मे पूर्वी युद्ध क्षेत्र में अवतीर्ण हुए। नेता जी के रूप में आई० एन० ए० को नया जीवन मिला और 'दिल्ली चलो' का नारा बुलन्द हुआ। ये दोनों क्रांति की सेना के दो मोर्चे थे और ये एक दूसरे के पूरक। देश को स्वाधीन करने मे इन दोनों मोर्चों का अपना-अपना योग था।

पूर्वी युद्ध क्षेत्र की स्थिति ऐसी थी कि उससे भारतीय स्वतन्त्रता युद्ध मे लाभ उठाया जा सकता था। बर्मा के प्रमुख भाग पर जापान का अधिकार हो गया था और आसाम के रास्ते भारत पर आक्रमण करने का मार्ग खुल गया था। सुभाषचन्द्र बोस के नेतृत्व मे २१ अक्टूबर १९४३ को 'स्वतन्त्र भारत की अस्थायी सरकार' की स्थापना हुई। इसके घोषणापत्र मे कहा गया, 'अस्थायी सरकार का यह काम होगा कि वह अंग्रेजों और उनके साथियों को भारत से निकालने के लिए युद्ध करे। इसके पश्चात् अस्थायी सरकार आजादहिंद मे लोकप्रिय प्रजातन्त्र शासन की स्थापना करेगी। जब तक अंग्रेज भारत से न निकल जायें और जब तक आजादहिंद की राष्ट्रीय सरकार मातृभूमि मे स्थापित न हो, तब तक अपने अधिकार मे आये हुए प्रदेशों का शासन अस्थायी सरकार भारतीय प्रजा के ट्रस्टी के तौर पर करेगी।'

आजाद हिन्द फौज को सम्बोधित करते हुए नेता जी ने कहा था, 'भारत के सिपाहियो! वहां दूर पर नदियों और जंगलों और पहाड़ों के पार हमारा देश है—जहां की मिट्टी से हम सब बने हैं, जहां हम अब जा रहे हैं। सुनो! हिन्दुस्तान पुकार रहा है! हिन्दुस्तान की राजधानी, दिल्ली तुम्हें पुकार रही है। हमारे ३८ करोड़ देशवासी पुकार रहे हैं। खून-खून को पुकार रहा है। उठो! अब खोने के लिए समय नहीं है! हथियार उठाओ! दिल्ली का रास्ता आजादी का रास्ता है। दिल्ली चलो!'

सन् १९४४ के अन्तिम महीनों मे जापान की निरन्तर पराजय ने आई० एन० ए० की गतिविधियों को कुंठित कर दिया और उनके पांव उखड़ गये। उन्हें भी जगह-जगह पर आत्म समर्पण करना पड़ा।

बंगाल का अकाल (१९४३)

महायुद्ध से उत्पन्न विभिषिकाओं मे से एक बंगाल का अकाल था। सरकार के अनुसार इस अकाल मे १५ लाख व्यक्ति मरे पर कलकत्ता विश्व-विद्यालय के प्राच्य मानव विज्ञान विभाग ने अकाल ग्रस्त गांवों में जांच करके जो अनुमान लगाया उसके अनुसार ३४ लाख व्यक्ति मरे। युद्ध के कारण बड़ी मात्रा मे चावल बाहर भेजा गया

और मुनाफाखोरो ने इस जघन्य पाप मे १५० करोड रुपये का मुनाफा कमाया। इस दुर्भिक्ष की अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिक्रिया हुई। समाचार पत्रो और नेताओ ने ब्रिटिश जनमत का ध्यान आकर्षित किया। मजदूर नेता विलियम डोवी ने इस दुर्भिक्ष को मनुष्य निर्मित बताया। उन्होंने कहा—'जो दुर्भिक्ष भारत पर छाया हुआ है वह मनुष्य का पैदा किया हुआ है। इसका मुख्य कारण है कि शासन करने वालो ने जनता का सहयोग न प्राप्त करके देश मे उत्पात और अव्यवस्था उत्पन्न कर दी।'

बगाल के दुर्भिक्ष ने देशवासियो के मन मे एक गहरा असतोष उत्पन्न किया।

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक स्थिति

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक परिवर्तनो के कारण ब्रिटिश शासन को अपनी नीतियो मे परिवर्तन करने को बाध्य होना पडा। इधर ससार का लोकमत और उधर अमरीका के राष्ट्रपति रुजवेल्ट का विशेष आग्रह कि भारत की परिस्थिति को शीघ्र ही सभाला जाय, इसलिए इगलैंड को अपने व्यवहार मे कुछ नर्मी लाने के लिए बाध्य होना पडा। इसी बीच १९४५ मे इंगलैंड मे चर्चिल मत्रिमडल का पतन हुआ और मजदूर दल विजयी हुआ। इस परिवर्तन से ब्रिटेन की भारत सबधी नीति मे परिवर्तन आया।

इसी बीच अग्रेज सरकार ने आजाद हिंद फौज के अधिकारियो पर मुकदमा चलाया और इससे देश मे जोश की ज्वाला सी भडक गई। इस सबध मे इन्द्र विद्यावाचस्पति का यह कथन महत्वपूर्ण है कि अंग्रेजी सरकार ने भारत के दो शताब्दियो के शासन काल मे मूर्खताए तो कई की, परन्तु आजाद हिन्द फौज के अधिकारियो पर अभियोग चलाने की मूर्खता के बराबर कोई न थी।

नाविक विद्रोह

आजाद हिन्द फौज के अधिकारियो पर चलाये गये अभियोग का सम्पूर्ण राष्ट्र ने खुल कर विरोध किया और परिणाम स्वरूप वे अभियोग मुक्त कर दिये गये। जनता को अपनी शक्ति पर विश्वास हुआ और सबसे बडी बात यह हुई कि ब्रिटिश शासन के प्रति विद्रोह के कीटाणु सेनाओ मे भी प्रविष्ट हुए।

सन् १९४६ को १९ फरवरी को रायल इण्डियन नेवी के भारतीय नाविको ने विद्रोह कर दिया। ब्रिटिश साम्राज्य के इतिहास मे यह प्रथम अनहोनी घटना थी। विद्रोह का कारण था भारतीय और अग्रेज नाविको के प्रति भेदभाव पूर्ण व्यवहार। यह विद्रोह कई दिन चला और सारे देश मे हलचल मच गई।

कम्यूनिस्टो ने इस विद्रोह का समर्थन किया किन्तु कांग्रेस और लीग दोनो इसके

विरोध में थे। आश्चर्य की बात है कि विद्रोही नाविकों ने शासकीय अंग्रेजी सेनाओं को आत्मसमर्पण न करके समझौते में सरदार पटेल की मध्यस्थता व शर्तें स्वीकार कीं। तात्पर्य कि भारत में ब्रिटिश शासन के मूल स्तम्भ भारतीय सेनाओं में भी राष्ट्रीय चेतना का जागरण हो चुका था।

मिल मजदूरों द्वारा कारखानों में हड़तालों का सिलसिला भी सरकार के लिए सिरदर्द बना हुआ था। एक शासकीय प्रतिवेदन के अनुसार सन् १९४६ में १९,६१,००० मजदूरों ने हड़ताल की जिसमें २७, १७,००० घंटों का नुकसान हुआ।

इन हड़तालों ने मजदूरों में राजनीतिक चेतना का प्रसार किया और वर्ग-संघर्ष के लिए वातावरण बनाने में योग दिया।

अस्थायी सरकार का निर्माण और साम्प्रदायिक दंगे

अन्तर्राष्ट्रीय दबाव तथा भारत में आए दिन होने वाली घटनाओं से निर्मित आन्तरिक स्थिति को दृष्टिगत रख इंगलैंड की पारलियामेंट ने १६ फरवरी १९४६ को एक मिशन की घोषणा की और बताया कि उक्त मिशन भारतीय लोकमत के नेताओं से मिलकर भारत की राजनीतिक स्वाधीनता की योजना प्रस्तुत करेगा। मिशन अपने प्रयत्नों में असफल रहा और उसने परामर्श दिया कि नया संविधान बनने तक वायसराय अपनी कैबिनेट का ऐसी रीति से निर्माण करे कि उसमें देश के विभिन्न दलों के प्रतिनिधि हों और उसे अस्थायी सरकार का रूप दिया जा सके। लीग और कांग्रेस का समझौता न होने पर वायसराय ने १६ भारतीय सदस्यों की एक कौंसिल की घोषणा कर दी।

मुस्लिम लीग ने इसका विरोध किया और १६ अगस्त १९४६ को 'प्रतिवाद दिवस' मनाने की घोषणा की। इस सीधी कार्यवाही का उद्देश्य था 'पाकिस्तान प्राप्त करना, मुसलमानों के न्याय सगत अधिकारों का दावा करना और वर्तमान अंग्रेजों की गुलामी और भविष्य में कल्पित स्वर्ण हिन्दुओं की गुलामी से छुटकारा लेकर अपना राष्ट्रीय आत्म सम्मान प्राप्त करना।'[1] बंगाल के लीग मंत्रिमंडल ने उस दिन सार्वजनिक छुट्टी घोषित की। परिणाम स्वरूप कलकत्ता में जो खूनी उत्पात हुआ वह भारतीय इतिहास की एक दुःखद घटना है। हजारों हिन्दुओं के घर लूट लिये गए, सैकड़ों जला दिये गये और अनगिनत व्यक्ति घायल किये गये। दो दिन के बाद जब हिन्दू संगठित हो गये, तो उन्होंने उत्पात का उत्तर उत्पात से देना शुरू किया।

अन्तरिम सरकार के शपथ लेने पर लीग की ओर से 'मातम दिवस' मनाया गया और सम्पूर्ण राष्ट्र में गृहयुद्ध का दृश्य उपस्थित हो गया। नोआखाली में हिन्दुओं पर जो अत्याचार हुआ उससे देश कांप उठा। साम्प्रदायिकता के इस नग्न नृत्य को शांत

करने गांधी जी नोआखाली गये। उन्होंने शांति स्थापना के लिए चार माह तक सत्य, अहिंसा, प्रेम-धर्म का प्रचार किया।

नोआखाली की प्रतिक्रिया बिहार में हुई। वहां २५ अक्टूबर को नोआखाली दिवस मनाया गया और मुसलमानों से नोआखाली का बदला लिया गया। गांधी जी के एक वक्तव्य के अनुसार बिहार के उपद्रवों में न्यून से न्यून १० हजार व्यक्ति मारे गये।

स्वतन्त्रता एवं देश विभाजन

ऐसी स्थिति में प्रधान मंत्री एटली ने घोषणा कर दी कि अप्रैल जून १९४८ तक भारत छोड़ देंगे। इस घोषणा से राष्ट्र में नई राजनीतिक हलचल हुई और लोगों का ध्यान साम्प्रदायिक दंगों की ओर से विमुख हुआ। इसके उपरान्त ३ जून १९४७ को एटली ने देश के विभाजन की घोषणा की। कांग्रेस के सम्मुख इसे स्वीकार करने के अतिरिक्त दूसरा विकल्प न था। गांधी जी इसके विरोध में थे और इसे उन्होंने एक आध्यात्मिक दुर्घटना' और ३२ वर्षों के सत्याग्रह-संग्राम का लज्जाजनक परिणाम बताया।

आलोच्यावधि के राजनीतिक उपन्यासकारों की रचनाओं के विश्लेषण करने पर उपर्युक्त राजनीतिक विचारधाराओं और राजनीतिक घटनाओं का निरूपण विवरण मिलता है। इस काल के प्रमुख उपन्यासकार जैनेन्द्र, यशपाल अज्ञेय, इलाचन्द्र जोशी, अचल भगवतीचरण वर्मा हैं जिनके उपन्यासों में राजनीतिक संदर्भ दिखाई पड़ता है। आलोच्यकाल में रांगेय राघव कृत 'घरौंदे' व 'विषादमठ' गुरुदत्त के 'स्वाधीनता के पथ पर' व 'पथिक' अमृतलाल नागर कृत 'महाकाल,' यज्ञदत्त शर्मा कृत 'दो पहलू,' राधिका रमण सिंह के 'पुरुष और नारी,' श्रीनाथ सिंह कृत 'जागरण' तथा मन्मथनाथ गुप्त के 'चित्र' में राजनीतिक पक्ष गहराई के साथ चित्रित हुआ है। इनमें से अधिकांश लेखकों ने स्वातन्त्र्योत्तर काल में भी राजनीतिक उपन्यासों की सृष्टि की। इस परिच्छेद में आलोच्यावधि के उन प्रमुख राजनीतिक उपन्यासकारों का अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है जिन्होंने प्राक् स्वाधीनता युग से प्रारम्भ कर स्वतन्त्र्योत्तर काल तक राजनीतिक उपन्यास लिखे।

राजनीतिक उपन्यासकार यशपाल

प्रेमचन्दोत्तर हिंदी राजनीतिक उपन्यासकारों में यशपाल अग्रणी हैं। राजनीतिक पृष्ठभूमि में जन जीवन सामाजिक संघर्षों और राष्ट्रीय जागृति का चित्रण मार्क्सवादी दृष्टिकोण से करने के कारण उन्हें जनवादी उपन्यासकार माना जाता

है। वर्तमान मध्यवर्गीय समाज का चित्रण उन्होंने मार्क्सवादी समाज दर्शन और मतवाद के माध्यम से प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। इसीलिए कहा गया है कि 'यशपाल ने उपन्यास को सिद्धान्त-प्रचार का साधन बनाया है'[1] और यह सत्य भी है क्योंकि उनके सभी पात्र मार्क्सवादी सिद्धान्तिक भूमिका से ही संचालित हैं।

यशपाल की उपन्यास कला और उनमें निहित राजनीतिक तत्वों का विश्लेषण तथा विवेचन करने के लिए उनके व्यक्तित्व को समझना आवश्यक है।

व्यक्तित्व

यशपाल का जन्म पंजाब के एक मध्यवर्गीय परिवार में हुआ। परिवार की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी और इनकी मां अध्यापन करके परिवार का भरण-पोषण करती थीं। पंजाब भारतीय राष्ट्रीय जाग्रति का प्रमुख केन्द्र रहा है और वहां सामाजिक सुधार में आर्यसमाज का महत्वपूर्ण योग रहा है। प्रारम्भिक रूप में राष्ट्रीय भावना के प्रसार में आर्य समाज जैसी संस्थाओं की भूमिका अत्यन्त महत्व की रही है।

यशपाल का परिवार आर्य समाज के सिद्धान्तों का अनुयायी था। उनकी मां के हृदय में देश भक्ति की भावना उत्कट रूप में थी और वे अवसरानुकूल कांग्रेस के कार्यों में भी सक्रिय भाग लिया करती थीं। इसी राष्ट्रीय भावना के कारण उन्होंने यशपाल का प्राथमिक शिक्षा हेतु गुरुकुल में प्रविष्ट कराया। आर्थिक स्थिति अच्छी न होने के कारण इनकी फीस आदि नहीं लगती थी और अस्वस्थ रहने से विशेष रूप से निशुल्क खाद्य की व्यवस्था थी। इस स्थिति में उनमें हीनावस्था से पूंजीवाद के विरुद्ध घृणा की गांठ छात्रावस्था से पड़ गई।

बाद में उन्होंने लाहौर नेशनल कालेज में प्रवेश लिया। जहां उनका सम्पर्क सुखदेव व भगतसिंह से हुआ जो क्रांतिकारी गतिविधियों में भाग लेते थे। यशपाल के *बचपन के राष्ट्रीय संस्कार प्रबल हुए और वे कांग्रेस के आंदोलनों में स्वयं सेवक के रूप* में भाग लेने लगे। किन्तु सत्याग्रह के प्रति उनके विचार शीघ्र ही बदल गये और वे इस दार्शनिक तत्व पर पहुंचे कि 'यदि भय और आत्मरक्षा की प्रवृति मनुष्य में स्वाभाविक है तो आत्म हनन को सत्याग्रह का नाम देकर लक्ष्य बना लेना जरूर स्वाभाविक है।' राष्ट्र की परतन्त्रता से क्षुब्ध होकर यशपाल व भगतसिंह ने राष्ट्र के लिए जीवन अर्पण का संकल्प 'हिन्दुस्तानी समाजवादी प्रजातंत्र सेना' के में रूप क्रांतिकारी दल गठित किया और सामूहिक सशस्त्र क्रांति की योजनाएं रूप लेने लगीं। लाला लाजपतराय की लाठी

---

१. शिवनारायण श्रीवास्तव — 'हिन्दी उपन्यास,' पृष्ठ ३२२

मारने वाले पुलिस इन्स्पेक्टर सैन्डर्स को गोली मारने के बाद फैक्टरी के पकड़े जाने पर यशपाल को फरार होना पड़ा।

क्रान्तिकारी दल में काम करते हुए उनका सम्पर्क दल की एक सदस्या प्रकाशवती से हुआ। वे उनकी ओर आकृष्ट हुए और बिना दल की अनुमति के पति पत्नी सबंध स्थापित कर लिया। दल के लोगों ने इसका विरोध किया और यशपाल को दल के अनुशासन भंग करने के आरोप में गोली मार देने का निश्चय किया गया। किसी सदस्य के द्वारा निर्णय की जानकारी यशपाल को भी हुई और उन्होंने आजाद को अपना स्पष्टीकरण देने का प्रयास किया। आजाद ने यह जानकर कि दल में गोपनीयता भंग होती है दल का ही भंग कर दिया। यशपाल को यह अच्छा न लगा और वे आजाद की सहायता से क्रान्तिकारी प्रयासों में लग रहे। बाद में आजाद भी शहीद हो गये और १९३२ में यशपाल गिरफ्तार कर लिए गये। यशपाल पर मुकदमा चला और १४ वर्ष का कारावास का दंड मिला। इस बीच दल बिखर गया, राजनीतिक परिस्थितियां बदल गईं।

सन् १९३७ में कांग्रेसी मन्त्रिमंडल बना और राजनीतिक बन्दी मुक्त किये गये। यशपाल अस्वस्थ थे। अतः २ मार्च १९३७ को रिहाई के बाद वे ४-५माह भुवाली सैनिटोरियम में रहे।

कारावास की अवधि में यशपाल का सारा समय अध्ययन एवं चिन्तन में व्यतीत हुआ। उन्होंने देखा कि भारतीय समाज का एक भाग समाजवादी विचारधारा से प्रभावित हो रहा है और साम्यवादी दल क्रियाशील हो गया है। अतः यशपाल ने बौद्धिक रूप से मार्क्सवाद को ग्रहण कर उसे साहित्य के माध्यम से प्रचार व प्रसार का माध्यम बनाया।

यशपाल की राजनीतिक एवं साहित्यिक मान्यताएं

जिन संघर्षों के बीच यशपाल का व्यक्तित्व उभरा है बहुत अंश में उनका प्रभाव ही उनकी साहित्यिक चेतना का आधार है। यही कारण है कि उनकी मान्यता है कि 'यदि जीवन संघर्ष है और कला जीवन की भावना की अभिव्यक्ति है तो कला संघर्ष का द्योतक हुए बिना नहीं रह सकती केवल निरर्थक कला ही संघर्ष द्वारा विकास की भावना से शून्य हो सकती है।[1]

वे मार्क्सवादी हैं और स्टालिन के इस कथन को स्वीकार करते हैं कि 'कलाकार मानव आत्मा का इंजीनियर है।' उनकी कला का उद्देश्य मन बहलाव ही नहीं किन्तु समाज का भौतिक और सांस्कृतिक कल्याण होना चाहिए।[2] साम्यवादी

१ यशपाल – 'बात-बात में बात', पृष्ठ २८

२ यशपाल – 'बात-बात में बात',

विचार धारा के वाहक होने के कारण वे कला की सार्थकता सामाजिक जीवन की पूर्णता के प्रयत्न में मानते हैं। 'दादा कामरेड' की भूमिका में उन्होंने इस तथ्य को स्पष्ट करते हुए लिखा है, 'कला को कला के निर्लिप्त क्षेत्र में ही न रखकर मैं उसे भावों या विचारों का वाहक बनाने की चेष्टा क्यों करता हूँ ?... क्योंकि जीवन में मेरी साथ केवल व्यक्तिगत जीवन-यापन ही नहीं बल्कि सामाजिक जीवन की पूर्णता है, इसलिए कला से सब्र जोड़कर भी मैं कला को केवल व्यक्तिगत सन्तोष के लिए नहीं समझ सकता कला का उद्देश्य है जीवन में पूर्णता का यत्न। बजाय इसके कि कला का यत्न बहक कर हवा में पैंतरे बदलकर शांत हो जाय, क्या यह भी अधिक अच्छा नहीं कि वह समाज के लिए विकास और नवीन कला के लिए आधार प्रस्तुत करे।[१]

स्पष्ट है कि यशपाल का साहित्यकार एक पूर्व निर्धारित राजनीतिक भावभूमि के अनुरूप ही चिन्तन और मनन करता है। उसके भीतर साम्यवाद के संस्कार अत्यन्त प्रबल हैं और वह उन सिद्धान्तों को नहीं स्वीकार कर सकता जिनके अनुसार किसी बनी बनाई लीक अथवा नपे तुले आदर्शों के आधार पर साहित्य की प्रगति और उसका उन्नयन नहीं हो सकता, बदलते हुए समय के साथ ही प्रगति का मार्ग भी बदलेगा। हमारे आदर्शों में भी परिवर्तन और उलट फेर होंगे। साहित्य के साथ जीवन को सम्बद्ध किये रखने का आशय इतना ही है कि जीवन मर्यादित आधार भूत चेतना साहित्य से लुप्त न हो जाय। जीवन का लक्ष्य है जीना। जीवन जितना व्यापक और सम्मुन्नत स्वरूप धारण कर सके उतनी ही साहित्यकार की कृत कार्यता होगी।[२]

कहने की आवश्यकता नहीं कि यशपाल की दृष्टि में प्रगतिवादी साहित्य विशिष्ट राजनीतिक सिद्धान्तों का साहित्यिक संस्करण है। वे लिखते हैं — "प्रगतिशील साहित्य का काम समाज के विकास के मार्ग में आने वाली अन्ध विश्वास, रूढ़िवाद की अड़चनों को दूर करना है। समाज को शोषण के बन्धनों से मुक्त करना है कार्यक्रम में प्रगतिशील *क्रान्तिकारी सर्वहारा श्रेणी का सबल साधन बनना प्रगतिशील साहित्य का ध्येय है।* काल्पनिक सुखों की अनुभूति के भ्रम जाल को दूर करके मानवता की भौतिक और मानसिक समृद्धि के रचनात्मक कार्य के लिए प्रेरणा देना प्रगतिशील साहित्य का मार्ग है।[३] प्रगतिशीलवादी साहित्य प्रत्येक वस्तु को यथार्थ की दृष्टि से देखता है। वह इन्द्रीयानुभव को ही सत्य स्वीकार करता है और इसी के अन्तर्गत कुरूप सत्य को अभिव्यक्ति देता है। यशपाल ने इसी सामाजिक यथार्थवाद का प्रतिपादन किया है। यशपाल के उपन्यास-

---

१. यशपाल — 'दादा कामरेड दो शब्द', पृष्ठ ४
२ आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी — 'आधुनिक हिन्दी साहित्य,' पृष्ठ ३२८
३ यशपाल — बात बात में बात, पृष्ठ २७

साहित्य के संबंध मे एक समीक्षक का कथन है कि 'यदि यशपाल के उपन्यासो मे फ्रायड के प्रभाव को निकाल दिया जाय तो उनका साहित्य सामाजिक यथार्थवाद का प्रतिनिधित्व कर सकता है यशपाल का दृष्टिकोण सर्वत्र सामाजिक यथार्थवादी और निर्वैयक्तिक रहा है।'[1] साम्यवाद के प्रबल आग्रह के साथ उन्होंने सामाजिक समस्या जनित चित्रो का अकन किया है यह एक मूलभूत तथ्य है। और इस आधार पर ही यशपाल के उनके उपन्यासो का विवेचन किया जा सकता है। साम्यवादी जीवन दर्शन के आलोक मे ही उपन्यासो की छटा देखी जा सकती है। वस्तुत: 'यशपाल आधुनिक नागरिक जीवन के चित्रकार हैं और भारत का सर्वहारा वर्ग प्रथम बार आपके पात्रो मे अपना विजयी स्वर उठाता है। मार्क्सवाद के वैज्ञानिक विचार-दर्शन को उपन्यास कला मे ढालने का पहला प्रयास यशपाल ने किया है।'[2] स्वय यशपाल का कथन है, 'देश की जनता की मुक्ति केवल क्रांति द्वारा ही सम्भव है। क्रांति से हमारा अभिप्राय केवल जनता और विदेशी सरकार मे सशस्त्र सघर्ष ही नही है। हमारी क्रांति का लक्ष्य एक नवीन न्यायपूर्ण सामाजिक व्यवस्था है। इस क्रांति का उद्देश्य पूजीवाद को समाप्त कर श्रेणी विहीन की स्थापना करना और विदेशी तथा देशी शोषण से जनता को मुक्त कर आत्मनिर्णय द्वारा जीवन का अवसर देना है। इसका उपाय शोषको के हाथ से शासन शक्ति लेकर मजदूर श्रेणी की स्थापना ही है।'[3]

यशपाल मार्क्सवादी साहित्यशैली के यथार्थवादी उपन्यासकार हैं।

यशपाल के उपन्यासो का वर्गीकरण

यशपाल के राजनीतिक एवं साहित्यिक जीवन के मध्य की विभेदक रेखा अत्यत सूक्ष्म है। राजनीतिक जीवन मे जिस साम्यवाद का उन्होंने अवलम्ब लिया उन्ही धारणाओ को साहित्य मे अभिव्यक्ति दी। कहा गया है कि विभिन्न कथाओ और घटनाओ के आधार से स्वय के सिद्धान्तो का प्रकटीकरण लेखक का उद्देश्य है। यही कारण है कि उनके प्रायः सभी उपन्यास केवल 'अमिता' को छोडकर राजनीतिक वातावरण की प्रमुखता लिये हुए हैं। उनके एक अन्य उपन्यास 'दिव्या' मे यद्यपि इतिहास की मार्क्सवादी व्याख्या है तथापि उसके बौद्धकालीन ऐतिहासिक उपन्यास होने के कारण वह हमारी विवेचना के अन्तर्गत नही आता। उपरोक्त दो उपन्यासो को छोडकर यशपाल के अन्य उपन्यास निम्नानुसार हैं—

---

१ समालोचक – 'यथार्थवाद विशेषांक, फरवरी १९५९, पृष्ठ १९४
२ आलोचना – जनवरी, १९५७, पृष्ठ ८८
३ यशपाल – 'सिंहावलोकन,' पृष्ठ १४४

१—दादा कामरेड (१९४१)
२—देशद्रोही (१९४३)
३—पार्टी कामरेड (१९४६)
४—मनुष्य के रूप (१९४९)
५—झूठा-सच (दो भाग)

प्रथम भाग – 'वतन और देश' (१९५८)
दूसरा भाग – 'देश का भविष्य' (१९६०)

मार्क्सवादी जीवन दर्शन ही उनकी नवीन विचारधारा का मूल है जो उनके प्रत्येक उपन्यास मे व्याप्त है।

दादा कामरेड

'दादा कामरेड' यशपाल का प्रथम राजनीतिक उपन्यास है जो उन्होने क्रांतिकारी के रूप मे लम्बे कारावास से मुक्त होने के उपरान्त लिखा। त्रिभुवन सिंह के शब्दो मे 'दादा कामरेड' हिन्दी साहित्य मे पहला उपन्यास है जिसमे रोमान्स और राजनीतिक सिद्धान्तो का मिश्रण हुआ है। यह उपन्यास शरद बाबू के बगला उपन्यास 'पथेर दाबी' द्वारा क्रान्तिकारियो के जीवन और आदर्शों के सम्बन्ध मे उत्पन्न हुई भ्रामक धारणाओ का निराकरण करने के लिए लिखा गया है। इतना ही नहीं बल्कि यह श्री जैनेन्द्र की आदर्श पुरुष का खिलौना 'सुनीता' का उत्तर भी है।[1]

'दादा कमरेड' के लेखन के पीछे लेखक का चाहे जो मतव्य रहा हो किन्तु इस मे सदेह नही कि इसमे तत्कालीन राजनीतिक धारणाओ को अभिव्यक्ति मिली है। तत्कालीन राजनीतिक विचारधारायें मुख्य रूप से गाँधीवाद, आतकवाद तथा साम्यवाद थी। कथावस्तु का विस्तार राजनीतिक क्रान्तिकारी दल से विस्तार पाता है। और आतकवाद व गाँधीवाद की शक्ति की क्षीणता को बतलाते हुए साम्यवादी जीवन-दर्शन के उत्कर्ष को उद्घाटित कर एक विशेष वर्ग के प्रति सहानुभूति का प्रसार करता है। उपन्यासकार ने भूमिका मे लिखा भी है 'समाज मे पूजीवाद, गाँधीवाद और समाजवाद के सघर्ष के बीच परिस्थितियो, व्यवस्था और धारणाओ मे सामजस्य ढूँढने का इस पुस्तक मे प्रयास किया गया है।'

उपन्यास के प्रमुख पात्र हैं दादा कामरेड, जो पहले आतकवादियो के नेता के रूप मे सम्मुख आते हैं, कामरेड बनकर साम्यवादी जीवन दर्शन के माहत्म्य का दिग्दर्शन करते हैं। दादा का साथी है हरीश जो जेल से भागा हुआ क्रांतिकारी है, उपन्यास मे

१ त्रिभुवन सिंह – 'हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद,' पृष्ठ २०४

मे जिसके अनेक नाम तथा रूप हैं, साम्यवादी जीवन दर्शन को स्वीकार कर अपने जीवन का बलिदान कर नवीन चेतना का प्रतिनिधित्व करता है।

प्रारम्भ मे पाठक हरीश को सशस्त्र क्रांति में आस्थावान पाता है। किंतु जेल से भागने के बाद वह अनुभव करता है कि 'गुप्त पार्टी बना दस-पाच आदमियो मे अपनी शक्ति को सकुचित कर देने से कोई लाभ नही है।' वह कहता है 'अब तक हमारी संपूर्ण शक्ति डकैतियां करने मे अधिकतर और कुछ राजनीतिक हत्याओं में काम आई है। किन्तु हमारा उद्देश्य तो यह नहीं है। हमारा उद्देश्य तो यह है कि इस देश की जनता का शोषण समाप्त कर उनके लिए आत्मनिर्णय का अधिकार प्राप्त करना। हमें अपना टेकनीक बदलना चाहिए—बजाय शहादत के परिणाम की ओर ध्यान देना चाहिए। रूस ने क्या किया ?—हम अपने आदमियो के जरिए कांग्रेस मे घुसें और दूसरे जन आंदोलन मे हाथ उठावें।'

हरीश का दूसरा रूप शैला के प्रणयी के रूप में हम देखते हैं। शैलबाला से वह आन्दोलन के प्रति सहानुभूति और सहायता तथा स्वयं के लिए स्नेह प्राप्त करता है। दल का एक अन्य सदस्य है बी० एम० जो शैल को चाहता है और हरीश और शैल के प्रेम-बंधन को देखकर ईर्षालु हो जाता है। वह शैल को अपने प्रति आकर्षित करने म असफल हो दादा तथा पार्टी के अन्य सदस्यो के बीच हरीश पर यह आरोप लगाता है कि उसने पार्टी की 'सेम्पेथाइजर' शैला को पार्टी के कार्य में दूसरे लोगो ने मिलने और घर छोड़ने के लिए मना किया है। पार्टी की बैठक बुलाई गई जिसम हरीश भी गया। बैठक म हरीश के अभियोगो की चर्चा की गई जिसे उसने असत्य प्रमाणित किया। वह बैठक मे आतंकवादी नीति का विरोध और सामूहिक जन क्रांति के पक्ष मे अपने विचार व्यक्त करता है। वह कहता है 'जनता से दूर गुफाओं और तहखानो मे बंद रह कर हम न तो जनता का सहयोग पा सकते हैं और न उनका नेतृत्व कर सकते हैं। यह पिस्तौल, रिवॉल्वर और बम एक तरह से हमारी क्रांति के मार्ग की रुकावट ही नहीं बन रहे, बल्कि यह हमें खाये जा रहे हैं। हमारी सम्पूर्ण शक्ति समाप्त हो जाती है एक डकैती करने में ताकि हम और हथियार प्राप्त कर सकें। इस डकैती से हमें क्या मिलता है ? जनता की सहानुभूति से हम वंचित हो जाते हैं। हम सौ पचास आदमी तो स्वराज्य नहीं ले सकते। स्वराज्य को जनता का संयुक्त प्रयत्न ही ला सकता है।'[1]

मतभेद को इसी तीव्रता के कारण पार्टी हरीश को गोली मार देने का निर्णय लेती है। शैल को यह निर्णय ज्ञात हो जाता है और वह हरीश को लेकर अपने मित्र राबर्ट और सखी नैननी के साथ मसूरी जाती है जहा हरीश अपने को मिराजकर के

---

१. यशपाल—'दादा कामरेड,' पृष्ठ ४६

रूप में बतला कर मजदूरों का सगठन कर क्रान्ति की जागृति फैलाता है। मजदूरों के क्वार्टरों में रहकर वह कपड़ा मिल के सेक्रेटरी का काम करने लगा। सगठन हो जाने पर वह मिल में हड़ताल करवा देता है। आर्थिक कठिनाइयों के कारण हड़ताल टूटने की शका होती है।

दादा देहली पार्टी को पैसे भेजने के लिए सेठ भोलाराम जीवाराम के यहां डकैती डालते है और शैल से मिलने और यह जानने पर कि उसे रुपये की आवश्यकता है रुपया उसे दे देते है। शैल वह रुपया हरीश को दे आती है। हड़ताल सफल होती है किन्तु हरीश को डाका डालने के अपराध में गिरफ़्तार कर लिया जाता है। अदालत में वह साम्राज्यवाद की शोषण नीति के विरोध में वक्तव्य देता है। हरीश को प्राण दण्ड दिया गया।

इधर शैल गर्भवती हो जाती है और उसे लाला ध्यानचन्द (पिता) कलंकिनी कहकर घर से निकल जाने का आदेश देते हैं। हरीश के प्राणदण्ड का समाचार पढ़कर दादा शैल से मिलने आते हैं और शैल के आश्रय मागने पर उसे अपने साथ ले जाते हैं हरीश द्वारा जलाई हुई ज्योति की रक्षा के लिए।

सक्षेप में यही 'दादा कामरेड' की कथावस्तु है जो क्रांतिकारियों के हिंसात्मक आन्दोलन, कांग्रेस के अहिंसात्मक विद्रोह तथा साम्यवादी दल की हड़तालों व मजदूर सगठनों के आधार को लेकर विस्तार पाती है। कथानक तत्कालीन विशेषत १९३०से १९३६ की राजनीतिक काल का होने पर भी इसकी घटनाएं यथार्थ नहीं काल्पनिक हैं। राजनीतिक पात्र भी काल्पनिक हैं। एक आलोचक के मतानुसार दादा के रूप में प्रसिद्ध क्रांतिकारी चन्द्रशेखर आजाद का और हरीश के रूप में स्वय यशपाल का व्यक्तित्व झलकता है।[1] किन्तु राजनीतिक दृष्टि से देखने पर यह युक्ति सगत प्रतीत नहीं होता। उपन्यास की घटनायें काल्पनिक हैं और उनका उपरोक्त व्यक्तियों के जीवन से सबध नहीं है। केवल मात्र हरीश और शैल के प्रेम सबंध और परिणाम स्वरूप पार्टी द्वारा हरीश को प्राणदण्ड की सजा देने तथा शैल द्वारा यह ज्ञात होने पर हरीश के आरोपों का स्पष्टीकरण देने की घटना की समता क्रान्तिकारी यशपाल व प्रकाशवती (श्रीमती यशपाल) से हो सकती है। आजाद का यशपाल से घनिष्ठ सबंध रहा है किन्तु दादा में उनके व्यक्तित्व का या जीवन घटनाओं का सादृश्य नहीं है। वस्तुत: दादा कामरेड में किसी व्यक्ति विशेष का चित्रण न होकर क्रांतिकारियों तथा साम्यवादियों की कार्यप्रणालियों का यथार्थवादी चित्रण किया गया है। कांग्रेस के अहिंसात्मक आन्दोलन के साथ-साथ चलने वाले क्रांतिकारियों के हिंसात्मक आन्दोलन तथा क्रांति-

---

१ त्रिभुवन सिंह—'हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद,' पृष्ठ २०५

कारियो के अनुशासन संबंधी कठोर नियमो का सजीव तथा इतिहास सम्मत चित्रण किया गया है। क्रांतिकारियो के अन्दर संदिग्ध व्यक्तियों को गोली से उडा देने की व्यवस्था थी इसका संकेत हमे उस एक मंत्रणा से मिल जाता है जिसमे डाका डालने की योजना बनाई जा रही थी। मजदूरो के हडताल का चित्र तो स्पष्टत, रूसी साम्यवाद की ओर संकेत है।

इस राजनीतिक उपन्यास मे यशपाल के राजनीतिक एव सामाजिक विचारो को अभिव्यक्ति मिली है और जो नवीन समाजवादी चेतना की ओर इगित करती है। प्रकाशचन्द गुप्त के मत से 'दादा कामरेड मे आप (यशपाल) आतकवाद मे टूटती आस्था और मार्क्सवाद में दृढ होते हुए विश्वास की कथा कहते हैं।'[१]

कतिपय आलोचक राजनीतिक उपन्यासो मे रोमांस की स्थापना को उचित नही मानते। यशपाल के उपन्यासो मे राजनीतिक-रोमान्स की उद्‌भावना उनका अपना शिल्प वैशिष्ट्य है। 'दादा कामरेड मे जिस रोमान्स की योजना की गई है, वह ठीक है पर उसको चित्रित करने मे जिस सयम की आवश्यकता थी उसका निर्वाह इस उपन्यास मे नहीं हो सका है।'[२] शैल के रूप मे नारी का जो स्वरूप प्रस्तुत किया गया है वह पाठक की श्रद्धा का पात्र न बन सकेगा यह यशपाल स्वय अनुभव करते हैं और इसीलिए वे लिखते हैं 'आवरण के कुछ प्रेमियो को शैल के व्यवहार मे नग्नता दिखाई देगी। इस तरह का चरित्र पेश करना वे आदर्श की दृष्टि से घृणित समभेंगे। हो सकता है शैल उनकी सहानुभूति न पा सके।'[३]

यही कारण है कि यशपाल के उपन्यासो मे मार्क्स तथा फ्रायड दोनो के ही आत्यन्तिक दृष्टिकोणो का समाहार हुआ है। इस वैशिष्ट्य के कारण ही विद्रोह और काम दोनो का सापेक्ष विश्लेषण उनके उपन्यासो मे मिलता है।

देशद्रोही

यशपाल का दूसरा राजनीतिक उपन्यास 'देशद्रोही' सन् १९४३ मे प्रकाशित हुआ। 'दादा कामरेड मे शरद बाबू के 'पथ के दावेदार' के बाद का क्रांतिकारी जीवन है, 'देशद्रोही' मे प्रेमचन्द के गोदान के बाद का राजनीतिक जगत। दादा कामरेड का धरातल राष्ट्रीय है, देशद्रोही का धरातल अन्तराष्ट्रीय।'[४] 'देशद्रोही' मे भारतीय साम्यवादी दल का समर्थन किया गया है तथा सन् १९४२ की क्रांति मे साम्यवादी

---

१ आलोचना जनवरी १९५७, पृष्ठ ८४

२ सुरेशचन्द्र तिवारी—यशपाल और हिन्दी कथा साहित्य

३ यशपाल—'दादा कामरेड,' भूमिका मे

४ शांतिप्रिय द्विवेदी—सामाजिकी, पृष्ठ २८१

दल की भूमिका का स्पष्टीकरण किया गया है। 'गांधीवाद तथा कांग्रेस की आलोचना एव रूसी समाजवाद का प्रतिपादन इस उपन्यास का लक्ष्य प्रतीत होता है।'[1]

उपन्यास की कथा का आधार सन् बयालीस की क्रांति है तथा सम्पूर्ण कथा-वस्तु ९ प्रकरणो मे विभक्त है। कथा आरम्भ मे राजनीतिक दशाओ के वर्णन से प्रारम्भ होती है और नायक खन्ना के सीमान्त जाने की घटना से कथा मे आकस्मिक मोड आता है। यहाँ से मूल कथा दो सूत्रो मे विभक्त हो विकसित होती है। कथा का *पहला सूत्र दिल्ली और उसके आसपास के वातावरण मे रहता है, परन्तु उसका दूसरा* सूत्र खन्ना के साथ अन्तर्राष्ट्रीय धरातल का स्पर्श करता है। खन्ना सीमाप्रात के फौजी अस्पताल का डाक्टर है। एक रात छापा मारकर वजीरी लोग लूट के सामान के साथ डॉ० खन्ना को भी ले जाते हैं। इस स्थल पर वजीरियो के पाशविक व्यवहार का रोमाचकारी वर्णन है। वजीरियो को लालच था कि डाक्टर खन्ना के परिवार वाले काफी रुपया देकर उसे छुडा लेंगे। खन्ना वजीरियो के प्रस्ताव के अनुसार अपने घर पत्र लिख कर चार हजार रुपये की माग करता है जिससे वह मुक्त हो सके। किन्तु प्राय पाच महीने बाद जब कबीले के एक वजीरी ने बन्नू से लौटने के बाद समाचार दिया कि उसका पत्र दिल्ली भेज दिया गया था किन्तु उसका उत्तर प्राप्त नही हुआ। ऐसी स्थिति मे वजीरी खन्ना को ईद के दिन कलमा पढकर उसे मुसलमान बना देते हैं। अब वह खन्ना से अन्सार होकर गजनी लाया गया और उसका प्रबन्ध पोस्तीनो के व्यापारी अब्दुल्ला के हाथ बेच दिया गया। यहीं उसका सम्पर्क अब्दुल्ला के पुत्र नासिर से होता है जो उदार, सहृदय और नवीन भावनाओ का युवक है। नासिर अपने ज्ञान के अनुसार खन्ना से भारत और रूस की राजनीतिक एव सामाजिक जीवन के बारे मे जिज्ञासा करता है। इधर अब्दुल्ला की साघातिक बीमारी मे चिकित्सा एव परिचर्या के कारण अब्दुल्ला अन्सार से प्रभावित हो अपनी पुत्री नर्गिस का विवाह अन्सार से कर देता है। नर्गिस के सानिध्य मे खन्ना अपनी पत्नी राज को विस्मृत करने का प्रयत्न करता है। किन्तु कुछ समय उपरांत उसका मन उद्वेगहीन, उद्देश्यहीन जीवन से उकता गया और एक दिन वह नासिर के साथ चरस के व्यापारियो की सहायता लेकर गुप्त रूप से रूस के स्तालिनाबाद पहुँचते हैं। वहा से वे अधिकारियो द्वारा समरकद भेजे गये और अधिकारियो के प्रश्नो का सतोषप्रद उत्तर देने पर अन्सार को चिकित्सा विभाग मे तथा नासिर को तेल के कारखाने मे काम दिया गया।

स्वास्थ्य गृह मे डाक्टर का सम्पर्क खोज विभाग के अध्यक्ष डॉ० जिमोनोफ, शिशुशाला की अध्यक्षा कामरेड खातून, तथा एक अन्य स्त्री कार्यकर्त्री गुलशां से होना

---

१. शिवनारायण श्रीवास्तव—'हिन्दी उपन्यास,' पृष्ठ ३२४

हे। जिमोनोफ को राजनीति से रुचि न थी। उन्हें वैज्ञानिक अनुसंधान की सुविधाएं प्राप्त थीं और इससे वे सन्तुष्ट थे। कामरेड खतून आरशाही युद्ध म पर्याप्त यन्त्रणा झेल चुकी थी और अब साम्यवाद के लिए 'इस स्त्री के लिए जीवन का प्रत्येक कार्य ससार व्यापी पूँजीवादी व्यवस्था के विरुद्ध निरन्तर युद्ध की शृखला है।' गुलशा को डाक्टर से प्रेम है और जिसके प्रति डाक्टर का आकर्षण भी दुर्दमनीय था। किन्तु राज का विचार डाक्टर को गुलशा के मोहपाश से दूर रखता। अपनी पलायन वृत्ति के कारण डाक्टर समरकन्द में टिक न सका और राजनीतिक शिक्षा ग्रहण करने के लिए मास्को चला गया। वहीं उसे नासिर मिल गया। कुछ दिन वहा रहने के उपरांत डॉ० व नासिर काले समुद्र की राह भारत की ओर चल पड़े।

खन्ना की अनुपस्थिति म स्वदेश म जो कथा-सूत्र रह जाता है, वह इतनी लम्बी अवधि म अनेक मोड ले चुका है। पति का समाचार न मिलने स डाक्टर की पत्नी राजदुलारी अत्यन्त व्याकुल होती है और इसी स्थिति म जब उन्हें सीमान्त के फौजी अधिकारियों से डाक्टर खन्ना की मृत्यु का सवाद मिलता है तो वे मृत्यु की आकांक्षा से अफीम खा लेती हैं। किन्तु तत्काल उपचार हो जाने से दे बच जाती हैं। उसको दुःख और चिन्ता की इस स्थिति मे डाक्टर खन्ना के मित्र शिवनाथ व बद्रीबाबू से बहुत सहायता व समवेदना मिलती है। ये दोनो ही राष्ट्रीय कार्यकर्त्ता थे। शिवनाथ व डाक्टर एक समय आतकवादी दल के सदस्य थे और बम के आतक से राष्ट्रोद्धार की योजना कार्यान्वित करना चाहते थे। किन्तु पहले ही बम म शिवनाथ पकड लिया गया और उसे सजा हुई। जेल से छूटने के बाद वह समाजवादी दल का नता हो गया। बद्रीबाबू दक्षिण पथी कांग्रेसी थे जो गाँधी जी के रचनात्मक कार्यक्रम म अटूट आस्था-वान थे। मजदूरों के कार्यक्रम को लेकर शिवनाथ ने उनके नेतृत्व का चुनौती-सी दी। बहुत दिनो तक पति का शोक मनाते रहने के बाद जब राज ने अपने घर म अपनी वास्तविक स्थिति देखी तो वह बद्री बाबू की प्रेरणा से उनके सेवाश्रम म जाकर उनको सहयोग दने लगी। इस तरह राज बद्रीबाबू के निकट आई और एक दिन समाचार प्रकाशित हुआ, 'राजनैतिक विवाह' देहली के प्रसिद्ध नता बद्रीबाबू का श्रीमती राज दुलारी से अदालती विवाह।' तीसरे ही दिन समाचार था —'चादनी चौक देहली में युद्ध-विरोधी व्याख्यान देने के कारण त्याग-मूर्ति बद्रीबाबू की गिरफ्तारी।' राज रानी खेत म आश्रम म रहने लगी और वहीं कुछ समय उपरान्त उसे पुत्र प्राप्ति हुई। सन् १९४२ की क्रांति प्रारम्भ हुई और शिवनाथ फरार होकर मजदूरो को ध्वसकार्य के लिए प्रेरित करता रहा।

खन्ना भारत पहुँचकर कुछ दिन बम्बई मे नाम बदलकर कम्युनिस्ट पार्टी का कार्य सचालन करता रहा तदुपरान्त कानपुर पहुँच डाक्टर वमा के नाम से दवा की

दुकान खोलकर पार्टी का काम करने लगा। रूस के ऊपर जर्मन आक्रमण होने ही साम्यवादियों ने महायुद्ध को संज्ञा दी और सरकार ने भी पार्टी के ऊपर से प्रतिबंध उठा लिये। उन दिनों शिवनाथ की बहिन यमुना, राज की बहिन चन्दा व उसके पति कानपुर में ही थे। डाक्टर खन्ना यमुना से मिले और वहीं उनकी भेंट शिवनाथ से हुई। सैद्धान्तिक मतभेद होने पर भी दोनों मित्रों में पूर्ववत् स्नेह था। डाक्टर चन्दा के घर भी आने जाने लगा। दोनों एक दूसरे के प्रति आकर्षित हुए। एक ओर शिवनाथ युद्ध प्रयत्न में रोड़े अटकाने के लिए मिल मजदूरों को ध्वंस कार्यों के लिए प्रोत्साहित करता है दूसरी ओर खन्ना लोकयुद्ध की सफलता के लिए अपनी पार्टी के साथ कार्यरत है। शिवनाथ के भड़काने से मजदूर एक मिल में आग लगाना चाहते हैं और खन्ना व उसके साथी उन्हें रोकने पहुँचते हैं। दोनों दलों में मारपीट होती है और खन्ना बेतरह घायल हो जाता है। चन्दा को शिवनाथ का खन्ना के नाम एक पत्र मिला जिसमें सहानुभूति व्यक्त करते हुये चेतावनी दी गई थी कि २४ घन्टे के भीतर वह कानपुर छोड़ दे अन्यथा पुलिस को उसको यथार्थ परिचय दे दिया जावेगा।

उसकी चोट का समाचार पा चन्दा व्याकुल हो डाक्टर के घर पहुँची और खन्ना के अनुरोध से राज के पास रानीखेत चल पड़ी। चन्दा के द्वारा समाचार जान राज मूर्छित हो गई और मूर्छा भंग होने पर उसने अपनी असमर्थता व्यक्त की। चन्दा खन्ना को लेकर चल पड़ी रास्ते में उसके पति राजाराम आते दिखाई पड़े। पास आते ही उन्होंने चन्दा को पीटना शुरू कर दिया। वह अचेत हो जाती है। खन्ना के पास पहुँचकर राजाराम कह उठा—'तुम धूर्त, देशद्रोही, बदमाश! दूसरों के घर आग लगाकर तमाशा देखने वाले बेशरम!'

राजाराम की आज्ञा से कुली खन्ना को डाँडी से उठा पत्थरों के बीच समतल भूमि पर लिटा कर चल देते हैं। निराशा व अवसाद से वह उन्हें जाते देखता रहा। बीतते हुए क्षण के साथ उसकी जीवन शक्ति का ह्रास होता है और वह बड़बड़ाता है— याद में देशद्रोही नहीं याद उनसे कहना . हाँ साहस से .

संक्षेप में यही 'देशद्रोही' का कथानक है जो भिन्न-भिन्न शीर्षकों के अन्तर्गत परिच्छेदों में दिया गया है। उपन्यास का उद्देश्य कांग्रेस कार्यक्रम की अपेक्षा साम्यवादी दल के कार्यक्रम को ऊँचा दिखाना है। उपन्यासकार की दृष्टि में कांग्रेस पूँजीपतियों की संस्था है और उसके भीतर संगठित होकर वैधानिक उपायों द्वारा उसे समाजवादी शक्ति बना सकने का स्वप्न व्यर्थ है। श्रेणी संघर्ष की चेतना शोषित वर्ग में उतनी अधिक जागृत नहीं जितनी कि शोषक वर्ग और उनके सहायकों में हो रही है। कारण यह कि वे शिक्षित हैं और साधन संपन्न। कांग्रेस को जनमत से समाजवादी शक्ति बनाने के प्रयत्न कांग्रेस के विधान के अनुसार अवैधानिक बनते जा रहे हैं। जनमत पैदा करने

के साधन सब पूंजीपतियों के हाथ में है। वे शोषित जनता के 'हाय रोटी' कहने को संकीर्णता, स्वार्थ और श्रेणी हिंसा कहते हैं। और अपनी श्रेणी के अधिकार बढ़ाने के आन्दोलन को 'हाय देश' कह उसे त्याग बताते हैं। यदि कांग्रेस आन्दोलन में सहयोग दे पाने की शर्त ईश्वर में विश्वास होना हो सकती है तो फिर जनता को मूर्ख बनाये जा सकने की कोई सीमा नहीं।'

उपन्यासकार की साम्यवाद पर अटूट निष्ठा है और इस कृति के द्वारा भी उसने मार्क्सवाद का प्रचार किया है। त्रिभुवन सिंह के शब्दों में 'देशद्रोही के अन्दर' दादा कामरेड की भाँति अन्य भारतीय राजनैतिक दलों की छीछालेदर नहीं की गयी है, बल्कि लेखक का एकमात्र लक्ष्य भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी का समर्थन करना है। वह साम्यवाद का प्रचार करना चाहता है तथा १९४२ ई० में किये गये देशद्रोह का कलंक अपनी औपन्यासिकता के द्वारा कम्युनिस्ट पार्टी के मस्तक से धोना चाहता है।'[1]

उपन्यास का कथानक सन् बयालीस की क्रान्ति से सम्बन्धित है और सामयिक समस्याओं के उद्घाटन द्वारा साम्यवादी दल की तत्कालीन रीतिनीति की प्राण प्रतिष्ठा का प्रयत्न किया गया है। कहा गया है कि 'प्रेमचन्द के उपन्यास जिस तरह गाँधीवादी युग के भारतीय जीवन को चित्रित करते हैं, यशपाल का प्रस्तुत उपन्यास उसी तरह उत्तर गाँधीवादी-युग की चेतना को व्यक्त करता है।'[2] डॉ० सुषमा धवन इस उपन्यास को राजनीतिक रोमांस या साम्यवाद का प्रचारवाहक नहीं मानती। उनके मतानुसार 'इसका मूल उद्देश्य समाजवादी मान्यताओं के आधार पर जीवन का विकास दिखाना है, अनेक नारियों के जीवन चित्रण द्वारा सामाजिक विकास के विविध स्तरों का उद्घाटन करना है जिससे नारी के शोषण तथा संघर्ष की वास्तविक परिस्थितियों का बोध हो जाता है।' इसमें संदेह नहीं कि देशद्रोही के उद्देश्य का एक गौण रूप यह भी है किन्तु उसका मुख्य प्रयोजन साम्यवाद का प्रचार करना ही है। द्वितीय महायुद्ध के परिणाम स्वरूप तथा सोवियत संघ के युद्ध में भाग लेने के कारण भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी ने एक ओर उसे जहाँ जनता का युद्ध निरूपित करने का प्रयास किया वहीं दूसरी ओर जनता ने उनके इस कृत्य को देशद्रोह बताया। डाक्टर खन्ना के प्रतीक के रूप में वे कम्युनिस्टों द्वारा उठाये गये उस राजनीतिक कदम को देशद्रोहिता के स्थान पर देशभक्ति के रूप में प्रतिष्ठित करना चाहते हैं। किन्तु खन्ना के निर्बल व्यक्तित्व के कारण वह पाठक की सहानुभूति ही प्राप्त कर सकता है, साम्यवाद के प्रति आकर्षित नहीं। गंगा प्रसाद पाण्डेय का यह मत उचित ही है कि 'काश कि डॉ० खन्ना को लेखक

---

१ त्रिभुवन सिंह—'हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद,' पृष्ठ २०६

२ सुषमा धवन,—'हिन्दी उपन्यास,' पृष्ठ २६६

ने कम्युनिस्ट बनाकर आदर्श के रूप मे उपस्थित न किया होता तो देशद्रोही शरद के सामाजिक उपन्यासो के बीच मे खप जाता और उसकी गुरुता बढ गई होती।'[1]

उपन्यास का नायक होने पर भी वह उपन्यास के प्रारम्भ से ही अप्रत्याशित घटनाओ के भवर जाल मे पड जाता है और अन्त तक वह इसी भवर मे चक्कर लगाता रहता है। वह जीवन पर्यन्त असफलताओ, विरोध और सघर्ष के बीच लेखक के हाथो का खिलौना मात्र प्रतीत होता है। लेखक की इच्छानुसार खन्ना प्रत्येक वातावरण मे ढलता चला गया है। वातावरण की उसके चरित्र पर जो प्रतिक्रिया दिखाई गई वह अत्यन्त क्षीण है। कथोपकथन मे समाजवाद का विवेचन अच्छा होते भी उसका आधार पात्र उसके विपरीत हो गया है और उसका पोषक न हो सका। वातावरण निर्माण मे भी उसके व्यक्तित्व का कोई हाथ नहीं। इस प्रकार पात्र, घटना एव परिस्थिति सभी मे एक प्रकार की कृत्रिमता सी प्रतीत होती है।[2]

उपन्यास के अन्य राजनीतिक पात्र है—बद्री बाबू व शिवनाथ। 'समय का प्रवाह' प्रकरण मे खन्ना के साथ शिवनाथ तथा बद्री बाबू के राजनैतिक कार्यक्रम का वर्णन है, *'त्याग की राह' मे दिल्ली के राजनैतिक जीवन के बीच बद्री बाबू के* व्यगात्मक चित्र हैं। 'अपने की चाह' प्रकरण मे कानपुर के राजनीतिक कार्यक्रम के साथ शिवनाथ का चित्रण आता है।

बद्रीबाबू गाधीवादी आदर्शो के प्रतीक हैं। खन्ना के साथ उनका तुलनात्मक चित्रण प्रस्तुत करने और साम्यवादी नेता की तुलना मे काग्रेसी नेता को उपहासास्पद स्थिति मे चित्रित करने की दृष्टि से उपन्यासकार ने बद्री बाबू को अपने व्यग का लक्ष्य बनाया है। 'जिस रूप मे उनका चित्रण किया है उससे वे और वह महान सस्था जिसका वे प्रतिनिधित्व करते है स्थान स्थान पर उपहासास्पद हो उठी हैं।[3] बद्रीबाबू सादगी की प्रतिमूर्ति है—सादा भोजन, साधारण वेशभूषा और व्यवहार भी सादा। मजदूरो का सा जीवन-यापन करते हुए भी समय बचाने के विचार से मोटर का प्रयोग करने मे नहीं चूकते। 'बद्रीबाबू सेवाश्रम मे ही रहते। अपनी आवश्यकताओ को उन्होने कम कर दिया, मोटा खाना, मोटा पहरना और यथा सभव पैदल चलना। सेवाश्रम के काम के लिए उन्हे चांदनी चौक जाना पडता तो पैदल जाते। यह देख उनकी सुविधा और समय के विचार से सेठ भाटिया ने अपनी एक मोटर उनके व्यवहार के लिए दे दी।

मोटर और दूसरे यत्रो से बद्री बाबू को प्रेम न था। जीवन की सादगी को

1. गगाप्रसाद पाण्डेय—'आधुनिक कथा साहित्य,' पृष्ठ १४०
2. शिवनारायण श्रीवास्तव—'हिन्दी उपन्यास,' पृष्ठ ३३०
3. शिवनारायण श्रीवास्तव—'हिन्दी उपन्यास,' पृष्ठ ३३१

नष्ट कर, उसमे विषमता लाने वाली मशीनरी को भी वे अच्छा न समझते थे, परन्तु उनका समय जनता का समय था। कांग्रेस के दूसरे कार्यकर्त्ताओ के बहुत कुछ कहने-सहने पर इस समय का सदुपयोग करने के लिए उन्होंने मोटर का व्यवहार स्वीकार कर लिया था।

कांग्रेसी की हीनता दिखलाने के लिए ही उनका चरित्र विद्रूप कर दिया गया है। अधावस्था मे विधुर होने के बाद लम्बे अरसे तक एकाकी जीवन व्यतीत करने के बाद प्रौढ़ावस्था में विधवा राज से पत्नी सम्बन्ध बनाने मे भी उन्हें परहेज नहीं।

शिवनाथ समाजवादी दल का सदस्य है जिसने सन् बयालीस के विप्लव मे साम्यवादी दल का विरोध किया था और राष्ट्रीय स्वाधीनता के लिए विद्रोह किया था। शिवनाथ अपने विद्यार्थी जीवन मे आतंकवादी था। बम ले जाते हुए उसे कारावास हुआ और मुक्त होने पर समाजवादी दल का सक्रिय सदस्य बन गया। कांग्रेस मे उसकी निष्ठा नहीं है और वह उसका समयानुकूल उपहास करता है।

पार्टी कामरेड

राजनीतिक वातावरण से आच्छादित 'पार्टी कामरेड' यशपाल का चतुर्थ उपन्यास है जो सन् १९४६ मे प्रकाशित हुआ। 'पार्टी कामरेड' पदमलाल भावरिया नामक चरित्रहीन पूंजीपति को साम्यवादी कार्यकर्त्री गीता से प्रेम करने के कारण क्रमश परिवर्तित होते तथा अन्त में नाविक सैनिक विद्रोह मे सक्रिय भाग लेकर आत्मोत्सर्ग करते दिखाया गया है। उपन्यास लघुकाय है और इसमे पदमलाल भावरिया का चरित्र विकास और साम्यवादी चेतना का प्रस्फुटन दिखाया गया है। इसके साथ ही नाविक विद्रोह का प्रचड स्वरूप और साम्यवादी दृष्टि से उसकी असफलता का स्पष्टीकरण भी उपन्यास का प्रमुख प्रयोजन है। यशपाल के अन्य राजनीतिक उपन्यासो की भांति प्रस्तुत उपन्यास मे भी पदमलाल भावरिया व गीता के माध्यम से प्रेम प्रसग का रोमांटिक चित्रण है। फिर भी 'पार्टी कामरेड' यशपाल के उपन्यासो मे राजनीति की दृष्टि से अधिक सफल है यद्यपि इसमें भी गीता और भावरिया का प्रेम प्रसग जोड़ा गया है पर राजनीति ने रोमास को दबा दिया है।'[1] वस्तुत. साम्यवादी चेतना को उद्दीप्त करने के लिए ही लेखक ने साम्यवादी कार्यकर्त्री के प्रति प्रेम का सचार दिखाया है *किन्तु ऐसा करने मे वह कुछ चूक कर गया है। भावरिया का चारित्रिक विकास जिस* रूप मे चित्रित किया गया है उसके कारण उसके उत्सर्ग की महानता धूमिल हो गई है। एक समीक्षक के मत से 'लेखक यह नहीं दिखला पाया है कि भावरिया के हृदय

१. सुरेशचन्द्र तिवारी—'यशपाल और हिन्दी कथा साहित्य,' पृष्ठ १०३

में सामाजिक न्याय की प्रेरणा आ गई या नहीं। वह अपने सामाजिक संस्कारों के कारण नहीं बल्कि गीता के प्रेम को प्राप्त करने के लिए बढ़ा था और अन्य प्रेमियों की भांति उसने भी अपने को प्रेम की वेदी पर बलि दे दी।'[1] यह सत्य है कि भावरिया का चारित्रिक विकास समुज्ज्वल नहीं है उसमें नायक की दुर्बलता ही उभर कर आई है धीरोदात्त स्वरूप नहीं। इसका मात्र कारण यही प्रतीत होता है कि यशपाल यथार्थवादी उपन्यासकार है और वे गुणों के साथ-साथ मानव की स्वाभाविक दुर्बलताओं और परिस्थितियों के प्रभाव के प्रति भी उपेक्षा भाव नहीं रखते।

भावरिया की तुलना में गीता का चरित्र-चित्रण महत्वपूर्ण है। उसमें नायिका की चारित्रिक दृढ़ता और हृदय की कोमलता का सुमेल है। कालेज के छात्राजीवन में ही उसमें राजनीति के प्रति अभिरुचि जाग्रत हो जाती है। हम पहले उसे कांग्रेस की स्वयंसेविका के रूप में तथा राजनीतिक जिज्ञासा और फलस्वरूप उसके उचित समाधान होने पर कम्युनिस्ट पार्टी की सक्रिय सदस्यों के रूप देखते हैं। साम्यवादी कार्यकर्त्री के रूप में वह सड़कों पर पार्टी का साहित्य और अखबार बेचती है, पार्टी के लिए घर-घर जाकर चंदा एकत्र करती है। दल के प्रति वह निष्ठावान है और दल को रुपये की आवश्यकता पड़ने पर अपना लाकेट तक देने में संकोच नहीं करती। सदस्या के रूप में उसकी (भारतीय नारी) लज्जा और संकोच का स्थान दृढ़ता व आत्मविश्वास ने लिया और पार्टी व पार्टी का कार्य ही उसके लिए सर्वस्व हो गया। इसीलिए कहा गया है कि 'गीता के चरित्र का विकास साम्यवादी दल के सदस्यों के विचार-विनिमय तथा व्यवहार के आधार पर निरूपित किया गया है।' अपने इन्हीं गुणों के कारण वह चरित्रहीन भावरिया को भी न केवल पार्टी का 'सेम्पथाइजर' बना लेती है वरन् नाविक आन्दोलन के अवसर पर उत्सर्ग करने में प्रेरक सिद्ध होती है। इससे उपन्यास में करुणा की भावना घनीभूत होती है और वैयक्तिक प्रेम के स्थान पर सामाजिक हित का पक्ष सबल होता है।

राजनीतिक पक्ष

लघुकाय होने पर भी 'पार्टी कामरेड' में राजनीतिक सिद्धान्तों व राजनीतिक घटनाओं की विवेचना मिलती है। साम्यवादी दल की सजीव झांकियां प्रस्तुत कर उसके कार्य-पद्धति और सिद्धान्तौचित्य का विवरण स्थल-स्थल पर मिलता है। सब वह भी वैसे ही करता था, मास्सफोर्स, प्रोलिटेरिएट, पेट्रियोटिक ड्यूटी, सेल्फ डिटर्मिनेशन, ऐंटी इम्पिरियलिस्ट, आर्गेनाइज्ड-वर्किंग क्लास एंड पेजेन्ट्री जैसे मजहर, श्रीनिवास रंगा

1 त्रिभुवन सिंह—'हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद,' पृष्ठ २०६

और यूनियन के दूसरे कामरेड[1]—' साम्यवादी दल मे नारी का स्थान, दल का दृढ अनुशासन, पार्टी के सचालनार्थ धन सग्रह की व्यवस्था के साधन पर यथोचित प्रकाश डाला गया है। पात्रों के चारित्रिक विकास के द्वारा इस तथ्य का उद्घाटन भी किया गया है कि कामरेडो का जीवन उनका स्वय का न होकर उनके सिद्धान्तो के लिए होता है और व्यक्तिगत जीवन मे ऐसे कार्य व व्यवहार के लिए स्वतन्त्र नहीं है जिसके कारण पार्टी के उद्देश्य या स्थिति पर विपरीत प्रभाव पडे। उनके काय व्यक्तिगत न होकर पार्टीगत होते हैं। पार्टी का सिद्धान्त व अनुशासन ही सर्वोपरि है। कामरेड गीता से कहता है 'तुम्हारा जीवन अपने लिए है या उद्देश्य के लिए? तुम्हारे प्रत्येक व्यव हार का प्रभाव तुम्हारे उद्देश्य पर और पार्टी की स्थिति पर पडता है।' वह यह भी सूचित करता है कि पार्टी के लोग 'मेम्बरो की प्राइवेट लाइफ (व्यक्तिगत जीवन) भीरोली पार्टी की लाइन पर (पूर्णत पार्टी के अनुशासन म) चाहते हैं।'

कांग्रेस का उपहास

साम्यवाद के सिद्धान्तो के प्रचार के साथ कांग्रेस की आलोचना यशपाल के उपन्यासो की सामान्य विशेषता है। कांग्रेस व उसके सिद्धान्तो को नीचा दिखाने के लिए वे किसी कांग्रेसी पात्र का 'कैरिकेचर' (व्यग चित्र) प्रस्तुत करना नही भूलते।

'पार्टी कामरेड' मे कांग्रेस की आलोचना की गई है और कांग्रेस नेता भावाजी का व्यगचित्र खींचा गया है।

'कांग्रेस विदेशी माल का बायकाट करती है और विदेशी माल के व्यापार से कमाया रुपया लेती है। ये जो कांग्रेस के 'इलेक्शनफड' मे बम्बई अहमदाबाद, कानपुर से लाखो की रकम चढी हैं, यह ब्लैक-मार्केट की कमाई है या नहीं? बङ्गाल का दुर्भिक्ष पैदा करने वाला का रुपया है या नही? कांग्रेस ने 'बार' का बायकाट किया और 'बार' की सप्लाई करने वालो का बायकाट नहीं किया, क्योकि वहाँ से लाखो रुपया जो मिल रहा था। यह सब इम्मोरल-मनी' नही हुआ[1]?' गीता मानती है कि उत्पादन और वितरण की असमानता ही साम्राज्यवाद का निर्माण करती है। 'भारतवर्ष इतना बडा देश है, यहाँ की जन सख्या इतनी अधिक है, फिर वह छोटे से देश इगलैन्ड के आधीन क्यो है? सब पदार्थ और धन श्रम से ही पैदा होते हैं फिर समाज मे श्रम करने वाला की ही अवस्था सबसे बुरी क्यो है? कोई एक पदार्थ तैयार करने की मजदूरी मजदूर को बहुत कम मिलती है और बाजार मे उस वस्तु का दाम काफी अधिक रहता है। यह अन्तर ही मालिक का मुनाफा और मजदूर का शोषण है। मुनाफा कमाने के लिए

१. यशपाल—'पार्टी कामरेड,' पृष्ठ २५

पूँजीपति व्यवसाय और मजदूरों पर अधिकार जमाता है और फिर व्यवसाय का क्षेत्र बढ़ाने के लिए दूसरे देशों पर अधिकार, यानी साम्राज्यवाद—।[1]

कांग्रेस नेता भावाजी का निम्न नेता बनने के प्रलोभन मे चुनाव लड़ने वाले राजनीतिक उम्मीदवारों के नैतिक पतन को स्पष्ट करता है। सैनिक विद्रोह के समय जनता व्यंग से कहती है—'बड़े-बड़े स्वराज के लेक्चर देते रहे। अब जब मौका आया, तोप बन्दूक देखी तो काछ खोलने लगे ।'[2]

नाविक सैनिक विद्रोह

उपन्यास मे वर्णित नाविक सैनिक विद्रोह ऐतिहासिक राजनीतिक घटना है। लेखक ने सैनिक विद्रोह के संबंध मे कांग्रेस व साम्यवादी दल के विचारों को व्यक्त करते हुए यह प्रतिपादित करने की चेष्टा की है कि नाविक सैनिक विद्रोह केवल सैनिकों तक ही सीमित न होकर जन साधारण की वस्तु बन गई थी। उसके पीछे अत्याचार दमन और देश-स्वतन्त्रता की पवित्र भावना संयुक्त थी। कांग्रेस सैनिकों की इस कार्यवाही को उचित नहीं मानती थी। भावरिया समाचार पत्र मे सरदार पटेल की यह अपील पढ़ कर आश्चर्य चकित रह जाता है—'जनता इस नाजुक परिस्थिति मे सब प्रकार शांत रहे। हड़ताल आदि के द्वारा नगर मे किसी प्रकार की अशांति न होनी चाहिए। जहाजी सिपाहियों ने नेताओं से सलाह लिये बिना सेना का अनुशासन भंग किया है। उनके इस काम मे किसी प्रकार का सहयोग जनता को न देना चाहिए।' सरदार पटेल की अपील के अनुसार ही भावाजी हड़ताल न करने और सहयोग न देने का मुहिम चलाते है। सैनिक विद्रोह का समर्थन करने के कारण वे कम्युनिस्ट पार्टी की भर्त्सना करने से नहीं चलते। भावाजी भावरिया को समझाते है—'कल तक यही लोग तो अपने ऊपर गोली चलाते थे, क्यों? और ऐसे समय यह उपद्रव खड़ा कर दिया इन लोगों ने। भड़काने वाले जो हैं उन्हे तो जानते हो हो? सन् बयालीस मे तो सरकार की बगल मे जा छिपे थे। और क्या गांधी जी, सरदार पटेल और नेहरू जी से भी ज्यादा राजनीति समझते हैं यह लोग? इस वक्त सरकार झुक रही है, समझौते की बात हो रही है, पर इन्हे तो देश का नुकसान जो करना है।'[3]

वे यह भी स्पष्ट करते हैं 'हिंसा-हत्या के काम अपने कांग्रेस के नहीं हैं। सरकार की अपनी फौज और सरकार के झगड़े मे अपने को क्या? अपने पेट के लिए वे लोग हड़ताल कर रहे हैं तो अपने को क्या?'

---

१. यशपाल—'पार्टी कामरेड,' पृष्ठ २२
२ यशपाल—'पार्टी कामरेड,' पृष्ठ १२५
३. यशपाल—'पार्टी कामरेड,' पृष्ठ १२४

कम्युनिस्ट पार्टी विद्रोहियो का समर्थन करती है। पार्टी की ओर से गोता हड़ताल के लिए लोगो से अपील करती है और कहती है--'हमारी नाराजी और विरोध अंग्रेज सरकार के जुल्म के खिलाफ है और हम विदेशी सरकार को चेतावनी देते है कि अपने शहीद होने वाले प्रत्येक नौजवान के खून का बदला खून से लेंगे।'[1] कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व मे हुई सफल हडताल और पुलिस के नृशस व्यवहार का चित्रण भी सफलता से किया गया है।

सैनिक विद्रोह को लेखक ने नये विहान के रूप मे देखा—'जिस सैनिक शक्ति से कुचले जाकर भारतवासियो ने सदा विवशता और निर्बलता अनुभव की है वही सैनिक शक्ति देश की पुकार को लेकर आजादी के युद्ध क्षेत्र मे उतर रही थी।' यहाँ यह ज्ञातव्य है कि कांग्रेस और मुसलिम लीग दोनो ने इस नाविक-विद्रोह का समर्थन नहीं किया था। जनता मे अवश्य ही विद्रोहियो के प्रति सहानुभूति थी और कम्यूनिस्ट पार्टी ने इस अवसर का राजनीतिक लाभ उठाया था।

चुनाव चित्रण

बम्बई मे चुनाव की स्थिति का चित्रण कर कांग्रेस और कम्युनिस्ट पार्टी के चुनाव प्रचार और सिद्धान्तो की विस्तृत व्याख्या की गई है। एक ओर जहा 'कांग्रेस के नेता लीग से अधिक कोध प्रकट कर के कम्युनिस्ट पार्टी के प्रति क्योंकि कम्युनिस्ट लीग की पाकिस्तान की माग के सिद्धान्त का समर्थन १९४२ से कर रहे थे। कम्युनिस्टो को देशद्रोही, गद्दार और मुस्लिम लीग के पिट्ठू कहा जाता।'[2] अधिकाश अखबारो मे भी ऐसे ही समाचारो की बाढ रहती—'कम्युनिस्ट, मुस्लिम लीग और सरकार से पैसा लेकर देशद्रोह करते है, गोमास खाते हैं और अपनी पार्टी की लडकियो को किराये पर देते है।[3] इतना ही नही भावरिया राजनैतिक व्याख्यानो मे प० जवाहर लाल और सरदार पटेल के मुख से सुनता है कि 'कम्युनिस्ट अंग्रेजो से मिले हुये हैं और देश से गद्दारी कर रहे है। भावाजी भी समझाते हैं 'अब तक तो मुसलमान कांग्रेस के दुश्मन थे ही, अब इन लाल-झवडा वाले कम्युनिस्टो को देखो। कम्युनिस्ट क्या कौम नष्ट है। अंग्रेजो से पैसा खाते है'[4], चुनाव को लेकर (जिसमे कामरेड डांगे के खडे होने का उल्लेख है) चुनाव प्रचार के टेक्नीक और फलस्वरूप आपसी दगे का चित्रण किया गया है।

'जनयुग' प्रेस पर, हुये हमले का विवरण भी है। चुनाव के अवसरो पर समा-

---

१ यशपाल–'पार्टी कामरेड,' पृष्ठ १२०

२ यशपाल–'पार्टी कामरेड,' पृष्ठ ३५

३ यशपाल–'पार्टी कामरेड,' पृष्ठ ७६

४. यशपाल–'पार्टी कामरेड' पृष्ठ ८६

चारपत्रों की भूमिका पर भी प्रकाश डाला गया है। गीता को उसके कम्युनिस्ट पार्टी के समर्थन के कारण समाचार पत्र किस निम्न स्तरीय प्रचार तक उतर आये इसका उदाहरण है।

समाचार था—'कम्युनिस्ट-सखी गीता के लिए गुडों के दलों में मारपीट ! कम्युनिस्ट सखियां शृगार करके मनचले जवानों को 'जनयुग' पढ़ाने निकलती है। इसके परिणाम में होने वाली घटनाओं का यह उदाहरण है। जनता ऐसे अनाचार की उपेक्षा कब तक करेगी।'

इसके विरुद्ध कम्युनिस्ट पार्टी का मुख पत्र 'जनयुग' ऐसे समाचारों को मोटे-मोटे अक्षरों में छापना जिसमें विरोधी पक्षों द्वारा कम्युनिस्टों के प्रति दुर्व्यवहार की घटना होती। पिटने वाले या ज्यादती सहने वाले कामरेडों के चित्र छापे जाते। ...कामरेडों का विचार था कि गाली और मार खाना ही उनकी विजय में सहायक होगा। जनता की सहानुभूति स्वयं ही पीडितों की ओर हो जायगी।[1]

इस प्रकार हम यह स्पष्ट देखते है कि राजनीतिक दलों द्वारा राजनीतिक उत्तेजना उत्पन्न करने में समाचार-पत्रों को अमोघ अस्त्र के रूप में किस तरह प्रयुक्त किया जाता है।

मनुष्य के रूप (१६४६)

'मनुष्य के रूप' यशपाल का अर्ध-राजनीतिक उपन्यास है जिसमें 'राजनीति वैयक्तिक जीवन के सामने सिर झुका लेती है, और सम्पूर्ण उपन्यास स्त्री-पुरुषों के अनैतिक सम्बन्धों के आधार पर चलता है। स्त्री-पुरुष की समस्या के सामने विशाल राष्ट्रीय समस्याएं लुप्त हो जाती है।'[2] ब्रजरत्न दास का भी मत है कि 'इसमें यौन-समस्या तथा अहं भाव का चित्रण है और इसमें यथार्थवाद का पूरा पुट है। राजनीतिक दृष्टिकोण भी है और कला-कौशल भी।'[3]

राजनीति जीवन का ही एक पक्ष है उससे पृथक रहनेवाली वस्तु नहीं अत यह आवश्यक नहीं है कि वह प्रत्येक बार जीवन को आच्छादित ही करे। मानव जीवन का अपना अस्तित्व अलग है और यह आवश्यक नहीं है कि वह राजनीति के 'मेकअप' से ही सौन्दर्य की कृत्रिम वृद्धि करे। 'मनुष्य के रूप' का कथन या उसके पात्र राजनीति से बोझिल नहीं हैं पर राजनीति से पूर्णत. असम्पृक्त भी नहीं। इसका कथानक व पात्र

१. यशपाल — 'पार्टी कामरेड' पृष्ठ ८३
२. डॉ० गणेशन — 'हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन' पृष्ठ २१५
३. ब्रजरत्न दास — 'हिन्दी उपन्यास-साहित्य' पृष्ठ ३३६

आर्थिक कारणों से सचालित हैं और इस तरह लेखक की मूल प्रेरणा 'मार्क्स' के सिद्धान्त पर आधारित है जो यह मानता है कि मनुष्य के सारे कार्यकलापो का कारण अर्थ होता है। त्रिभुवन सिंह के इस मत से हम भी सहमत है कि 'मनुष्य के रूप' में परिस्थितियो के कारण परिवर्तित होने वाले मानव स्वरूप के मूल मे आर्थिक-समस्या ही है।'[1] उपन्यास का कथानक राजनीतिक नही है किन्तु प्रासगिक रूप स राजनीतिक प्रसग का समावेश अवश्य मिलता है। कथा का केन्द्र न होकर भी सोशलिस्ट, कांग्रेस और कम्युनिष्ट पार्टी के प्रसग के साथ कम्युनिस्ट पार्टी के दफ्तर की कार्य वधि का सविस्तार वर्णन उपन्यास को अश-राजनीतिक स्वरूप प्रदान करता है। सभवत इसी कारण किसी नवोदित समीक्षक का कथन है कि 'कथा का केन्द्र बिन्दु तो सोभा ही है, मुख्य कथा सोभा की ही है जिसमे राजनीति का समावेश बौद्धिक आग्रह ही कहा जा सकता है।' राजनीति बौद्धिक चेतना का ही प्रतिफलन है और साहित्य म उसका प्रवेश बौद्धिक आग्रह के रूप मे हो तो किसी को आश्चर्यचकित होने की आवश्यकता नहीं।

यशपाल जी मार्क्सवादी उपन्यासकार हैं यह निर्विवाद है। मार्क्स के सिद्धान्तो का प्रचार उनके साहित्य के प्रमुख उद्देश्यो मे से है। जैसा कि पूर्व ही कहा जा चुका है प्रस्तुत उपन्यास मार्क्स के आर्थिक सिद्धान्तो के अनुरूप मनुष्य के बदलते हुये रूप का 'एलबम' है। उपन्यास के प्रमुख पात्र धर्नसिंह व पात्रा सोभा के परिवर्तित स्वभाव का मूल आधार उनकी आर्थिक असुविधायें हैं। आर्थिक परिस्थितिया मनुष्य के रूप को किस तरह बदलती रहती है सोभा इसका ज्वलन्त उदाहरण है। 'शरीर सुख की अभिलाषा ने सोभा को व्यभिचारिणी बनाया, जिससे उस जीवन की अनेक दर्धोनी गन्दी गलियो से गुजरना पडा है।' जिस सामाजिक व्यवस्था ने सोभा को इतने स्वरूप बदलने को बाध्य किया लेखक ने उसकी अच्छी बखिया उधड दी। शिवनारायण श्रीवास्तव ने इसे 'वर्तमान सामाजिक व्यवस्था के प्रति प्रच्छन्न विद्रोह' निरूपित किया है। उनका मत है कि सत्य पर आवरण डालकर मनुष्यो को पशुओ के स्तर पर लाने वाली पूजीवादी सभ्यता के जर्जर अगो के घिनौने स्वरूप का बडा ही यथातथ्य उद्घाटन किया गया है।'[2] यह यथातथ्य उद्घाटन साम्यवादी ढग पर है और यह समझाने का प्रयास किया गया है कि मनुष्य की वर्तमान विकृतियो का समाधान साम्यवाद के मार्ग से ही सम्भव है।

सोभा और मनोरमा के प्रेम-प्रसग उपन्यास की गम्भीरता को बहुत अशो मे

१. त्रिभुवन सिंह — 'हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद' पृष्ठ २०८
२. शिवनारायण श्रीवास्तव — 'हिन्दी उपन्यास' पृष्ठ ३३८

क्षीण बनाते हैं। किन्तु यहां यह द्रष्टव्य है कि 'सोभा' के माध्यम से उपन्यासकार ने मार्क्सवादी प्रभाव के अनुकूल प्रेम की द्वन्द्वात्मकता के प्रतिपादन की चेष्टा की है। वे नारी के स्वतन्त्र अस्तित्व को नहीं मानते हैं और इसी से उनके नारी पात्रों का पुरुष के प्रति प्रेम आश्रित का आश्रय के प्रति प्रेम का प्रतीक बन कर रह जाता है। वे यह मानते हैं कि जब तक स्त्री पुरुष के समान आर्थिक दृष्टि से स्वतन्त्र नहीं हो जाती तब तक स्त्री-पुरुष की समानता का प्रश्न नहीं उठता। आर्थिक स्वतन्त्रता विहीन नारी सोभा की तरह जीवन की हर आवश्यकता पूर्ति के लिए आश्रय ढूँढती है।

उपन्यास के पात्र कामरेड भूषण का कथन है—'वह (सोभा) क्या आदर्श को पूर्ण करने के लिए घर से निकली थी? घर में जीवन सभव न था, वह जीना चाहती थी, इसीलिए घर से निकली थी। प्रेम उसे घर से निकालने में सहायक हुआ। प्रेम केवल जीवन में सहायक वस्तु है। जीवन में अड़चन के रूप में प्रेम नहीं चल सकता। और सब चीजों की तरह जीवन में प्रेम की गति भी द्वन्द्वात्मक है। प्रेम जीवन को सफलता और सहायता के लिए है।—इसका धर्मसिंह से प्रेम कुछ परिस्थितियों का परिणाम है। यदि इसका पति जिन्दा होता तो शायद यह प्रेम हो ही नहीं सकता। प्रेम जीवन में शरीर की अनुभूति और आवश्यकता से पृथक् क्या वस्तु है।'

कथानक में उपरोक्त राजनीतिक विचार धारा के अतिरिक्त कतिपय तत्कालीन राजनीतिक घटनायें भी प्रासंगिक रूप से गुम्फित हैं। गुंडों पर उत्तेजना में प्राणघातक आक्रमण के उपरांत धर्मसिंह के फरार होकर भारतीय सेना एवं आजाद हिन्द सेना में सम्मिलित करा कर लेखक आजाद हिन्द सेना का राजनीतिक विवरण प्रस्तुत करने का अवसर निकाल लेता है। आजाद हिन्द सेना में कार्यरत रहकर वह बन्दी बनता है और भारत के स्वतन्त्र होने पर मुक्ति पाता है।

राजनीतिक दृष्टिकोण से सन् बयालीस के आन्दोलन पर भी यथेष्ठ प्रकाश डाला गया है और सन् बयालीस के आन्दोलन में महात्मा गाधी के प्रभाव को राजनीतिक दृष्टि से भ्रामक तथा अहितकार सिद्ध किया गया है।

'मनुष्य के रूप' घटना प्रधान उपन्यास हैं। घटना-प्रधान कथानक में घटनाओं का ही विशिष्ट महत्व रहता है तथा चरित्र चित्रण की प्रक्रिया शिथिल पड़ जाती है। 'मनुष्य के रूप' में घटनाओं और पात्रों का बाहुल्य है और मनुष्य के विभिन्न रूपों के दिग्दर्शन के लिए यह स्वाभाविक था। उपन्यास के पात्रों में कोई ऐतिहासिक राजनीतिक पात्र नहीं है फिर भी भूषण के माध्यम से लेखक ने साम्यवादी दृष्टिकोण को वाणी दी है। भूषण और मनोरमा की कथा गौण है और उसका उद्देश्य मध्यवर्गीय समाज में रूढ़िगत तथा नवीन मान्यताओं का तुलनात्मक अध्ययन करना है। कामरेड भूषण नवीन समाजवादी चेतना का प्रतीक है। वह मार्क्स के सिद्धान्तों के आधार पर प्रेम के द्वन्द्वात्मक

स्वरूप का स्पष्टीकरण अनेक स्थलो पर देता है। उसकी दृष्टि मे 'और सब चीजो की तरह जीवन म भी प्रेम की गति भी द्वन्द्वात्मक है। प्रेम जीवन की सफलता और सहायता के लिए है। यदि प्रेम बिलकुल छिछला और थिथला रहे तो वह असयत वासना मात्र बन जाता है। जीवन मे अडचन के रूप मे प्रेम चल नही सकता।'[1] लेखक का दृष्टिकोण समाजवादी है और भूषण उन विचारो को अभिव्यक्ति देने का एक सबल साधन है। भूषण को इसीलिए साम्यवादी दल के एक सदस्य के रूप मे चित्रित किया गया है जिससे लेखक को अपने समाजवादी दृष्टिकोण के प्रतिपादन म सुविधा रहे। भूषण साम्यवादी विचारो का सबल वाहक है और लेखक 'भूषण के चरित्र के माध्यम से (वह) मानव के पतन का ही विश्लेषण नही करता, उसे उठाने का भी प्रयास करता है। जीवन की परिस्थितियो पर विजय पाने म ही भावी समाज के निर्माण की आशा की जा सकती है।'[2] उपन्यास का मुख्य पात्र है धनसिंह और नायका है सोमा। नायक और नायिका का चारित्रिक विकास परिस्थितियो के सघर्षो के अनुसार ही विकास पाता है। धनसिंह सर्वहारा वर्ग का प्रतिनिधि है जिसे जीवन पर्यन्त सघर्षशील जीवन व्यतीत करना पडता है। यह उपयुक्त कथन है कि 'धनसिंह का जीवन उन जीवनो का प्रतिनिधि है जिनका अनवरत सघर्षी जीवन का अस्तित्व बनाये रखने के लिए होता है सुख सन्तोष और शांति को जिनसे घोर घृणा रहती है।'[3]

साम्यवाद के द्वन्द्वात्मक सिद्धान्त के प्रतिपादन, धनसिंह के माध्यम से आजाद हिन्द फौज का विवरण, सन् ४२ के आन्दोलन, पुलिस के अत्याचार व कम्युनिस्ट पार्टी की कार्य प्रणाली के चित्रण के उपरात भी इसे राजनीतिक उपन्यास की श्रेणी म इसलिए परिगणित नही किया जा सकता क्योकि विशाल सामाजिक पृष्ठभूमि मे—सामाजिक विषमता स उत्पन्न घटनाओ से सचालित पात्रो के विवरणो मे (क्रिया-कलापो म वैयक्तिक सिद्धान्तो का आग्रह कम है। राजनीतिक प्रसग छायामात्र है और इसीलिए इसे अश राजनीति उपन्यासो की श्रेणी म रखा गया है। त्रिभुवन सिंह का मत भी है 'इस उपन्यास के अन्दर १९४२ के आन्दोलन मे किए गए पुलिस के अत्याचारो, कामुक पुरुषो की असहाय स्त्रियो के प्रति कुचेष्टाओ तथा पूँजीपतियो की अनैतिकता आदि का सजीव चित्र खींचा गया है। किन्तु इस आर्थिक सामाजिक उपन्यास म भी यशपाल जी कम्युनिस्टो के प्रसग को लाना भूले नहीं।'[4] इस राजनीतिक प्रसग के कारण ही 'मनुष्य

---

१ यशपाल—'मनुष्य के रूप,' पृष्ठ ६६

२ सुषमाधवन—'हिन्दी उपन्यास,' पृष्ठ ३०२

३ कुमारी स्नेहलता शर्मा—'यशपाल के उपन्यास,' पृष्ठ ११४

४ त्रिभुवनसिंह – 'हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद,' पृष्ठ २०८

के रूप' अनिसामाजिक न बन कर अधराजनीतिक स्वरूप ग्रहण कर लेता है। उपन्यास में सामाजिक वातावरण को अधिक से अधिक बनाये रखने का प्रयास किया गया है। पात्रों की मानसिक स्थिति का सहज स्वाभाविक एवं सगत विकास दिखाया गया है। आधुनिक समस्याओं को उठाया गया है, १९४० से १९४५ तक की राजनीतिक गतिविधि का परिचय दिया गया है और इन दृष्टियों से उपन्यास सफल बन पड़ा है। उपन्यास में देशकाल और कथोपकथन भी यथार्थ है। युद्धोत्तरकालीन भारतीय नागरिक जीवन, युद्ध के समय सेना की भर्ती और उनका रहन-सहन, विभिन्न राजनीतिक दलों की गतिविधियों का निरूपण कुशलता के साथ यथार्थ परिपार्श्व में चित्रित किया गया है।

झूठा सच

यशपाल का नवीनतम उपन्यास 'झूठा-सच' प्रेमचन्द की यथार्थवादी परम्परा के अभूतपूर्व विकास की कड़ी है। यह बृहत्काय उपन्यास दो भागों में विभाजित है—'वतन और देश' तथा 'देश का भविष्य'। 'झूठा-सच' हिन्दी के बृहत्काय उपन्यासों में से एक है जिसका कथानक करीब १२५० पृष्ठों में विस्तारित है। प्रगतिवादी दृष्टिकोण से यथार्थवादी सामाजिक उपन्यास में राजनीतिक कथानक ही उपयुक्त हो सकता है। 'झूठा-सच' यद्यपि सभी सामाजिक यथार्थवादी उपन्यासों के लिए वैयक्तिक दृष्टिकोण से उपयुक्त हो सकता है किन्तु यहां लेखक ने केवल अनुमान या कल्पना पर ही नहीं वरन् द्वितीय महायुद्ध एवं स्वतन्त्रता प्राप्ति के साथ देश के विभाजन से उत्पन्न आबादी परिवर्तन आदि की अनेक समस्याओं रूढिग्रस्त रीति-रिवाजों, धर्मान्धता की ओट में अमानवीय दुष्कृत्यों, नेताओं के राजनीतिक स्वार्थों तथा राजकीय अधिकारियों के भ्रष्टाचार, पुरुषार्थ के बल पर विस्थापितों का स्वयं उप स्थापन आदि का झूठे कथानक (काल्पनिक पात्र) के सहारे यथार्थ घटनाओं का चित्रण किया है।

उपन्यास के समर्पण में लेखक ने स्वयं स्पष्ट किया है सच को कल्पना से रग कर उसी जन समुदाय को सौंप रहा हूँ जो सदा झूठ से ठगा जाकर भी सच के लिए अपनी निष्ठा और उसकी ओर बढ़ने का साहस नहीं छोड़ता।'[1]

प्रथम भाग में स्वतन्त्रता व विभाजन से पूर्व के पंजाब का चित्र है दूसरे भाग में स्वतन्त्रता के बाद के भारत का चित्र। प्रथम भाग में युद्ध पश्चात भारतीय जनता के जीवन स्तर के साथ सन् १९४७ में देश के स्वतन्त्र होने और उसके विभाजन की कथा सविस्तार कही गई है। कथा में मुख्य रूप से उन पीड़ितों की कथा है जो विभाजन के समय हिन्दू मुस्लिम वैमनस्य के शिकार हुए। 'झूठा-सच' का वित्रफलक अत्यन्त व्यापक

---

१ यशपाल — 'झूठा-सच' पृष्ठ ३ (वतन और देश)

है और उपन्यासकार ने देश विभाजन के कारण उत्पन्न समस्याओं को केन्द्र बनाकर सन् १९४६ से १९५६ की अवधि का देशीय वातावरण प्रस्तुत किया है। हिन्दू मुस्लिम दंगे से सम्बन्धित पाशविक अत्याचारों के विवरणात्मक चित्रों से तात्कालीन साम्प्रदायिक स्वरूप का राजनीतिक आवरण हटाने का सयत्न प्रयास किया गया है। किन्तु पजाब उत्तर प्रदेश व दिल्ली म हुए इन दगो के इतने अधिक चित्र प्रस्तुत किये गये हैं कि उनकी पुनरावृत्ति तथा पात्रों की जमघट से उसका अपेक्षित प्रभाव नही पड़ता।

विभाजन के साथ ही साथ भारत के राजनीतिक विभाजन से उद्भूत विस्थापितों की साम्प्रदायिक समस्याओं को प्रधानता दी गई है राजनीतिक स्वार्थों को धर्मान्धता के सहारे सिद्ध करने मे मानवता की बलि किस प्रकार दी जाती है उसका आबादी परिवर्तन एक करुणतम चित्र है जिसम निरपराध जन साधारण कितनी यातनाओं का शिकार हुआ कितने अनैतिक बर्बर कृत्य घटित हुए जिनको स्मरण कर इतिहास कभी भी रोमाचित हो उठेगा। राजनीतिक भारत की इस दुखद घटना को यशपाल ने कलात्मक रूप दे कर जैसा लिखा गया इतिहास बना दिया है

ऐतिहासिक दृष्टिकोण से विभिन्न देशो मे धर्म का नशा पारस्परिक असहिष्णुता के कारण वस्तुत मानवता के उपकारक होने की अपेक्षा विघातक हो रहा है। प्रस्तुत उपन्यास म वर्णित भारत के विभाजन से उद्भूत विषम समस्याओं के मूल मे भी यही धर्मान्धता ही रही थी। इस दृष्टिकोण से आलोच्य उपन्यास का झूठे-सच का एक ऐतिहासिक पहलू भी मान्य रहेगा। लेखक साम्यवादी दृष्टिकोण का प्रसिद्ध पोषक है। अतएव अन्तर्राष्ट्रीय समाजवादी भूमिका म वह मानव चेतना का आराधक है जिसमे अर्थ काम और धर्म के प्रति उसका साम्यवादी दर्शन निहित है। उसी म वह जाति धर्म से परे स्वस्थ विचारो वाले साम्यवादी युवकों के लोक सेवी चरित्र को जनता के सम्मुख उपस्थित करता चलता है।

पजाब काड के अनुरजित वर्णन के साथ यह वस्तुत सघर्षो म डूबे राजनितिक भारत की कथा है जिसका केंद्रीय सूत्र तारा पुरी डॉ० प्राणनाथ कनक काता कचन और उषा से सम्बद्ध हैं। इस उपन्यास मे पात्रो की सख्या बहुत है और ऐसा आभास मिलता है कि असख्य पात्रो की सृष्टि कर कथाकार अपनी क्षमता प्रदर्शन के लिए यत्नशील है। कतिपय ऐतिहासिक व्यक्तियो के नाम सम्मिलित करने के लोभ का सवरण भी लेखक नहीं कर सका है और वे उपन्यास के पात्र के रूप मे सामने आये हैं। इस सदर्भ म लेखक ने देश का भविष्य की भूमिका मे स्पष्टीकरण देते हुये लिखा है— देश के सामयिक और राजनैतिक वातावरण को यथा सम्भव ऐतिहासिक यथार्थ के रूप म चित्रित करने का यत्न किया गया है। उपन्यास के वातावरण को ऐतिहासिक यथार्थ का रूप

देने और विश्वसनीय बना सकने के लिए कुछ ऐतिहासिक व्यक्तियो के नाम भी आ गये है परन्तु उपन्यास मे वे ऐतिहासिक व्यक्ति नही, उपन्यास के पात्र हैं। कथानक मे कुछ ऐतिहासिक घटनाय अथवा प्रसग अवश्य हैं परन्तु सम्पूर्ण कथानक कल्पना के आधार पर उपन्यास है, इतिहास नही है।'' वे यह सकेत देना भी नही भूलते कि'' उपन्यास के सभी पात्र काल्पनिक पात्र है।''[1]

'झूठा-सच' मे यशपाल कांग्रेस मंडित राजनीति की जमकर आलोचना करते है। उनके पृष्ट पात्र महात्मा गाँधी व प्रधान मत्री की आलोचना कर अपने को गौरवान्वित समझने का भ्रम पालते दीखते है। 'झूठा सच' का द्वितीय भाग 'देश का ऐसे कॉंग्रेसी *नेता विश्वनाथ सूद के राजनीतिक उत्थान* और *पतन की कहानी है जो* जनसेवा के मार्ग से उत्थान करता है और मार्गच्युत होने पर जनता द्वारा प्रजातान्त्रिक तरीके से *पदच्युत हो पतनशील होती है। लेखक ने इस पक्ष को केन्द्र बिन्दु बना सन् १९४६ से-* १९५६ की अवधि का राजनीतिक वातावरण अकित किया है जो पजाव, उत्तरप्रदेश व केन्द्र की राजनीतिक स्थिति का 'ब्लू प्रिन्ट' कहा जा सकता है।

सूद जी लाहौर से वकालत पास है। विद्यार्थी जीवन से ही वे सामाजिक और सार्वजनिक आन्दोलनो मे भाग लेते हैं वे कांग्रेस के कर्मठ कार्यकर्ता है और १९२१ के आन्दोलन से ही वे खद्दर का व्रत लेते हैं। सन् १९२९ मे अग्रेजी सरकार के विरुद्ध सशस्त्र *क्रांति करने वाले एक दल की पैरवी करने लाहौर जाते हैं यद्यपि कांग्रेस व गाँधी* जी 'सशस्त्र क्राति के विरोधी थे और उन्होने क्रांतिकारियों के कृत्यो की निन्दा की थी। जनता की सहानुभूति स्वभावत क्रांतिकारियों की ओर थी अत सूद जी जनता की नजरो मे चढकर राजनीति क्षेत्र मे गहरे उतर गये। सन् १९३१ से ३४ तक वे कांग्रेस के प्रत्येक आन्दोलन मे सक्रिय भाग लेकर अपने जिले का नेतृत्व करते हैं और जेल जाते हैं।

*राजनीतिक गति*विधियो मे भाग लेने के लिए वे परिवार के सदस्यों की अवहेलना करते है और जनसेवा *का जोग रमाये हुए सूद जी वैवाहिक बन्धन से भी अलग* रहते हैं। परिवार सम्पन्न था और परिवार के लिए वे एक बोझ। अत पिता की *मृत्योपरात भाइयो मे सम्पत्ति का बटवारा होता है* और *कुछ न लेकर वे जनता के बीच* 'फकीर वकील' के रूप मे श्रद्धेय बने। सन् १९४६ मे पजाव विधान सभा के लिए वे *सदस्य चुने जाते हैं* और इस तरह उन्हे निस्वार्थ जन सेवा का सुफल प्राप्त होता है। *इतना होने पर भी उनमे* विशेष परिवर्तन नही होता। इन्हीं दिनो देश-विभाजन की *समस्या सम्मुख आती है।* जालन्धर मे विभाजन के समय की विकट स्थिति को कांग्रेस

---

१. यशपाल–'झूठा-सच', पृष्ट–( ) –देश का भविष्य

की ओर से सम्हालने का उत्तरदायित्व सूद जी पर आता है। शरणार्थियों के लिए केम्पो की और राशन वितरण की व्यवस्था का बोझ उन पर आता है। पूर्वी पंजाब मे नया मन्त्रिमंडल बनाने की समस्या डाक्टर राधे बिहारी की गुटबाजी के साथ उभरती है। राजनीति मे प्रचार का विशिष्ट महत्व है इस तथ्य से परिचित सूद जी कमाल प्रेस पर येन केन प्रकारेण अपना अधिकार जमा उसकी व्यवस्था का भार उपन्यास के मुख्य पात्र जयदेवपुरी को सौंपते है जो विभाजन के उपरात निरीहावस्था मे भटक रहा था। पुरी के सहयोग से 'नाजिर' का प्रकाशन प्रारम्भ होता है। सूद जी के राजनीतिक प्रभाव मे वृद्धि होती है और ससदीय सचिव नियुक्त होते है।

राजनीति करवट लेती है और भीतर दलबदी और मतभेदो के कारण सन् १९५१ के आरम्भ मे मुख्य मत्री के लिए शासन निबाहना कठिन हो जाता है। जनता काग्रेस सत्ता और काग्रेसी नेताओं से त्रस्त थी। नया आम चुनाव निकट था और सूद जी के लिए अधिक से अधिक समर्थक धारा सभा मे लाने का प्रश्न मुख्य था। वे विजयी होते है और मन्त्रीपद प्राप्त करते है। इस नवीन स्थिति मे 'जर जन-जमीन' के मोह से मुक्त माने जाने वाले सूद का ढग परिवर्तित होना है। वे अपने आपको विशिष्ट श्रेणी का जीव समझने लगते है। उनके आगे सरकारी अधिकारियो और सादगी तथा दरिद्र नारायण के प्रतिनिधि को भी अब सिर झुकाना अनिवार्य हो गया। उनके प्रति भक्ति दिखाने वाले और निबाहने वाले निहाल हो गये। सूद जी की कृपा प्राप्त व्यक्तियो को कानून और शासकीय अनुशासन का बधन शिथिल हो गया। अब सूद जी ऐसी कितनी ही सस्थाओ के सूत्रधार थे जिनके कोषो मे दो-ढाई करोड रूपये से अधिक जमा था यद्यपि कहने के लिए उन्होंने अपने लिये धन सचय नहीं किया था। इन्ही कृत्यो से जनता मे उनका विरोध बढ गया, आस्था नष्ट हो गई। परिणाम स्वरूप वे आम चुनाव मे जनता की विरोधात्मक प्रतिक्रिया के रूप मे सत्रह हजार वोट से पराजित हुए। इसी प्रसग पर जाकर उपन्यास का अत डाक्टर प्राणनाथ के इन शब्दो के साथ होना है—

"जनता निर्जीव नहीं है। जनता सदा मूक भी नही रहती। देश का भविष्य नेताओ और मन्त्रियो की मुट्ठी मे नहीं है, देश की जनता के ही हाथ मे है।"

उपन्यास के राजनीतिक पक्ष की दृष्टि से डॉ० नाथ का उपर्युक्त कथन अत्यन्त महत्वपूर्ण है और सूद जी का चरित्र उन काग्रेसी नेताओ का प्रतीक है जो सत्ता प्राप्ति के उपरान्त अपने आदर्शों और सिद्धान्तो से डिग जाते हैं (वर्तमान राजनीतिक परिस्थिति ऐसी ही है) और स्वार्थ तथा सत्ता का घुन जिन्हे भीतर ही भीतर खोखला कर देता है।

काग्रेसी नेता विश्वनाथ सूद को केन्द्र बिन्दु बनाकर कर जो कथा विस्तार पाती है वह वस्तुत भारत की स्वातंत्र्योत्तर राजनीति की आलोचना है। इसके अन्तर्गत जिन प्रमुख तत्कालीन राजनीतिक प्रसगो का समाहार किया गया है वे ये है—

(१) साम्प्रदायिक संघर्ष
(२) राजनीति और प्रशासन में व्याप्त भ्रष्टाचार
(३) *राजनीतिक दलों की स्थिति और उनके क्रियाकलाप*
(४) आम चुनाव
(५) काश्मीर पर हुआ आक्रमण
(६) गांधी हत्याकांड
(७) *योजना आयोग*

इसके अतिरिक्त गांधी जी के आमरण अनशन के प्रकरण को लेकर काकोरी का मपिरेमी केस के क्रांतिकारियों के अनशन, नाविक क्रांति आदि का भी प्रासंगिक उल्लेख किया गया है जो ऐतिहासिक घटनाएं हैं।

सम्प्रदायिक संघर्ष

'झूठा-सच' के 'प्रथम भाग' 'वतन और देश' में भारत विभाजन के परिप्रेक्ष्य में हिन्दू मुस्लिम साम्प्रदायिक संघर्ष का चित्रण विस्तृत रूप से मिलता है। भारतीय राजनीति में सम्प्रदायिक स्थिति सदैव से सिर दर्द रही है और अंग्रेजी सरकार ने जान बूझ कर इसे तूल देकर अपना राजनीतिक अस्त्र बनाया था।

'झूठा सच' के प्रथम भाग में मूल रूप से विभाजन के पूर्व मुस्लिम लीग और कांग्रेस की नीतियों का तथा उसके विरुद्ध ब्रिटिश नीति की आलोचना की गई है। हिन्दू छात्र द्वारा मुसलमान प्रोफेसर को पीटने की साधारण घटना को सम्प्रदाय के समाचार पत्र किस रूप से प्रस्तुत कर लोगों की धर्मान्धता को भड़काकर राजनीतिक रूप देते हैं इसका एक सजीव चित्र प्रस्तुत किया गया है।[1] लीग और कांग्रेस की स्वतन्त्रता की मांग ने इस साम्प्रदायिक स्वरूप को जिस रूप में सुर्ख किया उसका तथा कम्युनिस्ट पार्टी के जातियों के आत्म निर्णय के अधिकार के सिद्धान्त पर आधारित सम्प्रदायिकता को रोकने के प्रयासों का विस्तृत ब्योरा दिया गया है। कम्युनिस्टों के आत्मनिर्णय के अधिकार के सिद्धान्त जयदेव के अनुसार था 'हिन्दुओं और मुसलमानों को दो पृथक जातियाँ मान कर देश का पाकिस्तान और हिन्दुस्तान में बँटवारा। कम्युनिस्ट जातियों के आत्मनिर्णय के अधिकार को ही संतोषजनक एकता का और देश को बँटवारे से बचाने का उपाय समझते थे।'[2]

---

१ यशपाल—'झूठा-सच,' पृष्ठ ५२-५३
२. यशपाल—'झूठा-सच,' पृष्ठ ४६

राजनीतिक वातावरण और व्याप्त भ्रष्टाचार के चित्र

'वतन और देश' में पंजाब के सामयिक राजनीतिक वातावरण का कांग्रेस, लीग और कम्युनिस्ट पार्टी की राजनीतिक गतिविधियों का सविस्तार विवरण मिलता है।

प्रारम्भ में ही हम दयालसिंह कालेज में स्टूडेन्ट फेडरेशन की गतिविधियों से परिचित होते हैं जहाँ युद्ध की अन्तराष्ट्रीय दृष्टि से विवेचना की जाती थी। जर्मन और भारत के आक्रमण को फासिज्म का आक्रमण बताया जाता। भारत का हित रूस के नेतृत्व में अमेरिका और ब्रिटेन की विजय और फासिज्म (अर्थात् जर्मन और जापान) के पराजय में बताया जाता था।[1] कम्युनिस्टों ने द्वितीय महायुद्ध को रूस के शामिल होने के कारण जनता का युद्ध घोषित किया था और इस रूप में कांग्रेस का विरोध किया था। नाविक सैनिक क्रांति (फरवरी १९४६) का समर्थन भी कम्युनिस्टों ने किया था जब कि कांग्रेस की सहानुभूति इस क्रांति की ओर नहीं थी। जयदेव पुरी 'पैरोकार' में नाविक क्रांति की घटना पर टिप्पणी लिखता है और कांग्रेस और लीगी नेताओं की सहानुभूति के अभाव के प्रति व्यंग करता है।[2] इसके साथ ही लेखक राजनीतिक दलों और ब्रिटिश मन्त्रिमन्डल के प्रतिनिधियों के बीच भारत को शासन के अधिकार देने के प्रश्न की सूचना देता है और बताता है 'प्रतिनिधि शिमले में लीग और कांग्रेस के नेताओं से परामर्श और मोलतोल कर रहे थे। पूरे देश की आँखें और कान उसी ओर लगे हुए थे। देश का भविष्य लीग और कांग्रेस (मुसलमानों और हिन्दुओं) की प्रतिद्वन्द्विता के काटे पर तुला हुआ था।'[3]

लीग और कांग्रेस के हठ के कारण घटनायें साम्प्रदायिक रंग ले रही थी और जिसके कारण पंजाब के मुख्य मन्त्री सर खिजर की कम्युनिस्ट पार्टी की डावा-डोल स्थिति का विवरण देना भी लेखक नहीं भूलता। कामरेड ब्रिटिश प्रतिनिधि मंडल को एक फरेब समझते हैं। उनके अनुसार 'ब्रिटन के मन्त्रिमन्डल के प्रतिनिधि कांग्रेस और लीग दोनों को मिथ्या आशाएं दे कर, अपने कब्जे में रखने के लिए, शब्दों से सन्तुष्ट कर रहे हैं। यह कैसे हो सकता है कि कैबिनेट मिशन की योजना से लीग को पाकिस्तान मिल जाय और कांग्रेस को अखंड हिन्दुस्तान भी मिल जाय।'[4] कांग्रेस और लीग का समझौता संभव न होने पर साम्प्रदायिक आग भड़कती है और लेखक

१. यशपाल—'झूठा सच,' (वतन और देश) पृष्ठ २०
२ यशपाल—'झूठा सच,' पृष्ठ ४६
३ यशपाल—'झूठा सच,' पृष्ठ ५४
४ यशपाल—'झूठा सच,' पृष्ठ ५६

हिन्दू रक्षा कमेटी की कार्यकर्त्री ज्ञानदेवी के मुख से कलकत्ते में साम्प्रदायिक दंगे और और मुसलमानों द्वारा हिन्दुओं पर किये गये अत्याचारों की कहानी सुनाता है।[1] ज्ञान देवी ही सूचित करती है कि बम्बई में मुस्लिम लीग ने १६ अगस्त (१९४६) से हिन्दुओं से लड़ाई छेड़ दी है। मर गये कहते हैं, हम पाकिस्तान बनायेंगे। हम आधा हिन्दुस्तान लेंगे। पंजाब पाकिस्तान में लेंगे।'[2] इस तरह देश के विभिन्न भागों में हुए हिन्दू-मुसलमान दंगे के समाचार (पाठक को) मिलते हैं और पंजाब में साम्प्रदायिक स्थिति विषम होती है। कम्युनिस्ट पार्टी और कामरेड इस स्थिति से दुखित बताये जाते हैं। कामरेड असद कहता है—'हिन्दू और मुस्लिम मुहल्लों में जहर फैलाया जा रहा है। मुल्ला मसजिदों में रो-रो कर पैगम्बर के नाम से जिहाद के फतवे दे रहे हैं। हथियार इकट्ठे करने की योजनाएं बन रही हैं।'[3] शासन की असमर्थता डॉ० नाथ यों व्यक्त करते हैं 'खिजर इस समय कुछ नहीं कर सकता। उसकी कम्युनिस्ट पार्टी के कई लोग लीग में शामिल हो गये हैं। वह इस समय लीग पर दबाव डालेगा तो शेष मुसलमान मेम्बर भी उसका साथ छोड़ जायेंगे। उसकी मिनिस्ट्री खतरे में तो है ही।'[4] पैरोकार में भी जयदेव साम्प्रदायिक उत्तेजना पर टिप्पणी लिखता है। कम्युनिस्ट पार्टी इस उत्तेजना को शांत करना चाहती है और कैदे आजम जिन्ना और महात्मा गांधी जिन्दाबाद के नारे लगाती है और हके खुद इख्त्यारी मिलने की आवाज उठाती है।[5] हिन्दु-मुस्लिम भाई-भाई के नारे बिना सुने रह जाते हैं और लीग का आन्दोलन दफा १४४ के विरोध में अहिंसात्मक सत्याग्रह आरम्भ करता है और फिरोज खां नून, इफ्तखारुद्दीन, गजनफर अली खां सत्याग्रह करके जेल जाते हैं।[6] सर खिजर इस्तीफा देते हैं और गवर्नर प्रदेश की हुकूमत अपने हाथ में लेते हैं। इस्तीफा का कारण गवर्नर जेंकिन्स के अनुसार है क्योंकि एटली के १६ फरवरी के वक्तव्य में कहा गया है कि जून १९४८ में हिन्दुस्तान के जिस भाग में जो राजनीतिक दल अधिक सशक्त होगा, ब्रिटिश सरकार उसी को स्थानीय शासन सौंप देगी इसीलिये नये सिरे से मन्त्रि-मंडलों के निर्माण का अवसर दिया जाना चाहिए।[7] असेम्बली में बहुमत मुस्लिम लीग का था और केवल दो मन्त्री कांग्रेस के थे।

१ यशपाल—'झूठा सच,' (वतन और देश), पृष्ठ ६६-६७
२. यशपाल—'झूठा-सच,' (वतन और देश), पृष्ठ ७०
३ यशपाल—'झूठा सच' (वतन और देश), पृष्ठ ७७
४. यशपाल—'झूठा सच,' (वतन और देश), पृष्ठ ७८
५ यशपाल—'झूठा-सच,' (वतन और देश), पृष्ठ ८५
६ यशपाल—'झूठा-सच,' (वतन और देश), पृष्ठ ८१
७ यशपाल—'झूठा सच,' (वतन और देश), पृष्ठ ९१३

लीग पार्टी के नेता खान ममदाट मन्त्रिमडल बनाने मे असमर्थ रहते है और गवर्नर उन्हे पार्टी के लीडर के नाते शासन की जिम्मेदारी सौंपने को तैयार नही होता। मास्टर तारासिह का उल्लेख भी है जो मुस्लिम लीग की ललकार के मुकाबले मे तलवार खींच लेत है।[1] मामला तूल पकड़ता है और गवर्नर द्वारा कम्युनिस्ट मिनिस्ट्री की बरखास्तगी वैधानिक निर्दित कर आम सभाओ का आयोजन राजनीतिक दल करते है। काग्रेस के मच से मास्टर तारासिह भी आग बरसाते है।[2] डाक्टर गोपीचन्द भार्गव भी भाषण देते है 'हम पाकिस्तान हर्गिज नहीं बनने देंगे। लीग ने शोरिश पैदा करके हमारी कम्युनिस्ट वजारत को खत्म किया है हम भी लीग की वजारत नही बनने देंगे। इस प्रश्न को लेकर हिन्दू-मुस्लिम दगे होते है जिनका उल्लेख पूव ही किया जा चुका है। लीग का पाकिस्तान की माग का आदोलन और मास्टर तारासिह के अधिनायकत्व मे एटी पाकिस्तान लीग की हुकार के कारण पजाब मे बहुत दिनो तक मन्त्रिमडल स्थापित न हो सका। कम्युनिस्ट पार्टी के रेलवे मजदूर यूनियन और स्टूडेंट फेडरेशन शाति स्थापना के लिए जगी आदोलन आरम्भ करते है और फिरकापरस्ती' का विरोध करते है।[3] पजाब मे लीग, काग्रेस और अकाली दल के सयुक्त मन्त्रिमडल बन सकने की सम्भावना, जिन्ना साहब के निर्णय से समाप्त हो गई थी।[4] अन्त मे काग्रेस विभाजन का सिद्धान्त स्वीकार करने को तैयार हो जाती है परन्तु पूरा पजाब और बगाल पाकिस्तान मे देने को तैयार नहीं। केवल वही भाग (प्रदेश) जहाँ मुस्लिम जन सख्या का आधिक्य है पाकिस्तान को दिये जा सकते है और इसी तरह जनसख्या के आधार पर पश्चिमी पजाब व पूर्वी बगाल। यह निर्णय गाधी जी का न था। डॉ० प्रभुदयाल के शब्दो में 'यह तो पडित नेहरू, सरदार पटेल और काग्रेस वर्किंग कमेटी का फैसला है। यह तो नेहरू और पटेल का फैसला है।[5] लेखक काग्रेस के सिद्धातो पर कटाक्ष करते हुए उन परिस्थितियो की सम्यक विवेचना करता है जिनके कारण काग्रेस को विभाजन का सिद्धान्त स्वीकार करने को बाध्य होना पड़ा।[6] इसी प्रसग मे नेहरू व पटेल को बँदरकाक बता कर व्यग किया जाता है।

---

१ यशपाल—'झूठा सच,' (वतन और देश), पृष्ठ ११५
२ यशपाल—'झूठा-सच,' (वतन और देश), पृष्ठ ११८
३ यशपाल—'झूठा-सच,' (वतन और देश), पृष्ठ १८५
४ यशपाल—'झूठा सच,' (वतन और देश), पृष्ठ १९३
५ यशपाल - 'झूठा-सच,' (वतन और देश), पृष्ठ २५३
६ यशपाल—'झूठा-सच', (वतन और देश), पृष्ठ २५४

जून के पहले सप्ताह में मुस्लिम लीग ने पाकिस्तान की स्थापना के लिए बंगाल और पंजाब को हिन्दू बहुल और मुस्लिम बहुल भागों में बांट देने की शर्त स्वीकार कर ली और सरकार ने २० जून की तारीख इसके लिए निश्चित की।[१] जिन्ना ने इस तबदीलियें आबादी के प्रोग्राम से सम्प्रदायिकता एक बार फिर भड़क उठी। रेडक्लिफ कमेटी ने लाहौर के उत्तर और दक्षिण में हिन्दुस्तान-पाकिस्तान में बटवारे की सीमा निश्चित कर दी। हिन्दुस्तान की स्वतन्त्रता और पाकिस्तान की स्थापना के लिए १५ अगस्त १९४७ की तारीख निश्चित कर दी गई। कांग्रेस और लीग दोनों ने घोषणा कि अल्प सख्यकों को सभी नागरिक अधिकार समान रूप से दिये जायेंगे और उन्हें धार्मिक और सांस्कृतिक आचार व्यवहार की पूर्ण स्वतन्त्रता रहेगी।[२] राष्ट्र को स्वतन्त्रता मिलती है और जिसका विवरण देना भी लेखक नहीं भूलता। नैनीताल में स्वाधीनता दिवस की तैयारी[३] और फिर ह्विस्की की चुस्कियों के साथ राष्ट्रीय पर्व का स्वागत[४] के चित्र के साथ वह रेडियो के माध्यम से डॉ० राजेन्द्र प्रसाद व प० जवाहरलाल नेहरू के स्वाधीनता दिवस विषयक भाषण सुनवाना भी लेखक नहीं भूलता।[५] आबादी परिवर्तन के साथ ही झूठा-सच का प्रथम भाग समाप्त होता है तथा द्वितीय भाग में स्वाधीनता प्राप्ति के उपरांत विस्थापितों की समस्याओं तथा कांग्रेसी शासन में पनपते भ्रष्टाचार और आमचुनावों का चित्रण है।

भ्रष्टाचार

कांग्रेस शासन में व्याप्त भ्रष्टाचार के ऊपर यशपाल ने कठोर प्रहार किया है। वे विभिन्न क्षेत्रों में गहरे पैठकर भ्रष्टाचार को प्रसगों के सामने लाकर उन पर व्यंग कर कांग्रेस की जमकर आलोचना करते हैं।

माथुर का कथन है 'शक्ति और अवसर हाथ में होने पर अनुचित लाभ न उठाने वाले मुझे तो केवल अ वाद रूप में दिखते हैं। मैं पूछता हूँ, शासन में चोटी से लेकर पाँव के अगूठे तक कौन अनुचित लाभ नहीं उठा रहा है? रिश्वत लेकर आदमी अपने बाल बच्चे और कुनबे को ही तो पालेगा? मुझे बता दो, शासन सभाले लोगों में से किसका कुनबा नहीं पल रहा है? सरकारी नौकर उदाहरण देख कर ही तो चलेंगे।'[६]

१　यशपाल—'झूठा-सच', (वतन और देश), पृष्ठ ३००
२　यशपाल—'झूठा-सच', (वतन और देश), पृष्ठ ३७६
३.　यशपाल—'झूठा-सच', (वतन और देश), पृष्ठ ४३६
४.　यशपाल—'झूठा-सच', (वतन और देश), पृष्ठ ४५५
५　यशपाल—'झूठा-सच', (वतन और देश), पृष्ठ ४५७
६　यशपाल—'झूठा-सच', पृष्ठ ६४४

भ्रष्टाचार का क्षेत्र असीम हो गया है और शासन के शीर्षस्थ नेतागण भी उससे अलिप्त नहीं। मुख्यमंत्री विश्वनाथ सूद योजना आयोग के पदाधिकारी डा० नाथ को अपने मनानुकूल परिवर्तन करने पर राष्ट्रीय खोज संस्था में नियुक्त करने ऊँची तनख्वाह देने व समय आने पर वायस चांसलर बनाने का आश्वासन देते है।[१]

योजनाओं को कार्यान्वित करने में जिस मनमाने ढङ्ग से धन व्यय किया जा रहा है और जिसका अधिकांश अधिकारियों और ठेकेदारों की जेब में समा रहा है जिसकी ओर भी उपन्यासकार ने ध्यान दिलाया है। वह व्यंग करता है—'सरकारी रिपोर्टों में उत्पादन बढ़ता है और बाजारों में महगाई बढ़ती है। हम तो योजनाओं से कुछ बनता दिखाई नहीं देता। जनता का अरबों रुपया करोड़पतियों और सरकारी अफसरों की जेबों में चला जा रहा है। भाखड़ा नागल जाकर तमाशा देख लो। जनता के खर्च पर इतना सीमेंट खरीदा गया है कि भाखड़ा के पचास साठ मील चारों ओर सब मकान सीमेंट के बन गये है। सीमेंट की जगह रेत भरी जा रही है। चवन्नी की जगह रुपये का एस्टीमेट बनता है।'[२]

भ्रष्टाचार को दूर करने के लिए जो शासकीय घोषणायें की जाती है उस पर फब्ती कसी गई—'धाधली और रिश्वत की रोकथाम के लिए काफी शोर और पुकार थी परन्तु केवल सतह पर। रिश्वत लेने वालों और देने वालों को भी लाभ था। हानि केवल सरकार या सार्वजनिक हित की थी।'[३] यही कारण है कि रतन रिश्वत देता था और रिश्वत लेने वालों को गोली भी देता था।

भ्रष्टाचार को प्रोत्साहित करने में राजनीतिक दलों का भी कम भाग नहीं। सोमराज चरित्रहीन युवक है और कुकृत्य में जेल काट आया है। पर राज्य कांग्रेस कमेटी अपना मुहर युक्त प्रमाणपत्र प्रदान कर उसे राजनीतिक पीड़ित व देश सेवा में २ वर्ष जेल भुगतने वाला सेनानी घोषित कर देती है जिससे वह सहकारी ऋण प्राप्त कर सके।[४]

उपन्यासकार यह तथ्य प्रस्तुत करने में भी नहीं हिचकता कि विधायक गण भी भ्रष्टाचार में आकंठ डूबे है। उपन्यास का पात्र नरोत्तम पूछता है—'ईमानदार है कौन! क्या कानून बनाने वाले विधान सभा के मेम्बर ईमानदार है? जब का पन्द्रह, बीस-पच्चीस हजार रुपया खर्च करके यह लोग देश सेवा करने के लिए

१ यशपाल—'झूठा सच', पृष्ठ ६४४
२ यशपाल—'झूठा सच', पृष्ठ ६६४
३ यशपाल—'झूठा सच,' पृष्ठ ६४३
४ यशपाल—'झूठा सच', पृष्ठ ६२२

चुनाव लड़ते है ?'[1] यह ऐसा प्रश्न है जिसका उत्तर अबूझ नहीं। आगे चलकर ही एक एम० एल० ए० का उदाहरण सामने आता है जो साढे तीन साल मे दो मकान पक्के खड़े कर लेते है—साठ बीघे खेतो के मालिक बन जाते हैं। थानेदार से आठ आने का हिस्सा है। सरकार के यहाँ से सब कुछ करवा देने की एजेन्सी चला रहे हैं।[2]

प्रशासन का स्तर भी गिर गया है क्योंकि अधिकारियों व कर्मचारियों की योग्यता का मापदंड उनकी कर्तव्य निष्ठा व योग्यता न होकर चापलूसी हो गया है। इसका उदाहरण है उपन्यास के पात्र डाक्टर रावेलाल, जो मुख्यमन्त्री सूद जी की कृपा से असिस्टेंट सर्जन, असिस्टेंट प्रोफेसर हो जाते हैं। सरकारी खर्चे पर विदेश से स्पेशल कोर्स कर 'प्रोफेसर आफ मेडीसन' के लिए प्रयत्नशील हैं और मात्र इसीलिए सूद जी के एन्जिना के इलाज के लिए माह में दो बार चंडीगढ़ जाते हैं।[3]

इस तरह हम देखते हैं कि लेखक ने सन् १९४६ से १९५६ के माध्यावधि के प्रशासन में व्याप्त भ्रष्टाचार के विभिन्न स्वरूपों को यथार्थ के परिपार्श्व में दिखलाने का सफल प्रयास किया है।

आम चुनाव का चित्रण

प्रजातान्त्रिक प्रणाली मे आम चुनाव का स्थान उतना महत्वपूर्ण है जितना शरीर मे रक्त का। आम चुनाव प्रजातन्त्र का मूलाधार है और यशपाल ने स्वाधीनतोपरान्त हुए आम चुनावों का प्रस्तुत उपन्यास में अध्ययन पूर्ण चित्रण किया है।

प्रथम आम चुनाव के अवसर पर हम दिल्ली में चुनाव की गतिविधियों से परिचित होते हैं। राजनीतिक दल चुनाव प्रचार में कांग्रेस को पूँजीपतियों की संस्था सिद्ध करने का प्रयत्न कर मतदाताओं का समर्थन प्राप्त करने की चेष्टा करते है। 'सोशलिस्ट और कम्युनिस्ट दोनों ही कांग्रेस को पूंजीपतियों की संस्था कहकर मजदूर-किसानों के शासन की मांग के नारे लगा रहे थे। दोनों को शिकायत थी कि कांग्रेस चुनाव जीतने के लिए शासन शक्ति का प्रयोग कर रही है। विरोधी दल ने मांग की थी कि चुनाव के समय कांग्रेस सत्ता में न रहे पर कांग्रेस सरकार ने मांग मंजूर नहीं की थी।'[4]

विरोधी राजनीतिक दलों में आपसी फूट थी और इस कारण कांग्रेस की स्थिति सुदृढ़ थी यह तथ्य देना भी लेखक नहीं भूलता—'सोशलिस्टों और कम्युनिस्टों का आपस

१. यशपाल—'झूठा-सच', पृष्ठ ६४५
२ यशपाल—'झूठा-सच', पृष्ठ ६४५
३. यशपाल—'झूठा-सच', पृष्ठ ६६१
४. यशपाल—'झूठा-सच', पृष्ठ ४९१

मे सबसे उत्कट विरोध था। दोनों जानते थे कि वे काग्रेस विरोधी लोगो को आपस मे बाटकर, दानो ही काग्रेस से हारेंगे पर वे आपस मे मिल न सकते थे।'[1]

चुनाव जीतने के लिए मतदाताओ को अपनी ओर आकर्षित करने मे प्रधान मत्री के चुनाव दौरे व सन्देश अमोघ अस्त्र के रूप मे माने जाते रहे हैं। उनके विवरण[2] के साथ उनकी कटु आलोचना भी उपन्यास में की गई। ऐसे स्थलो पर जनता की प्रतिक्रिया के रूप मे लेखक अपने ही विचार व्यक्त करता है—'आज भी महात्मा गाधी की जय-पुकार पर काग्रेस के लिए वोट मागे जाते हैं परन्तु गाधी जी के सिद्धान्त और नीति, शासन मे या काग्रेस के व्यवहार मे कहाँ है ? गाधी जी को तो केवल राजघाट मे समेट दिया गया है।'[3]

चुनाव तत्र कितना व्यय-साध्य हो गया है और उसके लिए काग्रेसी नेता सिद्धान्तो को ताक मे रखकर किस तरह चुनाव चदा वसूलते है, उदाहरण मुख्य मत्री सूद जी हैं। उनका कथन है 'प्रधान मत्री तो हवा मे रहते हैं। प्रधान मत्री लाखो आदमियो की भीड से एक साथ मिलते हैं। काम भीड से नही चलता। प्रधान मत्री भीड से चुनाव के लिए चन्दे की ही अपील करके देख लें ? लाख की भीड से दस हजार भी नही मिलेगा। आगामी इलेक्शन के लिए एक-एक राज्य मे करोड-करोड का खर्च पडेगा। प्रधान मत्री इकट्ठा कर देंगे ये रकम ? सोशलिस्टिक ढङ्ग एक बात है पर ढङ्ग व्यवहारिक तो होना चाहिए। अव्यवहारिक ढङ्ग हम लोग कैसे मन्जूर कर सकते हैं। जिम्मेवारी तो हमारी है। वे तो अपना आर्शीवाद देकर एक तरफ हो जायेंगे।'[4] उपर्युक्त कथन द्वारा लेखक चुनाव के व्यय साध्य होने के साथ काग्रेस की कथनी और करनी पर भी व्यग करता है।

चुनाव के अवसर पर किस तरह राजनीतिक दलो द्वारा साम्प्रदायिक विद्वेष भडकाया जाता है[5] किस तरह वोट की खरीदी की जाती है[6] और किस तरह प्रचार निम्न स्तरीय होता है[7] इसके विवरण भी लेखक ने दिये हैं।

काग्रेस को अधिक वोट प्राप्त होने का विश्लेषण भी मिलता है जो एकागी होने पर भी लेखक उर्वरा बुद्धि का द्योतक है—'पश्चिम से आकर बसे सिक्ख हिन्दू किसानो

---

१. यशपाल—'झूठा सच', पृष्ठ ४६२
२. यशपाल—'झूठा-सच', पृष्ठ ७०४
३. यशपाल 'झूठा-सच', पृष्ठ ७७५
४. यशपाल—'झूठा-सच', पृष्ठ ६६४
५ यशपाल—'झूठा सच,' पृष्ठ ४६४
६ यशपाल—'झूठा सच', पृष्ठ ४६५
७ यशपाल—'झूठा-सच', पृष्ठ ४६५

ने कांग्रेस को ही वोट दिये थे। उन्होने वोट पुरी के नाम पर नहीं, कांग्रेस के चुनाव चिन्ह 'बैलो की जोडी' का चित्र देखकर दिये थे। साधारण किसान की धारणा थी, कांग्रेस और मुस्लिम लीग ने देश का राज बाट लिया था। पूर्वी पजाब और शेष भारत कांग्रेस को मिल गया था। अब कांग्रेस ही राजा थी। भविष्य मे धरती का लगान अंग्रेज सरकार को नहीं, कांग्रेस सरकार को ही देना होगा। कांग्रेस पार्टी और भारत सरकार के झन्डो का रग एक ही था। झन्डो पर 'चक्र' और 'चर्खे' के भेद की सूक्ष्मता झन्डा पूरा खुला होने पर ही प्रकट होती है।'[1]

कांग्रेस की आलोचना

सम्पूर्ण उपन्यास मे घटनाओ के अवसरानुसार कांग्रेस की कटु आलोचना की गई है। कांग्रेस शासन की गतिविधियो को विरोधी पक्ष की दृष्टि से देखा गया है अत उसकी अच्छाइयो के स्थान पर बुराइयो का चित्रण किया गया है। साम्यवादी पात्र चड्ढा का कथन है, 'क्या अब कांग्रेस की डिक्टेटरशिप नहीं है? हड़ताल को गैर कानूनी करार देना क्या है? आर० एस० एस० को गैर कानूनी कर देना, सब कम्युनिस्टो को गिरफ्तार कर लेना, सन्देह मात्र पर गिरफ्तार कर लेना और प्रिवेंटिव डिटेंशन का कानून क्या है?'[2] स्पष्ट है कि जन सुरक्षात्मक बनाये गये कानूनो को वे मात्र डिक्टेटरशिप मानते है और पाठको को स्वनिर्मित प्रनजाल मे लाकर सहानुभूति प्राप्त करना चाहते हैं।

माथुर भी आचार्य कृपलानी के शब्दो को उद्धृत कर कांग्रेसी प्रशासन की खिल्ली उड़ाता है और पुलिसराज की भर्त्सना करता है।[3] मर्सी भी कहती है—'पूंजीपतियो के होसले बढ गये है कि अब तो हमारे चदो से पलने वालो का राज है। बेचारे मजदूरो से हड़ताल का भी हक छीन लिया। कट्रोल हटा दिये है कि पूंजीपति मन भर के कमायें और कांग्रेस को चदा दें। लोगो को क्या मिला? गल्ला कपड़ा लड़ाई के जमाने मे उतना महगा नहीं था जितना अब है। गल्ला कपड़ा कम है तो तुम सबको हिस्से से दो। पूंजीपतियो को दाम क्यो बढ़ाने देते हो?'[4] इस तरह कांग्रेस को पूंजीवादियो का समर्थक सिद्ध करने का प्रयास किया गया है।

---

१ यशपाल—'झूठा-सच', पृष्ठ ४३६-३७
२ यशपाल—'झूठा सच', पृष्ठ ४६६
३ यशपाल—'झूठा-सच', पृष्ठ ३६८
४ यशपाल—'झूठा-सच', पृष्ठ ३६८

गाँधी जी के आमरण अनशन और प्रधानमंत्री के निवास—व्यवस्था[1] के ऊपर भी करारा व्यंग किया गया है। कांग्रेसी नेताओं द्वारा मंत्रिपद प्राप्ति उपरान्त प्रदर्शित शान शौकत का चित्र भी उनके सिद्धान्त-च्युत स्वरूप को प्रस्तुत करता है। 'भारतीय मानव विज्ञान परिषद के उद्घाटन को लेकर प्रधान मन्त्री पर चोट की गई है। विस्थापितों के शिविर में प्रधानमन्त्री की भेंट का जो चित्रण किया है वह भी उनकी प्रतिष्ठा के प्रतिकूल तथा साम्प्रदायवादी मुलम्मायुक्त अंकन है।[2] कांग्रेसी नीतियों को सरकारी कर्मचारियों पर किस तरह थोपा जाता है खद्दर की हुन्डियो की खरीद का निर्देश इसका उदाहरण है। बताया गया है कि सरकारी कर्मचारियों को खद्दर की हुन्डियो की खरीद के लिए प्रोत्साहित किया जाता है यद्यपि कर्मचारियों की नजर में 'गांधी आश्रम और खद्दर तो सदा से पोलिटिकल रहे हैं। खद्दर पर हमारा विश्वास नहीं। अपना खद्दर जबरदस्ती पहनाते है। गाँधी भंडार का घाटा पब्लिक से टैक्स लेकर पूरा करते हैं। नेहरू को चर्खा कातने का शौक है तो दिन भर राजघाट पर जाकर काता करें, हमारे सिर खद्दर क्यों लादते है।'[3] इस तरह एक ओर जहाँ खद्दर का विरोध प्रदर्शित किया गया है वहीं दूसरी ओर नेहरू जी पर भी आक्षेप किया गया है।

यह भी बताया गया है कि कांग्रेसी शासन में सरकारी कर्मचारियों को इस तरह कांग्रेसी कार्यक्रम को सफलता के लिये बलात् खींचा जाता है और यदि वे इनका विरोध करें तो उन्हे चक्कर में लाते देर नहीं लगती। तारा और डा० नाथ (सरकारी उच्चाधिकारी) के विवाह को इसी बुनियाद पर 'पोलिटिकल साबोताज़' व 'पोलिटिकल ब्लेक मेल' बनाया जाता है।[4]

काल्पनिक कांग्रेसी पात्रों की सृष्टि और उनका चरित्र चित्रण लेखक ने पाठको की दृष्टि में हेय बताने के लिए किया है। वे लेखक के पूर्व आग्रह से ग्रसित होने के साथ-साथ है उसके हाथों की कठपुतली मात्र।

गाँधी हत्याकाड का विवरण

'झूठा सच' में गाँधी जी की राजनीतिक गतिविधियों के साथ गाँधी हत्याकाड के कई चित्र प्रस्तुत किये गये है। साम्प्रदायिकता को रोकने के लिये गाँधी जी के प्रयास

---

१. यशपाल–'झूठा-सच,' पृष्ठ ६४२-४३
२. यशपाल–'झूठा-सच,' पृष्ठ १७४-७५
३. यशपाल–झूठा-सच,' पृष्ठ ४४५
४ यशपाल–झूठा सच,' पृष्ठ ७००-१

प्रार्थना सभाओं का आयोजन[1] गांधी जी के प्रयासों के विरूद्ध जन आक्रोश,[2] गांधी जी का आमरण अनशन और उससे उत्पन्न राजनीतिक गुत्थियाँ[3] और गाँधी हत्याकाड[4] का विस्तृत विवरण इस उपन्यास मे मिलता है।

गाँधी जी ने १३ जनवरी १९४७ से जो आमरण अनशन किया था उसका कारण था भारत सरकार पर पाकिस्तान को ५५ करोड रूपये देने हेतु नैतिक प्रभाव डालना। साम्प्रदायिक एकता के लिए गाँधी जी का यह तीसरा आमरण अनशन था। भारत सरकार और उसके कर्णधार पाकिस्तान को ५५ करोड रुपया देने के विपक्ष मे थे किन्तु गाँधी जी के आमरण अनशन ने जो एक नई स्थिति उत्पन्न कर दी थी वह *भयावह थी अत सरकार को झुकना पड़ा। होम सेक्रेटरी रावत के शब्दो मे यह* 'दिस इज ए हिस्टोरिकल ब्लडर'[5] थी। वे यह तथ्य भी बतलाते हैं कि 'पटेल क्या, पूरी कैबिनेट इसके विरुद्ध थी। कैबिनेट इस विषय मे निर्णय करके घोषणा कर चुकी थी परन्तु नेहरू और राजेन्द्र बाबू गाँधी जी के अनशन से दहल गये। दूसरे लोगो के पाँव भी उखड गये। पटेल अकेले रह गये।'[6] होम सेक्रेटरी रावत के ही शब्दो में 'खुद पटेल नहीं बदल गये हैं। उन्हे मात स्वीकार कर लेनी पडी है इसलिए १५ तारीख को, पचपन करोड के बारे मे सरकारी विज्ञप्ति प्रकाशित होते ही वे १६ को सुबह ही काठियावाड चले गये। आशका है वे त्यागपत्र न दे दें।[7]

गाँधी जी के आमरण अनशन के प्रसग को लेकर लेखक उसकी तुलना मे काकोरी कान्सपिरेसी केस के क्रातिकारियो के अनशन का न केवल उल्लेख ही करता है अपितु स्वय क्रातिकारी होने के नाते उसकी श्रेष्ठता भी प्रतिपादित करता है।[8]

हाफिज जी के शब्दो मे वह गाँधी जी के उपवास करने के तरीके पर भी व्यग करता है—'फाके से रहकर दूसरो को डराना जाहिल औरतो का तरीका है या गाँधी *ने यह तरीका पालिटिक्स मे चलाया है। जब उसके पास दलील नहीं होती तो वह* फाके से रहकर डराता है।'

---

१ यशपाल—'झूठा-सच,' पृष्ठ ८६ व ८७
२ यशपाल—'झूठा-सच,' पृष्ठ ९२,९३, ९४
३. यशपाल—'झूठा सच,' पृष्ठ १९४ व २०४
४. यशपाल—'झूठा-सच,' पृष्ठ २३१-३५
५ यशपाल—'झूठासच,' पृष्ठ २२१
६ यशपाल—'झूठा-सच,' पृष्ठ २१९
७ यशपाल—'झूठा सच,' पृष्ठ २१९
८ यशपाल—'झूठा-सच,' पृष्ठ २२२-२३

पाकिस्तान द्वारा किये गये काश्मीर पर आक्रमण का संक्षिप्त ऐतिहासिक निर्देश भी दिया गया है।[1]

पंचवर्षीय योजना की आलोचना

यशपाल का उपन्यास-साहित्य सोद्देश्य है और वाद विशेष के अनुयायी होने के कारण कांग्रेस उसके सिद्धान्तों और कार्यों की आलोचना करना उनके लिए सामान्य बस्तु है। कांग्रेस द्वारा राष्ट्र के विकास के लिए गठित योजना आयोग और उसके कार्यक्रम की अनेक स्थलों पर व्यंगोक्ति की गई है।[2] आर्थिक योजना को वे चुनाव जीतने का 'स्टंट' बताते हैं। उनके अनुसार 'कांग्रेसी सरकार जनता का विश्वास पाने के लिए चुनाव से एक वर्ष पूर्व सन् ५६ के आरम्भ में ही अपनी दूसरी विशाल आर्थिक योजना लागू कर देना चाहती थी।[3] उपन्यास के साम्यवादी पात्र उद्योगों पर राष्ट्रीय नियन्त्रण की शासकीय नीति की भी अलोचना करते है।[4]

कम्युनिस्ट पार्टी की रीति नीति

कांग्रेस के प्रति जनता की आस्था का ह्रास और कम्युनिस्टों के बढ़ते हुए प्रभाव का दिग्दर्शन उपन्यास का उद्देश्य है। इसके लिए लेखक ने काल्पनिक कांग्रेसी व साम्यवादी पात्रों की सृष्टि की है। साम्यवादी पात्रों के माध्यम से कम्युनिस्ट पार्टी के सिद्धान्तों व सन् १९४६ से १९५६ तक की गतिविधियों का चित्रण किया गया है। विभाजन के समय साम्प्रदायिक संघर्षों में कम्युनिस्ट पार्टी द्वारा शांति स्थापित करने संबंधी कार्यों का विस्तृत विवरण दिया गया है और विभाजन के बाद से ५६ तक की भारतीय राजनीति में पार्टी की भूमिका का स्पष्टीकरण दिया गया है।

झूठा सच(वतन और देश)के आरम्भ में ही हम दयालसिंह कालेज की स्टूडन्ट फेडरेशन और उसकी राजनीति से परिचित होते है। स्टूडेन्ट फेडरेशन के कई सदस्य ही आगे चलकर साम्यवादी सिद्धान्तों का प्रचार करते हैं। राजनीतिक जिज्ञासा सदस्यों में प्रारम्भ से ही है और 'पीपल्स-एज' के आधार पर वे राजनीतिक रियाज करते है। वे साम्प्रदायिक तनाव दूर करने के लिए जुलूस निकालते है, भाषण देते है और लीग व कांग्रेस को कोसते हैं। साम्यवादी होने के नाते धर्म व प्रेम के संबंध में इनकी अपनी धारणायें व मान्यतायें हैं और इसीकारण प्रद्युम्न जुबेदा से और तारा असद से अन्तर्जा-

१. यशपाल—'झूठा-सच,' पृष्ठ ६२-६३
२. यशपाल—'झूठा-सच,' पृष्ठ ६४६ व ७११
३ यशपाल—'झूठा-सच', पृष्ठ ६४२

तीय रोमान्स करती है पर यह रोमान्स भी वैवाहिक रूप धारण नहीं कर पाता क्योंकि समय संघर्ष का था और व्यक्तिगत जीवन का स्थान पार्टी के बाद। कामरेड असद साम्प्रदायिकता दूर करने का एक नया हल भी देते हैं–'अगर धर्म या सम्प्रदाय के विश्वासों की पृथकता के बावजूद हिन्दू मुसलमानों के सामाजिक सम्बन्ध होते रहें तो झगड़ा कितना कम हो जाये।'[1] साम्यवादी इन खाइयों को नहीं मानते पर लेखक ने घटनाओं को मोड़ देकर ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दी कि रोमान्स के बाद विवाह का प्रश्न ही नहीं आया। हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए साथी हीरासिंह, प्रद्युम्न, असद आदि अनेक स्थलों पर भाषण देते हैं।[2] कम्युनिस्ट पार्टी का रेलवे यूनियन पर अच्छा प्रभाव है और पैंतालीस हजार सदस्य उसके अन्तर्गत हैं। यूनियन भी शांति आंदोलन में भाग लेती है। किन्तु साम्प्रदायिक अग्नि की ज्वाला और भड़क उठती है। कांग्रेस विभाजन के सिद्धान्त को स्वीकार कर लेती है जिसका कामरेड सैद्धान्तिक विरोध करते हैं। वि के निर्णय से साम्प्रदायिकता जोर पकड़ती है और लेखक उनका सविस्तार मार्मि करता है। *'झूठा-सच' के प्रथम भाग में कम्युनिस्टों का प्रसंग दूसरे भाग की तुल* है। दूसरे भाग में कांग्रेसीसरकार स्थापित होने के बाद उनकी गतिविधियों स्वाभाविक है। दूसरे भाग 'देश का भाग्य' में साम्यवादी पात्र कांग्रेस की करते हैं, पार्टी की नीति पर चर्चा करते हैं, आम चुनावों में भाग लेते हैं। अ कामरेडों का मुख्य केन्द्र है। वहाँ कामरेड 'जोशी की नीति स्ट्रेंगथन नेहरूज की सहायता करो), रणदिवे का सोशलिस्ट रेवोल्यूशन का नारा, बोर्जुआ रेवोल्यूशन (राष्ट्रीय प्रजातांत्रिक क्रांति), रेवोल्यूशनरी रोल आफ स्माल ने रोल आफ वर्किंग क्लास इन डेमोक्रेटिक रेवोल्यूशन, डेन्जर आफ बोर्जुआ पीपल्स डैमोक्रेटिक रेवोल्यूशन' पर चर्चा करते हैं।[3] चड्ढा नेशनल बोर्जुआ से फ्युडिलिज्म और पूँजीवादी अधिनायकत्व को समाप्त करने की मॉ करता था। वह जमींदारी प्रथा के उन्मूलन, खेती की भूमि और बड़े उद्यो करण के कार्यक्रम को प्राथमिकता देना चाहता था। कांग्रेस सरकार रजवाड़ों की सत्ता की समाप्ति उसकी दृष्टि में प्रजातन्त्र की ओर संतोषजन

साम्यवादी दल को लेकर जो आपसी मतभेद है उनके ऊपर भी के द्वारा प्रकाश डाला है। माथुर व तिवारी कम्युनिस्टों के समाजवादी स करते थे परन्तु पार्टी की नीति पर उन्हें आपत्ति थी। वह भारतीय कम्यु

---

१ यशपाल–'झूठा-सच,' (वतन और देश), पृष्ठ ८६

२ यशपाल–'झूठा-सच,' (वतन और देश), पृष्ठ ११६

१. यशपाल–'झूठा-सच,' (देश का भविष्य), पृष्ठ ४३७

स्वतंत्र राष्ट्रीय सगठन नही, अन्तर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट सगठन का आनुषगिक अश ही मानते थे। उन्हे आपत्ति थी कि कम्युनिस्ट पार्टी की नीति अपनी राष्ट्रीय परिस्थितियो की चेतना से नही अन्तरराष्ट्रीय कम्युनिस्ट आन्दोलन की स्ट्रेटजी के आधार पर बनती है।[1] माथुर इस तथ्य की ओर से भी अपनी आंख नही मूंदता—'तुम लोगो की नीति सदा अन्यत्र के प्राप्त आदेशो के अनुसार चलती है। सब जानते हैं,तुम लोगो ने अपनी कलकत्ता काग्रेस की नीति 'फार लास्टिग पीस एन्ड पीपल्स डमोक्रेसी' मे प्रकाशित लेख के आधार पर बदली है।[2]

माथुर यह भी कहता है कि 'तुम्हारी पार्टी का दृष्टिकोण कभी राष्ट्रीय नही रहा।' इसकी पुष्टि के लिए वह १९४२ की घटनाओ की विवेचना करता है।[3]

योजना लेखक ने उच्चाधिकारियो द्वारा तारा को मर्सी से सम्पर्क न रखने की चेतावनी
नियन्त्रण यह उद्घाटित किया है कि शासकीय कर्मचारियो को साम्यवादियो या उनके
किसी प्रकार सम्पर्क न रखने का निर्देश है।[4]

कम्युनिस्ट श की स्वतन्त्रतोपरान्त कम्युनिस्ट पार्टी की स्थिति म जो प्रगति हुई है उसकी
का रना भी लेखक नही भूला। प्रथम चुनाव के बाद की स्थिति का विश्लेषण
का दिग्दर्शन कहा गया है कि 'कुछ लोगो ने काग्रेस सरकार को गिरा देने के जो काल्पनिक
पात्रो की लिए थे वे कोहरे के बादलो की तरह उड गये थे। भारत के सभी राज्यो म
व सन् १९४६ कारें कायम हो गई थीं। सभी विधान सभा म काग्रेस का निर्णायक बहुमत
समय साम्प्रदा ऐसी सरकार की आलोचना करने वालो की सख्या पूर्वापेक्षा बढ गई थी।
का विस्तृत वि । कम्युनिस्ट भी विधान सभा म पहुँच गये थे। लोक सभा म भी पाँच सौ
राजनीति म पा भग कम्युनिस्ट सदस्य आ गये थे। अब कम्युनिस्ट पार्टी गैरकानूनी नही
ी थी। कानूनन कम्युनिस्ट पार्टी की स्थिति दूसरी राजनैतिक पार्टियो के
भूठा १,५
फेडरेशन और उ
ही आगे चलकर
मे प्रारम्भ से ही ल के उपन्यासो के अध्ययन से इस निष्कर्ष पर पहुँचना स्वाभाविक है कि
वे साम्प्रदायिक सिद्धान्तो के अनुरूप कथानक और पात्रो की सृष्टि करते है। कथानक और
काग्रेस को को

धारणायें व मा ल—'झूठा-सच,' (देश का भविष्य), पृष्ठ ४३७

१ यशपाल ल—'झूठा-सच,' (देश का भविष्य), पृष्ठ ४४०
२ यशपाल ल—'झूठा-सच,' (देश का भविष्य), पृष्ठ ४४१
३ यशपाल ल—'झूठा सच,' (देश का भविष्य), पृष्ठ ४४३
४ यशपाल ल—'झूठा सच,' (देश का भविष्य), पृष्ठ ४९८

पात्र ऐतिहासिक न होने पर भी सामयिक राजनीतिक घटनाओं का समाहार वे इस कुशलता से करते हैं कि उपन्यास में राजनीतिक वातावरण सम्पूर्ण रंगीनी के साथ उभर आता है। इस रंगीनी को वे रोमान्स के विविध प्रसंग संयुक्त कर और चटकदार तथा पाठकों के लिए ग्राह्य बनाते हैं क्योंकि वे जानते हैं कि केवल शुष्क राजनीतिक सिद्धान्त *या घटनायें पाठक का समुचित मनोरंजन न कर सकेंगी। रोमान्स की सृष्टि भी मार्क्स* के द्वन्द्वात्मक सिद्धान्त की पुष्टि की सहायिका के रूप में होती है। वे मध्यवर्गीय नागरिक पात्रों को लेकर मार्क्स की अभिव्यक्ति देते हैं। उनके प्रायः सभी प्रमुख पात्र सेक्स पीड़ित हैं, राजनीति का मोहिनी आवरण लपेटे हुए राजनीतिक रोमान्स की सृष्टि करते हैं। यह बात अलग है कि सेक्स के विभिन्न पहलुओं को उन्होंने साम्यवादी दृष्टिकोण की कसौटी से कसा है। फिर भी हम इस सत्य से विमुख नहीं हो सकते कि रोमान्सों के जाल में यशपाल के राजनीतिक उपन्यासों का स्वरूप स्वस्थ और प्रभावकारी नहीं बन पाता। फ्रायड के इसी प्रभाव के कारण उनका सामाजिक यथार्थवाद भी कुंठित हुआ है। इतना होने पर भी हम इस कथन से पूर्ण सहमत हैं कि 'यशपाल आधुनिक नागरिक जीवन के चित्रकार हैं और भारत का सर्वहारा वर्ग प्रथम बार आपके पात्रों में अपना विजयी स्वर उठाता है। मार्क्सवाद के वैज्ञानिक विचारदर्शन को उपन्यास कला में ढालने का भी पहला सफल प्रयास यशपाल ने किया है।'[1]

अन्य उपन्यासकार और राजनीतिक उपन्यास

अचल

आलोच्यावधि के उपन्यासकारों में अचल के 'चढ़ती धूप', 'नई इमारत' और 'उल्का' में राजनीतिक चेतना विशेष रूप से प्रस्फुटित हुई है। रामेश्वर शुक्ल 'अचल' मूलतः कवि हैं और उनके कवि-मानस का रूप उनके उपन्यासों में भी देखा जा सकता है। उनके राजनीतिक उपन्यासों में प्रेमानुभूति या रूप-लालसा की आसक्ति उनके कवि-हृदय की दुर्बलता है। अंचल सोद्देश्य साहित्य की सार्थकता को मानकर उसके प्रति ईमानदार रहने की चेष्टा भी करते हैं। उनके कथनानुसार 'साहित्य को मानव समाज की क्रान्तिकारी आर्थिक और राजनीतिक उन्नति का सर्वश्रेष्ठ माध्यम और अस्त्र मानने का जो मेरा प्रगतिशील स्वप्न है उसके प्रति मैं अक्षर-अक्षर वाक्य-वाक्य तक ईमानदार हूँ।'[2] वे उपन्यास को बाह्य जन-जीवन के यथार्थों के अटूट पारस्परिक सम्पर्क के रूप में

१. आलोचना, जनवरी १९५७, पृष्ठ ८८

२. अचल—'चढ़ती धूप' पृष्ठ ३ (कुछ शब्द में)

देखते हैं। उनके शब्दो मे 'कलाकार का काम केवल चित्रण और उद्देश्यहीन चित्रण नही है। कलाकार इस बाहरी दुनिया मे जन जीवन का प्रवहमान चिन्ताधारा और कर्म योजना मे जो देखता, सुनता, सहता है—समझता-बूझता है, उनके वाछनीय रूप के प्रति प्रेम और अवाछनीय रूप के प्रति घृणा का सन्देश भी सुनाता है। यह सन्देश होता है समाजी विषमता और असगति के प्रति विद्रोह का – वर्गगत और जातिगत शोषण के विरुद्ध नव निर्माणात्मक प्रतिहिंसा का—इतिहास की नवयुग—प्रवर्तक शक्तियो के प्रकाश मे एक अधिक कल्याणकारी 'सब के सुख' और समृद्धि की विराट भावना पर आधारित अर्थनीति और समाज-व्यवस्था के बली आग्रह का। मनुष्य का सामाजिक अस्तित्व उसकी चेतना को निर्धारित करता है।'[1] वे यह भी मानते हैं कि 'पदार्थवादी यथार्थता के साथ आजीवन चलने वाला उसका यह सघर्ष क्रातिकारी होता है—विप्लव वृत्तियो और विद्रोह शिखाओ पर वह आगे बढता है क्योकि कलाकार को वर्तमान समाजी यथार्थता को जन्म देना है जो परिवर्तनशील समाज और राजतत्र की नई नई मागें पूरी करे, सर्वहारा-वर्ग के हितो के सरक्षण का भार वहन करे। इसके लिए आवश्यक है कि वैयक्तिक पूँजीवाद का अन्त हो और उसकी शक्तियो पर साहित्य और राजनीति दोनो मे अधिक से अधिक पैनी कठोर और आक्रमणात्मक चोट की जाय।'[2]

अचल ही हिन्दी के प्रथम राजनीतिक उपन्यासकार है जो अपनी मान्यताओ की स्पष्ट घोषणा के साथ उपन्यास जगत मे आए। 'चढती धूप', नई 'इमारत' और 'उल्का' अचल के क्रान्तिपूरक उपन्यास हैं जो रोमांटिक प्रेम और काव्यात्मक अभिव्यजना के कारण आलोचको मे गतिभ्रम की स्थिति उत्पन्न करते हैं। उनके सम्बन्ध मे कहा गया है कि 'अचल की क्रान्ति मूलत भौतिक नही, भावगत है, वैज्ञानिक नही रोमानी है। क्रान्ति के सारे भी भावात्मक उद्गारो को व्यक्त करने के लिए हैं।'[3]

चढती धूप (१६४५)

'चढती धूप' अचल का प्रथम उपन्यास है 'जिसका घटनाकाल काग्रेस के सन् १९३२ वाले आदोलन के बाद और विभिन्न प्रान्तो मे काग्रेस मन्त्रिमडल स्थापित होने के बीच का समय है—जब देश मे जोरो के साथ समाजवादी चेतना का उदय हो रहा था और काग्रेस के भीतर एक उग्र समाजवादी दल की स्थापना हो चुकी थी। देश मे

---

१. अंचल—'चढती धूप,' पृष्ठ ३ ('कुछ शब्द' में)
२ अचल—'चढती धूप,' पृष्ठ ४
३. सुषमा धवन—'हिन्दी उपन्यास,' पृष्ठ १३०

उस समय चारों ओर फैली निराशा और पराजय भावना के बीच साम्यवाद की लाल ज्योति ही भारतीय बालकों और युवकों के गिरते मनों को थामे थी—उन्हें नई प्रेरणा और चेतना प्रदान कर रही थी।' कहानी का नायक मोहन निम्न मध्यवर्ग का तरुण *किशोर है जिसकी उगती हुई बौद्धिक चेतना और पीढ़ियों से चले आ रहे जीवन-व्यापी* सस्कारों का पारम्परिक घात-प्रतिघात और संघर्ष कहानी का ढाचा है। अर्थाभाव के कारण विद्याध्ययन मे बाधा आते देख वह श्रम का सम्बल अपनाने को आतुर है। वह मानता है कि यह तो जीवन की लडाई है। लडने वाले के पास सब हथियार हों यह जरूरी नहीं है। गौरव और महत्व तो उसी चरणों की धूल बनते हैं जो निहत्था, निस्सहाय, निःसम्बल, कठिनाइयों से जूझता है—जीवन की विषमताओं से भिडता है।'[1]

छात्र जीवन मे ही वह राजनीतिक गतिविधियो मे भाग लेता है। देवपुर में कानपुर के किसान सभा नेता वर्मा जी के आगमन पर वह समारोह की सफलता के लिए जी-तोड मेहनत करता है। वह किसानो की सभा में खुशहालपुर के जमींदार की लडकी के विवाह मे बेगार न करने का निर्देश देता है। वह जमीनदार को व्यर्थ तथा सरकार व जनता के बीच अनावश्यक कडी मानता है। उसके शब्दो मे जमींदार के स्वार्थ अलग हैं।'' किसानो के स्वार्थों का उनसे मौलिक संघर्ष है। वह ऐसे भविष्य का स्वप्न देखता है जिसमें स्टेट की सारी जमीन होगी—किसान का सीधा संबंध स्टेट से होगा। जमींदारी पूँजीवादी व्यवस्था का अत्यन्त विकृत रूप है। इसे जल्द से जल्द समाप्त होना है।'[2] इसी परिवर्तन को लाने के लिए वह खुलकर राजनीति मे भाग लेने को ही जीवन का अंतिम ध्येय घोषित करता है और स्वय को एक सजीव शक्ति का अश सिद्ध करता है। वह *कहता है 'मेरा मंदिर मेरा देश और समाज है।'* वही अन्धकार ग्रस्त रहा तो दो-चार, दस-बीस घरों के टिमटिमाते चिरागों से फायदा ?'[3] वह जीवन का लक्ष्य निर्धारित करता है औरों के साथ मिलकर नयी सामाजिक व्यवस्था का निर्माण करना। जो नर के द्वारा नर का, वर्ग के द्वारा वर्ग का, देश के द्वारा देश का शोषण गवारा नहीं। वह पुरानी व्यवस्था की ईंटों को तोडने मे अपनी जान दे देगा। वह जानता है कि सामाजिक व्यवस्था के बदल जाने पर व्यक्ति और समाज का सघर्ष जो व्यक्तिवाद की जान है, नहीं रह जाता।'[4] वह

---

१ अंचल—'चढ़ती धूप,' पृष्ठ १३
२ अंचल—'चढ़ती धूप,' पृष्ठ ४६
३ अंचल—'चढ़ती धूप,' पृष्ठ ४६
४ अंचल—'चढ़ती धूप,' पृष्ठ ६०

सांस्कृतिक सग्राम का सिपाही बन कर तब तक लड़ना चाहता है जब तक समाज की व्यवस्था की चाभी सबसे बड़ी जमात के हाथ में नहीं आती—समाज के धन का समाज मे पैदा होने वाली वस्तुओ का बँटवारा जब तक सबसे बड़े वर्ग की हिताभिलाषा से नही होता। ममता से वह राष्ट्रीय स्थिति के बारे मे कहता है, 'भयानक अंधियारा हमारे देश मे छाया है। इतना विराट शोषण है - इतना सूक्ष्म प्रकाड अनय है—ऐसी भयकर दासता है कि कहते नहीं बनता।'[1] इसी शोषण को समाप्त करने—उससे जूझने के ध्येय से वह अपनी प्रेमिका ममता को अपने साथ बधन-युक्त नहीं करना चाहता। वह कर्म-क्षेत्र को चुन कानपुर चला जाता है। ममता को धैर्य बधाते हुए वह कहता है—'समाज के सामने व्यक्तिगत सुख का मोह क्या है?' कानपुर मे मजदूर नेता वर्मा जी के पास रहने पर उसका सम्पर्क वर्मा जी की बहिन तारा तथा अन्य साम्यवादी कार्यकर्ताओ से होता है। तारा साम्यवादी चेतना से अनुप्राणित पात्र है। जनता के काम से उसे अवकाश नहीं। 'दिन-दिन भर मिल मजदूरो की बस्तियों मे घूम कर औरतो मे बगावत फैलावेगी। बाहर रहेगी तो देहातो मे व्याख्यान देती फिरेगी।'[2] साम्यवादी कार्यकर्त्ता हैं अरोड़ा जो मजदूर सभा के सयुक्त मत्री है, मोहिले जो रेल्वे वर्कर यूनियन के प्रधानमन्त्री है, कामरेड सारस्वत जो प्रान्तीय असेम्बली के मेम्बर है और कामरेड रिजवी जो क्रातिकारी कवि, लेखक और वर्कर यूनियन के प्रधान है। मोहन के साथ प्रथम परिचय में ही हम इन्हें साम्यवाद की व्याख्या करते व सामयिक राजनीतिक स्थिति पर चर्चारत देखते हैं। मजदूरो के बीच साम्यवादी दल की प्रतिष्ठा का ज्ञान हमे वर्मा के कथन से मिलता है जो कहते हैं—'यह तो हमारी लगन और कुर्बानी है जिसने हमे मजदूर किसानो मे इतना प्रिय बना दिया है कि आज उस वर्ग मे हमारा नेतृत्व है। कोई दूसरी राजनीतिक पार्टी इस सिलसिले मे हमारा मुकाबला नहीं कर सकती।'

पार्टी के कार्य मे महिलायें भी पीछे नही। तारा के यहा मोहन मजदूर सभा के प्रधान मन्त्री मेहरोत्रा की पत्नी और कम्युनिस्ट पार्टी की जनरल सेक्रेटरी श्रीमती प्रधान के सम्पर्क मे भी आता है। यहीं मजदूरो और उनके परिवार के सदस्यो मे क्रातिकारी भावना विकसित करने के लिए 'ग्रुप क्लासेज' की योजना बनाई जाती है। मोहन मानता है कि 'क्रान्ति की इच्छा, लालसा, शक्ति जनजन के अदर मौजूद है। उसका सचय और घनत्व इन आयोजनो से होगा। वह यह भी मानता है कि 'इस आयोजन द्वारा यदि लोगो मे एक बौद्धिक आग जलाई जा सके—मजदूरो मे—उनकी स्त्रियो मे—उनके बच्चो मे प्रचड क्रातिकारी ज्वाला धधक सके तो उसका लक्ष्य पूरा

१. अंचल—'चढ़ती धूप,' पृष्ठ ६३
२ अंचल—'चढ़ती धूप,' पृष्ठ ७७

हो जावेगा । जन वर्ग की अन्त शक्ति को उन्मादक अभिव्यक्ति देना—इस विद्रोह शक्ति को पूर्णता तक पहुँचा देना हमारा ध्येय होना चाहिए ।'[1] क्रांति की व्यक्तिवादी प्रवृत्ति की वह खिल्ली उड़ाता है ।

पर्याप्त संख्या में प्रचार हेतु ग्रुप क्लासेज प्रारम्भ की जाती हैं और मजदूरों में राजनीतिक जागृति उत्पन्न होती है । आपत्तिजनक भाषण देने के आरोप में वर्मा जी को एक वर्ष का कारावास होता है और विषम आर्थिक स्थिति के कारण मोहन 'जागरण' में काम करने लगता है । तारा और मोहन विभिन्न विषयों पर चर्चा करते हैं और साम्यवादी विचार-धारा की पुष्टि करते हैं । उनका मत है कि 'ईश्वरवाद या धर्म यदि क्रान्ति का विरोध करते हैं और ऐताहशत्व के हिमायती हैं तो उन्हें नष्ट होना है । हमारे कल्याण पर ही वे पनप सकते हैं—हमारे शोषण, पतन और सर्वनाश पर नहीं ।'[2] वे उस धर्म की सार्थकता मानते हैं 'जो यह विश्वास पैदा करे कि मनुष्य और उसके विचार समय की आर्थिक अवस्था में पलते हैं—आर्थिक अवस्था में परिवर्तन करके ही आध्यात्मिक उन्नति हो सकती है । उनकी दृष्टि में धर्म और ईश्वर दोनों साधन हैं—साध्य नहीं । साध्य है जीवन की पूर्णतम आध्यात्मिक उन्नति जो आर्थिक उन्नति पर आधारित है ।' मोहन हिंसा और अहिंसा की तात्विक विवेचना भी करता है । उसकी दृष्टि में 'समाज की भयंकर समस्या और नारकीय विषमता का निपटारा युद्ध में है, शांतिमय संघर्ष या समझौते में नहीं—पूँजीवादी स्वार्थों के विनाश में है—पारस्परिक मेल में नहीं । क्रान्ति में है—परिवर्तन में नहीं—कोटि-कोटि शोषित श्रमिकों की हुंकार में है—व्यक्तिवादी आत्म अभिव्यक्ति में नहीं—हिंसा में है—अहिंसा में नहीं ।'[3] नारी समस्या पर भी साम्यवादी दृष्टि से विचार किया गया है ।

इधर मिल मजदूरों की मजदूरी में कमी करने, मजदूरों को नौकरी से निकाले जाने और ग्रुप क्लासेज में न जाने का षड्यन्त्र होता है । श्यामाचरण के कथन से ज्ञात होता है कि 'मिलों में हलचल मची है—उथल-पुथल जारी है । मजदूरों की माँगें बढ़ती जाती हैं । मिल मालिकों और मजदूरों के बीच की खाई बढ़ती जाती है ।'[4] मोहन ऐसी स्थिति में मजदूरों का समर्थन करता है । इधर तारा की चंचलता और अस्थिरता मोहन के लिए विचित्र परिस्थिति का निर्माण करती है और वह तारा का पर त्याग

---

१ अंचल—'चढ़ती धूप,' पृष्ठ ६६
२ अंचल – 'चढ़ती धूप,' पृष्ठ १२०
३. अंचल – 'चढ़ती धूप,' पृष्ठ १२५
४ अंचल – 'चढ़ती धूप,' पृष्ठ २१६

मजदूरो की बस्ती में आ जाता है। मिल-मालिको के अत्याचारो के विरुद्ध हड़ताल की योजना बनती है और अनेक साम्यवादी नेता गिरफ्तार कर लिये जाते हैं। हड़ताल से श्रमजीवी वर्ग प्रबुद्ध और आन्दोलित हो उठा। मिल मे 'लाक आउट' होता है और कम्युनिस्ट और कांग्रेस मजदूरो की सहायता हेतु प्रयत्न करते हैं। एक का रास्ता है हिंसा का और दूसरे का अहिंसा का हड़ताल के प्रसग को विस्तार से चित्रित किया गया है। इसके अन्तर्गत हड़ताल के प्रारम्भ में मजदूरो की उत्साहपूर्ण मनोभावना और अत मे घिरती हुई निराशा, हड़ताल के दौरान होने वाला सघन प्रचार कार्य और उसके तरीके, पूँजीपतियो की रीति-नीति, आमसभाओ का आयोजन और नौकरशाही के अत्याचारो के सजीव चित्र उरेहे गये हैं।

हड़ताल को लेकर गोलीकाड होता है जिसमे मोहन और उसके तीन साथी शहीद होते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि उपन्यास लेखक ने मोहन और तारा के चरित्रो को कथा का केन्द्र बिन्दु बना कर समाजवादी विचारधारा के प्रतिपादन का प्रयास किया है। इसमे उसे यथेष्ट सफलता प्राप्त न हो सकी है क्योंकि उपन्यास म ममता का चरित्र ही अपेक्षा कृत अधिक महत्वपूर्ण हो गया जो समाज व कर्तव्य की बलिवेदी तक ही सीमाबद्ध है। ममता के चरित्र मे आदर्शवाद का आग्रह है और वह प्रेम को जीवन का सबसे बडा वरदान मानती है। मनोवेगो के द्वारा ममता के चरित्र का विकास किया गया है और जो आकर्षक तथा सत्य के अधिक निकट है।

'चढ़ती धूप' में समाजवादी क्रांति की चेतना की प्रतिच्छाया प्रस्तुत करने हेतु कांग्रेस और उसके सिद्धान्तो को हीन बनाने का प्रयास किया गया है। कहा गया है कि 'गाँधीवाद महान विश्रृंखलित करने वाली शक्ति है। समय का प्रवाह-सन् इक्कीस के आन्दोलन से लेकर अब तक का इतिहास यह साबित कर चुका है। बाहरी तौर पर उसने एक प्रतिकूल क्रिया ही की है। धर्म, अध श्रद्धा, लगडे विश्वास और अकल्पनीय भक्ति की भावना को उसने जगाया है जो अर्द्ध शिक्षित भारतीय जन मस्तिष्क के प्रधान चिन्ह हैं। मानता हूँ उसकी 'अपील' इन्सान को बेहोशकर देने वाली है उसमे बुद्धि की गाँठे टूट जाती हैं।'[1]

साम्यवादी दल की दृष्टि से कांग्रेस पूँजीपतियो की सस्था है क्योंकि पूँजीपतियो का उसे पूर्ण सहयोग है। इसी से एक साम्यवादी पात्र व्यग्य करता है-'बिना पूँजी-पतियो की सहायता के कोई राष्ट्रीय आन्दोलन कभी चल सका है? भले कम्युनिस्ट उन्हें मजदूरो का खून बेंच कर रुपया कमाने वाला कहते हो पर कांग्रेस के आन्दोलन मे

१ अंचल-'चढ़ती धूप,' पृष्ठ ८३

अधिक से अधिक चदा वे देते रहे है। उनका विरोध करना राष्ट्र की रीढ को कमजोर करना है।'[1] कम्युनिस्ट नेता पूँजीपतियो की इस प्रवृति को 'शिक्षुवन देशभक्त' कह कर उपहास करते है क्योकि उनके मत से 'हर युग की सबसे क्रातिकारी शक्तिजनता के मनोबल से फूटती है।[2] काग्रेस पूँजीपतियो से घनिष्ठ संबध दिखलाकर जनता की दृष्टि मे हीन बताने के उद्देश्य से ही मिल-मालिक से कहलवाया गया है आप लोग (काग्रेसी) त्याग और सेवा की मूर्ति है–जनता के सच्चे सेवक हैं– मजदूरो को बहका कर अपना महत्व बढाने वाले नहीं।'[3]

हिंसा अहिंसा पर साम्यवादी और गांधीवादी पात्रो द्वारा अनेक स्थलो पर विचार व्यक्त किये गये है और हिंसात्मक मार्ग की उपादेयता स्थापित करने का प्रयत्न किया गया है। मोहन कहता है–'साम्यवादी होने के नाते मेरा विश्वास है कि शाति के लिये क्राति आवश्यक है। क्रति मे कम या ज्यादा हिंसा होती है। उस हिंसा से विचलित होकर हम अपने लक्ष्य को छोडेंगे नहीं। हम हिंसा का स्वागत नही करते पर उससे घबडाते नही। कायरता से हिंसा को ज्यादा तरजीह गांधीवाद भी देता है। मैं मानता हूँ समाज के मौजूदा राष्ट्रीय और वर्गिक सघर्ष बगैर हिंसा से नहीं निपटाये जा सकते।'[4] यही मोहन हडताल के समय कहता है–'हिंसा नही अहिंसा हमारी तलवार है। हम यहाँ मारने नही मरने आए है।'[5] मोहन के चरित्र को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि लेखक के सप्रयत्नो के बाद भी उसका हिंसा के प्रति झुकाव सैद्धान्तिक ही है आन्तरिक नहीं और जो उसके कथोपकथन मे यत्र-तत्र विरोधाभास ही उत्पन्न करता है। हड़ताल मे भाग लेने वाले मजदूरो का एक पक्ष काग्रेस के सिद्धान्तो से प्रभावित है और 'अहिंसा को अपना हथियार मानने वाले काग्रेस जनो के प्रभाव मे जागे और सगठित हुए मजदूर लाठियो की चोट खाकर भी अविजित रहने का दृढ सकल्प ले बैठ गये।'[6] इतना ही नहीं अपितु का० जयनाथ तो कहता है 'गुलाम देश मे हिंसा करना दमन और सरकारी अत्याचार को निमन्त्रण देना है। हम सत्याग्रह करेंगे और विजयी होंगे।'[7] सक्षेप में

---

१ अचल–'चढती धूप,' पृष्ठ २६६
२. अचल–चढती धूप,' पृष्ठ २६६
३. अचल–'चढ़ती धूप,' पृष्ठ २६५
४ अचल–'चढ़ती धूप,' पृष्ठ २२४
५ अचल–'चढ़ती धूप,' पृष्ठ ३१०
६ अंचल–'चढ़ती धूप,' पृष्ठ ३१२
७ अंचल–'चढ़ती धूप,' पृष्ठ ३११

कहा जा सकता है कि साम्यवादी नेतृत्व में हुई मजदूर-हड़ताल गाँधीवाद के अहिंसात्मक स्वरूप से ही अधिक प्रभावित है।

हड़ताल के प्रसग मे ही कांग्रेस का वर्ग-संघर्ष विरोधी सिद्धान्त भी एक स्थल पर प्रस्तुत किया गया है। इसमे स्पष्ट रूप से कहा गया है कि समाज म हर मनुष्य का स्थान-कर्तव्य और अधिकार जुदा-जुदा है। कांग्रेस जिस स्वराज्य के लिय लड रही है उसमे पूँजीवादी रहेगे-मजदूर रहेंगे—देशी राजे और रियासतो प्रजा-जमीदार भी किसान भी। समाज सदैव कायदे से चलेगा। अपने कायदे से चलेगा। सम्पूर्ण समाज को चलाने की जिम्मेदारी सम्पूर्ण अर्थनीति को सचालित करने का भार एक वर्ग को नहीं सौंपा जा सकता।'

आतकवादी प्रवृत्ति का विरोध

साम्यवाद से प्रभावित उपन्यास होने से व्यक्तिवादी क्रांति की निस्सारता पर भी लेखक ने विचार-व्यक्त किया है। वस्तुत व्यक्तिवादी क्रांति की असफलता के उपरात ही भारतीय राजनीति म मार्क्सवादी सामूहिक क्रांति की विचारधारा का उदय हुआ है। सामूहिक क्रांति के लिए वर्ग विशेष को बौद्धिक रूप स तैयार करना प्राथमिक आवश्यकता है। उपन्यास के नायक के शब्दो में मुप क्लासेज के 'आयोजन द्वारा यदि लोगो मे एक बौद्धिक आग जलाई जा सके—मजदूरो मे उनकी स्त्रिया मे-उनके बच्चो म प्रचड क्रातिकारी ज्वाला धधक सके तो उसका लक्ष्य पूरा हो जायगा। जन वर्ग की अन्त-शक्ति को उन्मादक अभिव्यक्ति देना—इस विद्रोह शक्ति को पूर्णता तक पहुँचा देना हमारा ध्येय होना चाहिये।'[1] यही सामूहिक क्राति की पृष्ठभूमि है जो व्यक्तिवादी क्राति भावना से पृथक है। मोहन की दृष्टि म क्राति की व्यक्तिवादी प्रवृति 'क्राति का कारटून' है। वह 'अपने भीतर के खोखलेपन को ही कुरेदते रहने वाली—कृत्रिम योग्यता प्राप्त कर आन्तरिक शक्ति के स्रोतो से अपरिचित और जीवन के उर्ध्वगामी प्रवाहो से रहित उसकी गति व्यक्ति के अवसान के बाद समाप्त हो जाती है।' इसके विरुद्ध समाजवादी क्राति 'समाज की भित्ति पर पनपती है। समाज की शक्ति के उद्योगो से उसे खाद्य और बल मिलता है। हमारे सामने यूरोप के सबसे बडे देश रूस का ज्वलन्त उदाहरण है।'[2]

इस सामूहिक क्राति का उद्देश्य है शोषक का अत यानी मजदूरो।का राज्य। नायक मोहन इस उद्देश्य को अभिव्यक्ति देता है— हमारा एक युद्ध—एक नारा—एक लक्ष्य है—जो मेहनत करते हैं उन्ही का राज्य हो। हम राज्य ,चाहते है किसानो का

---

१ अचल—'चढती धूप,' पृष्ठ ६६

२ अचल—'चढती धूप,' पृष्ठ १००

जो भूमि के सच्चे स्वामी है। हम राज्य चाहते है मजदूरो का जो कारखानो और मिलो के सच्चे अधिकारी हैं। हमें शोषण का अन्त करना है। जब तक उसका अंत नही होता तब तक राजनीतिक शक्ति कोई अर्थ नही रखती।'[1]

आलोच्य उपन्यास की कथावस्तु के आधार पर उपन्यास का 'चढ़ती धूप' नामकरण अपने मे सार्थक है और राष्ट्र मे बढती हुई समाजवादी चेतना को व्यक्त करता है। 'समाजवादी चेतना की चढ़ती धूप का आभास तो मिलता है, किन्तु उसकी व्यजना एव विवेचना वैयक्तिक तथा बौद्धिक स्तर पर है।'[2] काव्य मे ऐसा ही प्रभाव सुमित्रानन्दन पत की 'ग्राम्या' मे भी है जो तात्कालिक राजनीतिक वातावरण की सूचना से अधिक महत्व नही रखता। समाजवादी चेतना का यह स्वरूप जीवन्त होने से उपन्यास के पृष्ठो तक सीमाबद्ध रह गया है। समाजवादी आधार पर मानव सम्बन्धो को स्थापित करने को इच्छुक मोहन का स्वप्न मात्र स्वप्न रह जाता है। उसकी आदर्शवादिता ही उसके पथ का कटक है। आर्थिक कष्टो और विषम परिस्थितियो से सघर्ष करते हुए वह क्रातिकारी अवश्य बन जाता है पर उस क्राति को सामाजिक रूप कहाँ मिल पाता है? ममता के साथ उसका प्रेम और मिल की हड़ताल सामाजिक आवश्यकता के रूप मे चित्रित न हो सकी है। उसके कर्तृत्व से अधिक उसकी वाणी मुखरित हुई है जो उसकी आन्तरिक असमर्थता की ही सूचक है।

बयालीस की क्राति और 'नई इमारत'

अचल का दूसरा उपन्यास 'नई इमारत' सन् बयालीस की अगस्त क्राति को चित्रित करता है। सन् बयालिस के विवरणात्मक चित्रण के साथ ही साथ साम्प्रदायिक एकता और समाजवादी विचारधारा के प्रतिपादन का प्रयास भी किया है जिससे अनेक राजनीतिक समस्याएँ स्पष्ट रूप से उभर सकी हैं।' आदर्शवादिता के मोह के कारण काल्पनिकता अधिक और यथार्थता कम है और उसके कारण घटनाएँ आरोपित सी प्रतीत होती हैं।

महमूद और भारती के प्रणय-प्रसग की कथा को केन्द्र-बिन्दु बना कर राजनीतिक घटनाओ, राजनीतिक विचारधाराओ और राजनीतिक समस्याओं को प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है। प्राक् स्वाधीनता युग की सबसे प्रमुख राजनीतिक समस्या थी हिन्दू-मुस्लिम एकता की जो स्वाधीनता के उपरांत भी हल न हो सकी है। लेखक ने इसका हल प्रस्तुत किया है महमूद और भारती तथा बनराज और शमीम के बीच प्रेम की उद्भावना करके। आगे चलकर ये पात्र बयालीस की क्राति में सक्रिय भूमिका

१. अचल—'चढ़ती धूप,' पृष्ठ १५१
सुषमा धवन—'हिन्दी उपन्यास,' पृष्ठ १३१

अभिनीत करते हैं और कार्य तथा व्यवहार से समाजवादी दृष्टिकोण को अभिव्यक्ति देते हैं। उपन्यास के पूर्वार्द्ध मे चित्रित राजनीतिक आन्दोलनो मे अहिंसावादी और क्रांति पूरक दोनो भावनाओं को समुचित प्रतिनिधित्व दिया गया है। अगस्त क्रांति मे ये दोनो भावनाएँ सही अर्थों मे एक दूसरे की पूरक भी हो गई थी। उपन्यास का उद्देश्य इसी राजनीतिक आन्दोलन का विवरण प्रस्तुत कर समाजवादी चेतना को विस्तारित करने का प्रयत्न मात्र है। इसके लिए राजनीतिक वातावरण की सृष्टि अनेक उपकरणो के विवरण द्वारा की गई है।

आरती एक सम्पन्न राजपूत परिवार की युवती है और मुसलमान होने पर महमूद उसके परिवार का अभिन्न अग रहा है। महमूद के निकट साहचर्य से आरती उससे प्रेम करने लगती है और विवाह करने का सकल्प लेती है। बलराज आरती का भाई है जो उसके सकल्प का समर्थन करता है। आरती के पिता रूढ़िवादी है और वे विजातीय के साथ (भले ही जिस उन्होने पुत्रवत पाला) अपनी पुत्री के प्रेम को सहन नही कर सकते। महमूद को ठाकुर साहब के अहसानो का अहसास है और वह आरती से मिलना छोड देता है। इधर आरती भी पुलिस कप्तान स विवाह का इन्कार कर पिता से विद्रोह करती है। वह पिता का घर त्याग कर समाज को भी चुनौती देती है। उसकी दृष्टि मे प्रेम जीवन की समस्त योजना से बढकर है और वह जीवन मे केवल एक बार होता है। आरती मे भावुकता है और वह अपना रास्ता खुद बनाना चाहती है। राष्ट्र की राजनीतिक स्थिति सभी प्रमुख पात्रो को एक दूसरे स विलग कर देती है और राजनीतिक कार्यो मे उलझाय रखती है। अगस्त क्रांति से उत्पन्न परिस्थिति मे ये सभी प्रमुख पात्र एक स्थान पर आ मिलते हैं और पुलिस के साथ हुए सघर्ष मे सक्रिय भाग लेते है। महमूद और आरती का मिलन होता है तथा बलराज तथा प्रतिमा अन्य साथियो के साथ मारे जाते है।

'नई इमारत' मे स्वतन्त्रता-सग्राम के वातावरण मे आरती-महमूद का प्रेम सामाजिक रूढ़ियों के विरोध मे विद्रोही भावना को व्यक्त करते हुए जहाँ एक छोर मे समाजवादी चेतना से प्रभावित है वहाँ दूसरे छोर पर राजनीतिक वातावरण के अनुकूल है। शीला के शब्दो मे 'आरती की शादी महमूद के साथ करके आप देश के सामने राष्ट्रीयता का पवित्र आदर्श रखेंगे। जो सुनेगा आपकी अखड मानवता के सामने सम्मान और सम्भ्रम से नत हो जायगा।'[1]

महमूद भी उस धर्म की कटुतम आलोचना करता है जो इन्सान मे भेद भाव उत्पन्न कर राष्ट्रीय एकता मे घातक बनता है। उसके शब्दो मे 'इन्सान मे भेद भाव

---

1. अचल—'नई इमारत,' पृष्ठ ८४

पैदा करने वाले धर्म का अब खात्मा होना चाहिए। गुजरे जमाने मे उसने फायदा पहुँचाया होगा। अब वह मुर्दा हो चुका है। हमे उसे गाड़ देना चाहिए—थोड़े से आँसू बहा कर ही सही। तभी सच्चे, श्रेष्ठ और स्थिर मानव-मन को वह पावन स्पर्श मिलेगा जो मनुष्यता पर उसके खोये विश्वास को जागृत करे। वह महान राष्ट्रीय विश्वास जो सदियों से स्थान भ्रष्ट हो चुका है।'[1]

उपन्यास मे वर्णित एक घटना के द्वारा यह बताने का प्रयास भी किया गया है कि अंग्रेजी शासन किस भाँति साम्प्रदायिक भावना को प्रोत्साहित कर फूट का निर्माण करता था।'[2]

महमूद और आरती के प्रेम की मौलिक उद्भावना साम्प्रदायिक एकता के लक्ष्य को सामने रख कर की गई है। इस रूप मे सामाजिक परम्परागत रूढ़ियो और राजनीतिक दासता का उन्मूलन उपन्यास के पात्रो की जीवन-प्रेरणा है।

राजनीतिक अंश

सन् बयालीस की क्रांति के विविध पहलुओं की विवेचना एवं चित्रण प्रस्तुत उपन्यास मे मिलता है। कांग्रेस की अहिंसा-राष्ट्रीय जीवन मे जिस दृढ़ता से स्थान बनाये हुए थी उसका आभास महमूद के कथन से मिलता है। वह जानता है कि अहिंसा ही कांग्रेस की नीति रही है और रहेगी। जब तक गाँधी जी कांग्रेस के नेता हैं और कांग्रेस देश का नेतृत्व कर रही है तब तक हम हिंसा का मार्ग नहीं अपना सकते। शांति पूर्ण प्रदर्शन, अहिंसात्मक सत्याग्रह और सिविल नाफरमानी सदा हमारे हथियार रहे हैं और रहेंगे। हम इस मार्ग से विचलित नहीं हो सकते। लेकिन क्रिप्स प्रस्ताव के बाद से जनता के क्रोध का पारा बराबर चढ़ता जा रहा है। क्रोध से सारा देश मतवाला हो रहा है।[3]

कांग्रेस की प्रतिष्ठा और जनता मे व्याप्त आक्रोश का उपयोग करने का अवसर क्रांतिकारियों को अगस्त-क्रांति के समय मिल जाता है। शहीद क्रांतिकारी की प्रेयसी प्रतिमा के शब्दों में 'कांग्रेस के प्रति लोगो की श्रद्धा बड़ी भारी शक्ति है। उसी शक्ति को इस्तेमाल करने का अवसर हमारे हाथ मे आ रहा है।[4] वह क्रांतिकारी कार्य विधि के संबंध मे सूचित करती है—'कार्यक्रम हमारा वही होगा जो कांग्रेस का निर्णय होगा। लेकिन हमे तय कर लेना है हम किन लाइनों पर अपने कार्यक्रम को व्यावहारिक रूप

१ अचल—'नई इमारत,' पृष्ठ २८
२ अचल—'नई इमारत,' पृष्ठ ३०
३. अचल—'नई इमारत,' पृष्ठ ६०
४ अचल—'नई इमारत,' पृष्ठ ६३

देंगे ।'[1] वह क्रांतिकारी प्रवृत्तियों को गतिशील बनाती है और जिसके परिणाम स्वरूप अगस्त क्रांति में हिंसात्मक गतिविधियाँ सक्रिय हो अपना विकराल रूप प्रदर्शित करती हैं। कांग्रेस के नय नारे 'भारत छोड़ो' की जनता म प्रतिक्रिया क्रांतिपरक हो जाती है।

जनता की यही मनोभावना एक पात्र के द्वारा व्यक्त की गई है जो कहता है 'उनके जीवन-देवता गांधी की आज्ञा थी–करो या मरो। आँखो मे आजादी का नशा–दिमाग म स्वतंत्रता का ज्वार। जनता के लिए यह आन्दोलन नही वरन क्रांति थी। यह क्रांति एक दल या जाति की नही सारे देश की थी।[2]

प्रतिमा उपन्यास की एक प्रमुख पात्र है जिसकी उद्भावना कर क्रांतिकारियो के जीवन दशन की व्याख्या प्रस्तुत की गई है। अगस्त क्रांति मे हुई हिंसात्मक प्रवृति के स्पष्टीकरण के रूप म उसका चरित्र अत्यन्त महत्वपूर्ण बन पड़ा है। प्रतिमा के द्वारा ही हम उसके प्रेमी शहीद क्रांतिकारी का परिचय मिलता है।

अगस्त क्राति मे कम्युनिस्टो की भूमिका

सन् बयालीस की क्रांति मे कम्युनिस्टो ने देश का साथ नही दिया था क्योंकि द्वितीय विश्वयुद्ध म मित्र राष्ट्रों के साथ रूस का गठबन्धन हो गया था और कम्युनिस्टो के लिए 'जनयुद्ध' बन गया था। उपन्यास का एक पात्र इस स्थिति का उद्घाटन करता है–'कम्युनिस्ट हमारा साथ नहीं दे रहे है। हम चाहते हैं सारी मिलें बन्द हो जायें।सारे कारखाने बन्द हो जायें। सम्पूर्ण यातायात रुक जाय। लेकिन ये लोग रूस के लड़ाई म आ जाने के कारण इस लड़ाई को लोक युद्ध कह रहे हैं। इस समय जन आन्दोलन के विरुद्ध हैं।'[3]

भारती उनके रवैये की कटु आलोचना करती है। इस चर्चा मे कम्युनिस्ट और समर्थको को देशद्रोही प्रतिपादित किया गया है।[4] जयराज और लीला कम्युनिस्ट पात्र हैं जिनके माध्यम से साम्यवादी विचारो को वाणी देने का प्रयास किया गया है। दोनो पात्र अत्यन्त निबल हैं। भारती और बलराज उनके तथा उनके दल के कार्यों को हीन सिद्ध करने मे अपेक्षाकृत अधिक सफल रहे हैं।

बलराज की दृष्टि म कम्युनिस्ट पार्टी एक सोशल डमोक्रेटिक पार्टी रह गई है जिसके सामने कोई क्रांतिकारी प्रोग्राम नही है। जब देश सामूहिक आक्रमण की चेतना

---

१ अ चल – 'नई इमारत,' पृष्ठ ६५
२ अ चल – नई इमारत,' पृष्ठ १५०
३ अ चल – 'नई इमारत ' पृष्ठ ११५
४ अचल – 'नई इमारत', पृष्ठ १६५-६७

और राष्ट्र बेचैनी से तिलमिला रहा है तब सरकार के साथ बेशर्त सहयोग की बात करना कैसे एक उग्र दल को शोभा देता है।[1]

भारती की दृष्टि में तो कम्युनिस्ट पार्टी रूस की पिछलग्गू और 'पैशाचिक' है। वह राष्ट्रीय जागृति के संदर्भ में साम्यवादी दल की भूमिका का पर्दाफाश करते हुए कहती है—'जन साधारण के भीतर साम्राज्य विरोधिनी वृत्ति जागी है। उधर कम्युनिस्ट अंग्रेजों के पक्ष की नीति और नारा लेकर चल रहे हैं। भारतवर्ष में अंग्रेज-द्रोह को तज कर जो भी पार्टी अंग्रेज परस्ती सिखाती है वह जनता के हित में पैशाचिक है। पर कम्युनिस्टों को तो रूस की रक्षा करनी है। रूस विजयी हो—चाहे देश में लगी यह संग्राम की आग सदा के लिए बुझ जाय। अपने देश में साम्राज्यवाद की रीढ़ को तोड़कर हम बाहर की चिन्ता करें? कम्युनिस्टों की सबसे घातक नीति यह है कि वे देश के लड़ाकू तारुण्य को सरकार परस्ती सिखा रहे हैं। वर्ग के स्वार्थों को देश के सम्मिलित स्वार्थों से अधिक महत्व दे रहे है।'[2]

बलराज मार्क्सवादियों को व्यक्तिवादी होते देख क्षुब्ध है। वह कहता है—'मार्क्सवादी होना बुरा नहीं है। वह एक वैज्ञानिक जीवन-दर्शन है। पर साम्यवादी मुझे मार्क्सवाद नहीं, स्तालिनवादी नजर आते हैं।'

वस्तुतः अगस्त क्रांति में साम्यवादियों के असहयोग ने उन्हें जनता की दृष्टि में गिरा दिया था और मार्क्सवादी आन्दोलन को वर्षों पीछे धकेल दिया।

अन्य राजनीतिक विवरण

सन् १९४२ की क्रांति की सभी प्रमुख बातों का समावेश उपन्यास में मिलता है। घटनाएं काल्पनिक होने पर भी घटनाकाल को मूर्ति रूप देने का सफल प्रयत्न है। एक विज्ञ का यह कहना है कि उपन्यास का उद्देश्य सन् बयालीस के राजनीतिक आन्दोलन का विवरण मात्र देना है, उसकी पृष्ठभूमि में मानव-जीवन का चित्रण करना नहीं है। ध्येय स्वतन्त्रता और समाजवाद का उपदेश देना है। यही कारण है कि पात्रों का चरित्र-चित्रण उभरकर नहीं आता, राजनीतिक कोलाहल में डूब जाता है।

उपन्यास में जो अन्य राजनीतिक विवरण मिलते हैं, वे हैं—क्रिप्स योजना और उसकी असफलता, जिससे देश की आत्मा सोये शेर की तरह चौंककर सजीव हो

---

१. अंचल—'नई इमारत', पृष्ठ १७४
२. अंचल—'नई इमारत,' पृष्ठ १७५

गई[1] जापान के सहयोग से देश मुक्ति की योजना का विरोध[2] कांग्रेस द्वारा बम्बई अधिवेशन में पारित असहयोग प्रस्ताव और जनता की देश-व्यापी व्यापक प्रतिक्रिया।

इसके सिवाय कांग्रेस के उग्र समाजवादी दल की मनोभावनाओं का भी अंकन मिलता है जिसका प्रतीक है महमूद जो १९३० के असहयोग आन्दोलन से कांग्रेस का सिपाही है और तीन बार जेल काट आया है। उसके ही शब्दों में 'मैं सोशलिस्ट हूँ—समाजी व्यवस्था और पाबन्दियों पर विश्वास रखने वाला।'

राष्ट्रीय आन्दोलनों में घटित होने वाली बलात्कार की घटनाओं और उसके कारण प्रताडित नारी की सामाजिक राजनीतिक समस्या पर भी विचार व्यक्त किया गया है। प्रतिमा के शब्दों में इसका समाधान करते हुए कहा गया है—'मेरे शरीर को कोई अपवित्र कर दे पर मेरी आत्मा के निर्माल्य को मन की शुचिता को वह कैसे दूषित करेगा? फिर किस देश की नवयुवतियों को अपनी खोई आजादी पाने की चेष्टा में कभी-कभी अपने सतीत्व का अपहरण नहीं सहना पड़ता?'[3]

निष्कर्ष

सन् १९४२ की क्रांति की घटना के राजनीतिक वातावरण की पृष्ठभूमि में महमूद और प्रतिमा की समाजवादी चेतना को मुखरित करने का प्रयत्न प्रस्तुत उपन्यास में किया गया है। किन्तु उसके मूल में उनका रोमाण्टिक प्रेम और आदर्शवादिता ही प्रमुख हो उठी है। पात्रों के चरित्र व्यक्तिवादी आधारशिला पर विकसित हुए हैं और घटनाओं के रूप में जिन राजनीतिक घटनाओं का स्तम्भ-स्वरूप खड़ा किया गया है वे आरोपित होने से 'नई इमारत' के 'क्रैकस' (दरार) बन गये हैं। 'नई इमारत' व्यक्तिवादी तथा समष्टिवादी विरोधी चिन्तन की ऐसी नींव पर खड़ी की गई है जिनके सम्बन्ध में निश्चयात्मक रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि वह कितनी बरसातों को सह सकेगी। 'चढ़ती धूप' की समाजवादी चेतना तो जैसे मध्यान्ह पर पहुँचने के पूर्व ही 'उल्का' सी चमक कर 'नई इमारत' के बरामदे में ही खो गई।

---

१ अंचल—'नई इमारत', पृष्ठ ८८-८९—'क्रिप्स योजना के सम्बन्ध में लेखक का मत है कि 'एक दर्द भरी रागिनी की तरह क्रिप्स-योजना मन्थर गति से आशा को वेदना फैलाती आई और एक नये संघर्ष आन्दोलन प्रारम्भ होने की सनसनी छोड़कर चली गई।'

२. अंचल—'नई इमारत', पृष्ठ ९६

३. अंचल—'नई इमारत', पृष्ठ १०

उल्का

अचल कृत 'उल्का' में ऐसे नारी-जीवन के अन्तर्द्वन्द्व का उद्घाटन है जो व्यक्तिवादी विचार-दर्शन से बोझिल होने से समाजवादी चेतना को भली-प्रकार मुखरित नहीं होने देती। राजनीतिक पृष्ठभूमि के अभाव में 'उल्का' का राजनीतिक स्वरूप स्पष्ट न हो सका है। उपन्यास का राजनीतिक रूप से केवल यही महत्व है कि इसमें भारतीय नारी के पीड़ित जीवन और आर्थिक रूप से निर्भर होकर चारित्रिक दृढ़ता का चित्रण किया गया है।

आत्मचरितात्मक शैली में लिखे गए इस उपन्यास की नायिका है मंजु-सामाजिक रूढ़ियों से ग्रस्त निम्न मध्यवर्गीय परिवार की सदस्या। उसका आराध्य है चाँद पर विवाह हो जाता है किशोर से, जो उसके लिए सर्वथा अनुपयुक्त है। चाँद और मंजु के मिलन की बाधायें हैं जातिभेद और आर्थिक विषमता। परिवार अथवा समाज के बन्धनों के कारण मंजु बाध्य है और चाँद विवशता में उसे विवाह की अनुमति दे देता है। कर्तव्य की बलिवेदी पर प्रेम का उत्सर्ग होता है और कुंठित प्रेम भैया-बहन के सम्बन्ध का रूप धारण कर लेता है। चाँद ही मंजु का पथ-प्रदर्शक है और व्यक्तित्व के महत्व का प्रतिपादन करता है। उसके अनुसार अन्याय को सहन करना पाप है। चाँद विदेश यात्रा पर चला जाता है।

इधर किशोर के साथ मंजु का वैवाहिक जीवन चरम असंतोष का कारण बनता है। कामुक और असंस्कृत किशोर के जीवन का ध्येय शारीरिक वासनाओं की तृप्ति तक सीमित है। उसकी दृष्टि में पत्नी निजी सम्पत्ति से अधिक महत्व नहीं रखती और उसके व्यवहार से मंजु के हृदय में उत्कट घृणा उत्पन्न होती है। उसका कथन है –'नारी केवल शरीर नहीं–केवल स्थूल, क्षुधा और तृषा की गठरी नहीं। उसकी आत्मा में रहने के लिए भी कुछ चाहिए।'[1] किशोर सामन्ती वर्ग का प्रतीक है और उनके पिता की दृष्टि में अर्थ (धन) ही सर्वस्व है। अर्थसंचय उसमें अहम्मन्यता की भावना को जन्म देता है। ससुराल में मंजु का परिचय किशोर के भतीजा प्रकाश से होता है जो चाँद का मित्र और आयु में मंजु से बड़ा है। विदेश जाते समय चाँद मंजु को प्रकाश के सुपुर्द कर जाता है। प्रकाश में मानवीय गुणों का समावेश है। उसका दृष्टिकोण बुद्धिवादी है। वह मंजु को बताता है कि अधिकारों और जन्मसिद्ध सुविधाओं के लिए मनुष्य का धर्म है। मंजु का स्वाभिमान जागृत होता है और वह पति की स्वेच्छाचारिता का विरोध करती है। वह पति के घर का परित्याग कर मायके लौट आती है और अध्यापन कार्य अपना कर आत्म निर्भर हो नये जीवन का श्रीगणेश करती है। प्रकाश को लेकर उस पर दुश्चरित्रता का आरोप लगाया जाता है। सामाजिक कलंक

से क्षुब्ध मंजु माता-पिता का घर छोड़ प्रकाश के साथ नागपुर आ जाती है। प्रकाश भीरु सिद्ध होता है पर उसके विद्रोही स्वरूप को देखकर उसका साथ देने को तैयार हो जाता है। नागपुर में जिस होटल में वे ठहरते हैं वहीं किशोर महरी की लड़की छबिया को लेकर पहुँचता है। मंजु को प्रकाश के साथ देख किशोर उसके साथ दुर्व्यवहार करता है और किशोर और प्रकाश में मुठभेड़ होती है। किशोर की दुर्गति होती है और पति के लिए उसके हृदय में कोमल भावना उदित होती है। इस नाटकीय स्थिति में प्रकाश व मंजु का प्रेम पाप-पुण्य की भावना से भाई-बहन के स्नेह में बदल जाता है।

'उल्का' में सामाजिक पक्ष ही अधिक उभरा है। इसके अन्तर्गत प्रेम की असफलता, असंगत विवाह की विफलता, सामाजिक अन्यायों के प्रति नारी के विद्रोह और परिणामस्वरूप उसकी मुक्ति की समस्या को चित्रित किया गया है। बदलते हुए युग-मूल्यों पर सामाजिक रूढ़ियों का मूल्यांकन मंजु के सशक्त चरित्र को लेकर प्रस्तुत किया गया है।

'उल्का' में द्वन्द्वात्मक जीवन का विश्लेषण मिलता है। मार्क्स एंजिल्स ने जिस द्वन्द्वात्मक दर्शन की स्थापना की है उसके अनुसार भौतिक और मानसिक जगत गतिशील हैं और परम्परा की अवरोधक शक्तियों से जूझते हुए अपना विकास करते हैं। 'उल्का' में मार्क्सीय दृष्टि से नारी जीवन की पराधीनता की समस्या का अध्ययन है। समाज में अनाहृत नारी किस प्रकार संघर्ष कर जीवन पथ पर आगे बढ़ सकती है उसका एक अंश मंजु के चरित्र में दिखलाया गया है। यद्यपि उपन्यास परिवर्तनशील समाज की प्रवणताओं को समेटने में असमर्थ ही है। यह ठीक ही कहा गया है कि 'मंजु वास्तव में उल्का है, जो अपनी वेदना की ज्योति से नवचेतना का प्रकाश विकीर्ण करती है।'[1] वेदना के घनीभूत होने के कारण ही सामाजिक यथार्थ समुचित रूप से उभर नहीं सका है। यद्यपि लेखक का उपन्यास के शीर्षक से कुछ वैसा ही विशिष्ट अभिप्राय था।

रांगेय राघव के उपन्यासों में राजनीतिक तत्व

नयी पीढ़ी के उपन्यासकारों में रांगेय राघव एक सशक्त राजनीतिक उपन्यासकार थे। यशपाल, नागार्जुन, रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' के समान उनके सामाजिक उपन्यासों में भी समाजवादी चेतना का प्रस्फुटन हुआ है। यथार्थ के धरातल पर सामाजिक वैषम्य का चित्रण करने पर भी उनके उपन्यासों में मानवीय मूल्यों का तिरस्कार नहीं मिलता है। कहा गया है कि 'रांगेय राघव के उपन्यासों में यों राजनीतिक विचारों की प्रेरणा विद्यमान अवश्य है, और युगधर्म एवं युग विचारणा को आत्मसात् कर लेने वाले

१ सुषमा धवन— हिन्दी उपन्यास,' पृष्ठ १३६

प्रत्येक जागरूक कलाकार में उसका अस्तित्व होता है, किन्तु उन्होंने सदा यह प्रयत्न किया है कि वे राजनीतिक प्रेरणाएं उनके कलाकार को अभिभूत न कर लें।'[1] रांगेय राघव के समग्र उपन्यास-साहित्य के सबन्ध में सामान्यत. यह कथन ठीक हो सकता है, किन्तु राजनीतिक उपन्यासों के सम्बन्ध में इसे आंशिक सत्य ही माना जाना चाहिए। 'विषाद मठ,' 'हुजूर' और 'सीधा सदा रास्ता' में उनका राजनीतिक मतवाद ही अधिक प्रबल है। 'घरौंदे' में जो उनका प्रथम उपन्यास था, राजनीतिक सूत्र अवश्य सांकेतिक रूप में आए हैं।

'घरौंदे' की विशिष्टता उसके राजनीतिक पक्ष में नहीं अपितु कालेज के छात्र-वर्ग को लेकर उनके जीवन के विशद निरूपण में है।

'घरौंदे' का घटना काल द्वितीय महायुद्ध के प्रारम्भिक वर्षों याने १९४१ के पूर्व का है और जिसका उस समय तक भारतीय जन-जीवन पर प्रत्यक्ष प्रभाव नहीं पड़ा था। वस्तुत यह समय राजनीतिक निष्क्रियता का युग था और राजनीतिक दलों का मार्ग द्विविधापूर्ण था।

'घरौंदे' में नियति, धर्म एव समाज व्यवस्था के प्रति प्रच्छन्न व्यग्य इसी प्रतिक्रिया का परिणाम समझना चाहिए।

इस उपन्यास का प्रमुख पात्र है भगवती, जिसे केन्द्र बिन्दु बनाकर उपन्यास में राजनीतिक 'टच' देने का प्रयास किया गया है। इसके लिए भगवती को लवंग से अपमानित बनाकर उसके द्वारा किसानों में विद्रोह भावना उत्पन्न करने की दिशा में सचेष्ट बताया गया है। किन्तु यह प्रसग भी सक्षिप्त ही है अत. समाजवादी चेतना की पूर्णतया अभिव्यक्ति करने में असमर्थ है। लवग के पिता जमींदार है और भगवती उनकी अवैध सतान है—इस घटना को कथा-वस्तु में बांधकर सामन्तवादी-पूंजीवादी व्यवस्था से निर्मित विषमताओं की जो व्यंजना मिलती है, वह पात्रों के पारस्परिक रक्त सम्बधों के कारण आदर्शवाद में पर्यवसित हो जाती है। पात्रों में इसी कारण सामाजिकता कम, वैयक्तिकता अधिक है। राजनीतिक उपन्यास की दृष्टि से 'घरौंदे' रांगेय राघव की एक शिथिल रचना है।

विषाद मठ

समाजवादी यथार्थ के चित्रण की दृष्टि से रांगेय राघव का 'विषाद मठ' बगाल के दुर्भिक्ष की वास्तविकता में पूंजीपतियों के शोषण का घिनौना रूप प्रस्तुत करता है। लेखक के शब्दों में—'उपन्यास जनता का सच्चा इतिहास है। इसमें एक भी अत्युक्ति नहीं

1. महेन्द्र चतुर्वेदी—'हिन्दी उपन्यास,' एक सर्वेक्षण, पृष्ठ १५७

कहीं भी जबर्दस्ती अकाल की भीषणता को गढने के लिए कोई मन गढन्त कहानी नही ।' दुर्भिक्ष के समय की राजनीतिक स्थिति उपन्यास मे खूब उभरी है । उपन्यास के 'परिचय' मे कहा गया है—'ईसा मसीह के एक हजार नौ सौ सैतालीसवें वर्ष मे जब इग्लैंड के राजा, भारत के सम्राट जार्ज छठे के हाथ मे स्वर्ण दड था, भारत मे उनके प्रतिनिधि लार्ड वावेल थे, और प्रधान मत्री थे सर नाजिमद्दीन, जब बर्बर जापानी फासिस्टवाद भारत पर अपनी डरावनी छाया डाल रहा था, जब ससार अपनी मुक्ति के लिए युद्ध कर रहा था, जब गांधी जेल मे थे, जब भारत के कर्णधार बदीगृह मे थे, कलकत्ते की विराट सडकें सगम बनकर पडी थी, बङ्गाल के हर एक भाग से आ-आकर भूखे उन पर दम तोड रहे थे ।'

इसी आधारभूमि पर बङ्गाल के दुर्भिक्ष का हृदय-द्रावक अकन 'विषाद मठ' मे मानवता की छटपटाहट के माध्यम से हुआ है । बङ्गाल के गाँव को उपन्यास का केन्द्र बनाकर दुर्भिक्ष की छाया मे सामाजिक अन्याय, आर्थिक विपन्नता एव मानवीय विषमता के कई श्यामल चित्र हैं जो बदलते हुए मानव मूल्यो और सामाजिक परिवर्तनो का परिचय दे रहे हैं । कई पात्रो को लेकर दुर्भिक्ष को विविध दृश्यो को समग्र रूप मे देकर पूँजीपतियो की स्वार्थपरता को चित्रित कर पूँजीवादी व्यवस्था के विरुद्ध सामाजिक चेतना को प्रबुद्ध किया गया है । अरुण का कथन है—'भीख से गरीबी मिटती नही, उसकी अवधि वास्तव मे बढती है । बङ्गाल चावल नही चाहता, क्राति चाहता है । अगर नही कर सकता तो आजाद होने का उसे हक ही नही है । आजादी छीननी होगी और भूखे से बढ़कर कौन क्राति कर सकता है ।'[1]

'विषाद मठ' मे दो गीतों के जो गद्य रूप दिये गये हैं वे क्रातिपरक हैं और साम्यवाद की भावना से अनुप्राणित हैं—'पूर्व के पिशाच ने वनों की गरज मे तुम्हारी कराहो को डुबाने का प्रयत्न किया है । ओ मीर जाफरो ! गङ्गा की शपथ है कि साम्राज्यवाद के छक्के छूट गये हैं । फासिस्टवाद का गढ ठोकरो मे काप रहा है । इस खून का बदला लेना हिन्दुस्तान के मेहनतकश कभी भी नहीं भूलेंगे । आज देश शक्ति के लिए पुकार रहा है । नौकरशाही की बदइन्तजामी से त्रस्त बङ्गाल बुला रहा है ।'[2] बुभुक्षितों को उस नये विहान के आने का विश्वास है जिससे क्राति के बाद वर्ग विहीन समाज की स्थापना होगी । लडकियो के गीत मे इसी भाव की अभिव्यक्ति है—'रोने के दिन सदा नही रहते । सिर धुन-धुन कर पछताने वाले ! तेरे दुखो के ताप से चट्टानें

---

१. रागेय राघव—'विषाद मठ', पृष्ठ ६३
२ रागेय राघव—'विषाद मठ' १२३

पिघलने लगी हैं। स्वतन्त्रता, शांति और साम्य की दुदर्भी बजने वाली है। तूने अपना बागी सिर उठाया है, तेरे ऊपर खून से भीगा झन्डा है।'[1]

पूँजीपतियो द्वारा उत्पन्न दुर्भिक्ष ने मानव-मूल्यो को बदल दिया। लेखक के शब्दो मे—'वह कुछ भूखे भिखारी हैं जो जङ्गल मे घास और पेडो की छालें खाने के लिए इकट्ठी कर रहे हैं। उनका जीवन एक पाप ही है। पेट के लिए आदमी क्या नही करता ? पहले मौत सताती थी, अब जिन्दगी सताती है।'[2]

उपन्यास मे मनुष्य सर्वत्र निराश्रय और निरुपाय है और पूँजीपतियो के स्वार्थों का साधन है। पेट की ज्वाला के सम्मुख नारी की नैतिकता के सारे सामाजिक बन्धन विश्रृंखल हो गये हैं। वह विवशता से नारीत्व का समर्पण करने को बाध्य है और इसीलिए करुणा की पात्र है।

जापानी आक्रमण और भारत की राजनीतिक स्थिति

बगाल के दुर्भिक्ष के समय बङ्गाल मे प्रान्तीय शासन मुस्लिम लीग के हाथ मे था और जो अंग्रेजो के सकेत पर कार्य करती थी। एक पात्र (चट्टोपाध्याय) कहता है—'जानते हो, मुस्लिम मन्त्री हैं सब। मीर जाफर, एकदम मीर जाफर। अंग्रेजो से मिलकर चाल चली है। समझते हो न इसका मतलब ? हिन्दुओ का सर्वनाश है। किसानो का सर्वनाश है। फौजें ले जायेंगी सब। सरकार का कुछ भरोसा है ? वह अमेरिका भेजेगी, आस्ट्रेलिया भेजेगी और तब हम भूखे मरेंगे।'[3] उपन्यासकार स्पष्ट करना चाहता है कि लीग मन्त्रिमडल अंग्रेजो के हाथों कठपुतली के समान था और हिन्दू जनता अपने को असुरक्षित अनुभव करती थी। वस्तुत. यह तथ्य बहुत अशो मे सही भी था।'[4] इस भीषण नरमेध को देखकर भी विभिन्न राजनीतिक दलों मे ऐक्य स्थापित न हो सका था और कांग्रेस स्थानीय नेतृत्व के अभाव मे विवश होकर रह गई। देश मे बयालीस की क्रांति ने करवट ली, किन्तु 'विषाद मठ' मे दो-एक स्थालों पर केवल प्रसगवश उल्लेख मिलता है।[5] इन्ही दिनो चटगाँव पर जापानी हमले का विवरण देना भी लेखक नही भूला। जापानी हमले के समय 'निरस्त्र जनता का कोप कुत्ता पडा था जैसे कुत्ते खेत पर तुषार बार बार हमला कर उठता है। अपनी सूखी हुई छातियो से टूटे-फूटे बच्चो को चिपका

---

१. रांगेय राघव—'विषाद मठ' पृष्ठ १६२
२. रांगेय राघव—'विषाद मठ' पृष्ठ १७
३. रांगेय राघव—'विषाद मठ,' पृष्ठ ३६
४ रांगेय राघव—'विषाद मठ,' पृष्ठ ६
५. रांगेय राघव—'विषाद मठ,' पृष्ठ १२-१३

पराधीनता के दिनो मे थी। पराधीन भारत मे पुलिस के अत्याचारो का विस्तृत वर्णन पुलिस कप्तान के नृशस कार्यो द्वारा प्रस्तुत किया गया है।[1] पुलिस दारोगा के रूप में 'रिश्वत का आटा और दूध और ईंधन और झूठ, फरेब और मक्कारी सब मिलकर इन्सान की शक्ल मे गुलामी के पट्टे पर दस्तखत करने आये थे।'[2] ऐसी थी पुलिस जिसका विवरण आज की पुलिस से तुलनात्मक अध्ययन की प्रेरणा दे सकता है। पुलिस कप्तान के बाद जैक पुराने रईस हरीप्रसाद के यहाँ आश्रय ले वहाँ की कामुकता एव लोलुपता से परिचित होता है। जैक के लिये यह अप्रिय अनुभव था और वह एक मेहतर के घर और वहाँ से पूँजीवादी सेठ मटरूमल के यहाँ जा पहुँचता है। इस तरह वह जमींदारो की विलासता और उनके विकृत जीवन की झाँकी पाता है।

तत्कालिक राजनीतिक स्थिति

सामाजिक स्थिति के साथ तत्कालिक राजनीतिक घटनाओं के सबंध मे भी जैक अपनी प्रतिक्रियाएँ बतलाता चलता है। चुनाव के सन्दर्भ में जनमत की भावना किस प्रकार की थी उसका विवरण यों है—'एक ओर कांग्रेसी खड़े हुए थे दूसरी तरफ जमीदार लोग थे। शहरो से स्वयसेवक गाँवो मे जाते। गाँव के लोग भी पहले से ही कांग्रेस को चाहते थे। नेता देश की आजादी की दुहाई देते। जमींदारों को कांग्रेसियों से नफरत थी। पर गाँववाले उन्हीं की सुनते। गाँव वालों ने डटकर जमींदारों का खाया था और उतनी ही कांग्रेस को वोट डाली थी।' स्पष्ट है कि जमींदारों का प्रभुत्व जागृत होने वाली जनता पर से उठता जा रहा था।

पूँजीपति वर्ग

इस परिवर्तन से पूँजीपति वर्ग अधिक चतुर और सतर्क हो गया था। अपने स्वार्थो की रक्षा के लिए वह दुहरी चाल चल रहा था। 'सेठ मटरूमल अग्रेज सरकार को लड़ाई का चन्दा खूब देता था। और दूसरी तरफ कांग्रेस को भी खूब चन्दा देता था। दोनो घोड़ों पर इस सहूलियत से चढ़ता था कि पता ही न चलता था। इसका राज यह था कि अग्रेजी घोड़ो की दुलती बचाता था और कांग्रेसी घोड़ो के मुँह में घास भरता था।'[3] सच तो यह है कि सामन्तवादी जमींदार तो टूट रहे थे और पूँजीवादी बनिये सामने आ रहे थे।

---

१ रांगेय राघव—'हुजूर,' पृष्ठ २४, २५, २६
२. रांगेय राघव—'हुजूर,' पृष्ठ १५
३ रांगेय राघव—'हुजूर,' पृष्ठ२९

स्वाधीनता प्राप्ति और कांग्रेस

समय बदलता है और उसके बारे मे जैक कहता है–'हिन्दुस्तान की राजनीति मे नये नये गुल खिल रहे थे। यहाँ तक कि एक दिन वह आजाद भी हो गया। साहब लोग आखिर वह कडी मार गये कि हिन्दुस्तान की धरती लाशो से ढक गई और नदियो मे लोहू बहने लगा।' देश विभाजन और स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद कांग्रेसियो के परिवर्तित रूप को जैक व्यग्य के साथ सामने लाता है–'मैने नया हिन्द देखा। कांग्रेसियो ने बिलकुल अगरेजो का जामा पहन लिया। छुटभाइयो ने लूट कर छोडा, बडे-बडे गद्दियो पर बैठे, पुलिसवाले देशभक्त करार दिये गये। वामपन्थी जेलो मे पकड कर रख दिये गये, आजाद हिन्दुस्तान मे लगातार दफा १४४ लगी रहने लगी, और महगाई बढती जा रही थी।'[1] इस तरह कांग्रेस का पतन दिखाना सोद्देश्य है और समाजवादी यथार्थवादी उपन्यासो की एक सामान्य प्रवृत्ति है।

प्रथम आम चुनाव को लेकर भी कांग्रेस की बखिया खोली गई है जो लेखक के पूर्वग्रह का परिणाम है–'कई जगह, कांग्रेस ने ऐसे बेईमानो को चुना था जिन पर चोर बजारी के मुकद्दमे तक चल चुके थे। कांग्रेस ने सरकारी दबाव बिना कहे भी इस्तेमाल कर लिया, क्योकि सरकारी अफसर खून के पुराने पिट्ठू थे। मिनिस्टरो ने सरकारी गाडियाँ चलवाई। इस कदर कांग्रेस ने रुपया खर्च किया कि पुराने जमीदार अपने हथकडे भूल गये।'[2] इस तरह स्वाधीनता मिलने पर भी जन-साधारण के जीवन मे कोई परिवर्तन नही आया। जो अग्रेज थे वही कांग्रेसी हैं। जैक व्यग्य से परिवर्तन को इस रूप मे देखता है–'पहले जो अग्रेजी जमाने में 'सेन्ट्रल प्रिजन' था, वह अब आजादी के बाद हिन्दी मे 'केन्द्रीय कारागार' हो गया था, और कुछ नही'[3] कहने का तात्पर्य केवल यह है कि जीवन पहले भी कैद था और अब कैद है। और इसमे परिवर्तन तब तक नहीं होगा 'जब तक श्रम करने वाले को ही समाज मे उत्पादन के साधनो मे अधिकार नहीं मिलेगा, इन्सान और उसकी दुनिया निरन्तर ऐसे ही भटकती रहेगी।'[4] यही उपन्यास का सदेश है जो मार्क्सवादी विचारधारा का प्रतिपादन करता है।

सीधा सादा रास्ता

'सीधा सादा रास्ता' रागेय राघव का बृहदाकार उपन्यास है जो भगवतीचरण

---

१. रागेय राघव—'हुजूर,' पृष्ठ १०८
२ रागेय राघव—'हुजूर,' पृष्ठ १०९
३ रागेय राघव—'हुजूर,' पृष्ठ ११२
४ रागेय राघव—'हुजूर,' पृष्ठ ११०

वर्मा के 'टेढे-मेढे रास्ते' का प्रत्युत्तर है। दोनो उपन्यास विषय और पात्रो के समान होने पर भी दो विभिन्न दृष्टिकोणो को व्यक्त करते हैं। 'टेढे-मेढे रास्ते' का रचना काल १९४६ है और 'सीधा सादा रास्ता' उसके नौ वर्ष पश्चात् की रचना है। 'टेढे-मेढे रास्ते' के समय स्वतन्त्रता का आन्दोलन चल रहा था और उसका भविष्य अनिश्चित था। किन्तु 'सीधा सादा रास्ता' स्वतन्त्र भारत की रचना है और उसका राजनीतिक पथ स्पष्ट है। अत. दोनो उपन्यासो के दृष्टिकोणो के वैभिन्न मे उनके रचनाकाल के महत्व को भी दृष्टिगत रखना आवश्यक है। 'टेढे मेढे रास्ते' का रचनाकाल राष्ट्रीय आन्दोलन का सक्रान्तिकाल था और स्वाधीनता प्राप्ति के लिए जुटी राजनीतिक पार्टियाँ वस्तुत. एक अधेरे मार्ग पर चल रही थी और उपन्यास मे ध्वनित निराशावादी स्वर उसी का प्रतिफलन माना जाना चाहिए।

उपन्यास के 'दो शब्द' मे रांगेय राघव ने लिखा है—'प्रस्तुत उपन्यास अपने ढंग की नई चीज है। मैंने श्री भगवतीचरण वर्मा के उपन्यास 'टेढे मेढे रास्ते' के आगे इसे लिखा है। मेरा उपन्यास अपने आप में स्वतन्त्र है। इसका केवल एक सम्बन्ध अपने पूर्ववर्ती उपन्यास से है कि मेरे पात्र, उनकी परिस्थितियाँ, सामाजिक व्यवहार, घर, भूगोल, सपत्ति सब वही है जो 'टेढे मेढे रास्ते' मे है। कहानी अब आगे चलती है। इन पात्रो का अतीत टेढे मेढे रास्ते की कहानी है वह सब गुजर चुका है।'

'टेढे मेढे रास्ते' की कहानी 'सीधा सादा रास्ता' मे समाजवादी यथार्थवादी धरातल पर आकर समाजवादी चेतना को वाणी देती है। यही कारण है कि वर्मा जी का निराशावादी दृष्टिकोण 'सीधा सादा रास्ता' मे आस्थावादी हो जाता है। श्याम नाथ का कथन है—'दुनिया मे अभी इन्सानियत बाकी है। जिस दिन वह कही भी नही मिलेगी, उसी दिन हम एक दूसरे का गला घोटकर हत्या करने लगेंगे।'[1] 'सीधा सादा रास्ता' के पात्र कुठाग्रस्त न होकर समाजवादी चेतना से प्रस्फुटित हैं और प्रतिक्रियावादी तत्वो से सघर्ष करते हुए आगे बढ़ते हैं। इसीलिए एक आलोचक के अनुसार 'इसमे लेखक अधिक यथार्थ भूमि पर उतरा है और विचारों के सघर्ष को, भावो के उत्थान-पतन को अपेक्षाकृत अधिक सूक्ष्मता से आंकने का प्रयत्न किया है।

पात्रो के माध्यम से सामाजिक राजनीतिक स्थितियो का उद्घाटन किया गया है। राजा रामनाथ और नवाब साहब जैसे सामन्ती युग के अवशेष हैं और रामनाथ बीते युग का स्मरण कर मध्ययुगीन सामन्तशाही के जो रंग-बिरगे चित्र उरेहते हैं वे वस्तुत. जमीदारो और नवाबो की निरकुशता की गाथाएँ हैं। जमीदार और अग्रेजी शासन का गठबन्धन था और अग्रेजो के सामने दयनीय बन जाने वाले राजा और नवाब

---

१ रांगेय राघव–'सीधा सादा रास्ता,' पृष्ठ ४३०

रिआया के सम्मुख शेर बन कर जो अनाचार करते थे उसका विस्तृत मनोवैज्ञानिक चित्रण आलोच्य उपन्यास में मिलता है। इसके साथ ही राष्ट्रीय जागृति और उसके माध्यम से होने वाले युग परिवर्तन की कथा भी समानान्तर रूप से विकसित होती है। इस पृष्ठभूमि मे कांग्रेस एवं साम्यवादी दलो की गतिविधियो एवं विचारधाराओं और तत्कालीन आन्दोलनो का चित्रण सहज ही हो सका है। किन्तु पूर्वग्रह के कारण लेखक का झुकाव मार्क्सवाद की ओर अधिक है। वासुदेव और ब्रह्मदत्त के लम्बे कथोपकथन क्रमश गाँधीवाद और मार्क्सवाद के सिद्धान्तो का समर्थन मात्र है। ब्रह्मदत्त अपनी दलीलो से वासुदेव के तर्कों का खडन करता है। इस मत प्रतिपादन मे अनेक पृष्ठ रगे पडे हैं। ब्रह्मदत्त के लम्बे कथोपकथन के कुछ अश देखिये—'मैं वर्ग के अनुसार व्यक्ति को देखता हूँ। मैं भौतिकवादी कल्याण को ही सबसे बडा समझता हूँ। मुझे उस दयालुता मे श्रद्धा नहीं जिसकी सामर्थ्य शोषक पर टिकी है।'[1] 'जिसे आप परमार्थ का सत्य कह कर सीने से चिपटाये हुये हैं, हम उसके असाम्य को मिटाना चाहते हैं।'[2] 'शोषक के हथियारो से न डरो। यही मार्क्स ने कहा था, लेनिन ने कहा था, यदि हो सके तो जैसे ही अन्यथा शस्त्रो से शोषक को हटा दो। हर नये निर्माण के लिए एक ध्वस की आवश्यकता है।[3] कांग्रेस के नेतृत्व को वह तटस्थ दृष्टि से नही भाक सका है। गाँधीवादी दयानाथ और मार्कण्डेय के दिलो मे गाँधीवाद के अहिंसा और हृदय परिवर्तन सिद्धान्तो के प्रति अविश्वास की भावना से उत्पन्न द्वन्द्व[4] इसी का परिणाम है। ब्रह्मदत्त साम्यवादी है और जब तक मार्क्सवाद के सिद्धान्तो की व्याख्या करता है—'सैकडो आदमी, अनेक पीढ़ियाँ। जनता को सदैव यातना। अतीत का भव्य गौरव, केवल शोषको का गौरव। मैं देख रहा हूँ। मैं इस विराट धारा का बुद्बुद हूँ। पर मुझ मे समस्त महासागर की सत्ता है, मैं अलग नहीं हूँ। मैं एक नई दुनिया बनाने में लगा हूँ। मुझे इसका गर्व है। एक नई दुनिया···उसके लिए जीवन के कष्ट···इसलिए नहीं कि किसान मजदूर पर उनकी गरीबी देखकर मात्र एक भावनात्मक दया आ गई है वरन् इसलिए कि वह इतिहास की गति है, उसे कोई नही रोक सकता क्योंकि वही मनुष्य के सर्वश्रेष्ठ और पवित्रतम का विकास है, वही इस सडाँध को मिटानेवाली पानी की तेज धारा है, वही सत्य है, शोषितो का अधिकार है[5]

---

१. रांगेय राघव - 'सीधा सादा रास्ता' पृष्ठ २७५
२ रांगेय राघव — 'सीधा सादा रास्ता,' पृष्ठ २७६
३. रांगेय राघव — 'सीधा सादा रास्ता,' पृष्ठ २७७
४. रांगेय राघव — 'सीधा सादा रास्ता' पृष्ठ २५६-५७
५ रांगेय राघव — 'सीधा सादा रास्ता' पृष्ठ ३४८

यह वर्ग-विहीन समाज की दार्शनिक भूमिका को स्पष्ट करते समय अधिनायकवाद के सम्बन्ध में व्याप्त भ्रांति का निराकरण करता है—'डिक्टेटरशिप ! डिक्टेटरशिप दो तरह के होते हैं। एक व्यक्ति का स्वेच्छाचरण जो किसी शोषक वर्ग के स्वार्थ के लिए होता है, निरंकुश शासन। दूसरा समाज का पूर्ण अधिकारों से भरा वह शासन जो वर्गों को समाप्त करने में लगता है। यह दूसरा तरीका ही तो क्या हर्ज है ? वर्ग भेद को मिटाने वाली बातें मिट जायेंगी। यह सब उस वर्ग-हीन समाज की रचना की मंजिल पर पहुँचने वाला रास्ता है।'[1]

साम्यवादी पात्र के रूप में ब्रह्मदत्त का चरित्र अत्यन्त सशक्त है और हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासों में ऐसे दृढ़ पात्र अत्यन्त विरल हैं। राजनीतिक उठा-पछाड़ के अनेक चित्र सजीव बन पड़े हैं। 'सीधा सादा रास्ता' में समाजवादी यथार्थवादी दृष्टिकोण से राष्ट्रीय वातावरण और आन्दोलन का वीक्षण किया गया है अतः पात्रों के स्थान पर समाविष्ट घटनाओं और सिद्धान्तों को महत्त्व दिया गया है। डॉ० गणेशन का मत है कि रांगेय राघव ने जन-चेतना को पहचाना है। विदेशी शासन के विरुद्ध सम्पूर्ण जनता में और तथाकथित उच्च वर्गों के विरुद्ध निम्न स्तर के लोगों में जागृति आयी थी, उसको उन्होंने स्पष्ट दिखा दिया है। समाज की कुत्सित प्रवृत्तियों के और स्वार्थ लोलुप अवसरवादियों के निकृष्ट कर्मों के बीच में भी उनकी दृष्टि में मानवता की ज्योति देखी है।[2] किन्तु मानव के विकास का जो 'सीधा सादा रास्ता' सिद्ध किया गया है उसके बारे में उसी प्रकार से मतभेद हो सकता है जैसे 'टेढ़े मेढ़े रास्ते' को लेकर प्रगतिवादियों का है।

●●●

१. रांगेय राघव — 'सीधा सादा रास्ता', पृष्ठ ३३४
२. डॉ० गणेशन — 'हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन', पृष्ठ २१३

अध्याय ६

राजनीतिक विषयक प्रासंगिक चर्चा समन्वित अद्यतन उपन्यास

> जैनेन्द्र के उपन्यासों में राजनीतिक तत्व—

जैनेन्द्र का राजनीतिक व्यक्तित्व

> जैनेन्द्र के उपन्यास

* सुनीता—गांधीवाद की गूंज
* सुखदा—राजनीतिक देशकाल, क्रान्तिकारियों की कार्यप्रणाली, अनुशासन, नारी सम्बन्धी भावना, क्रान्तिकारियों के क्रियाकलाप, साम्यवादी चेतना
* विवर्त—क्रान्तिपरक घटनाएं और असंगतियां, धन संग्रह के साधन, साम्यवादी-दृष्टिकोण, असंगति

> जैनेन्द्र के अंश-राजनीतिक उपन्यास—

* कल्याणी
* जयवर्धन

> इलाचन्द्र जोशी के उपन्यास एवं भारतीय राजनीति

* संन्यासी
* निर्वासित
* मुक्तिपथ—राजनीतिक घटनाएं, जन-श्रम भावना, अन्य राज-नीतिक वातावरण
* जिप्सी

> 'अज्ञेय' कृत 'शेखर : एक जीवनी' का राजनीतिक स्वरूप

राजनीतिक प्रसंग, कालावधि निर्धारण, विचार-धाराएँ, क्रान्तिकारी और नारी

> आलोच्यावधि के अन्य उपन्यास

* टेढ़े-मेढ़े रास्ते
* बंगाल के अकाल पर आधारित उपन्यास
* पुरुष और नारी तथा जागरण

> प्राक् स्वाधीनता युग के विवेचित उपन्यासों की उपलब्धियां

जैनेन्द्र के उपन्यासों में राजनीतिक तत्व

जैनेन्द्र का राजनीतिक व्यक्तित्व

उपन्यासकार जैनेन्द्र का भारतीय राजनीति से निकट का सबध रहा है। जैनेन्द्र का जन्म सन् १९०५ मे जिला अलीगढ़ के कौडियागंज मे हुआ और सन् १९१८ मे गुरु-कुल से अलग होने पर उन्होंने पजाब से मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की। तदुपरात उच्च शिक्षा के लिए उन्होंने बनारस विश्वविद्यालय मे प्रवेश लिया और सन् १९२१ मे असहयोग आन्दोलन में कालेज छोडकर राजनीति मे आ गए। प्रारम्भिक दिनो मे लाला लाजपत राय के 'तिलक स्कूल ऑफ पॉलिटिक्स' मे रहे। इन्हीं दिनो वे श्री माखनलाल चतुर्वेदी और श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान के सम्पर्क मे आए और उन्हीं के साथ उन्होंने बिलासपुर मे कांग्रेस के तत्वावधान मे राष्ट्रीय कार्यों मे भाग लिया। सन् १९२३ मे भगवानदीन जी के आह्वान पर वे नागपुर के सुप्रसिद्ध झडा सत्याग्रह मे सवाददाता के रूप मे भाग लेकर जेल गये पर सरकार के साथ सरदार पटेल के समझौते के कारण मुक्त कर दिये गये।

कांग्रेस के प्रति जैनेन्द्र की निष्ठा बढ़ती गयी और गांधी जी के सिद्धान्तो ने उन्हें अत्यधिक प्रभावित किया। गांधी जी के नेतृत्व में सन् १९३० मे डाडी यात्रा के आन्दोलन मे भाग लेकर वे पुन जेल गये। कांग्रेस आन्दोलनो मे दो-दो बार जेल यात्रा करने पर भी जैनेन्द्र सन् १९३० तक कांग्रेस के सदस्य नही थे। सन् १९३२ मे श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति जैनेन्द्र की कांग्रेस निष्ठा से प्रभावित हो उन्हें आन्दोलन का 'डिक्टेटर' बना दिया। यही उनका सम्पर्क 'वार केबिनेट' के सदस्यो से हुआ। उसी वर्ष जैनेन्द्र को सत्याग्रह मे पुनः गिरफ्तार कर लिया गया और उन्हे ७॥ माह की सजा हुई।

सन् १९३२ के आन्दोलन के उपरान्त जैनेन्द्र ने फिर राजनीतिक आन्दोलनो मे भाग नही लिया। इसका कारण जैनेन्द्र अपने नेतृत्व की कमजोरी बताते हैं।[१] दो विशेष अवसरों पर उन्होने प्राणरक्षा का भय अनुभव किया जो उनकी दृष्टि मे सत्याग्रही की सबसे बडी कमजोरी है। इसी चिन्ता के कारण उन्होंने निश्चय किया कि भविष्य मे वे राजनीतिक नेतृत्व नही करेंगे। इसी निश्चय के साथ जैनेन्द्र का राजनीतिक जीवन समाप्त हुआ।

---

१. रघुनाथ सरन झालानी—'जैनेन्द्र और उनके उपन्यास,' पृष्ठ ४

उनके राजनीतक जीवन के बारह वर्षों मे (सन् १९२० से १९६२) कांग्रेस और क्रांतिकारियों की गतिविधियाँ अत्यन्त सक्रिय थी और दोनो को उन्होने निकट से देखा। कांग्रेस के कर्मठ सेनानी के रूप म जैनेन्द्र गाँधीयुग की देन हैं और गांधीवाद का उन्होंने गहन अध्ययन भी किया है।

राजनीति से बहुत वर्षों तक सम्बद्ध रहने और गाँधीवाद पर आस्था होते हुए भी जैनेन्द्र के उपन्यासो मे राजनीतिक धरातल का अभाव आश्चर्य जनक है। इस सदर्भ मे उनके ही शब्दो को उद्धृत करना उपयुक्त होगा–'मेरे ख्याल मे उपन्यास मे न व्यक्ति चाहिए, न टाइप। न नीति चाहिए, न राजनीति। न सुधार, न स्वराज्य। उससे तो प्रेम की सघन व्यथा की माग ही हो सकती है। और वह प्रेम इस या उसम नही है, बल्कि इस-उस की परस्परता ही मे है।'

उपन्यास ही नही साहित्य की परिभाषा मे भी वे कहते हैं–'मनुष्य के हृदय की वह अभिव्यक्ति जो इस आत्मैक्य की अनुभूति म लिपिबद्ध होती है, साहित्य है।' इस भाँति हम देखते हैं कि प्रेम और अहिंसा द्वारा ऐक्य का अनुभव कराना ही वे साहित्य का श्रेय मानते हैं। समाज की रीति-नीति को ध्वस्त करने म क्रांतिकारी साहित्य की सार्थकता को वे नही मानते।

किन्तु जैनेन्द्र के उपन्यासो की विवेचना म हम पाते है कि उनके उपन्यासो मे गाँधीवाद का समावेश तो है ही क्रांतिकारी राजनीतिक वातावरण का घटाटोप भी कम नही। प्रेम, सत्य और परमात्मा के सबध मे उनके विचार गाँधी जी के विचारो की प्रतिच्छाया है।

उन्होने व्यक्ति को मूलत व्यक्ति मानकर उसकी मान्यताओ को अभिव्यक्ति दी है और इसी रूप मे उनकी राजनीतिक चेतना को विस्तार मिला है। दूसरे शब्दो मे यह कहा जा सकता है कि सामयिक राजनीतिक घटनाओ या राजनीतिक उद्देश्यो के ध्येय से उपन्यासो की रचना नहीं करने पर भी उनके प्रमुख पात्रो के चरित्र चित्रण मे गाँधीवादी जीवन दर्शन आरोपित है। इन पात्रो की सार्थकता के लिए क्रांतिकारी पात्रो की अवतरणा भी की गई है। यो अन्त सघर्ष ही उनके साहित्य की मूल शक्ति है जो उनके अत्यधिक चिंतन के कारण उपन्यास के राजनीतिक स्वरूप को ढांके रहती है। एक समीक्षक का मत है 'जैनेन्द्र ने अपनी रचनाओ मे राजनीति को केवल बौद्धिक रूप म ग्रहण किया है। उनके चरित्र राजनीतिक हलचलो से उतना प्रभावित नहीं होते जितना उनके विषय म सोचते है। उन पात्रो के आदर्श भी समय की परिस्थितियों द्वारा बोधित होने वाले आदर्श नही।[1] उनके उपन्यासों मे गांधीवाद के आध्यात्मिक रूप एव क्रांतिकारियो के क्रियाकलापो का विस्तृत चित्रण हुआ है।

१ आलोचना, अक १३, पृष्ठ ४१

जैनेन्द्र के उपन्यासों को विषय-वस्तु की दृष्टि से दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—

(१) राजनीतिक उपन्यास

(२) अंश-राजनीतिक उपन्यास

क्रांतिकारियों के क्रियाकलापों और उनकी रीति-नीति को अभिव्यक्त करने वाले 'सुखदा' व 'विवर्त' प्रथम श्रेणी में वर्गीकृत किये जा सकते हैं। 'सुनीता' और 'कल्याणी' में भी क्रांतिकारियों का संक्षिप्त उल्लेख मिलता है अतः उन्हें अंश राजनीतिक उपन्यासों की कोटि में रखा जा सकता है।

प्रेमचन्द हिन्दी के प्रथम राजनीतिक उपन्यासकार हैं जिन्होंने राजनीतिक चेतनाओं को युगधर्म के अनुरूप चित्रित कर मार्गदर्शन किया। डॉ० नगेन्द्र का यह कथन सत्य ही है कि हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र में प्रेमचन्द व्यक्ति नहीं संस्था थे। उन्होंने अपने समय की सामाजिक और राजनीतिक चेतनाओं को युगधर्म के दृढ़ आधार पर समन्वित किया।[1] प्रेमचन्द के समय में ही जैनेन्द्र के 'सुनीता' का प्रकाशन हो गया था। प्रेमचन्द के उपन्यासों में राजनीतिक तत्व उभरे उसकी प्रेरणा उन्हें संभवतः बंकिमचन्द्र और रवीन्द्रनाथ टैगोर के उपन्यासों से मिली जबकि जैनेन्द्र शरत से प्रभावित हो व्यक्तिवादी उपन्यास के प्रणेता हुए। इसे प्रेमचन्द की बहिर्मुखी प्रवृत्ति का प्रतिगामी विरोध ही कहा जा सकता है।

सुनीता

यह जैनेन्द्र का प्रथम उपन्यास है जिसमें उनकी राजनीतिक दृष्टि का स्पष्ट आभास मिलता है। 'सुनीता' में हरिप्रसन्न नामक पात्र के मिस क्रांतिकारियों के क्रियाकलापों का परिचय प्रस्तुत किया गया है। इस उपन्यास का केन्द्र हरिप्रसन्न ही है जिसके चतुर्दिक समस्त घटनाएँ सग्रथित हैं। उपन्यास में उसके दो रूप चित्रित हैं—एक चित्रकार का तथा दूसरा क्रांतिकारी का। चित्रकार का स्वरूप तो उसके चित्रांकन से प्रकट भी किया गया है किन्तु उसके क्रांतिकारी रूप को विस्तार नहीं मिल सका है।

'सुनीता' की कथा संक्षिप्त और कथा के सूत्र अत्यल्प हैं। मुख्य पात्र केवल तीन हैं—सुनीता, श्रीकान्त और हरिप्रसन्न। तीनों की संयुक्त कथा या विभिन्न समस्याओं को लेकर उत्पन्न अन्तर्द्वन्द्व से ही उपन्यास की कथा वस्तु का निर्माण हुआ है। अतएव इसे हम अन्तर्वृत्ति-निरूपक उपन्यास भी कह सकते हैं।

श्रीकान्त और हरिप्रसन्न कालेज में साथ रहे हैं, मित्र हैं। किन्तु इधर अनेक वर्षों से इनका मिलना नहीं हुआ है। कालेज में वह खूब चतुर, खूब कर्मण्य, खूब तत्पर

---

१. डॉ० नगेन्द्र—'विचार और विश्लेषण,' पृष्ठ १५०

और एकदम मन्देह-ऐसा वह था।[1] सार्वजनिकता उसके स्वभाव में खूब थी। धर्म उसके लिए उपयोग की और कभी प्रयोग और विनोद की भी वस्तु थी। प्रारम्भ में ही हम उसे 'नई उमर में फामी चढ़ कर चुक गये' युवकों की मृत्यु पर श्रद्धावान पाते हैं। श्रीकान्त भी अनुभव करता है कि 'हरिप्रसन्न मौत के विचार के साथ हल-मन बटाना चाह रहा है।' वह हेलमेल बढ़ाता है हम पाते हैं कि 'एक षड्यन्त्र का विस्फोट हुआ। हरी पकडा गया और दूर-दूर के लोग पकडे गये। कुछ को फासी हुई, बहुतों को जेल। दो साल की सजा हरी को हुई। फिर असहयोग और सत्याग्रह आया। हरिप्रसन्न उसमें झुका। जेल पर जेल वहाँ भी हुई।'[2] श्रीकान्त अब विवाहित है और वकालत कर रहा है। वह हरिप्रसन्न का स्मरण करता रहता है उसे देखने को आतुर है किन्तु हरिप्रसन्न का कोई पता नहीं चलता। अज्ञात कारणों से हरिप्रसन्न का श्रीकान्त के यहाँ ठहरना होता है। दिल्ली में हुई एक कान्फेंस में भाग लेने वह आता है जहाँ श्रीकान्त उसे देखता है। वह आतंकवाद के पतनशील तथा पूँजीवाद के प्रगतिशील चरणों का अनुभव करता है। वह कहता है—'राजनीति में जो तूफान आया था, वह बीत गया। अब आवारापन स्तुत्य था। साहस का मूल्य था। ज्वार उतर जाने पर जो भाटा आया है, इसमें वस्तुओं का मूल्य बदल गया है। अब आदमी दुनियादारी में भारी-भरकम चाहिए और पैसे से पुष्ट चाहिए। तब राष्ट्र की राजनीति उसे पहचाने। यह पैस की समस्या बडी पेचीदी हो गई है। अनुत्पादक चालाकियों से सोने का ढेर बन जाता है, उत्पादक ठोस महनत करने पर सादे के पैसा का भी भरोसा नहीं बनता।'[3] वह इस नतीजे पर पहुँचता है कि जीवन के लिए पैसा आवश्यक है और उसे श्रमिक के रूप में प्राप्त करना चाहता है। श्रीकान्त उसे घर ले जाता है जहाँ वह कुछ दिन ठहरता है। इस काल में वह श्रीकान्त की पत्नी सुनीता की ओर आकृष्ट होता है। श्रीकान्त और सुनीता हरिप्रसन्न को बाँधे रखने की चेष्टा करते हैं।

श्रीकान्त के यहाँ जिस प्रकार की आत्मीयता का हरिप्रसन्न को बोध होता है इसका उसे पूर्व ज्ञान न था। सुनीता के निकट सम्पर्क से वह नारी के नये स्वरूप को देखता है। हरिप्रसन्न दल की प्रेरणामयी नारी के रूप में सुनीता की कल्पना करता है। वह विचार करता है, 'यह सुनीता आज घर में है, गृहिणी है। वह रण की रण-देवी क्या न बने? पौरुष कहाँ से साहस लेता है? युवकों में कहाँ से स्फूर्ति भरनी होगी? वे कहाँ से मद पायेंगे? जीवन की स्पृहा उनमें कैसे जागेगी? उसके लिए एक

---

१ जैनेन्द्र — 'सुनीता,' पृष्ठ ६
२ जैनेन्द्र — 'सुनीता,' पृष्ठ ८
३ जैनेन्द्र — 'सुनीता,' पृष्ठ २२

नारी की आवश्यकता है।'[1] नारी को वह माया के रूप में चाहते हैं। सुनीता भी एक रात के लिए दल के युवकों से 'रानीमाता' के रूप में मिलना स्वीकार कर लेती है। जिस रात को वे दल के स्थान की ओर रवाना होने हैं, उसी रात श्रीकांत लाहौर से लौटता है और घर को बन्द देखता है। उधर हरिप्रसन्न सुनीता को लेकर जङ्गल में पहुँचता है तो सुनीता के साहचर्य से उसे अपनी वासना की अभिव्यक्ति का अवसर मिलता है। सुनीता हरिमोहन की काम-प्रमुक्ति का आवरण हटाने के ध्येय से अपना निरावरण शरीर प्रस्तुत करती है और हरिप्रसन्न का मोह दूर हो जाता है। सुनीता पति को सब कुछ बता देती है और श्रीकांत प्रसन्न है कि उसने एक व्यक्ति की मानसिक ग्रंथि को खोलकर उसे समाज के उपयोगी अंग के रूप में प्रवर्तित किया।

गांधीवाद की गूँज

'सुनीता' की कथा-वस्तु और क्रांतिकारी पात्र हरिप्रसन्न की यही संक्षिप्त कहानी है। हरिप्रसन्न क्रांतिकारी होते हुए भी न तो कोई ऐतिहासिक पात्र है और न क्रांतिकारियों के अन्य गुणों से ही युक्त व्यक्तित्व। कथावस्तु में क्रांतिकारियों की गतिविधियों का अंकन भी नगण्य सा है। हरिप्रसन्न या उसके दल की रीति-नीति से परिचित होने का लेखक अवकाश ही नहीं देता। दल के लिए रुपये की व्यवस्था हेतु प्रार्थना, क्रांतिकारियों का रिवाल्वर के प्रति जीवन संगिनी-सा प्रेम और पुलिस के खतरे की लाल रोशनी से सूचना इसमें अवश्य है पर वह भी अस्पष्ट।

ऐसी स्थिति में यह सहज प्रश्न उठता है कि फिर उपन्यासकार ने हरिप्रसन्न को क्रांतिकारी के रूप में ही चित्रित क्यों किया ? हरिप्रसन्न क्रांतिकारी के स्थान पर न होकर क्या कुछ और नहीं हो सकता था ? दूसरा प्रश्न उठता है कि रचनाकार का 'सुनीता' में क्या उद्देश्य है ? उस उद्देश्य की पूर्ति में हरिप्रसन्न का क्या योग है।

इन प्रश्नों का उत्तर जैनेन्द्र के गांधीवाद जीवन दर्शन में ही निहित हैं। हरिप्रसन्न क्रांतिकारी है और इस रूप में हिंसात्मक कार्यवाहियों का समर्थक भी। श्रीकांत का सिद्धान्त है प्रेम और अहिंसा से जीवन का उन्नयन। इस तरह है वह गांधीवादी चरित्र का मूर्तिमान आदर्श। 'सुखदा' दोनों के बीच 'साधन' है जिसके माध्यम से हरिप्रसन्न पराजित होता है और उसके सिद्धान्तों को हम तिरोहित होते देखते हैं। साधन नारी है इसीलिए जैनेन्द्र हरिप्रसन्न की काम-प्रमुक्ति की प्रवृत्ति का निरूपण करते हैं।

नारी को साधन रूप में प्रस्तुत करने के उनके ये कारण हो सकते है—

(१) क्रांतिकारियों द्वारा दल में नारी को स्थान देने के कारणों पर प्रकाश,

---

१. जैनेन्द्र — 'सुनीता,' पृष्ठ १३५-३६

(२) सविनय अवज्ञा आन्दोलनोपरान्त (सुनीता और कांत का विवाह १९३२ में होता है) नारी के बदलते हुए मूल्यों की व्याख्या। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में नारी को पुरुष की समकक्ष सहयोगिनी के रूप में लाकर राष्ट्रोद्धार के आन्दोलनों में लाना राष्ट्रीय आन्दोलन की जो भूमिका रही है उसका चित्रण जैनेन्द्र को अभीष्ट रहा है।

'सुनीता' में सुनीता को लेकर ये दोनों पक्ष स्पष्ट होते हैं और तद्युगीन नारी का राजनीतिक क्षेत्र में प्रवेश करने का ज्ञान होता है। हरिप्रसन्न की पराजय हिंसा की पराजय है। इसीलिए हम इस तथ्य को स्वीकार कर सकते हैं कि इस उपन्यास की मूल समस्या है हिंसा और अहिंसा का साहित्यिक तथा व्यावहारिक संघर्ष, जिसमें अहिंसा की विजय और हिंसा की पराजय दिखाना लेखक का परम लक्ष्य है। अहिंसा की विजय की समस्या प्रेम के माध्यम से सामने रखी गई है, जिसके मूल में पति के प्रेम तथा प्रिय अथवा प्रेमी के प्रेम का संघर्ष है। इन दोनों प्रेमों के दो टूक निर्णय न लाकर उपन्यासकार ने अहिंसा की समस्या का साफ हल प्रस्तुत नहीं किया है।[१]

जैनेन्द्र की दार्शनिकता, जिसके आधार पर वे गांधीवाद का आध्यात्मिक स्वरूप साहित्य से प्रस्तुत करना चाहते हैं, उनकी बुद्धिवादिता से बोझिल हो अस्पष्ट हो जाती है और राजनीतिक उपन्यास को भिन्न स्वरूप प्रदान करती है। इसी अस्पष्टता के कारण ही आलोचकों को उनके संबंध में भिन्न दृष्टिकोण बनाना पड़ता है। आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी की मान्यता इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है—'जैनेन्द्र की रचनाओं में जिन नारियों के दर्शन हमें होते हैं, वे गाँधी जी की नारी-कल्पना से नितांत भिन्न हैं। रचना के क्षेत्र में जैनेन्द्र न तो गाँधीवादी हैं और न आदर्शवादी हैं।'[२] और मेरे विचार से 'न मूलतः क्रांतिकारी ही।'

सुखदा

'सुखदा' में जैनेन्द्र ने क्रांति की कथा नाटकीय ढङ्ग से कही है। उपन्यास की नायिका सुखदा है जिसके पारिवारिक जीवन को केन्द्र बिन्दु बनाकर क्रांतिकारियों के विचारों व क्रिया-कलापों को प्रस्तुत किया गया है। इस उपन्यास में कथा रस के अतिरिक्त विवरण में सरसता की संयोजना मिलती है।

सुखदा बड़े घर की बेटी है किन्तु उसका विवाह हो जाता है डेढ़ सौ रुपया माहवार पाने वाले व्यक्ति से। यही आर्थिक वैषम्य पति-पत्नी के मनोमालिन्य का कारण होता है। एक दिन एक बीस वर्षीय युवक नौकरी की खोज में उसके यहाँ आता है।

---

१ आलोचना १३, पृष्ठ ११५-१६

२. आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी—'आधुनिक साहित्य', पृष्ठ २१९

उसने अपना नाम गंगासिंह बताया । कुछ दिन तक सेवक के रूप में काम करके एक दिन बिना किसी को बताये वह काम छोड़कर चला जाता है और तीसरे दिन सुखदा समाचार पत्र द्वारा उसके गिरफ्तार होने का समाचार पढ़ती है। गंगासिंह (वह नाम भी कल्पित था) और उसके तीन साथियों की गिरफ्तारी एक अनहोनी घटना में होती है। यह अनहोनी घटना क्या थी लेखक इसको अस्पष्ट रखता है। गंगासिंह क्रांतिकारी दल का सदस्य था इस तथ्य को लेखक ने सुखदा की संभावना[1] और बाद में घटना के बाद पति के कथन की पुष्टि से स्पष्ट किया है। इस तरह यह अनहोनी घटना क्रांतिकारी ही हो सकती है ऐसा पाठक को मानकर चलना पड़ता है। उन चार के बाद और बहुतों की भी गिरफ्तारी हुई। गंगासिंह और उनके साथियों की गिरफ्तारी को लेकर देश में एक बिजली सी दौड़ जाती है और सुखदा का झुकाव क्रांतिकारियों की ओर हो जाता है। पति के प्रति वितृष्ण होकर वह सार्वजनिक क्षेत्र में प्रवेश करती है जहाँ वह हरीश के सम्पर्क में आती है। हरीश एक क्रांतिकारी संगठन के प्रमुख हैं जो क्रांतिकारियों के माध्यम से राष्ट्र की स्वाधीनता के लिए यत्नशील है। राजनीतिक शक्तियों का बिखराव तत्कालीन भारत की राजनीतिक स्थिति का ही परिणाम था। सुखदा के शब्दों में—'उस काल का राजनीतिक वातावरण अस्थिर था। सन् २० का आन्दोलन ठंडा पड़ गया था। कोई एक विचारधारा उस समय ऐसी नहीं थी जिसमें देश का प्राण केन्द्रित भाव से बहता कहा जा सके। कई विचार थे, कई दल और परस्पर की स्पर्धा एक-एक उन दलों के पास जीवित रहने के लिए काम था।[2] युवा क्रांतिकारियों की गतिविधियों को वह हिंसा-अहिंसा की तुला पर नहीं तौलना चाहती।[3] उनकी कार्यवाहियों के प्रति उसका दृष्टिकोण सहानुभूतिक है वह तर्क की कसौटी पर उसे कसने को तत्पर नहीं। वह समय उभार का था, डांडी कूच होने में समय था और अधीर युवक कुछ न कुछ करने का प्रयत्न कर रहे थे।[4] कांग्रेस राष्ट्रीय संस्था थी लेकिन युवक उसको बिना बीच में लिए कुछ सीधा अपना उत्तरदायित्व भी समझने लगे थे।[5]

हरीश और उसके साथियों के सम्पर्क में आकर सुखदा का सार्वजनिक सम्पर्क बढ़ता है और वह क्रांतिकारी संघ की उपाध्यक्षा मनोनीत कर ली जाती है। पारिवारिक गृहस्थ जीवन की चिन्ताओं से अपने को मुक्त कर अपने अहं की तुष्टि के लिए वह

---

१ जैनेन्द्र कुमार—'सुखदा', पृष्ठ १६

२ जैनेन्द्र—'सुखदा', पृष्ठ २१

३. जैनेन्द्र—'सुखदा', पृष्ठ २१

४ जैनेन्द्र—'सुखदा'' पृष्ठ २१

५ जैनेन्द्र—'सुखदा', पृष्ठ २१

क्रांतिकारियों के कार्यों में सहयोगिनी के रूप में अपने व्यक्तित्व का विस्तार करना चाहती है। उसके पति उसके कार्यों में (शायद हरीश के बालसखा होने के नाते भी) कोई रुकावट नहीं डालते। फिर भी पति का परिहास सुखदा को सह्य नहीं क्योंकि उसके अहं की अभिव्यक्ति प्रतिहिंसात्मक है।

मन में कर्तृत्व की योजनाएँ उदित होने के बाद वह हरीश के स्थान की ओर जाती है। यहाँ उसकी भेंट लाल से अत्यधिक नाटकीय ढंग से होती है। परिचय होने पर लाल उसे हरीश का परिचय पत्र देता है और सूचित करता है कि पुलिस को पता लग जाने के कारण हरीश अन्यत्र सुरक्षित स्थान में चल गये हैं। सुखदा लाल से प्रभावित हो हरीश को देने हेतु लायी धन राशि लाल को दे देती है। यहाँ उसकी अनुपस्थिति में सुखदा के पति श्रीकांत हरीश की आकस्मिक माँग पर सुखदा के स्वर्णाभूषण बैंक में धरोहर रखकर दो हजार रुपया प्रभात के हाथ हरीश को भिजवाते हैं। वे रुपये लाल के पास पहुँचते है और वह सारा रुपया सुखदा व कांत को लौटा देता है। कांत को आभास होता है कि सुखदा लाल के प्रति आकृष्ट हो रही है किन्तु वह सुखदा या लाल के प्रति प्रतिकार की भावना नहीं पाता।

लाल के प्रति दलवालों की धारणा अच्छी नहीं है। सुखदा के प्रति उसका झुकाव, सुखदा के आभूषणों व रुपयों के बिना दल की स्वीकृति पाये लौटाना व कार्यों के (सिद्धान्तों में भी) तरीके में मतवैभिन्य इसके कारण थे। अचानक ही लाल जापान जाने का निर्णय लेते हैं और सुखदा को एक घनिष्ट पत्र लिखते है जिसे पढ़कर वह अभिभूत हो जाती है।

इसके पश्चात् हरीश पुनः कहानी में प्रवेश करते हैं। उनके सम्मुख लाल का प्रकरण प्रस्तुत होता है। उस पर सुखदा के प्रति आसक्ति के आरोप में मृत्यु दंड निश्चित होता है। लाल को दो दिन का समय दिया जाता है और हरीश का निर्णय होता है कि सुखदा लाल के साथ रहे और यदि उसके प्रेम के वशीभूत हो बचाना चाहे तो ठीक, नहीं तो उसका प्राणदंड निश्चित है। सुखदा लाल के प्रेम में विभोर हो उठती है पर वह उसे छोड़कर चला जाता है। इसी बीच हरीश दल भंग करने का निश्चय करते हैं। दल की इस बैठक में लाल और सुखदा पहुँच जाते हैं। दल भंग करने का कारण है पश्चिम से बढ़ता हुआ तूफान याने साम्यवाद और गांधी की आँधी। वे सुखदा व लाल दोनों को साथ रहने की अनुमति दे देते हैं। हरीश अपने को पुलिस के हाथों समर्पित कर देना चाहते हैं और अपने मित्र श्रीकांत को विवश करते हैं कि वह उन्हें पुलिस के हवाले करके उनकी गिरफ्तारी के लिए घोषित ५ हजार रु० का इनाम ले लें। श्रीकांत यन्त्रचालित से ऐसा करके ५ हजार रुपये प्राप्त करते हैं। दल के लोगों को सन्देह होता है कि लाल ने हरीश को गिरफ्तार कराया है और प्रभात पता लगाकर

उस पर उस समय गोली चलाता है जब वह कोतवाली के पास आने वाले कोई 'खजाना' लूटेंगे। यह 'खजाना' और कुछ नहीं हरीश था। इस संघर्ष में केदार पुलिस की गोली से मारा जाता है। प्रभात को विश्वास है कि उसकी गोली लाल को लगी जरूर, पर वह भागता गया। सुखदा के मन में पति द्वारा हरीश को पकड़ाने का आघात लगता है और वह पति को छोड़कर माँ के पास रहने चली जाती है और फिर क्षयग्रस्त होकर अस्पताल का आश्रय लेती है जहाँ वह इन सब घटनाओं को डायरी के रूप में अंकित करती है।

'सुखदा' में राजनीति दृष्टि से यही कथानक है जो उपन्यास में यत्र-तत्र बिखराव के साथ क्रांतिकारियों के क्रियाकलापों पर प्रकाश डालता है। जैनेन्द्र जी व्यक्तिवादी उपन्यासकार हैं और इसीलिए आचार्य नंददुलारे वाजपेयी के शब्दों में 'जैनेन्द्र की साहित्य-सृष्टि व्यक्तिमुखी है।'[1] व्यक्तिवादी होने के कारण सामाजिक जीवन के व्यापक चित्रों का आग्रह उनमें नहीं मिलता। 'सुखदा' जैनेन्द्र की व्यक्तिमुखी नायिका है जिसके रहस्यवादी दार्शनिकता युक्त चित्रण से राजनीतिक वातावरण धूमिल हो उठा है। कथानक का विस्तार क्रांतिकारियों को लेकर—हरीश, लाल, प्रभात आदि को लेकर होने पर भी सुखदा व अन्य प्रमुख पात्रों के व्यक्तिवादी मनोविश्लेषणात्मक चित्रण से लेखक की स्वस्थ रचनात्मक राजनीतिक प्रवृति और उसकी कथा का सहज विकास नहीं हो सका है। हम इस कथन से सहमत हैं कि 'सुखदा में क्रांति की कथा वर्णित हुई है, परन्तु यह सच है कि उसमें क्रांति का गौरव प्रकट नहीं हुआ है।'[2]

'सुखदा' आत्मचरितात्मक है और जिसकी नायिका सुखदा असहयोग आन्दोलन (१९२०) तथा डांडी कूच यात्रा (१९३२) के बीच के अपने जीवन की कहानी कहती है। इस अवधि में वह क्रांतिकारियों के निकट सम्पर्क में रहती है और उनके कार्यों में सुविधानुसार सहयोग देती है। उसके पति भी क्रांतिकारी दल से अप्रत्यक्ष रूप में सम्बद्ध थे। वस्तुत: 'सुखदा' में भी कहानी केवल निमित्त मात्र है। जैनेन्द्र के अन्य उपन्यासों की अपेक्षा इसमें घटनाएँ और कुतूहल की सृष्टि कुछ अधिक है। किन्तु इतना होने पर भी उनका मन घटनाओं के जाल में न पड़कर सुखदा के चरित्रोद्घाटन विशेषत आत्म व्यथा में उलझ गया। नगेन्द्र जी के शब्दों में तो सुखदा का प्रेष्य अर्थ है अहं का उत्सर्ग। जीवन की सबसे बड़ी समस्या है अहं और सबसे सफल समाधान है उसका उत्सर्ग। इस उत्सर्ग की विधि है आत्मपीड़न। सुखदा इसकी प्रतिमूर्ति है। समूचे उपन्यास में आत्म व्यथा की ही प्रेरणा है। सभी पात्र अपना निषेध करके ही प्राप्य की ओर बढ़ते हैं।[1] गृहस्थ कांत,

१. आचार्य नंददुलारे वाजपेयी—'आधुनिक साहित्य,' पृष्ठ२१२
२. डॉ० सुषमा धवन—'हिन्दी उपन्यास,' पृष्ठ१८८

सन्यासी क्रातिकारी हरिदा, समाजवादी क्रान्तिकारी लाल और डाकू केदार सभी के जीवन की साधना है अपने धन का समर्पण और जो गाँधीवाद का प्रभाव है।

जिस उपर्युक्त काल का चित्रण उपन्यास मे किया गया है वह अस्पष्ट रह गया है। लेखक राजनीति को केवल बौद्धिक रूप मे ग्रहण करता है इसलिए वह विवरणात्मक दृश्य प्रस्तुत नही करता। उपन्यास में प्राप्त सूत्रो के आधार पर सन् १९२० से १९३२ के राजनीतिक वातावरण की कहानी कही गई है।

पात्र और राजनीति

उपन्यास के जितने भी पात्र हैं या तो वे क्रातिकारी हैं या फिर क्रातिकारियों से प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से सम्बद्ध है। हरीश, लाल, गगा–सिंह, प्रभात, कोहली, केदार क्रातिकारी के रूप मे सामने आने हैं किन्तु उनका चारित्रिक विकास देखने मे नहीं आता। ये पात्र अपना स्वतत्र अस्तित्व नही रखते और निस्सत्व हैं। 'सुखदा' मे नायिका के आत्मचरितात्मक अकन से क्राति की कथा सुर्ख बनाई जा सकती थी पर यहाँ भी लेखक क्राति की जगह नारी समस्या को ही प्रमुखता दे बैठा। पात्र प्रधानतया चार है–सुखदा, उसके पति कान्त, क्रातिकारी दल का नेता हरीश तथा दल का एक अन्य प्रमुख सदस्य लाल साहब। ये चारो ही वैयक्तिक विशेषताओ से सम्पन्न हैं।

हरीश का पूर्व परिचय हमे सकेत रूप मे मिलता है। छुटपन से ही राष्ट्र के काम मे है और जाने क्या-क्या मुसीबतें उठा चुका है।[१] वे क्राति पर अडिग आस्था रखते हैं और बाइस बरस से इसके लिए कार्यशील हैं। लाल क्रातिकारियो की कार्यपद्धति मे परिवर्तन चाहता है क्योकि वह पश्चिम से बढते हुए साम्यवाद को देख रहा है। स्वय हरीश गाँधी की आधी (को) उससे छोटी चीज नही मानते। वे यह अनुभव करते हैं कि आनेवाला आन्दोलन व्यापक होगा और दल की वह नहीं राष्ट्र की चीज होगी। जनता के बढते हुए महत्व को वह स्वीकार कर दल को विलीन कर जनता मे खो जाने का आदेश देते हैं।[२] दल भग कर वे पुलिस को आत्मसमर्पण कर देते हैं यह आत्मसमर्पण भी नाटकीय रूप से होता है। लाल और उसके साथी हरीश के इस नाटकीय रूप से अपरिचित हैं अत कोतवाली के पास ही उसे छुडाने का यत्न करते हैं और पुलिस से हुए सघर्ष में एक क्रातिकारी मारा जाता है। इस घटना के उपरात दल के सदस्य सुरक्षा के लिए इधर उधर बिखर जाते है। पता नहीं चलता हरीश और लाल का बाद मे क्या हुआ। उनके सबध मे जैनेन्द्र पाठको के सामने एक प्रश्नवाचक चिन्ह ही छोड देते हैं।

---

१ डॉ० नगेन्द्र–'विचार और विवेचन,' पृष्ठ १५२

२ जैनेन्द्र–'सुखदा,' पृष्ठ ३४

लाल का प्रवेश कथा के मध्य मे होता है। वह देशभक्त है, परायण है लेकिन मुक्त, स्वच्छन्द और स्त्रियो के प्रति विशेषोन्मुख। वह आदर्श की अपेक्षा कर्म पर अधिक जोर देता है। अर्थ और समाज के लिए वह साम्यवादी है। सुखदा के साथ उसका साक्षात्कार अत्यन्त ही नाटकीय ढग से होता है और उतने ही नाटकीय ढग से उसके साथ मैत्री भी। हरीदा और उसके विचारो का मतभेद हमे उस स्थल मे देखने को मिलता है जब वह हरीदा द्वारा कात से मागे दो हजार रुपये कात को लाकर लौटा जाता है। हरीदा जहाँ मित्रो और परिचितो से सघ के कार्यों के लिए रुपये मागना अनुचित नही समझते वही लाल इसका विरोध करता है। उसका कथन है 'डकैती उन्हें गलत मालूम होती है, प्रार्थना मेरे लिए गलत है।'[1] वह रुपये की पूर्ति लखपती और करोडपति के यहाँ से करना उचित मानता है। वह वैयक्तिक रूप से किये जाने वाले क्रांति कार्यों को भी उचित नही स्वीकारता और कहता है, 'अलग-अलग रहना क्रांतिवालो का गलत है। जन-जीवन के बीच जाने के मौके हमे अपनाने होंगे।'[2] वह स्त्री के उपयोग से अधिक सहयोग का कायल है। वह क्रांतिकारियो की रीति-नीति सामाजिक बुनियाद पर चाहता है।

दल के सिद्धातो से पृथक अपनी मान्यताओ के कारण उसके प्राणों का भय उत्पन्न हो जाता है और वह जापान जाने की योजना बनाता है। दल के अनुशासन भग करने के आरोप मे उसे प्राणदण्ड का प्रावधान किया जाता है। वह हरीश को स्पष्टीकरण देता है और अपने राजनीतिक विचारो का (जो साम्यवाद से प्रभावित हैं) प्रतिपादन करता है। एक बैठक मे हरीदा दल को भग कर देते हैं—शायद लाल के तर्कों के कारण ही और उसे सुखदा के साथ रहने की अनुमति दे देते हैं। लाल को फिर हम हरीदा को छुडाने के प्रयत्न मे देखते हैं जहाँ प्रभात उस पर गोली चलाता है। इसके साथ ही उपन्यास की समाप्ति हो जाती है।

'सुखदा' मे हरीदा और लाल—दो क्रांतिकारी पात्र ही प्रमुख हैं। क्रांतिकारी होते हुए भी दोनों की अपनी-अपनी विचार धारायें हैं। हरीदा अन्त मे जाकर जहाँ गाँधीवाद के प्रसार को देखते हैं वहाँ लाल प्रारम्भ से ही साम्यवाद से प्रभावित दिखता है। अर्थ और समाज के प्रति उसका दृष्टिकोण साम्यवादी है। दोनो पात्रों के कथोपकथन के द्वारा वह दोनो के विचारो को अभिव्यक्ति देता है।

'सुखदा' मे वर्णित राजनीतिक देशकाल

'सुखदा' की यथावस्तु और उसके पात्रों के चरित्र चित्रण के अध्ययन से उप-

---

१. जैनेन्द्र—'सुखदा,' पृष्ठ १७७

२ जैनेन्द्र—'सुखदा,' पृष्ठ ७८

रान्त हम इस निष्कर्ष पर पहुँच जाते है कि सन् १९२० और १९३२ के बीच क्रांतिकारियों मे दो विचार धारायें कार्य कर रही थी—एक का प्रतीक है हरीश और दूसरे का लाल। आतंकवादी युग मे वर्ग बुद्धि का समावेश होने से समाजवाद ,का नारा बुलन्द होने लगा था।[1]

क्रांतिकारियो के आन्दोलन की तत्कालीन पृष्ठभूमि पर 'सुखदा' मे वर्णित हरीश और लाल की विचार धारा तत्कालीन युग के अनुरूप ही है। हरीश की प्रेरणा यदि प्राचीन ऋषियो के आदर्शो से उद्भूत है और गाँधीजी के राजनीतिक सिद्धान्तो की ओर उन्मुख है तो लाल की प्रेरणा रूस के साम्यवाद से। दोनो पात्रो के चारित्रिक विकास की विवेचना करते समय हम पूर्व मे ही इनका विस्तृत उल्लेख कर चुके हैं।

कांग्रेस के असहयोग आन्दोलन के बढते हुए प्रभाव के परिणाम स्वरूप क्रांतिकारियो की अवस्था वैयक्तिक आतंकवादी प्रयत्नो से अलग अलग हो सार्वजनिकता की ओर थी, इसका भी हमे 'सुखदा' मे स्पष्ट उल्लेख मिलता है। इसी आधार पर हरीश दल को भग करता है।[2]

हरीश के उक्त अवसर पर व्यक्त कथन से राष्ट्र मे उभरते हुए गाँधीवादी और आते हुए साम्यवाद का स्पष्ट रूप मिलता है। गाँधीवाद का ही यह प्रभाव था कि हरीश पुलिस को आत्मसमर्पण के लिए तत्पर होता है। इतना ही नही अपितु 'कथानक के अधिकाश मे हिंसा के सूक्ष्म रूप अहम्मन्यता का सुखदा के व्याज से बारीक विवेचन करते हुए लेखक ने हिंसा के स्थूल पक्ष की ओर भी गौण रूप से ध्यान दिया है। इसीलिए उसने हरीश, लाल, प्रभातादि क्रांतिकारियो की उद्भावना की।'[3] स्पष्ट है कि लेखक देशकाल के अनुरूप हिंसा और अहिंसा की राजनीतिक व्याख्या (भले ही वह बौद्धिक हो) स अहिंसा का मार्ग प्रशस्त करता है। यह बात अलग है कि वे उसे आन्दोलनमय बना कर नही चले।

क्रांतिकारियो की कार्य-प्रणाली

सुखदा मे क्रांतिकारियो की कार्य प्रणालियो पर भी यथेष्ट प्रकाश डाला गया है। उनके अर्थ प्राप्ति के साधन, अनुशासन और सघ मे नारी का स्थान आदि विषयो पर विचार किया गया है जो इतिहास-सम्मत है। दल के कार्यो को सचालित करने के लिए धन की प्राप्ति किसी भी राजनीतिक दल की अनिवार्य आवश्यकता है। क्रांति-

१ मन्मथनाथ गुप्त—'भारतीय क्रांतिकारी आन्दोलन का इतिहास,' पृष्ठ २२९
२. जैनेन्द्र कुमार—'सुखदा,' पृष्ठ १७४
३. डॉ० रामरतन भटनागर—'जैनेन्द्र : साहित्य और समीक्षा,' पृष्ठ १७६-७७

कारी दल धन की प्राप्ति के लिये दो साधनो को अपनाता था—एक तो अपने समर्थको से माग कर पूंजीपतियो के यहां डकैती डाल कर। हरीश पहले तरीके को उपयुक्त मानकर सुखदा और कात से क्रमश तीन सौ और दो हजार रुपये प्राप्त करता है। लाल डकैतियो के द्वारा यह धन प्राप्त करना चाहता है।[1] मन्मथनाथ गुप्त ने अपने इतिहास में इन दोनो प्रकारो से धन-सग्रह का विवरण दिया है।[2] रूस के 'निहिलिस्ट' और आयरलैंड के क्रातिकारी आर्थिक जरूरत पूरी करने के लिए डकैती डालते थे और भारतीय क्रातिकारियो ने यह प्रेरणा वही से प्राप्त की थी।

क्रातिकारियो की रीति-नीति : अनुशासन

क्रातिकारियो मे अनुशासन की कठोरता ऐतिहासिक सत्य है। दल मे सम्मलित होने पर क्रातिकारियो को प्रतिज्ञाएँ लेनी होती थी। इन नियमो का सख्ती से पालन किया जाता था और अनुशासन भग की सजा प्राण दण्ड थी। बगाल की अनुशीलन समिति का अनुशासन सबसे कड़ा था और सदस्यों को चार प्रकार की प्रतिज्ञाएं लेनी पड़ती थी। इनमे से प्रमुख थी—(१) मैं नेताओं का हुक्म बिना कुछ कहे मानूंगा। (२) मैं समिति का कोई भी अतरग मामला किसी से नही खोलूंगा, न उन पर व्यर्थ की बहस करूंगा। (३) परिचालक की आज्ञा पाने पर जहाँ भी जिस परिस्थिति मे हूँ, फौरन लौट आऊंगा। (४) दल की भीतरी बातो को लेकर किसी से तर्क नही करूंगा और जो दल के सदस्य हैं उनसे भी बिना जरूरत नाम या परिचय भी न पूंछूंगा।[3]

'सुखदा' मे हम क्रातिकारियो को उपयुक्त प्रतिज्ञाओ के अनुरूप कार्य करते पाते हैं। प्रभात, लाल और केदार दल के प्रमुख हरीश के निर्देशानुसार ही कार्य करते हैं। हरीश का सदेश पाने पर लाल हवाई जहाज से मिलने पहुँचता है यद्यपि वह जापान के लिए रवाना हो रहा था। हरीश के आरोपो पर विचार करने के लिए जो गुप्त बैठक होती है उसमे हम देखते हैं कि लाल के प्रति असतोष और अविश्वास होने पर भी अन्य सदस्य तर्क नहीं करते। दल के सदस्य एक दूसरे से अज्ञेय रहते हैं। प्रभात लाल के विषय मे और सुखदा हरीश के विषय मे विशेष कुछ बताने मे असमर्थ रहते हैं। वे दल के विशेष निर्णय और जानकारियों से भी अनभिज्ञ रहते हैं। हरीश सुखदा को निवास परिवर्तन की सूचना नही देता और जब वह उससे मिलने जाती है तो उसके स्थान पर लाल से उसका साक्षात्कार होता है।

---

१. रघुनाथ सरन झालानी—'जैनेन्द्र और उनके उपन्यास,' पृष्ठ ८४

२. मन्मथनाथ गुप्त—'भारतीय क्रांतिकारी आन्दोलन का इतिहास,' पृष्ठ ५६-५७

३. मन्मथनाथ गुप्त—'भारतीय क्रांतिकारी आन्दोलन का इतिहास,' पृष्ठ २०२-३

क्रांतिकारी रीति-नीति और नारी

भगवानदास ने सुप्रसिद्ध क्रांतिकारी आज़ाद के सम्बन्ध में लिखा है कि, पहले वह दल में स्त्रियों के प्रवेश के विरुद्ध थे और इसीलिए थे कि अनेक नेतृत्व के पूर्व यही परम्परा थी, परन्तु बाद में उनके ही नेतृत्व में स्त्रियों ने दल में काम किया और खूब अच्छी तरह काम किया। 'नारी नरक की खान' वाली मनोवृति से नारी को एक सक्रिय क्रांतिकारिणी, समान सहयोगिनी के रूप में मानने के बीच की सभी मनोदशाएँ आजाद में समय-समय पर रही होंगी यह स्पष्ट है। अंतिम दिनों में आजाद बड़े उत्साह से दल की सभी सदस्यों को गोली चलाना, निशाना मारना आदि सिखाते थे, दल से सहानुभूति रखने वाले व्यक्तियों के घर की स्त्रियों को भी वह इसके लिए उत्साहित करते थे यह सब होते हुए भी इस बात के घोर शत्रु ही थे कि कोई दल का सदस्य स्त्रियों के प्रति अनुचित रूप से आकृष्ट हो, किसी प्रकार की यौन कमजोरी तो उनके लिए असह्य ही थी।'[1] हरीश के बारे में भी क्रांतिकारी के शब्द हैं 'दादा सब सह सकते हैं, चरित्र की चूक नहीं सह सकते।'[2]

'सुखदा' में जिस काल की कथा वर्णित है वह आजाद का ही युग था और उपर्युक्त कथन की सत्यता स्वयं सिद्ध है। बालसखा कांत की पत्नी सुखदा को दल के कार्यों के लिए प्रोत्साहित करने का श्रेय यदि हरीश को है तो सुखदा के प्रेम में विभोर लाल को दंडित करने का भी। क्रांतिकारी यशपाल को भी आजाद ने इसी आधार पर दंडित किया था कि वे दल की सदस्या प्रकाशवती के प्रति आकृष्ट थे और बाद में इसी आधार पर उन्होंने दल को भंग कर दिया था और दोनों को साथ रहने की अनुमति दे दी थी।

अन्य क्रिया-कलाप

'सुखदा' में क्रान्तिकारियों के सम्बन्ध में उपर्युक्त विशिष्टताओं के अतिरिक्त उनकी सतर्कता,[3] पत्र-व्यवहार या पहिचान के लिए विशेष कोड[4] भेष परिवर्तन आदि का संकेत भी मिलता है।

साम्यवादी चेतना

क्रांतिकारी लाल के लम्बे वक्तव्यों के द्वारा लेखक ने तद्युगीन साम्यवादी

---

१. मन्मथनाथ गुप्त–'भारतीय क्रांतिकारी आन्दोलन का इतिहास,' पृष्ठ ३०६-७
२. जैनेन्द्र कुमार–'सुखदा,' पृष्ठ १३८
३ जैनेन्द्र – 'सुखदा,' पृष्ठ ५३ व ५७
४. जैनेन्द्र – 'सुखदा,' पृष्ठ ५४ व १६८

चेतना को भी वाणी दी है। हरीश के सामने अपने आरोपों के सम्बन्ध में वह जो स्पष्टीकरण देता है उसमें अर्थनीति, नारी और सामाजिकता पर व्यक्त विचार उसकी साम्यवादी धारणाओं की पुष्टि मात्र हैं। वह समाज की सम्पन्नता सुदृढ़ आर्थिक आधार पर ही निर्भर मानता है। उसके शब्दों में 'आप पैसे को घुन समझते हैं, मैं भी एक तरह उसे मैल ही समझता हूँ। पर उन अनगिनत लोगों के आपसी नाना व्यापारों द्वारा बने हुए इस बड़े समाज के शरीर का वह लहू है। वह जीवन को जगाये रखता है। वह जहाँ सूखता है, वहाँ आदमी सूख जाता है। इसलिए आत्मनीति और धर्मनीति को बाद में देखा जायगा, अर्थनीति को पहले देखना होगा।[1] उसका ही कथन है 'वह दौर साम्राज्यवाद है। पेट में वह पूँजीवाद है। हमको आर्थिक कार्यक्रम चाहिए। राजनीति पहला कदम है, असली काम आर्थिक है।'[2]

नारी को वह सहयोगिनी के रूप में मानता है और आन्दोलन में उनको पुरुष के समान उत्तरदायित्व देना चाहता है। स्त्री अलग और पुरुष अलग होकर नहीं चल सकते। वह हरिदा से भी कहता है—'दुनियाँ को मैं आधो आध बाँटकर देख सकता हूँ—पश्चिम में और पूरब में, स्त्री में और पुरुष में ? दादा अगर हम इस दुनिया के बीच फाक करके चलेंगे, चलने की जिद रखेंगे, तो हम नहीं चल पायेंगे, डग भर भी नहीं चल पायेंगे।'[3]

वह हरिदा के आदर्शवाद के आगे पश्चिम के तूफान के आने की घोषणा करता है। यह तूफान साम्यवाद ही है जिसे गाँधीवादी जैनेन्द्र ने तूफान की संज्ञा से अस्पष्ट रखा है। इस तूफान की विशिष्टता की ओर वह ध्यान दिलाता है, 'उधर पश्चिम की तरफ से आ रहा है एक तूफान ! आप श्रेष्ठ को लेंगे, निकृष्ट को फेंक देंगे। वह उस फेंके हुए उच्छिष्ट को ही ध्वजा बनाकर उठा-बढ़ा चला आ रहा है। वह स्वप्नवाद नहीं है, ठेठ तनवाद और कर्मवाद है। आदर्श नहीं, एकदम वह व्यवहार है। उसमें *आत्मा की बात नहीं, आदमी की बात है। वहाँ स्त्री देवी नहीं है, और पतग नहीं है,* वह स्त्री है और साथिन है।'[4] साराश यह कि सर्वत्र यथार्थ सामाजिक जीवन में ही निष्ठा है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जैनेन्द्र की 'सुखदा' क्रान्तिकारी दल से सहानुभूति रखने वाली एक सदस्या के आत्म-चरित्रात्मक उपन्यास के रूप में सन् १९२० से १९३२

---

१. जैनेन्द्र – 'सुखदा,' पृष्ठ १५५
२. जैनेन्द्र – 'सुखदा,' पृष्ठ ६६
३ जैनेन्द्र – 'सुखदा,' पृष्ठ १४६
४. जैनेन्द्र – 'सुखदा,' पृष्ठ १५४

के क्रान्तिपरक वातावरण और क्रान्तिकारियो की कथा ही है। इतना ही नहीं वरन् क्रान्तिकारी आन्दोलन के साथ साथ वह कांग्रेस और साम्यवाद के बढते हुए प्रभाव का चित्रण करता है। हिन्दी मे इसे प्रथम व्यक्तिवादी आत्मचरित्रात्मक राजनीतिक उपन्यास कहा जा सकता है जिसके सूत्र हमे 'सुनीता' मे मिलते है।

विवर्त

'सुखदा' के सदृश्य 'विवर्त' मे भी भारतीय क्रान्तिकारियो और क्रान्ति की कथा वर्णित है।

'विवर्त' की नायिका भुवनमोहिनी दिल्ली के एक धनी जज की पुत्री है और नायक जितेन अग्रेजी के एक पत्र के सम्पादकीय विभाग मे है। दोनों सहपाठी रहे है और मित्रता ने प्रेम का रूप धारण कर लिया है। भुवनमोहिनी का जितेन से प्रेम है और वह उससे विवाह करने को उत्सुक है, परन्तु अभाव ग्रस्त जितेन दोना के बीच की आर्थिक स्थिति के वैषम्य को लेकर तर्क करता है। वह दोनो के सस्कारो म मूलभूत अन्तर देखता है। इस वर्ग भेद की चेतना ही भुवनमोहिनी और जितन के सम्बन्ध विच्छेद का कारण बनती है। जितेन नगर छोडकर किसी अज्ञात स्थान पर चला जाता है और भुवनमोहिनी का विवाह इग्लैंड से लौटे बैरिस्टर नरेशचन्द्र से सम्पन्न हो जाता है।

भुवनमोहिनी के विवाह के चार वर्ष बाद जितेन एक क्रान्तिकारी के रूप म पुन प्रकट होता है। सहाय के रूप मे वह भुवनमोहिनी के यहाँ आतिथ्य ग्रहण करता है। गत रात्रि उसने पजाब मेल गिराई है जिसमे निरसठ मृत और दो सौ पन्द्रह आहत होते हैं। आत्म सुरक्षा की दृष्टि से वह बैरिस्टर नरेश के यहाँ आश्रय लेना श्रेयस्कर मानता है। ज्वर ग्रस्त होकर वह मोहिनी के यहाँ कई दिन आश्रय लेने के लिए बाध्य होता है। जितेन को पुन पाकर मोहिनी स्नेह और करुणा से अभिभूत हो उसकी परिचर्या और सेवासुश्रूपा मनोयोग से करती है।

मोहिनी और नरेश के ऐश्वर्य को देखकर जितेन की साम्यवादी विचार-धारा अभिव्यक्ति पाती है।[1] पुलिस को सदेह हो जाता है कि रेल उलटाने वाला असली आदमी शहर मे ही है। बड्डा एस० पी० को नरेश के यहाँ बीमार सहाय पर सन्देह है जिसे नरेश अपने साले साहब बताते हैं। मोहिनी के यहाँ रहते हुये भी जितेन का सम्पर्क दल के लोगो से बना रहता है। मोहिनी के ऐश्वर्य से वर्गभेद की चेतना पुन जागृत होने पर जितेन मोहिनी के आभूषणो की चोरी करके अपने डेरे पर पहुँच जाता

१ जैनेन्द्र – 'विवर्त,' पृष्ठ ६३

है। जितेन को हम डेरे पर विपिन के नये रूप में देखते हैं। यहाँ उसके सहायक हैं जो कोड के अनुसार सूर, वीर और धीर है और स्वयं विपिन का नाम है विप्पा। दल में एक स्त्री भी है तिन्नी। इन पात्रों के माध्यम से लेखक क्रान्तिकारियों की कार्यप्रणाली पर प्रकाश डालता है। जितेन या विप्पा मोहिनी से गहनों के बदले पचास हजार रुपये की माँग करता है, लेकिन मोहिनी यह स्वीकार नहीं करती। इस पर विप्पा के आदेश से दल के सदस्य उसका हरण कर लेते है और उसको धमकियाँ दी जाती हैं। इस स्थल पर आकर जितेन का हृदय-परिवर्तन होता है और वह साथियों की सुरक्षा तथा अनेक प्रकार की व्यवस्थाएँ करके पुलिस के सामने आत्मसमर्पण कर देता है। मोहिनी के कहने पर नरेश जितेन का मामला लड़ना चाहता है पर जितेन स्वयं अस्वीकार कर देता है। उसे फांसी नहीं आजन्म कारावास होता है।

कथावस्तु के आधार पर 'विवर्त' की कहानी एक क्रांतिकारी के हृदय परिवर्तन की कहानी है। कहना न होगा कि 'हिंसावृत्ति का खंडन तथा अहिंसावृत्ति का उ र्जन व प्रतिपादन' ही इस उपन्यास का उद्देश्य है।

'सुनीता' 'सुखदा' के सदृश्य ही 'विवर्त' की कथावस्तु या पात्र ऐतिहासिक सत्य नहीं है। क्रांतिकारी पात्रों के माध्यम से लेखक क्रांतिकारियों के जीवन और कार्यों पर जो व्याख्या प्रस्तुत करता है वह अवश्य क्रांतिकारियों के अनुरूप हैं।

उपन्यास में वर्णित क्रांतिपरक घटनाएँ और असंगति

'विवर्त' में रेलगाडी उड़ाने का जो विवरण आया है उसे जैनेन्द्र ने २३ दिसम्बर १९२९ में वायसराय की रेलगाडी उड़ाने की घटना से प्रेरणारूप में ग्रहण किया है। 'विवर्त' की यह घटना काल्पनिक है और क्रांतिकारी आन्दोलन के इतिहास में ऐसा उल्लेख प्राप्त नहीं होता। इस घटना के साथ ही हमें नरेश के मन्त्री की पार्टी में भाग का उल्लेख मिलता है।

नरेश मोहिनी से दूरभाष पर हुई वार्ता में कहता है—

'वह पार्टी कौन विलायती है—अपने मन्त्री महाशय ही तो है।'

मोहनी कहती है—'क्या राजदूत न होंगे देश विदेश के ?'

नरेश का उत्तर है—'होंगे तो—'[१]

प्रश्न उठता है, तो क्या जिस क्रांतिकारी आन्दोलन की कथा उपन्यास में कही गई है वह स्वाधीनता प्राप्ति के बाद की है ? यदि नहीं तो पार्टी में राजदूतों के उपस्थित रहने का उल्लेख असंगत है ? कहना न होगा कि उपर्युक्त कथन लेखक की असावधानी का परिणाम है।

१ जैनेन्द्र—'विवर्त,' पृष्ठ ४।

धन संग्रह के साधन

'सुखदा' की विवेचना में क्रांतिकारियों के धन-संग्रह के साधनों पर विचार किया जा चुका है। 'विवर्त' में जितेन मोहिनी से प्रार्थना कर धन की माँग करता है। मोहिनी के दो टूक उत्तर मिलने पर वह उसके आभूषणों को चुराता है। धन के लिए ही वह मोहिनी का अपहरण करता है और उसके घर पर डकैती डालने की धमकी भी देता है। इसके सिवाय क्रांतिकारी जाली सिक्के और नोट भी बनाते थे। सन् १९१० में ही जाली नोट तैयार करने का प्रयास हुआ। यह प्रयास बार-बार हुआ और कुछ सफलता भी मिली। श्रीगुप्त ने दिखलाया है कि सोनार गाँव में प्रबोधदास गुप्त ने लगभग दस-पन्द्रह हजार के जाली नोट चलाए। अन्त में वह पकड़े गये।[1] यह तरीका चला नहीं। 'विवर्त' में जितेन भी कहता है, 'मान लो रुपया हम बनाना शुरू करते हैं। ठप्पा लगा लेते हैं और सिक्का ढालने लगते हैं, जैसे पहले विचार था। बात सीधी है पर विचार छोड़ दिया। जानते हो क्यों? क्योंकि वह जाली होता है। क्योंकि मोहर सरकारी देते हैं, अपनी नहीं देते, इससे जाली होता है।'[2]

साम्यवादी दृष्टिकोण

क्रांतिकारी आन्दोलन के इतिहास के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि १९२१ के बाद के वर्षों में अनेक क्रांतिकारियों का बौद्धिक झुकाव साम्यवाद की ओर होने लगा था। वे स्वाधीनता के लिये सर्वहारा और आर्थिक नीति पर विचार करने लगे थे। 'सुखदा' में लाल और 'विवर्त' में जितेन साम्यवादी ढंग से सोचते हैं। जितेन श्रमिक वर्ग की सत्ता की कामना करता है—'सिक्के के हाथ नहीं, श्रम के हाथ सत्ता होनी चाहिए। श्रम सिक्का हो और सिक्का मिट्टी हो, तब है क्रांति।'[3] यह तो मानना ही पड़ेगा कि ऐसी संस्थाओं पर रूसी राजनीतिक क्रांति का देखादेखी प्रभाव नगण्य नहीं था।

वह गरीबों को शाह और अमीरों को चोर मानता है।[4]

'विवर्त' में क्रांतिकारियों की ईश्वर के प्रति अनास्था, छद्मनाम और गुप्त कोड की प्रथा, पुलिस के साथ होने वाली आँखमिचौनी, साहसिकता के एकाधिक उल्लेख

---

१. मन्मथनाथ गुप्त—'भारतीय क्रांतिकारी आन्दोलन का इतिहास,' पृष्ठ ५७
२ जैनेन्द्र—'विवर्त,' पृष्ठ १९३
३. जैनेन्द्र—'विवर्त,' पृष्ठ १९४
४. जैनेन्द्र—'विवर्त,' पृष्ठ २०७

मिलते हैं। जितेन का ड्राइवर बनकर एस० पी० चड्ढा व नरेश को छोड़ना और चड्ढा के साथ उसके घर पर रहना साहसिक और कौशलपूर्ण घटनाएँ हैं।

असंगतियाँ

'विवर्त' में कुछ असंगतियाँ भी हैं जो सामान्य क्रांतिकारियों के जीवन से मेल नहीं खाती। परिचिता मोहिनी के यहाँ से आभूषणों की चोरी और तदुपरांत उसका अपहरण, पुलिस कर्मचारी को छोड़ देना और जितेन का स्वयमेव पुलिस को आत्म समर्पण करना असामान्य घटनायें हैं। जितेन का आत्मसमर्पण कथावस्तु को शिथिल बनाता है क्योंकि यह घटना बिना करण कारण के अनायास होती है। गाँधीवादी दृष्टिकोण के अनुरूप उपन्यास की समाप्ति करने के उद्देश्य से ही इस घटना की सृष्टि की गई है। इसे हम एक क्रांतिकारी के पतन के अतिरिक्त गाँधीवादी हृदय-परिवर्तन भी तो नहीं कह सकते। लेखक को उसकी भूमिका कुछ पहले से बनानी थी। मोहिनी में हम इस परिवर्तन के प्रबल आग्रह को पाते हैं कि जितेन पुलिस को आत्म समर्पण कर दे पर जितेन पर वह आकांक्षा जब तक व्यक्त करे वह स्वयं पुलिस को समर्पण कर देता है। ऐसी स्थिति में 'विवर्त' में वर्ग संघर्ष के रूप में उपस्थित क्रांतिकारिता निष्प्रभ होकर रह जाती है।

जैनेन्द्र के अन्य राजनीतिक उपन्यास

जैनेन्द्र के 'कल्याणी' और 'जयवर्द्धन' में भी राजनीतिक चर्चा प्रासंगिक रूप से आई है।

कल्याणी

'कल्याणी' की कथा १९३५-३६ की कांग्रेस मिनिस्ट्री की पृष्ठभूमि लेकर चलती है और प्रान्त के प्रीमियर (जो कभी प्रान्त के प्रसिद्ध नेता थे) कल्याणी के इंग्लैंड के कालेज दिवसों के मित्र हैं। कल्याणी में कथानक सुगठित है, कथात्मक तत्व भी काफी है किन्तु राजनीतिक संस्पर्श बहुत हल्का है। मुख्य कथा 'कल्याणी' की है किन्तु देवलालीकर और पाल की कथाएँ ग्रथित कर राजनीतिक 'टच' दिया है। पाल नाम के इंग्लैंड के विद्यार्थी-जीवन के परिचित क्रांतिकारी को संरक्षण एवं सहायता देने और पुलिस की चुनौती स्वीकार करने की कल्याणी की तत्परता दिखलाकर जैनेन्द्र उसके जीवन में एक आदर्श पक्ष भी लाना चाहते हैं और इससे उन्हें कल्याणी की प्रगतिशीलता, उसके साहस, उसकी देश कल्याण की भावना और उच्च चरित्राश्रयता को प्रदर्शित करने का मौका मिल जाता है।

पाल के समान ही पुराना प्रेमी प्रीमियर बन कर दिल्ली जा रहा है और रायसाहब से मिलकर डॉ० असरानी दिल्ली म एक 'तपोवन' बनवा रहे है जिसका उद्घाटन प्रीमियर करेंगे । नई कोठी दिल्ली म ली गई है जहाँ प्रीमियर ठहरेंगे । इससे डेढ-दो लाख फायदे व कान्ट्रैक्ट्रो की व्यवस्था हो सकेगी ।

प्रीमियर एक कल्पित राजनीतिक पात्र ह जिसके चरित्र को आदर्श रूप से चित्रित करने का प्रयास किया गया है ।

पाल की कहानी कल्याणी के चरित्र क द्वैध रूप को सामने रखकर उभारी गई है । कल्याणी म राष्ट्रीय जागरूकता और अपरिसीम राजनैतिक साहस का भी आरोप हो जाता है—जिससे उसका चरित्र विलक्षण और चमत्कारक बन जाये । कल्याणी म तीन प्रमुख चरित्र हैं—कल्याणी डॉ० असरानी और प्रीमियर । इसम प्रीमियर परोक्ष मे है और जब आवे है तो समूचे और इतन तेजपु ज बनकर कि चकाचौंध पैदा कर देते है । परोक्ष रखकर कल्याणी के भीतर व्यथा सँजोई गई ह । उन्ह घात प्रतिघात के घेरे स बाहर रखा गया है । शिक्षित एव सुसस्कृत कल्याणी रूढिवादिता से परे स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करना चाहती है । डाक्टर असरानी रूढिवादी हैं और कल्याणी का आदर्श गृहिणी के रू म देखना चाहते ह । वे पत्नी के प्रति सदेहशील भी है और उस पर चरित्रहीनता का आरोप लगाकर उस पीटने स भी नही चूकत । डाक्टर के रूप म कल्याणी को वे आर्थिक सम्पन्नता का साधन बनाए रखना चाहत है । इसी कारण समस्या उठ खडी होती है गृहिणी और डाक्टरी, पत्नीत्व और निजत्व ये परस्पर कैसे निभें ? इसी समस्या को सुलझाने के लिए कल्याणी निजत्व की भावना को तिरोहित कर पति के सभी अत्याचारो को मूक भाव स सहन करती है । उसका विकास नहीं हो पाता और असतोष और सन्ताप के बीच वह इहलीला समाप्त कर देती है ।

वस्तुत 'कल्याणी' युगानुरूप नारी की समस्या का एक पहलू है जो लेखक के प्रयत्न के बावजूद भी अस्पष्ट रह गया है ।

जयवर्द्धन

जैनेन्द्र के इस वृहदकाय उपन्यास मे जयवर्द्धन की कथा दो स्तरा पर चलती है जिसम स एक नैतिक अथवा समष्टिगत है और दूसरा नितान्त व्यक्तिगत । एक का सबध जयवर्द्धन के मन्त्रीपद की समस्या स ह और उसके माध्यम से जो विचार व्यक्त किया गया है उसके अनुसार राज के विकास का अतिम चरण भले ही वह लोकतन्त्र हो, या कल्याण राज या रामराज्य राष्ट्रीय राजनीति की भूमि पर अनेक स्वार्थों और दलो के बीच जयवर्द्धन की उलझती हुई स्थिति का चित्रण है और अन्त मे यह इस निष्कर्ष

पर पहुँचना है कि यदि अपने अस्तित्व को बचाये रखना है तो राज का त्याग आवश्यक है। इसी तथ्य से परिचित हो वह मंत्रीपद से पृथक् हो जाता है।

जयवर्द्धन का आरम्भ दलीय स्वार्थों के संघर्ष से हुआ है और अन्त में यह घोर विरोध से श्रान्त होकर अहिंसक मार्ग अपना लेता है। इस तरह उपन्यास में जो समाधान प्रस्तुत किया गया है वह जयवर्द्धन के पद-त्याग में ही निहित है। अन्य राजनीतिक पात्रों के रूप में विरोधी दल के नेता हैं आचार्य जी, स्वामी चिदानन्द, नाथ, लिजा तथा इन्द्रमोहन।

आचार्य गाँधीवादी है, स्वामी चिदानन्द प्रतिक्रियावादी, नाथ और लिजा चिदानन्द के विरोधी अग्रगामी। इन्द्रमोहन हिंसाकर्मी और व्यक्तिवादी है। इस प्रकार जयवर्द्धन किसी भी दल में न रहकर सबकी समस्या है और उसे केन्द्र बनाकर ही पक्ष विपक्ष बन गये हैं। आचार्य जयवर्द्धन के प्रति विश्वस्त हैं अतः उनका कोई विरोध नहीं है। स्वामी जी उन्हें अनैतिक मानते हैं और भारत के शीर्ष को अधर्मी के रूप में किसी भी स्थिति में देखना नहीं चाहते। नाथ और लिजा इस प्रतिक्रियावाद के विरोधी हैं परन्तु शासनतंत्र में वे लोकतंत्र से आगे नहीं जाना चाहते। आतंकवादी होने पर भी इन्द्रमोहन जयवर्द्धन को दूर तक सहन कर सकते हैं। राजनीतिक दलों के इन महारथियों के कारण राजनीति में एक कूटचक्र की स्थापना हो जाती है जिसके चक्र में फँस कर जयवर्द्धन त्याग के लिए मजबूर हो जाते है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह नेहरू जी के मंत्रित्व काल की राजनीति का चित्रण है।

कथा की दूसरी और अपेक्षाकृत अधिक सशक्त भूमि व्यक्तिगत है जो जयवर्द्धन और इला के प्रेम-सम्बन्ध की वैधता अवैधता लेकर चलती है। एक विज्ञ आलोचक के शब्दों में 'वास्तव में राजनीतिक द्वन्द्वों के साथ-साथ और मूल में प्रेमचक्र ही है और सम्भवतः काममूलक निरोध ही राजनीति-द्वन्द्व बन गया है।'

निष्कर्ष

जैनेन्द्र के उपन्यासों के अनुशीलन से यह तथ्य मिलता है कि व्यक्तिवादी दृष्टिकोण होने के कारण उनके लघुकाय उपन्यासों में आभ्यन्तरिक मनुष्य उनकी कथा का विषय है। वे बाह्य संघर्ष को छोड़कर अन्तः संघर्ष को प्रमुखता देते हैं और व्यक्तिगत रूपों में मनोवैज्ञानिक सन्निद्धि की ओर सचेष्ट रहते हैं। एक विज्ञ का कथन है कि जैनेन्द्र ने जीवन वास्तव की व्यापक भूमि की उपेक्षा की और मनोजगत् के घात-प्रतिघातों के अंकन तक अपने को सीमित रखा। लघुत्व की विशेषता से मंडित सीमाबद्धता में उनमें सांकेतिकता का आग्रह अधिक है और जिसके कारण अनेक कथा-सूत्रों में बिखराव

अधिक है। उनके उपन्यासों का राजनीतिक स्वरूप इन्हीं कारणों से स्पष्ट उभर न सका है। 'सुनीता' 'सुखदा' और विवर्त प्रत्येक में तीन प्रमुख पात्रों के त्रैत से कथ कही गई है और प्रत्येक त्रैत में एक पात्र क्रांतिकारी है। इतना होने पर भी 'सुनीता' के हरिप्रसन्न 'सुखदा' के लाल और 'विवर्त' के जितेन का व्यक्तित्व दम निर्बल है सम्भावनाओं पर ही कथा-सूत्रों का निर्माण किया गया है और अंत में जाकर क्रांतिकारी योजना का आभास मिलता है। इस दृष्टि से विवर्त अधिक सुगठित है और इस सुनीता और सुखदा की कड़ियों का विकास देखा जा सकता है।

जैनेन्द्र के उपन्यासों में क्रांतिकारी पात्र अपने गौरवपूर्ण व्यक्तित्व का रेखाओं से मंडित नहीं हैं। वे निराश या प्रताड़ित प्रेमी बन कर ही रह गये हैं। इसीलिए कहा गया है कि 'जैनेन्द्र ने स्पष्ट ही क्रांतिकारियों के साथ अन्याय किया है। उनके दुर्बलता को ही अधिक उभारा है। विवर्त में जितेन जिस क्रांति की अपेक्षा करता है वह उसकी प्रेमिका भुवनमोहिनी की मर्यादा के प्रति है। वह दुर्बल चरित्र है और प्रेम में दुर्बल होने के कारण ही आक्रोशवश क्रांतिकारी बनता है।

राजनीतिक दृष्टि से जैनेन्द्र गांधीवाद के हिमायती हैं और कला की दृष्टि से व्यक्तिवादी उपन्यासकार। गांधीवाद आन्दोलन जहाँ समष्टि को लेकर आगे बढ़ता है, वहीं दूसरी ओर वैयक्तिकता के विस्तार का क्रांतिकारी दल में पर्याप्त अवकाश मिलता है। सम्भवतः यही कारण है कि अपने दोनों उद्देश्यों की पूर्ति के लिए जैनेन्द्र ने अपने उपन्यासों में क्रांतिकारी पात्रों को लिया है।

इलाचंद्र जोशी के उपन्यास एवं भारतीय राजनीति

मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार के रूप में ख्यातिप्राप्त इलाचंद्र जोशी के उपन्यासों में सामाजिक यथार्थ का चित्रण भी अत्यन्त कुशलता के साथ हुआ है। जोशी जी का कथन है वर्तमान विश्व की व्यापक बाह्य समस्याओं का समाधान स्थायी रूप से तभी हो सकेगा जब उनकी भौतिक इतिहास-धारा को विश्व की अन्तरीण प्रगति-धारा की विराट पृष्ठभूमि से सम्बद्ध किया जाय। वे मार्क्सवादियों के इस सिद्धान्त को अधूरा मानते हैं जिसके अनुसार 'मनुष्य का मन बाह्य पदार्थ की प्रतिच्छाया मात्र है।' मार्क्सवाद उनकी दृष्टि में अधूरा यथार्थ है क्योंकि वह केवल सामाजिक यथार्थ में सीमित रहकर महत्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक पक्ष से विमुख रह जाता है। वे मार्क्सवाद और फ्रायडवाद दोनों को एक दूसरे का पूरक मानते हैं और उनका कथन है कि 'एक ओर बाह्य जगत की गतिशील क्रम अन्तर्जगत का निर्माण करता है, दूसरी ओर अन्तर्जगत के वह संस्कार बाह्य जगत पर अज्ञात में अपना प्रभाव डालते जाते हैं। इसलिए एक महा

सत्य के इन दो चरम पहलुओं को समान भाव से अपनाने की परम आवश्यकता है। जब तक हमारे साहित्यिक और साहित्यालोचकगण अन्तर्जगत के दृष्टिकोण से बाह्य प्रगति को समझने का प्रयास नहीं करेंगे और उसी प्रकार बाह्य जगत के दृष्टिकोण से अन्तर्जगत का ज्ञान प्राप्त नहीं करेंगे, तब तक साहित्य एकांगिता और अधकचरेपन के दोष से किसी प्रकार बच नहीं सकता।'[1] स्पष्ट है कि वे साहित्य में सामाजिक और मनोवैज्ञानिक दोनों पक्षों की समान प्रतिष्ठा चाहते हैं। वे प्रगतिशील लेखक हैं किन्तु उनका प्रगतिवाद मार्क्सवादी द्वन्द्वात्मक भौतिकतावाद न होकर समन्वयवादी प्रगतिवाद है जिसमें वास्तविक बाह्य प्रगति तथा अन्तरीण प्रगति को समान-समन्वयात्मक रूप से अपनाया गया है। उनकी आरम्भिक कृतियाँ प्रायः सम्पूर्ण रूप से मनोवैज्ञानिक वस्तु पर गठित हैं किन्तु उनमें क्रमशः सामाजिक पक्ष का अधिकाधिक विकास होने पर राजनीतिक स्वरूप भी उभरता गया। वे मानते हैं कि 'पूँजीवाद तथा साम्राज्यवाद के विस्तार के पीछे भी मनोवैज्ञानिक कारण छिपे हुए हैं। मनुष्य के सामूहिक अवचेतन मन के भीतर दबी हुई कुछ विशेष प्रवृत्तियों का सामूहिक उभार इनके विकास का कारण है, यह बात बड़ी आसानी से सिद्ध की जा सकती है। इन सब बातों से हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि केवल बाह्य जीवन की सामाजिक आर्थिक व्यवस्था और उसके परिणाम स्वरूप वर्ग-संघर्ष को ही बाहरी और भीतरी जीवन की एकमात्र परिचालिका शक्ति मानना और केवल उसी से संबंध रखने वाले तत्वों की खोज के पथ को 'प्रगतिशीलता' का एकमात्र पथ बताना घोर भ्रममूलक है।'[2] यह ठीक उसी प्रकार है जैसे कि काव्य, संगीत आदि की परिचालक पृष्ठभूमि में फ्रायड कामकुंठा को महत्व देता है। हो सकता है कि सामूहिक रूप में कोई सामाजिक मनोवैज्ञानिक मूल प्रवृत्ति विशेष होती हो। किन्तु सच तो यह है कि समाज की समस्याएँ होती हैं और आर्थिक समस्या पर आधारित समाज के भरण-पोषण को लेकर जो यथार्थ समस्याएँ उत्पन्न होना संभव है उन्हीं पर समाजवादी धारा आधारित है। अतएव उसे मनोवैज्ञानिकता का जामा पहनाना चिंतन नहीं प्रत्युत यथार्थ को थोथी कल्पना से ढकना है।

संन्यासी (१९४१)

प्रथम राजनीतिक उपन्यास 'संन्यासी' नंदकिशोर नामक व्यक्ति की आत्मकथा है जिसका राजनीतिक पक्ष केवल इतना ही है कि वह प्रेम में निरन्तर असफल हो संन्यासी हो जाता है और फिर नेतागिरी के चक्कर में पड़कर जेल चला जाता है। जेल

---

१ इलाचन्द्र जोशी—'विवेचना', पृष्ठ २२

२ इलाचन्द्र जोशी—'विवेचना,' पृष्ठ १६७ ६८

से छूटने पर वह अपने को रिक्त पाता है। यदि उपन्यास में वनदेव और शांति जैसे पात्रों की सृष्टि न की गई होती तो उपन्यास नंदकिशोर के चरित्र की विकृति की कथा बनकर ही रह जाता।

शांति के साथ सम्बन्ध स्थापित कर नंदकिशोर जब उसे लेकर इलाहाबाद आता है उसका परिचय बलदेव से होता है। बलदेव ही उपन्यास का एकमात्र राजनीतिक पात्र है। उसके चरित्र में गाँधीवादी धारा के विरोधी तत्वों का समावेश है। गाँधी जी के मुस्कराते हुए चित्र को देखकर वह अपनी भावनाओं को व्यक्त किये बिना नहीं रहता। वह कहता है—'गाँधी जी की इस मुस्कान में न सरलता है न भोलापन। इसमें केवल 'कैपिटेलिस्टों' की कृपा से परिपुष्ट एक आत्मलुब्ध प्राणी के सुख और सन्तोषपूर्ण भाव की अभिव्यक्ति मैं पाता हूँ।'[१] 'उनके चेहरे का एक्सप्रेशन देखते नहीं, एक भरपेट भोजन प्राप्त गवार की तरह हँस रहे हैं। दक्षिणी अफ्रीका में सच्ची लगन से, आत्मा की सच्ची अनुभूति से पीडितों और अपमानितों के हितार्थ अपने को अर्पित करने वाले त्यागी गाँधी का अन्त न जाने कब हो चुका था। सच्चे गाँधी को भूलकर दुनिया उनकी प्रेतात्मा को भज रही है।'[२] गाँधी जी के प्रति उसकी घृणा इतनी उत्कट है कि उसके शब्दों में 'गाँधी जी को साधारण 'ईडियट' नहीं, बल्कि मेकाले की भाषा में 'इन्सपायर्ड ईडियट' कहना बेहतर होगा।'[३] वह मानता है कि 'गाँधीजी पूँजीवादियों के पिट्ठू हैं, इसीलिए उनके प्रति मेरे मन में तनिक भी श्रद्धा नहीं है। भारत की निर्धन और दलित जनता के प्रति उनकी आध्यात्मिक सहानुभूति अवश्य है, पर जहाँ सदियों से पीडित किसान और मजूर अपनी नोन तेल लकडी पर भी पूँजीपतियों का सर्वग्रासी हाथ पडने देख अपनी क्षीण शक्ति से उसका विरोध करने लगते हैं तो गाँधी जी उनकी तरफ से कभी एक शब्द भी न कह कर पूँजीपतियों की पीठ ठोंकने लगते हैं। भावलोक में विचरण करके मानवता के 'ऐब्सट्रेक्ट' रूप के प्रति प्रेमभाव दिखा गद्गद् भाव प्रकट करके महात्मापन का यश लूट लेना आसान है।'[४]

मित्रों की गोष्ठी में भी वह प्रसंग निकाल कर खरी खोटी सुनाने से नहीं हिचकता। मित्रों से वह कहता है 'आपके महात्मा जी लंगोट धारण करके दरिद्रता के आत्मगत अनुभव का स्वाँग भले ही रचें, पर उन्होंने अपने जीवन में कभी एक क्षण के

---

१ इलाचन्द्र जोशी—'सन्यासी,' पृष्ठ १६५
२. इलाचन्द्र जोशी—'सन्यासी,' पृष्ठ १६५ ६६
३ इलाचन्द्र जोशी—'संन्यासी,' पृष्ठ १६६
४ इलाचन्द्र जोशी—'सन्यासी,' पृष्ठ १६७

लिए भी दीनता के हाहाकार की प्राणघाती पीड़ा का अनुभव नहीं किया। यह बात किसी से छिपी नहीं है कि लंगोट धारण करने पर भी वह राजसी जीवन बिता रहे हैं।'[1] वह इसका दोषी गाँधी जी के समर्थकों को ही मानता है-'आप लोगों ने अपने महात्मा को अब व्यक्तिगत जीव नहीं रहने दिया। वह अब अपने व्यक्तिगत रूप में भी सार्वजनिक हो उठे हैं।'[2] वह गाँधी जी के तीसरे दर्जे की यात्रा पर भी व्यंग करने से नहीं चूकता।[3]

इसके ठीक विपरीत शांति है जो गाँधी जी की कट्टर भक्तिन है।[4] उसका कर्तृत्व भी *गाँधीवादी है। उसके हृदय में पीड़ितों और अनाथों के प्रति समवेदना कोरी किताबी* दुनिया से या राजनीतिक प्लेटफार्म पर दिए गए भाषण से प्राप्त फैशन की समवेदना नहीं है।'[5] इसी भावना के कारण वह बलदेव के प्रति सहानुभूति-दृष्टि से उसकी सहायता करती है। यों क्रांतिकारियों के प्रति उसके मन में आतंक का भाव है।

गाँधी जी के प्रति उसकी श्रद्धा-भावना महान है। उसके शब्दों में-'मेरे प्राणों के भीतर श्रद्धा का भाव जितना भी समा सकता है वह सबका सब अगर मैं महात्मा जी के चरणों पर उड़ेल दूँ तो भी मेरी आत्मा को पूरा सन्तोष नहीं हो सकता। मैं उन्हें मनुष्य के रूप में नहीं देखती हूँ। मैं तो उन्हें एक स्वर्गीय आदर्श की मूर्तिमान कल्पना समझती हूँ।'[6]

शान्ति के सम्पर्क में आकर बलदेव का हृदय-परिवर्तन होता है। वह गाँधी टोपी भी धारण कर लेता है और स्वीकार करता है कि 'गाँधीजी की बातों से किसी को कैसा ही असन्तोष क्यों न हो, पर मन में प्रत्येक समझदार व्यक्ति को यह मानना ही पड़ेगा कि वह सचमुच ही एक महान आत्मा है। मुझे तो यह विश्वास होने लगा है कि इस शख्स के पीछे कोई एक ऐसी जबर्दस्त दैवी शक्ति छिपी हुई है जो ईश्वर में तरंगित होने वाली अदृश्य बिजली की तरह सर्वत्र व्याप्त रहती है।'[7]

वह धीरे-धीरे अज्ञात सर्वव्यापी शक्ति की सत्ता का भी बोध करने लगता है। किन्तु शांति के जाने के बाद ही हम पुनः उसे मनचले साम्यवादी रईसजादों द्वारा सचा-

---

१ इलाचन्द्र जोशी—'सन्यासी,' पृष्ठ १६६
२ इलाचन्द्र जोशी—'सन्यासी,' पृष्ठ १६६
३ इलाचन्द्र जोशी—'सन्यासी,' पृष्ठ १७१
४. इलाचन्द्र जोशी—'सन्यासी,' पृष्ठ १७६
५. इलाचन्द्र जोशी—'सन्यासी,' पृष्ठ १७६
६. इलाचन्द्र जोशी—'सन्यासी,' पृष्ठ १८७
७ इलाचन्द्र जोशी—'सन्यासी,' पृष्ठ १९९–२००

लित साप्ताहिक 'फ्यूचर वर्ल्ड' का सम्पादक पाते हैं। वह नये परिवर्तन की आकांक्षा करता है और कहता है—"एक ऐसे मतवाद का प्रचार करना चाहता हूँ, जो कोरा सिद्धान्तवाद या आदर्शवाद न रहकर जीवन की वास्तविकता से सम्बन्ध रखता हो, और जो रेडिकेलिज़्म का पोषक होने पर भी इतनी सदियों के अनुभव से विकास प्राप्त कल्चर को न ठुकरा कर उसे युग की आवश्यकता के अनुसार नये रूप से नये प्रकाश में जनता के आगे रखने में समर्थ हो।"[1] वह रेडिकेलिज़्म का अर्थ ट्रेन्स वल्यूल्यूएशन ऑफ आल वेल्यूज़ मानता है। वस्तुतः बलदेव एक भ्रमित राजनीतिक पात्र है और उपन्यास में उसका अपना कोई महत्त्व नहीं है।

'सन्यासी' तो नवकिशोर के चरित्र का ही मनोवैज्ञानिक विश्लेषण है। बलदेव और शान्ति सामाजिक भावना से युक्त पात्र अवश्य हैं किन्तु इनके चरित्र उद्घाटित न हो सके हैं। संघर्षों से शिथिल बलदेव के चरित्र में गांधीवादी धारा के विरोधी तत्वों का कुछ समावेश अवश्य है पर वह आरोपित सा है। बलदेव तो कथा के विकास का एक सूत्र मात्र है।

निर्वासित

इलाचन्द्र जोशी के 'निर्वासित' उपन्यास में महीप नामक एक असफल प्रेमी कवि की कथा है जो खन्ना परिवार की तीन बहनों से प्रणय व्यापार कर अन्त में असफल कवि ही रहता है। इसी पृष्ठभूमि में उसकी तथा तत्कालीन समाज की राजनीतिक गतिविधियाँ मुखरित होती हैं।

उपन्यास की कथा का आरम्भ उस समय से होता है जब द्वितीय महायुद्ध अपनी प्रारम्भिक अवस्था में था और उसकी छाया भारत में पूरी तरह से नहीं पड़ी थी। तब मध्यवर्गीय समाज के जीवन से रोमान्स की रंगीनी एकदम नहीं उठी थी। उपन्यास के अनेक पात्र—पुरुष और स्त्रियाँ, दोनों के जीवन में रोमान्स की इसी भावना का अंकन किया गया है।

उपन्यास की दूसरी स्थिति जब आती है तब एक ओर सन् बयालीस के अगस्त आन्दोलन का दमन-चक्रपूर्ण सघन वातावरण भारतीय आकाश को आक्रान्त किये हुए था और दूसरी ओर महायुद्ध की प्रतिक्रिया का परिपूर्ण प्रकोप पूरे प्रवेग से देश की जनता के ऊपर टूट पड़ा था। केवल पूंजीपति और जमींदार वर्ग को छोड़कर सभी वर्ग इन दो पाटों के बीच में बुरी तरह से पिसने लगे थे। मध्यवर्ग तो इससे विशेष रूप से पीड़ित था। इस काल का सबसे बड़ा चमत्कार था नारी की मूल आत्मा का कायापलट।

---

१. इलाचन्द्र जोशी— सन्यासी,' पृष्ठ ४२०

अगस्त आन्दोलन, युद्धजनित प्रभाव, बंगाल का अकाल आदि कारणों से एक ऐसी रासायनिक प्रतिक्रिया मध्यवर्गीय भारतीय नारी की अन्तरात्मा में हुई कि उसके भीतर युगों से दबी हुई प्रचण्ड प्रतिहिंसात्मक शक्ति पूर्ण स्फूर्ति के साथ जाग उठी।

उपन्यास की अंतिम स्थिति तब आती है जब द्वितीय महायुद्ध तो समाप्त हो जाता है, किन्तु समाप्ति के साथ ही अणुबम के आविष्कार द्वारा तृतीय महायुद्ध के छायागात की सूचना भी दे जाता है। एक ओर पूर्व युगों के राजनीतिक चक्रों की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप उत्पन्न मनोवैज्ञानिक कारणों से भारतीय तरुणवर्ग हिंसावाद की ओर खिचता चला जाता है। दूसरी ओर उसी वर्ग में से तीव्र अनुभूतिशील नवयुवकों का दल आगे आता है जो अहिंसा को ही विश्वविनाशी अणुबम के प्रतिरोध के लिए चरम अस्त्र मानता है।

उपन्यास का नायक महीप उपर्युक्त तीनों परिस्थितियों से होकर गुजरता है। इस संघर्षमय जीवन के बीच वह अनेक पात्रों और पात्रियों के सम्पर्क में आता है और युगानुरूप अनेक घटनाचक्रों का सामना करता है।

उपन्यास का प्रारम्भ एक राष्ट्रीय जलसे (सम्भवतः कांग्रेस अधिवेशन) में महीप और खन्ना परिवार की नीलिमा और प्रतिमा के मिलन से होता है। महीप इलाहाबाद में होने वाले इस राष्ट्रीय जलसे में नेताओं के भाषण सुनने और उसके परिपार्श्व में राष्ट्रीय समस्या के सम्बन्ध में मन में उठी नई विचारधारा को समझने आया है। अधिवेशन में उसे पूर्व परिचित नीलिमा और प्रतिमा राष्ट्रीय लहर के साथ मानो केसरिया साड़ियों को पहनाते दीख पड़ती हैं और वह यह सोचने को बाध्य होता है कि "यह फैशन का तकाजा है, जमाने की रफ्तार है या आन्तरिक प्रेरणा है।"[1] नीलिमा और प्रतिमा नारी-जागरण की प्रतीक हैं जो समय के साथ बदल रही हैं। समय का प्रभाव महीप पर भी पड़ा है और वह प्रेमविषयक कविताएँ लिखना छोड़ कर 'भू गर्भ की आग' और 'अनल और अनिल' जैसी जीवन संघर्ष की वास्तविकता से युक्त कविताओं की रचना करने लगा। वह प्रतिभासम्पन्न है पर राष्ट्रीय भावना और देश की तत्कालीन परिस्थिति के कारण आई० सी० एस० की परीक्षा में नहीं बैठता। वह कहता है कि किसी भी भारतीय के लिए आई० सी० एस० अफसर बनने की अपेक्षा बड़ा पाप दूसरा कोई नहीं हो सकता।[2] नीलिमा के कारण वह ठाकुर साहब से परिचित होता है और उसे धीरजसिंह और शारदा के माध्यम से ठाकुर साहब के जीवन की वास्तविकता का ज्ञान होता है। शारदा उपन्यास की एक मुख्य पात्र है जिसमें राजनीतिक चेतना कूट-

१ इलाचन्द्र जोशी—'निर्वासित', पृष्ठ ६

२ इलाचन्द्र जोशी—'निर्वासित', पृष्ठ १४

कूट कर भरी है। उसमे छुटपन से ही कम्युनिस्ट क्रान्ति के प्रति सैद्धान्तिक रूप से अभिरुचि रही है। महीप से चर्चा करते समय वह भारतीय राजनीति के परिप्रेक्ष्य मे साम्यवाद का विश्लेषण करती है। उसका मत है कि 'भारत मे मजदूरो और किसानो की क्रांति कभी मच नही पावेगी और न कभी मजदूर वर्ग का 'डिक्टेटरशिप' कायम होने पायेगा। यहाँ यदि कभी वास्तविक अर्थ मे किसी वर्ग की कोई क्रांति सफल होगी तो वह होगी उस वर्ग की जिसे मार्क्स ने अत्यन्त उपेक्षा बल्कि अत्यन्त घृणा की दृष्टि से देखा है। वह वर्ग है निम्न मध्यवर्ग—पेती बूर्जवाजी।'[1] उसके अनुसार मार्क्स का यह सिद्धान्त कि मजदूरो और किसानो की महाशक्ति के भीतर मध्यवर्ग को अपने को मिटा देना होगा—भावी क्रांति के सम्बन्ध मे कतई लागू न होगा। 'डिक्टेटरशिप आफ दि प्रोलेटेरियट' के नारे का कोई अर्थ तब न रह जायगा। तब जो नारा लागू होगा वह है 'डिक्टेटरशिप आफ दी पेती बूर्जवाजी', पर वास्तव मे यह नारा बुलन्द नही किया जावेगा। 'जन साधारण का एकाधिपत्य' या इसी तरह का कोई नाम उस नयी शासन प्रणाली को दिया जावेगा।'[2] किन्तु इतना होने पर भी वह गाँधीवाद मे अटूट आस्था रखती है। सभवत उसकी मार्क्सवाद मे अनास्था व गाँधीवाद मे आस्था का कारण उसकी सम झौतावादी धारणा ही है। वह मानती है कि इस देश की दासता की जजीरो को तोडने के लिए गाँधीवाद ही एकमात्र चरम अस्त्र है, जो बहुत कुछ सफल हो चुका है और आगे चलकर और अधिक सफल होगा।[3] शारदा के माध्यम से लेखक ने भारतीय राजनीति के भावी स्वरूप पर विस्तृत विचार प्रस्तुत किये है और उपन्यास को राज नीतिक दृष्टि से पुष्ट किया है। वह भारतीय नारी के उत्पीडन की कथा कहकर सुदूर भविष्य की क्रांति मे नारी के महत्वपूर्ण योगदान की भविष्यवाणी कहती है।[4]

शारदा से राजनीतिक दीक्षा ले महीप क्रांतिकारियो के गुप्त सगठन मे सम्मिलित हो उसका सगठन करता है। महीप और उसके गुप्त सगठन को लेकर क्रांतिकारी सगठन की कार्यविधि से पाठक परिचित होता है। जैनेन्द्र के उपन्यासो की भांति ही यहाँ भी क्रांतिकारियो द्वारा सगठन के कार्यो को गुप्त रखने, सदस्यो द्वारा विशेष चिन्हो का उपयोग करने, जासूसो की नियुक्ति तथा कठोर चारित्रिक अनुशासन की पर्याप्त जानकारी मिलती है। परिस्थितिवश प्रतिभा भी इसी दल की सदस्या हो दल की एक बैठक मे भाग लेने के समय महीप से अत्यन्त नाटकीय ढग से मिलती है।

---

१ इलाचन्द्र जोशी—'निर्वासित', पृष्ठ १६१

२ इलाचन्द्र जोशी—'निर्वासित', पृष्ठ १६५

३ इलाचन्द्र जोशी—'निर्वासित', पृष्ठ १६६

४ इलाचन्द्र जोशी—'निर्वासित', पृष्ठ २०७

दल का सारा आदर्श हिंसा पर आधारित है। द्वितीय महायुद्ध समाप्त हो चुका है। महीप ने संगठित हिंसा के सिद्धान्त को इसलिए स्वीकार किया था क्योंकि तत्कालीन स्थिति में केवल हिंसक उपायों द्वारा ही भावी महाक्रांति की सफलता संभावित थी। रूस का और उस जैसे अन्य देशों का उदाहरण क्रांतिकारियों का आदर्श था।[1] किन्तु अणुबम के संहारक आविष्कार से महीप की हिंसावृत्ति की जड़ें मृत हो गईं। वह मानने लगा कि 'इस सर्वध्वंसी बम के बाद अब किसी भी हिंसक क्रांति की कोई सार्थकता नहीं रह गई।'[2] क्रांतिकारी दल की बैठक में वह इसी विषय पर अपने विचार व्यक्त करता है। वह हिंसा के स्थान पर अहिंसा की श्रेष्ठता प्रतिपादित करता है। वह कहता है—'अहिंसा परोधर्म।' विश्व के सच्चे कल्याण से प्रेरित होकर यह महावाणी एक बार भारतीय आकाश में गूंज उठी थी, आज के महानाशी युग में उसी को फिर से अपनाने की परम आवश्यकता आ पड़ी है। महात्मा गाँधी ने अहिंसात्मक युद्ध की जो आश्चर्य-जनक पद्धति खोज निकाली है उसे पूर्णतया अपनाना ही सच्ची वीरता का परिचायक है। महात्मा गाँधी की अहिंसात्मक नीति ही संसार भर की राजनीतिक तथा आर्थिक बुराइयों से लड़ने के लिए एकमात्र उपयुक्त साधन है।'[3]

क्रांतिकारी दल के सदस्य महीप की इस भावना को 'विशुद्ध कायरता' या 'नपुंसक मनोवृत्ति' मानते हैं और गाँधीवाद की अहिंसा की खिल्ली उड़ाते हैं। प्रतिमा महीप के विचारों के विरोध में हिंसा का समर्थन कर नारी की भैरवी शक्ति का आह्वान करती है। महीप वैचारिक मतभेद के कारण दल से सम्बन्ध-विच्छेद कर लेता है।

इधर नीलिमा अपने पति डॉ॰ लक्ष्मीनारायण सिंह से अपमानित होकर लखनऊ आ जाती है। महीप नीलिमा को पुनः व्यवस्थित जीवन आरम्भ करने की प्रेरणा देता है, परन्तु उसे सफलता नहीं मिलती। शारदा का पत्र पाकर वह उस स्थल पर पहुँचता है, जहाँ पर रात्रि को ठाकुर साहब के मकान में आग लगा दी जाती है। यहीं प्रतिमा और शारदा का विद्रोहात्मक रूप दिखलाई पड़ता है। महीप ठाकुर साहब की असहाय अवस्था में सहायता करते समय घायल कर दिया जाता है और ठाकुर साहब के कहने पर पुलिस द्वारा दोषी ठहराकर जेल भेज दिया जाता है। कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल की स्थापना से कैदियों को रिहाई मिलती है, पर इसके पूर्व ही जेल में महीप की मृत्यु हो जाती है।

---

१ इलाचन्द्र जोशी—'निर्वासित', पृष्ठ ३३५
२ इलाचन्द्र जोशी—'निर्वासित', पृष्ठ ३३७
३ इलाचन्द्र जोशी—'निर्वासित', पृष्ठ २४२

राजनीतिक चेतना के कारण 'निर्वासित' इलाचन्द्र जोशी के पूर्ववर्ती उपन्यासो से भिन्न है। पूर्ववर्ती उपन्यासो के सदृश ही इसमे भी महीप के असाधारण व्यक्तित्व को लेकर उसके उद्घाटन के हेतु से कथा-योजना होने पर भी उपन्यास का आशय और कथानक राजनीतिक संस्पर्श पाकर कुछ विशिष्ट बन गया है। महीप के अतिरिक्त शारदा देवी और प्रतिमा ऐसे पात्र हैं जो कथानक मे तत्वो की सृष्टि करते है। शारदा देवी का चरित्र विद्रोहाग्नि का पु ज है। महीप के शब्दो मे वह स्वय क्रांतिकारिणी है और अपने जीवनव्यापी निर्यातनो से सबक सीखकर सक्रिय रूप से क्रांति की मशाल जलाने के अवसर की प्रतिक्षा मे बैठी है।[1] क्रांतिकारी विचारधारा के कारण ही वह प्रतिमा के साथ दल के निर्माण मे सहायक होती है और ठाकुर साहब के मकान मे आग लगाने में सहयोगिनी होती है। प्रतिमा के चरित्र की विशेषता है उसकी निर्द्वन्द्वता। क्रांतिकारी दल की सदस्या के रूप मे भी वह अत्यन्त प्रखर है। प्रतिहिंसा की भावना के कारण ही वह ठाकुर साहब के मकान मे आग लगा देती है। वस्तुत उसकी यह भावना शोषक के विनाश की प्रतीक है। वह कर्मण्य है और इसीलिए आकर्षक भी।

ठाकुर लक्ष्मीनारायण शोषक वर्ग के प्रतिनिधि पात्र है और अपने वर्ग के समस्त गुण विशेष से युक्त हैं। यह ठीक कहा गया है कि 'शोषक वर्ग की सम्पूर्ण प्रवृत्तियो का केन्द्रीकरण ठाकुर लक्ष्मीनारायण मे मिलता है।'[2] शारदा देवी, प्रतिमा आदि पात्र ठाकुर साहब के विनाश की योजना बनाकर नवीन सामाजिक व्यवस्था को दिशा-निर्देश देने का प्रयत्न करते हैं किन्तु उनका यह विद्रोह भाव समाज के रार्जनात्मक पक्ष के ही समर्थन मे है। शोषित वर्ग के पात्रो की सृष्टि कर सर्वहारा वर्ग की असतोषमय स्थिति को अभिव्यक्ति देने का प्रयास किया गया है। शारदा देवी के विद्रोह मे शोषित और सर्वहारा का सघर्ष तत्कालीन राजनीतिक जागृति का सूचक है जो बाद मे अन्य समसामयिक उपन्यासकारो द्वारा ग्रहण किया गया।

इतना होने पर भी राजनीतिक विचार मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के कारण सकुचित हो उठे है। फिर भी इस तथ्य से इकार नही किया जा सकता कि 'मनोवैज्ञानिक तथ्य के समन्वय के साथ राजनीतिक विचारो का समावेश इस उपन्यास मे मिलता है जो अभी तक के व्यक्तिपरक उपन्यासो मे नही था।'[3]

---

१. इलाचन्द्र जोशी—'निर्वासित', पृष्ठ ३३१

२. बलभद्र तिवारी—'इलाचन्द्र जोशी के उपन्यास,' पृष्ठ १२७

३ बलभद्र तिवारी—'इलाचन्द्र जोशी के उपन्यास,' पृष्ठ १२९

मुक्तिपथ

'मुक्तिपथ' में अन्य उपन्यासों की अपेक्षा राजनीतिक पक्ष अधिक सुगठित है। उपन्यास का नायक है राजीव जो पुराना क्रांतिकारी है और स्वाधीन भारत में बेकार है। वह वर्तमान समाज व्यवस्था से विक्षुब्ध है और अशान्त भी। बेकारी की ऐसी स्थिति में वह उमाप्रसाद जी के यहाँ आश्रय लेता है। यहाँ उसकी भेंट सुनन्दा से होती है जो बाल विधवा है और रिश्तेदार न होने पर भी पारिवारिक सहायता हेतु उनके यहाँ रहती है। सुनन्दा के सम्पर्क में आकर राजीव के हृदय में उसके लिए सहज स्नेह हो उठता है। उमाप्रसाद की पत्नी परम्परागत संस्कारों के कारण राजीव व सुनन्दा की घनिष्टता को पापमय मानकर उसे ताने देते रहती है जिससे सुनन्दा के जीवन में अशांति उत्पन्न हो जाती है। उमाप्रसाद जी की लड़की है प्रमिला जो राजीव व सुनन्दा के स्नेह-सम्बन्ध से परिचित है। वह सुनन्दा को प्रेरणा देकर उसकी भावनाओं को सचारित करती है। इधर राजीव भी उसे नारी की जीवनदायिनी शक्ति से परिचित करा उसे विराट विश्व में अपने शक्ति सचरण के लिए प्रेरित करता है। प्रमिला के कारण दोनों एक साथ रहने लगते हैं और जीवन से सघर्ष करते हुए नव निर्माण संघ स्थापित करते हैं। क्रांतिकारी राजीव की आदर्श भावना लोप नहीं हुई है और इसी कारण वह नारी की उपेक्षा करने लगता है। अतृप्त कामनाओं से घुटी सुनन्दा संघ से पृथक हो जाती है और राजीव से कहती है आदर्श कितना ही उच्च क्यों न हो, मानव के अन्तर्जगत की सुकुमार भावनाओं की उपेक्षा उचित नहीं।

राजनीतिक पृष्ठभूमि न होने पर भी प्रस्तुत उपन्यास में दो परस्पर विरोधी विचारधाराओं का स्पष्टीकरण मिलता है। राजीव के क्रांतिकारी जीवन का कर्तृत्व स्पष्ट न होने पर भी वह जैसा है प्रगतिवादी दृष्टिकोण के अनुरूप है। 'वह सामूहिक चेतना का प्रतीक है, जिसे उदबुद्ध करने और साकार बनाने के लिए व्यक्तित्व को अपने निजी सुख दुःख की आहुति देनी पड़ती है। वह श्रम द्वारा मानव की मुक्ति के लिए प्रयत्नशील है। दूसरी ओर सुनन्दा व्यक्ति को समाज का केन्द्र बिन्दु मानती है। सामूहिक विकास एवं कल्याण के लिए वह व्यक्ति की स्वतन्त्र सत्ता को स्वीकार करती है। वह जीवन को श्रम और विश्राम का केन्द्र-स्थल मानती है।'

राजीव से जागृति का अमोघ सन्देश ले वह उमाप्रसाद जी के घर का परित्याग कर राजीव के साथ रहने आती है। वह राजीव की सहयोगिनी के रूप में कार्य करती है। किन्तु यहाँ भी उसे विश्राम नहीं मिलता। वह नारी स्वतन्त्रता के महत्व पर विचार करती है। राजीव के साथ लखनऊ के निकट शरणार्थी शिविर में 'मुक्ति निकेत' की स्थापना में सक्रिय सहयोग देती है। 'मुक्ति निकेत' ही मुक्तिपथ का प्रतीक है।

किन्तु ढाई वर्षों तक साथ रहने पर भी स्नेह सूत्र सुदृढ़ नहीं हो पाता और मुक्ति निवेश के जीवन को भ्रम समझ कर सुनन्दा उसे छोड़ मुक्तिपथ की खोज में आगे बढ़ती है। राजीव अपनी भूल को स्वीकार कर सुनन्दा को रोकने का प्रयत्न करता है पर असफल रहता है।

राजीव एक ऐसा स्वस्थ और प्रेरणायुक्त क्रान्तिकारी पात्र है जो राजनीतिक हिन्दी उपन्यास साहित्य में अत्यन्त विरल है। उसकी सक्रियता का आधार जनकल्याण की उत्कट भावना है जिसकी वह साधना करता है। वह सामूहिक श्रम का प्रतिनिधित्व करने वाला आदर्श पात्र है जो अपनी आदर्शवादिता में मोह ममता को भी स्थान नहीं देना चाहता। सुनन्दा से विच्छेद दिखाकर लेखक ने उसके कोरे आदर्शवाद पर आघात किया है। नायक और नायिका मानसिक स्वास्थ्य लाभ करते हुए समाज के विकास हेतु 'सम श्रम साधना' के आधार पर जिस निवेश की स्थापना करते हैं वह सर्वोदय की नीति के सन्निकट है। इसी कारण पात्रों की मनोवृत्ति समाज की बुराइयों की ओर न जाकर उसके विकास में लगती है। सामाजिक उत्कर्ष में नारी-स्वातन्त्र्य को समुचित स्थान देने की भावना भी सम्पूर्ण वातावरण में व्याप्त है।

राजनीतिक घटनाएं

राजीव क्रान्तिकारी रह चुका है अतः स्मृति द्वारा वह अपने क्रान्तिकारी जीवन की घटनाओं का स्मरण करता है। इस प्रसंग में जबलपुर के निकट क्रान्तिकारी राजीव और खुफिया पुलिस के संघर्ष का जो विस्तृत विवरण दिया गया है वह काल्पनिक ही प्रतीत होता है। अवास्तविक घटना होने पर भी क्रान्तिकारी जीवन की कार्यविधि से इसका साम्य है।

युवक राजीव लाला लाजपतराय की मृत्यु से प्रेरणा पाकर क्रान्तिकारी दल का सदस्य बनता है। (और भगतसिंह आदि क्रान्तिकारियों के लिए यह सत्य भी है।) 'उसके सामने एक निश्चित उद्देश्य और आदर्श था। दलित और अपमानित देश माता की मर्मविदारक गुहार उसके मन से होकर उसकी अन्तरात्मा तक पहुँच चुकी थी। जबसे उसने सुना कि लाला लाजपतराय की मृत्यु में निरंकुश शासनाधिकारियों का कितना बड़ा हाथ है तब से यह और अधिक विचलित हो उठा।[1] वह क्रान्तिकारी दल में शामिल हो जबलपुर शस्त्रागार पर धावा मारने की योजना में भाग लेता है। इस प्रसंग पर पुलिस के साथ मुठभेड़ होने पर वह जबलपुर से भाग निकलता है पर एक वर्ष बाद लाहौर में एक नये चक्कर में पकड़ा जाकर काले पानी की सजा पाता है।

---

१. इलाचन्द्र जोशी – 'मुक्तिपथ,' पृष्ठ, २२

लाला लाजपतराय की मृत्यु नवम्बर १९२८ को हुई थी। अतः यदि मान लिया जाय कि राजीव १९२९ में क्रान्तिकारी दल में आया तो जबलपुर शस्त्रागार लूटने की योजना १९२९ या १९३० में होना चाहिए। किन्तु इतिहास में ऐसी कोई घटना का उल्लेख नहीं मिलता। जबलपुर से राजीव को १९३० या १९३१ में लाहौर जाना चाहिये किन्तु १९३१ में लाहौर में भी ऐसी घटना नहीं हुई जिसमें किसी कैदी को आजन्म कारावास का दण्ड मिला हो। अतः दोनों घटनाएँ वास्तविक नहीं है और भ्रम उत्पन्न करती हैं। थोड़ी सी सतर्कता से लेखक इस असंगति को बचा सकता था। राजीव जेल से जब छूटकर आता है तब 'उसने युद्ध से ध्वस्त, अभावग्रस्त, सर्वव्यापी नैतिक पतन और भ्रष्टाचारिता के रोग के शिकार मानव जीवन का जो रूप देखा,'[1] वह युद्धजनित स्थिति का परिणाम था। इससे निष्कर्ष निकलता है कि राजीव १९४५ के निकट छूटा और छूटते वक्त उसकी आयु ३४ थी। इस तरह वह २० वर्ष की आयु में क्रान्तिकारी दल में प्रविष्ट हुआ था।

आतंकवादियों के लिए उसके हृदय में उच्च भावना है किन्तु इसके बावजूद भी समय के परिवर्तन के साथ वह यह स्वीकार करता है—मेरा पिछला जीवन कृच्छ्र साधना में ही बीता है। देश को अत्याचारी साम्राज्यवादी शक्ति से मुक्त करने का जो तरीका क्रांतिकारियों ने अपनी छिटपुट हिंसात्मक कार्यवाइयों द्वारा अपनाया था उसकी कोई उपयोगिता न तो *व्यावहारिकता की दृष्टि से थी न आदर्श की दृष्टि से ही।* आज देश जो स्वतन्त्र हुआ है यदि वह सचमुच में स्वतन्त्र हुआ है तो वह हमारे दल की क्रान्तिकारी कार्यवाइयों के फलस्वरूप नहीं, बल्कि दूसरे ही कारणों से। उन 'दूसरे' कारणों में एक तो निश्चय ही गांधी जी द्वारा जगाई गई व्यापक और संगठित राष्ट्रीय चेतना थी।'[2]

किन्तु वह यह भी मानता है कि तब तक इन हिंसात्मक कार्यवाइयों का अन्त नहीं होगा 'जब तक आज के संसार की अत्यन्त संकीर्ण रूप से भौतिक और भ्रष्टाचारी मनोवृत्ति में परिवर्तन नहीं होता, जब तक विश्व-समाज का कोई वर्ग अधिकाधिक अर्थ संचय के निरर्थक प्रलोभन के दलदल में स्वयं फँसते चले जाने और अपने साथ दूसरों को भी उस कभी अन्त न होने वाले अतल में घसीटते रहने के चक्कर में पड़ा रहेगा', जब तक सम्मिलित राजनीतिक और आर्थिक कारणों की चक्की में जन साधारण को पिसते रहने के लिए बाध्य किया जायगा' और उसकी व्यापक मुक्ति के, सभी वर्गों के साथ उन्हें समान स्तर पर लाने के प्रयत्नों में रुकावटें आती रहेंगी, जब तक राष्ट्र अपने संकीर्ण स्वार्थों के लिए दूसरे राष्ट्रों को धप्पनबाजी के चक्कर में डालने और धोखा देने

१ इलाचन्द्र जोशी – 'मुक्तिपथ,' पृष्ठ १०८

२. इलाचन्द्र जोशी–'मुक्तिपथ,' पृष्ठ ११०

मे ही राष्ट्रीय या अन्तर्राष्ट्रीय 'आदर्श' की महान पूर्ति समझेगा, तब तक ससार मे सामूहिक हिंसा के सगठित प्रयत्नो का अत हो जाना सभव नही है।'[1]

सर्वोदय समन्वित सामूहिक सम-श्रम भावना

मनुष्य की मुक्ति का पथ वह सम-श्रम भावना मे देखता है और प्रयोगात्मक रूप से 'मुक्ति निवेश' की स्थापना करता है। उसका मत है कि 'मानवीय विकास का स्वाभाविक रूप है सबकी समचेतना सबके सम-योग, सबके सम-उद्योग, सबके सम अधिकार और सबकी समशक्तियो के सम सामूहिक विकास द्वारा सम-कल्याण की चरमतम परिस्थिति की ओर सबकी सम प्रगति।'[2]

यह उस सगठित श्रम-शक्ति से सभव है जो निर्माणात्मक ध्येय को लेकर चले।[3] इसके लिए वह अहिंसा को अनिवार्य मानता है। वह कहता है-'महात्मा गाँधी अहिंसात्मक असहयोग का जो अस्त्र हम दे गये हैं उसको व्यापक और विकसित रूप देने की आवश्यकता है।'

श्रम की महत्ता राजीव और सुनन्दा दोनो स्वीकार करते है। परन्तु सुनन्दा पार्थिव जीवन के साथ भाव-जीवन के विकास को आवश्यक निरूपित करती है। सुनन्दा को सामूहिक सम श्रम के आदर्श पर पूर्ण विश्वास तथा आतरिक श्रद्धा है। पर व्यक्ति का पूर्णतया समूह मे खप जाना उसे स्वीकार नही। इसीलिए वह राजीव से कहती है कि 'आप यदि कोई विश्व-योजना चाहते है जो सम-श्रम द्वारा सच्चे अर्थो मे सम कल्याण और स्थायी शाति की स्थापना मे सफल हो तो बाहर के पार्थिव जीवन के विकास के साथ भीतर के भाव-जीवन के विकास की ओर भी उतना ही सचेष्ट रहे।'[4] आप श्रम, केवल श्रम, और उसके द्वारा मुक्ति, केवल मुक्ति चाहते हैं। मैं जीवन मे श्रम भी चाहती हू और विश्राम भी, मुक्ति भी चाहती हू और बन्धन भी।'[5] इसीलिए सुनन्दा ने राजीव का साथ भी दिया था।

अन्य राजनीतिक वातावरण

उपन्यास मे एक अन्य पात्र है विजय जिसके चारित्रिक विकास को दिखाने के

---

१ इलाचन्द्र जोशी–'मुक्तिपथ,' पृष्ठ १११
२ इलाचन्द्र जोशी–'मुक्तिपथ' पृष्ठ २७६
३. इलाचन्द्र जोशी–'मुक्तिपथ' पृष्ठ २७८
४ इलाचन्द्र जोशी–'मुक्तिपथ' पृष्ठ ३२२
५ इलाचन्द्र जोशी–'मुक्तिपथ' पृष्ठ ३२३

प्रसग मे तात्कालिक राजनीतिक स्थितियों को स्पष्ट किया गया है। विजय 'स्वार्थो' के प्रति क्षिप्र, राजनीतिक एव अवसरवादी आधुनिक मनुष्य का प्रतिनिधि है।'[1] स्वतन्त्र भारत मे वह सेक्रेटेरियट में डिप्टी सेक्रेटरी है। सन् '३० के असहयोग आन्दोलन मे वह १४४ धारा तोडने के अपराध मे जब जेल गया तो सोलह-सत्रह वर्ष का था। वह कोई क्रातिकारी कदम नहीं उठाता और आड लेता है कि 'जेल जाने को गाँधी जी ने राष्ट्रीय असतोष की भावना को व्यक्त करने का केवल एक प्रतीक माना था। हम लोग केवल उसी प्रतीक का प्रदर्शन कर रहे थे।'[2] सन् ३० मे विजय कालेज छोड कर सहज साध्य द्वार से जेल गया। एक माह की सजा भी वह 'बी क्लास' मे काट सार्टीफिकेट प्राप्त पक्का कांग्रेसी हो गया। तब से वह राजनीतिक चक्रो मे अपने विशेष ढग से भाग लेता रहा। आदोलन के शात होने पर वह पुन विद्याध्ययन कर अर्थशास्त्र मे डाक्टरेट लेता है और सन् ३७ मे कायेम सरकार की स्थापना पर ऊँचे सरकारी पद पर नियुक्त हो जाता है। मत्रिमडल भग होने पर वह पुन बेकार हो गया किन्तु शासकीय पद पर रहते हुए उसने अच्छी रकम पैदा कर ली थी और उसे ऐसे व्यवसाय मे लगा दिया था जिसमे घाटा की सभावना ही न थी। बयालीस की क्राति मे वह धर्म-सकट मे पड गया। सरकार के कठोर दमन-चक्र को देख कर वह सेवा का नया रास्ता निकालता है—नजरबन्द क्रातिकारियो के परिवार के सदस्यो की सहायता हेतु चन्दा करना। इसमें वह पकडा जाता है और 'ए क्लास' मे आलस्यमय जीवन व्यतीत करता है। दो माह मे ही वह छूट जाता है—एक ढग से माफी सी माग कर। युद्ध-समाप्ति पर कांग्रेसी नेताओ के छूटने पर पुन सामने आकर कांग्रेसी प्रचार मे जुट जाता है और स्वाधीन भारत मे उच्च स्थान प्राप्त कर लेता है।

इस तरह विजय के माध्यम से उन कांग्रेसी लोगों की मनोवृत्ति और कार्यविधि पर प्रकाश डाला गया है जो राजनीति को 'लक्ष्य की सिद्धि का साधन' मानते है।

विजय के चरित्र-चित्रण के विकास के सन्दर्भ मे सन् ३० के सत्याग्रह आन्दोलन का विवरण सक्षेप मे दिया गया है।[3]

उपन्यास मे स्वाधीन भारत मे बेकारी की समस्या और अग्रेज भक्त व्यक्तियो की स्थिति का भी पता चलता है। राजीव की मूल समस्या प्रारम्भ मे बेकारी की है। देशभक्त राजीव को कोई काम नहीं मिलता। दूसरे क्रांतिकारी बनर्जी को भी हम दयनीय स्थिति मे काम करते हुए पाते हैं। इसके विपरीत है उमाप्रसाद जो 'जो अग्रेजी

---

१ बलभद्र तिवारी—'इलाचन्द्र जोशी के उपन्यास,' पृष्ठ १३८
२ इलाचन्द्र जोशी—'मुक्तिपथ,' पृष्ठ ७३
३. इलाचन्द्र जोशी—'मुक्तिपथ,' पृष्ठ ८१

शासन-काल में एक उच्च अधिकारी रह चुके थे, और अब कांग्रेसी राज स्थापित होने पर भी अपने उसी उच्च बल्कि उच्चतर पद पर कायम थे।[1]

जिप्सी

इलाचन्द्र जोशी के 'जिप्सी' में समाज-कल्याण की भावना को लेकर जो राजनीतिक दृष्टिकोण उभरा है वह मार्क्सवाद और सर्वोदय का समन्वित रूप कहा जा सकता है। उपन्यास के पात्र क्रांति और नीति की भावना से संचालित हैं और सांस्कृतिक चेतना के महत्व को प्रस्थापित करते हैं।

'जिप्सी' में एक राजनीतिक कथा सूत्र का अभाव है। वस्तुत इसमें तीन कथाएं हैं और उन नायक के द्वारा उनमें एकसूत्रता लाने का प्रयास किया गया है। इसमें शोभना और बीरेन्द्र की कथा में राजनीतिक अंश है। यह कथा पक्ष कलकत्ता से सम्बद्ध है। जिप्सी पत्नी मनिया के गर्भवती होने पर नायक नृपेन्द्र रंजन उसे लेकर कलकत्ता पहुँचता है और वहां उसकी भेंट बाल्यसखा बीरेन्द्र से होती है। बीरेन्द्र और नृपेन्द्र कालेज में भी साथ साथ पढ़े हुए हैं। नृपेन्द्र को बीरेन्द्र घर ले जाता है और वह मनिया के साथ वहीं रहने लगता है। बीरेन्द्र एक राजनीतिक पात्र है और क्रांतिकारी दल और उसके कार्यों से सक्रिय रूप से सम्बद्ध है। वह पार्टी के कार्यों से कई दिनों तक घर के बाहर रहता है और नृपेन्द्र का उसकी पत्नी शोभना से सम्पर्क होता है। एक घटना में मनिया का चेहरा विकृत हो जाता है और वह एक बच्चे को जन्म देती है जिसका नाम मोहन रखा जाता है। मोहन की मृत्यु आठ महीने की अल्पायु में हो जाती है और मुनिया बीरेन्द्र के क्रांतिकारी दल की सदस्या हो जाती है। शोभना और नृपेन्द्र हुगली में वायु-परिवर्तन को जाते हैं और शशांक बाबू से परिचित हो उनके सेवादल में शामिल हो जाते हैं। नृपेन्द्र सेवादल की मणिमाला अथवा मंजुला के प्रति आकर्षित होता है और सेवादल के कार्य समाप्त होने पर रोक लेता है। मंजुला के कहने पर वह सम्पत्ति का एक हिस्सा कन्हाई लाल को देने को प्रस्तुत हो जाता है। कन्हाई भी एक राजनीतिक पात्र है पर उसका चरित्र सक्रिय रूप में नहीं आकर पात्रों के माध्यम से ही चित्रित हुआ है। वह मार्क्सवादी दृष्टिकोण से प्रभावित पात्र है। नृपेन्द्र मंजुला के द्वारा कन्हाई लाल और उसके 'जन संस्कृति समन्वय केन्द्र' के सम्पर्क में आता है और उससे प्रभावित हो अपनी समस्त सम्पत्ति केन्द्र के नाम कर देता है। इसी समय उसे ज्ञात होता है कि मंजुला ही मनिया है जो फादर जेरेमिया के साथ अमरिका जाकर प्लास्टिक सर्जरी से रूपपरिवर्तन करवा आती है।

---

१. इलाचन्द्र जोशी—'मुक्तिपथ,' पृष्ठ १३

स्थूल रूप से हम कह सकते है कि नृपेन्द्र रंजन और मनिया की उद्भावना से सम्पत्ति और श्रम के संघर्ष का चित्रण ही उपन्यास का मूल ध्येय है। सम्पत्ति वर्ग-भेद का कारण अवश्य है किन्तु उसका अभाव उसके सन्निकट रहने पर ही होता है। मनिया कहती है—'तुम्हारे पास आने के पहले तक मैं समझती थी कि सुबह-शाम का खाना जुटाने के लिए गरीबों को जो परेशानी उठानी पड़ती है वह कोई दुःख की बात नहीं, बल्कि सुख की ही बात है, और अगर उस परेशानी में आदमी उलझा ही न रहे तो जीना ही दूभर हो जाए। मेरे मन में कोई खटका नहीं था, पैसे वालों से कोई डाह नहीं था। पर तुम्हारे पास आने के बाद ही मुझे पहली बार मालूम हुआ कि आराम क्या चीज है और यह भी मैंने जाना कि इसके पहले दिन में कैसे कष्ट में बिता रही थी।'[1] इस भावना के जाग्रत होने पर वह नृपेन्द्ररंजन के प्रति आश्वस्त नहीं हो पाती। कहा जा सकता है कि रंजन के मूल संस्कारों से अपने वर्गगत संस्कारों में विभेद की मानसिक सृष्टि कर मनिया हृदय से उसकी नहीं हो पाती। सामन्तवर्ग के पात्र होने पर भी नृपेन्द्र और वीरेन्द्र मानवतावादी हैं। इनमें वीरेन्द्र का व्यक्तित्व अधिक सबल है। वह जनता में आर्थिक और सांस्कृतिक प्रगति का समर्थक है। उस पर मार्क्सवाद का प्रभाव है, वह क्रांति के लिए क्रांति चाहता है और इसके लिए आत्मबलिदान तक कर देता है। जन्मना सामन्तवादी होने पर भी वह सर्वहारा के कल्याण के लिए जूझता है। मनिया श्रमिक वर्ग की है और धर्म की अन्ध परम्परा से ऊपर उठ कर जन कल्याण को ही अपना धर्म स्वीकार क्रांतिकारी दल की सदस्या हो परिवर्तित रूप में अपने पति नृपेन्द्र से अर्थ-प्राप्ति की संयोजना करती है। कर्मण्यता और जन-कल्याण उसके जीवन का ध्येय है।

संक्षेप में 'जिप्सी' में 'जन संस्कृति समुदाय' की स्थापना पर जोर दिया गया है जो मानव-समता पर आस्था रखता है। इसके लिए विभिन्न मत मतान्तरों की व्याख्या करते हुए सर्वोदय या लोक-कल्याण की भावना पर जोर दिया गया है जो प्रशन मार्क्सवाद से प्रभावित होते हुए भी भारतीय संस्कृति से अलग नहीं है। यह ठीक ही कहा गया है कि 'जोशी का जिप्सी उन उपन्यासों में से है जिन्हें वास्तव में नवीन युग की जागरूक चेतना का प्रतीक कहा जायगा। आज अणुबम की खोज और उसकी विनाशकारी लीला से मानवता त्राहि त्राहि कर उठी है। सारे संसार में भौतिकता का एक ऐसा आतंक छा गया है कि इधर बीसवीं शती में प्रत्येक व्यक्ति में केवल भय का भाव ही प्रमुख है। हर्ष की बात तो यह है कि बीसवीं शती के अधिकतर मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की भाँति चेतना के नाम पर मनोराज्य की एकांत तथा आबद्ध धारा में कराहती हुई नैतिक पतन की विवशतामयी पीड़ा के प्रदर्शन से यह उपन्यास मुक्त है।'[2]

---

१ इलाचन्द्र जोशी—'जिप्सी', पृष्ठ १०६

२ आलोचना, संख्या ११, पृष्ठ ६१

अज्ञेय कृत 'शेखर : एक जीवनी' का राजनीतिक स्वरूप

अज्ञेय का बहुचर्चित उपन्यास 'शेखर : एक जीवनी' अंशतः राजनीतिक उपन्यास है जिसमें एक नयी जीवन-दृष्टि और शैलिक गरिमा का सराहनीय समन्वय है। इसमें एक क्रांतिकारी के आत्मानुभूत जीवन तथ्यों का दो भागों में अंकन किया गया है। शेखर उपन्यास का नायक है। उसे मृत्युदण्ड की सजा हो चुकी है और जो मृत्यु की छाया में बैठा हुआ स्मृत्यालोक में अपने विगत जीवन का प्रत्यालोचन करता है। शेखर एक ऐसा क्रांतिकारी है जिसे अपने कृत्यों के लिए मृत्युदंड मिला किन्तु इतने पर भी उसका क्रांतिकारी स्वरूप अत्यन्त धूमिल है। प्रथम भाग में तो उसके क्रांतिपरक जीवन के कुछ चिन्ह ही उभर सके हैं और वे भी स्पष्ट नहीं जैसे 'आउट ऑफ फोकस'। प्रारम्भ में वह अपने बाल जीवन की छोटी छोटी घटनाओं का वर्णन करता है और उससे वस्तुओं के वास्तविक स्वरूप को जानने की तीव्र जिज्ञासा का ज्ञान होता है। लेखक ने बाल जीवन की घटनाओं के द्वारा बाल-मनोवृत्ति का अच्छा वैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत किया है। इसी भाग में शेखर के स्कूली जीवन का रूप भी वर्णित है जिसमें वह अछूतों के प्रति होने वाले अत्याचारों से दुखित हो उनकी सेवा की ओर उन्मुख हो अछूत बच्चों के लिए रात्रि पाठशाला की आयोजना करता है, जहाँ उसकी मानवता के कोमल अंश के दर्शन होते हैं। प्रथम खंड में बाल्यकाल की प्रतिक्रियाएँ शेखर के व्यक्तित्व-निर्माण के बीज रूप में आई हैं। उसके बाल्यकाल की अन्तर्वृत्ति आगे चलकर विद्रोह-वृत्ति में परिणत हो जीवन के विविध धरातलों पर प्रस्फुटित होती है। भय उसके पास नहीं फटकता। वह कहता है—'डर डरने से होता है। संसार की सब भयानक वस्तुएँ है, केवल एक घास-फूस से भरा निर्जीव चाम, जिससे डरना मूर्खता है।[1] प्रेम ने मनुष्य को मनुष्य बनाया। भय ने उसे समाज का रूप दिया। अहंकार ने उसे राष्ट्र में संगठित कर दिया।[2]

प्रथम भाग में बाल्य जीवन की जीवन-रेखाओं के कारण राजनीतिक सम्पर्श कम है, किन्तु समसामयिक राजनीति से प्रभावित राष्ट्रीय जीवन की हलकी सी छाप पड़ ही गई है। प्रथम महायुद्धकालीन भारतीय स्थिति[3], पंजाब में दंगा-फसाद और परिणामस्वरूप गोलीकांड,[4] असहयोग आन्दोलन और आंग्ल शासन के अत्याचारों के अस्पष्ट संकेत यत्र-तत्र देखे जा सकते हैं। विदेशी मात्र के प्रति उसकी घृणा प्रबल है।[5]

---

१ अज्ञेय—'शेखर : एक जीवनी', पृष्ठ ५७
२ अज्ञेय—'शेखर : एक जीवनी', पृष्ठ ५८
३ अज्ञेय—'शेखर : एक जीवनी', पृष्ठ ८९
४ अज्ञेय—'शेखर : एक जीवनी', पृष्ठ ९२
५ अज्ञेय—'शेखर : एक जीवनी', पृष्ठ १३०

गांधी के महान व्यक्तित्व से भी वह आकर्षित होता है। इसी प्रेरणा से वह एक नाटक लिखता है। इसका आरम्भ रहता है—'एक स्वाधीन, लोकतंत्र भारत का विराट स्वप्न, जिसके राष्ट्रपति गांधी है, और सिद्धि के लिए साधन है अनवरत कताई और बुनाई, विदेशी माल और मनुष्य का परित्याग और प्रत्येक अवसर पर दूसरा गाल आगे कर देना।' वह बाधाहीन भारत का चित्र देखते हैं।[1] 'गांधी का बोल बाला! दुश्मन का हो मुंह काला' जैसे नारे उसे आकर्षित करते हैं। और असहयोग आन्दोलन से प्रेरणा पा वह घर के विदेशी कपड़ों में आग लगाने से नहीं चूकता।[2] नौकरशाही का दंभ उसे मर्माहत करता है और अंग्रेज बैरिस्टर की अहम्मन्यता के विरोध में वह आत्मतोष मानता है।[3]

जीवन की सक्रिय अवस्था में शेखर कांग्रेस और क्रांतिकारी दोनों आन्दोलनों में भाग लेता है। उसमें युग की अनेक स्थितियों यथा जातिगत वैषम्य, हिंसा-अहिंसा, स्त्रियों की समाजगत स्थिति तथा अन्य सामाजिक-राजनीतिक परिस्थितियों का सांकेतिक निरूपण अवश्य है पर वे जीवन्त नहीं हैं। सदाशिव और राघवन के साथ वह हिंसा अहिंसा पर विचार करता है। उसके मन में 'हिंसा वहाँ है जहाँ प्रेरणा हिंसा की है, जहाँ अनिष्ट करने की चेष्टा है। इष्ट के लिए की हुई हत्या हिंसा नहीं, बशर्ते कि वह इष्ट व्यक्ति का नहीं, सृष्टि मात्र का है।[4] इसीलिए गोराशाही का विरोध करने की दृष्टि से वह एक अंग्रेज सहयात्री को पीट देता है।[5]

'शेखर : एक जीवनी' के दूसरे भाग में अधिक व्यापकता है और इसीलिए तीव्रता भी प्रथम भाग से कम है। शेखर अब एम० ए० का छात्र है और राष्ट्रीय कांग्रेस के अधिवेशन (सम्भवत: १९३० में लाहौर अधिवेशन) में स्वयं सेवक के रूप में भाग लेता है। शिविर का जो विवरण उसने दिया है वह कांग्रेस संगठन के नेताओं के चरित्र और उनकी विचारधारा पर अच्छा प्रकाश डालता है। सी० आई० डी० इन्स्पेक्टर की गतिविधियां जब असह्य हो उठती हैं तो स्वयंसेवक उसे पीट देते हैं। यह मामला जब नेताओं के सामने आता है तो एक नेता कहते हैं—'दो आदमियों को ऐसे बेइज्जत करना और पीड़ा पहुँचाना हिंसा है। हमारी वालंटियर सेना अहिंसक है।' प्रत्येक क्षेत्र के प्रत्येक कार्य में कांग्रेस समझौतावादी दृष्टिकोण से संचालित है। सेनापति का कथन

---

१ अज्ञेय—'शेखर : एक जीवनी', (प्रथम भाग), पृष्ठ १२२
२ अज्ञेय—'शेखर : एक जीवनी', (प्रथम भाग), पृष्ठ १२१
३ अज्ञेय—'शेखर : एक जीवनी', (प्रथम भाग), पृष्ठ १३०
४ अज्ञेय—'शेखर : एक जीवनी', (प्रथम भाग), पृष्ठ २१८
५ अज्ञेय—'शेखर : एक जीवनी', (प्रथम भाग), पृष्ठ २२२-२२३

है जैसे तरह भिन्न-भिन्न कर बरतना है। किसी को नाराज करने का क्या फायदा
दुलारा ही तो करना है ? शेखर को नेताओं की यह मनोवृत्ति छिछली लगती है।
वे कहता है 'यदि ऐसे भी नेता होंगे तो और नेता पाकर हम क्या करेंगे ? रोज
सुनने में आता है कि नेता रहे हैं नेता नहीं हैं ऐसे नेताओं के बोझ से तो समाज
कुचल ही जायेगा, उठेगा कैसे जो ऊपर से लादा जायेगा वह भार ही होगा, भार
वाहक कैसे होगा ?[2]

तथाकथित नेताओं पर उसे ग्लानि होती है और जननायक की आवश्यकता
और उसके अभाव का अनुभव होता है। वह कहता है—'मुक्ति स्वराज्य, स्वतन्त्रता -
कितने सुन्दर शब्द! किन्तु कहाँ है इनके पनपने के लिए उर्वरा और खाद युक्त मिट्टी—
जनता, कहाँ है वह मिट्टी मे ही रासायनिक क्रियाओ मे बनी हुई खाद—जनता का
अपना जननायक।[3]

उसे ऐसे नेताओ के नेतृत्व से घृणा हो जाती है। सी० आई० डी० के साथ
हुई मारपीट मे शेखर पाँच अन्य स्वयसेवको के साथ बन्दी कर लिया जाता है। बन्दी
के रूप मे वह नारकीय जेल-जीवन को निकट से देखता है। जेल मे उसके सामने एक
नई दुनिया ही खोल दी। उसका साथी है विद्याभूषण जो कहता है हमे देश के आत्मा
भिमान की रक्षा के लिए एक ऐसा सगठन बनाना चाहिए जो सरकारी अफसरों और
शासको का दिमाग दुरुस्त रखे।[4] वह मानता है आत्महिंसा सबसे बड़ी हिंसा है,
क्योंकि वह राष्ट्रीय अभिमान की राष्ट्र की रीढ़ तोड़ डालती है।' आदर्शों की रक्षा के
लिए वह रोष को उचित मानता है। शेखर इस तथ्य से परिचित होता है कि 'अभिमान
या अहकार एक सामाजिक कर्तव्य भी हो सकता है।

जेल जीवन म वह विद्याभूषण और मदनसिंह सम्पर्क म आता है और हिंसा
अहिंसा की नई व्याख्याओ से परिचित होता है। हिंसा व अहिंसा के ऊपर जो विचार
विमर्श इन पात्रो के बीच होता है वह तद्युगीन राजनीतिक वातावरण और विचार
धाराओ का प्रतिफलन है। शेखर के मत से हिंसा से कुछ नहीं हो सकता है। वह नका
रात्मक है। वह निरा सहार है उसमे सृजन नहीं हो सकता। विद्याभूषण के अनुसार
हिंसात्मक कार्य नश्तर के समान होने पर भी नगण्य ही नहीं, अपराध ही नहीं,
पर अनिवार्य तो है न ? समाज के लिए की गई हिंसा के बाद भी सामाजिक निर्माण

१ अज्ञेय-शेखर एक जीवनी, (द्वितीय भाग) पृष्ठ ३८
२ अज्ञेय-शेखर एक जीवनी (द्वितीय भाग), पृष्ठ ४८
३ अज्ञेय-शेखर एक जीवनी, (द्वितीय भाग), पृष्ठ ४८
४ अज्ञेय-शेखर एक जीवनी, (द्वितीय भाग), पृष्ठ ४३

होती है—चाहो तो मुख्य चीज उसी को समझ लो। उससे पहली आवश्यकता नहीं मिट जाती।[1] मदनसिंह कहता है—'अहिंसा क्या है? यह तो स्पष्ट है कि निष्क्रियता वह नहीं है। निष्क्रियता, कायरता, सबसे भीषण और घृणित प्रकार की हिंसा है। तब अहिंसा क्या है? अगर आत्मपीडन, आत्मबलिदान अहिंसा है तब हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि 'अहिंसात्मक रक्तपात भी हो सकता है। इस बात को मान लेने पर फिर यह क्यों कहा जाय कि सब रक्तपात हिंसा है?'[2]

जेल में ही शेखर मोहसिन से मिलता है जो बगावत फैलाने के जुर्म में एक साल की सजा पाकर आया है और पाँच माह काट चुका है। मोहसिन निर्भीक और दबंग है और इन्हीं गुणों के कारण यन्त्रणाएँ और सजाएँ पाता रहता है। इतना होने पर भी वह प्रसन्न रहता है। मोहसिन को दी जाने वाली यन्त्रणाएँ अंग्रेजी शासन के काले कारनामों की कहानी है किन्तु मोहसिन के क्रांतिकारी स्वरूप का अंकन भी लेखक ने उसी दृढ़ता से किया है।

जेल में शेखर बाबा मदनसिंह से क्रांतिपरक राष्ट्रीय घटनाओं की जानकारी पाता है। बाबा मदनसिंह उसे चटगाँव हत्याकांड 'की घटना का अस्पष्ट विवरण बताते हैं।[3]

जेल में दस महीने काट चुकने पर शेखर के मुकदमे का फैसला होता है और वह छूट जाता है। जेल से निकलने पर वह साहित्य-सर्जन करना चाहता है। शशि के द्वारा शेखर के साहित्य-सेवा के उद्देश्य से हम परिचित होते हैं। वह कहती है कि 'तो तुम्हारा लिखना एक उद्देश्य के लिए होगा—विनाश के लिए और पुनर्निर्माण के लिए। लेकिन शेखर, ऐसा लिखा हुआ सब अच्छा नहीं होता, सब साहित्य नहीं होता। वही साहित्य का मोह करोगे कि उद्देश्य का?'[4] और शेखर की मान्यता है कि 'क्रांति का सगठित पक्ष है तो एक महानतर व्यक्ति पक्ष भी है। बिना सगठन के भी—बिना सगठन के ही—व्यक्ति अकेला भी बहुमुखी वृद्धि के बीज बो सकता है और शायद जो अपनी अभिव्यक्ति के लिए साहित्य का मार्ग चुनता है, वह तो कर ही सकता है, क्योंकि वह पहले व्यक्ति है, पीछे किसी सगठन का सदस्य। उसका तो विशेष धर्म है बहुमुखी क्रांति के लिए भूमि जोतना और बोना, क्रांति बीज की सिंचाई और निराई करना।'[5]

१. अज्ञेय—'शेखर एक जीवनी,' (द्वितीय भाग) पृष्ठ ५७
२ अज्ञेय—'शेखर एक जीवनी,' (द्वितीय भाग) पृष्ठ ७४
३ अज्ञेय—शेखर एक जीवनी,' पृष्ठ ६५
४ अज्ञेय—'शेखर : एक जीवनी,' पृष्ठ ११४
५ अज्ञेय—'शेखर : एक जीवनी,' पृष्ठ ११६

वस्तुत शेखर एक जीवनी के इसी सिद्धान्त पर आधारित कृति होने के कारण राज नीति को उसमें वांछित स्थान प्राप्त नहीं हो सका है। हमारा समाज के प्रकाशन के सिलसिले में शेखर रामकृष्ण से परिचित क्रान्तिकारी दल से सम्बद्ध हो जाता है और तब क्रांतिकारियों की राजनीति का संक्षिप्त परिचय देने का संयोग निकल आता है।

दल के सम्पर्क में आकर शेखर ने पाया कि वह एक नये जीवन में प्रवेश कर रहा है।

दिनोदिन शेखर गुप्त आन्दोलन के फैले हुए जाल में अधिकाधिक उलझता गया। वह दल की गतिविधियों से—उसके कार्यक्रमों से परिचित होता है। शशि भी उसके साथ भाग लेने लगी। उन दिनों (शायद १९३१ में) असहयोग आन्दोलन की तात्कालिक लहर उत्कर्ष पर थी और गुप्त दलों के लोग भी सब तरह की सभाओं में भाग लेते लग थे कि उनके सहारे अपने प्रभाव का वृत्त और अपने सहायकों की संख्या बढ़ा सकें।

दल के निर्देश पर शेखर दिल्ली चला जाता है और क्रांतिकारियों के जीवन पर उपन्यास लिखता है जिसमें कला गौण थी और विचारों का प्रचार उद्देश्य था। वह जीवन यापन और दूसरों की दृष्टि से स्वयं को बचाने की दृष्टि से पेंटर का कार्य प्रारम्भ करता है। यहाँ युक्तप्रान्त के क्रांतिकारी दादा से परिचय होता है जो सुरक्षात्मक दृष्टि से दो चार दिन के लिए उसके पास रहते हैं। दादा और शेखर यमुना के पार रिवाल्वर व गोलियों को टेस्ट करते हैं। पुलिस के सक्रिय होने पर दादा चले जाते हैं इसी बीच शशि की मृत्यु हो जाती है। शेखर अकेला रह जाता है और फिर एक दिन दादा का पत्र पा लाहौर रवाना हो जाता है—कालापानी की सजा पाये हुए दल के साथियों को छुड़ाने में सहयोग देने के उद्देश्य से।

इस तरह शेखर के दूसरे भाग में युवक शेखर के कालेज-जीवन जेल-जीवन और शेखर शशि जीवन वर्णित है। कालेज जीवन की स्मृतियाँ सीमित हैं पर जेल-जीवन के विस्तार में जेल के समूचे वातावरण को सजीव रूप मिला है। जेल की यातना ने उसे अन्तर्दृष्टि दी।

राजनीतिक दृष्टि से शेखर एक जीवनी की यही कहानी है जिसमें राजनीति आंशिक रूप से ही चित्रित हो सकी है। वस्तुत इसमें कार्य-कारणसम्बद्ध पूर्व नियोजित कोई व्यवस्थित कथानक नहीं है। प्रथम खंड तो विशृंखल है दूसरे में कथा को अवश्य कुछ व्यवस्थित रूप मिला है। जीवन के प्रत्यवलोकन के लिए स्मृत्यालोक या पूर्व दीप्ति पद्धति की टेकनीक अपनाने से राजनीतिक जीवन की स्मृतियाँ अंश रूप में ही आ सकी हैं किन्तु बदलते हुए मानव-मूल्यों को कलात्मक अभिव्यंजना मिली है। इस प्रकार शेखर की कहानी (जीवनी) एक से प्रकार-व्यक्तित्व के विद्रोह की कहानी है जिसमें तर्क और बुद्धि समन्वित जीवन की व्याख्या की गई है। इतना होने पर भी शेखर एक व्यक्तिवादी पात्र

है और समाज-व्यवस्था के प्रति उदासीन उसका अहं ही मुख्य है। वह शिक्षित मध्यवर्ग का प्रतीक है जो सामाजिक संघर्ष से ग्रस्त है। शेखर के अन्य सभी पात्र भी स्पष्ट रूप से नहीं उभर सके हैं क्योंकि वे उसके स्मृति-पट पर छायाचित्रों के रूप में ही आये हैं। सभी मुख्य पात्र व्यक्ति हैं, किसी वर्ग के प्रतिनिधि नहीं। कांग्रेस शिविर के स्वयंसेवक, जेल-जीवन के सम्पर्क में आये बाबा मदनसिंह, विद्याभूषण, मोहसिन और क्रान्तिकारी दल के सदस्यों आदि का उतना ही परिचय मिलता है जितना शेखर के जीवन को परिवर्तित करने के लिए आवश्यक था। पात्रों के चरित्रोद्घाटन के लिए उद्धरण शैली अपनाये जाने के कारण पात्रों का समुचित विकास संभव नहीं हो सका है।

एक महत्पूर्ण क्रान्तिकारी होने पर भी शेखर का बाह्य स्वरूप भली-भाँति व्यक्त नहीं हो सका है। इसका एकमात्र कारण यही है कि उसके चरित्र की आधारभूत भावना उसका अतृप्त अहं-जन्य विद्रोह है। वह शक्ति का प्रतीक है इसीलिए क्रान्तिकारी है और क्रान्तिकारी है इसीलिए संघर्ष और पलायन की वृत्तियों से संचालित है। उपन्यासकार का शेखर के व्यक्ति-मानस के आन्तरिक संघर्ष का चित्रण ही अभीष्ट है, इसीलिए संघर्ष को जीवन की सामान्य गतिविधि से परे रखा गया है। 'शेखर : एक जीवनी' अपूर्ण है और उसके तीसरे भाग में शेखर की क्रान्तिकारी गतिविधियों के उद्घाटन की अनेक संभावनाएं हैं।

आलोच्य उपन्यासों में तो शेखर के चरित्र का विकास मूलतः मनोवैज्ञानिक आधार पर हुआ है। मनुष्य जन्म से स्वतन्त्र होता है, उसकी प्रवृत्तियाँ स्वतन्त्र होती हैं—रूसो का यह जीवन-दर्शन पूँजीवादी संस्कृति का जीवन-दर्शन है। इस भ्रममूलक विश्वास के कारण ही शेखर का सामाजिक स्वरूप अस्पष्ट रह गया है। त्रिभुवनसिंह का यह कथन सत्य है कि 'शेखर की लम्बी जीवन-यात्रा में जो अनेक सामाजिक, धार्मिक एवं राजनीतिक चित्र आए हैं, वे लेखक को इसलिए लाने पड़े हैं कि उन्हीं चित्रों के बीच उसे शेखर के जीवन का विकास दिखलाना है। स्वतन्त्र रूप से तत्कालीन समसामयिक सामाजिक चित्रों को उतारना कभी भी इस उपन्यास लेखक को इष्ट नहीं।'[1] उपन्यास में पाश्चात्य विचारधाराओं और शैलियों की शैल्पिक गरिमा में राजनीतिक स्वरूप उभर नहीं सका है। व्यक्तिगत के ऊहापोह के चित्रण के कारण नई जीवन-दृष्टि तथा शिल्प प्रयोग से युक्त 'शेखर : एक जीवनी' प्रधान राजनीतिक उपन्यास की कोटि का बन कर रह गया है। यद्यपि 'विभिन्न प्रकार के व्यक्तियों, छोटी बड़ी घटनाओं, दैनंदिन जीवन-व्यापारों के द्वारा आन्दोलित व्यक्तित्व की विभिन्न दिशावर्तिनी

---

1. त्रिभुवन सिंह—'हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद', पृष्ठ २२७

विचार उर्मियो के सूक्ष्मतम स्पन्दनों की कलात्मक अभिव्यंजना की यह बड़ी ही सजग सतर्क योजना है।[1]

'शेखर एक जीवनी' में वर्णित राजनीतिक प्रसंग

'शेखर एक जीवनी' स्रष्टा के इस जीवन-दर्शन पर आधारित कृति है कि मनुष्य जन्म से ही स्वतन्त्र होता है और उसकी मूल प्रवृत्तियां भी स्वतन्त्र होती हैं। वह वाह्य परिस्थितियों के प्रभाव को जीवन-परिवर्तन का कारण नहीं मानता। शेखर कहता है 'मैंने अनेक ऐसे व्यक्ति देखे हैं, जो कहते हैं और समझते हैं, कि किसी विशेष मानसिक प्रतिक्रिया ने उन्हें क्रांतिकारी बना दिया जैसे तिलक की अन्त्येष्टि ने या मार्शल ला के दृश्यों ने या जतीनदास की भूख हड़ताल ने। वे झूठ बोलते हैं। या तो उन्होंने गहरी आत्म विवेचना नहीं की जिससे वाह्य कारणों के पीछे अपनी सच्ची विद्रोहेच्छा को देखें या फिर उनमें इच्छा है ही नहीं और वे विद्रोही ही नहीं हैं।'[2] वह आर्थिक कारणों को भी विद्रोह का आवश्यक उपादान नहीं मानता।[3]

वह क्रान्तिकारी जीवन के लिए जिन गुणों की आवश्यकता स्वीकार करता है वे हैं क्रान्ति की अन्त शक्ति, व्यापक प्रेम और घृणा की क्षमता। उसके शब्दों में क्रांतिकारी के लिए क्रान्ति की अन्त शक्ति के बाद सबसे महत्वपूर्ण वस्तु है क्रांतिकारिता की विद्रोह भावना के प्रति एक पूजा भाव।[4] क्रांतिकारी की बनावट में एक विराट व्यापक प्रेम की सामर्थ्य तो आवश्यक है ही साथ ही उसमें एक और वस्तु नितान्त आवश्यक, अनिवार्य है—घृणा की क्षमता, एक कभी न करने वाली, जला डालने वाली, घोरमारक, किन्तु सब होते हुए भी एक तटस्थ, सात्विक घृणा की क्षमता।[5]

इसी जीवन-दर्शन को आत्मसात कर के शेखर का अहं उसका आत्मविश्वास बनता है।

फिर भी कांग्रेस और आतंकवादियों से सम्बन्धित विचारधाराओं और उनकी गतिविधियों से परिचित होने का अवसर यत्र-तत्र प्राप्त हो जाता है।

कालावधि निर्धारण

आतंकवादी क्रांतिकारी की जीवनी होने पर भी लेखक ने उसके काल का स्पष्ट

---

१ शिवनारायण श्रीवास्तव— हिन्दी उपन्यास', पृष्ठ ३१०
२ अज्ञेय—'शेखर एक जीवनी', (प्रथम भाग) पृष्ठ ३४
३ अज्ञेय—'शेखर एक जीवनी', (प्रथम भाग), पृष्ठ ३६
४ अज्ञेय—'शेखर एक जीवनी', (प्रथम भाग), पृष्ठ ३४
५ अज्ञेय—'शेखर - एक जीवनी', (प्रथम भाग), पृष्ठ ३५

उल्लेख कहीं नहीं किया है। अस्पष्ट संकेतो के आधार पर शेखर की जीवनी मे वर्णित समयावधि सन् १९१० से १९३३ के बीच की मानी जा सकती है। ये अस्पष्ट संकेत शेखर की स्मृतियो के रूप मे बिखरे हुए हैं और कालक्रमानुसार इस प्रकार हैं—

(१) बाल्यकाल की स्मृति के रूप मे महायुद्ध का संकेत[1]—यहाँ महायुद्ध से लेखक का तात्पर्य प्रथम विश्व युद्ध से है जो १९१४ मे हुआ था।

(२) पंजाब मे दंगा-फसाद और गोलीकांड का संकेत[2]—यहाँ लेखक का संकेत जलियान वाला बाग हत्याकांड से है जो १९१९ मे हुआ था।

(३) प्रथम असहयोग आन्दोलन की स्मृतियाँ[3]—यह असहयोग आन्दोलन सन् १९२१ मे गाँधी जी के नेतृत्व मे हुआ था।

(४) लाहौर मे कांग्रेस अधिवेशन मे शेखर का स्वयंसेवक के रूप मे भाग लेना और जेल जाना—लाहौर का कांग्रेस अधिवेशन १९३० मे हुआ था।

(५) जेल मे शेखर का आतंकवादी मोहसिन से परिचय और मोहसिन का बिस्मिल के शेर का गुनगुनाना—बिस्मिल को दिसम्बर १९२७ मे फांसी हुई थी और यह गजल उन्होंने जेल मे ही लिखी थी।[4]

(६) जेल मे बाबा मदनसिंह द्वारा चटगाँव कांड की सूचना देना—चटगाँव शस्त्रागार कांड अप्रैल १९३० को हुआ था।

(७) असहयोग आन्दोलन की तात्कालिक लहर का उत्कर्ष पर होना और क्रांतिकारियो का उसमें सहयोग देकर अपने प्रभाव का वृत्त बढ़ना[5]—यहाँ १९३०-३१ के आन्दोलन का संकेत मिलता है।

इस दृष्टि से शेखर का घटनाकाल १९१० से १९३४ के मध्य का माना जा सकता है।

विचारधाराएँ

उपर्युक्त कालावधि मे दो राजनीतिक विचारधाराएँ—गाँधीवाद और समाजवाद प्रमुख थीं और दोनों का विवेचन उपन्यास मे मिलता है, भले ही वह संकेतात्मक ही क्यों न हो। हिंसा-अहिंसा पर उपन्यास के अनेक पात्रों द्वारा विस्तार से विचार किया गया है। गाँधी युग में यह स्वाभाविक है कि उपन्यास के पात्र हिंसा अहिंसा पर विस्तार

१　अज्ञेय—'शेखर : एक जीवनी,' पृष्ठ ८६
२　अज्ञेय—'शेखर : एक जीवनी,' पृष्ठ ९२
३　अज्ञेय—'शेखर : एक जीवनी,' पृष्ठ १२१-२२
४　मन्मथनाथ गुप्त—'भारतीय क्रांतिकारी आन्दोलन का इतिहास,' पृष्ठ २४८
५　अज्ञेय—'शेखर : एक जीवनी,' पृष्ठ २०७

रा विचार करें। शेखर, शशि, बाबा मदनसिंह, शेखर के पिता, सभी पात्र इस विषय अपने-अपने विचार रखते हैं। शेखर के चारों ओर के वातावरण से जान पड़ता है कि हिंसा और अहिंसा के बीच रेखा खींचना सहज नहीं है[१]।

क्रांतिकारी और नारी

जैनेन्द्र के क्रांतिकारी पात्रों के समान शेखर भी नारी आकर्षण से भ्रमित है। उसके जीवन में भी अनेक स्त्रियाँ आती हैं पर अहं से संचालित विवेक-बुद्धि के कारण यौन प्रवृत्ति पर वह काबू रखता है। शेखर का विकास जिस रूप में किया गया है वह उसे सार्वजनिक दृष्टि से क्रांति से परे रखता है। वस्तुतः अज्ञेय ने राजनीतिक दृष्टि से आतंकवादी और जीवन में व्यक्तिवादी शेखर की जीवनी के बिखरे हुए सूत्र को एकत्र करने के प्रयास में उसके व्यक्तित्व को एक नया स्वरूप ही दे दिया है।

इस संदर्भ में आचार्य वाजपेयी का मूल्यांकन सही प्रतीत होता है कि-'जीवनी की मूलभूत प्रेरणा क्रांतिकारी या विद्रोहात्मक है। क्रांति और विद्रोह किसके प्रति? जीवनी में क्रांति और विद्रोह स्वयं अपना लक्ष्य है। यह एक मनोवृत्ति ही नहीं एक स्वतंत्र जीवन-दर्शन है। विद्रोह किसी वस्तु या स्थिति के प्रति नहीं सम्पूर्ण वस्तुओं और सारी स्थितियों के प्रति। सृष्टि के प्रति, क्योंकि वह अधूरी और अपूर्ण है समाज के प्रति, क्योंकि वह संकीर्ण है और विकास का विघातक है। सभी संस्थाओं के प्रति, समस्त रीतियों के प्रति जीवन-मात्र के प्रति विद्रोह क्रांतिकारी की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। विद्रोह के पश्चात्? कुछ नहीं क्योंकि निर्माण भी विद्रोह ही है विद्रोह में ही निर्माण है। इसीलिए शेखर के विद्रोही व्यक्तित्व के प्रति लेखक की इतनी निष्ठा है। प्रकृति की अपूर्णता के विरुद्ध संघर्ष तथा समाज के बन्धनों के विरुद्ध संघर्ष—शेखर की क्रांतिकारी जीवनी की यही धारा है। इस विद्रोह का परिणाम अति भयानक है जो शेखर के चरित्र को अत्यधिक आसक्तिपूर्ण, व्यक्तिवादी और यातनामय ही नहीं बनाता, उसे एक असमाजिक, नृशंस और घातक व्यक्तित्व के रूप में भी उपस्थित करता है[२]।' इतना ही नहीं वरन् इसी कारण से उसका राजनीतिक स्वरूप भी धूमिल हो उठा है और शेखर के दूसरे भाग में शेखर और शशि की कथा ही उपन्यास का रूप धारण कर लेती है।

---

१ डॉ० सुषमा धवन-'हिन्दी उपन्यास,' पृष्ठ २४७

२ आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी-'आधुनिक साहित्य,' पृष्ठ १७५

आलोच्यावधि के अन्य प्रमुख उपन्यास

टेढ़े-मेढ़े रास्ते

प्राक् स्वाधीनता कालावधि का एक विशिष्ट राजनीतिक उपन्यास है भगवती-चरण वर्मा का 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते' जिसमें युगीन राजनीतिक वातावरण का स्पष्ट निदर्शन है। प्रेमचन्द की परम्परा के अनुरूप यह उपन्यास चित्रणमूलक न होकर समस्या-मूलक तथा तर्कमण्डित है। 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते' में सन् १९३० के सत्याग्रह आन्दोलन के सजीव वातावरण में एक राजनीतिक परिवार की विकलता की कथा प्रस्तुत की गई है। इसमें सामन्तशाही के प्रतीक हैं पण्डित रामनाथ तिवारी, जो रूढ़िवादी हैं और नवीन विचारों को ग्रहण करने में असमर्थ हैं। वे समय के साथ न चल सकने के कारण प्रगतिशील विचारों का विरोध करते है। किन्तु राजनीतिक जागृति के कारण एक ऐसा वर्ग स्थापित हो रहा है जो नई विचारधाराओं को ग्रहण कर सामाजिक स्वरूप के परिवर्तन हेतु सचेष्ट है। राजनीतिक विचारधाराओं के कारण इन वर्ग के उपभेद हैं गाँधीवाद, समाजवाद और साम्यवाद। गाँधीवाद की धुरी है अहिंसात्मक क्रान्ति, जिसके ठीक विपरीत हैं साम्यवादी और आतंकवादी जिनकी आस्था हिंसात्मक प्रणाली पर है।

पं० रामनाथ सामन्तशाही के समर्थक तथा पूंजीवादी विचारों के पोषक हैं। वे जमींदारी हैं और किसानों का शोषण अपना जन्मसिद्ध अधिकार मानते हैं। इसके विपरीत विरोधी भावना का प्रतिनिधित्व करते हैं उनके तीनों लड़के, जो तीन अलग-अलग राजनीतिक दलों का नेतृत्व करते हैं। दयानाथ कांग्रेस में हैं, उमानाथ कम्युनिस्ट है और प्रभानाथ क्रान्तिकारी के रूप में कार्यरत है। पिता और पुत्रों के मध्य इस वैचारिक वैभिन्य की कल्पना के द्वारा सबल और निर्बल का संघर्ष प्रस्तुत कर विभिन्न राजनीतिक विचार सरणि के अनुरूप आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक समस्याओं के समाधान की चेष्टा की गई है।

पं० रामनाथ अवध के ताल्लुकेदार हैं, आनरेरी मजिस्ट्रेट हैं और चूंकि ये दोनों उपलब्धियाँ ब्रिटिश शासन की देन हैं वे उसके हितों के प्रबल प्रचारक और पोषक हैं। वे शक्ति में निष्ठा रखते हैं और किसी के आगे झुकना उनके स्वभाव के विपरीत है। वे अपने बड़े पुत्र दयानाथ का परित्याग कर देते हैं क्योंकि वह कांग्रेस का सक्रिय कार्यकर्ता हो गया है। मझला पुत्र उमानाथ कम्युनिस्ट है और उस पर शासन की क्रूर दृष्टि है। वह एक रात्रि को आकर पिता से दस हजार रुपये की माँग करता है किन्तु रामनाथ उसे झिड़क देते हैं। सबसे छोटे प्रभानाथ सबसे छोटे निकले और क्रान्तिकारी के रूप में डाके तथा हत्या के आरोप में गिरफ्तार हुए। किन्तु

प्रभानाथ जेल में जाकर उसे समझाते हैं कि वह मुखबिर न बने। प्रभानाथ अपनी प्रेमिका वीणा से जो सहकारिणी भी है विष प्राप्त कर आत्महत्या कर लेते हैं।

उपन्यास लेखक ने इन चारप्रमुख पात्रों की सृष्टि कर राजनीतिक उपन्यास की रचना कर तत्कालीन राजनीतिक दलों और उनकी कार्यविधियों में परस्पर विरोध दिखाने का प्रयास किया है। इसीलिए कहा गया है कि 'उपन्यास म परिस्थिति सन् १९३० के राजनीतिक आन्दोलन से सम्बद्ध है। उस समय तीन विभिन्न वाद अथवा विचार-धाराएँ राष्ट्र के जीवन को प्रभावित कर रही थीं। इन वादों को बनाकर उपन्यासकार ने एक सामन्ती परिवार की राजनीतिक जीवन-गाथा की रचना की है।

विभिन्न राजनीतिक विचारधाराओं से प्रभावित पात्रों का चित्रण तटस्थ दृष्टि-कोण से करने का प्रयास किया गया है। किसी भी राजनीतिक मार्ग का विशेष पक्ष न लेकर लेखक ने अपने को प्रचारक बनाने से बचाया है। यद्यपि सभी उनके लिए टेढे मेढे रास्ते हैं फिर भी उसकी युगानुकूल सहानुभूति गांधीवाद के प्रति ही है। साम्यवाद को वह कुछ अराष्ट्रीय मानता है। इसी कारण प्रगतिशील आलोचक शिवदानसिंह व डॉ० रामविलास शर्मा की कटु आलोचनाओं का भी उसे सामना करना पड़ा। शिवदानसिंह का कथन है—'टेढे मेढे रास्ते' म वर्मा जी ने राजनीतिक तथा सामाजिक पृष्ठ-भूमि का विशाल आडम्बर रचकर मनुष्य की देश भक्ति, मानव प्रेम तथा दूसरी उदात्त भावनाओं के मूल में स्वार्थपरता, अधमता और हिंस्रता की सत्ता ही सिद्ध करना चाहा है और प्रेम, न्याय और समता के आदर्शों की हीनता सिद्ध करने के लिए समस्त प्रगतिशील विचारधाराओं पर आक्रमण किया है और अत म यह सिद्ध किया है कि मुक्ति का कोई मार्ग नहीं, सभी स्वार्थ सिद्धि के टेढे मेढ रास्त हैं। वस्तुत वर्मा जी इस उपन्यास म राष्ट्रीय जागरण की उदात्त परम्पराओं को ठुकरा कर सामन्तवर्ग की हिमायत की है, और वह भी गाँधीवाद की आड लेकर।'[1]

डॉ० रामविलास शर्मा का मत भी बहुत कुछ ऐसा ही है। उनके मत के अनुसार 'यह एक गुलाम प्रेस की गुलाम-रचना है, जो हमारे स्वाधीनता आन्दोलन की तमाम परम्पराओं पर कीचड़ उछालती है।' इतना ही नहीं अपितु लेखक का उद्देश्य जीवन के प्रति विश्वास डिगाना है, सामाजिक परिवर्तन में आस्था का खण्डन है, जन वादी क्रांति और वर्गहीन समाज की रचना की तरफ से मन फेर कर आदमी को दुश्मन के सामने लाचार और अपाहिज बना देना है।'[2]

लगता है प्रगतिशील आलोचक होने के नाते इन विद्वज्जनों का आक्रोश केवल इसलिए है कि वर्मा जी ने उपन्यास में तात्कालिक युग की राजनीति का यथातथ्य

१ शिवदानसिंह चौहान—'हिन्दी साहित्य के अस्सी वर्ष' पृष्ठ १६३

२. रांगेय राघव कृत 'सीधा सादा रास्ता' में सलग्न समीक्षा

चित्रण किया है प्रगतिवादी प्रचारक के सदृश साम्यवाद का समर्थन नहीं। किन्तु जिस काल का राजनीतिक चित्रण उपन्यास में किया गया है उस समय भारतीय राजनीति में साम्यवाद की स्थिति क्या थी, यह राजनीति का साधारण छात्र भी बता सकता है। फिर आश्चर्य है कि विद्वान आलोचक इस तथ्य को क्यों भूल गये। वस्तुत: वर्मा जी ने तत्कालीन राजनीतिक वातावरण व राजनीतिक विचारधाराओं का यथासम्भव यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करके यत्न किया है। वे किसी वाद के प्रचारक या मार्गदर्शक नहीं बने। स्पष्ट है कि आलोच्यकाल में मुक्ति का यदि एक सीधा-सादा रास्ता होता तो इतनी राजनीतिक उठा पटक की आवश्यकता ही क्या थी? और आज भी क्यों है? मुक्ति के टेढ़े-मेढ़े रास्ते में कौन सीधा है यह कौन बता सकता है? युग के साथ क्या ये रास्ते भी परिवर्तित नहीं हो जाते? इसी अनुभूति का भेद बख्शी जी के कथन में देखा जा सकता है—'उपन्यास पढ़कर हम एक दुःख का अनुभव करने लगते हैं और सोचने लगते हैं कि जीवन के लिए क्या कोई सीधा राजपथ भी है। एक ही परिस्थिति में रहकर तीन भाइयों ने अपने जीवन में भिन्न-भिन्न पथों को स्वीकार किया। तीनों ने अपने-अपने पथों में जीवन की गरिमा देखी। तीनों में विश्वास की इतनी दृढ़ता थी कि तीनों अपने पथ पर अटल रहे। पर क्या किसी ने जीवन की सच्ची गरिमा प्राप्त की? एक को अपना पथ छोड़ना पड़ा, दूसरे को अपना देश छोड़ना पड़ा और तीसरे को अपने प्राण छोड़ने पड़े। क्या यह उनकी विजय है या पराजय? परन्तु हम जीवन में सफलता कहेंगे किसे? सभी के पथ भिन्न भिन्न होते हैं। कौन अच्छा है या बुरा, इसका निर्णय कौन करेगा? यही तो जीवन के 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते' है।'[1] जीवन के लिए कोई सर्वमान्य आदर्श, निर्धारित भी नहीं किया जा सकता।

'टेढ़े-मेढ़े रास्ते' में वस्तुतः संघर्ष सबल और निर्बल के बीच है। साम्राज्यवादी शक्ति के विरुद्ध गुलामों का, पूँजीवादियों के विरुद्ध गरीब मजदूरों का, जमींदार के विरुद्ध शोषित किसानों का विरोध स्पष्ट है। इसके परिणामस्वरूप ही उपन्यास की मूल समस्या आर्थिक और राजनीतिक है। और समसामयिक भारतीय राजनीतिक जीवन में क्रियाशील विभिन्न विचारधाराओं, उनके प्रेरणा-स्रोतों और उनकी कार्य-विधियों का कलात्मक विश्लेषण लेखक ने किया है। उपन्यास राजनीतिक्समस्या-प्रधान है और लेखक की तटस्थ दृष्टि और तार्किक शैली के कारण प्रत्येक पक्ष को विकसित होने का पर्याप्त अवसर मिलता है। वर्मा जी का स्वयं कहना है कि 'जो कुछ मैं लिखता हूँ, तर्क करने को नहीं लिखता। मैं तो अपने निर्णयों को पेश करता हूँ जिन पर अपने उन तर्कों द्वारा पहुँचा हूँ जो अनुभवों और अनुभूतियों पर अवलम्बित है।'

शृंखलाबद्ध कथा-वस्तु और घटनाओं को महत्व देने पर भी चरित्र की विशेष

१ पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी—'हिन्दी कथा साहित्य,' पृष्ठ१५८-५६

ताओं का उद्घाटन ही अधिक है। त्रिभुवनसिंह के मतानुसार 'जिन 'टिपिकल'चरित्रों का निर्माण वर्मा जी ने किया है वे बड़े ही सुन्दर और यथार्थ है। उपन्यास में पात्रों के चरित्रांकन में लेखक की लेखनी यथार्थ की कठोर भूमि पर चलती दिखाई देती है। इनके चरित्रों में यथार्थता है, कथावस्तु में नहीं।'[1]

पं० रामनाथ तिवारी, दयानाथ, उमानाथ तथा प्रभानाथ प्रमुख राजनीतिक पात्र हैं। नारी पात्रों में वीणा का चरित्र उल्लेखनीय है। इन पात्रों के माध्यम से ही राजनीतिक वातावरण मुखरित हुआ है। चरित्रप्रधान होने के कारण ही आन्दोलनों का उल्लेख जरूर मिलता है किन्तु वे सजीव नहीं हैं।

पं० रामनाथ तिवारी, अवध के एक ताल्लुकेदार है। वे सामन्तवाद के एक सशक्त प्रतीक है। उनका चरित्र चित्रण सजीव है—सन् १९३० के एक ताल्लुकेदार के सर्वथा अनुरूप। लेखक की इस सफलता को व्यग्य में ही सही, डा० रामविलास शर्मा ने भी स्वीकार किया है—'उनकी लेखनी यदि किसी का चित्र आँकते हुए पुलकित हो उठती है, तो ताल्लुकेदार पं० रामनाथ तिवारी का।' रामनाथ जी अपने वर्ग की समस्त अच्छाइयों और बुराइयों के अद्भुत मिश्रण हैं और यह सत्य ही कहा गया है कि 'सामन्ती औदार्य और दृढ़ता के साथ ही साथ परम्परागत पूर्वग्रहों का सश्लेषण कर रामनाथ तिवारी के चरित्र को जैसी सजीवता वर्मा जी ने दी है, उस वर्ग का वैसा सशक्त चरित्र हिन्दी उपन्यास में शायद ही कोई मिल सके।'[2]

दयानाथ कांग्रेमी पात्र है। जमीदार वर्ग का विरोधी और जनता के लिए लड़ने वाला। वह अवसर आने पर पिता का विरोध करने से भी पीछे नहीं हटता। उसके चरित्र में अहमन्यता का गुण पैतृक है और इसी कारण उसका व्यक्तित्व कठोरता और दर्प से युक्त है।

उमानाथ कम्युनिस्ट है और भारत के बाहर से अन्तर्राष्ट्रीय साम्यवादी सगठन और आन्दोलन का प्रशिक्षण प्राप्त करके आता है। नये दृष्टिकोण से उनके लिए मातृभूमि 'जङ्गली देश' हो जाती है जो रूढिवादियों और जाहिलों से घिरी है। बुद्धजीवी वर्ग के प्रति भी उसका असतोष गहरा है। उमानाथ के चरित्र में असगति उसके वैयक्तिक कारणों से है। बुद्धिमान एव विचारशील होने पर भी वह जर्मनी से लौटने पर भारतीय आदर्शों को ठुकरा देता है। वस्तुत. इस पात्र के माध्यम से भारत में विदेशी साम्यवाद की अनुपयुक्तता सिद्ध करने की चेष्टा की गई है। सभव है वर्मा जी को यह प्रेरणा एम० एम० राय के व्यक्तित्व और कार्यपद्धति से मिली हो। वे राष्ट्रीयता-विरोधी साम्यवाद को वाछनीय नहीं मानते। किन्तु विशुद्ध भारतीय रूप में साम्यवाद

१ त्रिभुवन सिंह—'हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद', पृष्ठ १२५

२. महेन्द्र चतुर्वेदी—'हिन्दी उपन्यास', एक सर्वेक्षण', पृष्ठ १३६

००

माने के वे विरोधी नहीं, भले ही समर्थक न हों। पश्चिमी सभ्यता जिसके कारण वे हिल्डा के साथ स्वच्छन्द हैं, उनके चरित्र के दौर्बल्य को व्यक्त करती है।

प्राणनाथ सरल और सीधा युवक है जो मानवता के विकृत स्वरूप से क्षुब्ध हो क्रांतिकारी दल में शामिल होता है। इस मानवीय संवेदना के कारण वह घायल साथी प्रभाकर को नहीं छोड़ता। पात्र प्रभाकर के माध्यम से हिंसक क्रांति की निस्सारता प्रकट की गई है।

इन्हीं पात्रों के संवादों द्वारा गांधीवादी, साम्यवादी तथा आतंकवादी सिद्धान्तों की विवेचना की गई है। राजनीतिक व्याख्या के कारण ही संवाद बड़े और बोझिल हैं। दयानाथ कांग्रेस की बैठक में कांग्रेस की राजनीतिक शक्ति व सत्याग्रह आन्दोलन का विवरण देता है। इसी प्रकार उमानाथ, कामरेड मारीसन तथा ब्रह्मदत्त के संवादों से साम्यवादी सिद्धान्तों को अभिव्यक्ति मिली है। क्रांतिकारियों की कार्य-पद्धति का ज्ञान क्रांतिकारियों की गुप्त बैठकों व वीणा द्वारा प्रभानाथ को विष पहुँचाने के प्रसंग से होता है। सभी पात्र तर्क अधिक करते हैं और तर्क से, तात्कालिक स्थिति के तथ्य से समन्वित करते हैं।

बंगाल के अकाल पर आधारित उपन्यास

आलोच्य काल में घटित बंगाल के अकाल की पृष्ठभूमि पर आधारित रांगेय राघव कृत 'विषाद मठ' और अमृतलाल नागर रचित 'महाकाल' में पूँजीवादी शोषण और समाजवादी चेतना की ओर इंगित किया गया है।

बंगाल के दुर्भिक्ष के समय की अन्तर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय राजनीतिक स्थिति के परिपार्श्व में 'विषाद मठ' की भूमिका में कहा गया है—'संसार में सिपाही उस समय आदर्शों के लिए लड़ रहे थे, पैसों के लिए कट रहे थे, साम्राज्यों का ध्वंस करने के लिए संसार हुंकार रहा था, कुचली मानवता पुकार रही थी, दूसरी ओर हाहाकारों पर अट्टहास गूँज उठते थे, किन्तु हिन्दुस्तान भूखा था, बंगाल भूखा था, मनुष्य भूखा था। जब भारत की शक्ति खंड-खंड होकर एक दूसरे से लड़ रही थी, जब फूट के बल पर साम्राज्यवाद का भीषण पाप पल रहा था, हिन्दुस्तान की जनता राहों पर कराह-कराह कर दम तोड़ रही थी। स्त्रियाँ अपने पुरुषों के शवों पर खड़ी होकर अपनी सन्तान और सतीत्व को खुले आम बेच रही थीं। पापों की सड़ाँध से राष्ट्र का सिर फटने लगा था। मेहनत करके दूसरों को भरपेट खिलाने वाले आज भूखे मर रहे थे।'[1]

बंगाल के गाँव को उपन्यास का केन्द्र बनाकर दुर्भिक्ष की इसी विभीषिका का चित्रण 'विषाद मठ' में सजीव हो उठा है। सर्वग्रासी विषाद की गहन कालिमा उप-

१ रांगेय राघव—'विषाद मठ', पृष्ठ ५६ (भूमिका से)

न्यास में व्याप्त है। जीवन निराश्रय और साधनहीन हो पूँजीवादी ठेकेदारो की दया पर आश्रित है पर पूँजीपति है कि ऐसी परिस्थिति मे भी उनका शोषण-क्रम नहीं टूटता। अनेक पात्रो की सृष्टि कर विविध चित्रो को समग्र रूप में प्रस्तुत कर अकाल पीड़ितो के चित्रण द्वारा पूँजीवादी शोषण के विकृत स्वरूप का उद्घाटन कर समाजवादी चेतना की अभिव्यक्ति कर दी गई है।

दुर्भिक्ष की पृष्ठभूमि मे समाज मे व्याप्त उत्पीडन और अन्याय पूँजीपतियो की हृदयहीनता का द्योतक है जो मानवीय गुणो और सामाजिक स्वरूप को ही विकृत बना देता है। यथार्थता के आग्रह के कारण ही 'विषाद मठ' के अन्दर लेखक ने अपने समस्त राजनैतिक आग्रहो से ऊपर उठकर बगाल की त्रस्त मानवता का रुला देने वाला चित्र उरेहा है।'[1]

अमृतलाल नागर के 'महाकाल' मे भी बगाल के दुर्भिक्ष का यथातथ्य चित्र अकित है। 'महाकाल' मे निरूपित मानव का निर्मम स्वार्थ, आर्तनाद, रोदन क्रन्दन हृदय को दहलाने वाला है। किन्तु कथा वस्तु मूलत व्यक्तिगत स्वार्थ और सामाजिक कल्याण के द्वन्द्व को मतवादी प्रचार मे पर्यवसित नहीं होने देती।

मास्टर पाचू गोपाल, जमीदार दयाल और बनिया मोनाई उपन्यास के प्रमुख पात्र है। दयाल सामन्ती सस्कृति का व मोनाई पूँजीवादी सभ्यता का प्रतीक है। पाचू गोपाल जीवन्त व्यक्तित्व है जो मूक द्रष्टा सा दुर्भिक्ष के हृदयविदारक दृश्यो को देखता है। स्थूल चरित्र रेखाओं से दयाल का चित्रण कर उसकी वर्गगत विशेषताओ को उभारने का प्रयत्न किया गया है। मोनाई के लिए दुर्भिक्ष दैवीय प्रकोप है जा उसके भाग्योदय का कारण बन गया है। वह पूँजीवादी पात्र है और स्वार्थ ही उसके लिए सर्वस्व है। इसका उत्तरदायी है समाज। वह कहता है-'खुदी के लिए सारी दुनिया तबाह हुई जा रही है। लेकिन यह खुदी है क्या ? और क्यो है ? अपने अस्तित्व की चेतना को मनुष्य सर्वव्यापी और सामूहिक रूप मे क्या नहीं देखता ? दुनिया से अलग रह कर मैं अपनी असलियत का अनुभव क्यो कर सकता हू। सम्मिलित रूप से, समाज की प्रत्येक क्रिया-प्रतिक्रिया का प्रभाव मुझ पर पडता है और मुझ चैतन्य बनाता है।'[2] नर-ककालो को देखकर भी उसमे मानवीय करुणा का उद्रेक नहीं होता। लाशो को देखकर उसके मन मे भावना आती है कि उन्हे मेडिकल कालेज मे बेच दिया जाये। चोर बाजारी, नारी विक्रय, धोखा धडी सभी उसे ग्राह्य है। मोनाई का व्यग-चित्र सजीव बन पडा है। दयाल का व्यक्तित्व टूटते हुए सामन्तवादी का रूप प्रस्तुत करता है। इसीलिए कहा

---

१ त्रिभुवन सिह—'हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद', पृष्ठ २०६

२ अमृतलाल नागर—'महाकाल,' पृष्ठ १६३

गया है कि 'यह उपन्यास महाजन तथा जमींदार के स्वार्थ-चंगुल में कराहती कंकाल-शेष जनता का मार्मिक चित्रण है।'[१] किन्तु 'विषाद मठ' में जहाँ समाजवादी चेतना मुखरित हुई है वहाँ 'महाकाल' में सर्वोदयी भावना के अनुकूल वैयक्तिक तथा सामाजिक हितों का निदर्शन है जो अधिक स्वस्थ है। इसमें व्यक्ति को समाजोन्मुख दिखा कर घृणा के स्थान पर प्रेम के महत्व को प्रतिपादित किया गया है। मास्टर पाँचू गोपाल के पिता का कथन है—'घृणा की गति है कहाँ? विनाश ही में न? तुम्हारा यह अकाल क्या है? मनुष्य की घृणा ही न? यह महायुद्ध क्या है? कौन सा आदर्श है इसमें? सत्य एक असत्य के साथ सन्धि करके दूसरे असत्य का सर्वनाश करने के लिए युद्ध कर रहा है। मनुष्य इसे राजनीतिक कह कर अर्द्ध-सत्य का पोषण करता है। अर्द्ध सत्य अज्ञान का कारण है। ज्ञान प्रेम का मूल है और प्रेम की गति निर्माण तक, निर्माता तक।'[२]

घृणा के संबंध में व्यक्त सर्वोदय का ही संदेश है। यही उपन्यास का उद्देश्य है। 'विषाद मठ' के सदृश वर्गगत समाजवाद का संदेश नागर जी को स्वीकार नहीं। दुर्भिक्ष के कारण पाँचू के यहाँ भी हिंसक वृत्तियाँ उभरती हैं। उसका पुत्र ही अपनी पत्नी को वेश्यावृत्ति का जीवन अपनाने को बाध्य करता है और पाँचू को घर त्याग करना पड़ता है। मार्ग में असहायावस्था में नवजात शिशु को मृत माता के निकट रुदन करते देख वह संवेदनशील हो जाता है और उसमें साहस का संचार होता है। वह इस तथ्य से परिचित होता है कि जीवन अजेय है और उसे विकसित करने का मार्ग अहिंसा से संभव है। वह अपने घर में ही समग्र संसार को देखने की चाह से घर लौटने का निश्चय करता है। उसका अहं नष्ट हो जाता है और व्यक्तिगत स्वार्थ परे हो जाता है। दूसरे शब्दों में उसकी आहत आदर्शवादिता समष्टि-मंगल की भावना में परिसमाप्त होती है।

पुरुष और नारी

राजा राधिकारमण सिंह के 'पुरुष और नारी' उपन्यास में प्रेम की समस्या स्वतन्त्रता संग्राम की पृष्ठभूमि में चित्रित किया है, यही उसका राजनीतिक पक्ष है। इसके प्रधान पात्र हैं–पुरुष अजीत और नारी सुधा। अजीत का प्रण है कि 'जब तक देश आजाद नहीं होता तब तक मेरे लिए संसार का कोई व्यवहार नहीं–विवाह, व्यापार या रोजगार। आज से न मेरा कोई अपना स्वार्थ है न अपना परिवार। मैं तमाम तन-मन धन माता के चरणों पर निछावर करता हूँ।' वह भाभी के मायके जाता है जहाँ

१ शिवनारायण श्रीवास्तव–'हिन्दी उपन्यास,' पृष्ठ ३७५

२ अमृतलाल नागर–'महाकाल,' पृष्ठ २१७

उसकी भेंट भाभी की छोटी बहन सुधा से होती है। उसमे आकर्षित हो वे कई दिनों तक वहाँ ठहरते हैं। सुधा भी उनके प्रति अपना प्रेम छिपा नहीं पाती। किन्तु प्रण के कारण अजीत वहाँ से पलायन करके साबरमती आश्रम जा पहुँचते है। आश्रम से वापस लौटने पर उसे सुधा के बेमेल विवाह का पता चलता है। सुधा का पति सम्पन्न पर बूढा और दो बच्चो का बाप है। इस घटना से उद्विग्न हो अजीत अपने एक ग्राम मे, नदी-तट पर आश्रम स्थापित कर सारी सम्पत्ति आश्रम को अर्पित कर देता है।

दलीप, सुधीर तथा अन्य आश्रमवासियो के साथ वह सेवा, सुधार और सगठन कार्यों मे सक्रिय भाग लेने लगता है। इधर सुधा वृद्ध शराबी पति से अलग हो सापत्नी पुत्र महीप के साथ कांग्रेस-आन्दोलन मे भाग लेने लगती है। बाद मे वह अजीत के आश्रम मे आकर आश्रम की गृहस्थी का भार सम्हाल लेती है। इधर अजीत के त्याग और सेवा की सराहना होने लगी, लोकप्रियता बढी किन्तु साथ ही उसकी अतृप्त वासना भी मार्ग ढूँढने लगी। वह सुधा का सामीप्य पाने के लिए उसके निकट आने का प्रयास करता पर सुधा को सयत पा विवशता का अनुभव करता है। अजीत का अतृप्त पुरुष शात न हो सका और शराब के नशे मे उसने सुधा से कुचेष्टा की। सुधा ने विषपान कर लिया और अपनी अतिम घडियो मे आत्महत्या का कारण भी स्पष्ट कर दिया। यह तो था सुधा का प्रेम का रहस्य।

कथा वस्तु मे राष्ट्रीय आन्दोलन की अपेक्षा पुरुष और नारी के पारस्परिक आकर्षण का चित्रण ही अधिक है। यह सयोग ही है कि ये पात्र भारतीय राजनीति से भी सम्बद्ध हैं।

जागरण

'जागरण' मे कथानक की मौलिकता है और वह मौलिकता है महात्मा गाँधी द्वारा निर्देशित आधारो पर ग्राम सुधार की योजना। गांधीवाद की अहिंसा, कष्ट सहिष्णुता और आत्म शुद्धि के माध्यम से आत्मज्ञान के सिद्धान्तो का 'जागरण' के पात्रो मे समावेश अवश्य है पर केवल बाहरी तौर पर। लेखक द्वारा आरोपित होने के कारण पात्र सिद्धान्तो का निर्वाह स्वाभाविक रूप से नही कर सके और जिसके कारण मुख्य भाव अव्यक्त ही रह जाता है। राजनीतिक उपन्यास होने के कारण सम-सामयिक राजनीतिक समस्याओ तथा अस्पृश्यता सबधी वाद विवाद, राजकीय कर्मचारियो की नृशसता, महिला-जाग्रति, सत्याग्रह की उपादेयता आदि पर विचार व्यक्त अवश्य किये गये हैं किन्तु वे स्वाभाविक न होकर आरोपित से है। चमत्कारिक सयोग भी खूब जुटाये गये हैं जो कथानक की गति अपनी अस्वाभाविकता से शिथिल बनाते है। प्रचारात्मक दृष्टिकोण अधिक व्यापक है।

प्राक् स्वाधीनता-युग के अन्य राजनीतिक-उपन्यास है गुरुदत्त लिखित 'स्वाधीनता के पथ पर' और 'पथिक', यज्ञदत्त शर्मा कृत 'दो पहलू' तथा मन्मथनाथ गुप्त रचित 'चित्र'।

इस 'त्रयी' ने स्वातन्त्र्योत्तर काल मे अनेक राजनीतिक उपन्यासो की रचना की अतः इन उपन्यासो की विस्तृत विवेचना आगामी परिच्छेद मे ही की गई है।

प्राक्-स्वाधीनता-युग के विवेचित उपन्यासों की उपलब्धियाँ

प्राक्-स्वाधीनता-युग मे जैनेन्द्र, इलाचन्द्र जोशी और अज्ञेय की 'त्रयी' ने उपन्यास क्षेत्र मे फ्रायड के मनोविज्ञान को प्रतिष्ठित किया। जैनेन्द्र के उपन्यास वैयक्तिक मनोवैश्लेषिक तथा जोशी व अज्ञेय के वैयक्तिक, मनोवैज्ञानिक, मनोवैश्लेषिक। यशपाल और अश्क के उपन्यास भी समाजवादी चेतना के वाहक होने पर फ्रायड के प्रभाव से मुक्त नहीं। फ्रायड के प्रभाव से प्रेमचन्दोत्तर-काल मे हिन्दी उपन्यास मे यौन वर्जनाओं और दमित वासनाओं का प्रकाशन प्रस्तुत किया जाने लगा। कथावस्तु मे समाज के स्थान पर व्यक्तिप्रधान हो गया और परिणामस्वरूप कथा की अवधि और सामग्री मे परिवर्तन हुआ। व्यक्ति का अध्ययन ही उद्देश्य हो जाने से समाज को पृष्ठभूमि के रूप मे प्रस्तुत किये जाने के कारण वातावरण का विस्तार भी नहीं हो सका। व्यक्तिवादी प्रवृत्ति ने बाह्य परिस्थितियो और घटनाओं को गौण माना और घटनाओं का पूर्वापर सम्बन्ध विच्छिन्न हो गया। स्वल्प कथानक मे पात्रो के भावो का विश्लेषण होने से राजनीतिक उपन्यास विकसित न हो सके।

राजनीतिक दृष्टि से मात्र आतंकवादी ही व्यक्तिवादी कहे जा सकते है। यही कारण है कि जैनेन्द्र और अज्ञेय के उपन्यासो मे क्रान्तिकारी पात्रों की उद्भावना *की गई है। जैनेन्द्र के उपन्यासो मे गाँधीवाद का आध्यात्मिक स्वरूप ही प्रकट होने* का एक कारण उनकी वैयक्तिक, मनोवैज्ञानिक, मनोवैश्लेषिक प्रवृत्ति है। दार्शनिक जैनेन्द्र का अभीष्ट यही होने से उसका निर्वाह भी समुचित रूप से हो सका है। राजनीतिक उपन्यास का यह नवीन रूप अपने उद्देश्यो की प्राप्ति मे सफल नहीं कहा जा सकता। एक विज्ञ समालोचक ने सभवत इसीलिए लिखा है कि यदि जैनेन्द्र मे क्रांतिकारिता कुछ अधिक होती तो वह उपन्यास के अत मे सामाजिक सीमाओ को स्वीकार नहीं करते और अपने पात्र-पात्रियो द्वारा उठाये हुए विद्रोह को अन्तिम सीमा तक ले जाते, किन्तु जैनेन्द्र भी एक प्रकार से सामाजिक क्षेत्र मे समझौते के ही प्रतीक हैं। वे मानते है कि आत्म-पीडन द्वारा समाज को सुधारा जा सकता है। इसके कारण ही उनके उपन्यासो मे पात्रो की अन्तिम स्थिति उनके सन्यासी रूप या दासी रूप मे होने से जिस

दार्शणिक भाव की सृष्टि होनी है वह उपन्यास के राजनीतिक स्वरूप को उभरने नहीं देता ।

'अचल' में भी व्यक्तिवादी प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं पर समाजवादी चेतना के साथ संयुक्त होने तथा वातावरण की व्यापकता के कारण उनमे राजनीतिक संस्पर्श अधिक हैं । यशपाल ने सामाजिक परिस्थितियों को ही अधिक उरेहा है, वातावरण और बाह्य घटनाओ को आनुपातिक रूप से ग्रहण किया है जिससे राजनीतिक ध्येय की पूर्ति में वे अधिक समर्थ सिद्ध हुए हैं ।

प्राक्-स्वाधीनता-काल के उपन्यासकारों मे शिल्प सम्बन्धी जो वैशिष्ट्य आया उसने राजनीतिक उपन्यासो मे पूर्व दीप्ति, चेतना-प्रवाह और काल विपर्यय शैलियों को जन्म दिया । अनुभूति या घटना का आत्मनिष्ठ चित्रण होने से आत्म-चरितात्मक कथा-प्रणाली गतिशील हुई । शैली सवाद या वर्णनप्रधान न होकर विश्लेषण-प्रधान बनी । भाषा भी अनुचिन्तन के भार से गम्भीर व तत्समबहुला हुई । राजनीतिक पात्रों के बुद्धिजीवी होने के कारण कथोपकथनो मे अग्रेजी शब्दो और वाक्यो का प्रयोग भी बहुतायत से होने लगा । बौद्धिक और सैद्धान्तिक होने के कारण कथोपकथनो मे अतिशयता का दोष व विचारशीलता का गुण प्रकट हुआ । बहुधा सवाद लम्बे और बोझिल हैं और नीरसता का उद्रेक करते हैं ।

सक्षेप मे कहा जा सकता है कि प्राक्-स्वाधीनता-काल के राजनीतिक उपन्यासों मे युग वास्तव का अकन विविध रूपों मे उपन्यास-लेखक की अपनी आदर्शवादिता के साथ किया गया है । आलोच्य काल मे आतंकवादी गतिविधियो की निस्सारता स्वयं-सिद्ध हो चुकी थी । कांग्रेस तो हिंसात्मक कार्यों को प्रारम्भ से ही अनुचित मानती थी इधर साम्यवादी भी वैयक्तिक हिंसा का विरोध करने लगे थे । जैनेन्द्र और अज्ञेय के उपन्यासो मे जिन क्रांतिकारियों की गाथा प्रस्तुत की गई है वह उन्हे निर्बल ही सिद्ध करती है । फिर भी इन उपन्यासो के माध्यम से क्रांतिकारियों की रीति नीति पर अच्छा प्रकाश पड़ता है ।

रूस मे साम्यवाद की सफलता से प्रभावित अन्य देशो मे भी मार्क्सवाद का अध्ययन किया जाने लगा । भारत मे यद्यपि उसका प्रभाव नगण्य ही रहा फिर भी अनेक उपन्यासकारों ने व्यापक रूप मे समाज की चेतना को अभिव्यक्ति दी । यशपाल, अचल, रांगेय राघव, अमृतलाल नागर और मन्मथनाथ गुप्त ने आलोच्यावधि में प्रकाशित अपने उपन्यासो में समाज की असंगतियो, वर्ग-विषमता, पूँजीवाद के विघटन तथा नवीन सांस्कृतिक मूल्यो के स्थापन का प्रयास किया । इनके उपन्यासो मे पुरानी बुर्जुआ संस्कृति पर जमकर आघात किया गया है । वर्मा जी का 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते' इस काल का

सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपन्यास है जिसमे सामाजिक तथा राजनीतिक यथार्थवाद का सफल चित्रण उपलब्ध होता है।

साराशत प्राक्-स्वाधीनता-युग के उपन्यासो मे इन लेखको ने गाँधीवाद, मार्क्स-वाद और आतकवाद की सैद्धान्तिक विचारधारा के परिपार्श्व मे राष्ट्रीय चेतना, राष्ट्रीय आन्दोलनो व उनमे प्रभावित राजनीतिक, आर्थिक एवं विभिन्न सामाजिक विषयो की चर्चा की है।

स्वातन्त्र्योत्तरकालीन हिन्दी के राजनीतिक उपन्यास

> राष्ट्रीय वातावरण पर आधारित प्रमुख उपन्यास
  * धमपुत्र—राजनीतिक पात्र राजनीतिक घटनाएँ, भाषण-वक्तव्य
  * भूले बिसरे चित्र—कांग्रेस कार्यक्रम, खिलाफत आन्दोलन असहयोग आन्दोलन आन्दोलन और व्यापारी स्वाथ, चौरीचौरा काण्ड, अन्य राजनीतिक घटनाएँ, साम्प्रदायिकता, अछूतोद्धार
  * बयालीस—राजनीतिक घटनाएँ, राष्ट्रीय घटनाएं, हिन्दू-मुस्लिम समस्या, बयालीस का आन्दोलन, गाधीय सिद्धान्तों का प्रतिपादन, बयालीस की विशिष्टताएँ
  * निशिकान्त
  * कठपुतली
  * ज्वालामुखी
  * हवाजीवा—राजनीतिक तत्व नेता मास्टर,
  * स्वतन्त्र भारत

> स्वतन्त्रता-सग्राम की पृष्ठभूमि पर मन्मथनाथ गुप्त के उपन्यास
  * जागरण
  * रैन अँधेरी
  * रगमच
  * अपराजित
  * प्रतिक्रिया—अछूत समस्या, १६३५ का चुनाव, क्य नक एव पात्र
  * सागर सगम
  * अन्य उपन्यास

> यशपाल के दो उपन्यास—'दो पहलू' और 'इन्सान'

(ख) स्वातन्त्र्योत्तर देशीय वातावरण से सम्बन्धित उपन्यास
  * उदयास्त—कांग्रेस की आलोचना, साम्यवादी पात्र, अवसरवादी नेता, सम-सहयोग की सर्वोदयी भावना।
  * बगुले के पख—कांग्रेस की स्थिति राजनीतिक गतिविधि और नारी

* भग्न मन्दिर—कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल, राजनीति और पत्रकारिता
* हाथी के दाँत
* बड़ी-बड़ी आँखें

>गुरुदत्त के उपन्यासों में स्वातंत्र्योत्तर देशीय वातावरण

* निर्माण-पथ
* महल और मकान
* बदलती राहें
* अन्तिम चरण

>चीनी आक्रमण की पृष्ठभूमि पर आधारित उपन्यास

* विनाश के बादल
* देश नहीं भूलेगा

(ग) समाजवादी यथार्थवादी उपन्यास

* बीज—साम्यवादी पात्र, राजनीतिक घटनाएँ, अहिंसा का विरोध, आतंकवादियों का विरोध, कांग्रेसी नेताओं पर प्रहार, साम्यवादी दृष्टिकोण।
* उखड़े हुए लोग—साम्यवाद की झलक, गांधीवाद की आलोचना
* आदमी और सिक्के
* रात अँधेरी है
* लोहे के पंख
* ऊँची-नीची राहें
* भूख और तृप्ति
* सूखा पत्ता
* केलाबाड़ी
* नींव का पत्थर
* लहरें और कगार
* मनु की बेटियाँ
* मुक्तावली
* क्रान्तिकारी
* बुझते दीप

(घ) गुरुदत्त के उपन्यासों का राजनीतिक पक्ष—

गुरुदत्त के उपन्यास, गांधीयुगीन वातावरण पर आधारित उपन्यास, साम्यवाद विरोधी उपन्यासों की शृंखला।

राष्ट्रीय वातावरण पर आधारित प्रमुख उपन्यास

धर्मपुत्र

'धर्मपुत्र' में साम्प्रदायिक समस्या को उठाया गया है तथा द्वितीय महायुद्ध से स्वतंत्रता-प्राप्ति तक की कालावधि की राजनीति का संक्षिप्त विवरण दिया गया है।

उपन्यास में कथानक का विकास नाटकीय ढंग से हुआ है और प्रारम्भ से अन्त तक कुतूहल की सृष्टि करता है। परिस्थितिवश डाक्टर अमृतराय अपने पिता के मित्र नवाब मुश्ताक अहमद की पोती शहजादी हुस्न बानू के अवैध पुत्र को हिन्दू-संस्कृति में हिन्दू की भाँति पुत्रवत पालते हैं। डाक्टर ने बालक का नाम दिलीप रखा। डाक्टर विवाहित हैं और उनके दो पुत्र—सुशील और शिशिर तथा एक पुत्री करुणा है। दिलीप एम० ए० एल-एल० बी० कर संघ में भरती हो जाता है। जन्म से मुसलमान होने पर भी वह कट्टर पंथी हिन्दू है और मुसलमानों का घोर विरोधी है। डाक्टर साहब के पुत्र सुशील और शिशिर क्रमशः कम्युनिस्ट और कांग्रेसी हैं।

दिलीप के विवाह को लेकर समस्या उत्पन्न होती है। डाक्टर की पत्नी उसका विवाह बिरादरी में करना चाहती है। परन्तु डाक्टर की समस्या है 'मैं कैसे किसी हिन्दू लड़की को इस धर्म-संकट में डाल सकता हूँ। इतना बड़ा छल तो मैं बिरादरी के साथ कर नहीं सकता।'[1] किसी तरह दिलीप का विवाह राय राधाकृष्ण बैरिस्टर की पुत्री माया से इसलिए तय होता है क्योंकि बैरिस्टर परिवार बिरादरी के होते हुए भी बिरादरी से अलग है, बिरादरी को नहीं मानते। दिलीप इस विवाह सम्बन्ध को स्वीकार नहीं करता क्योंकि उसकी दृष्टि में 'विलायती साहेब लोग हैं। हिन्दू संस्कृति और हिन्दू धर्म के पाबन्द नहीं हैं।'[2]

इस प्रसंग पर वह जातीयता का राजनीतिक धरातल पर विवेचन करता है और अपने हिन्दुत्ववादी दृष्टिकोण का प्रतिपादन करता है।[3] इस विवाह के जाल से मुक्ति पाने के लिए वह कहता है—'जब तक मेरा देश स्वतंत्र न हो जाय हिन्दू-राष्ट्र का उत्थान न हो जाय तब तक ब्याह करके गुलाम संतान पैदा करने से क्या फायदा है। पहले हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तान है। पीछे ब्याह-शादी।'[4] इसी बीच बैरिस्टर

१. आचार्य चतुरसेन—'धर्मपुत्र,' पृष्ठ ५६
२. आचार्य चतुरसेन—'धर्मपुत्र', पृष्ठ ६३
३. आचार्य चतुरसेन—'धर्मपुत्र,' पृष्ठ ६४
४. आचार्य चतुरसेन—'धर्मपुत्र,' पृष्ठ ६७

साहब अपनी पुत्री के साथ डाक्टर के यहां आते हैं। विवाह-सम्बन्ध तो स्थापित नहीं हो पाता किन्तु माया और दिलीप के मन में एक दूसरे के लिए प्रेम अवश्य उत्पन्न हो जाता है। इन्हीं दिनों विश्व-महायुद्ध छिड़ जाता है और इस स्थल पर लेखक को अन्तराष्ट्रीय राजनीतिक रंगमंच का विवरण प्रस्तुत करने का सुअवसर प्राप्त होता है।[१] लेखक बताता है कि सोवियत संघ जनवाद के कट्टर हिमायती उत्पन्न कर रहा था। वे राष्ट्रीयता को भयानक और घृणास्पद समझते थे। भारत में भी प्रत्येक शहर में साम्यवादी दल बनते जा रहे थे। राजनीतिक सरगर्मी बढ़ती जा रही थी। डाक्टर का घर अन्तर्राष्ट्रीय विचार-धाराओं का अखाड़ा बन जाता है और विभिन्न राजनीतिक पात्रों द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय परिपार्श्व में युद्धकालीन भारतीय राजनीति पर विभिन्न विचार व्यक्त किये जाते हैं।[२]

कांग्रेस के नेतृत्व में अगस्त क्रांति होती है और नेहरू जी के भाषण से प्रभावित हो शिशिर आन्दोलन में भाग ले जेल जाता है। इस प्रसंग में बयालीस के आन्दोलन के समय पुलिस के नृशंस व्यवहार का चित्रण किया गया है। मित्र राष्ट्रों के साथ रूस के शामिल होने पर कम्युनिस्ट अंग्रेजों का समर्थन करते हैं और लेखक साम्यवादियों की इस नीति की आलोचना करता है। सुशील कम्युनिस्ट है और उसकी गतिविधियों के द्वारा कथानक आगे बढ़ता है।

दिलीप भी संघ के तत्वावधान में आयोजित विराट सभा में भाषण दे जेल जाता है और जेल-जीवन का सजीव चित्रण सामने आता है। दिलीप अपनी हिन्दुत्व-वादी विचारधारा का प्रचार करता है और तात्कालिक राजनीतिक परिस्थितियों के विश्लेषण से अगस्त क्रांति के कारणों पर प्रकाश पड़ता है। इसी प्रसंग में जवाहरलाल व सुभाषचन्द्र बोस के राजनीतिक व्यक्तित्व का तुलनात्मक अध्ययन भी सामने आता है। दिलीप और शिशिर जेल से मुक्त होते हैं—जेल से लौटने पर शिशिर जहाँ अधिक गम्भीर हो जाता है वहाँ दिलीप के स्वभाव में अधिक उग्रता आती है। पति की मृत्यु के उपरान्त हुस्न बानू भी दिलीप स्थित रंगमहल में आ जाती है। राजनीतिक परिस्थितियाँ उग्र होती हैं और भारत को स्वतन्त्रता देने की स्थिति का निर्माण होता है और जिसके साथ उभरता है देश-विभाजन का प्रश्न।[३] लेखक कथानक और कथोपकथन के संयुक्त प्रभाव से ३६ वें परिच्छेद में भारतीय राजनीति का विवरण प्रस्तुत करता है।

देश-विभाजन के प्रश्न से साम्प्रदायिकता उभरती है और दिलीप को 'डायरेक्ट

---

१ आचार्य चतुरसेन—'धर्मपुत्र', पृष्ठ ६९, ७० व ७१

२. आचार्य चतुरसेन—'धर्मपुत्र', पृष्ठ ११५-११७

३ आचार्य चतुरसेन—'धर्मपुत्र', पृष्ठ १६९-१७१

ऐक्शन' के षड्यन्त्र का पता चलता है। वह एक सार्वजनिक सभा में इस तथ्य का उद्घाटन करता है और अपने प्रयासों से मुसलमानों की योजना को मूर्त नहीं होने देता। साम्प्रदायिक दगे होते है और दिलीप साथियों के साथ रगमहल में आग लगाने जाता है। डाक्टर को जब अरुणा के साथ उसे समझाने वहाँ पहुँचते हैं तब तक रगमहल मे आग लगा दी जाती है। हुस्नबानू, दिलीप, डाक्टर व अरुणा आग से घिर जाते है और रस्सी के सहारे मकान से निकलते है। अन्त मे दिलीप उतरता है पर रस्सी के जल जाने से गिरकर घायल हो जाता है। इस दुर्घटना की खबर पा माया भी आ जाती है। अरुणा दिलीप को वस्तु स्थिति से अभिज्ञ कराती है और वह बानू के पैरों पर गिर पड़ता है। डाक्टर परिवार को भावी परेशानियों से बचाने के उद्देश्य से दिलीप अपनी माँ हुस्न बानू के साथ वहीं से जाना चाहता है और तब माया भी साथ जाना चाहती है। दोनों का विवाह सम्पन्न होता है और इस सुखान्त रूप में उपन्यास का उपसहार होता है।

कथावस्तु म दिलीप के चरित्र की उद्भावना कर इस बात को पुष्टि की गई है कि धार्मिक सिद्धान्तों की आड़ मे पनपने वाली साम्प्रदायिक वृत्ति मनुष्य का धर्म नहीं अपितु अपना विकार है।

राजनीतिक पात्र

'धर्मपुत्र' म दिलीप, सुशील और शिशिर राजनीतिक पात्र हैं और तीन विभिन्न राजनीतिक विचारधाराओं का प्रतिनिधित्व करते हैं। दिलीप उपन्यास का प्रमुख पात्र है। वह सघ का पदाधिकारी और हिन्दुत्ववादी विचारधारा का समर्थक है। उसका हिन्दुत्ववादी दृष्टिकोण उस समय छिन्न भिन्न हो जाता है जब वह इस तथ्य से परिचित होता है कि वह जन्मा मुसलमान है।

सुशील साम्यवादी पात्र है। अन्य भारतीय कम्युनिस्टों जैसी ही उसकी रूप-रेखा—उच्च शिक्षाप्राप्त, मेधावी, दुबला-पतला, ज्योतिर्मय नेत्र, बढ़ा हुआ मस्तक। बिखरे बाल, लापरवाही युक्त वेशभूषा। हिन्दी उपन्यासों मे कम्युनिस्ट पात्रों का प्राय यही रूप रग प्रस्तुत किया गया है। शोषित वर्ग की हिमायत करने के कारण 'उत्तेजना' उसका गुण है। अवसर मिलते ही वह शीघ्र आवेश म आकर नाटकीय ढग से मेज पर घूँसा मारकर और जोर-जोर से चिल्लाकर अपने कम्युनिस्ट विचारों को प्रकट करता और मजदूरों के अतिरजित चित्र खींच पूँजीपतियों की मिट्टी पलीत करता है।[1]

सुशील का अनुज शिशिर आदर्श कांग्रेसी है यद्यपि उसकी आयु महज २१ वर्ष

---

१ आचार्य चतुरसेन—'धर्मपुत्र,' पृष्ठ ७५

है। लेखक ने उस पर प्रच्छन्न व्यंग्य किया है—'कभी वह केवल नमक डालकर मोटी-मोटी रोटी खाता—कभी उबली तरकारी। स्वास्थ्य और संयम के नाम पर वह अपने पिता की राय से भी बढ़ कर गांधी जी को ही प्रमाण मानता था।'

राजनीतिक पात्र होने पर भी सुशील और शिशिर का चरित्र पूर्णतया विकसित नहीं हो सका है।

राजनीतिक घटनाएँ

'धर्मपुत्र' में अनेक अन्तर्राष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय घटनाओं का विवरण एवं संकेत मिलता है। मुख्य घटनाएँ ये है—

(अ) अन्तर्राष्ट्रीय

(१) जातीयता के मित्र अंग्रेज, अमेरिकन और रूस का द्वितीय विश्व-महायुद्ध में राजनीतिक गठबन्धन,[१]

(२) द्वितीय महायुद्ध का विश्व-राजनीति पर प्रभाव,[२]

(३) विश्व महायुद्ध में यूरोपीय देशों की स्थिति व पूर्वीय देशों की बढ़ती राजनीतिक चेतना का उल्लेख[३]

(ब) राष्ट्रीय स्थिति

(१) राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की वृद्धिशील राजनीतिक गतिविधियाँ। दिलीप के भाषण से संघ की विचारधारा का प्रतिपादन किया गया है। वह कहता है—'अब एक जातीयता ही तो है—जिसके बल पर हम सब एक हो सकते हैं। संगठित होकर अपनी दासता के बन्धन काट सकते हैं।'[४] विभाजन के समय संघ के सक्रिय सहयोग का चित्रण भी मिलता है।

(२) महायुद्ध के समय साम्यवादी दल के प्रसार और उनकी नीतियों का उद्घाटन महायुद्ध का समर्थन करने पर भारतीय साम्यवादी दल जनता की नजरों से गिर गया था और 'साम्यवादी होना अक्षम्य अपराध राजद्रोह जैसी वस्तु मानी जा रही थी।'[५]

---

१ आचार्य चतुरसेन—'धर्मपुत्र', पृष्ठ ६५
२. आचार्य चतुरसेन—'धर्मपुत्र', पृष्ठ ६६-७०
३. आचार्य चतुरसेन—'धर्मपुत्र', पृष्ठ ११५-१६
४ आचार्य चतुरसेन—'धर्मपुत्र', पृष्ठ ६४
५ आचार्य चतुरसेन—'धर्मपुत्र', पृष्ठ ७१

(३) बयालीस के आन्दोलन का सजीव चित्रण—'धर्मपुत्र' में बयालीस की क्रांति के अनेक तथ्य व चित्र सग्रथित हैं।[१]

(४) जवाहरलाल नेहरू और सुभाषचन्द्र बोस के राजनीतिक व्यक्तित्व और कार्य-पद्धति पर विचार द्वितीय महायुद्ध के समय भारतीय राजनीति के इन दो राज-नीतिज्ञो का तुलनात्मक अध्ययन और उनकी कार्य पद्धति पर प्रकाश डालने का प्रयास प्रस्तुत उपन्यास मे किया गया है।[२]

राजनीतिक भाषण और वक्तव्य

राजनीतिक रूप से सप्राण बनाने के ध्येय से उपन्यास म अनेक राजनीतिक भाषण और वक्तव्य मिलते है। दिलीप और शिशिर के भाषण क्रमश. हिन्दुत्ववादी और काग्रेसी विचारधारा का पोषण करते है।[३]

उपन्यास म यथार्थवादी अकन की दृष्टि से प्रमुख राजनीतिज्ञो के वक्तव्यो को भी उद्धृत किया गया है यथा—'भारत छोडो' प्रस्ताव के बाद नेहरू जी का पत्रकारो को दिया गया वक्तव्य,[४] गाँधी जी के 'करो या मरो' की घोषणा जो उन्होने ७ अग-स्त को काग्रेस कमेटी ने बम्बई अधिवेशन मे की थी।[५] दिल्ली मे नेहरू जी के भाषण का अश[६] तथा सुभाष द्वारा गाँधी के नाम लिखे पत्र का अश[७] भी उद्धृत किया गया है।

भूले बिसरे चित्र

भगवतीचरण वर्मा कृत 'भूले-बिसरे चित्र' पाँच खडा मे विभाजित बृहदाकार उपन्यास विषय और शिल्प दोनो दृष्टियो से महत्वपूर्ण है। हिन्दी का यह प्रथम राज नीतिक उपन्यास है जिसमे सन् १८८५ स १९३० तक के भारतीय समाज के सामाजिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक जीवन का यथार्थ अकन हुआ है। उपन्यास मे मुशी शिव-लाल एक ऐसे पर्वेक्षक हैं जो अपने जीवन-काल मे सामन्ती जीवन को टूटते, मध्यवर्ग

---

१. आचार्य चतुरसेन—'धर्मपुत्र', पृष्ठ ११६-१७
२. आचार्य चतुरसेन—'धर्मपुत्र', पृष्ठ १३५
३. आचार्य चतुरसेन—'धर्मपुत्र', पृष्ठ १२४ व ११६
४. आचार्य चतुरसेन—'धर्मपुत्र', ष्ठ १३८
५ आचार्य चतुरसेन—'धर्मपुत्र', पृष्ठ ११६-१७
६. आचार्य चतुरसेन—'धर्मपुत्र', पृष्ठ ११८
७ आचार्य चतुरसेन—'धर्मपुत्र', पृष्ठ १३८

को पनपते और अन्त में मध्यवर्गीय धारणाओं के ह्रास को मूक दर्शक की भाँति देखते हैं।

प्रथम दो खंडों में एक कायस्थ परिवार की कथा के माध्यम से सामन्तवादी प्रवृत्ति और नौकरशाही का विस्तृत विवरण सामाजिक परिवेष्ठन में दिया गया।

तृतीय खंड में दिल्ली दरबार का सजीव और यथार्थ विवरण दिया गया है। इसकी भारतीय प्रतिक्रिया सोमेश्वर दत्त में देखी जा सकती है जो कहता है–'अब हम पूर्ण रूप से गुलाम हो गये। इंगलैण्ड का बादशाह दिल्ली में अपना दरबार करने आ रहा है, हिन्दुस्तान के राजे-महराजे उसके सामने अपना सिर झुकाएँगे, उसको नजर देंगे, उसका आधिपत्य स्वीकार करेंगे।'[1]

अंग्रेज अधिकारी हिन्दुस्तानी कर्मचारियों से कितना निम्न व्यवहार करते थे इसका उदाहरण क्लीमेण्ट्स व मीर साहब हैं। क्लीमेण्ट उसे सुअर, पाजी, बदमाश, हरामजादे आदि उपाधियों से विभूषित करता है पर मीर साहब उसका विरोध न कर *कहता है–'हुजूर की बात काटना सबसे बड़ी बेअदबी होगी।'*[2] राजनीतिक दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि भारतीय कर्मचारियों में पराधीनता के युग में आत्म-सम्मान जैसी कोई वस्तु शेष हो नहीं रह गई थी।

जनता में राजनीतिक जाग्रति का अभाव था। आर्य समाज ऋषियों की परम्परा को पुनर्जीवित करने की दिशा में किन्तु भारतीय मुसलमान उसे अपेक्षा की दृष्टि से देखते थे। नौकरशाही भी उसका विरोध करने में ही अपना कल्याण समझती थी। डिप्टी मुजिस्ट्रेट मीर जाफर व्यंग्य कहते हैं–'ये धोती परशाद दुनिया फतह करेंगे? मरने से पहले चींटी के पर निकलते हैं, ठीक उसी तरह हिन्दू धरम में यह आरिया समाज पैदा हुआ है।'[3] प्रारम्भिक राष्ट्रीय जाग्रति के रूप में आर्य समाज के कार्य-कलापों का आलोच्य उपन्यास में अनेक स्थलों पर परिचय मिलता है।

तृतीय खंड में हमें बंगाल की क्रान्तिकारी पार्टी के कार्यों की ओर भी इंगित किया गया है।[4] शासकीय कर्मचारियों व व्यापारियों की प्रवृत्ति[5] और पूँजीवाद के विस्तार का भी संकेत है। रिपुदमन के शब्दों में 'यह पूँजीवाद का युग है, यह बनियों की दुनिया है, सब कुछ बिकता है।'

---

१. भगवतीचरण वर्मा–'भूले बिसरे चित्र,' पृष्ठ २४५
२ भगवतीचरण वर्मा–'भूले बिसरे चित्र,' पृष्ठ २५३
३ भगवतीचरण वर्मा–'भूले बिसरे चित्र,' पृष्ठ २४३
४. भगवतीचरण वर्मा–'भूले बिसरे चित्र,' पृष्ठ २६९ ७०
५ भगवतीचरण वर्मा–'भूले बिसरे चित्र', पृष्ठ ४३६

चौथे खंड में गांधीयुग की छाप स्पष्ट है। इसमें ज्ञानप्रकाश का प्रवेश होता है जो राजनीतिक पात्र है। ज्ञानप्रकाश जो सन् १९१२ में बैरिस्टर बनने के लिए इंग्लैंड गया था, १९१९ में वहाँ से लौटकर इलाहाबाद में वकालत प्रारम्भ करता है। भारत में आने पर वह अमृतसर कांग्रेस अधिवेशन में भाग लेकर कांग्रेस का एक हिस्सा बन जाता है और अवसर आने पर बिना फीस लिए कांग्रेस की ओर से पैरवी करता है।

चौथे और पांचवें खंड में जिन राजनीतिक तथ्यों की ओर ध्यान दिलाया गया है वे इस प्रकार हैं—

कांग्रेस का कार्यक्रम

कांग्रेस राजनीतिक एवं रचनात्मक दोनों कार्यक्रमों के साथ आगे बढ़ रही थी। 'वह हिन्दुस्तान के लिए डोमीनियन स्टेट्स चाहती है ताकि हिन्दुस्तान वाले अपनी हालत सुधार सकें। वह केवल सुधारों की माँग करती है, लोगों को बगावत के लिए नहीं उकसाती कांग्रेस के सुधारों के लिए आन्दोलन बगावत नहीं।'[१]

यह प्रथम चरण था। दूसरे चरण में द्वितीय महायुद्ध के बाद स्वराज्य की प्रबल माँग की गई। अंग्रेज इस माँग के औचित्य को जिस रूप में देखते थे उसका आभास ग्रिफिथ के इस कथन से देखा जा सकता है।'[२]

मुसलमान डोमीनियन स्टेट्स के विरोध में थे क्योंकि इससे हिन्दुओं की सत्ता बढ़ जाने का भय था। डिप्टी अबुलहक के शब्दों में–'डोमीनियन स्टेटस, स्वराज इनके माने है अंग्रेजों की सरपरस्ती में हिन्दू राज का कायम होना ठाकुर साहेब।'[३] जब पढ़े-लिखे समझदारों की यह स्थिति थी तब साधारण मुस्लिम जनता की भावना को सहज ही समझा जा सकता है।

खिलाफत आन्दोलन

जौनपुर को केन्द्र बनाकर खिलाफत आन्दोलन का अकन किया गया है। मुसलमान सभा करते हैं तथा उसमें ब्रिटिश सरकार के खिलाफ विषवमन के साथ हिन्दुओं के खिलाफ भी अपनी भावना व्यक्त करते हैं। वास्तविकता भी यही थी कि तुर्की के खलीफा के प्रति देश के हिन्दुओं में एक प्रकार की उदासीनता ही थी।[४] गो ज्ञान प्रकाश को दूसरे शब्दों में कांग्रेस की खिलाफत आन्दोलन के प्रति सहानुभूति थी।

---

१ भगवतीचरण वर्मा–'भूले बिसरे चित्र,' पृष्ठ ४३७-३८

२. भगवतीचरण वर्मा–'भूले बिसरे चित्र पृष्ठ ४१४

३. भगवतीचरण वर्मा–'भूले बिसरे चित्र,' पृष्ठ ४३९

४ भगवतीचरण वर्मा–'भूले-बिसरे चित्र', पृष्ठ ४२२

असहयोग आन्दोलन

प्रथम असहयोग आन्दोलन (१९२१) के चित्रण के साथ विभिन्न वर्गों के अभिमत भी अंकित किए गये है, जिससे तात्कालिक घटना-काल अपनी सम्पूर्णता के साथ अभिव्यक्त हुआ है। अंग्रेजो को विश्वास था कि 'ब्रिटिश साम्राज्य शिक्षित और मध्यवर्ग के लोगो पर कायम है। जहाँ तक जमीदारो का प्रश्न है वे लोग हमेशा से राजाओ की गुलामी मे रह कर तथा राजाओं की निरकुशता मे सहायक होकर अपढ और निरीह जनता पर शासन करते आये है, अत्याचार करते रहे है। ये जमींदार तो ब्रिटिश शासन का साथ देंगे, यह स्पष्ट है।'[1]

दूसरी ओर जनसाधारण की सामान्य भावना लाला शीतलप्रसाद के वक्तव्य मे मिलती है—'हमे गाँधी जी का साथ देना चाहिए। अगर पूर्ण रूप से हमारा असहयोग सफल हो जाए तो ये दो लाख अग्रेज दूसरे ही दिन जहाजो पर लद कर रवाना हो जाएँगे।'[2]

जौनपुर और कानपुर की पृष्ठभूमि मे आन्दोलन के विभिन्न रूप और शासन के दमनात्मक कार्यों का जीवन्त चित्रण किया गया है। आन्दोलन के कारण हिन्दू-मुस्लिम एकता को बल मिला, इसके भी कई यथार्थ चित्र उरेहे गये है।

आन्दोलन और व्यापारी-स्वार्थ

असहयोग आन्दोलन मे पूँजीपति व्यापारियो ने स्वदेशी आन्दोलन मे दिल खोलकर मदद की। इसका कारण व्यापारियों का व्यापारिक स्वार्थ था। स्वदेशी आन्दोलन से विलायती माल का लोप होने के कारण देशी मिल-मालिको के व्यापार मे वृद्धि हुई और इसी स्वार्थ-सिद्धि के लिए वे कांग्रेस को आर्थिक सहयोग देने में पीछे न हुए। इसके लिए सर लक्ष्मीचन्द्र का उदाहरण लिया जा सकता है।

चौरीचौरा काड

चौरीचौरा काड के कारण आन्दोलन स्थगित होने पर देश मे हुई प्रतिक्रिया देखिए—'कदम आगे उठाकर पीछे हटाना, इसमे हमारी पराजय है। जब विजय हमारे सामने है, तब हम पीछे हट रहे है।'[3] किन्तु ज्ञानप्रकाश यह भी मानता है कि 'यह आन्दोलन समाप्त हो गया, और इसमे हम पराजित हुए, ऐसा दिखता है। लेकिन

---

१ भगवतीचरण वर्मा—'भूले बिसरे चित्र,' पृष्ठ ४४४

२ भगवतीचरण वर्मा—'भूले-बिसरे चित्र,' पृष्ठ ४४५

३ भगवतीचरण वर्मा—'भूले-बिसरे चित्र,' पृष्ठ ५३५

जितनी चेतना हम प्राप्त हुई है, उसे संचित करके हम लोगों को भविष्य का कार्यक्रम बनाने का मौका मिलेगा। यह संघर्ष लम्बा चलेगा।'[1]

अन्य राजनीतिक घटनाओं का विवरण

उपर्युक्त घटनाओं के सिवाय साम्प्रदायिक दंगे साइमन कमीशन-बहिष्कार, सर्वदल सम्मेलन, लाहौर कांग्रेस नमक सत्याग्रह का विवरणात्मक चित्रण भी प्रस्तुत उपन्यास में मिलता है। इन घटनाओं के परिवेश में तात्कालिक राजनीतिक वातावरण मुखरित हुआ है। यह नये युग का संकेत था और ज्वालाप्रसाद और भीखू जिन्होंने युग देखा था, जिन्दगी के अनेक उतार चढ़ाव देखे थे, जिन्होंने, जिसके पास अनुभवों का भण्डार था, विवश थे, निरुत्तर थे। ओर दूर हजारों, लाखों, करोड़ों आदमी जीवन और गति से प्रेरित, नवीन उमंग और उल्लास लिये हुए एक नवीन दुनिया की रचना करने के लिए चले जा रहे थे।

साम्प्रदायिकता

हिन्दू-मुस्लिम साम्प्रदायिक भावना का उपन्यास में जो विस्तृत चित्रण है वह युगानुरूप ही है। लेखक ने विभिन्न पात्रों के माध्यम से दोनों सम्प्रदायों की भावनाओं, अंग्रेजों की कूटनीतिक चाल और विद्वेष को दूर करने की कांग्रेसी भावना का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है। मुलतान में साम्प्रदायिक संघर्ष से हिन्दू-मुस्लिम एकता को आघात पहुँचता है।'[2] वस्तुतः यह अंग्रेजों की ही एक चाल थी। ज्ञानप्रकाश का कथन है—'हिन्दू-मुस्लिम-समस्या को अंग्रेजों ने मुस्लिम लीग की स्थापना करके खड़ा कर दिया है।'[3] वह इस समस्या को काल्पनिक मानता है। इसके विरुद्ध गंगाप्रसाद और फरह-तुल्ला जातीय आधार पर ही इस देखते हैं।

फरहतुल्ला का कहना है- हम दोनों का समाज अलग है हम लोगों की कल्चर अलग-अलग है। हिन्दू-समाज एक्सप्लाइटेशन की नींव पर कायम है। मुसलमानों के समाज की नींव यूनीवर्सल ब्रदरहुड पर कायम है। हम दोनों किस तरह आपस में मिल सकते हैं।'[4]

इन्हीं भावनाओं को लेकर साधारण घटनाएँ भी तूल पकड़कर साम्प्रदायिक रूप ग्रहण कर लेती हैं। मलका और बंशीधर की नियुक्ति को लेकर जो साम्प्रदायिक रंग उभरता है उसकी तह में ऐसी भावनाएँ ही कार्यरत हैं।

---

१ भगवतीचरण वर्मा-'भूले बिसरे चित्र,' पृष्ठ ५४३
२ भगवतीचरण वर्मा-'भूले बिसरे चित्र,' पृष्ठ ५६५
३ भगवतीचरण वर्मा-'भूले बिसरे चित्र,' पृष्ठ ४२०
४ भगवतीचरण वर्मा-'भूले बिसरे चित्र,' पृष्ठ ५६१ ६२

अछूतोद्धार

गाँधीयुग के प्रथम दशक में हरिजनोद्धार कांग्रेस का एक प्रमुख लक्ष्य निर्धारित हो गया था, जिसके कारण अछूतों में एक नयी चेतना आई। किन्तु अछूतोद्धार को वांछित सफलता तब तक प्राप्त न हो सकी थी। इसके दो कारण थे–एक तो सवर्णों के सक्रिय सहयोग का अभाव और दूसरा अछूतों में भी जात-पाँत का गहरा भेद।

'भूले बिसरे चित्र' में गेंदालाल अछूतों का प्रतिनिधिक पात्र है। ज्ञानप्रकाश अछूतोद्धार के लिए प्रयत्नशील है। वह आन्दोलन में अछूतों का सहयोग राजनीतिक कारणों से भी लेना चाहता है। वह कहता है–'इस आन्दोलन में हमारे देश के अछूतों का कोई योग नहीं है और देश में अछूतों की कुल संख्या करीब ६ करोड़ है। इन लोगों का सहयोग हमें चाहिए ही।' किन्तु गेंदालाल आन्दोलन में किसी प्रकार का सहयोग देना नहीं चाहता, क्योंकि सामाजिक स्थितियों में वह अछूतों के प्रति कोई परिवर्तन नहीं पाता।

बयालीस

प्रतापनारायण श्रीवास्तव के 'बयालीस' में सन् बयालीस की क्रांति और गाँधीवाद के सिद्धान्तों का चित्रण किया गया है। उद्देश्य के अनुरूप उपन्यास का कथानक रमईपुर ग्राम को केन्द्र बनाकर राजनीतिक प्रभाव से प्रेरित साम्प्रदायिक विद्वेष से ग्राम की नष्ट होती एकता को स्थापित कर स्वाधीनता-आन्दोलन में गाँव के महत्वपूर्ण योगदान को अंकित करता है। साम्प्रदायिक एकता और विद्वेष को चित्रित करने के लिए हिन्दू-मुस्लिम पात्रों के साथ अंग्रेज पात्रों की उद्भावना की गई है।

राजनीतिक घटनाएँ

'बयालीस' के कथानक के माध्यम से लेखक ने अन्तर्राष्ट्रीय तथा राष्ट्रीय राजनीतिक घटनाओं को प्रस्तुत करने का भी प्रयास किया है।

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक चित्रण के अन्तर्गत द्वितीय महायुद्ध के अवसर पर ब्रिटेन के जापान से पराजित होने, बरमा को उसके भाग्य पर छोड़ देने, भारतीयों द्वारा जापान से मिल कर स्वाधीन होने के प्रयास का विवरण प्रस्तुत कर अंग्रेजी साम्राज्यवाद की राजनीतिक स्थिति की ओर संकेत किया गया है। वस्तुत ये अन्तर्राष्ट्रीय घटनाएँ राष्ट्रीय आन्दोलन के पूरक के रूप में ही आई है।

राष्ट्रीय घटनाएँ

राष्ट्रीय राजनीतिक घटनाओं में हिन्दू-मुस्लिम समस्या व बयालीस का आन्दोलन विस्तार से चित्रित किया गया है। इसको आधार बनाकर ही गाँधीवाद के प्रमुख सिद्धान्तों

को भी वाणी प्रदान की गई है। बयालीस के आन्दोलन को लेकर अहिंसक और हिंसक क्रिया-कलापो का भी स्पष्टीकरण दिया गया है।

हिन्दू-मुस्लिम समस्या

रमईपुर ग्राम को केन्द्र बनाकर वहाँ साम्प्रदायिक एकता को नष्ट करने वाले प्रयत्नो की गाथा कही गई है। साम्प्रदायिक फूट उत्पन्न करने वाले तत्व अग्रेजी शासन के गुर्गे दोनो सम्प्रदायो की धार्मिकता उभाड कर मुहर्रम के अवसर पर साम्प्रदायिक दगे की स्थिति उत्पन्न करने म सफल होते हैं। एक ओर अनवर मुसलमानो को और दूसरी ओर जागेश्वर हिन्दुओ को भडकाता है, पर दिवाकर का त्याग इस विषम स्थिति का टालने म समर्थ होता है। वह आहत होता है, पर पूरा गाँव एकजुट हो अग्रजो से लोहा लेने का सकल्प करता है। अनवर की धर्मान्धता दूर होती है और वह इस तथ्य से परिचित हो जाता है—'अग्रेज हुक्काम के लिए हिन्दू और मुसलमान दोनो दुश्मन है, दोनो स एक सा खतरा है, इसलिए वे काँटे से काँटा निकाल रहे है। हिन्दुओ से मुसलमानो को लडाकर दोनो की ताकत जाया कर रहे है, मगर जब वे गाँव तबाह करते है, तब उसके सारे बाशिन्दो पर गोलियाँ चलाते हैं, वहाँ वे हिन्दू मुसलमान का लिहाज नही करते।'[१]

गुलाब भी जानती है कि यह साम्प्रदायिक विद्वेष अग्रेजी शासन की देन है क्योकि 'अग्रेज हिन्दू मुसलमानो को लडाकर अपना राज्य जमाये रखना चाहते है।'[२] अखिया, रहीम और नसीम सभी साम्प्रदायिक विद्वेष को मानवता तथा राष्ट्रीय एकता के लिए अहितकर मानते है। रहीम भाव विह्वल हो एक प्रसग पर कहता है — हिन्दू और मुसलमान, एक ही जिस्म के दो अजो है, एक ही माँ के दो बेटे है। मुझे तो दोनो म कोई अन्तर नहीं दिखाई पडता है। हिन्दू अगर सूर्य को मानते है तो मुसलमान चाँद को, लेकिन चाद और सूरज खुदा के दोनो नूर हैं।'[३]

अखिया के शब्दो म 'हिन्दू-मुसलमान धर्म अल्लाह की दोनो आँखें है—एक दाहिनी और एक बायी।'[४] नसीम भी हिन्दू और मुस्लिम धर्म म कोई अतर अनुभव नह करती।[५] इस प्रकार गाँधीवादी दृष्टिकोण से हिन्दू मुसलमान की एक विशिष्ट

१ प्रतापनारायण श्रीवास्तव—'बयालीस,' पृष्ठ २१७
२ प्रतापनारायण श्रीवास्तव—'बयालीस,' पृष्ठ १२
३ प्रतापनारायण श्रीवास्तव—'बयालीस,' पृष्ठ २१७
४ प्रतापनारायण श्रीवास्तव—'बयालीस,' पृष्ठ १५४
५ प्रतापनारायण श्रीवास्तव—'बयालीस,' पृष्ठ ११

भारतीय समस्या का समाधान करते हुए लेखक ने भारतीय राष्ट्रीयता के स्वरूप को अभिव्यक्ति दी है।

सन् बयालीस का आन्दोलन

साम्प्रदायिक एकता का ही प्रतिफल है कि रमईपुर के समस्त निवासी महात्मा गांधी के अहिंसात्मक आन्दोलन में भाग ले देश की स्वतन्त्रता के लिए बलि हो जाते हैं।

बयालीस की क्रांति के चित्रण में हिंसा और अहिंसा की विवेचना भी की गई है, क्योंकि आन्दोलन के समय दोनों प्रवृत्तियाँ सक्रिय हो गई थी।[1]

गांधीय सिद्धान्तों का प्रतिष्ठान

'बयालीस' में गांधीय सिद्धान्तों का प्रतिष्ठान भी मिलता है। मानवतावाद, अहिंसा, खद्दर, भ्रष्टाचार, अछूतोद्धार,[2] शराबबन्दी[3] पर गांधीवादी दृष्टिकोण से विचार किया गया है।

मानवतावादी दृष्टिकोण नसीम के कथनों से उभरा है।

अहिंसावादी सैनिक और उसकी अहिंसा पर विचार व्यक्त करते हुए कहा गया है—'सैनिक का जीवन, मृत्यु के साथ निरन्तर खेलने वाले का जीवन है, और अहिंसक सैनिक के जीवन का ध्येय तो केवल मृत्यु को आलिंगन करना है। सत्य की वेदी पर आत्म-बलिदान करना वीरत्व की पराकाष्ठा है। कायरता में मृत्यु का भय होता है, इसलिए अहिंसा में कायरता नहीं है। अहिंसक सेनानी उत्सर्ग की भावना से प्रेरित होकर मृत्यु की ओर अग्रसर होता है, तथा अपने ध्येय की प्राप्ति में अपना जीवन तक उत्सर्ग करने के लिए लालायित रहता है। पशु-बल के प्रहार पर प्रहार सहता हुआ, प्रत्याक्रमण नहीं करता, क्योंकि प्रत्याक्रमण की भावना असत् है, तामस है।[4]

चर्खा और खद्दर के समसामयिक प्रभाव को 'चर्खा-दंगल' के आयोजन में देखा जा सकता है। आन्दोलनकारियों द्वारा गाया गया गीत भी गांधीवाद के प्रभाव से युक्त है—

'सत्य, अहिंसा की नाचेगी, फिर-फिर खग हमारी आज'[5]

---

१ प्रतापनारायण श्रीवास्तव—'बयालीस,' पृष्ठ १६२
२ प्रतापनारायण श्रीवास्तव—'बयालीस,' पृष्ठ १६१
३ प्रतापनारायण श्रीवास्तव—'बयालीस,' पृष्ठ १५६
४ प्रतापनारायण श्रीवास्तव—'बयालीस,' पृष्ठ २१६
५ प्रतापनारायण श्रीवास्तव—'बयालीस,' पृष्ठ २०१

भ्रष्टाचार पर व्यंग्य

महायुद्धकालीन भ्रष्टाचार और घूसखोरी पर बडे मार्मिक व्यग्य किये गये हैं—'घूस का साम्राज्य तो सारे ससार मे फैला हुआ है, किन्तु भारत मे उसकी राजधानी स्थापित है।' यहाँ पर 'भगवान की भाँति घूस के भी सहस्र नाम हैं। सहस्रनाम के अतिरिक्त यह सहस्रमूर्ति भी है। कोई भी सरकारी कार्यालय नहीं है, जहाँ घूस का अधिकार न हो, भगवान की भाँति वह सर्वव्यापी भी है।'[1] वस्तुत भारतीय राष्ट्रीय उन्नति के मार्ग म यह बाधा चीन और पाकिस्तान से भी भयकर है।

'बयालीस' की विशिष्टताएँ

राजनीतिक उपन्यास होने के कारण 'बयालीस' म विवरणात्मक अश, भाषण देने की प्रवृत्ति और व्याख्यात्मक कथोपकथन का बाहुल्य है। नसीम का मानवतावाद, नरेन्द्र की राष्ट्रीय एव अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति का विवेचन करीम के अहिंसात्मक क्रान्ति आन्दोलन पर विचार और दिवाकर का साम्प्रदायिक एकता पर जोर भाषणो के माध्यम से व्यक्त हुआ है।

विवरणात्मक ढग से मानव विकास की विवेचना माधुरी, राजसत्ता और अधिकारो की विवेचना दिवाकर व सामाजिक न्याय की व्याख्या शारदा द्वारा प्रस्तुत की गई है। उपन्यास की यह अपनी मचीय विशेषता है।

निशिकांत

विष्णुप्रभाकर का 'निशिकांत' भी गांधीयुग का उपन्यास है, जिसमे सन् १९२० से १९३९ की अवधि का घटनाचक्र वर्णित है। पहले यही उपन्यास बृहत रूप मे 'ढलती रात' शीर्षक से प्रकाशित हुआ था, जिसमे से बाद मे २१९ पृष्ठ कम कर व्यर्थ विस्तार को हटा दिया गया है। इस सामाजिक राजनीतिक उपन्यास को जीवनी भी कहा जा सकता है। इसमे निशिकात नामक मध्यवर्ग के एक व्यक्ति की कहानी है जो, देशभक्त, कथाकार, चरित्रवान, सुन्दर युवक है। परन्तु एक सरकारी कार्यालय मे क्लर्क है। आर्य समाजी होने पर भी निशिकान्त हिन्दू-मुस्लिम सस्कृति को अलग अलग मान कर भी हिन्दू मुस्लिम साम्प्रदायिक समस्या को आर्थिक व राष्ट्रीय दृष्टिकोण से देखता है। *इस साम्प्रदायिक समस्या को ही उपन्यास का केन्द्रबिन्दु बनाया गया है।* हिन्दू-मुस्लिम दगो म उसकी प्रेमिका कमला का पति मोहनकृष्ण मारा जाता है और जीवन-यापन के लिए कमला अध्यापिका बन जाती है। निशिकात का मित्र कुमार काग्रेसी है, ऊपर से

---

१ प्रतापनारायण श्रीवास्तव—'बयालीस,' पृष्ठ १७१

आदर्शवादी और उदार पर भीतर से दुर्बल। कुमार व निशिकान्त के हृदय में कमला के लिए द्वन्द्व है, परन्तु निशिकान्त में रुकावट कहीं नहीं दिखाई पड़ती, अलबत्ता कुमार के मन में कमजोरी अवश्य आती है। अन्त में कुमार अपनी पूर्व पत्नी को, जो परिस्थितिवश पतित हो जाती है, स्वीकार कर लेता है और भयानक मानसिक संघर्ष के पश्चात् कमला को निशिकांत भी स्वीकार कर लेता है। निशिकांत के राष्ट्रीय कार्य-क्षेत्र में भाग लेने के कारण राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के प्रयत्नों की कहानी का समावेश स्वाभाविक रूप से हुआ है।

प्रारम्भ में उपन्यास की गति शिथिल है, पर कुमार व कमला का मानसिक संघर्ष पूरी सावधानी व सहृदयता से चित्रित किया गया है। लेखक ने जैनेन्द्र जी की सैद्धान्तिक शैली का अनुसरण किया है। हिन्दू-मुस्लिम समस्या को चित्रित करने के कारण सुरैया व हबीब जैसे मुस्लिम पात्रों को उपन्यास में पहले तो बहुत महत्व मिला, पर बाद में लेखक इन पात्रों के साथ समुचित न्याय न कर सका। निशिकांत, कमला और कुमार के त्रिकोण में उनका स्थान संभव भी नहीं था। उपन्यास में परिस्थितियों का चित्रण, क्लर्क वर्ग, विधवाओं की दशा, आर्य समाज की कार्य-विधि आदि का चित्रण भी कुशलता से किया गया है, पर लेखक की राजनीतिक चेतना भली भाँति प्रस्फुटित नहीं हो सकी है। हिन्दू मुस्लिम समस्या, बेकारी और जातिभेद की समस्याओं को राजनीतिक भावभूमि पर देखने का सयत्न प्रयास अवश्य है, पर प्रेम की समस्या (भले ही उसे भी गाँधीवादी दृष्टिकोण से उठाया गया है) ही प्रमुख रूप से उठाई गई है।

कठपुतली

'कठपुतली' में मध्यवर्गीय जीवन के विभिन्न पक्षों के यथार्थवादी दृष्टि से मूल्यांकन के साथ राष्ट्र विभाजन की घटना का विस्तृत चित्रण मिलता है। भारत-विभाजन की घटना को आधार बनाकर हिन्दी में अनेक उपन्यासों की रचना की गई है। किन्तु कला और भाव पक्ष की कसौटी पर 'कठपुतली' ही उनमें सर्वश्रेष्ठ कहा जा सकता है। यह अपने ढंग का प्रथम उपन्यास है, जिसमें कलाकार का अनुभूतिशील हृदय स्पन्दित हुआ है। राष्ट्र के बँटवारे के परिणाम-स्वरूप सदियों से साथ-साथ व्यतीत होने वाला जन-जीवन विच्छिन्न हो जाता है और पाले पोसे सारे रिश्ते एक झटके में ही टूट कर बिखर जाते हैं। राजनीतिक निर्णय मानव-जीवन को किस तरह विपन्न बना देता है, इसका 'कठपुतली' में अच्छा दिग्दर्शन हुआ है। उपन्यास का नायक है सुनील और नायिका है दीपाली। नाटककार के रूप में सुनील लाहौर में ख्याति अर्जित करता है और उसकी ड्रामापार्टी और उसके कलाकार जन-जीवन में एक विशिष्ट स्थान बना लेते हैं। इसी बीच साम्प्रदायिक संघर्ष होता है और सुनील विस्थापित के रूप में दिल्ली

पहुँचता है। उस नरमेध को देखकर उसका कलाकार इन बनते बिगड़ते चित्रों को निरीह दृष्टि से देखता है। भारत का विभाजन, स्वाधीनता की प्राप्ति और साम्प्रदायिक संघर्ष के मध्य सुनील खण्ड खण्ड हो जाता है और अपनी सर्गशक्तियों के विकास में असमर्थ हो जाता है। सुनील कलाकार है और इस रूप में व्यक्तित्व और सामाजिक जीवन का द्वन्द्व उसके हृदय को मथित करता है। उसका कलाकार कुंठित हो जाता है और वह अपने को एक ऐसी निस्सहाय स्थिति में पाता है, जिसमें कोई गति नहीं है। इस तरह राष्ट्र विभाजन की पृष्ठभूमि पर व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन की यथार्थ की भूमिका पर देखने का प्रयत्न किया गया है। किन्तु इतना होने पर भी यह कहा जा सकता है कि सामाजिक जीवन और पात्रों को सहानुभूति प्रदान करने पर भी सत्यार्थी जी मनुष्य के मनस्तत्वों का अध्ययन भली भाँति नहीं कर सके हैं। एक समीक्षक के शब्दों में 'वैयक्तिक जीवन और देशीय वातावरण का ऐसा सुन्दर समन्वय सत्यार्थी ने किया है कि दोनों एक दूसरे के कारण अधिक मार्मिक हो गये हैं। सुनील का कलात्मक हृदय हिन्दू-मुसलमानों के अत्याचारों की क्रूरता को समझने में सहायक है, तो उसका कलात्मक जीवन इस भयंकर वातावरण में अधिक सात्विक दिखाई पड़ता है।'[1]

ज्वालामुखी

राजनैतिकता की प्रवृत्ति को प्रधानता देने वाले उपन्यासों में 'ज्वालामुखी' एक विशिष्ट कृति है। इसमें बयालीस का आन्दोलन और वातावरण सजीव रूप में चित्रित किया गया है। उपन्यास का नायक व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा से मुख फेर कर राष्ट्र की स्वाधीनता के लिए अंग्रेजी शासन से लोहा लेता है। वस्तुतः वह भारतीय चारित्र्य और संस्कृति का प्रतिनिधि है, जिसमें राष्ट्र की आत्मा भंकृत होती है। हम उसे गाँधी युग का प्रतिनिधिक पात्र भी कह सकते हैं, क्योंकि कर्तव्य-निष्ठा और अनुशासन के साथ गाँधीवाद के सभी तत्वों का उसके जीवन में अनुकरणीय समाहार हुआ है। वह उस स्फुलिंग के समान है, जो आसपास के वातावरण को प्रकाशित करने में ही अपनी सार्थकता मानता है।

सामाजिक क्षेत्र में पारस्परिक स्पर्धा के प्रसंग तो अनेक हैं, किन्तु प्रभाव-वृद्धि के लिए रचे षड्यन्त्रों का अभाव है। अभय एक सुदृढ़ पात्र है जो राष्ट्र हित के लिए मृत्यु के आलिंगन के लिए सन्नद्ध है। क्रांतिकारियों के संघर्षपूर्ण जीवन में व्यक्तित्व का विकास किस रूप में होता है, अभय उसका उत्कृष्ट उदाहरण है। हमारा राष्ट्रीय आन्दोलन आदर्श की आधार-पीठिका पर अवलम्बित था और वह सत्य, अहिंसा और

१ डॉ० गणेशन—हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन, पृष्ठ २१७

शान्ति के रूप में इस उपन्यास में सुरक्षित है। कहा गया है कि जीवन की सच्ची अनुभूति के बिना आदर्शवाद प्रवचना में और यथार्थवाद विकृतिवाद में परिणत हो जाता है, किन्तु स्वानुभाव की प्रतीति उन्माद के प्रत्येक रूप को मार्मिक बना देती है। गांधीवाद के आदर्शों पर आधारित बयालीस की क्रान्ति का सफल चित्रण उपन्यास के नाम को सार्थक करता है।

'ज्वालामुखी' में प्रेम का स्वरूप भव्य और उदात्त रूप में प्रस्तुत किया गया है जो हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासों में दुर्लभ है। पात्रों का चरित्र-चित्रण यथार्थ की भूमि पर होने के कारण जीवन्त और प्रेरणाप्रद है। कथानक आदर्शवादी दृष्टिकोण के अनुरूप गठित होने पर भी आरोपित नहीं लगता। प्रकाशकीय में यह सत्य ही कहा गया है कि 'ज्वालामुखी' में डमरू की डमडम की प्रतिध्वनि सुनायी देती है, मुरली का कोमल नाद नगाड़े के शंखनाद में परिवर्तित हो जाता है और हमारे सामने भारतीय आत्मा की मुक्ति पाने की छटपटाहट और तड़प शब्दों में साकार हो उठती है।

रूपाजीवा

वर्तमान युग के सम्बन्ध में प्रकाश डालने वाले उपन्यास 'रूपाजीवा' का घटनाकाल द्वितीय महायुद्ध के ८१ वर्ष पूर्व से प्रारम्भ होकर स्वाधीनता के बाद के युग तक का है। बस, घटना-काल को लेकर राजनीतिक परिस्थितियों से बदलते हुए मानव-मूल्यों का एक सजीव चित्र प्रस्तुत किया गया है। उत्तर प्रदेश के एक बनिया परिवार के पात्रों और घटना-काल की परिस्थिति के अनुसार घटनाओं की सृष्टि कर लेखक ने अपने विचारों को अभिव्यक्ति दी है।

द्वितीय महायुद्ध के समय जब राष्ट्रीय आन्दोलन जोर पकड़ रहा था, तब भी भारतीय पूँजीवादी अंग्रेजों के ही गीत गाते थे। गोरेमल एक ऐसे ही व्यवसायी हैं। वे कहते हैं "ये अंग्रेज और यह गांधी जी का सत्याग्रह, यूरोप में लड़ाई की तैयारी और यहाँ स्वराज्य की माँग, स्वदेशी आन्दोलन और विदेशी बहिष्कार, गांधी जी के 'यंग-इण्डिया' का तमाशा। हाय रे-हाय! घर की बिलैया बाघन कूँ नजारा! अरे ये अंगरेज हैं, पीस कर पी लेंगे। भौंक देंगे लड़ाई में सारे हिन्दुस्तान को। फिर चौकड़ी भूल जायेगी!"[1]

गोरेलाल व्यवसायी है और राजनीतिक दलों की बाढ़ को भी यह बिजनेस के नुक्ते से देखता है : "अपने मुल्क की नब्ज देखो, यह कांग्रेस, उसमें यह गरम दल, यह नरम दल, गरम दल में भी यह क्रान्तिकारी, यह फार्वर्ड ब्लाक। और यह हिन्दू महासभा,

१. लक्ष्मीनारायण लाल : रूपाजीवा, पृष्ठ ३७

या हरिजन-सभा, यह डिप्रेस क्लास और इनका बाप जमींदार असोसिएशन और प्रिंस कमेटी। एक ओर आजादी की लड़ाई, सत्याग्रह, दूसरी ओर इलेक्शन और अंग्रेजों का यह सबसे भयानक हथियार मुस्लिम लीग एवं जिन्ना साहब। यह बिजनेस का नुस्खा है।"

'रूपाजीवा' का एक महत्वपूर्ण राजनीतिक पात्र है ईशरी। सरकार की दृष्टि में वह अत्यन्त खतरनाक है। वह बम्बई क्रांतिकारी दल का प्रमुख कार्यकर्ता है, जिसकी पार्टी ने अनुमानतः पिछले वर्ष फ्रान्टियर मेल से सरकारी खजाना लूटा था।[1]

यह ईशरी पार्टी को धन की आवश्यकता पर घर से धोखा देकर बीस हजार रुपया ले जाता है। यही क्रांतिकारी ईशरी बाद में कुण्ठित हो शराब पीने लगता है। वह कहता है—"मैं स्वतंत्रता संग्राम लड़ा हूं। अब भोगूंगा उसे। मैंने त्याग किया है, अब मैं स्वतन्त्र हूं, चाहे जो करूं। मैं अभुक्त नहीं मरना चाहता।' स्वाधीन भारत में जिस जीवन का वह उपभोग करता है वह सामाजिक क्रान्ति और राष्ट्रीय स्वतंत्रता का बौनापन सिद्ध करता है। किसी समय में सिर पर जटा जैसे सूखे बिखरे बाल, साधुओं जैसी दाढ़ी खाकी पेंट पर कुरता, पर पाँव नंगे और कमर में दोनों ओर दो पिस्तौलें, रखकर क्रान्ति की अलख जगाने वाला ईशरी, जिस विवशता से अन्तिम जीवन व्यतीत करता है वह वर्तमान स्वार्थी राजनीति का कारुणिक प्रसंग है। और ईशरी के इस जीवन को देख सूरज इस निष्कर्ष पर पहुँचता है 'मुक्ति के प्रश्न में सबसे पहले व्यक्ति है। फिर समाज, फिर राष्ट्र और राष्ट्र से परे? और संग्राम?'[2] वह वर्तमान राजनीतिक दलों की कार्यविधि पर विचार करता है और जो तथ्य उसके हाथ लगता है, वह है—ये पार्टियाँ आकांक्षा जगाती हैं, परितृप्ति नहीं देतीं। हमारा जो कोमल है, शुभ है मानवीय है, उसका अपहरण कर लेती हैं और फिर उन्हीं को ढूँढने के लिए रास्ता बना देती है—ऐसा रास्ता जो महज चलने के लिए है, आगे बढ़ने के लिए नहीं।[3] बुआ का भी कथन है—"ऐसी क्रान्ति लाने में जब एक बार मनुष्य का सुन्दर और सत्य मर जायगा, तो उसे दुनियाँ की कोई शक्ति, कोई शासन कोई हस्ती पुनर्जीवित नहीं कर सकती।"[4]

---

१ लक्ष्मीनारायण लाल रूपाजीवा, पृष्ठ १५६
२ लक्ष्मीनारायण लाल रूपाजीवा, पृष्ठ २५२
३ लक्ष्मीनारायण लाल रूपाजीवा, पृष्ठ ३००
४. लक्ष्मीनारायण लाल रूपाजीवा, पृष्ठ ३६२

राजनीतिक तथ्य

उपन्यास मे अनेक राजनीतिक तथ्यो का विवरण भी साकेतिक रूप से दिया गया है। इनमे से प्रमुख है

(१) समसामयिक अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक स्थिति—'इटली ने अबीसिनिया पर आक्रमण कर दिया था, अब इटली की ताकत पश्चिम उत्तर की ओर बढ रही है—इधर मुसोलिनी, उधर हिटलर।'[१]

(२) महायुद्धकालीन राष्ट्रीय राजनीतिक स्थिति—इसके अन्तर्गत कांग्रेस के अहिंसक आन्दोलन, बढती हुई साम्प्रदायिक भावना, वारफण्ड का बायकाट, काला बाजार की बढ़ती हुई घृणित प्रवृत्ति आदि का उल्लेख उपन्यास मे यत्र-तत्र मिलता है।[२]

होली के अवसर पर जनता अपनी राष्ट्र-भक्ति लोकगीत के माध्यम से भी व्यक्त करती है

मोरे देसी चुनरिया हो राम,
सजन मोरे रग बिदेसी न डारियो
जा को गांधी बाबा बुन दयी
रग दयो है जवाहरलाल।[३]

कांग्रेस वालटियर्स द्वारा गाये गीत मे भी राष्ट्र के ऊपर कुरबान होने की भावना अभिव्यजित है। सन्तोष द्वारा सूरज को लिखे गये पत्र मे काशीपुर की राजनीतिक स्थिति से राष्ट्रीय आन्दोलन का विवरण प्रस्तुत किया गया है।[४] आन्दोलन को प्रोत्साहित करने मे तात्कालिक पत्रकारिता ने जो योगदान दिया था, उसका चित्रण 'धुआँधार' और 'सवादहन' से स्पष्ट किया गया है। वारफण्ड का बायकाट और छात्रों द्वारा कॉलेज बिल्डिंग पर तिरगा फहराने का प्रयास और फलस्वरूप गोलीकाण्ड की घटना आन्दोलन के ही अग हैं।

इतना ही नहीं, अपितु लेखक ने आन्दोलन के समय प्रचलित नारो को भी लेखनी-

---

१ लक्ष्मीनारायण लाल : रूपाजीवा, पृष्ठ १०६
२ लक्ष्मीनारा ण लाल . रूपाजीवा, पृष्ठ २०४-२०५
३ लक्ष्मीनारायण लाल . रूपाजीवा, पृष्ठ ८७
४ लक्ष्मीनारायण लाल : रूपाजीवा पृष्ठ १४१-१४२

बद्ध कर दिया है—'बन्द दरवाजे तोड दो, अंग्रेजो भारत छोड दो' व 'अपने देश में अपना राज। यही तिरंगा है सिरताज।'[1]

साम्प्रदायिक भावना के विस्तार को हिन्दुत्ववादी प्रा० दयाराम शास्त्री के भाषण में देखा जा सकता है। साम्प्रदायिक भावना को उभाडने में अंग्रेजो के हाथ होने का उल्लेख भी किया गया है।

ब्लेक मार्केट

युद्धकालीन भारत में ब्लेक मार्केट की आलोचना के साथ उसमे लिप्त अवसर-वादी कांग्रेसियो पर भी फबतियाँ कसी गई हैं। गाँधी आश्रम भी इससे अछूता नही है। रूपाजीवा में युद्धकालीन राजनीतिक भारत की एक झांकी अवश्य मिलती है।

स्वतन्त्र भारत

शुकदेव बिहारी मिश्र और प्रतापनारायण मिश्र का 'स्वतन्त्र भारत' बारह परिच्छेदो में विभाजित उपन्यास है जो भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के विकास की कथा को क्रमिक रूप से प्रस्तुत करता है। इसका आरम्भ गांधी जी के प्रथम असहयोग आन्दोलन के समय कॉलेज छोड़ने के निर्देश से होता है और इस प्रसंग पर छात्रो में उत्पन्न विभिन्न प्रतिक्रियाओं का अंकन किया गया है।

नायक भारतभूषण निर्धन परिवार का होने पर भी उच्च शिक्षा प्राप्त करता है। उसके कॉलेज के सहपाठी है राजपुत्र शैलेन्द्र, अयोध्यादत्त और मथुरादत्त पांडे। असहयोग आन्दोलन के समय अयोध्यादत्त और मथुरादत्त पांडे कॉलेज छोड़कर राजनीति के क्षेत्र में प्रवेश करते है। इच्छा होने पर भी भारत भूषण और शैलेन्द्र पारिवारिक एवं सामाजिक कारणों से आन्दोलन से दूर रह शिक्षाभ्यास करते रहते है। नये रंगमंच पर अयोध्यादत्त कांग्रेसी नेता बन जाते है, पर मथुरादत्त कांग्रेस की ओर से जेल जाने पर भी जेल से कम्युनिस्ट बनकर निकलते है। द्वितीय महायुद्ध के समय देश मे साम्यवाद की लहर आती है और जिसके प्रभाव को दिखलाने के लिए मिल हड़ताल की आयोजना उपन्यास मे की गई है। इसी प्रसंग पर लेखक ने श्रम जीवियो के मनोभावो को अभिव्यक्ति देने का प्रयास किया है। श्रमिको की सहायिका माधवी देवी भी परिस्थितियो का लाभ उठाकर मिल मालिक कपूरचन्द से विवाह सम्बन्ध स्थापित कर लेती है। यद्यपि इसके पूर्व सेक्स को वे साम्यवादी दृष्टिकोण से ही देखती थी। इतना ही नही, अपितु उसकी आड मे वे मथुरादत्त से शारीरिक सम्बन्ध भी बना चुकी हैं। माधवी के इस परिवर्तित रूप को देखकर मथुरादत्त आतंकवादी हो जाते है और पकड़े जाने पर

---

१ लक्ष्मीनारायण लाल रूपाजीवा, पृष्ठ २१४

दस वर्ष की जेल काटते हैं। इस प्रसग मे लेखक कथानक को बगाल की भूमि पर उतार देता है। यहाँ अरिदम नामक आतकवादी की बचकाना हरकतें देखने को मिलती हैं, जो उपन्यास को निम्नस्तरीय बनाती हैं। विवाहिता किन्तु काम पीडित युवती के चक्कर मे पडकर वह दल को छोड़ सियालकोट आकर कपूरचन्द के यहाँ कार्य करने लगता है।

पचम अध्याय मे उन कारणो का राजनीतिक विवरण है, जिसके फलस्वरूप राष्ट्र को स्वतन्त्रता मिली और साम्प्रदायिक दगे हुए। राष्ट्र के विभाजन के समय हुए नरमेध और स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद कश्मीर पर हुए आक्रमण को भी समेटने का प्रयत्न किया गया है। यद्यपि सन् १९२१ से काश्मीर आक्रमण तक की राजनीतिक घटनाओ को उपन्यास मे सग्रथित किया गया है, तथापि राजनीतिक उपन्यास के रूप मे 'स्वतन्त्र भारत' एक राजनीतिज्ञ की भूमिका के बावजूद एक 'बचकाना प्रयास' बनकर रह गया है। राजनीतिक तत्वों और उपन्यास के स्वरूप, दोनो दृष्टियो से यह एक असफल रचना है। कथावस्तु का सम्यक् निर्वाह नहीं हो सका है तथा अस्वाभाविकताओ से परिपूर्ण होने के कारण वह पाठक के हृदय मे विक्षोभ के भाव ही जाग्रत करती है। अनेक राजनीतिक तथ्य यथा द्वितीय महायुद्ध के समय आतकवादी गतिविधियाँ आदि ऐतिहासिक नहीं कही जा सकती। भाषा-शैली की दृष्टि से भी उपन्यास निम्न कोटि का है।

स्वतन्त्रता-संग्राम की पृष्ठभूमि पर लिखित मन्मथनाथ गुप्त के राजनीतिक उपन्यास

व्यक्तित्व

हिन्दी के अहिन्दीभाषी उपन्यासकारो मे मन्मथनाथ गुप्त का विशिष्ट स्थान है। उनका जन्म सन् १९०८ म एक मध्यवित्त बगाली परिवार मे हुआ था और वे हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासकारो की उस शृखला से आबद्ध है, जिनका सक्रिय राजनीति से निकटतम सम्बन्ध रहा है। छात्रावस्था से ही उनमे उत्कट राष्ट्र प्रेम की भावना उत्पन्न हो गई थी और जिसके कारण वे कांग्रेस सचालित प्रथम असहयोग आन्दोलन मे महज १३ वर्ष की आयु मे ही भाग लेकर कृष्ण-भवन के अतिथि बने थे।

बनारसीदास चतुर्वेदी के शब्दो मे मन्मथनाथ गुप्त 'अपने विषय के विशेषज्ञ ही नहीं, प्रत्यक्षदर्शी तथा भुक्तभोगी भी हैं। वे बीस बरस तक ब्रिटिश सरकार की जेलो के मेहमान रह चुके हैं और यदि काकोरी षड्यन्त्र के समय उनकी उम्र चार-पाँच बरस अधिक होती तो उनकी भी गणना बिस्मिल और अशफाक की तरह अमर शहीदो मे हो गई होती।'[1] क्रान्तिकारियो के निकट सम्पर्क मे रहने और उन्हें सहयोग देने के कारण

१ साप्ताहिक हिन्दुस्तान, दिनाक २० अक्टूबर, १९६०, पृष्ठ ४८

क्रान्तिकारियो के प्रति उनका आकर्षण और ममत्व स्वाभाविक है। वे स्वीकार करते है कि—"क्रांतिकारियो का स्मरण केवल एक कुतूहल की तृप्ति अथवा वीरपूजा मात्र नही है या पुराने ढग की भाषा मे कहा जाए तो पितृऋण, मातृऋण की तरह शहीद ऋण की अदायगी मात्र नहीं है, बल्कि इससे हमें सचमुच अनुप्रेरणा प्राप्त होती है। भारतीय स्वतन्त्रता सग्राम की पृष्ठभूमि पर उनके द्वारा प्रस्तुत किया जाने वाला उपन्यास-सप्तक हिन्दी राजनीतिक उपन्यास-साहित्य म इसी दृष्टि से एक महत्वपूर्ण देन ह।

इस विराट उपन्यास-माला के अन्तर्गत सन् १९२१ से लकर १९४७ तक के भारत का चित्रण किया जा रहा है। 'सप्तक' के ६ उपन्यास प्रकाशित हो पाठको के हाथो म पहुँच चुके है जो सन् १९२९ तक की राजनीतिक घटनाओ का प्रस्तुत करते है। इन उपन्यासो की तालिका इस प्रकार है —

१–जागरण (सन् १९२१ की राजनीतिक स्थिति का चित्रण)
२–रैन अँधेरी (सन् १९२२ से सन् १९२९ तक का चित्रण)
३–रगमच (सन् १९३०-३१ के भारत का चित्रण)
४–अपराजित (सन् १९३२-३३ के राजनीतिक भारत की गाथा)
५–प्रतिक्रिया (सन् १९३४ से १९३७ तक चित्रण)
६–सागर-सगम (सन् १९३८-३९ की राजनीतिक गतिविधियो का चित्रण)

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन और राजनीतिक विचार धाराओ को अभिव्यक्ति देने वाल ये उपन्यास 'सप्तक' की कडी होने पर भी अपने म सम्पूर्ण है। यो सप्तक की समग्रता म आन्दोलन की विशाल पृष्ठभूमि गाधीयुग की राजनीतिक गगा की अविरल धारा सी प्रवाहित हुई है।

जागरण

'जागरण' राष्ट्रीय-स्वाधीनता-सग्राम के विशाल चित्रफलक पर मन्मथनाथ गुप्त द्वारा लिखे जा रहे उपन्यास सप्तक की प्रथम कडी है, यद्यपि उसका प्रकाशन सप्तक के अन्य उपन्यासो के बाद हुआ है। *'जागरण' गाँधी* जी के नेतृत्व मे राजनीतिक राष्ट्रीय चेतना से उद्भूत भारत का एक प्रेरणाप्रद चित्र है। लेखक ने उपन्यास की भूमिका म लिखा है - 'जिस काल पर इस उपन्यास का ताना-बाना प्रस्तुत किया गया है, वह हमारे आधुनिक इतिहास का एक अत्यन्त गौरवमय अध्याय है। यह वह समय है' जब महात्मा गाँधी भारतीय राजनीति के गगन मे उदित हुए और एक ही छलांग मे आकाश के सर्वोच्च बिन्दु पर पहुँच गए। उनके प्रकाश के आगे युग युग की कालिमा,

मानसिक आलस्य, असहायता की भावना, समष्टि के स्वार्थ के आगे व्यक्ति के स्वार्थ को प्रधानता देना, साम्प्रदायिकता, कायरता सब दूर हो गई। महात्मा गांधी ने उस युग में जिस प्रकार राजा से लेकर रक तक सबके जीवन की काया-पलट कर दी, वह भी इसमें दिखाने की चेष्टा की गई है।' इस तरह 'जागरण' भारतीय जनता के जागरण के उस त्याग और तपस्यामय अध्याय की गाथा है जिसकी बागडोर महात्मा गांधी के हाथों थी। यही कारण है कि उपन्यास में राजेन्द्र नायक प्रतीत होते हुए भी वास्तविक नायक राष्ट्रीय आन्दोलन ही है। राजेन्द्र एक रायबहादुर का सुपुत्र होने पर भी किस प्रकार असहयोग आन्दोलन के प्रति आकर्षित हो गांधीवाद से प्रभावित होता है, जेल जाता है और जेल में क्रान्तिकारियों के सम्पर्क में आकर उनकी विचारधारा और कार्यक्रम से परिचित होता है। मूल कथा में इसका दिग्दर्शन है। गांधीवादी और क्रान्तिकारी पात्रों की उद्‌भावना कर दोनों की राजनीतिक विचारधारा और दलीय कार्य-प्रणाली को स्पष्ट करने का प्रयत्न भी किया गया है। यह बताने की विशेष चेष्टा की गई है कि विचारधारा में मौलिक भेद होने पर भी दोनों आन्दोलन के विराट संघर्ष के अंग थे। किन्तु इस प्रसग में लेखक ने गांधीवादी राजनीति की वर्गगत भूमिका को स्पष्ट नहीं किया है। युग की उपलब्धियों के सिवाय उसकी कलहीनता का निर्देश तात्कालिक अवसरवाद के रूपों, उच्च वर्ग की राष्ट्रीयता के स्वरूपों और अमन सभाइयों के शासकों से गठबन्धन के रूप में चित्रित हुआ है। मुख्य पात्र राजेन्द्र, श्यामा और आनन्दकुमार हैं। पात्रों और परिस्थितियों का पारस्परिक सम्बन्ध घनिष्ठ है, अतः कथा सुगठित है और चित्रण सकुन नहीं हो सका है। इसमें पात्रों की मानसिक स्थितियों का विश्लेषण उनके पूर्व प्रकाशित उपन्यासों की अपेक्षा अच्छा हुआ है।

रैन अँधेरी

'रैन अँधेरी' उपन्यास में गुप्त जी ने सन् १९२१ से १९३० के भारतीय राजनीतिक दशक का चित्र प्रस्तुत करने की चेष्टा की है। स्वातन्त्र्य-आन्दोलन के अन्तर्गत इस काल की प्रमुख घटनाएँ हैं—सन् १९२१ का असहयोग आन्दोलन, चौरीचौरा काण्ड और सत्याग्रह आन्दोलन का आकस्मिक स्थगन, सन् १९१९ ऐक्ट के अनुसार कौंसिलों के चुनाव में कांग्रेस की प्रतिक्रिया और स्वराज्य पार्टी का उदय, साइमन कमीशन, सन् १९२९ में लाहौर कांग्रेस अधिवेशन में 'पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्ति' के लक्ष्य की घोषणा तथा सन् १९३० में हुआ 'गांधी-इरविन पैक्ट'। कांग्रेस के प्रयासों के साथ ही साथ मुक्तिदीप के परवाने क्रान्तिकारियों के विशेष सक्रिय चरण भी इन महिमामय आन्दोलनों के साथ चले रहे। अस्तु, लेखक ने आलोच्य उपन्यास में इन सभी घटना क्रमों का औपन्यासिक गठन करने का सफल प्रयास किया है। ऐसा होने पर भी जहाँ

अहिंसात्मक आन्दोलनों का उल्लेख प्रासंगिक होकर आया है, वहाँ प्रमुखतः क्रांतिकारियों की गतिविधियों को विशेष महत्त्व मिल गया है।

सन् १९२१ के खिलाफत आन्दोलन में हिन्दू-मुस्लिम कन्धे से कन्धा मिलाकर ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध खड़े हुए थे। इस मध्यान्तर में दोनों में फूट डालने के ब्रिटिश साम्राज्यवाद के सारे प्रयत्न निष्फल रहे। किन्तु असहयोग आन्दोलन के स्थगन के उपरान्त अनेक व्यक्ति जो सक्रिय रूप से आन्दोलन में भाग ले चुके थे कुछ निराश और किंकर्तव्यविमूढ़ से हो गये। जहाँ गाँधी जी के एक वर्ष में स्वराज्य के नारे को लेकर हजारों व्यक्ति सोत्साह जेल-यात्री हुए थे वहाँ उनमें नेता द्वारा आन्दोलन-स्थगन से निराशा, अविश्वास और क्रोध की उत्पत्ति स्वाभाविक थी। उधर ब्रिटिश अधिकारियों द्वारा मुसलमान और हिन्दुओं में धार्मिक एवं राजलोभ के आधार पर फूट डालने की साजिश भी सफल होने लगी। प्रस्तुत उपन्यास का समारम्भ कुछ ऐसे ही राजनीतिक वातावरण से होता है। प्रारम्भ में ही राजेन्द्र जैसे जेल-यात्री युवक की मनःदशा चित्रित करते हुए लेखक उन्हीं राजनीतिक परिस्थितियों का उद्घाटन करता है। दूसरी उठान में वह खान बहादुर इरादा हुसैन, खान साहिब मजर अली, स्मिथ आदि के द्वारा साम्प्रदायिक विरोधों को उभाड़ने के प्रयत्नों का उद्घाटन करता है। तदुपरान्त उपन्यास का क्रमिक रूप सामने आता है। अहिंसावादी आनन्दकुमार, राजेन्द्र आदि सत्याग्रही जेल जाने वाले पात्र हैं, कुणाल, अमिताभ, यूसुफ उर्फ महेन्द्र, अविनाश, श्यामा, रुक्मिणी आदि प्रमुख क्रान्तिकारी पात्र हैं, जिनके चतुर्दिक उपन्यास की समस्त क्रान्तिकारी घटनाएँ घूमती हैं। बीच-बीच में कांग्रेस द्वारा उठाये हुए विभिन्न चरणों का प्रसंग भी आता-जाता है। क्रान्तिकारी तत्वों का ही एकसूत्री कार्यक्रम उपन्यास में आदि से अन्त तक चलता है।

कथा-वस्तु के अनुसार रायबहादुर राजकिशोर के पुत्र राजेन्द्र और रायबहादुर यशोधर की पुत्री श्यामा के पाणिग्रहण की चर्चा हुई थी, किन्तु एक अहिंसावादी तथा दूसरा क्रांतिकारी। फलतः पाणिग्रहण-सम्बन्ध सम्भव न हुआ। चतुर्थ प्रसंग में कुणाल, जो वस्तुतः चन्द्रशेखर आजाद की भूमिका पर कार्य करते हैं तथा अमिताभ दोनों ही काशी में दो कमरों का मकान लेकर 'कल्याणाश्रम' स्थापित कर रामकृष्ण मिशन के ब्रह्मचारी के रूप में रहते हैं। वहाँ पर जेल से लौटे हुए अविनाश और रामानन्द के द्वारा उन लोगों का परिचय श्यामा से होता है और श्यामा दल की सदस्या हो गई। इस प्रसंग में उपन्यासकार कुणाल और अमिताभ के पारस्परिक विचार-विनिमय द्वारा क्रान्तिकारियों के उद्देश्यों, सिद्धान्तों और कार्यप्रणाली का संक्षिप्त परिचय देना नहीं भूलता।

सन् १९२१ के असहयोग आन्दोलन के स्थगन के बाद गाँधी जी जेल चले गये, किन्तु दूसरी ओर देशबन्धु और मोतीलाल नेहरू ने स्वराज्य पार्टी बनायी, जो निर्वाचन द्वारा कौंसिलों में पहुँचना चाहती थी। उधर क्रांतिकारी दल भी अपने संगठन और कार्य में सक्रिय हुआ। जनता में अत्यन्त ही उत्साह था। आनन्दकुमार जैसे शान्तिप्रिय सत्याग्रही भी क्रांतिकारी दल से पूर्ण सहानुभूति रखते थे और यथासम्भव सहयोग भी देते थे। यहाँ तक कि दूकान का मुनीम त्रिलोचन भी क्रांतिकारी दल का सदस्य हो गया। वह दल में श्यामा को देख उस पर आसक्त हो जाता है और उसके आचार-व्यवहार से कुणाल, अविनाश, श्यामा आदि उससे घृणा करने लगे। फलत वह पुलिस में मिल गया और क्रांतिकारी दल के लिए खतरा बन गया। ऐसी स्थिति में कुणाल जी दल के सदस्यों से सलाह कर कल्याणाश्रम को बन्द कर अन्यत्र चले गये। इसी बीच अविनाश से कुणाल जी की परिणीता रुक्मिणी से परिचय हुआ, जो कुणाल के पीछे छाया सी लगी थी। अविनाश ने उसे समझा बुझाकर श्यामा के साथ कर दिया। रात्रि में क्रांतिकारियों की गुप्त सभा हुई और दूसरे दिन कुणाल दशाश्वमेध एव मणिकर्णिका घाट की ओर टहलने गये। अनायास ही एक खुफिया ने आकर उनका हाथ पकड़ा और थाने पर चलने के लिए विवश करने लगा। इसी बीच रुक्मिणी वहाँ पहुँच गई और उसके प्रयासों से कुणाल भाग निकले। इधर पुलिस ने रुक्मिणी को गिरफ्तार कर लिया और जिसे आनन्दकुमार व श्यामा ने किसी तरह छुड़ाया। पैसे की समस्या हल करने के लिए दल ने डकैती डालने का निश्चय किया और नियमक्रम के अनुसार अविनाश, अभिताभ और अन्य साथी ट्रेन पर चल पड़े। दो स्टेशनों के बाद श्यामा भी बिस्तर में अस्त्र शस्त्र ले सदस्यों से आ मिली और डकैती के बाद पुन सामान ले वापस हुई तथा अन्य व्यक्ति इधर-उधर तितर-बितर हो गए।

वर्ण्य वस्तु के आधार पर कहा जा सकता है कि इसमें गाँधीयुग के प्रथम दशक का राजनीतिक वृत्त चित्र प्रस्तुत किया गया है, किन्तु सामयिक इतिहास और कथा का समन्वय समुचित ढंग से न हो सका। राजनीतिक विवरण यथा प्रस्ताव आदि स्वाभाविक रूप से न आकर आरोपित से हैं और स्वयं लेखक इससे अनभिज्ञ नहीं। उपन्यास के 'दो शब्द' में उन्होंने स्वयं कहा है —'सम्भव है, बीच बीच में दो एक पृष्ठ जहाँ प्रस्तावों आदि का वर्णन किया गया है, उपन्यास की दृष्टि से इतना रोचक न जँचे।' ऐसे पृष्ठों को उलट देने का अनुरोध भी किया गया है। ऐसे ही भटकाव के कारण कहानी मँझधार में ही छूट गई है और सामयिक इतिहास के क्रमिक विकास में भी न्यूनता आई है। इतिहास के प्रति लेखक का अपना दृष्टिकोण है और जो 'ऐतिहासिक उपन्यास-रचना की मान्यता के विपरीत व्यक्तिकेन्द्रित हो गया है। कहा जा सकता है कि सारे तथ्य और घटनाएँ एक सत्ता की अनुगामिनी हो गयी हैं।

क्रांतिकारी गतिविधियों और क्रांतिकारियों के व्यक्तित्व-विकास पर ही विशेष ध्यान दिया गया है। तथ्य और घटनाओं के किंचित परिवर्तन से अनुदर्शन में अपेक्षता आ गयी है। विशिष्ट मतवाद को लेकर चलने के कारण कांग्रेसी पात्र राजेन्द्र का चरित्र नहीं उभर सका है। राजनीतिक उपन्यास तथ्यों की दृष्टि से ऐतिहासिक उपन्यास का अनुग है और उसका हर पात्र, अपने काल और परम्परा का प्रतिनिधित्व करता है। राजेन्द्र एक विचारधारा का प्रतीक है किन्तु क्रांतिकारियों के चरित्र को प्रभावी बनाने की एकांगी दृष्टि से उसका चरित्र छिछला और संकीर्ण हो गया है। यह सत्य है कि उस समय राजेन्द्र जैसे राजनीतिक पात्रों का अभाव न था, परन्तु राजनीतिक मूल्यांकन का आधार तटस्थता होना चाहिए। कुणाल क्रांतिकारी चरित्र के रूप में अप्रतिम है और उसकी क्रांतिकारी दृढ़ता और तीव्रता हम आजाद का स्मरण दिलाती है। रुक्मिणी के प्रसंग से अलौकिक दृश्यों की रचना उपन्यास के मनोरंजन में वृद्धि भले ही करे, किन्तु विश्वसनीयता का भाव उत्पन्न नहीं करती। या क्रांतिकारी की पत्नी के रूप में उसका चरित्र आदर्श रूप में चित्रित होकर भी यथार्थ की भूमि से अपने को समेटे चलता है।

रंगमंच

'रंगमंच' का प्रतिपाद्य विषय डांडी मार्च (१९३०) तथा नमक सत्याग्रह से लेकर कराची कांग्रेस (१९३१) तक की घटनाओं का चित्रण करता है। इसके अतिरिक्त आतंकवादियों में समाजवाद के प्रति विस्तार पाने वाली भावना की ओर भी इंगित किया गया है। स्वयं लेखक के शब्दों में 'इतिहास लिखने का केवल यह उद्देश्य नहीं हो सकता कि अतीत के भूले बिसरे चित्र ज्यों के त्यों पेश कर दें, विशेषकर यदि इतिहास कला का माध्यम ग्रहण करे तो उसका सर्जनात्मक पहलू तभी साफल्यमंडित माना जायगा, जब उससे भविष्य के लिए भी इंगित उभरे।'[1] समाजवाद की भावना का चित्रण इस लेखक का एक राजनीतिक उद्देश्य है, उपन्यास के पात्र प्रेमचन्द्र के माध्यम से अभिव्यक्त हुआ है। प्रेमचन्द्र अर्चना के सौन्दर्य से प्रलुब्ध होकर क्रांति की लपट में कूद पड़ता है। उसका कथन है क्रांतिकारी दल प्रेम का विरोधी नहीं है, बल्कि उसी में प्रेम को पूर्णता प्राप्त हो सकती है।'[2] वह प्रेम को ही सर्वाधिक क्रांतिकारी तत्व मानता है। उसकी दृष्टि में क्रांति तो सृष्टि के अवरुद्ध मार्ग खोलती है पर प्रेम तो स्वयं सृष्टि करता है। उसके अनुसार प्रेम माता है और क्रांति उसकी मिडवाइफ

---

१ मन्मथनाथ गुप्त : रंगमंच, पृष्ठ ४

२ मन्मथनाथ गुप्त : रंगमंच, पृष्ठ ८४

परिचारिका जो थोड़ी देर ही काम आती है।'[1] क्रांतिकारियों के दल में महिलाओं को सम्मिलित करने के सम्बन्ध में परस्पर मतभेद है।

हिन्दी उपन्यासों में अधिकतर क्रांतिकारी पात्र नारी-आकर्षण या प्रेम के दीवानों के रूप में चित्रित किये गये हैं। प्रेमचन्द भी एक ऐसा ही पात्र है, जिसके प्रसंग से प्रणय-लीला व वासना की उमेठन के चित्र अंकित कर क्रांतिकारियों की प्रेम सम्बन्धी भावना के आवरण को उघाड़ने का प्रयत्न किया गया है। अर्चना से अनुप्राणित प्रेमचन्द उन आतंकवादियों का प्रतीक है, जो आतंकवाद की व्यर्थता को स्पष्ट देख समाजवाद को अपना लक्ष्य मानने लगे थे। समाजवादी ग्रन्थों के अध्ययन और मनन से वह सत्याग्रह आन्दोलन के समय इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि 'अब जन-आन्दोलन की जरूरत थी न कि कुछ खास चुने हुए लोगों की वीरता की। जन-आन्दोलन माने गाँधीवादी सत्याग्रह नहीं, बल्कि तीव्र वर्ग-संग्राम।'[2] समाजवाद के सैद्धान्तिक ग्रन्थ उस युग में सभी क्रान्तिकारी पढ़ने लगे थे और मार्क्सवाद के प्रभाव में आकर उनके हृदय में क्रान्तिकारी दल तोड़ने की भावना बलवती हुई थी। शहीद क्रान्तिकारी बिस्मिल ने १९२७ में लिखी अपनी आत्मकथा में इसका संकेत भी दिया है। उपन्यास में सम्भवतः इसी आधार पर अभिताभ भी दल से पृथक् होते हैं और पाठक को बोल्शेविक दल के अभ्युदय का क्षीण परिचय मिलता है।[3] इसके साथ ही उन क्रान्तिकारियों की गतिविधियाँ भी समानान्तर रूप से चलती रहीं, जो आतंकवाद से अपनी आस्था न हटा सके थे। जीवानन्द, प्रणव-कुमार व अर्चना आदि के क्रान्तिकारी प्रयास इसी विचारधारा के प्रतिफल हैं।

इस तरह प्रस्तुत उपन्यास में आतंकवादी दो विभिन्न विचारधाराओं में विभाजित होते दिखाये गये हैं। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि मार्क्सवादी विचारधारा भारतीय राजनीति में गाँधीवाद व आतंकवादी प्रवृत्ति की प्रतिक्रिया के रूप में प्रस्फुटित हुई। इसका ध्येय बना शोषण का अन्त और जो वर्ग-संग्राम से ही सम्भव है। इस विचारधारा के कारण क्रान्तिकारियों में विघटन होने लगा और अनुशासन के बन्धन शिथिल पड़ गये। प्रेमचन्द का जेल से लिखा गया अन्तिम पत्र समाजवादी विचारों का ही पोषक है।[4]

आतंकवादी दल में होने वाले परिवर्तनों की इस लम्बी औपन्यासिक गाथा के साथ गाँधी जी के नेतृत्व में चलाये गये सन् १९३०-३१ के आन्दोलन की पृष्ठभूमि तथा

---

१ मन्मथनाथ गुप्त : रंगमंच, पृष्ठ ८५
२ मन्मथनाथ गुप्त : रंगमंच, पृष्ठ ५३
३ मन्मथनाथ गुप्त : रंगमंच, पृष्ठ ६५
४ मन्मथनाथ गुप्त : रंगमंच, पृष्ठ २७५

आन्दोलन से उत्पन्न भारतीय चेतना तथा सामाजिक क्रान्ति का चित्रण भी किया गया है। इसके अन्तर्गत नमक-सत्याग्रह, समझौतों के प्रयत्न, गाँधी-इरविन पैक्ट को घटनाओं को सग्रथित किया गया है। धरसाना नमक गोदाम पर हमले की योजना (पृष्ठ ११९) तत्सम्बन्धी सूचना वायसराय को देने व गाँधी जी की गिरफ्तारी (पृष्ठ १२७), राशी, बडाला व कर्नाटक मे नमक-सत्याग्रह का उल्लेख व विवरण ऐतिहासिक है। इसी भाँति १८ अप्रैल को हुए चिटगाँव काण्ड भी क्रान्तिकारियों द्वारा आयोजित-सचालित सत्य घटना है। किन्तु हिंसात्मक एवं अहिंसात्मक प्रयत्नों की समानान्तर रूप से चलने वाली कथाओं मे प्रमुखता हिंसावादी क्रान्तिकारियों को ही दी गई है और उपन्यास का अधिकाश कलेवर उनसे सम्बन्धित घटनाओं और विचारधाराओं का निरूपण करता है। क्रान्तिकारी प्रयत्न के चित्रण तथा क्रान्तिकारियों के मनोविज्ञान के चित्रण स्वानुभूति के कारण सजीव है, किन्तु गाँधीवादी प्रयत्न मात्र स्केची सन्दर्भ बन गये है।

उपन्यास मे ब्रिटिश सरकार की दमनात्मक कार्यवाहियों का भी विस्तृत चित्रण है, जो राष्ट्र भक्तों के जन-जीवन को लेकर यथार्थता की भूमि पर चित्रित किया गया है।

राजनीतिक असगतियाँ

राजनीतिक उपन्यास के रूप मे उपन्यास केवल उपन्यास नहीं रहता, अपितु उसका सामयिक राजनीतिक पक्ष भी रहता है और जो ऐतिहासिक भाव भूमि को लेकर चलता है। इतिहास के सत्य की रक्षा के लिए घटनाकाल व घटनाक्रम आदि का सूत्र वास्तविकता लिये हुए होना चाहिए। कल्पना और यथार्थ का समन्वय राजनीतिक उपन्यास मे ऐतिहासिकता को बिना आघात पहुँचाये किया जाना चाहिए अन्यथा अनेक असगतियाँ उठ उभरती हैं। प्रस्तुत उपन्यास मे अधिकाश घटनाएँ बनारस मे घटित होती हैं और इसमे वर्णित-कल्पित राजनीतिक हत्याओं और फाँसियों का वर्णन युग का प्रतीक माना जा सकता है। पर कठिनाई यह है कि उस युग के जो ख्यातिप्राप्त क्रांतिकारी फाँसी पर चढे, उनका भी जिक्र इस उपन्यास मे है। इस तरह एक पक्ष के कल्पित और वास्तविक दोनों चित्र होने से भ्रम की जो स्थिति उत्पन्न होती है, वह ऐतिहासिक असगति है। इस सन्दर्भ मे दूसरा उदाहरण टैगर्ट की हत्या का है, जिसे काशी मे घटित होते बताया गया है। स्वय गुप्त जी लिखित क्रान्तिकारियों के इतिहास-ग्रन्थ मे टैगर्ट की हत्या का विवरण मिलता है, किन्तु उसके समय और स्थान मे अन्तर है। टैगर्ट के नाम साहश्य से भ्रम उत्पन्न होता है और वह काल्पनिक पात्र नहीं रह जाता। नमक सत्याग्रह मे जो कुछ हुआ, उसका भी पूर्ण चित्र पाठक के सामने नहीं आता। इसे विस्तार सयम भी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि ऐलोकेशी और तारा के झगडे को वह बिना प्रसग-विस्तार के अभुक्त काम लालसा को चित्रित करता है।

भी नही मिल सका। अन्यथा इस युगल की प्रणय-गाथा साम्प्रदायिक एकता के रूप मे प्रयुक्त की जा सकती थी।

अछूत समस्या

'अछूत समस्या' उपन्यास मे गाँधी जी के अछूतोद्धार आन्दोलन के प्रतिरोध मे दो समानान्तर लम्बे कथानक और चलते है। एक अछूतो का, जिसके प्रधान नायक माधव और मुरलीधर है और दूसरा सवर्णो का, जिसके प्रमुख सूत्रधार कट्टर सनातनपथी जयराम और प० लालनाथ हैं।

सवर्ण हिन्दुओ का आक्रोश यहाँ तक है कि वे गाँधी जी द्वारा अछूतो के मदिर-प्रवेश के उपदेश का विरोध ही नही करते, वरन् उनकी हत्या करने के उपाय भी रचते है। कथानक के मध्य मे हनुमान जी के मदिर पर अछूतो द्वारा सभा किये जाने के प्रसग मे सवर्णों और अछूतो मे सघर्ष की स्थिति का निर्माण होता है और क्रातिवादी दल के सदस्य चम्पति समझौता कराने के प्रयास मे अछूतो द्वारा तिरस्कृत तथा सवर्णों द्वारा पीटे जाते है। इस प्रकार यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि गाँधी जी के अछूतोद्धार की सामयिक प्रतिक्रिया यह है कि जहाँ अछूतो और सवर्णो का गाँधी जी के प्रति असन्तोष है, वही परस्पर विद्वेष भी भयकर है।

सन् १९३५ का चुनाव

सन् १९३५ के ऐक्ट के अनुसार देश मे निर्वाचन की तैयारियाँ तथा चुनाव की पृष्ठभूमि मे लीग और काग्रेस का विचारधाराओ की क्रमश मुहताक व आनन्दकुमार के माध्यम मे अभिव्यक्ति भी मिलती है। लीग से निम्नस्तरीय चुनाव-हथकडो की विस्तृत जानकारी दी गयी। अन्तत दिवाकर और अणिमा के वैवाहिक प्रसग के साथ कथानक की इति हो जाती है, जिसमे दिवाकर, आई० सी० एस० अपनी अग्रेज प्रेमिका से तिरस्कृत होकर अणिमा के साथ विवाह का प्रस्ताव करता है, पर अणिमा विवाह के लिए आई० ए० एस० पद से त्यागपत्र देने को कहती है और दिवाकर असन्तुष्ट होकर चला जाता है।

कथानक एव पात्र

आलोच्य उपन्यास की यही कथावस्तु है, जिसके सम्बन्ध मे स्वय लेखक ने कहा है : "यह वह युग था, जब साथ ही प्रतिक्रिया की शक्तियाँ फन उठाकर तैयार हो रही थी। सभी क्षेत्रो मे प्रतिक्रियावाद का बोलबाला हो रहा था। यहाँ तक कि भूतपूर्व क्रान्तिकारी व्यक्तियो मे भी प्रतिक्रिया का प्रखर पुट दृष्टिगोचर हो रहा था। वस्तुत,

शिशु आदि सबके जीवन मे हम इसी प्रतिक्रिया को मूर्त देख सकते है।"[1] लेखक का यह कथन कि वर्तमान उपन्यास मे तो क्रातिकारी बिल्कुल आउट ऑफ फोकस है, सत्य नही है। यह बात अलग है कि क्रान्तिकारी इस उपन्यास मे क्रान्तिकारी के रूप मे चित्रित न हो कामुक के रूप मे ही प्रस्तुत हुए है। यदि क्रातिकारियो मे राष्ट्रीय प्रतिक्रिया का यही प्रभाव पडा था और जिसका गुप्त जी ने निकट से अवलोकन भी किया होगा तो इसे राष्ट्रीय दुर्घटना ही मानना अधिक उपयुक्त होगा।

पात्रो और उनकी समस्याओ की विभिन्नता के कारण जो तत्कालीन राजनीतिक स्थिति के परिवेश मे आना समाहार पाती है, जिसके कारण कथानक मे एक सूत्रता नही आ सकी है। कथानक बिखरा हुआ है और पात्रो का चारित्रिक विकास छुईमुई-सा है कभी म्लान तो कभी उत्फुल्लित। कथानक के सगठित न होने के कारण प्रधान नायक का अनुमान करना ही कठिन है। पात्रो की कथोपकथन-पद्धति अवसरानुकूल है, किन्तु वसुधा के पागलपन की 'ओव्हर ऐक्टिग' जी उबाने वाली है। चरित्र-चित्रण की दृष्टि से भी किसी भी पात्र का चरित्र किसी विशिष्ट आदर्श का स्पष्ट सकेतक नही है। वह क्रातिकारियो के राष्ट्रीय कार्य के रूप मे स्पष्ट नहीं है और वे नाममात्र के क्रातिकारी हैं और वैयक्तिक विकृतियो के शिकार हैं। क्रातिकारियो की धर्मनिरपेक्षता का चित्रण भी स्त्रियो के यौन-सम्बन्धो से ही सिद्ध किया गया है। श्यामा और यूसुफ इसके उदाहरण है। पता नही, उनकी राष्ट्रीयता का मूल क्या इसी मे निहित था ? क्रान्तिकारी प्रतिक्रिया' का जो चित्रण किया गया है, उसमे राजनीति की अपेक्षा काम विज्ञान का पाडित्य अधिक उभरा है। अछूतो, सवर्णों एव मुसलमानो की साम्प्रदायिक प्रतिक्रियाएँ अवश्य स्पष्ट होकर उपन्यास के शीर्षक की सार्थकता सिद्ध करती हैं।

सागर-सगम

'प्रतिक्रिया' के आगे की कथा सागर सगम' मे वर्णित है जो स्वय मे एक सम्पूर्ण राजनीतिक उपन्यास है। इसमे सन् १९३८-३९ की राजनीतिक परिस्थिति और घटनाओ का अकन है। लेखक के शब्दो मे— स्वतन्त्रता का युग यानी १९२१ से लेकर १९४७ का युग, जिसे मैंने अपनी 'उपन्यास-माला' के लिए चुना है, वह सचमुच बहुत महत्वपूर्ण युग है, क्योकि मुख्यत इसी युग के दौरान हमारे पैरो मे सैकडो वर्षो से परतन्त्रता की जो बेडियाँ पडी हुई थी, वे झनझनाकर टूट गई। इसमे कितने ही तत्वो ने काम किया। इनमे वे तत्व भी हैं जो बहुत पहले से काम करते आ रहे हैं। उन तत्वो,

---

१ 'प्रतिक्रिया' की भूमिका पृष्ठ ३

प्रतिन्तत्वों, लहरों, प्रति लहरों का उद्घाटन और ऐसा उद्घाटन कि भविष्य के लिए सकेत स्वत बिना आयाम के मिलते रहे, यह इस उपन्यास-माला का अन्यतम उद्देश्य है।' इसी उद्देश्य के अनुरूप उपन्यास का मूल प्रतिपाद्य १९३९ तक के भारतीय स्वतन्त्रता-आन्दोलन की अनेक घटनाओं का विशद वर्णन है, जो सामयिक अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं और परिस्थितियों के परिवेश में प्रस्तुत किये गये हैं। सन् १९३७ से लेकर १९३९ तक की सक्रान्ति वेला में भारतीय राष्ट्रीय सग्राम अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का एक मोहरा बन गया था। यह समय भारतीय आन्दोलन के विशेषीकरण का समय था। सन् १९२१ में 'अलीबन्धु' काग्रेस के आन्दोलन में कधे से कधा भिडाये थे, वहाँ सन् १९३९ तक वहीं भारत-विभाजन की नीति पर दृढ हो गये। इसके सम्बन्ध में मूल कारणों पर दृष्टिपात करते हुए लेखक राष्ट्रीय भूमिका से आगे अन्तर्राष्ट्रीय भूमिका के प्रकाश में भी समस्या का नया दृष्टिकोण स्थापित करते हैं। उनके मत से जहाँ एक ओर हमारा यह राष्ट्रीय आन्दोलन अन्तर्राष्ट्रीय समाजवादी धारा से प्रभावित होकर आगे आया था, वहीं अनेक राष्ट्रीय न्यूनताओं से वह देश के विभाजन का भी सूत्रधार बना। उपन्यास की भूमिका में ही लेखक इस तथ्य की ओर भी इगित करता है—'मैं इस नतीजे पर पहुँचा कि जहाँ हिन्दुओं को यह गलती थी कि राष्ट्रीयता पर हिन्दू रग जरूरत से ज्यादा बढ गया, वहीं भारतीय मुसलमानों में भी कुछ कमी थी। अन्तर्राष्ट्रीय परिवेश में जब मैंने इस प्रश्न को और विस्तार के साथ देखा तो ज्ञात हुआ कि समाजवादी रूस में भी यहूदियों और मुसलमानों को समाजवादी विचारधारा में लाने में अपेक्षाकृत अधिक दिक्कतों का सामना करना पडा।' इन्हीं तत्वों के कारण देश विभाजन का अवसर आया। अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति के विवरण एव विवेचना की सुविधा के लिए दिवाकर और एलिस के प्रेम के विकास तथा उसके असफल अन्त की उद्भावना की गयी है।

उपन्यास में एक उद्देश्य यह भी स्पष्ट प्रतीत होता है कि क्रान्तिकारी दल बहुत कुछ राष्ट्रीय था, किन्तु उसमें भी प्रेम-चर्चा घर कर गयी थी। उसे नरम दलीय कांग्रेस का भी कोई सहयोग प्राप्त न था। इस काल में यूरोपीय युद्ध की विभीषिका ने देश-विदेश के चित्त एव भविष्य को अस्थिर कर दिया था। देश का कांग्रेसी राजनीतिक मच भी नरम एव गरम दल की समस्या में उलझा हुआ था। देशान्तर्गत सरकारी कर्मचारी वर्ग भारतीय जनता की तुलना में अपनी विशिष्टता के मद में चूर था। उसकी राजनीतिक विचारधारा सकुचित थी। वह शासन के परिवर्तन के सम्बन्ध में अनिश्चित विचार रखता था और अपने पद सरक्षण के लिए ही यत्नशील था। सामन्ती वर्ग तो प्रारम्भ से ही अपने को सामान्य समाज से सदैव ही भिन्न मानता रहा है।

अस्तु, इन्हीं उपर्युक्त अनेक प्रसगों को लेकर 'सागर सगम' का कथानक बढ

हुआ है, जिसमें राजनीतिक दृष्टिकोण ही प्रमुख है। काल्पनिक पात्रों और प्रेम प्रसंगों के बीच कहीं कहीं तो देश आन्दोलन की कहानी ही दुहरा दी गयी है, जो पाठकों को उसे उपन्यास से कुछ भिन्न समझने के लिए विवश कर देती है और समग्र पाठक की औत्सुक्यपूर्ण रुचि को नश्वर आघात लगता है। रामलाल और हेमा की कथा की उद्भावना से अछूतोद्धार की समस्या को प्रस्तुत किया गया है।

उपन्यास का कथानक पन्नी के सम्बन्ध में महत्वाकांक्षी दिवाकर आई० ए० एस० और अणिमा के विवाह प्रस्ताव से प्रारम्भ होकर दिवाकर के अंग्रेज लड़की एलिस के विवाह प्रस्ताव के अन्त के साथ होता है। किन्तु उपन्यास के मुख्य पात्र के रूप में दिवाकर को मान्यता देना सन्देहास्पद लगता है। कारण कि कथानक में मध्यवर्ती अनेक पात्र इसी रूप में उभर आते हैं, जिनका अस्तित्व कथानक से पृथक् ही सम्बन्ध सूत्र स्थापित करते हुए प्रतीत होता है। उदाहरणार्थ मुश्ताक और सियामाबाई उर्फ रजिया का साम्प्रदायिक प्रसंग, राष्ट्रीय स्तर पर राजेन्द्र और राजा साहब, शिशु और पुरन्दर, अर्चना और धनजय के क्षीण क्रांतिकारी तत्त्व, शिशु सूर्यप्रकाश, पुरन्दर और वसुधा, जयराम और कृष्णगोपाल तथा कौमुदी के हिन्दुत्ववादी प्रसंग, माधव, केशव और हेमा के अछूत प्रसंग, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक क्षेत्र में दिवाकर एलिस और गार्डन के प्रसंग सभी अपने अपने रूप में पृथक् समान स्तरीय उभार लेते हैं। यह सच है कि लेखक ने इन प्रसंगों के साथ उस अन्तर्द्वन्द्वपूर्ण काल की विभिन्न प्रवृत्तिमूलक समस्याओं को राजनैतिक स्तर पर उभारने की चेष्टा की है। इन पात्रों और प्रसंगों से गठित चित्र विशुद्ध राजनीतिक हैं। प्रमुख चित्र क्रांतिवादी राष्ट्रीयता, हिन्दू-मुस्लिम साम्प्रदायिकता, अछूत समस्या, कांग्रेस की नरम एवं गरम दलीय नीतियों का संघर्ष, सरकारी कर्मचारी वर्ग की राष्ट्रीय चेतना की अवहेलना, साम्यवादी प्रगतिशीलता आदि हैं। साम्प्रदायिक विष ने क्रांतिवादी राष्ट्रीय चेतना का अत्यधिक अहित किया, यही लेखक का मन्तव्य है, जो तत्कालीन राजनीति की देन है। वैसे इन अनेक समस्याओं का इस ढंग से समान स्तरीय जटिल चयन होने पर भी क्रांतियुगीन वातावरण सजीवता के साथ चित्रित है।

अन्य उपन्यास

उपर्युक्त उपन्यास-सप्तक के उपन्यासों के अतिरिक्त मन्मथनाथ गुप्त के अनेक उपन्यासों में राजनीतिक अथवा अंश-राजनीतिक संस्पर्श मिलता है। इनमें 'बलि का बकरा,' 'बहता पानी,' 'सुधार,' 'गृहयुद्ध,' 'तूफान के बादल,' 'त्रिव' आदि उल्लेखनीय हैं। 'बलि का बकरा,' और 'बहता पानी' की आधारभूमि लेखक का अपना क्रांतिकारी जीवन है। कारावास में रचित 'सुधार' में राजनीतिक एवं सामाजिक इति

वृत्त मे मानवीय वृत्तियो को अभिव्यक्ति मिली है। 'गृह-युद्ध' मे साम्प्रदायिकता के साथ धर्मों की सकीर्ण भावना पर आघात किया गया है। 'तूफान के बादल' मे उन कलुषित राजनीतिक स्थितियो पर व्यग्य-प्रहार है, जो भारत-विभाजन मे कार्यरत थी। जिस मे बयालीस की क्रान्ति-झलक है, यद्यपि प्रेम-प्रसग ही इसमे प्रमुख हो गया है। सन् १९४२ की पृष्ठभूमि पर इसमे एक ऐसी नारी की कहानी वर्णित है, जो पुरुष को आत्मसमर्पण के चक्रव्यूह मे फँसाकर उलझती रहती है। ऐसा प्रतीत होता है कि उपन्यास के अधिकाश पात्र बयालीस की क्राति मे देश के कारण नहीं, बल्कि वासना के आकर्षण से ही आन्दोलन के अग बने। नारी के अन्तर का चित्रण यथार्थवादी धरातल पर चित्रित करने पर लेखक को अवश्य सफलता मिली है। किन्तु जहाँ तक राजनीतिक तत्व का प्रश्न है, वे पूर्वग्रह के कारण कला के साथ न्याय नही कर पाये हैं। इस लघुकाय उपन्यास मे, जिसे एक लम्बी कहानी भी कहा जा सकता है, लेखक ने अपनी दृष्टि से गाँधीवाद, समाजवाद और आतकवाद की व्याख्या की है। यद्यपि इसमे वे किसी के प्रति क्रूर नही हुए हैं, किन्तु यह भी नहीं कहा जा सकता कि गुप्त जी ने राजनीतिकतटस्थता का परिचय दिया है। हाँ, लेखक की यह मान्यता कि बयालीस की क्राति मुख्यत जनता का आन्दोलन है, सत्य के निकट है।

यज्ञदत्त के दो उपन्यास

गुरुदत्त और मन्मथनाथ गुप्त के सदृश यज्ञदत्त का भी राजनीति से निकट का सम्पर्क रहा है। सम्भवत यही कारण है कि अपने अधिकाश उपन्यासो मे वे राजनीतिक तत्वों को उपेक्षा नहीं कर सके हैं। विषय प्रतिपादन की दृष्टि से उनके उपन्यासो में देश की बदलती हुई सामाजिक एव राष्ट्रीय परिस्थितियों का चित्रण मिलता है। यज्ञदत्त भारतीय राजनीतिक आन्दोलन के एक सक्रिय सैनिक रहे हैं। वे सन् १९३० के नमक-सत्याग्रह और सन् १९४२ की क्राति मे जेल भी गये थे। अतएव यह कहना अनुचित नही होगा कि उन्हें राजनीतिक कार्यकर्ता के रूप मे राष्ट्रीय जीवन के विविध रूपो को निकट से देखने और अध्ययन करने का सौभाग्य मिला है।

यज्ञदत्त के दो दर्जन से अधिक उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं। इनमे से 'दो पहलू,' 'इन्सान,' 'निर्माण-पथ,' 'अन्तिम चरण,' 'स्वप्न खिल उठा,' 'महल और मकान,' 'बदलती राहें' आदि उपन्यासो मे राजनीतिक तत्व विशेष रूप से उभरे हैं। इनमे से प्रथम दो उपन्यासो मे स्वाधीनतापूर्व, राष्ट्रीय वातावरण विशेष रूप से चित्रित हुआ है।

'दो पहलू' यज्ञदत्त का प्रथम प्रकाशित उपन्यास है, जिसमे देश की १९३०-३१ की राजनीतिक समस्या—शान्ति या क्राति को अभिव्यक्ति दी गई है। परस्पर विरोधिनी

दूत विचारधाराओं को मानने वाले दो नायक एक दूसरे के प्रति सहयोग और सहानु भूति की भावना रख राष्ट्रीय गतिविधियों को संचालित रखते है। संक्षेप में हम कह सकते है कि युग के अनुरूप गाँधीवादी और आतंकवादी प्रवृत्तियों का चित्रण करना ही उपन्यासकार का अभीष्ट है।

अपने दूसरे उपन्यास 'इन्सान' मे लेखक ने भारतीय इतिहास की दुर्भाग्यपूर्ण घटना राष्ट्र विभाजन को तथा परिणामत होने वाले भयंकर उत्पात और नरमेध की पृष्ठभूमि पर उपन्यास का कथानक रचा है। इस दुखद घटना में भी उसने उज्ज्वल भविष्य के दर्शन कर वर्तमान जीवन की समस्याओं का निरूपण करते हुए मानवता का सदेश देने का प्रयास किया है।

मानवता के प्रति धर्मान्धता की आड में सन् १९४७ के साम्प्रदायिक संघर्षों में नाना प्रकार के जो अमानवीय कार्य हुए, उनका यह उपन्यास सजीव चित्र प्रस्तुत करता है। इसके साथ ही देश की विभिन्न राजनीतिक पार्टियों की कार्य प्रणाली की प्रसंगानुकूल समीक्षा देना भी लेखक नहीं भूला है। इसका कथात्मक पक्ष शिथिल है तथा भारतीय राजनीतिक स्वरूप का चित्रण ही प्रमुख हो गया है। उपन्यास का आरम्भ हिन्दू मुस्लिम दंगे के वातावरण से किया गया है और उपन्यास में उसका आवेश और उद्वेग सर्वत्र छाया हुआ है। हिन्दी के प्राय उन सभी राजनीतिक उपन्यासों में, जिनमें राष्ट्र विभाजन की पृष्ठभूमि में पाशविक अत्याचारों को प्राधान्य मिला है, चौंकाने की प्रवृत्ति ही विशेष है। फलत मानवता के प्रति स्वस्थ सहानुभूति की दृष्टि के अभाव से वे सात्विक भाव उत्पन्न नही होते, जो साहित्य का समृद्धि प्रदान करते है। सच तो यह है कि पाशविक अत्याचारों को कला का रूप देना एक कठिन प्रक्रिया है और समर्थ साहित्यकार से ही सम्भव है। 'इन्सान' मे सतुलन और तर्क दोनों का निवाह भली भाँति नहीं हो सका है। क्रोध और आवेश मे निर्लज्ज नृशसता के ताण्डव की आलोचना इसी कारण प्रभावोत्पादक नहीं बन सकी है। राजनीतिक पार्टियों से परे मानव की जो अपनी सत्ता है उसको लेखक नही देख सकता। इस पर भी देश के निर्माण और पारस्परिक सहयोग एव स्नेह के साथ राष्ट्रोत्थान और मानवता को प्रतिष्ठापित करने का जो सदेश इस उपन्यास में ध्वनित है, उसे सराहनीय ही कहा जायेगा।

राष्ट्रोत्थान का जो बीज 'इन्सान' में था, उसे हमे गुरुदत्त के 'निर्माण-पथ', 'महल और मकान' तथा 'बदलती राहे' आदि उपन्यासों में अकुरित होते देख सकते है। इन उपन्यासों में स्वाधीन भारत के निर्माण की दिशा का दिग्दर्शन है।

स्वातंत्र्योत्तर देशीय वातावरण से समन्वित उपन्यास

उदयास्त

'उदयास्त' में टूटते हुए सामन्तवाद का सजीव चित्रण अनुभवजन्य है। यह एक विचारप्रधान उपन्यास है, जिसमें लेखक ने पुराने जीवन के अवसान और नये जीवन के आनन्दमय स्वर्णिम प्रभात की कल्पना की है। लेखक की कल्पना के अनुसार इस नये प्रभात के उदय होते ही किसानों-मजदूरों का शोषण चक्र टूट जावेगा एवं समानता तथा सहकारिता के आधार पर एक नूतन समाज निर्मित होगा। ऐसे समाज की स्थापना पर ऊँच नीच, गरीब अमीर छूत-अछूत की असमानता तिरोहित होगी और मनुष्य सुखमय जीवन यापन कर सकेगा। इस विचार को उपन्यास का रूप देने के लिए देश में स्वतन्त्रता के पश्चात् स्वेच्छाचारी जमींदारों और पूँजीवादी मिल-मालिकों के जीवन में उत्पन्न होने वाली उथल पुथल से युक्त कथानक की रचना की गई है।

राजगढ रियासत के उत्तराधिकारी कुँवर सुरेशसिंह और उनकी पत्नी प्रमिला रानी उपन्यास के प्रमुख पात्र हैं। सुरेशसिंह नये विचार और उदार भावनाओं का सुशिक्षित तरुण है और उसका स्व कार्यप्रेम के प्रति सहानुभूतिपूर्ण है। रियासत में रहने के कारण वे किसानों और जमींदारों के संघर्ष से परिचित हैं ही, अपनी दिल्ली यात्रा के प्रसंग से वे नगर में पाये जाने वाले मजदूरों और पूँजीपतियों के वर्ग-संघर्ष से भी परिचित हो जाते हैं। शोषक वर्ग में जन्म लेने पर भी शिक्षा और आनन्दस्वामी के सत्संग के कारण उनमें शोषक की कठोरता का अभाव है। वह उदार हृदय का व्यक्ति है और बदलते हुए समय के अनुसार उसकी सहानुभूति शोषित किसानों और मजदूरों के साथ है। पिता की मृत्यु के उपरान्त वे राजगढ़ को युग के अनुरूप एक आदर्श ग्राम बनाते हैं और सहकारी फार्मों द्वारा कृषि कर्म को प्रोत्साहित करते हैं। इस तरह राजगढ का कायाकल्प होता है।[1]

लेखक ने अपने इस काल्पनिक आदर्श समाज का चित्र सहकारिता के आधार पर चलने वाले ग्रामीण जीवन के रूप में प्रस्तुत किया है। इस समाजवादी दृष्टि से ही वह पूँजीवाद और राष्ट्रवाद का विरोधी तथा अन्तर्राष्ट्रीयता, विश्व-सरकार और समानता का समर्थक है, जो पात्रों के सम्भाषणों में व्यक्त हुआ है। वह युद्ध और हिंसा के आधार पर पनपने वाले राष्ट्रवाद और साम्राज्यवाद को बीते युग का सत्य निरूपित करता है। उसके अनुसार 'निश्चय ही एक लोहे और लोहू से भरा युग बीत चुका।

1　आचार्य चतुरसेन - उदयास्त, पृष्ठ २२२

युद्ध का देवता मर गया साम्राज्यवाद का महल ढह गया और उसी के साथ पूंजी सत्ता और अत्याचार भी खत्म हो गये।

स्वाधीनतोपरान्त भारतीय जनतन्त्र से उसे सन्तोष नहीं और उसकी आलोचना करता हुआ वह कहता है "यह कैसा जनता का राज्य है? यह कैसा जनतन्त्र है? एक तरफ विश्व की जातियां निरंतर भारत की ओर उन्मुख हो रहा हैं– दूसरी ओर भारत की एक आंख आंसू से तर है और दूसरी नशे में लाल हो रही है। यह सब क्या है?"

उपन्यास में उपन्यासकार ने अछूतों राजाओं मजदूरों मिल-मालिकों शरणार्थियों किसानों गांव और शहर अमीर-गरीब ऊंच-नीच सभी की समस्याओं का सम्मिलित किया है। आधुनिक युग की राजनीतिक सामाजिक आर्थिक और धार्मिक विषयों की विशद व्याख्या का प्रयत्न भी उसने किया है। इतना ही नहीं अपितु देशीय समस्याओं के साथ-साथ लेखक अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति का अवलोकन करना भी नहीं भूलता। इस प्रसंग में हैं साम्यवाद पूंजीवाद प्रजातंत्र विश्वसंघ पर अपने विचार व्यक्त करते हुए विश्व स्तर पर निर्मित राजनीतिक गुटों और दलबन्दियों की आलोचना आनन्दस्वामी के माध्यम से प्रकट करता है। वस्तुतः आनन्दस्वामी के वार्तालाप और व्याख्यान लेखक के ही विचार हैं और उपन्यास में राजनीतिक पक्षन्द का काम करते हैं।

इन्हीं राजनीतिक विचारों को अभिव्यक्ति देने के लिए अनेक राजनीतिक पात्रों की सृष्टि की गई है। अधिकांश राजनीतिक पात्र कांग्रेसी हैं। इनमें से एक हैं ठाकुर राजनाथसिंह जो शिक्षित नवयुवक हैं और खुद काश्त करते हैं।

दूसरे कांग्रेसी हैं मगतू चमार जो कांग्रेस के हरिजन आन्दोलन के पारस-पत्थर स्पर्श हो गये हैं मगतराय। बाईस बरस का निर्भय तरुण शरीर पर स्वच्छ खद्दर का कुर्ता और सिर पर गांधी टोपी। मगतराय कांग्रेस की देन है और उसका कर्मठ सदस्य है। मैट्रिक तक शिक्षा पायी है और टैकनिकल स्कूल में खराद का काम सीखकर मिस्त्री हो गया है। राजा साहब उससे पूर्ववत् बेगार लेना चाहते हैं पर वह इन्कार कर देता है। इतना ही नहीं अपितु वह राजा पर दुर्व्यवहार का मुकदमा भी दायर कर देता है। यह समय का परिवर्तन है जिसकी आलोचना करते हुए राजा साहब कहते हैं "अब तो यह भटियारों का राज है। जो न हो जाय वही थोड़ा। वह तो अंग्रेजों के दम का जहूर था कि रईसों की कद्र होती थी। अब तो सब रियासतें ही धूल में मिल गईं न अली खानदान की कद्र न लियाकत की। बस जेल का सर्टिफिकेट चाहिए। जितनी बार जेल गये उतनी ही बार मिनिस्टर बन जाइए।"[1]

---

१ आचार्य चतुरसेन उदयास्त पृष्ठ ६६

कांग्रेस की आलोचना

'उदयास्त' में कांग्रेसी शासन की अनेक स्थलों पर आलोचना की गयी है। उसे अवसरवादियों और स्वार्थियों का रंगमंच निरूपित करने में कोई कोर-कसर नहीं रखी गयी है। रेणुका के पति के शब्दों में 'कांग्रेस के तो अब बदनामी ही के दिन है। पुरानी शान शौकत तो अब उसकी खत्म हो गई है। मैं तो मसलहतन उसका साथ दे रहा हूँ, ऐसा न करूँ तो मेरा सारा कारोबार ही ठप हो जाए।''[1]

कांग्रेसी मन्त्रिमन्डल, उसके सदस्यों की शान शौकत तथा स्वार्थपरता की कटु आलोचना की गई है। राजा साहब एफ०ए० फेल मुख्यमंत्री चौधरी की शैक्षणिक अयोग्यता, किन्तु राजनीतिक सांठ गांठ की तिकड़म की ओर इंगित करते है।[2] ये कांग्रेसी मिनिस्टर ऐयाशी में अंग्रेजों से कम नहीं। "बड़े-बड़े अंग्रेज अफसरों के बंगलों में खद्दरधारी कांग्रेसी रहते हैं, पर गरीबों की पहुँच न सफेद चमड़ा वाले अंग्रेजों तक थी, न सफेद खद्दर पहनने वाले इन कांग्रेसियों तक।''[3] इतना ही नहीं अपितु उनकी विलासप्रियता इतनी बढ़ गई है कि 'पेशाब करने को भी मोटरों में जाते है।'[4]

साम्यवादी पात्र

'उदयास्त' में वहीद, पद्मा व कैलास साम्यवादी पात्र है, जो साम्यवादी विचारधारा को अभिव्यक्ति देते हैं। वहीद के रूप में लेखक ने साम्यवादी पात्र का 'कैरीकेचर' प्रस्तुत किया है। वह मटरगश्ती करता है और शाम को घर आकर खाकर सो रहता है। रोटियां उसे दस-बारह चाहिए। घर माँ चलाती है, बाप बूढ़ा है। पर वहीद है कि 'घर पर एक लाल भण्डा लगाया हुआ है।' कभी-कभी वह जोर-जोर से 'मजदूरों! एक हो जाओ' के नारे लगाने लगता है, उसे इस बात की जरा भी परवाह नहीं कि कोई उसकी बात सुनने वाला भी है या नहीं।''[5] वह फतवे देता है "ये बुर्जुए हम मिहनत-कशों का खून पीने से तब तक बाज न आएँगे, जब तक इनका खात्मा नहीं कर दिया जाता है। ये बुर्जुए हमेशा के बुजदिल हैं, अपनी कमजोरी छिपाकर दूसरों पर दबाव डालते है, लेकिन उनकी हालत उस तपेदिक के मरीज की जैसी है जो खून थूक

१ आचार्य चतुरसेन : उदयास्त, पृष्ठ १४२
२. आचार्य चतुरसेन उदयास्त, पृष्ठ ६६
३ आचार्य चतुरसेन उदयास्त, पृष्ठ १४७-१४८
४ आचार्य चतुरसेन . उदयास्त, पृष्ठ ७२
५ आचार्य चतुरसेन : उदयास्त, पृष्ठ २४-२५

रहा हो और दम तोड रहा हो।"[1] वह मेहनतकश मजदूरों की बढती हुई ताकत का बयान भी करता है।

पर गाँव का सुनार उसकी सारी दलीलों पर इस एक वाक्य से ही पानी फेर देता है : 'अबे यहाँ दुनियाँ के मजदूर कहाँ हैं, क्यों चीख रहा है।'[2]

वहीद के विपरीत कैलाश में साम्यवादी कार्यकर्ता का रूप अधिक अच्छा उभरा है। वह होनहार किन्तु टाइपिस्ट का पुत्र होने के कारण अर्थाभाव से पीडित है। कम्युनिस्ट होने से उसे नौकरी से पृथक कर दिया जाता है। उसमें चारित्रिक दृढता है पर उसका समुचित विकास दिखलाने में लेखक असफल रहा है। पद्मा धनी बाप की बेटी होने पर भी कैलाश की प्रेमिका है। आगे चलकर यह प्रणय विवाह में परिणत हो जाता है। पद्मा कैलाश के प्रभाव में आकर ही कम्युनिस्ट विचारधारा ग्रहण करती है, पार्टी का अखबार बेचती है और कैलाश की सहयोगिनी के रूप में आगे आती है।

अवसरवादी नेता

'उदयास्त' में अवसरवादी नेताओं का चित्रण भी मिलता है। प० शिवशंकर शुक्ल व प्राणनाथ इसी श्रेणी के नेता हैं। 'सुकुल' जी अवसरवादी काग्रेसी हैं। कार्य सिद्धि के सामने न्याय अन्याय, उचित-अनुचित का आप विचार नहीं करते हैं। काग्रेस में बहुत सी कुर्बानियाँ करते आये थे। पर एम० एल० ए० होने पर धन्धा भी चलाते थे। वे राजा साहब से एक लाख रुपये काग्रेस कमेटी के लिए व पाँच हजार स्वयं के लिए लेकर मेंबरी का टिकट राजा साहब को दिलवा देते हैं, जिससे वे निर्विरोध चुन लिये जाते हैं। "चाँदी का जूता काग्रेस पर भी असर कर सकता है—जन-साधारण नहीं समझ सका।"[3]

समाजवादी दल की सदस्या रेणुका की पुत्री है। कामरेड पद्मा और पति हैं नगरसेठ। ये सभी स्वार्थवश राजनीति के दलदल में लिप्त हैं।[4]

सम सहयोग की सर्वोदयी भावना

काग्रेसी, साम्यवादी और सोशलिस्ट पात्रों की सृष्टि समसामयिक राजनीतिक दलों और उनके कार्यकर्ताओं की स्थिति स्पष्ट करने हेतु की गयी है। किन्तु लेखक की राजनीतिक भावना इनमें से किसी से भी साम्य नहीं रखती। उसके विचारों का प्रति-

१ आचार्य चतुरसेन उदयास्त, पृष्ठ ४३
२ आचार्य चतुरसेन : उदयास्त, पृष्ठ ४५
३ आचार्य चतुरसेन उदयास्त, पृष्ठ २११
४ आचार्य चतुरसेन उदयास्त, पृष्ठ १३३

निर्दिष्ट करते है स्वामी जी । वस्तुत स्वामी जी के रूप मे लेखक का ही यह वक्तव्य है 'अब युद्ध, संघर्ष के दिन बीत जाना चाहिए। अब तो विश्व-एकता और पारस्परिक सहयोग का काल उपस्थित है। अब मनुष्य को स्वाधीन होने की नहीं, सबसे सहयोग करने की, एक संयुक्त विश्व-समाज बनाने की—जिसका आधार प्रेम और कर्तव्य हो—सोचनी चाहिए।'[1]

सम-सहयोग की यह भावना गाँधीवादी सर्वोदय सिद्धान्त पर आधारित है। स्वामी जी इसी को स्पष्ट करते हुए कहते हैं "गाँधी जी ने भारत को सीधी राह दिखायी है। मनुष्य के प्रति मनुष्य का आत्मसमर्पण। कर्तव्य पर अधिकारों का बलिदान। भारत यदि इस पथ पर चलेगा तो वह विश्व का नेतृत्व करेगा। संसार के मानवों को अभयदान-जीवनदान देगा।" स्वामी जी इसी सम सहयोग के आकांक्षी हैं। उनका कथन है "मैं सबका सहयोग चाहता हूँ। मैं नहीं समझता कि सब लोग कभी बराबर हो सकेंगे। पैर पैर रहेंगे-सिर सिर रहेगा। पैर अपना काम करेंगे और सिर अपना—मैं केवल यह चाहता हूँ कि पैरों का सिर मे सम-सहयोग रहे। पैरों को सिर पर बोझ ढोना असह्य न हो, और सिर पैर मे एक काँटा चुभे तो भी उन्हे सावधान कर दे। इसी का नाम है सम सहयोग।"[2] और यदि "समाज का प्रत्येक व्यक्ति बिना शर्त दूसरे के प्रति आत्म-समर्पण कर दे तो यह सम-सहयोग आसानी से हो सकता है।"[3]

इसी विचार को केन्द्र बनाकर काल्पनिक कथावस्तु की रचना से उपन्यास मे काल्पनिक आदर्श समाज का ताना-बाना बुना गया है।

बगुले के पंख

'उदयास्त' का मँगतू 'बगुले के पंख' मे जुगुनू के रूप मे विकास पाता है। गाँधी जी के हरिजनोद्धार के कार्यक्रम ने मँगतू को भगतराय बनाया और राजनीतिक चेतना का समावेश किया। वह कांग्रेस टिकट पर एम०एल०ए० के उम्मीदवार के रूप मे सामने आया, पर परिस्थितियों के कारण राजनीतिक स्वार्थपरता से उसे उम्मीदवारी से हटना पड़ा। 'बगुले के पंख' का नायक जुगनू मेहतर अधिक तिकड़मबाज है और परिस्थितियों के अनुकूल अपने को ढाल कर न केवल एम०पी० अपितु वाणिज्य मन्त्री तक बन जाता है। जुगनू के माध्यम से लेखक ने सामयिक राजनीतिक और अवसरवादी नेताओं पर कठोर व्यंग्य किया है।

---

१ आचार्य चतुरसेन उदयास्त, पृष्ठ ७९

२ आचार्य चतुरसेन : उदयास्त, पृष्ठ ८०

३. आचार्य चतुरसेन : उदयास्त, पृष्ठ ८१

जनतंत्र की स्थापना हो जाने पर भी भारतीय शासनतंत्र में कोई परिवर्तन नहीं आया। 'अंग्रेजी राज चला गया। उसकी जगह कांग्रेसी राज की स्थापना हो गयी, पर परम्परा वही रही। योग्य क्लर्कों और अफसरों के सिर पर अंग्रेज की जगह कोई कांग्रेसी आ बैठा। अंग्रेज और कांग्रेसी में थोड़ा ही अन्तर है। अंग्रेज की चमड़ी गोरी और सूट काला था। कांग्रेसी की चमड़ी काली और शेरवानी बगुला पंख-सी सफेद खादी की है। अपने दफ्तर के सम्बन्ध में वह कुछ नहीं जानता पर इससे कोई काम रुकता नहीं है। सिर्फ उसे दस्तखत करने पड़ते हैं और यह काम वह कीमती फाउण्टेन पेन से कर लेता है। उसके दफ्तर का बड़ा बाबू जानता है कि वह गधा है।'[1]

इसका दोषी लेखक प्रजातंत्र की शासन प्रणाली को ही मानता है, जो दलीय स्थिति के आधार पर सत्ता का निर्णायक तत्व बन जाती है। "गणतन्त्रों का एक भारी दोष यह है कि उनमें योग्यतम व्यक्ति को अधिकार नहीं मिलता। गुटों के प्रतिनिधि को अधिकार है। चाहे उसमें योग्यता हो या नहीं।"[2] दलीय स्थिति बनती है चुनाव से और चुनाव जीतने के लिए जो जोड़-तोड़ होती है, उसका सजीव चित्रण प्रस्तुत उपन्यास में मिलता है।

जुगनू भी चुनाव लड़ते हैं और भ्रष्ट आचार का सहारा ले विजयी होते हैं। दर्जनों बार का जेलयात्री विद्यासागर, जिसके लिए कोई काम असाध्य न था, जुगनू के चुनाव का संचालन करते हैं। इस प्रसंग में चुनाव में अपनाये जाने वाले घृणित कार्यों का पर्दाफाश किया गया है।[3] चुनाव में स्त्रियों के जुलूस की व्यवस्था व जातिवाद के प्रश्रय के अनेक रंगीन चित्र उरेहे गये हैं। जातिवाद को प्रोत्साहन देने के लिए जनसंघी तरीका देखिए—"बस दो-चार बात ध्यान में रखनी है, हिन्दू धर्म की जय हो, गोवध बन्द हो, पाकिस्तान मुर्दाबाद, काश्मीर हमारा है। बस जै गंगा जी की।"[4] उम्मीदवारों के चयन के समय भी कांग्रेस और जनसंघ दोनों जातिवाद की दृष्टि से ही सोचते हैं।[5]

कांग्रेस की स्थिति

स्वाधीनता के बाद कांग्रेस की दयनीय स्थिति, पारस्परिक दलबन्दी और उससे उत्पन्न अव्यवस्था का चित्रण विस्तृत रूप से मिलता है। प्रथम आम चुनाव के समय

---

१. आचार्य चतुरसेन : बगुले के पंख, पृष्ठ २५२
२. आचार्य चतुरसेन : बगुले के पंख, पृष्ठ २३६
३. आचार्य चतुरसेन : बगुले के पंख, पृष्ठ २१५
४. आचार्य चतुरसेन : बगुले के पंख, पृष्ठ १७७
५. आचार्य चतुरसेन : बगुले के पंख, पृष्ठ १७४

कांग्रेस की स्थितियाँ चित्रित की गयी है : 'कांग्रेस की सारी प्रतिष्ठा और सारी साख का दिवाला निकल चुका था। उसका तप और कष्ट से संचित धवल यश मैला और गंदा हो चुका था। खद्दर की पोशाक हास्यास्पद और ढोंग समझी जा रही थी।— अवसरवादी कांग्रेस में घुसकर ऊँची कुर्सियों पर जमते जा रहे थे। पुराने तपे हुए कर्मठ देशभक्त निराश और क्षुब्ध हो या तो अब सरकारी बेंचों का विरोध करते थे या अपनी अलग डफली, अलग राग अलाप रहे थे।'[1]

विरोधी राजनीतिक दल के रूप में कम्युनिस्ट पार्टी के बढ़ते हुए प्रभाव का संकेत देते हुए उसे बाधक निरूपित करता है—'सबसे बड़ी बाधा थी कम्युनिस्ट गुट की, जो प्रत्येक सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक व्यवस्था को सोवियत दृष्टिकोण से देखता था। वह देश और सरकार के ऐसे किसी भी उचित-अनुचित कार्य का, जो कम्युनिस्ट क्रिया-कलापों के विपरीत हो, विरोध करता था, और यह गुट धीरे-धीरे देश की सबसे बड़ी राजनीतिक और आर्थिक बाधा बनता जा रहा था।''[2]

इस तरह वह भारतीय गणतंत्र की स्थिति को असन्तोषपूर्ण मानता है और उसके शब्दों 'में इस भारतीय गणतंत्र की दशा ठीक रेलगाड़ी के उस तीसरे दर्जे के डिब्बे के समान थी, जिसमें सुविधाएँ कम और असुविधाएं अधिक थीं।'

प्रशासन की लाल फीताशाही का एक कारण मंत्रियों की अयोग्यता और नौकरशाही का बढ़ता हुआ प्रभाव है। यह अंग्रेजों की देन है। लेखक का मत है कि 'आजकल के मन्त्रालय मंत्रियों की योग्यता पर नहीं चलते, अपने संगठन पर चलते हैं। वही बात जो हम कई बार कह चुके हैं, यहाँ फिर कहेंगे। घोड़ों पर गधा सवारी गाँठता है। अंग्रेज ही यह परम्परा छोड़ गये थे।'[3]

मंत्रियों की अयोग्यता पर लेखक ने अनेक स्थलों पर तीक्ष्ण व्यंग्य किया है— "मिनिस्टर बनने के लिए ढीठपना ही एकमात्र योग्यता है। जरा सी बेहयाई भी हो तो वह और खिल उठती है। क्योंकि वैसी हालत में मिनिस्टर हर मुश्किल काम के समय भी हँस सकता है। खासकर फोटो खिंचवाते वक्त तो जरूर—खिल—जरूर।''[4]

राजनीतिक गतिविधि और नारी

राष्ट्रीय आन्दोलनों ने भारतीय नारी-समाज को आन्दोलित किया और बड़ी संख्या में महिलाओं ने राजनीति के कर्मक्षेत्र में प्रवेश किया। प्रस्तुत उपन्यास में विभा

१ आचार्य चतुरसेन बगुले के पंख, पृष्ठ २३७
२ आचार्य चतुरसेन : बगुले के पंख पृष्ठ २३७
३ आचार्य चतुरसेन बगुले के पंख, पृष्ठ २५१
४ आचार्य चतुरसेन : बगुले के पंख, पृष्ठ २५३

और शक्तिभारती ऐसी ही महिलाओं की प्रतीक है। ऐसा प्रतीत होता है कि लेखक राजनीतिक क्षेत्र में महिलाओं के प्रवेश को उपयुक्त नहीं मानता। यही कारण है कि राजनीतिक गतिविधियों में भाग लेने वाली महिलाओं को वह व्यंग्य में, 'नई रोशनी की अधिष्ठात्री प्रभातफेरी भाषण चन्दा ग्रहण निपुण, कांग्रेस पूता खद्दरधारिणी दिव्य देवियाँ' संबोधित करता है। स्त्रियों की स्वतन्त्रता पर अभिमत देते हुए वह कहता है 'बूढ़े ब्रह्मा ने गाधी का अवतार धारण कर उन्हें वरदान दिया कि वे अब स्वच्छन्द विचरण करें प्रभातफेरी करें, देश की धुन में हजारों नर नारियों के बीच गला फाड़ फाड़ कर चीखें चिल्लायें। जेल जायें फांसी चढ़ें, मरें किन्तु अमर रहें। पति पर से उनका असाध्य एकाधिकार हटा दिया गया। साक्षात स्वामी कार्तिकेय ने नेहरू चाचा के रूप में जन्म लेकर उन्हें तलाक का वरदान दे दिया। अब वे अँधेरे ही भोर के तड़के प्रभात फेरी के नाम पर जहाँ जो चाहे जायें जो भी चाहे करें।[1] कहना न होगा कि आचार्य जी ने नारी-जागरण को उसके वास्तविक परिप्रेक्ष्य में देखने का प्रयास नहीं किया। वे प्राचीन संस्कृति के दुराग्रह से ही ग्रस्त हैं। सम्भवत यह उनका आर्यसमाजी प्रभाव हो, जो यूरोपियन नारी-स्वच्छन्दतावाद का विरोधी है।

अमरबेल

गाँधीवाद की पृष्ठभूमि पर अमरबेल जनपद-जीवन की विविध समस्याओं तथा सहकारिता, ग्राम शिक्षा, प्राचीन और नवीन का समन्वय, हरिजनोद्धार को वाणी देता है। इन समस्याओं के सम्बन्ध में लेखक ने तर्क वितर्क द्वारा सैद्धान्तिक पक्ष पर घटनाओं की व्यावहारिकता सिद्ध की है। इस प्रक्रिया में उनका दृष्टिकोण सर्वथा राष्ट्रीय और प्रगतिशील है। उपन्यास का नामकरण भी सोद्देश्य है। अमरबेल है शोषक का प्रतीक और लेखक के अनुसार अनीति से अर्थलाभ करने वाले व्यक्ति समाज में वैसे ही हैं जैसे हरे भरे पेड़ पर अमरबेल। इस कथन की उपयुक्तता सिद्ध करने के लिए ही जमींदार देशराज, प्रेयसी अजना नाहरगढ़ के राजा बाघराज तथा डाकू कालो सिंह के अफीम के अवैध व्यापार तथा उनके पराभव की कहानी 'अमरबेल' की मुख्य कथा है। जमींदार देशराज के चरित्र चित्रण से जमींदारी उन्मूलन के उपरान्त जमींदारों द्वारा वैयक्तिक महत्वाकांक्षा का बदलता हुआ रूप प्रस्तुत किया गया है। वह किसानों पर अत्याचार भी करता है और सहकारी आन्दोलन में भाग ले सरकारी अधिकारियों पर प्रभाव डालने हेतु उसमें कुछ भूमि लगा देता है पर अधिक भूमि पर स्वतंत्र खेती करता है। वह सुहाना की सहकारी समिति का प्रधान अवश्य हो जाता है, पर सहकारिता के प्रति उसके हृदय में स्थान नहीं।

---

१ आचार्य चतुरसेन बगुले के पख, पृष्ठ २०६

देशराज के पुराने जमींदारी के रवैये के विरुद्ध गाँव के लोग सक्रिय आन्दोलन छेड़ते हैं, जिसमें प्रमुख हिस्सा लेता है टहल, जो वर्ग-संघर्ष तथा साम्यवादी धारा का पोषक है। उसके उग्र विचारों का ही यह प्रतिफल है कि ग्रामीण कई वर्गों में विभक्त हो परस्पर लड़ने लगते हैं। टहल देशराज जैसे व्यक्ति से विक्षुब्ध है, क्योंकि वह पूँजीवादी है। टहल को मार्ग से हटाने के लिए देशराज डाकू कालीसिंह की सहायता से उसे और उसके साथियों पर आक्रमण करा मार डालने का षड्यन्त्र करता है, पर असफल रहता है। टहल मरणासन्न स्थिति में सदर अस्पताल ले जाया जाता है, जहाँ ग्राम के डाक्टर सनेही की परिचर्या से स्वस्थ होता है। उसकी मानसिक स्थिति में भी परिवर्तन होता है और गाँधीवादी डाक्टर सनेही के कारण उसका हृदय परिवर्तन हो जाता है।

डाक्टर सनेही गाँधीवाद और समन्वयवाद के प्रतीक हैं और प्रेम और सहयोग से सामाजिक विकास का स्वप्न देखते हैं। वह सहकारी कार्यों में पूर्ण सहयोग देते हैं। पूँजीवादी देशराज विघ्नकर्ता हैं, पर सनेही अपने आत्म-बल और आस्था से दृढ़ हैं। टहल के हृदय-परिवर्तन से उनकी आस्था को बल मिलता है और इस प्रसंग से हिंसात्मक प्रवृत्ति पर अहिंसा विजयिनी होती है।

इधर देशराज और बाघराज में सम्पत्ति को लेकर वैमनस्य होता है। कालीसिंह डाकू बाघराज के इशारे पर देशराज को लूटता है और देशराज पुलिस को सूचना दे बाघराज को पकड़वा देता है। इस पर कालीसिंह देशराज से बदला लेने का प्रण करता है। देशराज में धन की आसक्ति होती है और वह ग्राम में खेती करने लगता है और गाँव में शान्ति और श्रीवृद्धि होती है। समय पा कालीसिंह टहल और देशराज के घर पर आक्रमण करता है। ग्रामीणों की तत्परता से डाकू-दल के कई सदस्य और स्वयं कालीसिंह मारा जाता है। इस प्रसंग में वर्मा जी ने ग्राम-रक्षा का एक सशक्त चित्र प्रस्तुत किया है, जो वर्तमान डाकू-समस्या का ही निदान है।

'अमरबेल' में गाँधीवादी भावना प्रधान है। उपन्यास की समस्या है 'अनीति से रुपया कमाने की धुन गाँवों तक में व्यापक रूप से फैली है। साहूकारी, मेनी, रिश्वतें, सबमें। समाज में यह घुन की तरह लगी हुई है। जैसे हरे भरे पेड़ पर अमरबेल।' अतएव प्रगति, सुख, प्रेम, सन्तोष सभी वट वृक्ष सूख कर गिर रहे हैं। धन पूँजीवादी सत्ता का प्रतीक है और उपन्यास के पूँजीवादी पात्र देशराज, राजा बाघराज, ग्रामीण साहूकार, बनमाली सभी उसके पोषक हैं और अपनी कार्यविधि से शोषण, हिंसा और घृणा का प्रसार करते हैं। इसके ठीक विपरीत है टहल, जो साम्यवाद को ही पूँजीवाद के विरुद्ध एक प्रभावकारी शस्त्र मानते हैं। इस तरह उपन्यास का एक छोर पूँजीवाद और दूसरा साम्यवाद है और जिसके बीच की कड़ी हैं, सनेही जी, जो व्यक्ति के महत्व को स्वीकार करके भी, सेवा, त्याग, हृदय-परिवर्तन पर आस्था रख सह-अस्तित्व

म ही समस्या का समाधान पाते है। वस्तुत वे प्राचीन और नवीन, व्यक्ति और समाज विज्ञान और अध्यात्म के सघर्ष के बीच समन्वयवादी के रूप मे उठ उभरते हैं।

वे सहकारी सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुए कहते हैं— स्वतत्रता और समानता का समन्वय सहकारी सिद्धान्त कर सकता है। [1] और समाज की आर्थिक प्रगति का शासन वज्ञानिक योजनाएँ करें और दोनो को प्राण शक्ति अध्यात्म दे तो समाज का निरन्तर कल्याण होता रहे।"[2] यहाँ पर लेखक ने मार्क्सवादी आर्थिक साम्य सिद्धान्त को गाँधीवादी सहयोगी आर्थिक सिद्धान्त के समीप लाकर समझौता उपस्थित किया है।

इन्हीं सिद्धान्तो के अनुसार उनका चरित्र विकासमान होता है। उनका विश्वास है त्याग और सेवा म और इन्हीं गुणो के वे स्वय प्रतीक बन जाते हैं। उनका कथन है अभय होने के लिए घृणा और ईर्ष्या का त्याग लोभ मे कमी, ईश्वर मे विश्वास बहुत जरूरी है, हिम्मत के साथ कठिनाइयो का मुकाबला करना, उन पर खेल-कूद के जरिये हसना और मजिल का तरफ दृढता से बढ़े चले जाना ही जीवन है—इसी क्रिया के द्वारा भीतर वाली अमरबेल मुरझा जावेगी। [3] वे व्यक्ति के सुधार से ही समाज का सुधार सम्भव मानते है तथा जनतान्त्रिक पद्धति पर उनकी निष्ठा है।[4] वे योजना का स्वागत कर उसम अपना सहयाग दते हैं। वे सही अर्थों म गाँधीवादी पात्र हैं।

दूसरा राजनीतिक पात्र है टहल प्रारम्भ में साम्यवादी और सनेही के सम्पर्क मे आने के बाद हृदय-परिवर्तन होने से समन्वयवादी। साम्यवादी के रूप मे वह अत्यन्त सक्रिय है। वह कहता है मैं आराजक नही, समूहवादी हूँ, रूढियो का सहार और वर्ग-सघर्ष मे विश्वास करने वाला पुनरुत्थानवादियो का घोर विरोधी हू। वह मानता है 'नया जीवन, नयी लहर, प्रगति, नया सवेग इस प्राचीन की श्रद्धा और पूजा के ढकोसलो की जकड मे ही तो रूँध रूँध जा रहे हैं।[5] वह श्रम को महत्व देता है और उसका विश्वास है 'समाज पर जो कूडा-कचरा, घास फूस छा गया है उसका साफ किये बिना समाज के नये अकुर और किसलय नहीं पनप सकेंगे। एक दूसरे के साथ सच्चा और प्यार से कसा हुआ गठबधन पुरानी गाँठो फाँसो और गुत्थियो के काट फेंकने के बिना

---

१ 'अमर बेल' की भूमिका से
२ 'वृन्दावन लाल वर्मा अमर बेल पृष्ठ ४६४
३ वृन्दावनलाल वर्मा अमर बेल पृष्ठ ४४०
४ वृन्दावनलाल वर्मा अमर बेल पृष्ठ ४४९ ४५१
५ वृन्दावनलाल वर्मा अमर बेल, पृष्ठ ५२

न हो सकेगा।'[1] यहाँ साम्यवादी दर्शन की लेखक ने स्पष्ट व्याख्या की है। भले ही हम उसे गाँधीवादी विचार कहें। सच तो यह है कि गाँधी जी ने ईश्वर में अटल विश्वास रखने की शिक्षा दी है, किन्तु उन्होंने ईश्वरवाद की ओट में शोषण को कभी प्रश्रय देने का अभिप्राय नहीं व्यक्त किया है, जब कि मार्क्स ने ईश्वरवाद की ओट में घोर जनशोषण से ऊब कर ही धर्म की करारी भर्त्सना की थी।

इस तरह हृदय परिवर्तन होने पर भी टहल प्रगतिशील, गतिशील पात्र है।

संक्षेप में अमरबेल में ग्रामीण समाज के उठते शोषकों और योजना व सहकारिता के माध्यम से पनपते हुए ग्राम्य-जीवन का चित्रण है। इसमें ही दूसरा प्रश्न हिंसा प्रयोग का निहित है। हिंसाविरोधी तत्वों का उन्मूलन कर अहिंसा प्रतिष्ठित की गयी है और निर्माण-कार्य में अहिंसा के महत्व को प्रतिपादित किया गया है।

कलात्मक दृष्टि से भी 'अमरबेल' वर्तमान राजनीतिक विचारधारा का एक सफल उपन्यास है। कथानक पूर्णतया सुहाना में वृत्त बनाकर चलता है, अतः अन्य अधिकांश राजनीतिक उपन्यासों की शृंखलाहीनता इसमें नहीं मिलती। कथावस्तु अनेक समस्याओं को उठाती और उनका समाधान प्रस्तुत करते हुए आगे बढ़ती है और उसमें आवश्यक मोड़ और जिज्ञासा का स्रोत वर्तमान है। औत्सुक्य-निर्वाह भी है और अन्त सुखात्मक कर गाँधी जी के रामराज्य की भावना को यथार्थ की भूमि पर सपुष्ट किया गया है। कथानक स्वाभाविक रूप से अग्रसर होता है और राजनीति को समेटकर भी प्रचारात्मक नहीं लगता, क्योंकि यह जीवन के निकट अनुभव और अध्ययन पर आश्रित है।

भग्न मन्दिर

अनन्त गोपाल शेवड़े का 'भग्न मन्दिर' स्वाधीनता के बाद के राजनीतिक वातावरण का यथार्थ की भूमिका पर किया गया चित्रण है। कांग्रेसी प्रशासन में व्याप्त भ्रष्टाचार ने जनता के मन्दिर को भग्न कर दिया है और सत्य पर असत्य का आवरण पड़ गया है।

'भग्न मन्दिर' इसी भावना को लेकर लिखा गया है। साप्ताहिक हिन्दुस्तान में अपने उपन्यासों की चर्चा करते हुए शेवड़े जी ने 'भग्न मन्दिर' की रचना पर प्रकाश डालते हुए कहा है 'मेरा नवीनतम उपन्यास 'भग्न मन्दिर' स्वातन्त्र्योत्तर भारत की पृष्ठभूमि पर लिखा गया राजनीतिक उपन्यास है, जिसमें 'ज्वालामुखी' का आदर्शवादी नायक राष्ट्रीय चारित्र के गतिशील ह्रास को देखकर खिन्नता और विफलता के वातावरण

---

१ वृन्दावनलाल वर्मा 'अमर बेल' पृष्ठ ६१
२ वृन्दावनलाल वर्मा अमर बेल, पृष्ठ ३००

मे मानो पुनर्जन्म पाता है और पूछता है—'क्या यही खण्डित चित्र देखने के लिए, भारतीय स्वातन्त्र्य की भग्न मूर्ति देखने के लिए ही मुझे फाँसी पर चढाया गया था ?' पर वास्तव मे वह विफल एव निराश नही है, भारत के गौरवशाली भविष्य के बारे मे दृढ आशावान एव आश्वस्त है। हम क्या थे और क्या हो गये, कैसे सुन्दर और मुनहरे हमारे सपने थे, वे किस प्रकार टूट गये और क्या करने से हम फिर सही मार्ग पर जा सकते हैं, यही सब इस उपन्यास म है।'

'भग्न मन्दिर' मे एक प्रदेश के ऐसे मुख्य मत्री के प्रशासन मे व्याप्त भ्रष्टाचार की कहानी चित्रित है, जो स्वतन्त्रता के पूर्व त्यागी, राष्ट्रभक्त और कर्मठ सेनानी थे, पर वही सत्ता प्राप्ति के उपरान्त भ्रष्टाचार के गर्त मे फँस जाते हैं।

जोशी जी का राज्य भ्रष्टाचार का केन्द्र बन जाता है। स्थिति ऐसी है कि 'नौकरशाही म अपने पराये का भेद चल रहा है। ग्रुप बाजी और दलबन्दी चल रही है। ठेके, दुकानें, ऐजिन्सियाँ—ऐसा कोई धन्धा नही, जिसमे उनके रिश्तेदारो का साझा न हो। भले सरकारी अफसर उनसे दबते हैं, और चलते-पुर्जे अफसर उन्ही की खुशामद करके तथा अपनी दलाली देकर अपनी तरक्कियाँ करा लेते हैं।'[1]

काग्रेस मन्त्रिमण्डल

मन्त्रिमण्डल के सदस्यो के निम्न स्तरीय एव स्वार्थपूर्ण कृत्यो का विस्तृत चित्रण इस उपन्यास मे मिलता है। जिन्होने केवल त्याग, मितव्ययिता, सादगी एव प्रखरता का जीवन देखा था, उनके हाथ म शासन की बागडोर आ गयी, उसके साथ ही साथ आराम और सुख भोग की सामग्री भी मिली। मुख्य मन्त्री महोदय के कमरे की साज-सज्जा देखकर धनजय को लगता है कि 'इतिहास के कई वर्ष उलट गये और मध्ययुगीन सामन्तशाही का नक्शा उसकी आँखो के सामने नाच उठा, मानो वह किसी मुगल सम्राट के दरबार म बैठा हुआ है।'

स्वय क नही, अपितु परिवार के लोगो के भी दिन फिरे। अपने लोगों को नौकरी या धन्धा दिलवाना मत्रिओ का एक प्रमुख कर्तव्य बन गया। ऐसे लोगो के लिए तो 'एम० ए० म थर्ड क्लास आया हो, तब भी उसे प्रोफेसरी मिल जाएगी और बाकी फर्स्ट क्लास पास या डाक्टरेट पाये हुए लोग भी मक्खी मारते बैठे रहेंगे, क्योकि उनकी कोई पहुँच नही।' सचिवालय के ५०० हिन्दी टाइपराइटर की खरीद का आर्डर भी परिवार क ही व्यक्ति को दिया जाता है, जिससे बेचारे की रोजी रोटी चले।[2] वही

१ अनन्त गोपाल शेवडे, भग्न मन्दिर, पृष्ठ ८९
२ अनन्त गोपाल शेवडे : भग्न मन्दिर, पृष्ठ ९५

वान सरकारी मोटरों के इन्श्योरेन्स के बारे में, राजा-महाराजाओं के बीमे के बारे में, मैंगनीज की खदानों के ठेकों के मामले में, शिक्षा या प्रचार विभाग की मोटर-बसें खरीदने में उनके आश्रित अपनी सेवाएं देते। फलत: 'उनके महासागर जैसे विशाल हृदय की जनराशि पर उनके मित्र और परिवार के लोग अपनी नौकाएं उतार कर जीवन-क्रीड़ा करने लगे। उनके लिए तो जैसे आसमान से स्वर्ग ही नीचे उतर आया।'

दूसरी ओर जनता पहले भी बेजबान थी, अब भी बेजबान है। उसके दुःख दर्द को सुनने-समझने वाला कोई नहीं, उस पर क्या बीत रही है, क्या गुजर रही है, उसकी कानोंकान खबर नहीं।[1] उपन्यास में इस तथ्य का चित्रण किया गया है कि सत्ता-हस्तान्तरण के बाद अधिकारों और सुविधाओं की, आराम और विलास की जो भयंकर बाढ़ आयी उसमें नेताओं के सारे संयम और आदर्श बह गये। मन्त्रियों का ध्यान जन-हित से हटकर स्वार्थपूर्ति में लग गया।

उपन्यास के अधिकांश पात्र यथा मुख्यमंत्री पूरणचन्द्र जोशी, लोक-कर्म-विभाग के मंत्री मनमोहन बाबू, उनके डिप्टी सेक्रेटरी रघुनाथ सहाय और सहाय जी की पत्नी तारामती, ठेकेदार हातिमभाई, जगपुरा के राजा साहब प्रभुता भ्रष्टाचार के पोषक हैं। आदर्श चरित्र हैं धनंजय और उनकी पत्नी गीता, सन्त देवा जी महाराज और भोलानाथ वकील। सन्तदेवा जी महाराज के प्रसंग से आध्यात्मिक एवं अलौकिक भावों की उद्भावना की गयी है। धनंजय और गीता कर्तव्यनिष्ठ पात्र हैं, जो स्वार्थ और लोभ से परे संघर्षपूर्ण जीवन व्यतीत करते हैं। वे किसी भी स्थिति में स्वार्थ को आत्मसमर्पण नहीं करते।

राजनीति और पत्रकारिता

धनंजय कर्तव्यनिष्ठ पत्रकार है और उसको आधार बनाकर अधुना राजनीति में पत्रकारिता के महत्व और पत्रकारों के कर्तव्य पर विचार व्यक्त किये गये हैं।[2] 'भग्न मन्दिर' में पत्रकारिता का उज्ज्वल पक्ष 'युगान्तर' व 'कलुष पक्ष' जागरण व उसके सम्पादक की स्वार्थपूर्ण गतिविधियों में प्रकट किया गया है।

मशीर में उपन्यास की कथावस्तु सगठित है और इने गिने पात्रों के माध्यम से स्वतन्त्रता के उपरान्त सत्ता व प्रशासन में व्याप्त अनाचार व भ्रष्टाचार का सजीव चित्र प्रस्तुत किया गया है। अन्य राजनीतिक उपन्यासों के सदृश इसमें भी भाषणों और विवेचनात्मक विवरणों का समावेश है। पत्रात्मक पद्धति से कथा-विस्तार के लिए राज-

---

१ अनन्तगोपाल शेवड़े : भग्न मन्दिर, पृष्ठ १३३

२ अनन्तगोपाल शेवड़े भग्न मन्दिर, पृष्ठ १९२-१९३

नीतिक-पत्र भी है यथा धनजय का मुख्य मत्री के नाम और कुमारी शर्मा का धनजय के नाम। घटनाएँ कम है और जो है वे सिद्ध करती है कि 'गन्दगी ऊपरी नेतृत्व की सतह से शुरू होती है, तो नीचे के स्तर पर, यानी पार्टी के छोटे छोटे नेताओं मे, सरकारी कर्मचारियो मे, तथा इन सब उल्टे-सीधे कामों को दलाली का पेशा बनाने वाले लोगो मे वह सौगुना विषाक्त होकर फैल जाती है।'[1] जो वर्तमान शासन मे पूर्णरूपेण सिद्ध होती है।

हाथी के दांत

अमृतराय कृत 'हाथी के दांत' काग्रेसी प्रशासन को व्यग्यात्मक कथा है। यह ठाकुर परदुमनसिंह की कहानी है जो सन् ४७ के पूर्व ब्रिटिश शासन के समर्थक थे और स्वाधीनता के बाद काग्रेस मे घुस कर एम० एल० ए० उपमत्री और मत्री पद हस्तगत कर स्वार्थसिद्ध करते है। उन्होने अनेक स्त्रियो को अपनी वासना का शिकार बनाया, अनेक कत्ल किये और जिनका रहस्य किसी से छिपा हुआ नही है। खद्दर गांधी टोपी और देश भक्ति का ढोंग केवल दिखावे के दांत हैं, सभी जानते है कि इस काग्रेसरूपी हाथी के खाने के दांत और ही हैं।

परदुमन की कहानी इन्ही दिखावटी दांतो का पर्दाफाश करती है। एक समीक्षक का अभिमत है: 'हाथीके दांत' सामन्ती सभ्यता के प्रतीक ठाकुर साहब परदुमन सिंह का व्यग्यचित्र है जिसमे बताया गया है कि जमीदार जागीरदारो की स्थिति मे स्वतन्त्रता के बाद कोई परिवर्तन नही आता है। ठाकुर साहब अग्रेजी राज्य मे पर्याप्त अन्याय करते थे। काग्रेसी राज्य मे भी वे जनसेवक के रूप मे अत्याचार और व्यभिचार मे लिप्त दुहरा व्यक्तित्व रखते हैं।

उपन्यास के कथानक मे केन्द्रीय सूत्र का अभाव है। काग्रेसी भारत का प्रभावोत्पादक चित्र प्रस्तुत करने के लिए अकित अनेक व्यक्ति चित्रो से कथा मे पारस्परिक तारतम्य नही बैठ सका है। उपन्यास के अन्य प्रमुख पात्र है प० रामबिहारी चतुर्वेदी, स्वामी परमानन्द और आजाद जी, जिनके माध्यम से नेताओ की दुर्बलताओ और उनके विलास वैभव को चित्रित किया गया है। अपने उत्तरदायित्व से विमुख काग्रेसी विधायको को विधान-सभा मे विश्राम करते हुए चित्रित किया गया है तथा पुलिस के घोडो का विवरण शासन पर एक व्यग्य है।[2]

यह लघुकाय उपन्यास व्यग्यात्मक शैली मे काग्रेस शासन की कटु आलोचना

१. अनन्तगोपाल शेवड़े : भग्न मन्दिर, पृष्ठ १३३
२ अमृतराय : हाथी के दांत, पृष्ठ ८५

है। इनके पात्र दृढ़ हैं और उनका अंकन सुस्पष्ट रेखाओं से हुआ है। हम कह सकते हैं कि 'बीज' में यदि राजनीतिक तत्वों की विविधता है और 'हाथी के दाँत' में व्यंग्य का तीव्रतम मर्म प्रहार।

बड़ी-बड़ी आँखें

उपेन्द्रनाथ 'अश्क' का 'बड़ी-बड़ी आँखें' उनके अन्य उपन्यासों से कुछ प्रवृत्तिगत भिन्नता रखता है। अश्क जी ने इसे अपना राजनीतिक उपन्यास घोषित करते हुए लिखा है—'उपन्यास को यदि हमारी दृष्टि से देखा जाय तो यह उतना सामाजिक नहीं जितना राजनीतिक है। चूँकि इसमें प्रत्यक्ष रूप से राजनीति की चर्चा बिल्कुल नहीं है, शायद इसीलिए लोगों का ध्यान इस ओर आकर्षित नहीं हुआ। जिस प्रकार जायसी के पद्मावत की काया प्रेमकाव्य की है, लेकिन आत्मा सूफी भक्ति भावना की, उसी प्रकार 'बड़ी बड़ी आँखें' के रोमानी कथानक में राजनीतिक भावना आत्मा के रूप में विद्यमान है। पूरे का पूरा देवनगर और उसकी व्यवस्था एक विशिष्ट सरकारी ढाँचे का प्रतीक है।'[1]

इस प्रतीक को समझाने का संकेत उपन्यास के अन्त में इस रूप में मिलता है—'देवनगर मुझे उस देश-सा लगा, जिसका प्रधान मन्त्री उदाराशय, स्वप्नशील, भविष्य-द्रष्टा हो, पर जिसके सहकारी अवसरवादी चाटुकार और खुशामदी हों और जिसके दफ्तरों में भ्रष्टाचार और स्वजनपालन का दौरदौरा हो। उस प्रधान मन्त्री की अच्छाई स्वप्नशीलता और भविष्यदर्शन के बावजूद उस देश का क्या बन सकता है? यदि वह एक सिरे से दूसरे देश तक सारे निजाम को नहीं बदल सकता तो उसे एक के बाद एक समझौता करना पड़ेगा। उसके सारे के सारे आदर्श धरे के धरे रह जायेंगे और देश रसातल में चला जाएगा।'[2]

उपन्यास के उपर्युक्त अंश के संदर्भ में आचार्य नरेन्द्रदेव के इस कथन को भी देखिए—'प्रधान मन्त्री जी भी ब्रिटिश शासन की नौकरशाही व्यवस्था तथा अन्य कुरीतियों में बुरी तरह उलझ गये हैं। वह वर्तमान परिवर्तनशील जगत में प्रगतिशील विचार और कार्य की आवश्यकता का उपदेश देते हैं, किन्तु उनकी सरकार की नीति स्वयं द्विविधा और भोंडापूर्ण है और अगर वह यथास्थिति को कायम नहीं रखना तो समझौतावादी तो अवश्य है।'[3]

---

१. साप्ताहिक हिन्दुस्तान, दिनांक १६ अक्टूबर १९६०, पृष्ठ २१
२ उपेन्द्रनाथ 'अश्क' बड़ी-बड़ी आँखें, पृष्ठ २३५
३ जनवाणी, अंक जून १९४९

लगता है कि जैसे अश्क जी ने आचार्य जी ही भावना को उपन्यास का ताना बाना बुना है।

प्रत्यक्ष रूप स राजनीतिक चर्चा न होने पर भी जो सकेत दिय गये हैं, उसके आधार पर कथानक की कालावधि १९२१ के बाद से द्वितीय महायुद्ध के बीच की है। इस सन्दर्भ म इन पक्तियो को आधार बनाया जा सकता है—'मधवार साहब १९२१ के आन्दोलन म जो एक बार जल गये देवनगर जा पहुँचे।[1] व 'युद्ध अभी शुरू ही हुआ था और कीमतें चढी न थी।'[2] देवाजी ने भी अपने लेखों मे तत्कालीन राजनीतिक हलचलो का जो उल्लेख किया है, वह भी विवेच्य काल की पुष्टि करती है।[3] इस दृष्टि से उपन्यास मे असगति दिखयी पडती है क्योकि कथावस्तु मे स्वीकृत तथ्य का तालमेल नही बैठता।

कथा का क्षेत्राधार देवनगर देवाजी जैसे स्वप्नादर्शी व्यक्ति के लौकिक आदर्शवादी दृष्टिकोण से निर्मित ऐसे समाज की कल्पना प्रस्तुत करता है जिसे सर्वोदय भावना के अनुकूल कहा जा सकता है।[4] किन्तु व्यावहारिकता म यह स्वरूप उभर नही पाता और सुख शान्ति की खोज मे देवनगर गये सगीत जी वाणी के मन म सेक्स की भावना जाग्रत कर वहा से लौट आते है।

उपन्यास के प्रमुख पात्र हैं देवाजी, सगीत जी मधवार साहब और वाणी। इनमे से देवाजी और मधवार साहब का राजनीतिक से सम्पर्क रहा है और वे सर्वोदयी समाज की रचना को उत्सुक है। सगीत जी आदर्शवादी है पर राजनीति से उनका निकट का कोई सम्बन्ध नही। वाणी को लेकर सगीत जी और तीरथराम का प्रेम त्रिकोण निर्मित किया गया है। सगीत जी विधुर और वाणी 'आकर्षणहीन बारह तेरह साल की दुबली, बीमार-बीमार सी वाणी सगीत को चाहती है और तीरथराम वाणी को और इनस निर्मित होता है एक रोमानी वातावरण।

कथानक स्वल्प होने पर भी चरित्र चित्रण का विकास सम्यक् रूप से हुआ है। राजनीतिक तत्व अस्पष्ट है और जो है भो वे विरोधाभास के कारण उभर नहीं पाये। उपन्यास का दीर्घांश रोमानी है और राजनीतिक पक्ष को दुर्बल बनाता है। फिर भी प्रतीकात्मक राजनीतिक उपन्यास के रूप मे यह हिन्दी उपन्यास साहित्य की एक नयी कडी है।

---

१ उपेन्द्रनाथ 'अश्क बडी बडी आखें, पृष्ठ ९२
२ उपेन्द्रनाथ, अश्क' बडी बडी आखें, पृष्ठ १०५
३ उपेन्द्रनाथ अश्क' बडी-बडी आँखें पृष्ठ ६७
४ उपेन्द्रनाथ 'अश्क' बडी-बडी आँखें, पृष्ठ ८८

यज्ञदत्त के उपन्यासों में स्वातंत्र्योत्तर वातावरण

निर्माण-पथ

'निर्माण पथ' में स्वातंत्र्योत्तर भारतीय पृष्ठभूमि पर निर्माण की योजना प्रस्तुत कर देश में पूँजीपति तथा मजदूर दोनों वर्गों से एकजुट हो कार्य करने की अपेक्षा की गयी है। शोषक और शोषित के पारस्परिक सहयोग की कल्पना मार्क्सवाद के विरोध और गांधीवाद के निकट की वस्तु है। इसे हम वर्तमान में राष्ट्र में व्याप्त विध्वंसात्मक विरुद्ध प्रवृत्तियों के राष्ट्र को समुन्नत बनाने की आदर्श कल्पना भी कह सकते हैं। 'निर्माण-पथ' में उद्घाटित किया गया है कि यह समय पूंजी और श्रम के संघर्षों तथा समस्याओं में उलझने का नहीं है, अपितु उत्पादन और निर्माण का है।

महल और मकान

'महल और मकान' दो विभिन्न आर्थिक स्तरों के प्रतीक हैं और लेखक ने इसके माध्यम से सहकारिता के आधार पर राष्ट्र के निर्माण की जो कल्पना की है, वह नेहरू युग के ही अनुकूल है। देश के महल मिट जायें और सबके लिए एक एक मकान मिल सके, यह समाजवादी विचारणा ही उपन्यास की परिकल्पना है। इसमें देश के बड़े उद्योगों की तथा कुटीर उद्योग की विस्तृत चर्चा करते हुए कुटीर उद्योगों को प्रोत्साहित करने का निर्देश दिया गया है, जो सहकारी प्रणाली का ही एक अंग है।

बदलती राहें

'बदलती राहें' भारतीय राजनीति के परिपार्श्व में बदलते हुए ग्रामीण जीवन का चित्रण है। उपन्यास की नायिका मिल्लो चमाइन है, जो सुशिक्षित हो (शील कुमारी के रूप में) चन्दनपुर ग्राम के योजनाबद्ध सामुदायिक विकास में दत्तचित्त होती है। इस युग-परिवर्तन के साथ जीवन की रूप रेखाएँ घिसट रही हैं, एक गाँव का चौधरी है और दूसरा गाँव का सेठ, और दोनों ही व्यक्ति अपने जीवन की बदली हुई राहों पर 'कल और आज' का विश्लेषण करते हुए कथानक को विस्तार देते हैं। जमींदारी-उन्मूलन और उसका प्रभाव तथा ग्राम स्तर के सरकारी कर्मचारियों के अनाचार और काले कारनामे चित्र भी उपन्यास में संजोये गये हैं, जो परिस्थितियों के अनुरूप न होने के कारण प्रभावशाली नहीं हैं। पुलिस इन्सपेक्टर और पटवारी द्वारा मन्त्री के पिता और प्रेमिका को नाना प्रकार से तंग करना आज के युग में अस्वाभाविक ही कहा जायेगा।

उपन्यास गाँव की वर्तमान कृषि-समस्याओं से संबधित है और उसी को केन्द्र बनाकर टूटती हुई रूढिवादिता और परिवर्तित मनोवृत्ति का चित्रण किया गया है। चौधरी रणधीरसिंह का पुत्र विजय कांग्रेस सरकार का मंत्री होकर लखनऊ में रहने लगा था। कांग्रेस मे भाग लेने के कारण चौधरी ने विजय को सात वर्ष पूर्व घर से निष्कासित कर दिया था। विजय के मत्री होने के बाद चौधरी उससे मिलते है और उसकी प्रेरणा से अपनी हवेली, फार्म आदि सिल्लो को ग्रामोत्थान हेतु प्रदान कर देते हैं। सिल्लो चमाइन होने पर भी विजय की प्रेमिका है। मत्री बन जाने पर विजय गाँव आकर उससे विवाह हेतु चौधरी का आशीर्वाद चाहता है। चौधरी रूढिवादिता से अपने का पूर्णरूपेण अलग न कर सके है, अत एकान्त मे उन्होने आशीर्वाद दे गाँव छोड देते है। यह प्रसग भी यथार्थ से परे महान् आदर्श की कल्पना का ही द्योतक है। इसी प्रकार मत्री हो जाने पर भी विजय का अकेले सूटकेस लेकर गाँव म आना और करोडपति मिल-मालिक मुन्नू लाला की, गाँव म उपहासास्पद स्थिति आज के यथार्थ से सर्वथा भिन्न होने के कारण उपन्यास को ही उपहासास्पद बनाती है। लेखक का यह कहना कि 'विजयकुमार उत्तरप्रदेश के मन्त्रिमण्डल मे निर्वाचित होकर जनसेवा के मैदान मे उतर पड़े'[1] उचित नही है और उनके राजनीतिक सम्बन्धी अज्ञानता का ही परिचायक है। इस प्रकार की भूलें अन्यत्र भी द्रष्टव्य है - 'इसे आप अपने ससद के सदस्यो के बीच रखकर नन्दनपुर की प्रगति का सन्देश उन्हे सुना सकते है' या विजय का यह कहना-'आपका उपहार मेरे लिए वह अमूल्य निधि है कि जिस ससद मे प्रस्तुत करके मैं मस्तक ऊँचा कर गर्व से यह कह सकूंगा' कहना न होगा कि उत्तर प्रदेश के मन्त्रिमण्डल का सदस्य होने के नाते विजय का उपर्युक्त कथन असगत है। सम्भवत लेखक विधान सभा और ससद का अन्तर स्वाधीनता के इतने वर्षों बाद भी स्पष्ट रूप से नही समझ पाये हैं।

अन्तिम चरण

'अन्तिम चरण' मे देश के विभिन्न राजनीतिक दलो की स्वार्थपरता पर व्यग्य किया गया है। सम्भवत. इसीलिए देश की विभिन्न राजनीतिक दलो के प्रतीक पात्रों की उद्भावना इस उपन्यास मे की गयी है। दिल्ली के एक वकील, उसकी पत्नी, स्वामी ज्ञानानन्द, स्वामी जी के शिष्य आनन्द तथा वेश्यापुत्री सरोज को हम उपन्यास के मुख्य पात्रो के रूप मे देख सकते हैं। इसमे हिन्दूकोड बिल से उत्पन्न समस्या को कथानक का रूप देकर राजनीतिक दलो की वास्तविकता का भण्डाफोड किया है। लेखक ने यह

---

१ मजदत . बदलती राहे, पृष्ठ २२

बनाने का प्रयास किया है कि सत्ता-प्राप्ति के स्वार्थ के वशीभूत होकर राजनीतिक दल अपने थोथे प्रचार से जनता को किस भाँति भ्रमित करते हैं। मंत्री सच्चानन्द इसके उदाहरण हैं, जो स्वार्थसिद्धि के लिए हिन्दू कोड बिल का कभी विरोध और कभी समर्थन करते हैं। सत्तारूढ़ कांग्रेसियों की विलास प्रियता और स्वार्थान्धता का भी व्यंग्यपूर्ण चित्रण किया गया है तथा रामराज्य परिषद् तथा जनसंघ जैसी पार्टियों की गतिविधियों को निकट से देखने का प्रयास है।

निष्कर्ष

यज्ञदत्त ने अपने उपन्यासों में यद्यपि आधुनिक समस्याओं को राजनीति के परिप्रेक्ष में हृदयगम करने का प्रयास किया है, तथापि आदर्शवादिता के चक्कर में पड़कर वे उसमें पूर्ण सफलता प्राप्त नहीं कर सके। उनके उपन्यासों में चरित्र चित्रण व कथोपकथन आदि सभी घटनाओं के अनुसार रूप ग्रहण करते हैं। अतः पात्र भी उपन्यासकार के हाथों कठपुतली बन स्वाभाविक विकास के अभाव में जीवन्त नहीं बन सके हैं। उनमें कथा कहने की प्रवृत्ति प्रबल है, किन्तु प्रभाव जगाने की भाव-प्रेषण का सर्वथा अभाव है। एक विज्ञ का कथन है कि सामग्री संजोने की कला, उसमें निहित और घटनाओं के माध्यम से अन्तरंग मानव को उभारने और मानवीय सबंधों की विशिष्टताएँ दर्शाने की प्रविधि यथोचित त्याग और ग्रहण की अन्तर्दृष्टि, अनुभूति की तीव्रता प्रदान करने का कौशल, इनका उनके पास अभाव है।' सच तो यह है कि पूर्व निश्चित उद्देश्य को लेकर कथा कहने की प्रवृत्ति से चरित्र चित्रण प्रभावोत्पादक नहीं बन पाया है। शैली भी अनगढ़ है और भाषा में हिन्दी पर पंजाबीपन का प्रभाव है। सामायिक सामाजिक राजनीतिक समस्याओं से भाराक्रान्त होने पर भी यज्ञदत्त के उपन्यास राजनीतिक विचारणा को पुष्ट करने में समर्थ नहीं कहे जा सकते। वे पाठकों का मनोरंजन कर सकते हैं, किन्तु उन पर कोई छाप नहीं छोड़ पाते।

चीनी आक्रमण की पृष्ठभूमि पर आधारित दो उपन्यास

विनाश के बादल

चीनी आक्रमण और राष्ट्रीय संकट के सन्दर्भ में रचित उपन्यासों में प्रतापनारायण श्रीवास्तव का 'विनाश के बादल' अनेक असंगतियों के बावजूद चीनियों के अमानवीय और प्रवचनापूर्ण कुचक्रों को उद्घाटित करने में सफल है। भावेशजन्य भावनाओं के कारण पात्रों व ऐतिहासिक तथ्यता का विकास सम्यक् रूप से नहीं हो सका है। चीनी आक्रमण की महत्वपूर्ण राजनीतिक ऐतिहासिक घटना से सम्बद्ध होने पर

भी राष्ट्रीय चेतना और सामूहिक प्रयत्न का उद्घाटन समुचित रूप से न हो सका है। रहस्य और कुचक्रो की बोझिलता 'विनाश के बादल' को 'रक्तमण्ड' और 'सफेद शैतान' की श्रेणी मे ला देती है। इन घटनाओ से खत्री ब्रान्ड मनोरजकता की उद्भावना अवश्य हुई है, किन्तु राजनीतिक वाछित प्रभाव का ह्रास हुआ है।

घटनाएँ, स्थितियाँ और पात्र अविश्वसनीय से हैं और किसी भी राजनीतिक उपन्यास की यह सबसे बडी असफलता है। प्रारम्भ मे ही एक चीनी जासूस युवती का भारतीय सुन्दरी के रूप म सौन्दर्य प्रतियोगिता मे भाग लकर पुरस्कृत होना, विदेशी पात्रों का भारतीय नगरो का सूक्ष्म भौगोलिक ज्ञान और चीनी आक्रमणकारियो द्वारा स्वयं की नीतियो की आलोचना अस्वाभाविक है।

चीनी राजनीति और विचारधारा को लकर अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के विविध पक्षो को छूने का प्रयास इस उपन्यास मे मिलता है।

देश नही भूलेगा

उमाशकर कृत 'देश नहीं भूलेगा' भी भारत पर चीनी आक्रमण और उसकी विस्तारवादी नीति का चित्रण करता है। उपन्यास का नायक अजय राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत है। मातृभूमि पर मर मिटने की तीव्र आकाक्षा के वशीभूत होकर वह अपनी प्रेमिका शोभा के प्रेम और उच्च शिक्षा को ठुकरा कर सेना मे सैनिक अधिकारी होकर चीनी आक्रमणकारियो का मुकाबला करते हुए वीरगति प्राप्त करता है। जिस शोभा के प्रति वह कालेज मे आकृष्ट हो गया था, वह कम्युनिस्ट निकली और जाग क्षेत्र मे अपनी राष्ट्रद्रोही गतिविधियो के कारण अजय की गोली का निशाना बनती है। सामयिक होते हुए भी इस लघुकाय उपन्यास मे राष्ट्रीय या अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का चित्रण सम्यक रूप से नहीं हो पाया है, यद्यपि राष्ट्र के गौरव की भावना अवश्य मुखरित है। शिल्प की दृष्टि से भी उपन्यास साधारण कोटि का है।

चीनी आक्रमण ने सारे राष्ट्र की राजनीतिक एव राष्ट्रीय एकता को झकझोर दिया है और उपन्यासकारो से इस दिशा मे विशेष अपेक्षा करना असगत न होगा। एक प्रकार से चीनी आक्रमण ने नेहरू-युग को भयकर थपेडा देकर लगभग समाप्त ही कर दिया था, यदि वह उसी गति से कुछ काल तक सक्रिय रहता और जनता राष्ट्रीय एकता का परिचय न देती। ऐसे लेखको ने राष्ट्र की अत्याधुनिक समस्याओ पर कलम उठाई है।

समाजवादी यथार्थवादी उपन्यास

बीज

प्रेमचन्द जी के सुपुत्र अमृतराय विचारों से साम्यवादी हैं और उनके उपन्यास 'बीज' में उभरती हुई प्रगतिशील चेतना उनकी साम्यवादी विचारधारा का ही परिणाम है। 'बीज' एक विशालकाय उपन्यास है। किन्तु उसमें सामाजिक विप्लव का विशाल रूप चित्रित नहीं हो सका है। 'बीज' का मुख्य आकर्षण सत्यवान और राजेश्वरी का वैयक्तिक जीवन है जिसे लेखक ने राजनीतिक संघर्ष से सम्बद्ध करने का प्रयास किया है। इस दुहरे कर्तृत्व के कारण ही उपन्यास में 'विचार और भावुकता का अनमेल सम्मिश्रण है। जहाँ लेखक परिस्थितियों और समस्याओं पर विचार प्रकट करते हैं, वहाँ केवल तर्क का आधार लेते हैं, उपन्यास के लिए अनिवार्य रागात्मिकता से वंचित हो जाते हैं और जहाँ भावुकता में खो जाते हैं, वहाँ तर्क बुद्धि शून्यवत हो जाती है।'[1]

आलोच्य उपन्यास में जीवन-चित्रण के दो स्तर मिलते है—एक है कथानक की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और दूसरा मध्यवर्गीय समाज के जीवन का पारिवारिक परिवेश। इन दोनों स्तरों के पारस्परिक संबन्धों के आधार पर कथानक का संगठन विस्तार पाता है और राजनीतिक धरातल को स्पर्श करता है। ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के अन्तर्गत द्वितीय महायुद्ध, सन् बयालीस की क्रान्ति, सोवियत प्रचार, बंगाल का दुर्भिक्ष, आजाद हिन्द फौज का मामला, छात्रों के जुलूस, स्वाधीनता दिवस, साम्यवादी कार्यकर्ताओं की जीवनपद्धति तथा मेहतरों की हड़ताल इत्यादि हैं। जनता के कष्टों का चित्रण पाठकों की न्यायबुद्धि को जाग्रत करने और समाजवादी जीवन के प्रति आस्था उत्पन्न करने की दृष्टि से किया गया है।

कथा का नायक है सत्यवान, जो बयालीस के आन्दोलन में एम० ए० की पढ़ाई छोड़ कर आन्दोलन में भाग ले जेल जाता है। जेल में उसकी घनिष्ठता वीरेन्द्र से होती है जो साम्यवादी है। उसके सम्पर्क में आकर सत्य का झुकाव भी साम्यवाद की ओर होता है। वीरेन्द्र के कारण उसे नयी आँखें मिलीं और वह उसे मुट्ठी तान कर 'लाल सलाम' कर बाहर निकला। साथी वीरेन्द्र और उसके द्वारा जेल में पढ़े गये साम्यवादी साहित्य ने 'जीवन का वह शुक्र की तरह चमकता हुआ ध्रुवतारा निश्चित कर दिया था, पर बाहर आकर सत्य पुनः राज और उषा के चक्कर में रोमान्टिक ही अधिक रहा। जेल से छूटने पर सत्य एम० ए० कर उषा से वैवाहिक सूत्र में आबद्ध होता है। उषा के साथ उसका प्रेम विवाह होता है। इस प्रसंग में राजेश्वरी के मिस पुरुष और नारी में पार-

---

१ डॉ० गणेशन . हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन, पृष्ठ २१५

स्परिक सम्बन्धों की प्रगतिशील दृष्टिकोण से विवेचना की है। पारिवारिक जीवन के, प्रेम तथा विवाह के स्वरूप के, सास-बहू के संघर्ष के, टूटते हुए संयुक्त परिवार के तथा व्यक्तिवादी दृष्टिकोण के विकास तथा समाजवादी जीवन दर्शन की विजय के विविध चित्रों को प्रस्तुत कर समाजवादी चेतना की अभिव्यक्ति दी गई है। उषा सुशिक्षित पत्नी है, पर उसका दाम्पत्य जीवन आर्थिक संघर्षों से अस्तव्यस्त है और वह उसकी मूक द्रष्टा है। कम्युनिस्ट होने के कारण सत्य को नौकरी नहीं मिलती और राजनीतिक गतिविधियों में भाग लेने के कारण वह पुनः नजरबन्द कर लिया जाता है। उषा ऐसी स्थिति में अध्यापिका होकर जीवनयापन का साधन जुटाती है और रोटी के संघर्ष से परिचित हो मेहतरों और मजदूरों के आन्दोलनों में भाग लेती है। मेहतरों की हड़ताल में हुए लाठी चार्ज में जिस समय वह घायल होती है, सत्य जेल से छूट कर उसके पास पहुँचता है और कहता है, 'उषा, तू नहीं जानती, तेरे इस घाव में हमारे नये जीवन के विराट अश्वत्थ का बीज छिपा हुआ है, हमारे नये सुख का बीज, नये प्रभात का बीज।'

यही 'बीज' की आधिकारिक कथा है जो वृक्ष का रूप लेती है। इस वृक्ष की एक शाखा—उपकथा—राजेश्वरी की अतृप्त वासना, सत्य और राजेश्वरी के आकर्षण प्रसंग, महेन्द्र और राजेश्वरी के सहवास, गर्भधारण और हत्या से सम्बन्धित है। राज की कथा मार्मिक ढंग से कही गयी है और उसके माध्यम से भारतीय नारी का एक ही रूप अंकित किया गया है।

इसी के साथ जमुना तथा विपिन का प्रसंग भी है, जिसका एकमात्र उद्देश्य नारी के शोषण का दिग्दर्शन कराना है।

इस तरह उपन्यास की मुख्य समस्या पुरुष है और नारी के पारस्परिक सम्बन्ध की है और उसका समाधान समाजवादी ढंग से सत्य और उषा के दाम्पत्य जीवन के विकास में निहित है।

साम्यवादी पात्र

'बीज' में अधिकांश राजनीतिक पात्र साम्यवादी हैं। सत्यवान प्रारम्भ में कांग्रेसी रहता है, बाद में वीरेन्द्र के सम्पर्क में आकर साम्यवादी हो जाता है। वह देशभक्त है और 'देश के प्रति गहरा प्यार, अंग्रेजों से जबरदस्त नफरत, सादा जीवन, और देश के लिए कोई भी कुरबानी बड़ी नहीं है—ये चन्द बातें उसके चरित्र का अंग हो गयी थीं। यही उसकी राजनीति का ककहरा भी था।[1] सत्य के बाल्यकाल के प्रसंग में नमक-सत्याग्रह और भगतसिंह के क्रांतिकारी कार्य और उनसे निर्मित राष्ट्रीय

---

[1] अमृतराय बीज, पृष्ठ १४ १५

वातावरण का विवरण देना भी लेखक नहीं भूलता। सत्य के राजनीतिक व्यक्तित्व को बनाने में मामा का बड़ा हाथ है, जिन्हें अहिंसावादी नीति पर विश्वास न था। अहिंसा को वे 'डंडे खाने वाली राजनीति' मानते हैं।[1] बचपन के संस्कारों और सहज आकर्षण से वह आतंकवादियों के प्रति आकर्षित हो भगतसिंह को अपना जीवन-आदर्श मानता है।[2] किन्तु भगतसिंह के प्रति गहन श्रद्धा होने पर भी, बाद में वह अन्य साम्यवादियों की तरह व्यक्तिगत हिंसात्मक कार्यों को आजादी का सही रास्ता नहीं मानता। वह आतंकवाद उसकी दृष्टि में व्यक्तिवाद से अधिक महत्व नहीं रखता।

बयालीस की क्रांति में वह विद्याध्ययन छोड़कर सक्रिय आन्दोलन में भाग लेकर जेल जाता है। जेल में वीरेन्द्र के सम्पर्क में उसकी राजनीतिक विचारधारा में आमूल परिवर्तन होता है। वीरेन्द्र का चित्रण एक आदर्श कम्युनिस्ट पात्र के रूप में किया गया है और उसके व्यक्तित्व के सामने बाह्यरूप में कांग्रेसी, पर संस्कारों से आतंकवाद पर आस्था रखने वाला सत्य पराभूत हो जाता है। लेखक ने इस परिवर्तन को 'एक कमजोर विचारधारा का मजबूत विचारधारा की तरफ खिंचना' बताया है। सत्य के मन में कम्युनिस्टों के खिलाफ पल रहे सन्देह दूर हो जाते हैं और इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि गाँधी के कदम आजादी के जन-आन्दोलन के साथ विश्वासघात थे।[3] जेल से वह पक्का कम्युनिस्ट बनकर निकलता है, किन्तु साम्यवादी प्रणय का शिकार हो अपने राजनीतिक ध्येय से कटा-सा रहता है। 'बीज' में इस प्रणय का विस्तार कथानक के अधिकांश भाग को घेर लेता है और राजनीतिक वातावरण धूमिल पड़ जाता है।

सत्य के सिवाय वीरेन्द्र, अमूल्य, उषा, प्रमिला व पार्वती आदि भी साम्यवादी विचारधारा से प्रभावित पात्र हैं। रूस का साहित्य, रूस की प्रदर्शनी, रूस की फिल्म सभी अमृतराय की दृष्टि में 'सर्वोत्कृष्ट' और ऐसा रामबाण है जो पात्रों को अपने प्रभाव के स्पर्शमात्र से साम्यवादी बना देती हैं। सत्य और उषा तथा वीरेन्द्र और प्रमिला का प्रणय मार्क्सवादी आधारशिला पर ही विकसित हुआ है। इन साम्यवादी पात्रों के माध्यम से कम्युनिस्टों के संघर्षपूर्ण अभावमय जीवन पर प्रकाश डाला गया है।

राजनीतिक घटनाएँ

'बीज' में जिन राजनीतिक घटनाओं पर प्रकाश डाला गया है, वे हैं—

१—नमक-सत्याग्रह

---

१. अमृतराय : बीज, पृष्ठ २०
२ अमृतराय : बीज, पृष्ठ २०
३ अमृतराय : बीज, पृष्ठ ५१

२—आतंकवादी गतिविधियाँ[1]
३—सन् ४० का व्यक्तिगत सत्याग्रह[2]
४—द्वितीय महायुद्ध और बयालीस की क्रान्ति[3]
५—बंगाल का दुर्भिक्ष
६—आजाद हिन्द फौज का मामला[4]
७—माउन्ट बैटन-योजना और उसकी जन-प्रतिक्रिया
८—स्वाधीनता
९—कम्युनिस्ट समर्थित हड़ताल

उपर्युक्त राजनीतिक घटनाओं का कथानक में आवश्यकतानुसार विवरण मिलता है, जो उपन्यास के राजनीतिक पक्ष को परिपुष्ट करता है।

अहिंसा का विरोध

उपन्यासकार ने 'बीज' की रचना साम्यवाद के समर्थन के एक विशिष्ट राजनीतिक उद्देश्य से की है। इस दृष्टिकोण के कारण ही अन्य सम-सामयिक राजनीतिक विचारधाराओं का खण्डन और साम्यवाद का प्रतिपादन भी करता चलता है।

सत्य के मामा कांग्रेसी रहे हैं, दो बार जेल काट आये है, पर उन्हें अहिंसावादी नीति पर विश्वास नहीं। उनका कथन है—"गाँधी के किये-धरे कुछ होगा नहीं...हाँ, हाँ गाँधी ने लोगों को जगाया' यह सब ठीक है मगर इससे ज्यादा उम्मीद बुड्ढे से न करो। आजादी की लड़ाई का मतलब है हथियारों की लड़ाई।"[5] वे अहिंसा को 'डंडे खानेवाली राजनीति' मानकर उसका उपहास करते हैं। सत्य मानता है : 'गाँधी ने देश को डंडा-गोली खाने की ही शिक्षा दी, डंडा-गोली चलाने की नहीं, जिसके बिना कोई देश आजाद नहीं हुआ करता।'[6] उसे गाँधी जी की 'साधन की पवित्रता' वाली बात बकवास मालूम होती है। वह मानता है कि इसी अहिंसा की भावना ने 'देश को किसी कदर निर्वीर्य भी बनाया है। वह इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि ऐसी अहिंसा आप अपने घर रखिए और शहद लगाकर चाटिए, मुल्क को उसकी कतई जरूरत

१. अमृतराय : बीज, पृष्ठ १४-१७
२. अमृतराय : बीज, पृष्ठ २२
३. अमृतराय : बीज, पृष्ठ ३०
४. अमृतराय : बीज, पृष्ठ २०७-२०९
५. अमृतराय : बीज, पृष्ठ १९
६. अमृतराय : बीज, पृष्ठ २१

नहीं।[1] कहना न होगा कि वह साम्यवादी क्रान्ति के सम्मुख अहिंसा की व्यर्थता सिद्ध करना चाहता है। कांग्रेसी अहिंसा के साथ-साथ वह कांग्रेसी परिधान खद्दर पर भी कटुतम व्यंग्य करता है। साम्यवादी पात्रों की दृष्टि में तो वह 'अहिंसक भेड़ियों की पोशाक' व 'ब्लेक मार्केट का साइन बोर्ड' ही है।[2]

आतंकवादियों का विरोध

कांग्रेस के अहिंसात्मक सिद्धान्त के साथ-साथ आतंकवादियों के हिंसात्मक कार्यों की भी आलोचना की गई है, क्योंकि वह सामूहिक हिंसा को प्रोत्साहित न कर व्यक्ति-वाद तक सीमित है। फिर भी प्रसंग निकाल कर भगतसिंह, बिस्मिल और अशफाक-उल्ला आदि क्रांतिकारियों के सम्बन्ध में ऐतिहासिक तथ्य प्रस्तुत किये गये हैं।

कांग्रेसी नेताओं पर प्रहार

कम्युनिस्ट अमृतराय कांग्रेसी नेताओं पर व्यंग्य करने से नहीं चूकते। सन् ४० के व्यक्तिगत सत्याग्रह के प्रसंग को लेकर सत्याग्रहियों पर व्यंग्य किया गया है—"उन कांग्रेसी नेताओं का भी ध्यान आये बिना नहीं रहता, जो मजिस्ट्रेट को टेलीफोन करके कि मैं घर पर ही हूं, आप आकर मुझे गिरफ्तार कर लीजिए और मजे में जयमाल पहन कर, पान चबाते, साथ पुलिस की वैन वर्ना अफसर मजिस्ट्रेट की निजी कार में बैठकर कृष्ण मन्दिर का रास्ता लेते थे।"[3]

जेल में भी कांग्रेसी नेताओं का जीवन कम्युनिस्ट नेताओं की तुलना में गर्हित चित्रित किया गया है। अस्थिर चित्रित किया गया है। सत्य, प्रफुल्ल बाबू और महावीर बाबू आदि मिलते ही कम्युनिस्ट विचारधारा के समर्थक हो जाते हैं। सोवियत प्रदर्शनी का उद्घाटन करते हुए महावीर बाबू कांग्रेसी होने पर भी रूस के गीत गाते हैं और कहते हैं 'रूस आज के इतिहास का सबसे ज्योतिष्क सत्य है, पंडित नेहरू के शब्दों में इस अंधेरी दुनिया की अकेली उम्मीद।[4]

कांग्रेसियों की ही नहीं, अपितु आजाद हिन्द फौज और सुभाष बाबू की भी आलोचना 'बीज' में मिलती है।[5]

१ अमृतराय : बीज, पृष्ठ ५३
२ अमृतराय : बीज, पृष्ठ २३-२४
३ अमृतराय : बीज, पृष्ठ २१
४ अमृतराय : बीज, पृष्ठ १२७
५ अमृतराय : बीज, पृष्ठ २०६

साम्यवादी दृष्टिकोण

'बीज' मे साम्यवाद का प्रचार करने के ध्येय से उसके सिद्धान्तो और कम्युनिस्टो के उज्ज्वल स्वरूप को उभारने का प्रयास किया गया है। रूसी साहित्य का उल्लेख मिलता है, जिसके अध्ययन से सत्य अपने व्यक्तित्व का विकास करता है। वह मार्क्सवाद-लेलिनवाद की इतिहास और विज्ञान की मोटी-मोटी पुस्तकें पढता है। उसकी दृष्टि मे शोलोखोव और इलिया ऐरेन बुर्ग के उपन्यास विश्व-साहित्य मे अप्रतिम हैं। रजनी पामदत्त का 'राष्ट्रीय आन्दोलन का सक्षिप्त इतिहास' उसे राजनीतिक दृष्टि देता है और मार्क्स और एंगेल्स का 'कम्युनिस्ट घोषणापत्र' उसकी भ्रान्तियो का निराकरण करता है। वह समझने लगता है कि बयालीस की क्रांति 'सामूहिक आत्महत्या' है और कम्युनिस्टो के उससे पृथक् रहने के औचित्य को वह स्वीकार कर लेता है। इस प्रसग में वीरेन्द्र और सत्य के विचार-विमर्श की स्थिति लाकर—यह प्रतिपादित करने की चेष्टा की गई है कि बयालीस की क्राति मे भारतीय साम्यवादियो ने सहयोग न देकर किसी प्रकार का देशद्रोह नही किया।[1] रूस की प्रगति भी लेखक ने कई जगह गाये हैं और उनकी राजनीतिक मान्यता के ही अनुरूप हैं।

अपने समग्र रूप मे 'बीज' युद्धकालीन भारत की राजनीतिक सामाजिक जीवन की गाथा है, जो मध्यवर्गीय जीवन को अभिव्यक्ति देती है।

उखडे हुए लोग

राजेन्द्र यादव के 'उखडे हुए लोग' मे समाजवादी यथार्थवाद की अभिव्यक्ति मिलती है। एक विशिष्ट राजनीतिक दृष्टिकोण से युद्धोत्तरकालीन स्त्री-पुरुष के बिगडने-बदलने-बनते सम्बन्धो के चित्रण के साथ आलोच्य उपन्यास मे ह्रासशील तथा विकासशील मान्यताओ का प्रगतिवादी दृष्टिकोण से निरीक्षण तथा परीक्षण किया गया है।

नायक शरद और नायिका जया नये पथ के अन्वेषी हैं। नायक और नायिका के सवाद से उपन्यास का प्रारम्भ होता है, जो सम्मिलित जीवन यापन पर विचार करते-करते विवाह-सूत्र मे आबद्ध हो जाते हैं। शरद की दृष्टि मे विवाह एक व्यक्तिगत समस्या है और उसका रूढिगत मिटता रूप व्यक्ति-मानस के अनुकूल नहीं, अपितु बाधक है। अधुना विवाह एक समझौता है और इसके सिवाय कुछ हो नहीं सकता और इसी दृष्टिकोण के अनुरूप शरद और जया को भागना पड़ता है। इस सन्दर्भ मे शरद देशबन्धु एम० पी० की शरण लेते हैं। देशबन्धु अथवा नेता भैया पूंजीपति, समाजसेवी, उदार तथा सन्त माने जाते हैं, किन्तु वस्तुतः उनका जीवन पूँजीवादी व्यक्तित्व से बोझिल

---

१. - अमृतराय : बीज, पृष्ठ ४५-४६

है। वे काग्रेसी हैं और उनके जीवन की कालिमा का चित्रण कर कांग्रेस और उसके सिद्धान्तों की निस्सारता पर विचार किया गया है।

देशबन्धु के चरित्र के विभिन्न पक्षों को उद्घाटित कर लेखक ने समसामयिक जीवन में अनीति, छल-कपट तथा यौन कुंठा को विस्तारपूर्वक अंकित कर निजी प्रगतिशील दृष्टि का परिचय दिया है। देशबन्धु जी के यहाँ शरद की भेंट सूरज जी से होती है जो देशबन्धु द्वारा सचालित 'बिगुल' के सम्पादक हैं। सूरज जी क्रांतिकारी रह चुके हैं और प्रेयसी चन्दा के स्नेह से वंचित होकर निष्क्रिय तथा सनकी हो गये हैं। शरद और जया के साहसिक अभियान से वे प्रेरणा प्राप्त करते हैं और इस तरह शरद तथा जया के पारस्परिक सम्बन्ध को आदर्श स्वीकार किया गया है।

इसके विपरीत देशबन्धु तथा मायादेवी का सम्बन्ध छल तथा कपट पर आधारित है। विवाहित होने हुए भी नेता भैया अन्य नारी के प्रेम-सूत्र में आबद्ध हैं। मायादेवी की कथा सूरज के शब्दों में देशबन्धु की नीचता की कथा है। मायादेवी देशबन्धु पर मोहित होकर पति की हत्या का कारण बनी और पति की सम्पत्ति प्रेमी को अर्पित की। तदुपरान्त देशबन्धु की नारी के प्रति मानसिक दुर्बलताओं का ज्ञान होने पर वह स्वयं हर नये पुरुष पर डोरी डालने लगी। मायादेवी की पुत्री है पद्मा और 'स्वदेश महल' का वातावरण उसे विक्षिप्त करता है। वह किसी को चाहती है और आजीवन उसे चाहने का सकल्प लिये है। देशबन्धु एक दिन मद-विभोर हो उस पर नजर डालते हैं और इस स्थिति में वह खिड़की से कूदकर आत्मघात कर लेती है। इस घटना से जया भयभीत हो शरद के साथ स्वदेश महल से प्रस्थान कर देती है।

सम्पूर्ण उपन्यास सात दिन की अवधि तक सीमित है और इस सीमित समय में ही लेखक ने अनेक पात्रों का यथातथ्य जीवन कुशलता के साथ चित्रित कर दिया है। पात्र सजीव हैं और मध्यवर्ग के उखड़े हुए लोगों के अभावों को अभिव्यक्ति देते हैं, यद्यपि उनके चित्रण में अन्य प्रगतिवादी कलाकारों का पूर्वग्रह नहीं है।

देशबन्धु के चरित्र चित्रण में लेखक ने समस्त शक्ति का उपयोग किया है। उसकी मानवता, समाज सेवा तथा कपट का सूक्ष्म विश्लेषण कर उनके देशप्रेम के मुखौटे को अलग कर दिया है। नारी के उत्पीड़न और देशभक्त पूँजीपतियों की संस्कृति का यथार्थवादी चित्रण उपन्यास में मिलता है। डॉ० रामविलास शर्मा का अभिमत है कि 'पूँजीवादी सस्कृति का निवारण करने की कला में देशबन्धु का चित्रण 'गोदान' के राय साहब के पदचिन्हों पर चला है। देशबन्धु स्वाधीन भारत के सफल देशभक्त हैं। उनका चरित्र राय साहब से ज्यादा पेचीदा—कुछ-कुछ 'प्रेमाश्रय' के ज्ञानशंकर-सा है। लेखक ने छोटी-छोटी घटनाओं को जोड़कर बड़े सहज भाव से देशबन्धु के चरित्र की आन्तरिक वास्तविकता तक पाठक को पहुँचा दिया है। उपन्यास के अध्याय 'बातें'

बातें !! बातें !!!' में शिष्ट, धनी, शिक्षित किन्तु दूसरों के परिश्रम पर जीने वाले वर्ग की बातों की झड़ी लगी दी गयी है। इस वर्ग के विभिन्न स्तरों की संस्कृति कितनी असंस्कृत, उसकी शिष्टता कितनी अशिष्ट और समाज के लिए वह कितनी घातक है, इसका रोचक और जीवन्त चित्र आँका गया है।'[1] देशबन्धु सामन्ती सम्बन्धों के पोषक के रूप में चित्रित पूँजीवादी व्यक्तित्व है, जो देशभक्ति की आड़ में जनता को गुमराह करने का भरसक प्रयत्न करता है। उनके साथ ही शासक वर्ग भी न्याय और शान्ति-व्यवस्था के नाम पर पूँजीवादी हितों की रक्षा करना अपना कर्तव्य समझता है। यह पूँजीवादी वर्ग कला और कलाकारों का उपयोग भी निजी स्वार्थों के लिए करना चाहता है और उपन्यास के चम्पक जी और सूरज इसके उदाहरण हैं। 'जहाँ भी इस परिस्थिति के विरोध में कोई उठ खड़ा होता है, या उसके विरुद्ध मुँह खोलता है, उसे कम्युनिस्ट कहकर दबाने की कोशिश की जाती है। इस परिस्थिति का बदलने का सही रास्ता जन-साधारण की एकता और अपने अधिकारों के लिए उसका संघर्ष है। इसकी ओर राजेन्द्र यादव ने 'उखड़े हुए लोग' में संकेत किया है,'[2] जो शायद उनकी दृष्टि में वर्तमान शासन की ओर संकेत है।

सत्या मिल के मजदूरों की हड़ताल का चित्रण, देशबन्धु के भाषण की विफलता और सूरज में समाजवादी चेतना का विस्तार सोद्देश्य है और कथानक को सुगठित बनाता है। सूरज का उपन्यास में एक विशिष्ट व्यक्तित्व है। लेखक की सोद्देश्य दृष्टि इसी पात्र के माध्यम से विस्तृत हुई है। शरीन की असफलताएँ और देशबन्धु के कारनामें उसे आस्थाहीन बना देते हैं। सूरज का जीवन अनेक पक्षीय है। वह साहसहीन होते हुए भी मजदूरों की हड़ताल से साहस का संचय कर मजदूरों का साथ देता है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि सभी प्रमुख पात्र बहुपक्षीय तथा विकासशील हैं।

साम्यवाद की झलक

उपन्यास में पूँजीवादी पात्र जहाँ साम्यवाद की आलोचना करते हैं, वहीं लेखक की विचारधारा से संचालित पात्र और घटनाएँ साम्यवाद का समर्थन करती हैं।

देशबन्धु साम्यवाद की विवेचना गीता के आधार पर करते हुए कहते हैं — 'कुत्ता हाथी, ब्राह्मण, चाण्डाल सभी में एक ही आत्मा को समझो। आप सोचिए तो सही, है ऐसा कम्युनिज्म आपके रूस में कहीं ? इससे ज्यादा उदार व्याख्या कम्युनिज्म की

१. डॉ० रामविलास शर्मा - वसुधा (मासिक) में प्रकाशित लेख—'हिन्दी उपन्यास : नयी दिशा' से।

२. डॉ० रामविलास शर्मा : वसुधा (मासिक) प्रकाशित लेख— 'हिन्दी उपन्यास - नयी दिशा' से।

और क्या हो सकती है ? कहाँ है आपके रूस और चीन में साम्यवाद जिसने श्वान और द्विज सबके भीतर एक ही आत्मा की प्रतिष्ठा करके आन्तरिक और सार्वभौमिक सत्य की व्याख्या की गयी हो।'[1]

भारतीय कम्युनिस्टों की 'रूस-भक्ति' के ऊपर भी व्यंग किया गया है—'उनका बस चले तो स्तालिन की फोटो का ताबीज गले में लटका लें और मीर कम्युनल ऐंन मदर मोहम्डनस्...मेरी समझ में नहीं आता, कैसे लोग अपने दिमागों को ताक पर रख कर इतने जड़ हो जाते हैं कि वहीं की हर उल्टी-सीधी बात का समर्थन करने लगते हैं।...हमारे हिन्दुस्तानी कम्युनिस्टों में यही खराबी है—वे डाग्मैटिक बहुत हैं। हर बात में रूस और चीन की तरफ भागते हैं।'[2] स्पष्टतः जो गीता का उपदेश द्विज और शूद्र का वर्ग-भेद सिवाय भारत के और कहीं उनके है ही नहीं। रहा मनुष्य और कुत्ते का भेद भारत में सर्वाधिक है। विदेशों में तो उसे गोद में भी लेकर चलने की प्रथा है। पता नहीं, पूँजीपति पात्र गीता को कम्युनिज्म की शिक्षा क्यों मानते हैं और उसकी वास्तविक त्याग की शिक्षा को क्यों भुला देते हैं।

साम्यवादियों के सम्बन्ध में सारे विरोधी वक्तव्य देशबन्धु के द्वारा दिलवाये गये हैं, जिनका स्वयं का चरित्र अत्यन्त निम्न श्रेणी का है। अतएव सारे कथन सतही बनकर रह गये हैं।

इसके विरुद्ध हड़ताल के समय मजदूरों का परचा और उनकी स्थिति के सम्बन्ध में प्रकट विचार मार्क्सवादी विचारधारा को पुष्ट करते हैं। मजदूरों की स्थिति के सन्दर्भ में कहा गया कथन पूँजीवादी सभ्यता को उसकी वास्तविकता में ला देता है : 'जिन्दा रहोगे तो तुम्हारा खून मिलों में निचोड़ा जायेगा—तुम बाइलरों में जल-जल कर मरोगे, और वैसे मरने से इंकार कर दोगे तो नतीजा सामने है। अब तक यह शहर के दूध के धुले चोंगे पहने राक्षस तुम्हारी-हमारी छातियों पर हैं—हमारी किस्मत यही है।'[3] और इसीलिए मजदूरों की माँग है . 'हमें भीख नहीं चाहिए, जो कुछ हम माँग रहे हैं, वह हमारा अधिकार है।'[4] मार्क्सवादी सिद्धान्त के अनुसार उपन्यास का आधार शोषण की प्रवृत्ति के विरुद्ध क्रांति का आह्वान है। इस विचारधारा का प्रतिपादन किया गया है कि प्रजातंत्र असफल है और देश को सच्चा साम्यवाद चाहिए। सम्भवत: उनके विचार से समाजवादी प्रजातंत्र पूँजीवाद का नकली आवरण है।

---

१. राजेन्द्र यादव : उखड़े हुए लोग, पृष्ठ १०८
२. राजेन्द्र यादव : उखड़े हुए लोग, पृष्ठ ८६
३. राजेन्द्र यादव : उखड़े हुए लोग, पृष्ठ २७१
४. राजेन्द्र यादव : उखड़े हुए लोग, पृष्ठ २६५

गाँधीवाद की आलोचना

इसीलिए उपन्यास में कांग्रेसियों, कांग्रेस, राष्ट्रीय आन्दोलन और गांधी जी के बारे में अनेक प्रसंगों पर आलोचना की गई है। कांग्रेसी देशबन्धु का तो चरित्र चित्रण ही व्यंग्यात्मक पद्धति में किया गया है और उसे 'कैरिकेचर' की श्रेणी में रखा जा सकता है। राष्ट्रीय आन्दोलन और गांधी जी के बारे में जो फतवे दिये गये हैं वे किसी ऐसे व्यक्ति के लिए सम्भव नहीं, जिसका स्वाधीनता-संघर्ष से कुछ भी सम्बन्ध रहा हो।

मार्क्सवादी दृष्टिकोण के कारण हिंसक क्रांति के प्रति लेखक को ऐसा मोह है कि राष्ट्रीय आन्दोलन में सन् ४२ और उसके पूर्व के क्रांतिकारियों के अतिरिक्त, और कोई उन्हें श्रद्धा के योग्य नहीं लगता। गांधी की ऐतिहासिक विकृति और ट्राटस्की को अनावश्यक रूप से तर्कहीन कोसना मार्क्सवादी प्रचार ही है। इसीलिए एक समीक्षक के शब्दों में यादव जी ने मार्क्सवाद को भी एक बचकाना सिद्धान्त बना डाला है। सरदार पटेल की मृत्यु के समाचार प्राप्त होने पर देशबन्धु के यहाँ स्वागत-समारोह का स्थगित न होना[1] और कांग्रेस मन्त्रियों के व्यवहार[2] के चित्रण से कांग्रेसियों पर छींटे कसे गये हैं। इसी के कारण मजदूर भी खद्दरशाही और कांग्रेसी राज मुर्दाबाद के नारे लगाते हैं।[3]

संक्षेप में कहा जा सकता है कि उपन्यास में मार्क्स के ऐतिहासिक भौतिकवाद की भी चर्चा है, गांधी की अहिंसा पर फतवे हैं और स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद कांग्रेसी नेतृत्व के अधःपतन के कारणों की खोज है और इस तरह उसे राजनीतिक स्वरूप दिया गया है। और सार्वकालिक सत्य नहीं हो सकती। एक विचारप्रणाली के अवसान और दूसरे के निर्माण के बीच एक संक्रमणकालीन परिस्थिति होती है। इसी आधार पर श्रीवास्तव जी ने सन् १९२८ से १९५२ की कालावधि को पृष्ठभूमि के रूप में ग्रहण किया है।

उपन्यास के नायक मंगरुआ चमार का प्रारम्भिक जीवन गांव में व्यतीत हुआ। यह १९२८ से १९४५ की कालावधि थी। इस दरमियान वह वर्ग-समाज और जाति-समाज के दोहरे शोषण का शिकार हुआ। उसने देखा 'दादा ने खून देकर ठाकुर का खेत बचाया था, आज खून के बिना दादा का बेटा अस्पताल में मर गया। दादा ने ठाकुर के खेत के लिए अपनी जान दे दी थी, मगर ठाकुर के बेटे के लिए दो-चार पैसे न दिये।' यह सामन्ती शोषण या दास-प्रथा के जीवन का मार्मिक प्रसंग है।

---

१ राजेन्द्र यादव उखड़े हुए लोग, पृष्ठ ३४२
२ राजेन्द्र यादव उखड़े हुए लोग, पृष्ठ ३१०
३. राजेन्द्र यादव · उखड़े हुए लोग, पृष्ठ २७२

ग्राम का जीवन त्याग मंगरुआ मजदूर बनता है और उसके जीवन में एक नया मोड़ आता है। यह कालावधि १९४५ से १९५१ की है, जब समाजवादी चेतना विस्तारोन्मुख थी। औद्योगिक मजदूर के रूप में मंगरुआ के नेतृत्व के बीज अंकुरित हुए और वह कांग्रेस और सोशलिस्ट पार्टी के सम्पर्क में आया। वह राजनीतिक क्षेत्र में प्रवेश कर पूँजीवादी प्रभाव और राजनीति के खोखलेपन को निकट से देखता और समझता है। वह अनुभूति करता है कि 'दुनिया में चाहे जो आदमी हो, अगर वह प्रारब्धवादी है तो मैं उससे नफरत करता हूँ। और किस्मत की चक्की में अपने को पीसना मैं मूर्खता के सिवाय और कुछ नहीं समझता।'

उसके जीवन का तीसरा अध्याय रिक्शाचालक के रूप में हुआ और जीवन की इस मंजिल पर वह कम्युनिस्टों के सम्पर्क में आया। भारतीय कम्युनिस्टों की कथनी-करनी में भी वह जीवन-आसमान का अन्तर पाकर इस नतीजे पर पहुँचता है कि 'लेकिन इनका यह अर्थ नहीं कि मैं वर्तमान या भविष्य में घोर निराशा के सपने देख रहा हूँ। लेकिन हर पार्टी में अच्छे-बुरे लोग है। मजदूरों को आज जो भी सुविधाएँ मिली हैं, पार्टियों के संगठन और संघर्ष के ही फल है। राजनीति को वर्तमान जीवन से अलग करके कहाँ रहोगे? अपनी-अपनी खूबियों के लिए हर पार्टी के आदर्श को अपनाना चाहिए।'

'आदमी और सिक्के' और 'रात अँधेरी है'

महेन्द्रनाथ के 'आदमी और सिक्के' तथा 'रात अँधेरी है' में सामन्तवादी और पूँजीवादी संस्कृतियों के टूटने तथा समाजवादी संस्कृति के विकास की पृष्ठभूमि में मानव-संघर्ष को चित्रित करने का प्रयास है। 'आदमी और सिक्के' का नायक राज जीवन के सुनहले सपने संजोने वाला तीस वर्षीय युवक है, जो बेकारी की स्थिति में जीवन को चारों ओर से अवरुद्ध पाता है। वह इस पूँजीवादी तथ्य से परिचित होता है कि वर्तमान युग में धन ही सर्वस्व है और उसी तुला पर जीवन का मूल्य निर्धारण होता है। आशा आकांक्षाओं के बिना उसके जीवन में निपट नीरसता का उद्रेक होता है। फिर भी उसका धैर्य समूल नष्ट नहीं हुआ है। इसी अवसर पर उसका मित्र तीरथ उसके जीवन में प्रवेश करता है। तीरथ धन की महत्ता से परिचित ही नहीं, अपितु उसके उपार्जन के हुनर भी जानता है। धनिक तीरथ हमीदा के प्रेम में विह्वल हो आत्महत्या कर लेता है। इधर राज है, जो धनाभाव के कारण शीला से विवाह नहीं कर पाता। यह पूँजीवादी समाज की ही जीवन-पद्धति का परिणाम है। इस अंधकार में रमेश का व्यक्तित्व ज्योति सा प्रकाशित होता है। रमेश साम्यवादी पात्र है और वैयक्तिक समस्याओं का समाधान समाजवादी व्यवस्था को देखता है। राज को उसके जीवन से प्रेरणा

मिलती है। किन्तु रमेश के अस्पष्ट चारित्रिक विकास के कारण समाजवादी चेतना सकेतात्मक बनकर ही रह गयी है। उसमे औपन्यासिक तत्वो का सम्यक निर्वाह भी नही हो सका है।

रात अँधेरी है

महेन्द्रनाथ के दूसरे उपन्यास 'रात अधेरी है' म भी पूँजीवादी सभ्यता की विकृति का यथार्थ चित्रण हुआ है। उपन्यास का नायक एक सामन्तवादी पात्र है, जो बदलते हुए जमाने के साथ पूँजीवादी समाज म अपना स्थान बनाने मे स्वय टूट जाता है। कथानक के द्वारा उपन्यासकार ने सामन्तवादी तथा पूँजीवादी प्रवृत्तियो के दोषो को उघार कर रख दिया है। दोनो जीवन पद्धतियो को मानव के प्रतिकूल निरूपित करते हुए नारायण क व्यक्तित्व से समाजवादी चेतना को ही मानव कल्याण का सही मार्ग बताने का प्रयास किया है।

जगदीश जीविका की खोज मे औद्योगिक नगरी बम्बई पहुँचता है और पूँजीवादी सभ्यता के बीभत्स स्वरूप को निकट स देखता है।

लोहे के पख

हिमाशु श्रीवास्तव के 'लोहे के पख' म सर्वहारा वग के एक व्यक्ति की आत्म कथा से पूरे राष्ट्र के जीवन का साधारणीकरण किया गया है। कथा-क्षेत्र सीमित होने पर भी सन् १९२८ से १९५३ की कालावधि को यथार्थवादी सामाजिक पृष्ठभूमि पर चित्रित करता है।

उपन्यास का नायक है मँगरुआ चमार, जो अपनी सघर्षपूर्ण मार्मिक आत्मकथा लेखक को स्वय सुनाता है। वस्तुत यह गाथा अकेले मँगरुआ की ही नही, अपितु उसे चार पुश्त की है और जिसके माध्यम से तीन दशक के सक्रमणकालीन भारतीय जीवन को अभिव्यक्ति दी गयी है।

अपने प्रारम्भिक जीवन म (सन् १९२८ से १९४५ तक) मँगरुआ अपने दादा और बाप की शोषित अवस्था का निकट से अध्ययन करता है। मँगरू का दादा सामन्त वाद से दबा निरीह किन्तु स्वामिभक्त नौकर है। वह भूखे रहकर भी मालिक के गोहराव मे जीवनार्पण की भावना रखता है। वह अपने जमींदार बच्चा बाबू के सन को दूसरे के हाथो मे जाते नही देख सकता किन्तु शोषक वर्ग की नजर मे उसकी स्वामिभक्ति का कोई मूल्य नही है। मँगरुआ बताता है दादा ने खून देकर ठाकुर का खेत बचाया था, आज खून के बिना दादा का बेटा अस्पताल म मर गया। दादा ने ठाकुर के खेत के लिए अपनी जान दे दी थी, मगर ठाकुर ने दादा क बेटे क लिए दो

चार पैसे न दिये।" यह सामन्ती शोषण या दास-प्रथा के जीवन का मार्मिक प्रसंग है। बच्चा बाबू उस शोषक वर्ग के प्रतीक हैं, जो शक्ति के बल पर शोषण करना दैवीय अधिकार मानते हैं। शोषित यदि अपने अधिकारों की भूले भटके माँग कर बैठे तो उसे जमींदारी जुल्म का शिकार होना पड़े। और जुल्म की यह प्रक्रिया गुप्तांग में मिर्चा भरने तक विस्तृत है। जमींदारी आतंक के कारण मजदूर अपने को असहाय पाते और उसके इशारे पर चलना ही अपना धर्म समझ चुप रह जाते। वे मार खाते, बेगार करते और भूखे पेट रह जाते। मरणासन्न बाप को छोड़ कर मंगरू को बेगार में जुटना पड़ा। उपन्यास का पूर्वार्द्ध खेतिहर मजदूर के जीवन की दीनता और विवशता का विशद चित्रण प्रस्तुत करता है।

उपन्यास का उत्तरार्द्ध मिल-मजदूर के संघर्ष से भरा पूरा है। ग्राम का जीवन त्याग कर मंगरुआ शहर आता है और यहाँ मिल मजदूर के रूप में उसके जीवन का नया अध्याय प्रारम्भ होता है। यह कालावधि देश की स्वतंत्रता से दो एक साल पूर्व से १९५१ तक की है, जब समाजवादी चेतना विस्तारोन्मुख थी। राष्ट्रीय आन्दोलन हुआ, देश को स्वतन्त्रता मिली पर यह सब होने पर भी जन साधारण के जीवन में किसी प्रकार की खुशहाली न आयी। जमींदारी टूटती है पर बड़े लोगों का आधिपत्य तब भी कायम रहता है। बच्चा बाबू जमींदार के स्थान पर एम० एल० ए० हो जाते हैं। शोषण कायम रहता है, उसके तरीके में परिवर्तन अवश्य हो जाता है। राजनीतिक चेतना का प्रसार होता है और मंगरुआ क्रमश: कांग्रेस और सोशलिस्ट पार्टी के सम्पर्क में आकर राजनीति को पूँजीवादी प्रभाव में घुटता हुआ पाता है। इस प्रसंग मिल मालिकों में शोषण-वृत्ति और मजदूरों की आर्थिक कठिनाइयों से टूटते हुए संगठन का चित्रण किया गया है। मंगरुआ अपने स्वानुभव से कहता है 'दुनिया में चाहे जो आदमी हो, अगर वह प्रारब्धवादी है तो मैं उससे नफरत करता हूँ। और किस्मत की चक्की में अपने को पीसना मैं मूर्खता के सिवाय कुछ नहीं समझता।' लेखक ने संकेत किया है कि मजदूर-संगठन के द्वारा मजदूरों की आर्थिक स्थिति में सुधार संभव है। किन्तु यह तब ही संभव है, जब संगठन राजनीतिज्ञों की स्वार्थपूर्ण गतिविधियों से मुक्त हो। जन-कल्याण ही राजनीतिक दलों का एकमात्र ध्येय होना चाहिए। रिक्शाचालक के रूप में मंगरुआ कम्युनिस्टों के सम्पर्क में आता है और इन राजनीतिक दलों की कथनी और करनी में अन्तर देखकर इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि "राजनैतिक पार्टियाँ सभी बेईमानी करती हैं, ये जनता को धोखा देने के लिए ही हैं।" यह वक्तव्य वस्तुत: मना-स्थामूलक न होकर उपन्यासकार की विवेकपूर्ण तटस्थ दृष्टि का परिचायक है। यह इस तथ्य को ओर इंगित करता है कि राजनीतिक दल स्वार्थ का परित्याग कर अपने वास्तविक कर्तव्य का पालन करें। यही कारण है कि मंगरुआ से कहलवाया गया है

कि 'लेकिन इनका यह अर्थ नहीं कि मैं वर्तमान या भविष्य में घोर निराशा के सपने देख रहा हूँ। मजदूरों को आज जो भी सुविधाएं मिली है, पार्टियों के सगठन और सघर्ष के ही फल है। राजनीति को वर्तमान जीवन से अलग करके कहाँ रहोगे।'

ऊँची-नीची राहे

सरस्वतीसरन 'कैफ' नयी पीढी के उपन्यासकार है, जो समाजवादी चेतना से युक्त कथावस्तु से अपने उपन्यासो को समृद्ध बनाने की दिशा मे सचेष्ट है।

'ऊँची-नीची राहें' साम्यवादी कार्यकर्ताओ के जीवन को व्यक्त करने वाली एक सशक्त कृति है। उपन्यास का प्रमुख पात्र है रमानाथ, जो विषम परिस्थितियों से जूझते हुए अपना मार्ग बनाने के लिए उत्सुक है। त्रिभुवन सिंह के मत से 'ऊँची-नीची राह' एक साम्यवादी कार्यकर्ता के प्रतीक 'रमानाथ' के जीवन-दर्शन, उसकी मान्यताओ, उसके आचार विचार, रहन-सहन एव उसके व्यक्तित्व का वास्तविक चित्र है।'[1]

हिन्दी के उपन्यासो मे चित्रित अन्य क्रांतिकारी-साम्यवादी व्यक्ति की तरह रामनाथ भी जो ऊँची-नीची राहे देखते है, वे रोमान्स के चतुर्दिक फैली हैं। मन्मथनाथ गुप्त के समान 'कैफ' भी काम विज्ञान के जाल मे बुरी तरह फँसे दिखलायी पडते हैं। हिन्दी के उपन्यासकारो मे यह भावना न जाने कैसे आ गयी है कि बिना रति क्रिया-प्रदर्शन के यथार्थ का निर्वाह पूर्ण नही होता। समाजवादी जीवन दर्शन से मडित उपन्यासो मे तो मार्क्सवादी सेक्स सम्बन्धी स्वच्छन्दता को अभिव्यक्त करने के लिए ऐसा चित्रण 'रामबाण' नुस्खा हो गया है। सुषमा का नग्न रोमान्स मन्मथनाथ गुप्त की वसुधा की याद दिला देता है। सच तो यह है कि यथार्थ के नाम पर चित्रित यह बीभत्सता भारतीय सस्कृति के विरोध मे जाकर साम्यवाद का मार्ग अवरुद्ध करती है।

भूख और तृप्ति

'कैफ' के दूसरे उपन्यास 'भूख और तृप्ति' का कथानक उन अनेक प्रासगिक घटनाओ से सग्रथित है, जो १९२० से स्वाधीनता-प्राप्ति तक की घटनाएँ प्रस्तुत करता है। किन्तु इतना होने पर भी उसका कार्य क्षेत्र उन्नाव से कानपुर तक केवल १३ मील लम्बा है। इस क्षेत्र को लेकर नमक-सत्याग्रह, साम्प्रदायिक सघर्ष और लीग की घातक नीति, साम्यवादियो की राजनीतिक भूमिका, देश विभाजन और विस्थापित समस्या को

---

१ त्रिभुवन सिंह, हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद, पृष्ठ ४६५

प्रस्तुत किया गया है। उपन्यास मे श्याममनोहर, प्रियम्वदा, प्रकाश और डाली आदि पात्रों के सबल व्यक्तित्व के माध्यम से घटनाओ को सजीव बनाने मे लेखक को पर्याप्त सफलता मिली है। पात्रो का चित्रण मनोवैज्ञानिक ढग से किया गया है। कहा गया है कि बीसवी सदी के प्रारम्भ मे जिस तरह के बगला सामाजिक उपन्यास लिखे जाते थे, उसी शैली का यह 'भूख और तृप्ति' है। सन्यासी के प्रवचन, प्रार्थना गीतो, श्लोको के उद्धरण एव कथानक पर धार्मिक वातावरण की गहरी छाप से उपन्यास का राजनीतिक स्वरूप लडखडा सा गया है।

सूखा पत्ता :

अमरकांत लिखित 'सूखा पत्ता' भी निर्दोष रचना नही है। लेखक ने उपन्यास की कथा को खडो मे बाँटा है, किन्तु वस्तुत इसकी कथा तीन खडो मे विभाजित है। पहले खड मे कृष्ण के बाल्यकाल और प्रारम्भिक शिक्षाभ्यास की, दूसरे खड मे किशोरावस्था की और तीसरे मे उर्मिला नामक विजातीय युवती के साथ प्रेम की कथा वर्णित है। दूसरे खंड मे किशोरावस्था मे वह सहपाठियों के साथ उभरती हुई राजनीतिक चेतना के प्रभावान्तर्गत विभिन्न साहसिक कार्य करता है। इसका प्रेरणास्रोत स्पष्टत: शरद बाबू का श्रीकांत है। उपन्यास का किशोर नायक कृष्णकुमार दसवीं जमात मे पढते हुए क्रातिकारी दल की स्थापना करता है और साहस-सचय की इच्छा से अपने साथी दानेश्वर के साथ सर्दियो की एक रात गगा तट पर श्मशान मे बिताता है।

कृष्ण बलियानिवासी है और उसका जीवन आवारगी के वातावरण में विकसित होता है। शरीर की दुर्बलता के कारण उसे अपनी स्थापना के लिए हीन भावना से सघर्ष करते हुए क्षति-पूर्तिजन्य आदर्शो से प्रेरित होकर साहसिक क्रियाएँ करनी पडती हैं। इस प्रक्रिया में ,उसका आदर्श है मनमोहन, जो शरीर शक्ति, सौष्ठव और विद्याध्ययन सभी मे तेज है। इसी काल खड मे उसके कुछ मित्र मनोहर, दीनानाथ-दीनेश्वर और कृपाशकर उभरकर सामने आते हैं, जो अपने चरित्र, आचरण और स्वभाव से नायक के चरित्र को निर्धारित तथा गतिशील करते हैं।

कथानक कृष्ण मनमोहन के रूप मे अपने सहित आदर्श की क्रांतिकारियो की त्याग-पूर्ण कहानियाँ सुनकर पुनर्रचना की चेष्टा करता है। नायक 'हीरो' बनने की कोशिश मे वह सब करता है जो आतकवादी क्रातिकारियो ने किया था। सेठ के बोरो की चोरी, सूनी आजाद पार्टी की रचना, छिट-फुट पर तथाकथित राजनीतिक क्रियाएँ, इनका सविस्तर विवरण मिलता है। किशोर नायक कृष्ण की प्रतिक्रियाएँ बालकोचित हैं। परिणामत उक्त क्रांतिकारी दल का चित्रण ऐसा प्रतीत होता है मानो क्रांतिकारी दल को उपहासास्पद बनाने की दृष्टि से किया गया है। डॉक्टर से मित्रता स्थापित कर

क्लोरोफार्म चुराना, क्रांति के नाम पर चोरियों की चोरी पाठक को प्रभावित नहीं करती, इतना ही नहीं, अपितु क्रांति के नाम पर खुराफात करने के बाद कृष्णकुमार को जब एक व्यक्ति लघु वक्तव्य द्वारा समाजवाद से परिचित कराता है तो उसे तत्वज्ञान हो जाता है और स्वयं उसे अपने कार्य हास्यास्पद लगने लगते हैं। यह प्रक्रिया अस्वाभाविक है।

समाजवाद से परिचित होने पर भी वह उर्मिला के साथ प्रेम म दुबलता दिख लाता है और समाज की जातीय व्यवस्था के विरुद्ध विद्रोह नहीं कर पाता। यह भी राजनीतिक उपन्यास की दृष्टि से उपन्यास का शिथिल पक्ष है और क्रांतिपरक उपन्यास की कृति। विजातीय उर्मिला को प्यार करने पर भी वह उसे प्राप्त नहीं कर सकता और उसका तथाकथित आदर्शमुखी व्यक्तित्व उसे धोखा देता है। वह उर्मिला की दृढ़ता के बावजूद उसे माँ-बाप के निर्देशानुसार विवाह करने की राय दे स्वयं इस तथाकथित त्याग से निराशा के गर्त म गिर जाता है। कथा यहीं समाप्त हो जाती है पर, इसके बाद भी कृपाशंकर शीर्षक से उपसंहार दिया गया है, जिसमें लेखक नायक को सूखे पत्ते के समान रूमानी आदर्शों की हवा म उड़ता चित्रित कर कृपाशंकर को आदर्श रूप मे प्रस्तुत करता है। बताया गया है कि कृपाशंकर अपना टेक म टाला नहीं और कम्युनिस्ट पार्टी का सदस्य होकर राजनीति के अखाड़े म डटा रहता है।

प्रस्तुत उपन्यास मे कथा प्रवृत्ति एवं वातावरण का कुशल चित्रण होने पर भी राजनीतिक विवरणों का संयोजन ठीक रूप से नहीं हो सका है। राजनीतिक पात्र के रूप मे कृष्णकुमार और कृपाशंकर दोनो सनकी हैं।

केलाबाडी

समाजवादी चेतना का कलात्मक अंकन नित्यानंद वात्स्यायन के लघुकाय उपन्यास 'केलाबाडी' में मिलता है। आलोच्य उपन्यास म मजदूरों की बस्ती केलाबाडी के चित्रण म समाजवादी दृष्टिकोण को प्रमुखता मिली है। इसमे मजदूर-बस्ती निम्नतर भारतीय जीवन के प्रतीक के रूप मे आयी है और उसे केन्द्र बिन्दु बनाकर कलाली, मछली की दुकान, हलवाई और पान-बीडी दुकान के यथार्थ विवरण के साथ मजदूर की बस्ती के जीवन को संचालित करने वाले पात्रों का चरित्रांकन है।

उपन्यास का नायक है भसवा, जो केलाबाडी म अपनी बहिन इजोरिया को ढूंढने आया है। इजोरिया विधवा है और देवर के अत्याचार से त्रस्त हो घर से भाग कर केलाबाडी की चटकल म काम करती है। भसवा केलाबाडी के जीवन को निकट स देखता है और यहाँ की अश्लीलता और बीभत्सता और निर्धन जीवन को देखकर विस्मित होता है। मजदूर बस्ती का सहज स्वाभाविक चित्रण किया गया है। मजदूर बस्ती म आकर इजोरिया का जीवन परिवर्तित हो गया है और लेखक ने यह बताने

का प्रयास किया है कि केलाबाडी में आकर मनुष्य में पशुत्व का समावेश क्यो और कैसे हो जाता है। यहाँ से नारकीय जीवन में पड़कर मनुष्य की सद्वृत्तियाँ विलुप्त हो जाती है। विषम आर्थिक परिस्थिति जीवन-धारक तत्वो को विनष्ट कर मनुष्य को निर्जीव बना देती हैं और मानसिक विक्षिप्तता और यौन विकृतियाँ उभर कर आती है।

भसवा और काली मे मैत्रीभाव के चित्रण से कथानक और वातावरण की कालिमा को कम किया गया है। साथ ही मजदूरो का सगठन तथा उसकी हडताल की उद्भावना से समाजवादी चेतना का सकेत प्रस्तुत किया गया है। मार्क्सवादी सिद्धांतो को प्रच्छन्न रूप से उपस्थित करने के कारण उपन्यास प्रचारात्मक होने से तो बचा ही है इसका कलात्मक रूप भी निखरा हुआ है। इजोरिया की मृत्यु का मार्मिक चित्रण और भसवा व काली का केलाबाडी परित्याग कर अज्ञात नियति की ओर बढ़ना समाजवादी चेतना के साहस एव विश्वास की आस्था को सूचित करता है और इस आस्था का ही सदेश है 'नाव का लग्गा टूट जाने पर नाव बहती रहती है, डूब नहीं जाती।'[1]

नींव का पत्थर

मजदूर आन्दोलन के आधार पर मजदूरो का पक्ष लेकर साम्यवादी वर्गवाद को इस उपन्यास मे अभिव्यक्ति दी गई है। सघर्ष के सन्दर्भ मे विशिष्ट राजनीतिक दल एव उसकी नीति-रीति पर प्रकाश डाला गया है।

लहरें और कगार

बच्चन सिंह के 'लहरें और कगार' मे जमीदारी उन्मूलन के उपरांत हुई धाँधलियो का वर्णन मिलता है। इस लघुकाय उपन्यास मे लेखक ने इस तथ्य की ओर ध्यानाकर्षित किया है कि जमींदारी उन्मूलन के बाद भी जमीदारो का वर्चस्व कायम है और वे ग्राम के प्रशासन पर छाये हुए है। पात्रों की सख्या स्वल्प है जो उपन्यास के आकार को देखते हुए उचित है। इतना होने पर भी इने-गिने पात्रो के माध्यमसे स्वाधीनतोपरांत भारतीय ग्राम और ग्राम-पचायतें जीवन्त हो गई हैं।

मनु की बेटियाँ

छैलीलाल गुप्त के उपन्यास 'मनु की बेटियाँ' की कथा अत्यन्त सक्षिप्त है। यदि मूल कथा को सुगठित रूप से प्रस्तुत किया जाता तो यह एक लम्बी कथा ही रह

---

१ नित्यानन्द वात्स्यायन, केलाबाडी, पृष्ठ ६०

जाती। कथानक का गठन ऐतिहासिक भौतिकवाद को प्रमाणित करने की मार्क्सवादी दृष्टिकोण का प्रतिफल है।

किन्तु राजनीतिक ज्ञान के अधकचरेपन के कारण अनेक असंगतियाँ रह गई है। लेखक मानते है कि ऐतिहासिक भौतिकवाद के आधार पर परिवार की उत्पत्ति हुई, जो भ्रामक है स्त्री-पुरुष का सम्पर्क तो प्रकृत होता है उसमे किसी वाद का स्थान ही कहाँ! ऐतिहासिक भौतिकवाद के पूर्वग्रह के कारण ही कलकत्ता के बडा बाजार और लोटा-डोरी लेकर आने और शोषण द्वारा धनार्जन करने वाले मारवाडी सेठो, जान चारनाक की जमींदारी और बंगाल के दुर्भिक्ष के चित्र प्रस्तुत कर समाजवादी यथार्थ को वाणी देते हैं।

उपन्यास के पात्र निर्जीव से है और रचना का शिल्प राजनीति के पूर्वग्रह से बंधकर विशृंखल हो गया है। भाषा भी नारेबाजी मे पडकर अस्वाभाविक हो उठी है 'मध्यवर्ग बराबर से ससार मे जलील रहा है,' 'यदि आग की लपट है, क्राति की लपट, जन क्राति की लपट है।' आदि।

मुक्तावती

बलभद्र ठाकुरकृत मुक्तावती' मे मणिपुर के १९२५ २६ से १९३५ तक के जनसघर्ष का चित्रण अवश्य है, किन्तु वह प्रेम-कथा के बोझिल कलेवर म दीप्तिहीन हो गया है। जन सघर्ष का प्रारम्भिक रूप श्राद्धकर' क विरुद्ध होने के कारण सकुचित है। प्रकाशकीय वक्तव्य के अनुसार लेखक 'परम उदार मार्क्सवादी हैं।' लेखक के शब्दो म सम्भवत इसीलिए 'गाधीवाद और मार्क्सवाद के सह अस्तित्व और समन्वय की बात भी उपन्यास म सोद्देश्य कही गई है।' वस्तुत यह प्रसग जेल वे बन्दियो तक सीमित है और उपन्यास का अग नहीं है। उपन्यास म जिस अकाल की बात कही गई है, उसका प्रभाव भी केवल ब्राह्मण और मैतेई लोगो तक ही है। कथावस्तु मणिपुर से सम्बन्धित है, किन्तु मणिपुर की आंचलिकता और उसके सामाजिक तथा राजनैतिक परिवर्तन का चित्र स्पष्ट नहीं है। अन्य राजनीतिक उपन्यासो के समान ही 'मुक्तावती' के पात्र भी लम्बे-लम्बे भाषण देने म मुक्त है। दूसरे शब्दो मे वे उद्देशपूर्ण किन्तु निर्जीव हैं।

क्रांतिकारी

क्रातिकारी जीवन को आधार बनाकर रचित उपन्यास 'क्रातिकारी' मे भी सेक्स का स्थूल चित्रण है। उपन्यासकार जयन्त वाचस्पति के इस उपन्यास मे नीना और उसका दोस्त, जो इस कहानी को बयान करता है, क्रातिकारी दल से सम्बद्ध है। एक कार्य के सन्दर्भ मे ये दोनो गुरुदेव के पास जाते हैं, जो अपनी रामकहानी इन्हे

सुनाते हैं। ये गुरुदेव सारे क्रान्तिकारियों के सर्वप्रथम नेता हैं, किन्तु उनके क्रांति सम्बन्धी कार्यों के बारे में सम्पूर्ण उपन्यास में कहीं कुछ नहीं मिलता। उपन्यास की एक अन्य पात्र गार्गी है, जो क्रांतिकारी रमाकांत की पत्नी है। रमाकान्त विलायत में रहता है। प्रकाश गुरुदेव की पत्नी है और गार्गी व गुरुदेव के सम्बन्ध को स्त्री-प्रकृतिवश संदेह की दृष्टि से देखती है। इस तरह कथानक गार्गी, गुरुदेव और प्रकाश की मनोभावनाओं का ही चित्रण करता है और सही अर्थों में उपन्यास का वास्तविक क्रांति से कोई सम्बन्ध नहीं है। केवल पारिवारिक सम्बन्धों की चर्चा में बँधकर उपन्यास का राजनीतिक क्रांतिकारी चित्र धुँधला है। क्रांतिकारी पात्र लेने पर भी राजनीतिक भावनाएं सम्भव न है ही नहीं।

बुझते दीप

दयाशंकर मिश्र के 'बुझते दीप' में बुझते हुए साम्यवादी व्यक्तित्व का चित्रण है। आलोच्य उपन्यास का केन्द्र-बिन्दु एक कम्युनिस्ट है और समस्त घटनाएं उसी के चतुर्दिक घूमती हैं। जैनेन्द्र के क्रांतिकारी हरिप्रसन्न के सदृश ही सुधीबाबू भी क्रांतिकारी और कलाकार दोनों हैं। हरि प्रसन्न के समान ही इनकी प्रेरणा का स्रोत भी स्त्रियाँ ही है। वह यूरोप भी घूमा है, सुशिक्षित है और मजदूरों में रहकर काम करता है। एक मिल-मालिक की लड़की लिली उसकी ओर आकर्षित होती है। दूसरी है नीलिमा जो सुधी बाबू की प्रेमिका है और उनके लिए अपने जीवन को उत्सर्ग कर देती है। लिली के पिता मिल-मालिक रामनाथ जी ने एक भिखारिन को उसके शिशुसहित शरण दी और उनका शोषकस्वरूप उक्त भिखारिन के साथ अवैध सम्बन्ध के रूप में उभर कर सामने आया। लिली की माँ इस आघात को सह न सकी और उन्होंने जीवन त्याग दिया। भिखारिन सारी सम्पदा की मालकिन हुई, किन्तु विधिवत विवाह न होने से जब उसका पुत्र यूरोप से लौटा तो उसने एक ओर सुधी बाबू को और दूसरी ओर रामनाथ को मरवाने का षड्यन्त्र रचा। सुधी बाबू ने अपनी कुशलता से सभी बाधाओं पर विजय पायी और रामनाथ द्वारा मिल के मालिक बना दिये गये।

एक अन्य प्रमुख पात्र हैं रामनाथ के पिता, जो पुत्र द्वारा भिखारिन को रख लेने पर रुष्ट होते हैं और जिसे लेखक रामनाथ की भतीजी राजलक्ष्मी को एक गुंडे द्वारा शरीर बेचने पर मजबूर करने के कारण कश्मीर की यात्रा पर भेज देता है। यह वहाँ से तब आता है, जब भिखारिन को रामनाथ घर से निकाल देता है।

संक्षेप में उपन्यास का यही कथानक है जो राजनीतिक दृष्टि से अनेक असंगतियाँ लिये हुए है। कथानक और पात्रों के चरित्र-चित्रण से लेखक राजनीतिक प्रभाव को स्थापित नहीं कर सका है और इसका प्रमुख कारण शायद लेखक में शिल्प का

प्रभाव है। सुधी बाबू के रूप मे कम्युनिस्टो पर जो आक्षेप किया गया है, वह न्यायसंगत नही कहा जा सकता। विचारधारा मे बल होने पर भी एक भी पात्र यथार्थ की कसौटी पर खरा नही है।

गुरुदत्त के उपन्यासो का राजनीतिक पक्ष

स्वातन्त्र्योत्तर उपन्यासकारो मे गुरुदत्त ही एकमात्र ऐसे लेखक हैं, जिन्होने प्राचीन भारतीय सस्कृति और हिन्दुत्व राष्ट्रीयता को मूल आधार बनाकर करीब ७० उपन्यासो की रचना कर एक नया कीर्तिमान स्थापित किया है। उनके उपन्यासो मे प्रेमचन्द पूर्व युग के उन उपन्यासकारो का परिष्कृत एव कलात्मक स्वरूप उद्‌घाटित हुआ है, जो प्राचीन सस्कृति एव आर्यसमाज के विचारों से प्रभावित थे।

गुरुदत्त का जन्म १८९४ ई० मे लाहौर के एक मध्यवित्त परिवार मे हुआ था। यह युग आर्य समाज के सामाजिक उत्कर्ष का था और वह एक आन्दोलन ही नही, अपितु हिन्दू जनता का धर्म भी बन गया था। गुरुदत्त की शिक्षा-दीक्षा आर्य समाज से प्रभावित वातावरण में हुई और विज्ञान की उच्च शिक्षा एव शासकीय महाविद्यालय के प्राध्यापक पद की प्राप्ति के उपरान्त भी वे हिन्दुत्व की प्रतीक प्रशस्त शिखा और भारतीय वेश भूषा का परित्याग न कर सके। उनकी राष्ट्र-प्रेम की भावना के पीछे भी प्राचीन भारतीय संस्कृति प्रेम का उत्कट रूप दिखलाई पडता है। राजनीति के क्षेत्र मे वे प्रारम्भ मे क्रातिकारी दल से सम्बद्ध रहे, किन्तु शीघ्र ही उन्हे यह आभास हो गया कि उपर्युक्त सस्थाएँ उनकी विचारधारा के अनुकूल नही है। फलत उन्होने उनसे अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लिया और हिन्दू महासभा के सक्रिय सदस्य हो गये।

यह ज्ञातव्य है कि असहयोग आन्दोलन के समय उन्होने गांधी जी की पुकार पर प्राध्यापक पद से त्याग-पत्र दे चार वर्ष तक कांग्रेस द्वारा स्थापित नेशनल स्कूल के मुख्याध्यापक पद को ग्रहण कर अपनी सेवाएँ अर्पित की थी। इन दिनो राष्ट्रीय कांग्रेस के अहिंसात्मक आन्दोलन के साथ-साथ क्रातिकारियो के क्रिया-कलाप भी जनता अनुप्रेरित कर रहे थे। गुरुदत्त भी १९२४ २५ ई० मे रूस के बौलशेविक विचारधारा और विशृ खल जीवन व्यतीत करनेवाले क्रातिकारियो के निकट सम्पर्क मे आये। यहाँ भी वे क्रातिकारियो के महान देश प्रेम एव आत्म बलिदान की भावना के बावजूद उनकी विदेशीय विचारधारा के साथ समरस न हो सके और पृथक हो गये। तदुपरात वे करीब सात वर्षो तक राजनीति से दूर रहकर भारतीय राजनीति का अध्ययन करते रहे। हिन्दू महासभा की स्थापना के बाद उनका ध्यान उसके सिद्धातो की ओर आकर्षित हुआ, जो वस्तुत उनकी विचारधारा के अधिक समीप था। इन्ही दिनो साहित्य-सर्जन के प्रति भी उनका अनुराग जाग्रत हुआ और सामयिक राजनीति की आधार-पीठिका

पर उन्होंने १९४२ मे 'स्वाधीनता के पथ पर' तथा १९४३ मे 'पथिक' उपन्यासो की रचना की। इन उपन्यासो के माध्यम से उन्होने जनता को आगाह किया कि मुस्लिम लीग के प्रति पुष्टता का परिचय देकर देश के विघटन का आयोजन किया जा रहा है। इस दृष्टिकोण को लेकर भी गुरुदत्त काग्रेस के स्पष्ट विरोध मे प्रस्तुत नही हुए, सभवत इसलिए कि तत्कालीन परिस्थितियो मे कांग्रेस के अतिरिक्त ऐसा कोई राजनीतिक दल नही था, जिसे नेतृत्व की बागडोर सौंपी जा सके।

गुरुदत्त के व्यक्तित्व के इस विकास को देखते हुए हम इस निष्कर्ष पर जा पहुँचते है कि आर्य समाज के प्रभाव के कारण उनमे प्राचीन भारतीय सस्कारो और वातावरण के लिए गहरी आसक्ति और आस्था है। वस्तुत: वे आर्यसमाज और साम्प्रदायिक भावना (हिन्दुत्व राष्ट्रीयता) की साहित्यिक देन हैं। किन्तु इसके साथ ही उनकी रुचि अत्यन्त व्यापक है। भारतवर्ष के धर्म, दर्शन, साहित्य और इतिहास को उन्होंने गहन अध्ययन किया है, जो उनके दृष्टिकोण को पुष्ट करने के सिवाय वैविध्यपूर्ण बनाता है। यह बात अलग है कि उनकी कृतियो मे प्रौढ विचारक का जो रूप देखने को मिलता है, वह तब भी हिन्दू राष्ट्रीयता से आप्लावित है। यही उनका अतिम ध्येय है और सम्भवत इसी के लिए उन्होने साहित्य को अपना अस्त्र बनाया है। श्री एस० आर० गोयल का मत है कि 'राजनीति के महासागर का मन्थन करके किसी अल्प स्थायी सत्ता अथवा उपाधि की उपलब्धि ने उनको कभी आकर्षित नही किया। वह अपने राजनैतिक कर्तव्य का पालन करते हुये भी अनवरत साहित्यसर्जन मे लीन रहते हैं। उनका दृढ विश्वास है कि जो राजनीति विवेक तथा विचार द्वारा पुष्ट नही होती, वह अन्ततोगत्वा प्राणहीन हो जाती है और उसके द्वारा कल्याण सभव नहीं। गुरुदत्त जी मानते हैं कि राजनीति वृहत्तर मानव जीवन का एक पक्ष मात्र है, सर्वस्व नहीं। मानव जीवन का सत्य अध्यात्म साधना, सौन्दर्य-उपासना तथा धर्माचरण मे निहित है। अतएव जो राजनीति अध्यात्म-दर्शन, सौंदर्य, सस्कार तथा अचल धर्म-निष्ठा द्वारा ओतप्रोत नही होती, वह मानव-जीवन के साथ खिलवाड़ से अधिक कुछ नहीं। राजनीतिक आशा निराशा, सफलता-असफलता के परे भी जीवन का एक चरम ध्येय हैं।'[1] किन्तु हम विनय पूर्वक कहना चाहेंगे कि स्वय गुरुदत्त जी जीवन के इस तथाकथित ध्येय को अपने उपन्यासो मे मूर्त रूप देने मे असमर्थ रहे हैं। प्राचीन भारतीय सस्कृति के मोह से वर्तमान राजनीति को सम्मिलित करने के कारण साम्प्रदायिक विचारो की सृष्टि से आगे नही बढ़ सके हैं। हिन्दुत्व पर उनकी आस्था है और उसी को केन्द्र बिन्दु मानकर वे प्राचीन और अर्वाचीन का समन्वय करना चाहते हैं, जो प्राय.

---

१. साप्ताहिक हिन्दुस्तान, ११ दिसम्बर, १९६० पृष्ठ ४२

आधुनिक वैज्ञानिक युग के अनुकूल नही पडता। हिन्दू को ही वे यहाँ का राष्ट्रीय मानते हैं, उनके लिए हिन्दू कोई सम्प्रदाय, पथ आदि नहा। प्रत्युत इस भारत भू को जो मातृभूमि और पुण्यभूमि मानकर तदनुसार इमकी प्रगति के लिए प्रयत्नशील रहता है वही हिन्दू है।[1] समझ म नहीं आता कि इस 'हिन्दू' के लिए ही वे क्यो व्यग्र है। वे मुसलमानो को इस राष्ट्रीय भूमिका पर (भले ही वे अपने मत को ऐतिहासिक तथ्यो से सिद्ध भी करने का प्रयास करें) नही देख सके हैं और यही कारण है कि उनके उपन्यासो के मुस्लिम पात्र अराष्ट्रीय हो चित्रित हो सके है। वे हिन्दुत्व के समर्थक है और इसी कसौटी पर उनके उपन्यास कर्तव्य प्रेरक और सोद्देश्य हैं।

उनकी राजनीतिक विचारधारा को समझ लेने पर उनके उपन्यासो का अध्ययन सहज हो जाता है। सच तो यह है कि उनके उपन्यासो मे कहीं उलझन है भी नही। वे कहते हैं 'उपन्यास लिखने मे एक उद्देश्य तो मेरे सामने आरम्भ से ही विद्यमान था। उपन्यास रसमय होना चाहिए। उपन्यास मे एक अन्य वस्तु होनी अत्यावश्यक होती है। वह है कथा म एक ऐसी शक्ति की प्रतीति, जिससे पाठक के मन मे कथा के विषय मे और अधिक जानने की उत्सुकता उत्पन्न होती रहे। वे भी मानते है कि उपन्यासो को केवल कलामय ही नही, अपितु भावमय भी होना चाहिए। उपन्यास म वे राजनीतिक सिद्धान्तो की विवेचना कोमलतम भाषा मे और विचारो का प्रकटीकरण युक्ति-युक्त ढग से चाहते है। इसका यह अर्थ कदापि न लिया जाय कि वे 'कला को कला के लिए' मानते हैं। कला उनके लिए जीवन को समझाने का एक साधन है। अत यह कहा जा सकता है कि उनकी दृष्टि मे 'कला जीवन के लिए' है—मनोरजन एव मार्ग-दर्शन दोनो ही के लिए।

गुरुदत्त के उन्पयास

जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, गुरुदत्त के उपन्यासो की शृखला अत्यन्त लम्बी है। जिस द्रुत गति से उन्होने उपन्यासो की रचना की है, वह अन्य उपन्यासकारो के लिए एक स्पृहा की वस्तु है। विगत दो दशको म वे करीब ७० उपन्यास लिख चुके है और इसम राजनीतिक उपन्यास भी कम नहीं। स्थल सकोच के कारण सभी उपन्यासो की विवेचना सभव नहीं है। यह आवश्यक भी नही है, क्योकि गुरुदत्त जी की मूल राजनीतिक प्रवृत्तियाँ विभिन्न कथानको मे प्रस्तुत की जाने पर भी समान हैं।

उनक राजनीतिक उपन्यासो को मुख्यतया दो वर्ग मे विभाजित किया जा सकता है

---

१. आज का साहित्य, वष १, अक ४, पृष्ठ २

१—गांधी युग की पृष्ठभूमि पर आधारित
२—साम्यवादी आलोचना से अनुप्रेरित

गांधी युग की पृष्ठभूमि अर्थात राष्ट्रीय आन्दोलनों के वातावरण पर रचित उपन्यासों में सामयिक राजनीतिक घटनाओं के अंकन के साथ कांग्रेस की आलोचना की गई है। कांग्रेस के हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य के सिद्धांत को लेकर लेखक जहाँ एक ओर कांग्रेस की आलोचना का प्रसंग निकाल लेता है, वहीं दूसरी ओर मुसलमानों को अराष्ट्रीय सिद्ध करते हुए उनके कृत्यों का अपनी विचारधारा की तुला पर तौलता चलता है। लेखक के ये बाँट ऐसे हैं, जिन पर वे कभी ठीक ठीक नहीं तुल पाते और वजन में सर्वदा कम बैठते हैं।

यही स्थिति साम्यवादियों और उनके राजनीतिक सिद्धांतों के साथ भी है। मार्क्सवाद और उनके मूलभूत तत्वों के साथ लेखक की स्थिति ठीक कुत्ता-बिल्ली जैसी है। अनेक उपन्यास गुरुदत्त ने मार्क्सवाद के सिद्धांतों को आधारहीन निरूपित करने के लिए ही लिखे हैं।

किन्तु दोनों वर्गों के उपन्यासों में उनकी दृष्टि प्राचीन भारतीय संस्कृति के उज्ज्वल स्वरूप को प्रदर्शित करने और हिन्दुत्व राष्ट्रीयता के प्रतिष्ठापन की दिशा में एकनिष्ठ रही है। यहाँ हम उनके दोनों प्रकार के कुछ राजनीतिक उपन्यासों, उनमें निहित राजनीतिक तत्वों और उनके कलात्मक पक्ष पर संक्षेप में चर्चा करेंगे।

गांधीयुगीन वातावरण पर आधारित उपन्यास

गांधी-युग को लेकर लिखे गये उपन्यासों में 'स्वाधीनता के पथ पर', 'पथिक', 'स्वराज्यदान', 'विश्वासघात' और 'देश की हत्या' उल्लेख योग्य हैं। ये उपन्यास राष्ट्रीय आन्दोलन की एक या एक से अधिक राजनीतिक घटना या समस्याओं को लेकर चलते हैं। 'जमाना बदल गया' की पृष्ठभूमि इनसे कहीं अधिक व्यापक है। यह वृहदाकार उपन्यास तीन खंडों में है और सन् अट्ठारह सौ सत्तावन से स्वाधीनतोपरांत राजनीतिक स्थिति तक का ऐतिहासिक चित्रण प्रस्तुत करता है। प्रथम खंड में १८५७ से १९०७ तक के राजनीतिक, धार्मिक तथा सामाजिक परिवर्तनों को दिखाने के कारण उपन्यास का कलेवर बढ़ गया है। भारतीय राजनीति का विकास तत्कालीन धार्मिक और सामाजिक परिवर्तनों के फलस्वरूप हुआ है, अतः धार्मिक एवं सामाजिक परिवर्तनों की विशद विवेचना स्वाभाविक ही कही जायगी। द्वितीय भाग में बंग भंग के उपरान्त अर्थात् १९०७ से १९२७ तक की पृष्ठभूमि ग्रहण की गई है और बदलते हुए युग की [illegible] गई है।

'स्वाधीनता के पथ पर' गुरुदत्त का प्रथम उपन्यास है, जिसमें १९३० ई० के

सत्याग्रह आन्दोलन और तत्कालीन वातावरण को चित्रित किया गया है। सन् १९२१ के असहयोग आन्दोलन की असफलता ने क्रांतिकारी दलों की गतिविधियों को प्रोत्साहित किया और अहिंसक आन्दोलन के सम्मुख एक प्रश्नचिन्ह लग गया। आलोच्य उपन्यास की कथावस्तु इसी युगानुरूप सत्याग्रह-आन्दोलन तथा आतंकवादी हिंसात्मक प्रवृत्तियों के बीच के संघर्ष पर आधारित है। उपन्यास के मुख्य पात्र मधुसूदन और पूर्णिमा सामयिक राजनीति से सम्बद्ध हैं। किन्तु उनके पारस्परिक रोमांस के अति विस्तार के कारण उनकी राजनीतिक गतिविधियाँ सीमाबद्ध होकर रह गई हैं। वस्तुतः नायक और नायिका के प्रेम और उसके मार्ग में आने वाली बाधाओं के द्वारा निर्मित कथानक के अन्तर्गत राजनीतिक प्रसंगों को संग्रथित कर राष्ट्रीय वातावरण को अभिव्यक्ति दी गई है। इस उपन्यास में गुरुदत्त शरद के 'पथ के दावेदार' से प्रभावित प्रतीत होते हैं।

'पथिक' में हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष की समस्या का अंकन किया गया है। बीसवीं शताब्दी के प्रथमार्द्ध में भारतवासी एक ओर जहाँ स्वतन्त्रता के लिए अंग्रेज शासकों से जूझते रहे, वहाँ हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष एक समस्या बनकर कार्य की गति को अवरुद्ध करता रहा। इसमें १९३५ से १९४० तक की राजनीतिक एवं सामाजिक घटनाओं को प्रस्तुत किया गया है।

इन दो उपन्यासों की रचना के उपरांत गुरुदत्त की राजनीतिक विचारधारा में परिवर्तन परिलक्षित होता है और वे कांग्रेस की नीतियों के कटु आलोचक के रूप में सामने आते हैं। इसका कारण बतलाते हुए उन्होंने लिखा है - 'गाँधी जी की मुस्लिम तुष्टीकरण की नीति के परिणाम का एक धुँधला सा आभास तो १९४१ में हो होने लगा था। पंडित जवाहरलाल जी की विदेश नीति के दुष्परिणामों की झलक १९५०–५१ में होने लगी थी। देश में, राजस्थान में पंचशील की अभिलाषा का मिथ्यात्व १९५३ में ही समझ में आने लगा था, देश का झुकाव समाजवाद और कम्युनिज्म की ओर तो श्री नेहरू जी की 'डिस्कवरी ऑफ इंडिया' पढ़ने पर ही दिखलाई देने लगा था। पंचवर्षीय योजनाओं के विषय में संशय तो १९५२ में ही होने लगे थे। इन सबको प्रकट करने और पाठकों के सामने रखने की आवश्यकता हुई तो बिना विचार किये, कि लोग क्या कहेंगे, लिख दिया।

'स्वराज्य-दान,' 'विश्वासघात,' 'देश की हत्या,' 'दासता के नये रूप,' 'न्यायाधिकरण,' जमाना बदल गया, आदि उपन्यासों में उपर्युक्त धारणाओं के अनुरूप हो गांधीवाद या कांग्रेस के सिद्धान्तों पर प्रबल प्रहार किया गया है। 'स्वराज्य-दान' में १९४२ से १९४७ तक का राजनीतिक भारत चित्रित है। यह राष्ट्रीय आन्दोलन के संघर्ष का युग था और जनता स्वाधीनता-प्राप्ति के लिए व्यग्र हो रही थी। लेखक ने अपने

भारतवर्ष जैसे सभ्य देश के लोगों में अपने देश को स्वतन्त्र करने की इच्छा उत्पन्न न होना असम्भव थी। इस प्रलयकारी महायुद्ध के कारण फैली नर-रक्त की गन्ध में यदि भारतवर्ष में सशस्त्र क्रांति का विचार हुआ और उसकी योजना बनायी गयी तो विस्मय करने की क्या बात है! स्पष्ट है कि सशस्त्र क्रांति से लेखक का अभिप्राय बयालीस की क्रांति के हिंसात्मक पक्ष, आजाद हिन्द फौज और नाविक-विद्रोह से है। इस तरह वह बयालीस की क्रांति का श्रेय द्वितीय महायुद्ध से उत्पन्न परिस्थितियों को देता है, कांग्रेस के अहिंसक आन्दोलन को नहीं। वह स्पष्ट करता है कि हिंसा से हिंसा उत्पन्न होती है और बयालीस की क्रांति और आई० एन० ए० का संगठन परिस्थिति जन्य था। यह एक ऐसा युग था, जब भारतवर्ष का प्रत्येक स्त्री पुरुष वातावरण की प्रेरणा से, जिस-किस प्रकार से भी हो, स्वतन्त्र होने के सपने देखता, योजनाएँ बनाता और फिर फल पाने की आशा का सुख स्वादन करता था। 'स्वराज्य-दान' का कथानक ऐसे ही स्वप्नों और साहसिक आयोजनों से विस्तार पाता है और काल्पनिक उड़ान के कारण कहीं-कहीं अस्वाभाविक भी हो जाता है।

'विश्वासघात' में सन् १९४६ के हिन्दु-मुस्लिम दंगे के एक सम्प्रदाय विशेष के संयम-रहित आचरण एवं कार्यों का विस्तृत चित्रण किया गया है। वस्तुतः यह लेखक के पूर्वाग्रह के अनुरूप ही है और सम्प्रदायविशेष को उसके कुत्सित रूप में प्रस्तुत करना है।

'देश की हत्या' का मूल आधार भी हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष है। उपन्यास का कथानक राष्ट्र विभाजन की पृष्ठभूमि पर गाँधीवाद और कांग्रेस की नीतियों का खुलकर विरोध करता है। लेखक की मान्यता है कि गाँधी जी की हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य स्थापित करने की विधि दूषित थी और उक्त लक्ष्य के विरोध में थी। विभाजन के प्रश्न को लेकर हुए साम्प्रदायिक दंगे इसी नीति के दुखद परिणाम थे। इसी विचार को लेकर आलोच्य उपन्यास का जो ताना-बाना बुना गया है, वह सामयिक घटनाओं के साथ समन्वित है।

उपन्यास की प्रमुख राजनीतिक घटनाएँ

'देश की हत्या' में जिन प्रमुख राजनीतिक तथ्यों का समावेश किया गया है, वे ये हैं:

१—राष्ट्र विभाजन के समय पंजाब एवं बंगाल प्रदेशों की राजनीतिक स्थिति की पृष्ठभूमि में कांग्रेस की मुस्लिम-तुष्टीकरण की नीति और लीग के नेतृत्व में मुसलमानों के संगठित षड्यन्त्र एवं अत्याचारों का विशद चित्रण मिलता है। लाहौर और कलकत्ता में मुस्लिम लीग द्वारा आयोजित 'डायरेक्ट ऐक्शन' की कथाएँ इसी के अन्तर्गत आती

है। पंजाब के संयुक्त मन्त्रिमंडल की दयनीय स्थिति के जो चित्र उरेहे गये हैं वे ऐतिहासिक यथार्थ के निकट हैं।

२—मुस्लिम साम्प्रदायिकता का व्यापक अंकन करते समय हिन्दुओं के हिंसात्मक कार्यों को प्रतिरोधात्मक निरूपित किया गया है। मुस्लिम साम्प्रदायिकता का उदाहरण मौलवी के इस कथन में निहित है

आप लोगों को काफिरों की लूटी हुई धन दौलत और उनसे छीनी हुई औरतें हलाल हैं। इस हिन्दुस्तान में हमारे बुजुर्गों ने इस्लाम का अलम गाड़ा था। उन्होंने सात सौ साल तक इस जमीं पर इस्लाम का डंका बजाया था। अब फिर मौका आ गया है। खुदा के फजल से हिन्दुस्तान के एक छोटे से हिस्से में फिर इस्लामी हुकूमत कायम हो जा रही है। इसके लिए जरूरी है कि कुफ्र न रहे। ऐसा करने में गाजियों और शहीदों, दोनों को बहिश्त मिलेगा।[1] मुसलमानों की धर्मान्धता के बारे में कर्मसिंह का कथन है—जब तक इस्लाम के साथ टक्कर नहीं है तब तक ही ये मुसलमान तुम्हारे मित्र हैं। इस्लाम के लिए ये अपने सगे बाप का खून कर देंगे।[2]

इन दंगों में हिन्दुओं ने भी खुल कर भाग लिया। किन्तु उनके इन हिंसात्मक कार्यों को लेखक ने प्रतिरोधात्मक कृत्य के रूप में ही देखा है। चेतनानन्द का स्पष्टीकरण इस सन्दर्भ में इस प्रकार है—'यहां से मुसलमानों को निकालते हुए उनकी हत्या की गयी है।' मैं दोनों में भारी अन्तर समझता हूँ। एक केवल राजनीतिक बात है दूसरी साम्प्रदायिक। एक में उन लोगों को निकालने का प्रयास है जो इस देश के हितेच्छु नहीं माने जाते, दूसरे में अपनी इच्छा से देश छोड़कर जाते हुओं की हत्या है। यह देश की रक्षा के हित नहीं यह तो केवल नृशंसता का सूचक है।[3] सम्भव है कि अधिकांश पाठक इस दलील को स्वीकार भी कर लें, किन्तु इस पर भी यह कलाकार के तटस्थ दृष्टिकोण को प्रस्तुत करने में असमर्थ ही मानी जायगी।

३—राष्ट्रीय स्वयंसेवक की रीति नीति एवं प्रेरणादायक कार्यों का चित्रण, जो लेखक के दृष्टिकोण का परिचायक है।

४—विस्थापितों की असहायावस्था एवं उनकी समस्याओं का अंकन।

५—कश्मीर पर पाकिस्तान के सहयोग से हुआ आक्रमण।

६—गाँधी हत्या-कांड और सरकार द्वारा आर० एस० एस० के विरुद्ध की गयी दमनात्मक कार्यवाहियों का चित्रण। राष्ट्रपिता की हत्या के प्रसंग को जिस पृष्ठ

---

१ गुरुदत्त देश की हत्या, पृष्ठ १७८

२ गुरुदत्त, देश की हत्या, पृष्ठ १३१

३ गुरुदत्त देश की हत्या, पृष्ठ २७२ ७३

भूमि मे निर्मित किया गया है, वह लेखक के विकार को व्यक्त करता है। गाँधी-हत्याकाड को गांधी जी की मुस्लिम-तुष्टीकरण की नीति और उसमे उत्पन्न विक्षोभ के रूप मे परिस्थितिजन्य बनाया है। हत्याकांड को लेखक ने अपनी सहानुभूति दी है, जो आश्चर्यजनक एव दुखद दोनो है। गांधी जी की हत्या को आतुर भैया जी को यह जान कर दु ख होता है कि किसी दूसरे व्यक्ति ने गांधी जी की हत्या कर दी और वह एक महान पदवी से वचित रह गया।[१] इतना ही नहीं, अपितु वह हत्यारे को गुरु अर्जुन देव, गुरु तेग़बहादुर आदि महापुरुषो की श्रेणी मे परिगणित करता है, जो धर्म और न्याय के लिए बलिदान हुए।[२] एक ओर वह हत्याकाड को औचित्यपूर्ण सिद्ध करने का प्रयास करता है तो दूसरी ओर सघ के विरुद्ध उठाये गये शासन के कदमो को कांग्रेसी एव कम्युनिस्टो का षड्यन्त्र बतलाता है।'[३]

७—कांग्रेसी नीति एव प्रशासन की कटु आलोचना अनेक स्थलो पर मिलती है। वह गाँधीवाद की अहिंसा पर व्यग्य करता है 'गगाराम (कांग्रेसी) ने जब सुना कि हिन्दुओ ने मुसलमानो का गाँव जला डाला है तो भय के मारे उन्हें अनिद्रा रोग हो गया। एक सप्ताह तो उन्होने झपकी नही ली और फलस्वरूप पागल हो गये।'[४] गुरुदत्त का झुकाव हिन्दू सस्कृति के प्रति इतना घनीभूत है कि वे उसके मार्ग मे आड़े आने वाले प्रत्येक अवरोध की भर्त्सना करने से नही चूकते। कांग्रेस के सुधारवादी कार्यों को युगानुरूप होने पर भी वे इसीलिए स्वीकार नहीं कर सके हैं।

साम्यवादविरोधी उपन्यासों की शृङ्खला

कांग्रेस के साथ ही साथ गुरुदत्त मार्क्सवाद के भी कट्टर विरोधी हैं। श्री गोविन्द सहाय को सन् १९६७ मे दिये गये एक 'इन्टरव्यू' मे उन्होने कहा था ' कम्युनिज्म ने आजकल मेरे दिमाग में बडी खलबली मचा रखी है। उसके बाह्य रूप को मैंने 'विलोम गति' मे लिया है, परन्तु अब उसके सैद्धांतिक पक्ष को लूँगा। मैं उसकी तीनो बातो का विरोधी हूँ। वर्ग-सघर्ष मैं अनिवार्य नही मानता। दूसरे आकस्मिक क्रांति मे भी आस्था नही। क्रमिक विकास मेरे विचार से सृष्टि का स्वाभाविक नियम है। तीसरी बात स्टेट कैपिटलिज्म की है। मैं व्यक्ति के प्रयास को अधिक अच्छा मानता हूँ।' सच तो यह है कि मार्क्सवादी हिन्दुत्ववादी राष्ट्रीय विचारधारा के सर्वथा प्रतिकूल बैठता

१ गुरुदत्त, देश की हत्या, पृष्ठ ३३१
२. गुरुदत्त, देश की हत्या, पृष्ठ ३३२
३. गुरुदत्त, देश की हत्या, पृष्ठ ३३३
४ गुरुदत्त, देश की हत्या, पृष्ठ १८२ १८३

है और उसका विरोधी है। भारत को समाजवादी मार्ग पर अग्रसर होते देख गुरुदत्त का ध्यान इस ओर जाना स्वाभाविक ही है। समाजवादी यथार्थ के उपन्यासों की प्रतिक्रिया के रूप में ही उनके मार्क्सवादविरोधी उपन्यासों को ग्रहण किया जाना चाहिए। अपने इन उपन्यासों में उन्होंने साम्यवाद के सैद्धान्तिक पक्ष का खण्डन और प्राचीन भारतीय संस्कृति का प्रतिपादन अपना उद्देश्य बनाया है। 'विलोम गति,' 'छलना,' 'बीती बात,' 'मगनाश' आदि अनेक उपन्यासों में उनका साम्यवादविरोधी स्वरूप उभरा है।

गुरुदत्त के 'बीती बात' में भारत में कम्युनिज्म-प्रवेश की कथा वर्णित है। सन् १९२४ में भारत में साम्यवादी दल की स्थापना हुई थी और द्वितीय महायुद्ध के प्रारम्भ तक वह गैरकानूनी करार दी गई। सन् १९२४ से १९३८ तक की आधारपीठिका पर इस लघुकाय उपन्यास का ढांचा आधारित है। कहा जाता है कि अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार के कारण कम्युनिज्म के प्रसार को गति मिली। इसके साथ ही रूस ने कम्युनिज्म के प्रचार हेतु भारी आर्थिक सहायता दी जिससे धनलोलुप स्वार्थी व्यक्ति उसके पोषक बने। भौतिकवाद की भीत्ति पर खड़े राजनीतिक दलों और आन्दोलनों ने उसे मार्ग दिया। सन् १९२ के पश्चात् स्थापित एवं भौतिकवाद पर विश्वास करने वाले क्रांतिकारी दल भी मार्क्सवाद के अनुयायी बन गये। इन परिस्थितियों को उपन्यास में एक विशिष्ट रूप देकर प्रस्तुत किया गया है।

कथावस्तु सन् १९२१ के खिलाफत आन्दोलन के समय से प्रारम्भ होती है। मुनव्वर नामक एक मुस्लिम युवक आन्दोलन के समय से प्रारम्भ होती है। मुनव्वर नामक एक मुस्लिम युवक आन्दोलन के समय मौलवियों द्वारा फैलाई गई साम्प्रदायिक भावना से आपूरित हो एक काफिले के साथ हिजरत को रवाना होता है। गन्तव्य पर पहुँचने के पूर्व ही काफिला पठानों द्वारा राह ही में लूट लिया जाता है। इस नवीन परिस्थिति में पड़कर वह रूस चला जाता है और कम्युनिज्म का पाठ पढ़कर १९२५ ई० में लाहौर लौट आता है। रूस से मिलने वाली आर्थिक सहायता से वह मार्क्सवाद के प्रचार के लिए प्रयत्नशील होता है और विभिन्न राजनीतिक विचारधारा के समर्थकों के सम्पर्क में आकर उनको प्रभावित करने का प्रयास करता है। हिन्दू राष्ट्रीयता के समर्थक उसके चंगुल से बच निकलते हैं, पर क्रांतिकारी दल अन्ततोगत्वा मार्क्सवादी विचारधारा को अपना लेता है।

उपन्यास में विवेच्य घटना-काल को लेकर असहयोग आन्दोलन की असफलता कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना और कार्यविधि तथा आतंकवादियों की विचारधारा के परिवर्तन पर प्रकाश डाला गया है। लेखक ने प्रसंगानुकूल तीनों के कार्यों की आलोचना भी की है और प्राचीन भारतीय संस्कृति का राग अलापा है।

असहयोग आन्दोलन की असफलता और प्रतिक्रिया डॉ० भसीन के माध्यम से व्यक्त की गई है। कहा गया है

> उड गया घास फूस भी नभ मे आँधी संग।
> बगुले भी नेता भये देखो गाँधी सग॥

असहयोग आन्दोलन का परिणाम डॉ० भसीन के शब्दो मे देखिए 'उस आन्दोलन से दो बातें आयी हुई है। सर्वसाधारण मे जाग्रति हुई, परन्तु वे सर्वसाधारण उन नेताओ के अधीन हो गए हैं जो लालसाओ से भरे हुए है और लालसाओ मे भी स्त्री की लालसा अति प्रबल होती है।' सामयिक राजनीति स्वार्थसिद्धि का सग बन गयी थी, 'एक ओर तो रूसी एजेन्ट दाना चुग रहे हैं, दूसरी ओर क्रांतिकारी दल के लोग पेट भरने का यत्न कर रहे है। साथ ही कांग्रेस के लोग भी इसमे से अपना आहार पाना चाहते हैं। 'वस्तुत यह निराशा की प्रतिक्रिया का युग था। क्रांतिकारी पात्र के शब्द हैं. 'हमारी पार्टी को सबसे अधिक धक्का दिया है गाँधी ने। उन्होने एक ऐसा वातावरण उत्पन्न कर दिया है, जिससे लोगो की यह धारणा बनने लगी है कि शांतिमय उपायो से देश स्वतन्त्र हो सकता है।'

सक्षेप मे सभी के रास्ते टेढ़े-मेढे थे और इस अधकार मे भी आर्य समाज ही प्रकाश-स्तम्भ था, जिसके प्रतिनिधि पात्र सुन्दरदास है। सुन्दरदास आर्य समाज के राजनीतिक स्वरूप को स्पष्ट करते हैं—'पजाब मे राजनीति का जन्मदाता आर्य समाज ही है, जो विचारो से किसी भी विदेशी राज्य को पसन्द नहीं करती, जो मजहबी जमायत और पोलिटिकल दोनो है। आर्य समाज धर्म और राजनीति को एक दूसरे के पूरक मानता है।

'बीती बात' मे नारी के प्रेम प्रसग को उठाकर तद् विषयक साम्यवादी प्रेम को भारतीय विचारधारा के सम्मुख निम्न स्तर का तथा स्वच्छन्दतावादी निरूपित किया गया है।

मार्क्सवादी सिद्धांतो पर बहुमुखी प्रहार 'छलना' मे किया गया है। गुरुदत्त जी मानते हैं कि कम्युनिज्म एक आर्थिक व्यवस्था ही नहीं, प्रत्युत सर्वव्यापक जीवन-मीमांसा है, जो भौतिकवाद की आधारशिला पर टिकी है। इसी दृष्टिकोण को लेकर आलोच्य उपन्यास मे आर्थिक दृष्टिकोण की ऐतिहासिक व्याख्या, वर्गयुद्ध का सिद्धान्त और मूल्य-मीमांसा तथा प्राप्ति के उपाय के रूप मे सामूहिक द्विमारमक क्रांति की कम्युनिस्टो मे उत्पत्ति और उनसे उत्पन्न परिस्थितियो का विवेचन प्रस्तुत किया गया है। कथानक का उद्देश्य मार्क्स के सिद्धातो को अयुक्तिसगत सिद्ध करना है। जैसा कि हम

पहले हम कह चुके है कि गुरुदत्त की विचारधारा हिन्दू महासभा एव पूँजीवादी सिद्धातो पर आधारित है। सार्वभौमिक मानवता का विवेकपूर्ण विस्तृत दृष्टिकोण न अपना कर लेखक ने अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर इतिहास के आर्थिक दृष्टिकोण से विश्लेषण एव नवीन साम्यवादी अर्थ-व्यवस्था के आधार पर समाजवादी नवीन गठन को पूर्णतया अव्यावहारिक माना है। अतएव आलोच्य उपन्यास मे उसने अपनी प्रतिक्रियाओ को वैयक्तिक निष्ठा के सहारे प्रचारात्मक रूप दिया है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पूँजीवादी अर्थतत्र जिस साम्यवादी अर्थतत्र को चुनौती देकर भी परास्त करने म असमर्थ रहा उसी को औपन्यासिकता के माध्यम से लेखक ने चुनौती दी है। साथ ही सस्कृति एव वैयक्तिक स्वतत्रता को कम्युनिज्म के अन्तर्गत दलित होने की मान्यता स्थापित की है। लेखक के तर्कों का साराश कुछ इस प्रकार है—

१— धनी लोग अपनी बुद्धि एव अध्यवसाय से धनी हुए है।

२—धनियो के द्वारा शोषण नही, वरन उदार धनियो के द्वारा गरीबो की पोषकता होती है।

३ —साम्यवाद पर आस्था रखने वाले युवा-युवती आचरणहीन नास्तिक एव कृतघ्न हो जाते है। पति-पत्नी परस्पर एक दूसरे के प्रति उत्तरदायित्वविहीन होकर पारिवारिक जीवन को दु खी बना देते है।

४ कम्युनिस्ट देशो के नागरिको का जीवन यत्रवत एव तानाशाही शिकजा मे फँसा हुआ है। उनम आत्मनिर्णय का अधिकार नही है।

५—रूस जैसे देश म भी वर्ग है, शोषण है और बलवानो का राज्य है। प्रमुख रूप स उपर्युक्त तर्कों के आधार पर ही समस्त कहानी गढी गई है।

लेखक ने उपन्यास को उपन्यासो के ५ पात्रो के आधार पर पाँच खण्डो मे सगठित किया है। प्रथम उन्मेष धनीराम के व्यापारिक उन्मेष से सम्बन्धित है, द्वितीय मे साम्यवादी विचारधारा के प्रतीक सतराम के चरित्र को अकित किया गया है तृतीय म लता के चारित्रिक गुणो का अकन है, जो परम्परागत सामाजिक बन्धनो की अवहेलना के पक्ष मे नही है। चतुर्थ उन्मेष मे धनीराम के पुत्र राम और फ्लोरा की प्रणय कथा है और अतिम मे कचन के साम्यवादी सिद्धातो से विरत होने की कथा है।

'भग्नाश' मे भी भारतीय सस्कृति की आड लेकर समाजवादी विचारधारा के प्रति आक्रोश व्यक्त किया गया है। समाजवादी विचारधारा मे मानव के आध्यात्मिक एव नैतिक पतन की कुछ अधिक सभावना व्यक्त की जाती है। इसी दृष्टिकोण को लेकर दो प्रकार के पात्रो की उद्भावना की गई है। एक ने जो प्राचीन भारतीय सस्कृति को आधार बनाकर चलते हैं और दूसरे वे समाजवादी जीवन-दर्शन से प्रभावित

हैं। इन पात्रों को लेकर ही नैतिकता और अनैतिकता का व्यापार चलता दिखाई पड़ता है।

उपन्यास का प्रारंभ हरिशरणानन्द और उनकी पत्नी निपुणा के 'परिवार निरोध' सम्बन्धित संवाद से होता है। इस प्रसंग में परिवार नियोजन की हेय विधियों के प्रति नारी का आक्रोश देखने को मिलता है। उनकी पुत्री सुबाला को लेकर कथा-सूत्र का विकास होता है। सुबाला के पति दाताराम पत्नी से पृथक होने पर भी उसकी सम्पत्ति को प्राप्त करना चाहता है। हरिशरणानन्द के दो पुत्र हैं—समर्थ और सानन्द समर्थ ठेकेदार हैं और अनैतिक कार्यों के द्वारा उसने पर्याप्त धन अर्जित कर लिया है। वर्तमान युग के ठेकेदारों का उसे प्रतिनिधि कहा जाए तो कुछ अनुचित न होगा। उसके ठीक विपरीत सानन्द का चरित्र है। उपन्यास ने प्राचीन कालीन ब्राह्मणवृत्ति को सानन्द के चरित्र द्वारा उभारने का प्रयत्न किया है सानन्द नौकरी को शूद्रवृत्ति मानता है। अतः जीवन-यापन के लिए पत्रकारिता को अपनाता है। सानन्द की पत्नी सुनीता एक वरिष्ठ उच्च शासकीय अधिकारी की पुत्री है। विवाह के उपरान्त वह प्रारम्भ में पति के साथ समरस होने में कठिनाई अनुभव करती है, किन्तु आगे चलकर वह भारतीय नारी के अनुरूप पति की अनुगामिनी हो जाती है। उसके पिता डॉ० माथुर आज के सरकारी अधिकारियों का प्रतिनिधित्व करते हैं जो धन-लिप्सा और स्वार्थ में आकंठ डूबे हुए हैं।

यदि सम्पूर्ण उपन्यास में हम दो व्यक्तियों को केन्द्र मान लें तो अनुचित न होगा। एक ओर नैतिकता के परिवेश में सानन्द है तो दूसरी ओर अनैतिकता के वातावरण में मुखरित होता हुआ समर्थ का चरित्र है। मुख्य रूप से समाज का निर्माण इन्हीं दो परिवेशों में होता है। आज के युग में एक ओर समाजवाद का फूलता फलता रूप है, जिसमें लेखक के अनुसार समस्त प्रकार की बुराइयाँ अपना घर बनाये है। दूसरी ओर प्राचीन संस्कृति का झलकता रूप है, जिसमें मानव के उच्चतम व्यक्तित्व का विकास दृष्टिगोचर होता है। समर्थ और सानन्द इन्हीं दो पात्रों के चारों ओर उपन्यास के समस्त पात्र चक्कर लगाते हुए दिखलाई पड़ते हैं। कुछ तो समर्थ का साथ देते हैं और कुछ सानन्द का। प्रथमतः सानन्द चारों ओर से उपेक्षित प्रतीत होता है, परन्तु अन्ततः उसकी सत्य-निष्ठा सभी को प्रभावित करती ही रहती है। इस रूप में प्राचीन भारतीय संस्कृति समाजवाद पर विजयिनी होती है। इस कथानक को जिस घटना-काल में अन्तर्गत लिया गया है, वह १९४२ ई० से १९६० के बीच का है और जिसको लेकर सामयिक राष्ट्रीय परिस्थितियों का दिग्दर्शन भी सहज रूप से संभव हो सका है।

गुरुदत्त के राजनीतिक उपन्यासों के अध्ययन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि हिन्दुत्ववादी राष्ट्रीयता को आधार बनाकर वे या तो गाँधीवाद का खंडन करते हैं या फिर

साम्यवाद के सिद्धांतो को खोखला सिद्ध करने का प्रयास करते हैं। इस प्रक्रिया मे वे हिन्दू महासभा और जनसघ के राजनीतिक आदर्शों अधिक से अधिक निकट रहने का पाठको से आग्रह व्यक्त करते हैं। प्रचारात्मक होने पर भी गुरुदत्त के उपन्यासो मे कथानक का क्रमबद्ध विकास, विचार-सौष्ठव, भावो का घात-प्रतिघात, चरित्र चित्रण की निपुणता और भाषा का प्रसगोचित प्रवाह मिलता है। उनके मुख्य पात्र निश्चित आदर्शों से सचालित होने के कारण पाठक को मोहित करते हैं। शायद इसलिए भी, क्योंकि इस वैज्ञानिक युग मे भी भारतीय आदर्शों के प्रति जनमानस मे विशेष परिवर्तन नही आ सका है।

अध्याय ८

हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों में राजनीति

> आंचलिकता का आग्रह एवं राजनीतिक तत्व
> समाजवादी यथार्थवादी आंचलिक उपन्यासकार एवं उपन्यास
> नागार्जुन—व्यक्तित्व एवं राजनीतिक आस्था
उपन्यास—रतिनाथ की चाची
बलचनमा
नयी पौध
बाबा बटेसरनाथ
वरुण के बेटे
उग्रतारा
> समाजवादी चेतना से युक्त भैरवप्रसाद गुप्त के उपन्यास
मशाल
गंगा मैया
सत्ती मैया का चौरा
> सर्वोदयी भावना से समन्वित आंचलिक उपन्यास
कुलमोचन
बूँद और समुद्र
> राष्ट्रीय वातावरण पर आधारित आंचलिक उपन्यास
मैला आँचल
परती-परिकथा
हीरक जयन्ती
अनबुझी प्यास

आंचलिकता का आग्रह एवं राजनीतिक तत्व

स्वातन्त्र्योत्तर युग के हिन्दी राजनीतिक उपन्यासो मे आचलिकता का आग्रह भी मिलता है, जो उसे सामान्य राजनीतिक उपन्यासो से कुछ विशिष्ट बना देता है। इस नव्यतम प्रवृत्ति का विकास उस राजनीतिक धरातल पर हुआ है, जिसने लोकतन्त्र की चेतना को प्रस्फुटित किया। सभवत इसलिए कहा गया है कि 'आज के सक्राति काल मे यह चेतना (क्षेत्रीयता की) स्वभावत अत्यन्त प्रखर है। फलत इन अनेक तत्वो के सहयोग से गाधी-युग के अवसान, राष्ट्रीयता के आशिक क्षय, प्रान्तीय और आचलिक भावना के उदय तथा लोकतन्त्र की स्थापना के कारण उपन्यास मे नये प्राण का स्पन्दन हुआ और वही स्पन्दन आचलिकता के रूप मे प्रस्फुटित हुआ।'[1] आचलिक उपन्यासो के अन्य अनेक राष्ट्रीय, आचलिक, सामाजिक एव राजनीतिक पक्षो पर आलोचनात्मक दृष्टिकोण व्यक्त करने के पूर्व 'अचल' शब्द पर कुछ विशेष विचार कर लेना अनुचित न होगा। प्रत्येक राष्ट्र मे कुछ विशेष क्षेत्र अपनी अनेक सामाजिक एव सास्कृतिक विशेषताएँ रखते हैं। कुछ स्थानविशेषो के साथ प्राय देश के इतिहास का भी विशेष सम्बन्ध जुडा रहता है। अतएव ऐसी एक विशिष्ट सास्कृतिक, सामाजिक, धार्मिक एव आर्थिक दृष्टियो से विशिष्ट इकाई मे बँधे हुए, अपनी निजी चेतना को पृथक मुखर करने वाले भू भाग या क्षेत्र 'अचल' नाम से अभिहित होते हैं। उन प्रदेशो के निवासियो का रहन सहन, भाषा, आचार विचार, प्रथाएँ, प्रकृति, व्यवसाय, प्रसिद्ध घटनाएँ और जीवन के विशिष्ट प्रतिमान उनके पृथक निजत्व की घोषणा करते है। ऐसे क्षेत्रो या अचलो की सीमा मे बँधकर जो उपन्यास राजनीति की चर्चा करते हैं, वे राजनीतिक आंचलिक उपन्यास कहलाते है।

इस श्रेणी के उपन्यासो मे राजनीतिक तत्व आचलिक जीवन, प्रकृति, इतिहास और भाषा की अनेक प्रवृत्तियो को लेकर चलता है। उपन्यासकार की ममत्वपूर्ण क्षेत्रीय सवेदना आँचलिक उपन्यासो के कलात्मक यथार्थवादी शिल्प मे वहाँ (क्षेत्रविशेष) के अनछुए मार्मिक सौन्दर्य और उसकी परम्परा मे जुडी हुई अनेक घटनाओ, वहाँ के जीवन आदर्शो का सहज स्वाभाविक, अद्भुत चित्रण करती है, क्योकि आचलिक उपन्यासकार प्राय अपने अचलविशेष को ही अपनी कृति मे रूपायित करते है। इस प्रकार उनकी सवेदना मातृभूमि के विशेष ममत्व से आवेष्टित एव अनुभूत होती है और वहाँ कल्पना जैसी वस्तु की अपेक्षा अकृत्रिम यथार्थ ही उपन्यास की कथावस्तु बनता है।

---

१ महेन्द्र चतुर्वेदी, हिन्दी उपन्यास - एक सर्वेक्षण, पृष्ठ १६२

अतएव ऐसे उपन्यासों की क्षेत्रीय मौलिकता उन्हें क्षेत्रीय एवं देशीय अथवा राष्ट्रीय लोकप्रियता का विशिष्ट उपहार देती है। शायद इसीलिए श्री विजयेन्द्र स्नातक ने लिखा है? 'इस आंचलिकता को राष्ट्रीय तत्व के रूप में ग्रहण किया जाये, तो कहना न होगा कि आंचलिक उपन्यास राष्ट्रीय भावना के उपन्यास हैं। उनके द्वारा विशाल देश के अनेक भू खंडों की चेतना का बोध होता है और समग्र रूप से एक व्यापक राष्ट्रीय भावना खड़ी होती है। खंड खंड से मिलकर ही अखंडता बनती है। खंड का ज्ञान करने के बाद ही समस्त खंडों में अखंडता की कल्पना की जा सकेगी।'[1]

आंचलिक उपन्यास अंचलविशेष का भौगोलिक, ऐतिहासिक एवं सामाजिक ज्ञान कराते हुए शेष ध्यान देश का विशेष रूप से अपनी ओर आकर्षित करते हैं। देशान्तर्गत विभिन्न क्षेत्रीय अथवा जनपदीय भावनाओं का स्पष्टीकरण हो जाने से देश के राष्ट्रीय जीवन के विकास में उनका उपयोग संभव हो जाता है। वस्तुतः यह लोकतन्त्र की भावना के अनुकूल ही है। यह ठीक ही कहा गया है कि 'आंचलिक उपन्यास की आत्मा मूलतः लोकतन्त्रात्मक होती है और इस दृष्टि से वह वर्तमान युग के अत्यधिक अनुरूप है। उसके मूल में यह विश्वास निहित होता है कि साधारण स्त्री पुरुष भी साहित्य में निरूपण के योग्य है।'[2]

विकास क्रम के विचार से वैसे तो आंचलिक उपन्यास स्वतन्त्र विधा के रूप में भारतीय प्रजातन्त्र की स्थापना के साथ ही प्रकाश में आये हैं, किन्तु आलोचकों के विचार से उपन्यासों में आंचलिक तत्व प्रेमचन्द युग में उपलब्ध थे। प्रेमचन्द की अनेक कहानियाँ और उपन्यास आदि किसी विशेष अंचल का नाम होता तो उनके आंचलिक बन जाने में कोई संदेह न रह जाता। राजनीतिक दृष्टि से परे 'निरालाकृत 'बिल्लेसुर बकरिहा' उनके बैसवाड़े के जीवन की एक झाँकी है। किन्तु उन लेखकों की दृष्टि तात्कालिक राष्ट्रीय अंचल तक प्रसरित थी, अतएव आंचलिकता विकास का तब अवसर भी नहीं था। उस समय व्यापक राष्ट्रीय समस्याओं, राष्ट्रभाषा के सर्वमान्य रूप आदि के विचारों से प्रान्तीयता, आंचलिकता अथवा क्षेत्रीय बोलियों का प्रश्रय देना राष्ट्रीय हित में नहीं था। प्रेमचन्द का कथा-साहित्य व्यक्ति के स्थान पर समाज का सामूहिक मूल्यांकन करता है, उसमें समूह या ही एकीकृत विशाल व्यक्तित्व है, जब कि आंचलिक विधा समग्र राष्ट्रीय सामूहिक व्यक्तित्व के विपरीत अंश सामूहिक व्यक्तित्व मूल्यांकित करती है, जो स्थानीय परम्पराओं, घटनाओं, प्राकृतिक दशाओं एवं जीवन

१ साप्ताहिक हिन्दुस्तान, अंक १५-३-१९६४, पृष्ठ २५
२ महेन्द्र चतुर्वेदी, हिन्दी उपन्यास : एक सर्वेक्षण, पृष्ठ १९५

के प्रतिमानों से बनता है और जिसमें अतीत से लेकर भविष्य तक के लिए सारी दृष्टि उसी क्षेत्रविशेष पर ही जमी रहती है।

आंचलिक उपन्यासों में स्थानीय या क्षेत्रीय बोली का विशेष प्रयोग उन्हें उपन्यास की राष्ट्रीय भाषा-शैली से पृथक करता है। देशज शब्दों को आंचलिक उपन्यास प्रचुर प्रश्रय देते हैं, साथ ही बहुधा सामान्य बोलचाल के शब्दों को विकृत करने और अशुद्ध लिखने में भी नहीं चूकते। पशु-पक्षियों आदि की बोलियों के ध्वन्यात्मक शब्दों का भी बाहुल्य रहता है। इस प्रकार आंचलिक उपन्यासों का अनगढ़ सौन्दर्य उनकी विशिष्ट अभिव्यंजन शैली की ओर निर्देश करता है। आंचलिक उपन्यासों की इस भाषा प्रयोगीय भिन्नता के अपने गुण-दोष हैं।

जहाँ आंचलिक बोली ऐसे उपन्यासों के सांस्कृतिक एवं स्वाभाविक आंचलिकता के गुण को प्रत्यक्ष करती है, वहाँ उसका आतिशय्य अन्य प्रदेशीय हिन्दीभाषियों के लिए दुरूहता का दुर्गुण भी बन जाता है। केवल खड़ी बोली से परिचित व्यक्तियों के लिए तो और भी एक जटिल समस्या हो जाती है। देशज शब्दों के प्रयोगों का बाहुल्य तो बहुधा उपन्यास को क्षेत्रविशेष के व्यक्तियों तक सीमित कर देता है। यह कहना अनुचित न होगा कि उनकी एक क्षेत्रीय चेतना शेष मानवता के उपयोग की उतनी नहीं रह जाती। इस संकीर्णता से मुक्त होकर आंचलिक उपन्यासों की आंचलिकता अपने क्षेत्र से उठकर विशाल वसुधा और मानवता का परिचय देकर उसके सहयोग एवं समवेदना की यात्रा हो जाती है।

आंचलिक उपन्यासों में समाजवादी चेतना नागार्जुन व भैरवप्रसाद गुप्त के उपन्यासों की विशिष्टता है। फणीश्वरनाथ रेणु के 'मैला आँचल' और 'परती परिकथा,' अमृतलाल नागर का 'बूँद और समुद्र' तथा दुर्गाशंकर मेहता का 'अनबुझी प्यास' ने भी आंचलिकता के परिवेश में राजनीतिक तत्वों को प्रश्रय दिया है। इन उपन्यासों का अध्ययन आगे प्रस्तुत किया जा रहा है।

समाजवादी यथार्थवादी आंचलिक उपन्यास

नागार्जुन के राजनीतिक उपन्यास व्यक्तित्व

यशपाल के सदृश नागार्जुन के भी समस्त आंचलिक उपन्यास राजनीतिक उपन्यास की श्रेणी में विन्यस्त किये जा सकते हैं। साम्यवादी दल के कर्मठ कार्यकर्ता होने के कारण नागार्जुन अपने राजनीतिक विचारों में साम्यवादी हैं, किन्तु यशपाल के समान उनके उपन्यास मार्क्सवादी सिद्धान्त से उतने बोझिल नहीं हैं।

नागार्जुन, जिनका वास्तविक नाम वैद्यनाथ मिश्र है, उत्तर बिहार के दरभंगा

जिले के तैरानी ग्राम के निवासी है। उनका जन्म एक सामान्य परिवार मे हुआ और चार वर्ष की अल्पायु में उन्हें मातृ-वियोग सहन करना पड़ा। गरीबी के कारण उन्हे संस्कृत का अध्ययन करना पड़ा और पराश्रमोजी छात्र के रूप मे उन्होने काशी और कलकत्ते के राजकीय संस्कृत कॉलेजो से स्नातक की उपाधि अर्जित की।

संस्कृत के अध्ययन ने उन्हे संस्कृत मे लिखने की प्रेरणा दी। लेखन-कार्य मे अभिरुचि होने के कारण उन्होने प्राकृत, मैथिली, पालि और अन्तत. हिन्दी मे अबाध गति से लिखा। उनमे राहुल जी की घुमक्कड़ी प्रवृत्ति है और इसी सन्दर्भ मे वे बौद्ध होकर १८ माह का सिंहल प्रवास कर आये हैं। सिंहल मे ही उन्होने पालि का अध्ययन किया और संस्कृत का अध्यापन। वैद्यनाथ मिश्र से भिक्षु नागार्जुन भी वे वही बने।

सिंहल-प्रवास से लौटने पर वे बिहार की वामपन्थी राजनीति मे स्वामी सहजानन्द के सहयोगी बने और पटना को उन्होंने अपना कर्मक्षेत्र बनाया। वामपंथी राजनीतिक गतिविधियो म भाग लने के परिणामस्वरूप उन्हें दो वर्ष का कारावास भुगतना पड़ा और वहाँ से मुक्त होने पर उन्होंने भिक्षुवेश त्याग कर पुन गृहस्थ क्षेत्र मे प्रवेश किया। उनके बारे मे परिचय देते हुए कहा गया है ' 'दस कट्ठा जमीन के स्वत्वाधिकारी, कम्युनिस्टो की विशाल बिरादरी के स्वजन आत्मीय। बीच बीच मे जेल जाते रहने के शौकीन।' राजनीति से सक्रिय रूप से सम्बद्ध नागार्जुन साहित्य मे राजनीतिक महत्व को मानते है। उनके कथनानुसार 'शोषक और तानाशाही शक्तियो के खिलाफ जनमत तैयार करना मेरा पहला काम हो जाता है। संघर्ष के लिए जो प्रतीक मुखरित होते हैं, उन्हे उभारता हूं, ताकि रग-रग मे माहौल पैदा हो जाय।' साम्यवादी होने के कारण वे वर्ग-सघर्ष पर आस्था रखते है और सर्वहारा जनता ही उनकी आराध्य हो जाती है। वे मानते हैं कि 'अस्सी प्रतिशत (जनता या किसान) हमारी इष्ट देवता है, जो जीवन के आसपास फैली हुई है। मैं भी उन्हीं के साथ जुड़ा हुआ हूँ। समाज के घटना प्रवाह से विच्छिन्न नही हूं। पात्रो के साथ मुस्कराता हूँ, उनसे बात करता हूँ। मैं ऐसे वर्ग को प्रतिनिधि नही चुनता, जिसमे मैं नहीं हूं।'

नागार्जुन के इस संक्षिप्त परिचय और विचारधारा से यह स्पष्ट हो जाता है कि शोषित वर्ग के सदस्य के रूप मे उन्होने गरीबी के अभिशाप को केवल निकट से ही नहीं देखा, अपितु भुक्तभोगी रहे है। यही कारण है कि आर्थिक वैषम्य के स्वनुभाव ने उन्हें वामपन्थी राजनीति की ओर आकर्षित किया और इस प्रकार सन् १९३८ से उनका राजनीति से सम्बन्ध बना हुआ है।

समाजवादी यथार्थ का यह अनुभव जन्य विवरण उनके लघुकाय उपन्यासों मे कलात्मक ढग से चित्रित है। नागार्जुन के प्रकाशित हिन्दी उपन्यासो की तालिका निम्नानुसार है 'रतिनाथ की चाची' (१९४८) 'बलचनमा' (१९५२), 'नयी पौध' (१९५३),

बाबा बटेसरनाथ' (१९५४), 'दुखमोचन' (१९५७), वरुण' के बेटे' १९६०), 'हीरक जयन्ती' और 'उग्रतारा' (१९६३)।

उपर्युक्त उपन्यासों के अध्ययन से कहा जा सकता है कि नागार्जुन ने मिथिला भूमि के जन-जीवन को आधार बनाकर नवीन समाजवादी चेतना को सशक्त अभिव्यक्ति दी है। मार्क्सवादी सिद्धान्तों को समुचित स्थान देते हुए भी उन्होंने कला को सिद्धान्तों के प्रचार से बचाने का कलात्मक प्रयत्न किया है। वे नयी पीढ़ी के सजग उपन्यासकार हैं, जिन्होंने उपन्यासों में जीवन-वास्तव का विशद विवेचन प्रस्तुत किया है। उनके उपन्यासों में मुख्यतया चार प्रवृत्तियां का समावेश है—

१—जीवन की व्यापकता और सम्पूर्णता का प्रतिनिधित्व
२—जनवादी तत्वों मे आस्था
३—यथार्थवाद की सामाजिक आधार पर स्थापना
४—अभ्यासात्मक नूतन शिल्पाग्रह

रतिनाथ की चाची

'रतिनाथ की चाची' (१९४८) नागार्जुन का प्रथम उपन्यास है, जिसमें ग्राम्य जीवन के आधार पर एक मैथिल विधवा के दुर्भाग्य की कथा वर्णित है। ग्राम्य जीवन को मिथिला भूमि तक सीमित रखकर आंचलिकता की उद्भावना की गयी है और 'इस धरती एवं इसके निवासियों से निकट परिचय तथा इनसे आन्तरिक लगाव के बल पर लेखक अपनी कृति को जीवन्त बनाकर उसमें समाजवादी चेतना का संचार करता है।'[1] सुषमा धवन का यह कथन आंशिक रूप से ही सत्य माना जा सकता है, क्योंकि जिस समाजवादी चेतना की ओर लेखक ध्यानाकर्षित करना चाहता है, वह पूर्णतः स्पष्ट नहीं हो सकी है।

यह एक सरलकथानक उपन्यास है। कथावस्तु एक कुलीन ब्राह्मणी की दुःखमय गाथा है। वह सनातनवती निर्धन विधवा है जिसका पुत्र उमाकान्त कहीं बाहर शिक्षा प्राप्त कर रहा था और पुत्री प्रतिमा विवाहित जीवन व्यतीत कर रही थी। घर में उसके जीवन का एकमात्र सहारा उसके विधुर देवर जयनाथ का पुत्र रतिनाथ था। जयनाथ दरिद्र और क्रोधी पिता है और उसका शिकार होता है रतिनाथ, जो अपने दुःखों का अन्त चाची की स्नेहिल छाया में पाता है। वासनान्ध हो जयनाथ एक रात्रि अपनी विधवा भाभी के साथ बलात्कार कर बैठते है जिससे उसे गर्भ रह जाता है। रतिनाथ की चाची गौरी का गाँव वाले सामाजिक बहिष्कार करते हैं और वह अपमानित हो अपनी माँ से घर चली जाती है। माँ के प्रयत्न से एक चमाइन उसका गर्भपात कराती है और

१ डॉ०सुषमा धवन : हिन्दी उपन्यास, पृष्ठ ३०३

वह पुनः अपने घर लौट आती है। इतना होने पर भी वह जीवनपर्यन्त गाँव की स्त्रियों और कुटुम्बियों के तिरस्कार के बीच जीती है और अन्त में दुःखों से त्रस्त मलेरिया से पीड़ित हो मृत्यु का आलिंगन करती है। अंतिम समय में रतिनाथ ही अपनी चाची की दाह-क्रिया करता है।

जैसा कि पूर्व ही कहा जा चुका है, कथावस्तु सरल और सीधी है। किसी प्रकार का उसमें उलझाव नहीं। इस कथावस्तु के माध्यम से लेखक ने मैथिल ब्राह्मणों के सामाजिक आचार-विचारों, विधवा-समस्या, अनमेल विवाह और छुआछूत की अनेकमुखी समस्याओं को स्पर्श किया है।

रतिनाथ की चाची गौरी के चरित्र-चित्रण से विधवा की यथार्थपरक समस्याओं को लेकर समाज के अन्तर्विरोध को वाणी देने का प्रयास किया गया है। उसकी आर्थिक, सामाजिक तथा भावात्मक स्थिति समाज की जड़ परिस्थिति पर व्यंग है। गौरी का स्वाभिमानी संघर्षशील जीवन और मृत्यु के सन्निकट पहुँचकर भी उसका समाजवादी दृष्टिकोण और परिणामस्वरूप रूस की विजय की कामना ही ऐसे प्रसंग हैं, जो उपन्यास को समाजवादी चेतना के निकट लाते हैं। उपन्यास का एक अन्य पात्र तारावरण भी इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है, क्योंकि वह समाजवादी चेतना का ही प्रतीक है, सामाजिक विकृतियों के चित्र भी इसी भावना से उरेहे गये हैं। इतना होते पर भी गौरी के समाजवादी दृष्टिकोण को अपनाने का प्रसंग अस्वाभाविक और अनचाहा सा ही है।

बलचनमा

नागार्जुन का दूसरा उपन्यास 'बलचनमा' है, जिसका कथानक सामंती जमींदारी प्रथा में पिसते हुए ग्रामीण मजदूर किसानों का प्रतिनिधित्व करता है। आलोच्य उपन्यास आत्मकथात्मक है और इसका नायक बलचनमा स्वयं अपनी जीवन-कथा कहता है। उपन्यास का घटनास्थल है दरभंगा और कालावधि है सन् १९३७ के पूर्व का समय। नायक है बलचनमा, जो एक गरीब ग्वाले का पुत्र है। उसी के चतुर्दिक कथा से सम्बन्धित घटनाएँ उपन्यास में घूमती हैं। जीवन के अभावों का जीवन्त प्रतीक बलचनमा सर्वहारा वर्ग का मजदूर बालक था, जिसकी केवल १० बिस्वा जमीन थी। परिवार में माँ, दादी और छोटी बहिन थी। मूलतः परिवार-पोषण का सहारा मजदूरी ही थी।

आत्म कथानक उपन्यास में उपन्यासकार को अपनी ओर से कुछ कहने की गुंजाइश नहीं रहती। इस प्रकार के उपन्यासों में नायक आपबीती यथार्थ बातों का वर्णन करता है, ऐसी बातें या घटनाएँ, जो सहृदय जनों को संवेदित कर सकें। ऐसी मार्मिक घटनाओं का निबन्धन लेखक की विशिष्ट कसौटी होती है। अन्य व्यक्तियों के विषय में नायक उतना ही कहता है, जितना साधारण मनुष्य जीवन में दूसरे व्यक्तियों के बारे में जानते हैं।

बलचनमा अपने मभले (जमीदार) के द्वारा बाँध कर अपने पिता के मारे जाने की घटना को अपने जीवन की प्रथम घटना के रूप मे वर्णित करता है। उस पर अपराध लगाया गया था कि उसने मालिक के बाग से कही एक कच्ची अमिया तोड ली थी। उसकी दादी उसके पिता को छुडाने के लिए मालिक के सामने गिडगिडा रही थी, बलचनमा, उसकी माँ तथा बहन भयातुर रो रहे थे। यहाँ लेखक प्रारम्भ मे ही जमीदारो के द्वारा जनता पर किये गये अत्याचारो का चित्रण प्रस्तुत करता है और क्रमश उनके शोषण, अनाचार और अत्याचार के वर्णन के सहारे कथानक को गतिशील बनाता है। लेखक ने कथाक्रम मे कांग्रेस तथा समाजवादी दलो म भी उन्ही जमीदारो के पारिवारिक जनो को ही घुँसा हुआ बताया है, जो वस्तुत जनता के सही प्रतिनिधि नही हैं, प्रत्युत अपने ही वर्ग का हित-साधन करते है।

बलचनमा का पिता चौयइया के ज्वर म मर गया। मालिक स कुछ लेकर, कुछ इधर-उधर से जैसे तैसे उसका क्रियाकर्म हुआ। दादी और माँ के प्रयासो स बलचनमा छोटे मालिक की भैंस चराने के लिए रूखे सूखे खाने, फटे पुराने कपडे और दो आना महीने पर नौकर हो जाता है। भैंस चराने के अतिरिक्त उसे प्रतिक्षण अन्य अनेक कार्य भी करने पडते हैं। चौधरी लोगो का यह घराना भरा पूरा था। उनके पास बहुत सम्पत्ति थी। किसी चीज का अभाव न था। छोटी मलिकाइन भी किसी बडे घराने की थी। वह बलचनमा को बहुत गालियाँ देती थीं और अत्यन्त ही सडा-गला जूठा खाना। इतने पर भी वह सन्तोष पूर्वक अपना कार्य करता था। बडे मालिक के चरवाहे सबूरी मण्डल मे उसकी मित्रता हो गयी थी। पिता के मरने पर मझले मालिक ने बलचनमा की माँ को बारह रुपये कर्ज दिये थे और सादे कागज पर अँगूठे का निशान ले लिया था। किन्तु उनका सूद ही पूरा न हो पाता था। मूल तो ज्यो का त्यो था ही। अतएव मालिक ने बलचनमा का १० किस्तासी सेर धान में मिला लिया। इसी प्रकार से अन्य कर्जदारो का कर्ज चुकता किया जाता था।

दरभंगा जिले मे धान की खेती विशेष होती है। अतएव धान रोपने के दिनो मे इन मजदूरो को मालिको म कुछ पेट भरने को मिल जाता था। किन्तु अन्य अवसरो पर बीमारी के पथ्य के लिए भी उनसे एक सेर चावल मिलना कठिन होता था। सर्वहारा वर्ग के जीवन की इन छोटी-छोटी बातो के चित्रण से उपन्यास मे सहज स्वाभाविकता का निर्वाह किया गया है। कथानक के प्रारम्भिक अश म जमीदारो के निरकुश व्यवहार तथा उत्पीडन म रह कर बलचनमा की हीन परिस्थितियो का चित्रण किया गया है। उसके जीवन का दूसरा अध्याय फूल बाबू के सान्निध्य म प्रारम्भ होता है। फूल बाबू छोटी मलिकाइन के भतीजे थे और पटना म पढते थे। छुट्टी म घर आने पर वे बलचनमा को साथ ले गये। फूल बाबू गाँधी जी के नमक-सत्याग्रह म सम्मिलित

हो गिरफ्तार हो जाते हैं और फूल बाबू के साथी महेन बलचनमा को अपने यहाँ ले जाते हैं। फूल बाबू फागुन में छूट गये। अब वे पूरे गांधीवादी बन गये और कॉलेज छोड़ कर देश-सेवा करने लगे थे। बलचनमा भी अपने गाँव चला आता है।

इधर गाँव मे बलचनमा की बहिन रेवती जवान हो चुकी थी। एक दिन छोटे मालिक की नजर उस पर खराब हो गई। पर रेवती किसी तरह हाथ छुड़ाकर भाग आयी। मालिक ने इसके लिए उसकी माँ को बहुत मारा पीटा। छोटे मालिक ने बलचनमा की, जो दगल देखने गया था, पुलिस मे चोरी की रिपोर्ट कर दी। बलचनमा को जब यह पता चला तो फूल बाबू से सहायता प्राप्त करने की आशा मे लहरिया सराय आश्रम पहुँचा। यहाँ फूल बाबू को साक्षात् गाँधी महात्मा की मूर्ति बने देख उसकी श्रद्धा बढ़ जाती है। बलचनमा ने अपनी करुण कथा सुनायी पर फूल बाबू ने उसकी मदद करना स्वीकार न किया। आश्रम के व्यवस्थापक राधा बाबू उसे आश्रम मे वालेंटियर रख लेते हैं और वहाँ वह सेवा-कार्य करने लगता है। आश्रम मे रहने के कारण वह कांग्रेसी आश्रम की कार्यविधि से भली भाँति परिचित होता है। राधा बाबू ने एक खत बड़े मालिक के लड़के के नाम भेजा और दूसरा दरोगा के नाम। फलत बलचनमा का मुकदमा खत्म हो गया। बलचनमा राधा बाबू से ५०) लेकर गौना कराने की उमग मे घर आया। धान की फसल अच्छी हुई थी। मेहनत मजूरी से कुछ पैसा भी इकट्ठा हो गया था। गौना होकर बलचनमा की स्त्री मुगनी घर आयी और रेवती का गौना हो गया। मेहनत-मजूरी करते हुए बलचनमा के तीन साल कट गये। बीच मे एक बार बाढ़ आयी, भूचाल आया और लोग बेसहारा हो गये। सीतामढ़ी और मुंगेर जिलों मे जगह-जगह बालू और पानी पट गया। पक्के मकानो की बस्तियाँ ढेर हो गयीं। लोगो का बड़ा नुकसान हुआ। सरकार और कांग्रेस की ओर से लाखों रुपये तकावी के रूप मे बाँटे गये। फूल बाबू बलचनमा के गाँव मे तकावी बाँटने वाले थे। उन्होंने मालिकों के यहाँ और बभनटोली मे चक्कर लगाया था। किन्तु ग़रीबों मजदूरों की टोली मे नही। साथ ही रुपये निकले अधिक गये और बाँटे कम गये। सरकारी और गैर सरकारी मदद के नाम पर अधिकारियों और नेताओं ने खूब खाया। बलचनमा को फूल बाबू पर अश्रद्धा हो गयी। राधा बाबू सोशलिस्ट हो गये थे। बलचनमा को बटाई पर बहुत से खेत मिल गये और वह परिश्रम से कमाई करने लगा। इसी बीच जमीदारों की बेदखली से बचने का किसान-आन्दोलन चला। बलचनमा ने इसमें सक्रिय भाग लिया। वह किसानों की अधिकार-रक्षा के लिए बिना किसी भय के जी-जान से जुट गया और एक रात जमींदार के आदमियों ने उस पर घातक प्रहार किया। यहीं आकर कथानक का अन्त हो जाता है।

इस प्रकार यह उपन्यास एक ईमानदार भारतीय किसान की गौरव-गाथा है, जो

साधनहीन होने पर जीवन सघर्ष स भागता नही, वरन् अपने अधिकारो को प्राप्त करने की चेतना से अनुप्राणित हो निरन्तर आगे बढने की दिशा मे यत्नशील रहता है। बलचनमा ऐसा ही किसान है जिसके माध्यम से 'लेखक का उद्देश्य बलचनमा के जीवन सघर्ष के चित्रण द्वारा उस समाजवादी चेतना की ओर निर्देश करना है जो साधनहीन एव स्वाधिकारवचित किसान के अतर म अन्याय तथा अत्याचार के प्रति विद्रोह की भावना को जन्म दे रही है।'[1] यह नयी समाजवादी चेतना का ही प्रतिफल है कि बलचनमा परिस्थितियो से पराजित न होकर उनको अपने अनुरूप बनाने के लिए सघर्ष शील है।

प्रस्तुत उपन्यास ग्राम्य जीवन के उन दिनो का स्मारक है, जब विदेशी शासन और स्वदेशी जमीदरो के शासन मे जनता की दुर्दशा हो रही थी। प्रेमचन्द का 'गोदान' यदि अपने युग के किसान का जीता-जागता चित्र है तो 'बलचनमा' भी उसी परम्परा की स्मृति ताजी करता है। हम तो यहाँ तक कह सकते हैं कि राजनीतिक चेतना का सबल योग पाकर 'बलचनमा' का किसान 'गोदान' के कृपक से कही अधिक उद्यमशील और सतेज है। उपन्यास के आरम्भ म ही बलचनमा के पिता की मारपीट का प्रथम दृश्य ही जमीदारो की नृशसता का प्राथमिक परिचय देता है। शेष उपन्यास जमीदारी प्रथा के अन्तगत अनेक प्रकार के अत्याचारो के शिकार निरीह किसानो के त्रस्त जीवन का चित्रण करता है। ब्रिटिश शासन तो जमींदारो के पक्ष म था ही, देश की राष्ट्रीय सस्था कांग्रेस मे भी ऐसे लोग प्रविष्ट हो गये थे जो किसानो का अहित साधन करते रहे। उपन्यासकार ने फूल बाबू जैसे पात्र का चरित्र इसी रूप म उभारा है। किन्तु इसके विपरीत राधा बाबू जैसे उदार व्यक्ति भी कांग्रेस म थे। रूसी क्रान्ति के पश्चात् लेनिन ने रूसी मजदूर वर्ग और किसानो को आगाह किया था कि कभी भी एसे व्यक्ति को किसी उत्तरदायित्वपूर्ण पद पर न जाने देना, जिसके माँ-बाप आदि जमींदार' साहूकार या जारशाही के नौकर रहे हो। यदि वे इन पदो पर पहुँच गये तो अपनी पुरानी प्रवृत्तियो को उभार कर जनता का ही सही शासन न स्थापित होने देंगे। भारतीय स्वतन्त्रता के उपरान्त देश म व्याप्त भयकर भ्रष्टाचार का मूल कुछ ऐसा ही है। लेखक का सम्भवत परोक्ष सकेत यही है। एक स्थान पर लेखक ने स्पष्ट लिखा है कि तब अग्रेज लूटते थे और अब काले अग्रेज, शहरो के पूँजीपति आदि। जनता के *शोषण के क्रम में विशेषण वृद्धि हैं, कमी नहीं।*

आत्मकथात्मक वाद सापेक्ष उपन्यास होने स राजनीतिक राष्ट्रीय गतिविधियो को व्यापक विस्तार देने की गुजाइश थी ही नहीं, फिर भी कई स्थानो म जनसामान्य

---

१ डा० सुषमा धवल हिन्दी उपन्यास, पृष्ठ ३०४ ३०५

के समझने योग्य कांग्रेस पार्टी और सोशलिस्ट पार्टी के उद्देश्यों की भी लेखक ने व्याख्या की है। किन्तु स्पष्टतया दोनों के दर्शन से उनका लगाव नहीं है। लेखक का दृष्टिकोण साम्यवादी है और बलचनमा को विभिन्न परिस्थितियों में प्रस्तुत कर उसने अपनी पूर्व ग्रहग्रसित दृष्टि से जमींदारो एव राजनीतिक नेताओ के स्वभाव, सस्कार तथा स्वार्थो को चित्रित किया है।

कांग्रेस और उसके कार्यक्रमो पर भी लेखक की दृष्टि व्यगात्मक रही है, जो चित्रण को एकागी बनाती है। नमक-सत्याग्रह के सम्बन्ध मे बलचनमा की मनोभावना देखिए—

'मगर भैया, मेरी समझ मे कुछ नहीं आया। बार-बार मैं यही सोचता कि बाबू को जब जेहल ही जाना था, तो मुझे भी साथ ले जाते। यह जो दस दस, पाँच-पाँच आदमी कुर्ता, धोती, टोपी पहन कर गले मे माला डाले चढउआ बकरे की तरह नमक बनाने जाते थे, सो मुझे बाबु लोगो का एक खिलवाड ही लगता था। ऐसे भी कही किसी को सुराज मिला है ?'[1]

मझेन बाबू की माँ की प्रतिक्रिया भी बहुत कुछ ऐसी ही है। वे कहती हैं, 'फूल बाबू को यह क्या सनक सवार हुई ? गाँधी ने भले घर के लडको को बिगाडने का ठेका ले लिया है क्या ? पढाई लिखाई छोड़कर कॉलेज के लडके अब क्या नमक ही बनाया करेंगे ?'[2]

कांग्रेस आन्दोलन के प्रति सेठ-साहूकारों की सहानुभूति अपने स्वार्थों को लेकर थी जिसकी व्याख्या बलचनमा करता है।[3]

सुराजी नेताओं के खान-पान, रहन-सहन और व्यवहार का चित्रण भी मिलता है। जेल से लौटने पर फूल बाबू बिलकुल बदल गये थे। 'सुबह शाम गाँधी जी का भजन गाते थे। जेल ही से गीता की एक छोटी पोथी ले आये थे। इधर आते ही दिन एक चरखा खरीद लाये। और भैया, वही चरखा जा छोटे कमरे मे बन्द रहता। खाना पीना भी उनका बदल गया था। मसाला-मिरचाई कुछ नहीं। तरकारी उबाल कर खाते थे। एक दिन गेहूँ भीगने दिये कटोरे मे। मैं तो समझ ही नहीं सका कि इनका क्या होगा। अगले दिन ढाँक कर गेहूँ को उन्होने भीगे अँगोछे पर फैला दिया। अगली सुबह गेहूँ के दानों मे जब अकुर निकल निकल आये तब फूल बाबू ने एक-एक कर उन्हें खाया। कभी उबाले हुए आलू, प्याज और गुड पर

१ नागार्जुन : बलचनमा, पृष्ठ ६०
२ नागार्जुन : बलचनमा, पृष्ठ ६०
३ नागार्जुन : बलचनमा, पृष्ठ ६२

ही रह जाते। मुझे तो भैया अन्देसा हो गया कि बाबू का मिजाज सनक गया है।[1] बरहमपुरा स्थित कांग्रेस आश्रम और सुराजी लोगों का विस्तृत चित्रण भी सहृदयता से नहीं किया गया है। मौका पाकर लेखक फबतियाँ कसने से यहाँ भी नहीं चूका। बलचनमा कहता है—'महतमा जी का हुकुम नहीं था कि सोराजी लाग आसरम म किसी को नौकर चाकर के तौर पर रखें। फिर भी आसरम म हम चार जने थे, जो नौकर ही थे। कहने को ओलंटियर कह लो, सेवक कह लो, लेकिन थे तो हम नौकर ही।[2] राधे बाबू के खुले हाथ का विवरण भी दिया गया है—'राधा बाबू राजा खानदान के थे। पढ़ाई करते समय स्टेट का पैसा फूँकते रहे और अब पबलिक का। नन्दा आसरम मे काफी आता था। कोई उनसे हिसाब लेने वाला नहीं था। जैसी मरजी आयी, वैसे खरच किया।'[3] सोराजी लोगों का व्यंग्यात्मक चित्र खींचने मे लेखक ने विशेष रस लिया है।[4] सोराजी बाबुओं म से सैकडे म नब्बे ऐसे ही मिल हैं, जिनको 'जी सरकार' कहलाने म बड़ा निम्मन (अच्छा) बुझाता है। न कहो तो गुर्रा-गुर्रा कर ताकते रहेंगे। इन सोराजी लोगों के व्यवहार से बलचनमा 'कांग्रेस के बारे म सोचने लगा कि स्वराज मिलने पर बाबू भैया लोग आपस म ही दही-मछली बाँट लेंगे, जो लोग आज मालिक बने बैठे हैं आगे भी तर माल वही उड़ावेंगे। हम लोगों के हिस्से सीठी ही सीठी पड़ेगी।'[5] कांग्रेस के प्रथम मन्त्रिमण्डल निर्माण के पूर्व का संकेत भी उपन्यास म मिलता है।

कांग्रेस के भीतर समाजवादी विचारधारा को लेकर बनने वाले दल का संकेत मिलता है और दोनों की विचारधारा से वैभिन्न्य का भी।[6] इन्हीं सोशलिस्टों के नेतृत्व म किसान-संग्राम को चित्रित किया गया है। बाँस की छिउली पर हँसिया हथौड़ा वाला झंडा फहरा उठता है। रोजी रोटी की लड़ाई के बहादुर सिपाही जात पाँत को छोड़ आपस म कामरेड हो जाते हैं। कामरेड अर्थात् लड़ाई का साथी। शानदार मीटिंग और आगभरे लम्बे भाषण होते हैं। नारे लगते हैं—कमानेवाला खायेगा, इसके चलते जो कुछ हो। जमीन किसको जोते-बोये उसकी।

नायक बलचनमा एक सशक्त पात्र है, जो अत्याचार की निर्मम परिस्थितियों से

---

१ नागार्जुन बलचनमा, पृष्ठ ६१
२ नागार्जुन बलचनमा, पृष्ठ १०८
३ नागार्जुन बलचनमा, पृष्ठ १०६
४ नागार्जुन बलचनमा, पृष्ठ ११८ ११६
५ नागार्जुन बलचनमा, पृष्ठ १६३
६ नागार्जुन बलचनमा, पृष्ठ १६२ १६३

गुजरता हुआ अन्त में स्वय किसानो की स्वत्व रक्षा के आन्दोलन का सक्रिय अग बन जाता है। उसके निरूपणों में व्यग का गहरा पुट है। उसकी चेतना प्रारम्भ से ही प्रखर है और जीवन की विषमताओं के मूल कारणों को समझने में वह समर्थ है। उसमें विद्रोह की अनावृत चिनगारी है, जो शोषकों को भस्मीभूत करने को आकुल है। वह भाग्यवादी नहीं और न ईश्वरेच्छा को अन्तिम सत्य मानता है। कर्म ही उसका मंत्र है और उसी की वह साधना करता है।

अनेक दृष्टियों से 'बलचनमा' हिन्दी का एक विशिष्ट राजनीतिक उपन्यास कहा जा सकता है। कलात्मक दृष्टि से इसमें भाषा-शैली और यथार्थवादी चित्रण-शैली का नूतन प्रयोग मिलता है। दरभंगा और उसके निकटस्थ जनपदीय अचल में बोले जाने वाले शब्दों के प्रयोग से यथार्थ की अनुभूति होना स्वाभाविक है। बलचनमा के क्रमिक विकास को दिखलाने की दृष्टि से उसके घर, गाँव और वहाँ के निवासियों का तथा घटना-प्रवास के प्रसग से नगर-जीवन और सुराजी आश्रम का ब्योरेवार विवरण वर्ण्य वस्तु को प्रभावी बनाता है। इसमें भी व्यक्तियों के रूप, आकार, शील-स्वभाव, विचार-व्यवहार को स्वाभाविकता में यथार्थ की सृष्टि की गयी है। आत्मकथात्मक शैली में जैनेन्द्र और अज्ञेय ने भी अशत राजनीतिक उपन्यासों की रचना की है पर उनका राजनीतिक मन्तव्य 'बलचनमा' सा नहीं निखर सका है। बलचनमा के अभाव और उसके आधार पर शोषितों की समस्याओं के आर्थिक पक्ष पर समाजवादी दृष्टिकोण से विचार प्रस्तुत करने में नागार्जुन को पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई है। इसमें एक ओर सुखी सम्पन्न वर्ग है तो दूसरी ओर दुखी और विपन्न सर्वहारा वर्ग और दोनों की जीवन दशाओं के 'कन्ट्रास्ट' (वैषम्य) और शोषक द्वारा शोषित के उत्पीडन के चित्र इस तरह आते हैं कि जीवन के प्रति नितात भौतिक दृष्टिकोण उभड कर रह जाता है।

नयी पौध

'नयी पौध' में नागार्जुन ने असगत विवाह की समस्या को नवीन ढग से प्रस्तुत किया है। अनमेल विवाह भारतीय समाज की परम्परागत समस्या रही है और आज भी उसका सर्वथा लोप नहीं हो सका है। इस सामाजिक समस्या को राजनीतिक दृष्टि से देखने का प्रयत्न किया गया है। 'रतिनाथ की चाची' में विधवा-जीवन की गाथा कह चुकने के बाद यह स्वाभाविक ही था कि नागार्जुन उक्त जीवन के एक मूलभूत कारण अनमेल विवाह पर भी विचार करते। 'रतिनाथ की चाची' के समान 'नयी पौध' का कथानक भी साधारण किन्तु सुगठित है। विषय वस्तु नवीन न होने पर भी उसका निर्वहण का ढग मौलिक है।

कथा मिथिला के सौराठ के मेले से प्रारम्भ होती है, जहाँ विवाहेच्छु वर एकत्र होते है और कन्याओं के अभिभावकों द्वारा उनका चुनाव किया जाता है। बिसेसरी के नाना खोखाई झा भी सौरठ के मेले में पितृविहीन नातिन के लिए वर के चुनाव हेतु जाते हैं और एक साठ वर्षीय बूढे को तय करते है। खोखाई झा का पेशा पडिताई है और उनकी दृष्टि में विवाह एक सौदा है। इसी धनलोलुपता में वे अपनी छह कन्याओं को अपात्रों के हाथ बेच 'कन्यादान' से उऋण हो चुके है। बिसेसरी का भी वे इसी तरीके से हाथ पीला करना चाहते हैं। वह चौदह वर्षीया सुन्दरी है पर खोखाई झा उसे १०० रुपये में चतुराननं चौधरी को पत्नी रूप में सौंप देने को तैयार हैं। चौधरी साठ पार कर चुके है और तीन विवाह कर ५ बच्चों के महाभाग पिता बन चुके है।

इस विषम विवाह का विरोध गाँव के प्रगतिशील नवयुवक करते है और वृद्ध वर महोदय निराश हो वापस लौट जाते हैं। अनमेल विवाह स्थगित हो जाता है, किन्तु बिसेसरी की विवाह-समस्या और जटिल हो जाती है। प्रगतिशील युवकों का नेता दिगम्बर वाचस्पति इस दिशा में प्रयत्न कर अपने एक बाल्यमित्र के साथ बिसेसरी का विवाह-सम्बन्ध निश्चित कर बिना किसी आडम्बर के विवाह सम्पन्न करा देता है। वाचस्पति राजनीतिक पात्र है और सोशलिस्ट दल का सदस्य है। उसका जीवन जन-आन्दोलन को अर्पित है और उसी में वह अपनी सार्थकता देखता है। इस विवाह से परम्परागत रूढ़िवादिता का अन्त होता है और नयी पौध की विजय होती है।

इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए जिस कथानक को लिया गया है, उसका विकास स्वाभाविक गति से हुआ है। मैथिल ब्राह्मण के पारिवारिक जीवन से सम्बद्ध कथानक होने से लेखक को उनके परम्परागत पारिवारिक जीवन व वैवाहिक कुरीतियों के उद्घाटन का सहज स्वाभाविक संयोग मिल जाता है। भली भाँति परिचित मैथिल जीवन और गाँव की सीमित पृष्ठभूमि लेकर उन्होंने प्राचीन और नवीन विचारों के संघर्ष को अभिव्यक्ति देकर उनके खंडन मंडन के द्वारा ही समस्याओं का निदेश प्रस्तुत किया है। यथार्थ जीवन चित्रण की दृष्टि से कृति उत्कृष्ट बन पड़ी है और उसमें वैयक्तिक तथा सामाजिक विकृतियों के प्रति प्रच्छन्न व्यंग निहित है। उद्देश्य की दृष्टि से भी उपन्यास सफल है और इसमें समाजवादी नवीन सामूहिक चेतना वर्ण्य वस्तु के साथ ऐसी ही एकाकार हो गयी, जैसे संगम में गंगा और यमुना।

इसीलिए एक विज्ञ समीक्षक का यह कथन सर्वथा उचित है कि 'यह रचना अपनी सभी पहली खामियों से वंचित है। न तो इसमें कहीं भद्दापन है और न किसी प्रकार के राजनीतिक या सैद्धान्तिक विचारों का अन्ध मोह ही है। कवि, लेखक और कलाकार को जिस प्रकार क्षुद्र संकीर्णताओं से ऊपर उठकर जीवन में मुक्त-हृदय होकर

प्रवेश करके उसकी रसानुभूति करना चाहिए, वैसी दृष्टि नागार्जुन के इस नये उपन्यास में हैं।'[1]

बाबा बटेसरनाथ

नागार्जुन के 'बाबा बटेसरनाथ' में समाजवादी यथार्थ कथा-शिल्प सम्बन्धी नूतन प्रयोग के समन्वित रूप में प्रस्तुत हुआ है। इसमें लेखक ने नये रूप-शिल्प की उद्भावना से एक पुराने वटवृक्ष के मुख से रुपउली गाँव के उत्थान पतन, सामाजिक, राजनीतिक स्थितियों का अंकन किया है। मौजा रूपउली के इस वटवृक्ष का आरोपण जैकिसुन के परदादा ने किया था और अपनी घनी छाया के कारण यह गाँव के सभी वर्ग के व्यक्तियों का विश्रामस्थल सा बन गया था। कांग्रेसी शासन के स्थापित होने के बाद जमींदारी उन्मूलन के समय टुनाई पाठक और जेनरायन झा ने राजा बहादुर से बरगदवाली यह जमीन और पुरानी पोखर बन्दोबस्त में ले ली। गाँव वालों के हृदय में इस घटना से रोष की उद्भावना होती है। जैकिसुन को जमीन और वटवृक्ष के हस्तान्तरण से दुख होता है क्योंकि वह वृक्ष उसके परदादा की निशानी थी। दिन भर का थकित जैकिसुन इसी दुख में वटवृक्ष के नीचे सो जाता है। रात को शाखाओं की घनी झुरमुटों से बरगद का मानव रूप प्रकट हुआ और उसने जैकिसुन को अपने जन्म एवं विकास की कहानी के माध्यम से रुपउली गाँव के सौ वर्ष का इतिहास सुनाया।

उपन्यास में वर्णित यह गाथा घनी आत्मीयता के साथ कही गयी है और जिससे रुपउली गाँव अपने सामाजिक एवं प्राकृतिक परिवेश में प्रत्यक्ष हो उठा है। बटेसर बाबा ने भूचाल, बाढ़ से प्रभावित गाँव का, देवी-देवताओं के प्रति लोगों की अन्ध श्रद्धा, पशुबलि प्रथा, पंचायतों का सूक्ष्म निरीक्षित आँखोंदेखा वर्णन किया। इस तरह बटेसर बाबा से गाँव की चार पीढ़ियों के इतिहास का पूर्वार्द्ध जानकर जैकिसुन में कर्म की प्रेरणा जाग्रत होती है। उसका मानसिक विकास होता है। सामूहिक शक्ति के प्रति वह आशावान होता है, क्योंकि बाबा उसे नूतन दृष्टि देते हैं: "झींगुर एक तुच्छ कीड़ा होता है। सैकड़ों-हजारों की तादाद में जब ये एक स्वर होकर आवाज करने लगते हैं तो एक अजीब समां बँध जाता है। झींगुरों की यह अखण्ड झंकार कई-कई पहर तक चलती रहती है। सामूहिक स्वर की इस प्रकार महिमा के आगे मेरा मस्तक सदैव नत होता रहा है और होता रहेगा।'[2]

जैकिसुन के स्वप्न की कथा, जो उपन्यास की आधिकारिक कथा है, रात बीतते

---

१ आलोचना, अंक १३, पृष्ठ २११
२ नागार्जुन : बाबा बटेसरनाथ, पृष्ठ ११

तक चलती है। तदनन्तर वह और उसका साथी भागकर काम में लग जाते हैं। किसानों का संगठन बरगद की ममता को लेकर आरम्भ होता है। प्रगतिशील युवक जीवनाथ भी जैकिसुन के साथ आकर किसान-आन्दोलन में भाग लेता है और कर्मठता से नेता बन जाता है। एक अन्य पात्र है दयानाथ, जिसकी आस्था यद्यपि कांग्रेस में है, किन्तु वह भी किसानों के साथ आ मिलता है। संघर्ष तूल पकड़ता है। नीलाम्बर मुजफ्फरपुर में इनकमटैक्स आफीसर है। वह अपने प्रभाव से जिले के अधिकारियों को किसानों के विरोध में अपनी ओर मिला लेता है। कांग्रेसी भी किसानों से कन्नी काटते हैं और 'कांग्रेसियों का स्वार्थी रुख देखकर जीट्ट का दिल उनकी ओर से हटने लगा।' किसानों के विरुद्ध षड्यन्त्र रचे जाते हैं। और बेगुनाह अन्याय का शिकार होते हैं। पाठक के षड्यन्त्र से डेढ़ सौ रुपये में गुंगे की हत्या कर दी जाती है और जो पाँच व्यक्ति गिरफ्तार किये जाते हैं, उनमें जैकिसुन और जीवनाथ भी हैं। जनवादी नौजवान संघ के जिला कमेटी के प्रेसिडेन्ट श्यामसुन्दर वकील किसानों की सहायता करते हैं। किसानों का एक संयुक्त मोर्चा बनाने पर जोर दिया गया है, जो शोषकों का प्रतिरोध करे। जीवू के नेतृत्व में गाँव वाले मोर्चा बनाते हैं और धन एकत्र करते हैं। अपनी समस्याओं के हल करने की योजना वे स्वयं बनाते हैं।

इस प्रकार साम्यवाद के प्रतिपादन के लिए ही उपन्यास में किसानों के व्यापक संघर्ष की कल्पना की गयी है, जो राजनीतिक उद्देश्य को स्पष्ट करती है। इसके लिए जो कथानक चुना गया है, उसमें शिल्पगत प्रयोगात्मकता का वैशिष्ट्य और राजनीतिक उद्देश्य दोनों हैं। उपन्यास का अन्त भी साम्यवादी नारा 'स्वाधीनता! शान्ति! प्रगति!' के साथ होता है।

बटवृक्ष की कहानी वास्तव में देहाती जीवन के क्रमिक ऐतिहासिक विकास की कहानी है। बाबा बटेसरनाथ जैकिसुन को विघ्न बाधाओं से जूझते हुए अपना मार्ग प्रशस्त करने का मन्त्र दे उसमें सामूहिक चेतना का सन्दन भरता है। वह अपनी कहानी के मिस भूमिजीवी तथा श्रमजीवी जनता के जीवन की शोषण कथा सुना उसे अन्याय का विरोध करने और नवीन व्यवस्था स्थापित करने की प्रेरणा देता है। वस्तुतः बटेसर बाबा लेखक की मान्यताओं का ही प्रतिनिधित्व करते हैं और ये मान्यताएँ मार्क्सवादी चिन्तन का परिणाम हैं। डॉ० सुषमा धवन के शब्दों में 'नागार्जुन का स्पष्ट शब्दावली में समाजवादी विचारों का प्रचार प्रसार करना इस रचना को कला की दृष्टि से हीन चाहे बना देता है, परन्तु उनका यह प्रयास मार्क्सवादी चिन्तन के गहरे प्रभाव का परिणाम है।'[1]

---

१. डॉ० सुषमा धवन : हिन्दी उपन्यास, पृष्ठ ३०६

'बाबा बटेसरनाथ' राजनीतिक उपन्यास है और उसकी समीक्षा उसके विशिष्ट तत्वों के आधार पर ही की जाना चाहिए। हिन्दी के समीक्षक पूर्वग्रह से जो समीक्षाएँ करते हैं, वे इसीलिए एकांगी होती हैं। जो उपन्यास में राजनीतिक सस्पर्श का चटकीला स्वरूप स्वीकार नहीं करते, वे ही यह कह सकते हैं कि लेखक की नग्न रूप में राजनीतिक पक्षधरता उसकी कला को कुंठित कर देती है। संकेत और व्यंजना का महत्व उपन्यास में क्षीण पड़ जाता है।[1] राजनीतिक उपन्यास में देखना यह चाहिए कि लेखक जिस राजनीतिक उपन्यास में देखना यह चाहिए कि लेखक जिस राजनीतिक उद्देश्य को प्रकट करना चाहता है वह स्पष्ट हुआ है अथवा नहीं ? और उसे अभिव्यक्ति देने में कथानक और चरित्र उद्देश्य के स्पष्टीकरण में कहाँ तक साथ देते हैं ? अपने समग्र रूप में उपन्यास ने यथार्थवादिता का कहाँ तक निर्वाह किया है ? इस कसौटी पर नागार्जुन का आलोच्य उपन्यास खरा उतरता है।

यथार्थवाद की आधारशिला पर प्रस्तुत कृति का मूल्यांकन करते हुए त्रिभुवन सिंह ने लिखा है - 'जहाँ तक कथा की स्वाभाविकता का प्रश्न है, बात समझ में नहीं आती कि नागार्जुन जी ऐसे अपने को यथार्थवादी लेखक कहने वाले किस प्रकार भूत प्रेत के चक्कर में पड़ गये। ऐसा लगता है कि उन्होंने भारतीयों की स्वाभाविक दुर्बलता 'भूतों के विश्वास' से नाजायज फायदा उठाना चाहा है'।[2]

भारतीय अशिक्षित ग्रामीण यदि भूत प्रेत पर अडिग विश्वास करते हैं और उद्देश्य की प्राप्ति के लिए कोई यथार्थवादी लेखक उसका चित्रण कर देता है तो वह यथार्थ का ही अंकन करता है। यह एक सीधी-सी बात है। प्राचीन वटवृक्ष पर ब्रजदेव के निवास का विश्वास ही भारतीय ग्रामीणों का यथार्थ है और उस यथार्थ की रक्षा स्वप्न की कल्पना से लेखक ने की है। त्रिभुवन सिंह भारतीयों के इस विश्वास को तो मान्यता देते हैं कि वटवृक्ष शांति तथा शरण का प्रतीक है, पर उनके दूसरे विश्वासों को भुला देते हैं। उनके ही शब्दों में—'कला की दृष्टि से, वटवृक्ष जो असंख्य भारतीयों के विश्वास और शान्ति तथा शरण का प्रतीक है, इसका चुनाव उपन्यासकार की मार्मिक एवं अत्यन्त सूक्ष्मता की परख का द्योतक है।'[3]

राजनीतिक तथ्य

आलोच्य उपन्यास की कथावस्तु कल्पना प्रसूत होने पर भी गेउस अनेक साम-

---

१ आलोचना, अंक १४, पृष्ठ ८२

२. त्रिभुवन सिंह : हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद, पृष्ठ २११

३. त्रिभुवन सिंह - उपन्यास और यथार्थवाद, पृष्ठ २११

यिक राजनीतिक तत्व समाविष्ट है। इसके अन्तर्गत विदेशी राज्य की स्वार्थपरता, जमींदारों की स्वेच्छाचारिता एवं निरंकुशता विभिन्न राजनीतिक आन्दोलनों, कांग्रेसी शासन की स्थिति और जमींदारी-उन्मूलन की घटनाएँ आती है। लेखक ने जमींदारी उन्मूलन के पश्चात् की समस्त परिस्थितियाँ स्वयं देखी हैं और उन्हें चित्रित किया है। जमींदारी-उन्मूलन होने के समय जमींदारों ने परती चरागाह तथा सार्वजनिक उपयोग के वृक्षों और पोखरों को बेचकर किस प्रकार रुपया बनाया यह किसी से छिपा नहीं है। लेखक ने इनका सूक्ष्म चित्रण किया है। इन्हें प्रसंगों को लेकर उसने वर्तमान शासन व्यवस्था के प्रति अनास्था तथा समाजवादी व्यवस्था के प्रति आस्था का भाव व्यक्त किया है।

वरुण के बेटे

लघुकाय उपन्यास 'वरुण के बेटे' में नागार्जुन ने मिथिला के मछुओं और उनके जीवन संघर्ष का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया है। उनके सामाजिक जीवन का अंकन करते समय राजनीतिक हलचलों का सन्निवेश कर साम्यवादी विचारों को अभिव्यक्ति दी गयी है।

कथानक के अनुसार तीस पैंतीस परिवार वाले मछुओं की बस्ती है। मलाही-गोढ़ियारी और जीवनाधार है गरोखर। गरोखर और उसमें पश्चिम कोस भर का इलाका देपुरा के मैथिल जमींदारों के अधिकार में था। कभी वे खानदानी शासक थे पर अब जमींदारी-उन्मूलन कानून के मुताबिक रैयतों से जमीन का लगान या मालगुजारी वसूल तहसील करने के हकों से मौकूफ हो चुके थे। भू स्वामियों को कानून ने खुली छूट दे दी जिसके फलस्वरूप वे पोखरों और चरागाहों को चुपके-चुपके बेचने लगे। मलाही गोढ़ियारी के मछुआ इन कृत्यों के विरोध का संकल्प करते हैं। गोनउ कहता है 'यह पानी सदा से हमारा है, किसी भी हालत में हम इसे छोड़ नहीं सकते। पानी और माटी न कभी बिके हैं, न कभी बिकेंगे। गरोखर का पानी मामूली पानी नहीं, वह तो हमारे शरीर का लहू है। जिन्दगी का निचोड़ है।'[1]

गरोखर के नये खरीददार हैं सगधरा के जमींदार, जो गढ़पोखर को नये सिरे से बन्दोबस्ती दे ज्यादा रकम बटोरना चाहते थे। मछुए इसका विरोध करते हैं और दफा १४४ के सम्मन मिलने से उनमें चेतना आती है। मछुओं के सहयोगी हैं मोहन माँझी—एक कर्मठ साम्यवादी नेता। मछुओं के दुःख-सुख के साथी। वे मछुओं से किसान सभा के सदस्य बनने की सलाह देते हैं। वे कहते हैं 'गढ़पोखर आपके हाथों से न निकले,

---

१ नागार्जुन वरुण के बेटे

इसके लिए हमें एक जुट होकर कोशिश करनी होगी। इस सम्बन्ध में निषाद महासभा नहीं, किसान सभा जैसी जुझारू जमात ही आपकी सहायता कर सकती है।'[1] निषाद महासभा कांग्रेस-प्रभावित है और गढ़पोखरवाले जमींदार उसके नेता फुलेना प्रसाद मौनी को मिला लेते हैं। अधिकारियों के सहयोग से वे गरोखर पर अधिकार पाने का यत्न करते हैं। अञ्चलाधिकारी प्रगतिशील विचार के थे और मोहन से मिल कर वे गढ़पोखर की बन्दोबस्ती का पट्टा देखकर मछुओं का समर्थन करते हैं।

इसी बीच बाढ़ आती और बाढ़-पीड़ितों के लिए एक सेवा-शिविर प्रारम्भ किया गया। मोहन के साथ मधुरी भी कैम्प में जुट गयी। मधुरी जो कभी मगर की प्रेमिका थी, ससुराल के अत्याचारों से तंग हो गाँव लौट आयी थी। बाढ़-पीड़ित वर्षा से बचने के लिए रेलवे स्टेशन पर खड़े खाली डिब्बों में शरण लेते हैं। डिब्बों को खाली करने के प्रश्न को लेकर संघर्ष की स्थिति निर्मित होती है। बाढ़ पीड़ित हटने को तैयार नहीं होते और मोहन के प्रयत्नों से कलेक्टर के आदेश से उनकी जीत होती है।

इधर गढ़पोखर के मामले में देवुरा के जमींदारों ने फूट पैदा कर दी और गढ़ा माहुली के चक्कर में मछुओं में दो दल हो गये। बाढ़ पीड़ितों का काम समाप्त हो गया था और इस नयी स्थिति का सामना करने के लिए मछुआ संघ बना-संघ माने गाँव के सत्तर मेम्बरों का संगठन। मोहन गढ़पोखर के अपने सनातन अधिकारों की मान्यता के प्रश्न को देश की आम मेहनतकश जनता की सामान्य जद्दोजहद से संयुक्त कर देता है। इधर अंचला-धिकारी का स्थानान्तरण करवा दिया जाता है क्योंकि वह ईमानदार और सत्य का समर्थक है। मलपगा के जमींदारों ने पुनः दफा १४४ लागू करवा दी और पोखर की मछलियाँ निकालने पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। किन्तु मछुए भला कहाँ मानते! मछुओं पर लूट और गैरकानूनी कार्रवाइयों का अभियोग लगाया गया। जाँच के लिए एक डिप्टी मजिस्ट्रेट आते हैं, पर उस गाँव के लोग बाहर थे। दो-चार व्यक्ति और मधुरी मिलते हैं, जो कोई आश्वासन नहीं देते। मधुरी की प्रेरणा से गाँव के लोग उसके साथ ही पुलिसवैन में स्वयं बैठ जाते हैं—अपने को स्वेच्छा से गिरफ्तार करा देते हैं। नारे लगाते हैं...'मछुआ संघ जिन्दाबाद...हक की लड़ाई जीतेंगे।'

राजनीतिक पात्र

उपन्यास का प्रमुख राजनीतिक पात्र है मोहन माँझी। साम्यवादी ग्रामीण कार्यकर्ता। राष्ट्रीय स्वाधीनता-संग्राम का एक अदना सा सिपाही, जो स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व तीन बार कांग्रेस के अनुयायी के रूप में कारावास भुगत चुका है। स्वाधीनता के बाद

१. नागार्जुन : बरुण के बेटे, पृष्ठ ३३

काग्रेस के कार्यों में अरुचि होने पर अब वह है हँसिया-हथौड़ा मार्का लाल झण्डे वाली किसान-सभा का थाना सभापति और 'गाँव में नेता जी' के रूप में लोकप्रिय। नेता जी की वेश भूषा और रहन-सहन ठेठ देहाती है 'आधी बाँह की कोकटी कमीज। मामूली सूता की मटमैली धोती। खाकी थैला बाँह से लटक रहा था। पैरों के नाखून बड़े-बड़े और बकाटू। चेहरा गोल, पेशानी चौड़ी। लाल-लाल छोटी आँखों में काली पुतलियाँ खूब नाच रही थीं।'[1] मछुआ के साथ उनके संघर्ष में सहयोगी बन कर उसका चरित्र विकसित हुआ है।

राजनीतिक महिला चरित्र के रूप में मधुरी का चरित्राकन पूर्णतया नहीं उभर सका है। उपन्यास के पूर्वार्द्ध में मगन और मधुरी का निर्मल प्रणय प्रसंग के महत्त्वपूर्ण होने से मधुरी का प्रेमिल स्वरूप ही सामने आया है। परिस्थितिवश मगन और मधुरी का विवाह अन्यत्र हो जाता है और मधुरी की सात्विक प्रेम भावना का परिचय हम उसके इस वचन में मिलता है देखो मगन, धूल मिट्टी के बचकाने खेल हम काफी खेल चुके। सयान समझ कर माँ-बाप और सास-ससुर ने तुम पर जो जिम्मेदारी सौंपी है, उसमें जी चुराना कायरता होगी। तुम्हें अपनी घरवाली के प्रति वफादार होना है, मुझे अपने घरवाले के प्रति। गाँव-गवई के हम सीधे-सादे लोग ठहरे। हमारा प्रेम-नगर समाज से अलग या समाज के बाहर नहीं आबाद हुआ। मैं तुम्हारा घर बर्बाद नहीं करना चाहती मगन, मैं नहीं चाहती कि एक औरत की सिंदूर-माँग पर अपने अघ स्वार्थ की कालिख पोतती हूँ।'[2]

मधुरी ससुराल से प्रताड़ित हो उससे नाता तोड़ सेवा भाव की प्रबल भावना से सामाजिक राजनीतिक जीवन में प्रवेश करती है और मछुआ संघ से सघर्ष की प्रमुख पात्र बन जाती है। डिप्टी मजिस्ट्रेट कहते है—मोहन माँझी ने आखिर तुम्हें भी कम्युनिज्म का पाठ पढ़ा ही दिया। अच्छा तो है राजनीति ही तो एक चीज थी, जिसे गाँवों की हमारी बहू बेटियों ने अपने पास फटकने नहीं दिया था लेकिन तुमको देखता हूँ प्लीज एक्सक्यूज मी और साहब ने गोल्ड फ्लेक सिगरेट निकाला।'[3]

मधुरी का चारित्रिक विकास संकेतात्मक ढंग से अभिव्यक्त किन्तु अपने में सम्पूर्ण हुआ है। राजनीतिक उपन्यासों में मधुरी जैसे नारी पात्र अत्यन्त विरल हैं।

---

१ नागार्जुन वरुण के बेटे, पृष्ठ ३०
२ नागार्जुन : वरुण के बेटे, पृष्ठ ४६
३ नागार्जुन . वरुण के बेटे, पृष्ठ ११५

राजनीतिक तथ्य

'वरुण के बेटे' में निम्नलिखित राजनीतिक तथ्य मिलते हैं–

(१) जमींदारी-उन्मूलन और उसकी प्रतिक्रियाएँ।

(२) कोसी प्रोजेक्ट और योजनान्तर्गत व्याप्त भ्रष्टाचार।[1]

(३) कांग्रेसी नेताओं और दिखावटी श्रमदानियों पर व्यंग।

कोसी प्रोजेक्ट को लेकर श्रमदान का ढोंग रचने वालों का अच्छा चित्र खींचा गया है। एक स्थल पर कहा गया है "खाते पीते परिवारों के शौकिया श्रमदानी सज्जनों की बात ही और थी। उनकी सुविधा के सभी साधन कोसी किनारे जुट गये थे। कैमरावालों की भरमार थी हीं, पास-पड़ोस के परिचित कांग्रेसी नेताओं की सिफारिश से वे पटना या दिल्ली से आए हुए किसी ऊँचे पदाधिकारी के साथ भीड़ में खड़े हो जाते और फोटो खिंच जाती। इन लोगों का श्रमदान क्या था, बैठे वाले का अच्छा-खासा मनोरंजन था।"[2]

प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने अत्यन्त ही मौलिक उद्‌भावना की है। आज तक किसानों, मजदूरों, मिल मालिकों आदि की अनेक समस्याओं का चित्रण तो अनेक उपन्यासकारों ने किया है, किन्तु मछुओं की जिन्दगी, जिसे एक प्रकार से हम स्वाधीन जिन्दगी कह सकते हैं, अपने जलाशय के अधिकार के संरक्षण हेतु प्रथम बार कटिबद्ध दिखाया गया है। लेखक की वर्ग संघर्षीय भूमिका किसान-मजदूरों से उठकर आदिवासी जिन्दगी तक बिखर जाती है।

कृति का शीर्षक 'वरुण के बेटे' अत्यन्त ही मौलिक, आकर्षक एवं सार्थक है। जहाँ जलजीवी जातियाँ अपने सामान्य जीवन के साथ हमारे सम्मुख आ खड़ी होती हैं, वहीं जलाधिकार के अर्थ में वरुण के बेटे जल के स्वामी वरुण देवता का आभिजात्य भी लेकर अपनी सत्ता की प्रत्यक्ष घोषणा करते हैं। सचमुच जीविका का अधिकार सर्वहारा वर्ग की अपनी समस्या है। लेखक ने अपनी वर्ग संघर्षीय भावना को असामाजिक सामाजिक तत्वों तक विस्तृत कर दी है।

उग्रतारा

उग्रतारा नागार्जुन का नवीनतम उपन्यास है, जिसमें वैधव्य जीवन और नारी की विवशता का चित्रण है। यह एक विधवा नारी की संघर्षभरी कहानी है, जो विषम परिस्थितियों से जूझती हुई अन्त में अपने उद्देश्य में सिद्धि प्राप्त कर लेती है।

---

१. नागार्जुन वरुण के बेटे, पृष्ठ १५

२ नागार्जुन - वरुण के बेटे, पृष्ठ ३८-३६

उगनी गाँव की एक ऐसी ही बालिका है, जो विवाह के बाद ही विधवा हो जाती है। नर्मदेश्वर की पत्नी, जिसे वह भाभी कहती है, उसमें नवीन चेतना का संचार करती है और वह कामेश्वर को तैयार करती है कि वह उससे सम्बन्ध स्थापित कर एक नवयौवना का उद्धार करे। इसी बीच गाँव के शरारती तत्वों द्वारा दोनों के विरुद्ध कार्यवाही कर दी जाती है और दोनों जेल पहुँच जाते हैं। उगनी जेल से निकलती है और एक अजीब स्थिति में जेल के सिपाही भभीखन सिंह की घरवाली बन जाती है। उगनी इस बेदमी की जिन्दगी को एक अनावश्यक बोझ की तरह ढोती है, पर उसका अन्तःकरण उसे स्वीकार नहीं करता। वह भभीखन सिंह को पितृवत् ही मानती है।

भभीखनसिंह ने भंग पिलाकर उसके साथ बलात्कार किया और गर्भवती हो गयी। फिर भी समय पाकर वह अपने पूर्व प्रेमी कामेश्वर के साथ भाग आयी। यहाँ आकर उगनी ने जो पत्र भभीखनसिंह को दिया, वह उसके चरित्र को निखार देता है।

इस लघुकाय उपन्यास में पात्रों की संख्या कम होने पर भी पात्रों का सर्जन अपने आपमें परिपूर्ण है।

समाजवादी चेतना से आपूरित यह उपन्यास समाज की समस्याओं और जटिलताओं पर प्रकाश डालता है। उगनी इस चेतना का प्रतीक है और 'रतिनाथ की चाची' गौरी का स्फूर्तिदायक नूतन रूप है। विधवा गौरी ने चमाइन से पेट हल्का करवा लिया था, किन्तु उगनी अपने पेट जाये के साथ उस व्यक्ति का साथ छोड़ देती है, जिसे उसने मन से कभी पति स्वीकार नहीं किया।

निष्कर्ष

नागार्जुन के राजनीतिक उपन्यासों की अनेक विशिष्टताएँ हैं। वे राजनीतिक आंचलिक उपन्यास की दृष्टि से अप्रतिम हैं। राजनीति से प्रभावित लोक-जीवन की झाँकी को वहीं की बोली-बानी के माध्यम से कलात्मक सज्जा प्रदान करने में उन्हें पर्याप्त सफलता मिली है। उनके उपन्यासों में मिथिला के ग्रामों, वहाँ के निवासियों की मन-स्थिति, प्राचीन रूढ़ियों, जमींदार किसान-संघर्ष और नयी राजनीतिक चेतना के साथ प्राकृतिक चित्रण का अंकन कुशलता से हुआ है। उन्होंने जहाँ सामंती जीवन-विधि एवं पूँजीवादी हथकंडों पर प्रहार किया है, वहाँ कांग्रेस, समाजवादी तथा अन्य राजनीतिक दलों के नेताओं की वैयक्तिक दुर्बलताओं का चित्रण भी किया है। ऐसा करते समय समाज के प्रति, व्यक्ति के संकुचित स्वार्थों के प्रति उनकी दृष्टि व्यंग्यात्मक रही है। यही कारण है कि उनके उपन्यासों में सामाजिक राजनीतिक स्थिति के जीवन्त चित्र मिलते हैं।

आकार की दृष्टि से नागार्जुन के उपन्यास जैनेन्द्र के उपन्यासों के समान लघु-

काय हैं। किन्तु जैनेन्द्र की अपेक्षा इनके उपन्यासों में राजनीतिक तत्व अधिक मुखरित हुए हैं। उनमें वर्तमान की वास्तविकता को वाणीबद्ध करने का आग्रह है। वस्तु-विधान की दृष्टि से उनकी अभिरुचि आभिजात्य से सामान्य के प्रति है, जो उनके उपन्यासों को वादसापेक्ष समाजवादी श्रेणी में विन्यस्त करती है। जैनेन्द्र में आभिजात्य का विरोध नहीं है पर नागार्जुन इसी उपन्यास के आभिजात्य, उपासना की निरोधक प्रवृत्ति से प्रभावित हैं। प्रेमचन्द के समान नागार्जुन ने संघर्षशील ग्रामीण जनता को अभिव्यक्ति दी है। किन्तु विशिष्ट राजनीतिक मतवाद के प्रभाव में वे प्रेमचन्द जैसी सहानुभूति नहीं प्रदान कर सके है। यह सत्य ही कहा गया है कि 'नागार्जुन में प्रेमचन्द से बढ़कर अध्ययन की गहराई है, लेकिन उतनी सहानुभूति नहीं है, जितनी प्रेमचन्द में है।'[1] प्रेमचन्द की अपेक्षा नागार्जुन के उपन्यासों का गठन दृढ़ है और विषय विविधता की दृष्टि से विषयानुसार विस्तार कर संतुलन का प्रयत्न किया गया है। मार्मिक प्रसंगों को नाटक के दृश्य के समान प्रस्तुत करने के साथ-साथ प्रसंगों को परस्पर सम्बद्ध करने का सूत्र बनाकर कथानक को शृङ्खलाबद्ध करने से कथा की एकसूत्रता नहीं टूटती और वांछित प्रभाव की सृष्टि होती है। नागार्जुन ने निम्नवर्गीय जनता को आर्थिक-सामाजिक संघर्षों में जूझते देखा है और सार्वजनिक जीवन की विकृतियों का यथार्थपरक अंकन साम्यवादी दर्शन की आधारशिला पर किया है। मार्क्सवादी दृष्टि होने पर भी सौम्यतासहित समस्याओं के हल की ओर भी उन्होंने ध्यान दिया है। 'नयी पौध' में ढलती पीढ़ी समाज के अनुमोदन की आड़ में असंगत विवाह का षड्यन्त्र रचती है, पर नयी पीढ़ी के प्रगतिशील तरुण उसका—याने सामाजिक परम्परा का विरोध कर बिसेसरी का विवाह योग्य वर से कर देते हैं।

इतना होने पर भी सामाजिक दुराचारों के विधान करते समय वे पूर्णतया निरपेक्ष नहीं रह सके है और किसी भी राजनीतिक उपन्यासकार के लिए यह आवश्यक भी नहीं है। उन्होंने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए आवश्यकतानुसार प्रत्यक्ष आलोचना की है। 'रतिनाथ की चाची' और 'बलचनमा' में ऐसे प्रसंग यद्यपि कम हैं, किन्तु अनेक स्थलों पर लेखक का आलोचनात्मक व्यक्तित्व उभर ही गया है। यथार्थवादिता के समुचित निर्वाह के लिए ऐसा करना आवश्यक भी था। राजनीतिक यथार्थ के चित्रण के कारण उनके उपन्यासों में बौद्धिकता का अंश अपेक्षाकृत अधिक है। 'बलचनमा' में तर्क की प्रबलता का एकमात्र कारण यही है। उनके उपन्यासों में राजनीतिक मन्तव्यों के उद्घोष बड़ी संख्या में प्राप्त हैं और इसीलिए राजनीतिक उपन्यासों की प्रवृत्ति से अपरिचित समीक्षक के अनुसार 'बड़ी समृद्ध सामग्री लेकर भी नागार्जुन अपने मताग्रहों के कारण ऐसे

---

१. डॉ० गणेशन . हिन्दी उपन्यास-साहित्य का अध्ययन, पृष्ठ ८३

चरित्रों तथा स्थितियों की सर्जना नहीं कर पाये, जो पाठक के मन को अभिभूत कर लें। वरन् कहीं कहीं उनके निरूपण आर्थिक, राजनीतिक एवं समाजशास्त्रीय विश्लेषण के धरातल पर उतर आये हैं।'[1] 'उग्रतारा' में नागार्जुन ने उपन्यास लेखन की नयी तकनीक अपनायी है। मनोविश्लेषणवादियों की भांति किसी विशेष प्रसंग या समस्या को लेकर पात्रों के व्यक्तिगत अन्तर्द्वन्द्वों का चित्रण भी अपनी यथार्थवादी शैली में पर्यवसित कर लिया है। इसे हम मनोवैज्ञानिक चित्रण की विशिष्ट यथार्थवादी शैली कह सकते हैं। लेखक ने ऐसे मनोवैज्ञानिक व्यक्तिगत चित्रणों को कोष्ठकबद्ध कर दिया है।

समाजवादी चेतना से युक्त भैरवप्रसाद गुप्त के उपन्यास

नयी पीढ़ी के उपन्यासकारों में नागार्जुन, भैरवप्रसाद गुप्त और अमृतराय के उपन्यासों में अधुना समाज व्यवस्था की पृष्ठभूमि में आर्थिक एवं राजनीतिक संघटन की कथा अभिव्यंजित है। इस 'त्रयी' के उपन्यासों में सामाजिक विसंगतियों की व्यंजना समाजवादी चिन्तन से युक्त है और इसीलिए इनके प्रायः समस्त राजनीतिक उपन्यास वाद-सापेक्ष हैं। तीनों केवल उपन्यासकार ही नहीं, अपितु उनका साम्यवादी दल से भी निकट का सम्पर्क रहा है और तीनों ने ही प्रगतिशील साहित्य को नई दिशा दी है। संख्या की दृष्टि से सर्वाधिक उपन्यास नागार्जुन ने लिखे हैं, किन्तु पृष्ठों की दृष्टि से भैरवप्रसाद गुप्त ने।

मशाल

'मशाल' गुप्त जी का प्रथम राजनीतिक उपन्यास है, जिसका नायक नरेन ग्राम्य जीवन का प्रतीक है। नरेन का विकसनशील चरित्र गाँव की सीमित परिधि में संघर्षशील हो अग्रसर होता है। अल्पायु में ही पिता की मृत्यु हो जाने के कारण वह अपनी माँ के साथ चाचा के यहाँ पोषित होता है। उसके चाचा रूढ़िवादी हैं और वे नरेन को भी रूढ़िगत परम्परा के अनुसार परिचालित करना चाहते हैं। इस पारिवारिक स्थिति से नरेन के जीवन में विद्रोह-भावना प्रस्फुटित होती है और विषम आर्थिक परिस्थिति उसे अर्थोपार्जन के लिए घर छोड़ने को बाध्य करती है। नरेन माँ की ममता और मुँह-बोली सकीना भाभी के निश्छल स्नेह के बंधनों को झटक कर सेना में भरती होता है। यह द्वितीय महायुद्ध का समय था और बदलती हुई राजनीतिक परिस्थितियों के चक्र में पड़कर वह आज़ाद हिन्द सेना का सिपाही बनकर कालान्तर में गाँव वापस होता है।

---

१ महेन्द्र चतुर्वेदी : हिन्दी उपन्यास : एक सर्वेक्षण, पृष्ठ २०८

लौटने पर वह गाँव और परिवार को उजड़ा हुआ पाता है। माँ की मृत्यु हो जाती है और भाभी नृशंस अत्याचारियों के हाथों में पड़ कर जाने कहाँ पहुँच जाती है। इस अप्रत्याशित आघात से कुण्ठित नरेन परिस्थितियोंवश मजदूरों के बीच आ पहुँचता है और उसके निराश जीवन में समाजवादी चेतना का उद्भव होता है। शोषित साथियों के बीच वह अपने अभावों को भूलकर संघर्ष में जुट जाता है। उनके बीच कार्य करके वह श्रम की गरिमा और शक्ति की अनुभूति से जहाँ एक ओर साहस का संचय करता है, वहीं दूसरी ओर श्रमिक वर्ग की सच्ची मानवता से अभिभूत भी होता है। इस प्रसंग में गुप्त जी ने मजदूरों के जीवन में आर्थिक विपन्नता, साहस संगठन-शक्ति, पारस्परिक सहयोग और व्यापक सहानुभूति के जो चित्र संजोये हैं, वे प्रभावोत्पादक एवं सजीव हैं। उपन्यास के सभी प्रमुख राजनीतिक पात्र साम्यवादी हैं। शकूर की दृष्टि में रूस की राह ही जिन्दगी की राह है। मजूर इस तथ्य से अवगत होता है, 'हमने यह दुनियाँ बनायी है। दुनियाँ की हर चीज हमारी ताकत से बनी है। दुनियाँ की हर चीज हमारी है। लेकिन दुनियाँ के चन्द सरमायादारों ने इन चीजों पर अपना नाजायज हक जमा रखा है, हमें बेवकूफ बना कर। वे हमसे गुलामों की तरह काम करते हैं और हमारी मिहनत की कमाई पर गुलछर्रे उड़ाते हैं।'[1] लेखक का यह कथन मार्क्सवादी मूल्य के सिद्धान्त से प्रतिध्वनित है। साम्यवाद से प्रभावित ऐसे भाव एवं विचार अनेक स्थलों पर मिलते हैं। ये नारे नरेन की चेतना को नूतन पथ दिखलाते हैं। इधर संयोगवश नरेन का मिलन सकीना से हो जाता है। लेखक ने सकीना को केन्द्र बनाकर जो कहानी प्रस्तुत की है, वह सामाजिक विषमता के प्रति विद्रोह और तीव्र घृणा की भावना संचारित करती है। साहब का प्रसंग भी सामाजिक विषमता के पक्ष का उद्घाटन करता है।

इस तरह कथानक की मूल भावना साम्यवादी चेतना की अभिव्यक्ति देनी है और इसके लिए श्रमिक वर्ग के संघर्ष का विस्तृत चित्रण किया गया है, जो कानपुर के ऐतिहासिक मजदूर आन्दोलन की प्रतिच्छाया है। 'मशाल' की भूमिका में कहा भी गया है—"मजदूरों के इस संयुक्त मोर्चे की आवाज कानपुर के मजदूर-आन्दोलन के इतिहास में सदा अमर रहेगी। आठ मजदूर शहीद और सत्तर घायल मजदूरों के लाल खून से कानपुर के मजदूरों ने जो जगी एकता और क्रान्तिकारी संयुक्त मोर्चे की मशाल जलायी है, वह कभी न बुझेगी। उसकी लाल रोशनी धीरे-धीरे सारे हिन्दुस्तान में फैल जायगी और जनता के सभी शोषित वर्गों को भी इन्कलाबी रास्ता दिखायेगी।' यहाँ रूसी साम्यवादी दल की प्रगतिशील रूपरेखा का स्पष्ट प्रभाव है। उपन्यास में यहीं इन्कलाबी रास्ता दिखाने का प्रयत्न किया गया है और परिणामतः मजदूर सभाओं व हड़तालों

---

१. भैरवप्रसाद गुप्त : मशाल, पृष्ठ १०८

के चित्र अंकित किये गये है, जो लेखक की बौद्धिक सहानुभूति के ही परिचायक है। विषय और अभिव्यक्ति की दृष्टि से यह समाजवादी यथार्थ का उपन्यास है और श्रमिक वर्ग की बढती हुई शक्ति को अभिव्यक्ति देता है। उद्देश्य की दृष्टि से घटनाओ और पात्रो का चयन श्रमिक मजदूर वर्ग से किया गया है, तथापि द्वितीय महायुद्धकालीन भारतीय जीवन को लेकर मध्यवर्गीय समाज की सामाजिक आर्थिक जिन्दगी पर प्रकाश डाला गया है।

उपन्यास मे राजनीतिक उद्देश्य ही प्रमुख है और उसी के अनुरूप शैली, शिल्प और चरित्रांकन किया गया है। राजनीतिक नीरसता को भाभी के प्रसग की उद्भावना से सरस बनाने की चेष्टा भी की गयी है और इससे उपन्यास मे स्निग्धता भी आयी है।

गगा मैया

अपने द्वितीय उपन्यास *'गगा मैया'* मे भैरवप्रसाद ने उत्तर भारत के कृषक-जीवन और जीवन-सघर्षों का प्रगतिवादी दृष्टिकोण से अकन किया है। इसमे ब्यौरेवार सश्लिष्ट चित्रो से बलिया जिले का एक गाँव सजीव हो उठा है।

सघर्षशील जीवन को चित्रित करने के लिए इस लघुकाय उपन्यास का आरम्भ नवयुवक किसानो के शारीरिक बल-प्रदर्शन से होता है। उनका कुश्ती लडना, प्रति-द्वन्द्वियो से स्पर्धा आदि आरम्भ मे जहाँ शारीरिक बल का परिचय देते हैं, वहाँ बाद मे मानसिक शक्ति को पुष्ट करते हुए उन्हे सघर्ष की प्रेरणा देते है। गोपी और मटरू के दो परिवारो के जीवन-व्यापारो के चित्रण से कथानक का विस्तार होता है। मटरू का जीवन उपन्यास का केन्द्र है। नायक के रूप मे मटरू परिस्थितियो से पराजित न हो निरन्तर सघर्ष करता रहता है। उनका आत्मविश्वास, साहस, दृढ निश्चय, शोषण के प्रति विद्रोह—समाजवादी यथार्थ के धरातल पर चित्रित हुआ है और उपन्यासकार ने मटरू के माध्यम से अपने विचारो को अभिव्यक्ति दी है।

कथावस्तु के अनुसार गोपी का संयुक्त परिवार कृषि से जीवन यापन करता है। कठोर परिश्रम के बाद भी दु.ख से छुटकारा नहीं होता। परिस्थितिवश गोपी के बडे भाई मानिक की मृत्यु, पत्नी की मृत्यु, उसकी जेलयात्रा और परिणाम स्वरूप विधवा भाभी और असहाय माता-पिता के कष्टमय जीवन की अभिशप्त रूपरेखा है।

जेल मे गोपी का परिचय मटरू से होता है और कालान्तर मे घनिष्ठ प्रेम मे परिवर्तित हो जाता है। मटरू सच्चा और श्रमी किसान है। वह अपने कृत्यो से धरती और गगा मैया का सच्चा सपूत सिद्ध होता है। उसका सम्पूर्ण व्यक्तित्व पददलित तथा आपद्ग्रस्त लोगो के प्रति सहानुभूति से स्पन्दित है। उसकी विरोधिनी प्रवृति को कुचलने के लिए जमीदार पुलिस अधिकारियो के सहयोग से उसे शोषण का शिकार बनाना

साहस है। जमींदार की नजर उसकी उस भूमि पर है, जिसे उसने कठोर परिश्रम से उर्वरा बनाया है। उसका सम्पूर्ण जीवन गंगा की धरती पर आश्रित है। वह मानता है कि गंगा मैया के उत्पादन पर सबका समान अधिकार है, उसकी यह किसान की विजय है। श्रम पर उसकी आस्था है और अन्त में एकान्त जीवन व्यतीत कर वह कृषि करता है और जमींदार के षड्यन्त्र व पुलिस के अत्याचार के सम्मुख भी अस्तित्व को बनाये रखता है। कहा गया है कि मटरू गोपी का विकसित रूप है, जो सामूहिक किसानों की जीवन का आधार बनाकर जमींदारों के अत्याचार के विरुद्ध सम्पूर्ण शक्ति से लड़ता है और विधवा नारी का पुनर्विवाह सम्पन्न कर सामाजिक अन्धविश्वास-रूढ़ियों के प्रति अपने विद्रोह भाव का परिचय देता है।"[1]

मटरू धरती का लाल है और गंगा मैया का प्रेमी एवं दास, जो भी नहीं छोड़ता, जैसे शिशु माँ को। वह मानता है कि 'गंगा मैया की छोड़ी जमीन पर जमींदार का क्या हक पहुँचता है कि वह उस पर लगान और लगान ले? जिसकी जोतना-बोना था, वह कुछ न करे और उसी की तरह जंगल साफ करके जोते-बोये।'[2] उस की स्पष्ट मान्यता है कि 'अगर हम लोग एकमत रहें और जमींदारों का मुँह न ताक कर खुद ही इस धरती पर अपना अधिकार जमा लें तो ये जमींदार हमारा कुछ नहीं बिगाड़ सकते। गंगा मैया पर कोई उनका बाबाई हक नहीं है।'[3] इस पर भी यदि जमींदार अपनी हरकतों से बाज नहीं आयें और शोषण का चक्र समाप्त नहीं करते तो उसका मानना है, 'जमींदारों ने अगर इधर आँख उठायी तो मैं उनकी आँखें फोड़ दूँगा।'[4] मटरू का दृढ़ संकल्प और उसके अनुरूप गंगा के विकराल किन्तु मनोहारी रूप का चित्रण उपन्यासकार की सूझ-बूझ का परिचायक है। जीवन-संघर्ष में जूझता मटरू इस निष्कर्ष पर पहुँचता है—'अपना एक मोर्चा बनाकर इस अन्याय का मुकाबिला करना ही पड़ेगा।'[5]

विधवा भाभी की करुण-कथा से मटरू व गोपी के भावी जीवन में सरसता का उद्रेक किया गया है। विधवा नारी का जीवन सजग एवं सूक्ष्म रेखाओं द्वारा अंकित है। भाभी का चरित्र चित्रण राजनीतिक नीरसता को दूर करता है। उसमें दुःख को सहन करने की अपार शक्ति है, वस्तुतः वह अपनी वेदना के साथ ही एकाकार

१. डा० सुषमा धवन : हिन्दी उपन्यास, पृष्ठ ३११
२. भैरवप्रसाद गुप्त : गंगा मैया, पृष्ठ २८
३. भैरवप्रसाद गुप्त : गंगा मैया, पृष्ठ २९
४. भैरवप्रसाद गुप्त : गंगा मैया, पृष्ठ ३३
५. भैरवप्रसाद गुप्त : गंगा मैया, पृष्ठ ४३

हो गयी है। किन्तु गोपी सोचता है— 'क्या यह ऐसे ही अपना जीवन बिता देगी ? क्या यह सचमुच उसे ही जीवन बिता देने देगा ? दुनिया के हर भाग में वसन्त आता है, फिर चला जाता है। क्या भाभी के जीवन में एक बार वसन्त आकर सदा बना रहेगा ? क्या फिर उसमें कभी बसन्त न आयेगा ? क्या फिर एक बार उसमें कभी बसन्त लाया ही नहीं जा सकता ?'[1] गोपी की रागात्मक भावना को बसन्त ऋतु के रूपों से चित्रित किया गया है। मटरू गोपी और भाभी के विवाह का उचित मान कहता है—'क्या सच्चा ? मर्द हो कि मेहरा ? सारी दुनिया के खिलाफ सुरुआत मटरू आगे मूँछ ऐंठकर खड़ा होगा।' गोपी के माता-पिता रूढ़िवादी हैं और 'रीति रिवाज और संस्कार का पूँछ जाल के पीछे रहते हैं। उनमें भी ममता, कड़क आदि का विचार वैसे ही विचार रहते हैं, जैसा गाँव कच्चा को संस्कारी।'[2] फलतः वे गोपी के प्रस्ताव का विरोध करते हैं और भाभी से तिरस्कृत हो भाभी दुखित हो कुएँ में कूद कर आत्महत्या का प्रयास करती है। समय ऐसा आता है कि वह मटरू की झोंपड़ी में पहुँच जाती है, जो उस महिला [illegible] गोपी के साथ उसका विवाह कर समाज का विरोध करता है। इस तरह उपन्यास [illegible], विधवा और सामाजिकता का संदेश देता है। गोपी का यह आदर्श विवाह मटरू के शब्दों में 'पुरुष समाज और उसकी सालों विधवाओं का झगड़ा है।'[3]

इस लघुकाय उपन्यास के गुम्फित कथानक का मूल स्वर गंगा मैया की जीत है, किसानों की जीत है। इस जागृति का स्वर मुन्ना के शब्दों में ध्वनित है, 'हमारे साथी अपने खून की आखिरी बूँद तक इसकी रक्षा करेंगे। जिस तरह गुजरा जमाना फिर वापस नहीं आता, उसी तरह जमींदारों के उखड़े पैर कहीं फिर जम नहीं पायेंगे। हमारा जोर दिन पर दिन बढ़ता जा रहा है।'[4] इस तरह गंगा मैया किसानों के नवीन उद्बोधन की प्रतीक है, जिसके आधार पर समाजवादी चेतना और उसके माध्यम से पनपने वाली सामन्ती प्रथा की झाँकी प्रस्तुत करना ही उपन्यास का मूल उद्देश्य है, जो उपन्यास को यथार्थवादी बनाता है।

सती मैया का चौरा

भैरवप्रसाद गुप्त ने इस बृहदकाय उपन्यास में कई वस्तु सामाजिक धरातल से

---

१. भैरवप्रसाद गुप्त : गंगा मैया, पृष्ठ ६०
२. भैरवप्रसाद गुप्त : गंगा मैया, पृष्ठ ६९
३. भैरवप्रसाद गुप्त : गंगा मैया, पृष्ठ १४१
४. भैरवप्रसाद गुप्त : गंगा मैया, पृष्ठ १५७

उठकर राजनीति के धरातल पर पर्यवसित होती है और अपनी समग्रता से सामाजिक चेतना को अभिव्यक्ति देती है। वस्तुत उपन्यास चार खण्डों में विभाजित है और सारी कथा उपन्यास के नायक मन्ने के चतुर्दिक घूमती है। मन्ने उत्तर प्रदेश के आजमगढ जिले के पिपरी गाँव के मुस्लिम जमींदार का पुत्र है। जीवन के क्रमिक विकास के साथ उसके जीवन में तरह तरह के व्यक्ति आते हैं और अपनी छाप छोड विलीन हो जाते है। उसके बाल्य जीवन का साथी मुन्नी ही एक ऐसा चरित्र है, जो अन्त तक उसके साथ रहता है, पर उन दोनों के जीवन का अन्त क्या है, इसका उत्तर उपन्यासकार ने नहीं दिया है। शायद इसलिए कि यह समकालीन समाज का चित्रण है और उसका भविष्य स्वयं मे अनिश्चित है।

इस बृहदकाय उपन्यास में अनेक पात्रों और अनेक घटनाओं का चित्रण किया गया है। प्रमुख पुरुष पात्र है मन्ने के अब्बा, जिन्हें मियाँ के नाम से पुकारा जाता रहा है, मन्ने का घनिष्ट मित्र मुन्नी, मन्ने के अब्बा के दोस्त बाबू साहब, पट्टीदार जुबली मियाँ, चौकीदार चन्नन, नौकर बिलरा, जमुनबाब नूर, मीर साहब, मुंशी जी, रहमान जुलाहा, जिल्ले मियाँ, मौलाना, राधे बाबू, कैलाश, जलेसर, रामसागर, समरनाथ, भिखरिया, हीराभगत, अवधेश, त्रिलोकी राम इत्यादि। महिला पात्रों में मन्ने के जीवन में आने वाली चार स्त्रियाँ हैं– चमार की लडकी कौलसिया, जिसका मुकदमा उसके बाप ने लडा और मरने पर उसकी शादी का भार मन्ने पर छोड गये। मन्ने एम० ए० प्रथम वर्ष मे कलकत्ता में बीमार पड उसके यहाँ रहा। कौलसिया की आर्थिक स्थिति कैसी भी रही हो, वह मन्ने को दो बीस बीसी रुपया जोडकर मन्ने को अब्बा के मकबरा बनाने के लिए देती है।

दूसरी महिला है—उसकी पत्नी जो मन्ने के लिए अपने जेवर बेचने को तैयार थी। मोटा-झोटा न खाने की आदत होने पर भी हर स्थिति में गाँव में मन्ने के साथ रहने को तत्पर। मन्ने के कारण 'मशहर की सूरत देखकर डर लगता। अच्छी भली लडकी की क्या हालत हो गयी थी। बाल बिखेरे, चेहरा सूखा, आँखों में वहशत, कपडे बोसीदा, हरदम किसी को नोंच खाने के लिए तैयार, हर वक्त बडबडाहट, लडाई, गाली, बद्दुआ, रोना, भींकना, बाल नोचना, छाती कूटना, दीवार से सर टकराना।'

और मशहर की इस स्थिति का कारण थी मन्ने के जीवन में प्रवेश करने वाली तीसरी स्त्री आयशा—मशहर की छोटी बहिन। आयशा ने मन्ने को दीवाना बना दिया और उसके माँ बाप भी उसके साथ थे कि उसकी शादी मन्ने के साथ हो जाये और वे जिम्मेदारी से छूटे। अन्त यह नहीं हुआ और आयशा एक वृद्ध हाजिज के गले मढ़ दी गयी।

मशहर ने सौगन्ध खायी थी कि यह आग (सौतिया डाह) सारी जिन्दगी बुझने

वाली नहीं है और इसी मे जलकर वह राख होगी और इसी में जला कर वह मन्ने को भी राख बनायेगी। किन्तु इस विद्रोही नारी का विद्रोह शक्ति प्राप्त न कर सका और घटनाक्रम निराशाजन्य ही रहता है।

चौथी स्त्री है गाँव की बसमतिया, निम्न वर्ग की प्रतीक। उसका चरित्र एक मिसाल है। मन्ने के ससर्ग से वह गर्भवती हो जाती है और जब मन्ने उससे पिंड छुडाना चाहता है। वह कहती है 'कबहू हमारी बारी, कबहू तुम्हारी बारी, चलो भाई पारा पारी! है न! कभी आप मेरे पीछे पडे थे जब हम आपको सता रहे हैं सच बताओ, मियाँ, अब हम मे कीडा पड गया है न ?' मन्ने के जोर देनेपर न तो वह गर्भपात कराती है और न समाज के आगे झुकती है। कैलसिया व बसमतिया मे जहाँ समाजवादी चेतना का अश है, वहाँ दूसरी ओर महशर व आयशा सामाजिक बन्धनो से ग्रस्त रूढिवादी नारी है और शायद इसीलिए जीवन मे दु खी है। उपन्यास मे चित्रित इन नारी-पात्रो ने जिन सामाजिक-नैतिक प्रश्नो को उठाया है, लेखक उनका समाधान प्रस्तुत नही कर सका है। वस्तुत सभी स्त्री पात्र सामाजिक दुर्बलताओ से ऊपर उठ सकी और विद्रोह की अपेक्षा समझौता के ही मार्ग को अपनाती है।

उपन्यास के अनेक चरित्र तो 'टाइप' मात्र है, जिन्हे नाम देकर साँचे म ढाल दिया गया है। मानव नामक कोई वस्तु उनको छू नहीं गयी। उपन्यास का नायक मन्ने एक दुर्बल चरित्र है। जीवन मे उसने जो सघर्ष किये, वे आरोपित है। उसके व्यक्तित्व का जो विकास चित्रित भी है, उसके लिए 'फ्लैशबैक' तथा आत्म निरीक्षणात्मक पद्धति का अवलम्ब लिया गया है।

पात्रो के साथ ही घटनाओ के आधिक्य ने कथानक को शिथिल बनाया है, क्यो कि वे मुख्य कथा के साथ सम्बधित नही हो सकी है। उपन्यास को राजनीतिक दृष्टि से पुष्ट करने के लिए उपकथा की जो सृष्टि की गयी है, उससे उपन्यास का आकार ही बढा है, राजनीतिक प्रभाव नहीं। मुन्शी जी द्वारा वर्णित गाँव क प्राचीन इतिहास का प्रसग इसी के अन्तर्गत आता है, यद्यपि उसके द्वारा ऐतिहासिक विकास स्पष्ट करने का प्रयास किया है।

मुन्शी उपन्यास का प्रमुख राजनीतिक पात्र है और करीब तीन चौथाई स्थान घेरने के बाद उपन्यास मुन्शी के इस कथन के साथ राजनीतिक धरातल पर प्रवेश करता है—

"दो बार सत्याग्रह करके जेल गये। तीसरी बार बयालीस म पकड लिये गए और पाँच साल की सजा हो गयी।—अब की जेल मे खूब जम कर पढाई हुई है। तीन पुराने क्रांतिकारी भी हमारी जेल मे थे। और अब मैं कम्युनिस्ट होकर जेल से निकला हूँ।" कम्युनिस्ट हो जाने के कारण वह बयालीस की क्रांति म पाँच साल की

सजा काटने पर भी बयालीस की क्रांति को क्रांति नही मानना—"कांग्रेस का इस समय मन्त्रिमण्डल . कल देश स्वतन्त्र होना है, तो कांग्रेस की हुकूमत होगी, लेकिन कम्युनिस्ट अभी इनको कितनी गालियाँ मिल रही है, इन्हे बयालीस का गद्दार कहा जाता है, 'भारत छोडो' आन्दोलन की पीठ मे छुरा भोकने वाला कहा जाता है। क्या ये मुट्ठी भर कम्युनिस्ट इन 'क्रांतिकारियो' के साथ होते, तो यह क्रांति सफल हो जाती ? झूठी बात है ? न तो यह कोई क्रांति थी, न इसके पीछे कोई क्रांतिकारी सगठन था, न इसे सफल होना था। यह तो सिर्फ एक गुस्से का उबाल था।"[1] वह तर्क करता है—"फिर अगर यह कांग्रेसचालित क्रांतिकारी आन्दोलन था, तो गांधी जी ने इस क्रांतिकारी आन्दोलन की जिम्मेदारी से अपने को बरी करने की क्यो घोषणा की और इसके सारे परिणामो का उत्तरदायित्व सरकार पर ही क्यो मढ दिया ?"[2] और फिर जेल से छूटते ही नेहरू ने इस आन्दोलन की सारी जिम्मेदारी अपने ऊपर ओढ ली? और तो और ये सुभाष बोस भी नेता जी हो गये।'[3] आजाद हिन्द फौज लेकर वे भारत से अंग्रेज को खदेडने के लिए चले थे। क्या अजब बात है कि जिन्होने गलती की, वे देश के सिर-मौर बन हुए है, और जिन्होने सही नीति बरती, उन्हे गद्दार कहा जाता है।'[4] मुन्नी का यह मानसिक परिवर्तन साम्यवादी दल की रीति नीति के अनुरूप ही है और मन्ने भी उसकी दलीलो से प्रभावित हो 'कम्युनिज्म' की कल्पना करने लगते है—'मुन्नी यदा-चित् कम्युनिस्ट पार्टी की सही नीति को समझ कर ही उसमे शामिल हुआ है, वर्ना वह जेल तो एक कांग्रेसी की हैसियत से गया था। जाने कितने राजनीतिक कैदी मुन्नी की तरह कम्युनिस्ट होकर जेल से निकले होगे। . हमारे देश मे कम्युनिज्म आ जाये तो कितना अच्छा हो।'[5]

मुन्नी के बयालीस के आन्दोलन को क्रांति मानने पर भी देश स्वतन्त्र होना है। राष्ट्रीय स्वाधीनता के लिए कांग्रेस के प्रयासो की कोई चर्चा न कर लेखक साम्प्रदायिक दगो तथा देश विभाजन के चित्रो को प्रस्तुत करता है, क्योकि इसी आधार पर वह कांग्रेस और उसके कर्णधारों की आलोचना मुक्तकठ से कर सकता था। मन्ने राष्ट्र-विभाजन को जिस रूप मे देखता है, वह उसके इस कथन से स्पष्ट है "और सच ही देखते देखते ही पाकिस्तान एक तथ्य बन गया। गांधी जी का विरोध था जो बयान आया

१ भैरवप्रसाद गुप्त सत्ती मैया का चौरा, पृष्ठ ५२२
२. भैरवप्रसाद गुप्त · सत्ती मैया का चौरा, पृष्ठ ५२४
३ भैरवप्रसाद गुप्त : सत्ती मैया का चौरा, पृष्ठ ५२६
४ भैरवप्रसाद गुप्त · सत्ती मैया का चौरा, पृष्ठ ५२७
५. भैरवप्रसाद गुप्त सत्ती मैया का चौरा, पृष्ठ ५२८

उसमे जैसे कोई शक्ति न थी, यह पता लगते देर न लगी। ..नेहरू, पटेल और राजेन्द्र बाबू से भिड़ने की शक्ति उनमे न थी। देश के सबसे बड़े नेता, राष्ट्रपिता तथा सत्य और अहिंसा के अवतार गाँधी जी अचानक अपने शिष्यो के समक्ष ही इतने नि शक्त, विवश और निष्क्रिय हो जायेंगे, यह कौन जानता था ?''

स्वाधीन भारत मे कांग्रेस और उनके कार्यों की आलोचना ही उपन्यास का ध्येय बन जाता है। जमींदारी-उन्मूलन और परिणामस्वरूप गठित पंचायती राज की कल्पना मुन्नी की दृष्टि म या है— मेरे देखने मे तो गाँवो म कांग्रेस को सगठित करने और उसकी शक्ति बढाने की यह योजना है। इतने बेकार हुए कांग्रेस के ग्रामीण कार्य कर्ताओ को भी कोई काम चाहिए कि नही ? किसी गैर कांग्रेसी पंचायत को (वे) किसी भी हालत म चलने न देंग।'[1] मुन्नी भी मानता है कि कांग्रेस का नेतृत्व जनता को आगे नही लाता—"सन् १९४२ व १९४७ ४८ म कांग्रेस जनता के पीछे-पीछे रही है, जनता के आवेशो से चालित रही है, उसने जनता को ऐसे खतरनाक मोड़ो पर कोई नेतृत्व नही दिया। जनता के पीछे पीछे चलने वाला नेतृत्व जनता को कभी भी आगे नही ले जा सकता। सभी अवसरवादी लोग अब कांग्रेस मे शामिल हो जाएँगे।'[2]

जलेसर भी कहता है—'यह कांग्रेसियो की कौम बड़ी बद हो गयी है। हुकूमत की बू आ गयी है इन लोगन मे।' इसी कारण जनता की स्थिति म कोई परिवर्तन नही आता, जिसकी ओर मुन्नी ध्यान आकर्षित कराता है—'जमींदार न रहे तो अब स्थानीय कांग्रेसी नेताओ ने उनकी जगह ले ली है, और किसानो पर वे उन्हीं की तरह हुकूमत करते है।— आम जनता पहले की तरह उनकी चक्की मे पिसी जा रही है। और कमाल की बात यह है कि जिस साम्प्रदायिकता की समस्या को हल करने के लिए देश का बँटवारा किया गया, वह अपनी जगह पर कायम है।' और इसके लिए 'इलाज केवल एक है और वह है जनता मे वर्ग चेतना पैदा करना, जनता की मुक्ति की लड़ाई को वर्ग सघर्ष के स्तर पर ले आना।'[3] कांग्रेसी सत्ता के विरुद्ध यह वर्ग सघर्ष भी रूस और चीन के उदाहरण और तरीको से लाया जा सकता है। मुन्नी के शब्दो म—'भारत मे इन्सानो की शक्ति सोयी पड़ी है और इसे जगाने के लिए रूसी और चीनी नेताओ की तरह के आदमियो की जरूरत है। हमारे यहाँ के सफेदपोश नेताओ और अफसरो को प्रलय तक इसकी समझ न आएगी।[4]

---

१ भैरवप्रसाद गुप्त सत्ती मैया का चौरा, पृष्ठ ५४७

२. भैरवप्रसाद गुप्त . सत्ती मैया का चौरा, पृष्ठ ५५१

३ भैरवप्रसाद गुप्त : सत्ती मैया का चौरा, पृष्ठ ५६४

४ भैरवप्रसाद गुप्त · सत्ती मैया का चौरा, पृष्ठ ६०१

उपन्यास मे वर्णित राजनीतिक दलो की स्थिति

उपन्यास मे काग्रेस, कम्युनिस्ट पार्टी, जनसघ और लीग की राजनीतिक रीति-नीति का खण्डन अथवा मण्डन किया गया है। इसे व्यक्त करने के लिए प्राय कथोपकथन का माध्यम अपनाया गया है, जो कथानक को विस्तार देने के साथ साथ राजनीतिक स्थिति पर अपनी मान्यता के अनुसार प्रकाश डाल कर कथा को आगे बढाता है।

काग्रेस की अनेक स्थलो पर कटु आलोचना की गयी है, जिसका उल्लेख वर्ण्य वस्तु की विवेचना के समय किया ही जा चुका है। काग्रेस-शासन द्वारा सचालित योजनान्तर्गत निर्माण-कार्यों को भी असफलता के रूप मे चित्रित किया गया है। कहा गया है कि 'काग्रेस सरकार चीख चीख कर राष्ट्र निर्माण मे भाग लेने के लिए, आगे बढ कर काम करने के लिए, लोगो को पुकार रही है और ये काग्रेसी राष्ट्र-निर्माण के हर काम मे खुद अडगा लगाते है, कोई कुछ करने के लिए आगे बढता है, तो उसकी टाँग पकड कर पीछे खींचने लगते है, कोई कुछ करता है, तो उसका सारा श्रेय स्वय हडप लेना चाहते है। बीज मिलता है, लेकिन वह खेत मे न जाकर स्वार्थियो के पेट मे जाता है। सभापति के घर पर रेडियो बजता है, रोज पचायत कार्यक्रम चलता है, लेकिन कोई सुनने सुनाने वाला नही। गली के नुक्कडो पर कदीलें गाड दी गयी हैं, लेकिन उनमे से किसी मे आज तक रोशनी नही हुई। अखबार और न जाने कितना साहित्य आता है, लेकिन उसे पढने-पढाने वाला कोई नही। पचायत सेक्रेटरी बटोर कर बनिये के यहाँ बेच आता है।'[1]

स्वाधीनता के उपरान्त साम्प्रदायिक विद्वेष के शमन करने मे गाँधी जी ने जो कार्य किये, वे अलोकप्रिय हुए, इसका भी उल्लेख किया गया है। स्वय काग्रेस और उसके नेताओ ने उनकी अवहेलना की।[2] इसी साम्प्रदायिक आधार पर हत्या हुई, जिसके विवरण के साथ इसका दोष सरदार पटेल व कांग्रेसी नेताओ पर डाला गया है।[3]

वस्तुत साम्प्रदायिकता का चित्रण ही उपन्यास की मूल समस्या कही जा सकती है। साम्प्रदायिकता की समस्या को लेकर अनेक राजनीतिक उपन्यासो की सृष्टि हिन्दी मे की गयी है, किन्तु हम त्रिभुवन सिह जी के शब्दो मे कह सकते हैं कि आलोच्य उपन्यास उस परिदृश्य से पृथक् है, क्योकि इसमे आस्थाओ और सस्थापनाओ की विशिष्टता है।

---

१ भैरवप्रसाद गुप्त . सत्ती मैया का चौरा, पृष्ठ ६२४
२. भैरवप्रसाद गुप्त सत्ती मैया का चौरा, पृष्ठ ५४६
३. भैरवप्रसाद गुप्त सत्ती मैया का चौरा, पृष्ठ ५५०-५५१

जनसंघ एवं मुस्लिम लीग

साम्प्रदायिक स्थिति पर विचार करते समय लेखक ने हिन्दुत्ववादी जनसंघ और मुस्लिमपरस्त लीग पर भी छींटे कसे हैं। सत्ती मैया के चौरे को साम्प्रदायिक प्रश्न बना कर यह बताने का प्रयत्न किया गया है कि चोरी छिपे कांग्रेसी भी जनसंघी स्वयंसेवकों की सहायता मुसलमानों के विरुद्ध लेते हैं और भीतर से साम्प्रदायिक भावना को पालित करते हैं।[1] मन्ने कहता है मुँह में राम बगल में छुरी। देश-विभाजन का सारा दोष में जिन्ना और मुस्लिम लीग पर थोपते हैं लेकिन अपना दामन नहीं देखते। यह नहीं सोचते कि जिन्ना को किसने पैदा किया ? लीग को किसने जन्म दिया।[2] सचमुच अनेक कांग्रेसी नेता गांधी जी के अनुयायी होते हुए भी अपनी धार्मिक साम्प्रदायिकता से बहुत ऊपर नहीं उठ सके थे।

साम्यवाद

अन्य राजनीतिक दलों की आलोचना कर (जो सोद्देश्य किन्तु एकांगी है) सारी समस्याओं का समाधान साम्यवाद में बताने का प्रयास किया गया है। मुन्नी साम्यवाद के प्रचारक हैं और साम्यवाद का ज्ञान उन्हें जीवनानुभव से नहीं, यूथ लीग स्टडी सर्किल, एंगिल्स, मार्क्स, लेनिन और स्तालिन के साहित्य से होता है। वह इस तथ्य को पाता है 'जंगल क्या है यह अंधकार क्या है, और मैं क्या यहाँ घिर गया हूँ। मुझे मालूम हुआ कि यह जंगल बहुत बड़ा है, यह अन्धकार चारों ओर फैला हुआ है और यहाँ लाखों करोड़ों लोग मेरी ही तरह घिरे हुए हैं।

इन लाखों-करोड़ों को, जो अलग अलग घिरे हुए हैं और जो यह समझे हुए हैं कि वे अकेले हैं अगर यह अहसास हो जाय कि वे लाखों-करोड़ों हैं, जिनकी स्थिति एक है, जिनका मार्ग, मुक्तिमार्ग एक है *तथ्य* एक है और वे अपना हाथ बढ़ाकर एक दूसरे का हाथ थाम लें और आगे बढ़ें तो यह जंगल साफ हो सकता है, यह अन्धकार दूर हो सकता है, यह परिस्थिति बदली जा सकती है।[3]

इसी परिस्थिति को बदलने के लिए मुन्नी प्रेस के मजदूरों की *तरक्की के लिए* वैसी ही हड़ताल आयोजित करता है जैसी अमृत राय ने 'बीज' में की है। वह गाँव की प्रगति के लिए अपनाये गये हिंसात्मक कार्यों को भी अनुचित नहीं मानता।[4]

---

१ भैरवप्रसाद गुप्त सत्ती मैया का चौरा, पृष्ठ ६५१
२ भैरवप्रसाद गुप्त सत्ती मैया का चौरा, पृष्ठ ६६४
३ भैरवप्रसाद गुप्त सत्ती मैया का चौरा, पृष्ठ १३३ १३४
४ भैरवप्रसाद गुप्त सत्ती मैया का चौरा, पृष्ठ ६०४

समाजवादी यथार्थ के धरातल पर लेखक मन्ने व उसकी छोटी बहिन की शादी का आयोजन कर रूढ़िग्रस्त सामाजिक प्रथा का साहस के साथ विरोध कर समाजवादी चेतना को अभिव्यक्ति दे सामाजिक असंगतियों पर व्यंग्य करता है। इस भावभूमि पर उन आवरणों को सफलता के साथ वहाँ उघाड़ा गया है, जहाँ दो स्वार्थ टकराते हैं, चाहे वे सामन्ती जमींदारों, पूँजीपति महाजनों, जनसंघी हिन्दुओं, लीगी मुस्लिमों, अवसरवादी राष्ट्रवादियों के हों। किन्तु कथानक के दीर्घ होने के कारण उनका राजनीतिक समाहार समुचित ढंग से नहीं हो सका है। इसीलिए कहा जा सकता है कि इस मिश्रित राजनीतिक उपन्यास में सामाजिक पक्ष प्रबल है, राजनीतिक पक्ष सोद्देश्य होने के कारण दुर्बल, क्योंकि प्रथम घटनाओं का अनुभवजनित परिणाम है और दूसरा विचारों की दलील मात्र।

सम्भवतः इसी कारण कहा गया है कि 'सत्ती मैया का चौरा' एक ओर तो राजनीतिक पार्टियों का विचित्र इतिहास है, दूसरी ओर दो पीढ़ियों के बीच का संघर्ष। परम्परा और पीढ़ियों के संघर्ष की अभिव्यक्ति वही लेखक कर सकता है, *जिसकी चेतना में पीढ़ीगत बोध हो। टी० एस० इलियट के अनुसार यह पीढ़ीगत बोध* ही किसी लेखक की महानता की कसौटी होता है। 'सत्ती मैया का चौरा' में इसका अभाव है।[1]

सर्वोदयी भावना से समन्वित आंचलिक उपन्यास

दुखमोचन

आकाशवाणी के लखनऊ-प्रयाग केन्द्रों से प्रसारित नागार्जुन के इस उपन्यास में भारत के विपन्न ग्रामों की नवोदित चेतना को अभिव्यक्ति मिली है। 'दुखमोचन' में रमका कोइली नामक ग्राम की समस्याओं और कर्तव्य-पथ पर आरूढ़ जनता का निर्माणकारी चित्र वर्णित है। उपन्यास का मुख्य पात्र है दुखमोचन, जो वस्तुओं के वास्तविक मूल्यों को भली भाँति पहचान कर गाँव की उन्नति का स्वप्न संजोता है। वह आशा व्यक्त करता है - 'आगे हम बाँध तैयार करेंगे, पोखरों की मरम्मत करेंगे, कुओं की खोदाई होगी, गाँव की तरक्की के दसों काम होंगे। एकजुट होकर हमें सब करना है।' आलोच्य कृति को यदि चाहें तो पुनर्निर्माण का उपन्यास भी कहा जा सकता है।

इस लघुकाय उपन्यास में बारह छोटे छोटे अध्याय और पन्द्रह पात्र हैं। प्रमुख पात्र है दुखमोचन, *शेष अन्य पात्र आवश्यकतानुसार अपनी झलक दिखलाकर दूर हट जाते* हैं। दो-चार पात्रों को छोड़कर शेष का चारित्रिक विकास न तो हुआ है और न उसकी

---

१. डॉ० त्रिभुवन सिंह : हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद, पृष्ठ ४७०

आवश्यकता ही थी। कथा का केन्द्र बिन्दु दुखमोचन है और समस्त घटनाएँ उसी के चतुर्दिक घूमती हैं। वह सच्चा जनसेवक है और सेवा के मार्ग पर चल नि स्वार्थ-भाव से सबकी सहायता को तत्पर रहता है।

नागार्जुन के इस उपन्यास में सर्वोदयी भावना का अंकन हुआ है। सर्वोदयी मानते हैं कि शस्त्र शक्ति, राज्य-शक्ति और धन शक्ति में जिन लोगों का विश्वास था, वे सबके सब अब दूसरी किसी मानवीय शक्ति की खोज में हैं, क्योंकि अब मानवीय मूल्यों की स्थापना करनी है।[1] दुखमोचन इसी मानवीय शक्ति का प्रतीक है। वह सर्वोदय के इस सिद्धान्त को मानता है कि सब लोग जियें और एक-दूसरे के साथ-साथ जियें।[2] व्यवहार का आदर्श की तरफ बढ़ना प्रगति है।[3] दुखमोचन इस तथ्य से परिचित है। वह अल्पसख्यकों का मसीहा है, क्योंकि 'सर्वोदय में व्यापकता का स्थान है। सबका उदय चाहिए।[4] *सर्वोदयी मानते हैं कि 'अद्वैत हमारा आदर्श है। समन्वय हमारी नीति है।* समन्वय साधन है और अद्वैत साध्य है।'[5] इसी समन्वय के लिए दुखमोचन प्रयत्नशील है और विरोध का निराकरण करता है। उसका यह परिहार ही उसकी अहिंसक क्रांति का उद्देश्य है। विनोबा के शब्दों में यही 'साम्ययोग' है। दुखमोचन मानव कृत विषमता का निराकरण करने और प्राकृतिक विषमता की उग्रता को घटाने की दिशा में यत्नशील है। वह 'जिलाने के लिए जियो' के सर्वोदयी सिद्धान्त से प्रभावित है। उसका परम मूल्य जीवन है। जीवन को सम्पन्न बनाना है। सबके जीवन को सम्पन्न बनाना है।[6] द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद सघर्ष को मनुष्य का स्वभाव मानता है, किन्तु साम्यवादी नागार्जुन का दुखमोचन सघर्ष के निराकरण का प्रयत्न करता है, उसे प्रोत्साहित नहीं करता और यह सर्वोदयी भावना के ही अनुकूल है। जो सघर्ष उभरे भी है, उन्हें विनोबा के शब्दों में 'मिलाप' ही कहा जा सकता है। सर्वोदय समाजनिरपेक्ष, शाश्वत और व्यापक मूल्यों की स्थापना करना चाहता है और बाधक मूल्यों का निराकरण करना चाहता है।[7] 'दुखमोचन' के सद्भाव इस भावना से परिचालित हैं कि 'सृष्टि के साथ तादात्म्य की भावना जो मनुष्य में होती है, वह अत्यन्त मगलकारी है,

---

१ दादा धर्माधिकारी : सर्वोदय दर्शन, पृष्ठ २१
२ दादा धर्माधिकारी : सर्वोदय दर्शन, पृष्ठ २३
३ दादा धर्माधिकारी : सर्वोदय दर्शन, पृष्ठ २५
४ दादा धर्माधिकारी : सर्वोदय दर्शन, पृष्ठ २७
५ दादा धर्माधिकारी : सर्वोदय दर्शन, पृष्ठ २६
६. दादा धर्माधिकारी : सर्वोदय दर्शन, पृष्ठ ३५
७ दादा धर्माधिकारी : सर्वोदय दर्शन, पृष्ठ ४३

सांस्कृतिक है। जीवन का विकास इसी भावना से होता है।' रूस के विचारकों का कथन है कि The problem of Russia is cultural—याने मनुष्य को यन्त्र निष्ठा से मानव निष्ठा की तरफ कैसे मोड़ा जाय। सर्वोदय इस भेद का निराकरण संघर्ष से नहीं, सख्य भावना से मानता है। कम्युनिस्ट मानते हैं कि मनुष्य स्वभावतः *सत्-प्रवृत्त है। सर्वोदयी इसे आस्तिकता कहते हैं। कम्युनिस्ट मानते है कि असत् प्रवृत्ति* परिस्थितिजन्य है। परिस्थिति के निराकरण के बाद मानव की सद् प्रवृत्ति उसका स्वभाव ही है। वस्तुतः साम्यवाद का प्रसारात्मक या प्रचारात्मक दृष्टिकोण चाहे जो कुछ हो, किन्तु उसका भी अन्तिम लक्ष्य शांत और सुव्यवस्थित समाज-रचना की नयी भूमिका पर प्रतिष्ठित है। सर्वोदय भी उसी लक्ष्य से परिचालित है। दुखमोचन में भी उन्हीं अकल्याणकारी सामाजिक परिस्थितियों के निराकरण का प्रयास है।

दुखमोचन सवाद के निकट और विवाद से परे है और प्रेम पर उसकी दृढ़ आस्था है यही उसका आधारभूत तत्व है, जो सर्वोदय के अभेद की सीढी है। स्वार्थों के संघर्ष का निराकरण वह प्रेम से करना चाहता है, जिसे सर्वोदयी पारमार्थिक (समस्या) के रूप में देखते हैं। कुत्ते के लिए मामी की छटपटाहट और उनके प्रति दुखमोचन की संवेदना आध्यात्मिक है। यही एकता में आनन्द और विषमता में विरोध या दुःख की स्थिति है। सर्वोदय की आध्यात्मिक के आस्तिक की परिभाषा में कहा गया है। 'कोई भी व्यक्ति, भले ही वह आत्मा को और ब्रह्म को न मानता हो, यदि दूसरे के दुःख से दुःखी होता है, दूसरे के सुख से सुखी होता है और विषमता को सह नहीं *सकता, तो वह 'आस्तिक' है, क्योंकि वह विषमता का निराकरण और समता की* स्थापना करना चाहता है।'[1] सर्वोदयी विषमता के निराकरण को मानते हैं कि 'अपने दैव का निर्माता और अपनी नियति का नियन्ता मनुष्य है।'[2] टेमरा कुहुवा का पुनर्निर्माण इस सिद्धांत को *मूर्त रूप देना है। यह साम्यवादियों की ऐतिहासिक नियति* या सृष्टि नियम से किंचित भिन्न है। दुखमोचन में क्रांति का जो रूप है, वह भी सर्वोदयी 'जनतांत्रिक क्रांति' के निकट है—इसमें हिंसात्मक पक्ष निर्बल है। इसे साम्यवाद की अन्तर्राष्ट्रीय क्रांति का अनुसरण भी कहा जा सकता है, जिससे सर्वोदय मतभेद नहीं रखता। इसमें संघर्ष नहीं, सहयोग पर आस्था है। इसी सहयोगात्मक प्रतिकार को सत्याग्रह कहा गया है। 'सत्याग्रह की प्रक्रिया सहयोगात्मक प्रतिकार की प्रक्रिया है।'[3] जो गुणात्मक परिवर्तन चाहते हैं यह (द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद) की भी प्रवृत्ति है, पर

---

१ दादा धर्माधिकारी सर्वोदय दर्शन पृष्ठ १०५

२ दादा धर्माधिकारी, सर्वोदय दर्शन, पृष्ठ १५५

३ दादा धर्माधिकारी सर्वोदय दर्शन, पृष्ठ ११८

परिवर्तन बुद्धिपूर्वक हो, यह सर्वोदयी भावना है, जो 'हृदय-परिवर्तन' से सम्भव है। लेनिन का कथन है कि 'मेरी योजना मे एक ही समाजवादी वस्तु है, उसका नाम है सबोटनिक। सबोटनिक का अर्थ है, प्रति शनिवार को नागरिको द्वारा स्वेच्छा से श्रमदान। इसी मे से आगे चलकर काम की प्रेरणा का सवाल हल होने वाला है। नागरिको मे स्वय प्रेरणा और स्वय कर्तृत्व दोनो इसी मे से जाग्रत होने वाले हैं।

दुखमोचन मे श्रम कर्तव्य के रूप मे आया है। सर्वोदयी मानते हैं 'श्रम भी प्रतिमूल्य के लिए नहीं होगा। श्रम हमारा कर्तव्य होगा और श्रम का फल सारे समाज का होगा। गांधी ने इसे शरीर-श्रम का व्रत कहा।[1] दुखमोचन म वेणीमाधव श्रमदान को श्रमयज्ञ मानता है और यज्ञ की सफलता 'सभी लाग दिलचस्पी' लें, तभी है, ऐसा स्वीकारता है।[2] दरिद्रता को अपरिग्रह मे बदलने की मनोवृत्ति हरखू की माँ के अनाज वापस करने के प्रसग से सम्मुख आयी है।

सामाजिक क्षेत्र मे अहिंसा व्यक्त होती है—दूसरे का सुख अपना सुख मानने से, दूसरे का दु ख अपना दु ख मानने से, आर्थिक क्षेत्र मे उत्पादन और सहयोगी उत्पादन के रूप मे सहउत्पादन और समवितरण, राजनीतिक क्षेत्र मे अहिंसा लाकनीति के रूप मे जिसका मूल तत्व है, नागरिको का परस्पर विश्वास और परस्पर स्नेह। जिलाने के लिए जियो—यह सहजीवन।

हम दूसरे के जीवन म सहायक बनना है, बाधक नही, यही सर्वोदयी 'अस्तेय' है। इसमे दूसरे की वस्तु की प्राप्ति की आकाक्षा का लोप रहता है। दुखमोचन इसी भावना से तेल व साबुन नही रखना चाहता। उसमे अपरिग्रह की वृत्ति कूट कूट कर भरी है। अपरिग्रह की वृति का अर्थ है कि अपनी जरूरत की चीज भी जो मैं रखना हूँ, वह अपने स्वामित्व के लिए नहीं। दुखमोचन द्वारा दाहक्रिया हेतु उपयोगी लकडी दे देने की घटना अपरिग्रह वृत्ति ही है। इतना ही नही, उस शरीर के प्रति भी मोह नही उसे शरीर के प्रति भी मोह नही, जो असग्रह का विचार है। शरीर के विषय मे वह तटस्थ व निराग्रही है।

इस प्रकार नागार्जुन के साम्यवादी विचारो का बहुत कुछ उग्रतापूर्ण वातावरण इस उपन्यास मे सर्वोदयी धरातल पर आकर शमित हो जाता है।

बूँद और समुद्र

'बूँद और समुद्र अपने बृहदाकार रूप मे समाज की यथार्थता का एक सफल उपन्यास है, जो अपने क्रोड मे आचलिकता और राजनीतिक गूँज, दोनो को साथ लेकर

---

१. दादा धर्माधिकारी : सर्वोदय दर्शन, पृष्ठ १४०

२ नागार्जुन : दुखमोचन, पृष्ठ ११६

चला है। उपन्यास का नामकरण सोद्देश्य है और इसमें बूंद और समुद्र क्रमश व्यक्ति और समाज के प्रतीक है। लेखक इन दोनों में समन्वय की शाश्वत समस्या को इन शब्दों में व्यक्त करता है "हर बूंद का महत्त्व है, क्योंकि वही तो अनन्त सागर है, एक बूंद भी व्यर्थ क्यों जाय ! उसका सदुपयोग करो।' यह एक महत्वपूर्ण समस्या है कि "कैसे हो यह सदुपयोग ? कैसे यह बूंद अपने आपको महासागर अनुभव करे ? इस विशाल जनसागर में वह नितान्त अकेली है। . हर व्यक्ति आम तौर पर इसी तरह अपनी बहुत छोटी छोटी सीमाओं में रहता हुआ एक दूसरे से अलग है। बूंद अगर बूंद से शिकायत रखता है तो वह उससे कहीं अलगाव भी अवश्य रखती है। तब यह सागर कैसा है, जिसमें हर बूंद अलग है ? व्यक्ति यदि इतना ही अलग है तो समाज बंधना क्योंकर है। समाज में कुलीन और आबरूदार कहाने वाले सत्तर पचहत्तर फीसदी लोग इसी तरह उन स्थापनाओं को प्रतिक्षण अपने व्यवहार में तोड़ते रहते हैं, जिन्हें समाज ने आदर्श माना है। यह विरोधाभास इतना अधिक मानव में आया क्योंकर ? इस विरोधाभास को लेकर मानव का सामूहिक जीवन चल ही कैसे सकता है ? बूंद-बूंद का उपयोग हो, कैसे हो ?''[1]

लेखक केवल समस्या प्रस्तुत करके नहीं रह जाता, वह उसका समाधान भी करता है "मनुष्य का आत्मविश्वास जागना चाहिए, उसके जीवन में आस्था जागनी चाहिए। मनुष्य को दूसरे के सुख दुख में अपना सुख-दुख मानना चाहिए। विचारों में भेद हो सकता है, विचारों के भेद से स्वस्थ द्वन्द्व होना है और उससे उत्तरोत्तर उसका समन्वयात्मक विकास भी। पर शर्त यह है कि सुख दुख में व्यक्ति का व्यक्ति से अटूट सम्बन्ध बना रहे—जैसे बूंद से बूंद जुड़ी रहती है—लहरों से लहरें। लहरों से समुद्र बनता है—इस तरह बूंद बूंद में समुद्र समाया है।"[2]

व्यक्ति और समष्टि के समन्वय की समस्या को लेकर ही विभिन्न राजनीतिक विचारधाराओं को अभिव्यक्ति मिली है। राजनीतिक विचारधारा के आधार पर रामजी बाबा को विशिष्ट पात्र माना जा सकता है, जो उपन्यास के प्रमुख पात्र—महिपाल, सज्जन और वनकन्या को गांधीवादी सर्वोदयी राजनीतिक भावधारा से अनुप्राणित करता है।

यह सत्य ही कहा गया है कि 'सज्जन के जीवन में बाबा रामजी, जो सन्त विनोबा की सामूहिक चेतना और व्यक्तिवादी दृष्टिकोण को आत्मसात् किये हुए हैं, उसका की भांति आते हैं और उसके जीवन को धीरे-धीरे नये सांचे में ढालते हैं। बाबा

१. अमृतलाल नागर : बूंद और समुद्र, पृष्ठ ३८८-३८९
२ अमृतलाल नागर बूंद और समुद्र, पृष्ठ ६०६

की सेवा पर बल देते हैं। उनका विश्वास है कि कर्म की कुशलता ही योग है। एकान्त साधना से ही जीवन के गूढ़ रहस्यों की सिद्धि होती है। वह सज्जन से आग्रह करते हैं कि विज्ञानी यदि नाश को सिद्ध करता है तो तुम निर्माण को सिद्ध करो। जिसकी चेतना विराट होगी, उसकी विजय होगी। द्वन्द्व से चेतना का रहस्य खुलता है। बाबा जी सज्जन कन्या को विनोबा के भूमिदान तथा सम्पत्ति दान का उपदेश देते हैं और उनका समस्त वैभव लेना चाहते हैं। सामाजिक विषमताओं के निराकरण का यह व्यक्ति-वादी समाधान है।[1]

हम कह सकते हैं कि महिपाल, सज्जन, वनकन्या आदि पात्रों की व्यक्तिवादिता के विरोध में ही रामजी बाबा के चरित्र की उद्भावना की गयी है, जो व्यक्ति और समाज के समन्वयवादी (सर्वोदयी) भावना के प्रतीक हैं। उनका दृष्टिकोण अहिंसावादी तत्वों से निर्मित है, जो निश्चय ही गांधीवादी विचारधारा का परिणाम है। वे मानते हैं कि सच्चा समाजवादी वही है, जो दूसरों के लिए जिये-जिये और जीने दे। महेन्द्र चतु-र्वेदी का यह मूल्यांकन ठीक ही है कि 'बाबा का दृष्टिकोण अहिंसावादी तत्वों से निर्मित है, जिसमें गांधी जी के मानवतावाद के दर्शन होते हैं। महिपाल के कथन तथा बाबा राम जी के सैद्धान्तिक वक्तव्यों से लेखक का यह उद्देश्य ध्वनित होता है कि व्यक्ति को अपनी संकीर्ण सीमाओं से ऊपर उठकर सामूहिक चेतना को आत्मसात् करने का प्रयत्न करना चाहिए। व्यक्ति की निजी सत्ता तथा समाज के साथ उसका अविच्छिन्न सम्बन्ध दोनों की रक्षा लेखक का भी अभीष्ट है।'[2] वस्तुतः यही उपन्यास में गांधीवाद की स्थापना का मूल कारण है।

सर्वोदय की छाप

'बूँद और समुद्र' में वर्गवाद के विरोध में सर्वोदय की—सर्वोदय समाज की स्थापना पर जो बल दिया गया है, उस पर गांधी जी और आचार्य विनोबा भावे की राजनीतिक मान्यताओं की गहरी छाप है। बाबा राम जी तो जैसे विनोबा जी की ही प्रतिमूर्ति हैं, जो अपना सर्वस्व समर्पित कर सर्वोदयी समाज की स्थापना के प्रयत्न में एकनिष्ठ होकर जुटे हुए हैं। सज्जन और वनकन्या को भूदान तथा सम्पत्ति-दान के लिए प्रोत्साहित करते हुए बाबा रामजी वस्तुतः विनोबा ही हैं। उनके उपदेशों का ही यह प्रभाव है कि सज्जन आठ लाख की सम्पत्ति में से तीन लाख दान में दे देता है। वे कार्य में राजनी-तिक प्रतिस्पर्धा भी नहीं चाहते 'जो काम करेगा, वह पैसा भी पायेगा। निर्धन गरीब को धन मिलना चाहिए। शहर और गाँव, दोनों ही इस दृष्टि से भूखे हैं। इन

१. डॉ० सुषमा धवन : हिन्दी उपन्यास, पृष्ठ ७२
२. महेन्द्र चतुर्वेदी : हिन्दी उपन्यास : एक सर्वेक्षण, पृष्ठ १५४

दोनो को ही एक आर्थिक स्तर पर क्रमश ले आइए। इन तीन लाख मे आप यदि कुटीर-उद्योग बढा कर नगर के पुरुषो को महाजिन्दो को फाँसी और बेईमानियो से बचा सकें तथा स्त्रियो को अपनी आर्थिक आवश्यकता की पूर्ति के लिए महिलाश्रम जैसी सस्थाओ से बचाने के साथ-साथ उनका नैतिक स्तर ऊँचा कर सकें तो बहुत बडा काम हो जायगा रामजी। एक बार सगठित होकर आप जैसी हवा बहाय देंगे वैसा ही समाज पर प्रभाव पडेगा—खरा समाजवादी वही है, जो दूसरो के लिए जियें—जियें और जीने देव।'[1]

पूँजीवादी दृष्टिकोण और कला

पूँजीपति कला को भी अपने स्वार्थ की दृष्टि से ही देखते है, अत कला अपने वास्तविक स्वरूप मे नही आ पाती। कला को राजनीति की तराजू पर तौलने का उदाहरण उपन्यास मे चित्रित वह चित्र-प्रदर्शनी है, जहाँ 'पचास तस्वीरें एक ही दीवार के पक्खे पर ऊपर से नीचे तक टाँग दी गयी थी। मूर्तियो का महत्व लाला लोगो की समझ मे अधिक नही आया था, फिर भी एक मेज पर उन्हें भी रख दिया गया था। कमरे मे सबसे अधिक ध्यान आकृष्ट करने वाली एक ही चीज थी—राजा साहब की महफिल मे फाटक पर *बिजली के बल्बो की भारत-माता, जिनके हाथ के तिरगे झण्डे मे घूमता हुआ चक्र चल* रहा था।' यह है पूँजीपतियो के हाथो मे कला की दुर्दशा। 'ऐसा लगता था, मानो बिजली का तिरगा झण्डा दिखलाने के लिए ही इतनी कलाकृतियो को गुलाम बना कर उस कमरे मे कैद किया गया है।—तिरगे का उपयोग इस समय शिखडी के रूप मे हो रहा था। इसकी आड मे चार धनी-धोरी कला को अपना गुलाम—गुलाम दर गुलाम बना रहे थे।' कहना न होगा कि वर्तमान समय मे ऐसे अवसर आये दिन दिखलायी पडते हैं। कला को भी वे जरखरीद बाँदी समझने लगे है।

बूँद और समुद्र की अन्य विशिष्टताएं

डॉ० रामविलास शर्मा के शब्दो मे 'बूँद और समुद्र' अमृतलाल नागर का नया और महान उपन्यास है—महान्, आकार की दृष्टि से और विषय-वस्तु की दृष्टि से भी।' इसमे सन्देह नही कि 'बूँद और समुद्र' मे अनेक विशिष्टताएँ समाहित है, जा उसे इस दशक के शीर्ष उपन्यासो की पक्ति मे स्थान दिलवाने मे समर्थ हैं।

इसे आचलिक उपन्यास के अन्तर्गत रखते हुए हम इसे आचलिक उपन्यासो के प्रचलित अर्थ से कुछ भिन्न पाते हैं, क्योकि इसमे नागरीय अचल का चित्रण है। हिन्दी

---

१ अमृतलाल नागर. बूँद और समुद्र, पृष्ठ ५६६-५६७

मे ऐसे उपन्यासो का अत्यधिक अभाव है, जिसमे विशिष्ट नागरीय जीवन का चित्रण हो। प्रस्तुत उपन्यास इस अभाव की पूर्ति करता है। इसमे नागर जी ने लखनऊ और उसमे भी विशेष रूप से चौक के गली कूचो के जीवन का विविध दृष्टिकोणो से सजीव चित्रण किया है। एक समीक्षक का कथन है ' 'यह मुहल्ला एक बूंद की तरह है, जिस मे समुद्र की तरह विशाल भारतीय जीवन के दर्शन होते हैं। —उपन्यास के नाम की यही सार्थकता है, एक मुहल्ले के चित्र मे लेखक ने भारतीय समाज के बहुत से रूपो के दर्शन करा दिये हैं।— पात्रो की सख्या, उनकी विविधता, अनुकरण अथवा प्रतिच्छवि की सजीवता के विचार से अमृतलाल नागर हमें ऐसे जीते-जागते और कोलाहलमय ससार मे ला खडा करते है जिसकी समृद्धि की तुलना बाल्जाक की रचनाओं से ही हो सकती है।'[1]

भाषा शैली की दृष्टि से भी आलोच्य उपन्यास अपने ढग का एक बेजोड उदाहरण है। डॉ॰ रामविलास शर्मा का मत है—'अमृतलाल नागर द्वारा किया हुआ एक मुहल्ले का यह लिग्विस्टिक सर्वे' भाषाविज्ञान की सामग्री का अद्भुत पिटारा है। अभी तक किसी भी देशी-विदेशी भाषा में एक नगर की इतनी बोली-ठोलियो का निदर्शन करनेवाला उपन्यास मेरे देखने मे नही आया। इन शैलियो मे भाषाओ और समाज का इतिहास बोलता है।'[2] पात्रानुसार भाषा का प्रयोग किया गया है, जिसका राजनीतिक उपन्यासो मे प्राय. अभाव रहता है। लखनऊ के पुलिस कान्स्टेबिल की बोली बानी देखिए—'कोतवाली को बेरलेस कर दिया हुजूर! मिरजा जी अटेन्ड कर रहे थे हुजूर, तौन उन्होंने मिसेज दिया कि अस्पताल की गाडी भिजवाते हैं हुजूर।' इस तरह की बीसो भाषा शैलियाँ इस उपन्यास मे देखी जा सकती हैं। हास्य-व्यग भी है और 'केवल शुद्ध हास्य नही, विनोद, मनोरजन, वक्रोक्ति, व्यंग, सभी कुछ—उसकी निष्पत्ति सौ फी सदी इस बोली ठोली और शैली पर निर्भर है। लोकगीत भी हैं और रूढिवादी भाषा-प्रयोग भी, जैसे—'रांड बहुत पेट लिये घूमती है। ऐसे ही कटकर गिर पडेगा।' अथवा 'हरामजादी, तूने मेरी इज्जत खाक मे मिला दी।'

वर्तमान राजनीतिक अवस्था

लेखक ने वर्तमान भारतीय राजनीतिक स्थिति का चित्रण सज्जन के आत्म-मथन द्वारा प्रस्तुत किया है. "जिस देश का इतिहास इतना *महिमामय है—वह*, देश, जडता और गन्दगी मे रहना पसन्द करते हुए आज की भयकर अगति के रूप मे आत्म-

---

१ आलोचना, अक २०, अक्टूबर, १६५६, पृष्ठ ८३

२. आलोचना, अक २०, अक्टूबर, १६५६, पृष्ठ ८३

हत्या क्यों कर रहा है। महिपाल और भारत अपने ज्ञान और अज्ञान को लेकर एक समान हैं। सैकड़ों सदियों के रहन-सहन, रीतिबर्ताव और मान्यताओं को, जो आज भौतिक विज्ञान के युग में एकदम अनुपयुक्त सिद्ध होती हैं, हमारा समाज अन्धनिष्ठा के साथ अपनाये हुए है।—हमारे समाज में आत्मविश्वास ही नहीं रहा।—राजनीति जिस रूप में आज प्रचलित है, वह तनिक भी प्रगतिशील नहीं है। राजनीति केवल दाँव पेचों का अखाड़ा है। जन-जीवन अन्धविश्वास और भ्रान्तियों से जकड़ा हुआ है।''[1] यही कारण है कि सज्जन को किसी भी राजनीतिक पार्टी में आस्था नहीं है। 'सब अधिकांश में एक-से-एक बढ़कर बेईमान, क्षुद्र आकांक्षाओं वाले, जालसाज, दम्भी और मगरूरों द्वारा अनुशासित हैं, आदर्श और सिद्धांत तो महज शिकार खेलने के लिए आड़ की टट्टियाँ हैं। इनका आपसी संघर्ष अधिकतर व्यक्तिगत है।' कहना न होगा कि सज्जन की यह मान्यता वर्तमान भारतीय दलों की गतिविधियों के सर्वथा अनुकूल है।

राष्ट्रीय वातावरण पर आधारित आंचलिक उपन्यास

रेणु के आंचलिक उपन्यासों का राजनीतिक स्वर

हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों में फणीश्वरनाथ 'रेणु' की 'मैला आंचल' और 'परती परिकथा' अत्यन्त महत्वपूर्ण कृतियाँ हैं। रिपोर्ताज शैली में लिखे गये इन बृहद् उपन्यासों ने आंचलिकता को स्थायी एवं कलात्मक स्वरूप दिया है।

'मैला आंचल' में अंचल विशेष के ग्रामीण जीवन के विभिन्न आर्थिक स्तरों का उद्घाटन किया गया है। एक विज्ञ का मत है कि 'मैला आंचल' की सबसे अद्भुत विशेषता यही है कि उसमें मिथिला के निरन्तर बदलते हुए आज के एक गाँव की आत्मा की गाथा है और यह गाँव सर्वथा विशिष्ट होकर भी केवल मिथिला का ही नहीं, जैसे उत्तर भारत का प्रत्येक गाँव है, जो सदियों से सोते सोते अब जाग कर अँगड़ाई ले रहा है। पिछले महायुद्ध और उसके बाद की घटनाओं ने, विशेषकर स्वतन्त्रता प्राप्ति ने, जैसे हमारे देश को बहुत गहराई तक झकझोर दिया है, उसमें ऐसी उथल-पुथल मचा दी है कि जीवन के अनगिनती नये-नये पर्त उखड़ कर सामने आ गये हैं और नित नयी गति से निरन्तर आते जा रहे हैं। इस गति के कारण होने वाले सनही परिवर्तनों का चित्र हिन्दी की और भी कई रचनाओं में मिलता है, पर 'मैला आंचल' में उसके पत-

---

१. अमृतलाल नागर : बूँद और समुद्र, पृष्ठ ६०४-६०५

स्वरूप देहातों की आत्मा में होने वाले आलोडन और विक्षोभ की झाँकी है।[1] किन्तु हम यह कहने के लिए बाध्य है कि इस आलोडन और विक्षोभ की पृष्ठभूमि गाँव की कुरूपता का दर्शन कर उपन्यास के नामकरण को ही सार्थक करती है। मेरीगंज गाँव को उपन्यास का केन्द्र बना कर पूर्णिया अचल के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं मानसिक जीवन का सामूहिक चित्रण किया गया है। इस चित्रण में यद्यपि लेखक किसी मतवाद को लेकर नहीं चला है किन्तु युगधर्म के अनुसार बदलते हुए गाँव की गाथा कहने में वह सामयिक राजनीति के प्रभाव से मुक्त नहीं हो सका है। यही कारण है कि उपन्यास में यह तथ्य स्पष्ट रूप से उभर कर सामने आया है कि समसामयिक 'ग्रामीण राजनीति मध्य वर्ग द्वारा सचालित है और इस मध्य वर्ग में अन्तरग विभाजन है। एक ओर मध्यवर्गीय किसान है तो दूसरी ओर सामन्तीय मनोवृत्तियों के साँचे में ढले हुए खेतिहर जमींदार हैं—ये एक दूसरे के पोषक नहीं, परस्पर सघर्षरत हैं और यह सघर्ष केवल आर्थिक सामाजिक स्तर पर नहीं चलता, अनुभूति और विचारों के धरातल पर भी चलता है।'[2]

'मैला आँचल' की कथावस्तु सुसगठित तथा शृंखलाबद्ध नहीं है। वस्तुत. यह मेरीगज से सम्बन्धित विभक्त वर्गों और जाति के व्यक्तियों की कहानी है, जो शिथिल घटनाओं के अघात में विस्तार पाती है। इस प्रक्रिया म उपन्यासकार ने पात्रों और उनकी समस्याओं को यथार्थ के निकट रखने का सयत्न प्रयास किया है। शिल्प की दृष्टि से यह उपन्यास प्रयोग की विशिष्ट कोटि में रखा जा सकता है। यह नायक विहीन तथा आंचलिक वैचित्र्य का विवरणात्मक उपन्यास है, जो सीमाबद्ध होते हुए भी समाज के यथार्थ का अध्ययन प्रस्तुत करता है। डॉ० गणेशन का यह मत उचित है कि 'मैला आँचल' में कथानक माध्यम मात्र है, मनोविज्ञान साधन मात्र है। इनके आधार पर वे जिस लोक का निर्माण करते हैं, उसमें वास्तविक जीवन है। आधुनिक रूसी उपन्यासों का-सा निरपेक्ष अध्ययन इनमें उपलब्ध है।'[3]

उपन्यास का प्रारम्भ मेरीगज म मलेरिया सेन्टर के खुलने से होता है और जो वहाँ के ग्रामीण जीवन में चर्चा का विषय हो जाता है। गाँव में जातिगत आधार पर तीन दल हैं—एक कायस्थों का, दूसरा राजपूतों का और तीसरा यादवों का। ये परस्पर लड़ते-झगड़ते हैं और इन्हें लड़ाने का कार्य ब्राह्मणों का है, क्योंकि वे अल्प मत में हैं। यादव टोली का बालदेव सुराजी है और वह उपन्यास का प्रमुख राजनीतिक पात्र है जिसका

---

१ कल्पना, अक फरवरी, ५६

२ महेन्द्र चतुर्वेदी : हिन्दी उपन्यास एक सर्वेक्षण, पृष्ठ २११

३. डॉ० गणेशन : हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन, पृष्ठ ८३

चारित्रिक विकास उपन्यास में समुचित रूप से दिखाया गया है। यों उपन्यास में राजनीतिक प्रतिध्वनि उठाने वाले अन्य पात्र भी हैं। बावनदास गाँधीवादी है और राष्ट्र के प्रमुख नेताओं—महात्मा गाँधी, पंडित नेहरू, राजेन्द्र बाबू सभी से वह परिचित है। वह गाँधीवाद के उपचारों पर आस्था रखता है और आत्मा की शुद्धि तथा पाप के प्रायश्चित्त के लिए उपवास करता है। गाँधी हत्याकांड के समय वह दुःख से मूर्छित हो जाता है और तात्कालिक राजनीति से विक्षुब्ध हो भारत-पाक-सीमा पर गाड़ी के नीचे आकर मर जाता है। बावनदास का यह देहावसान मानवीय भावनाओं को व्यंजित करता है और देश विभाजन के प्रसंग को लेकर हमारी संवेदना उस समय और भी बढ़ जाती है, जब उसके शव को दोनों देश स्वीकार नहीं करते हैं। सचमुच ही उसका जीवन उन पद-लोलुप अवसरवादी नेताओं से भिन्न है, जो गाँधी के दिखावटी अनुयायी बनकर सत्ता को हथियाने में आगे रहते हैं। दूसरा कांग्रेसी पात्र बालदेव है, गाँधी जी के सिद्धान्तों को वह ग्रहण करने पर भी स्वार्थ से बहुत ऊपर नहीं उठ पाता। गाँधी जी के पात्रों को छिपा लेने में उसके चरित्र की दुर्बलता स्पष्ट रूप से सामने आ जाती है। इस प्रसंग में वह बावनदास को लिखे गये पत्रों से काल्पनिक मन्त्रीपद के आकांक्षी के रूप में प्रस्तुत होता है। लक्ष्मी के साथ उसके सम्बन्ध में भी उसका मानवीय दौर्बल्य अंकित है।

कालीचरन समाजवादी चेतना से अनुप्राणित पात्र है और पुलिस के आतंक से त्रस्त हो डाकू बन जाने को बाधित हो जाता है। एक अन्य पात्र चिनगारी के सम्पादक है, जो लक्ष्मी के आतिथ्य से प्रभावित हो मार्क्सवाद का दर्शन उसमें ही पा जाते हैं। वे उस पर मुक्त छन्द की रचना करते हैं

> ओ महान सतगुरु की सेविका
> गायिका पवित्र धर्मग्रन्थ की
> ओ महान मार्क्स के दर्शन की दर्शिका
> सुदर्शने, प्रियदर्शिनी,
> तुम स्वयं द्वन्द्वयुक्त भौतिकवाद की सिन्थिसिस हो।

गाँधी-हत्याकांड की सामयिक राजनीति को चित्रित करते समय 'रेणु' जी जनसंघ की गतिविधियों को भी नहीं भूला है। संघ के काली टोपी वाले संयोजक हिन्दुत्वादी राष्ट्रीयता का प्रचार करते हुए यहाँ भी मिल जाते हैं।

राजनीतिक स्थिति का चित्रण

राजनीतिक पात्रों की सृष्टि पर लेखक बयालीस की क्रान्ति से गाँधी हत्याकांड तक की राजनीतिक स्थिति को चित्रित करता है। इस कालावधि में ग्रामीण जीवन में

राजनीतिक चेतना का विस्तार किस ढंग से हुआ, वह 'मैला आंचल' में देखा जा सकता है। कहा गया है कि गाँव में रोज नये से नया सेन्टर खुल रहा है—मलेरिया सेन्टर, काली टोपी सेन्टर, लाल झण्डा सेन्टर और अन्त में चरखा सेन्टर। मलेरिया सेन्टर से कम महत्व उस चर्खा सेन्टर का नहीं है, जिसकी संचालिका मंगला देवी है। स्थूल रूप से कहा जा सकता है कि सन् १९४२ से प्रारम्भ होने वाला दशक ही उपन्यास का नायक है, क्योंकि उसी आधार पीठिका पर अंचलविशेष की सामाजिक राजनीतिक जाग्रति अंकित हुई है। स्वाधीन भारत की राजनीतिक पार्टियों और उनकी दुर्बलताओं को यथार्थ भूमि पर तटस्थ दृष्टि से देखकर मानवतावादी दृष्टिकोण का प्रतिष्ठापन किया गया है। यही कारण है कि उपन्यास में राजनीतिक दलों का विवेचन कर व्यंग्य किया गया है। चर्खा सेन्टर की मंगला देवी तथा सोशलिस्ट पार्टी के कालीचरन के पारस्परिक सम्बन्ध को लेकर नेताओं पर किये गये व्यंग्य इसका प्रमाण है।

मानवतावादी दृष्टिकोण

उपन्यास में राजनीतिक आन्दोलनों के साथ लेखक जिस मूल समस्या की ओर ध्यानाकर्षित कराना चाहता है, वह यह है . 'लेबोरेटरी'! ..विशाल प्रयोगशाला। ऊँची चहारदीवारियों में बन्द प्रयोग शाला। साम्राज्य लोभी शासकों की संगीनों के साये में वैज्ञानिकों के दल खोज कर रहे हैं, प्रयोग कर रहे हैं। मारात्मक, विध्वंसक और सर्वनाशा शक्तियों के सम्मिश्रण से एक ऐसे बम की रचना हो रही है, जो सारी पृथ्वी को हवा के रूप में परिणत कर देगा। ऐटम 'ब्रेक' कर रहा है। मकड़ी के जाले की तरह। चारों ओर एक महा अन्धकार! सब वाष्प! प्रकृति पुरुष अन्ड-पिन्ड! मिट्टी और मनुष्य के शुभचिन्तकों की छोटी-सी टोली अँधेरे में टटोल रही है। अँधेरे में वे आपस में टकराते हैं। वेदान्त भौतिकवाद सापेक्षवाद...मानवतावाद। हिंसा से जर्जर प्रकृति रो रही है। व्याध के तीर से जख्मी हिरण शावक सी मानवता को पनाह कहाँ मिले ?'[1] और इसका समाधान है गाँधीवाद में—उसके प्रेम और अहिंसा की साधना में। इसीलिए कहा गया है : 'यह अँधेरा नहीं रहेगा। मानवता के पुजारियों की सम्मिलित वाणी गूंजती है, पवित्र वाणी! उन्हें प्रकाश मिल गया है। प्रेम और अहिंसा की साधना सफल हो चुकी है। फिर कैसा भय ? विधाता की सृष्टि में मानव ही सबसे बढ़कर शक्तिशाली है।'[2] डॉक्टर प्रशान्तकुमार और उसकी सहचरी ममता के चरित्र का अंकन इसी दृष्टि से हुआ है। डोक्टर का यह कथन गाँधीवाद के सिद्धान्तों के ही अनुकूल है "ममता! मैं फिर काम शुरू करूँगा। यहीं, इसी गाँव में

१ फणीश्वरनाथ 'रेणु' : मैला आँचल, पृष्ठ ४२४
२. फणीश्वरनाथ 'रेणु' : मैला आँचल, पृष्ठ ४२४

मैं प्यार की खेती करना चाहता हूँ। आँसू से भीगी हुई धरती पर प्यार के पौधे लह लहायेंगे। मैं साधना करूंगा। ग्रामवासिनी भारतमाता के मैले आँचल तले!'"[1] इस प्रकार इस निष्कर्ष पर पहुँचना असगत न होगा कि किसी वादविशेष का प्रचारात्मक स्वर न होने पर उपन्यासकार गाँधीवाद को ही मानव-कल्याण का पथ मानता है। सुषमा धवन के इस कथन से हम सहमत नहीं हो सकते कि "रेणु ने गाँधीवाद एवं साम्यवाद दोनों से प्रेरणा ग्रहण की है और गाँधीवाद तथा साम्यवाद मानवता के विरोधी नहीं है।"[2] वस्तुत उनकी भ्रान्ति का कारण राजनीतिक ज्ञान का अधकचरापन ही कहा जा सकता है। सत्य तो यह है कि किसी भी राजनीतिक सिद्धान्त का प्रणेता मानवता का विरोधी नहीं होता, किन्तु उसकी कार्य-पद्धति ही उसकी प्राप्ति का मार्ग निर्धारित करती है। मानव-कल्याण ही राजनीति की मापदण्डिता होता है। अत इस आधार पर दो राजनीतिक सिद्धान्तों में सादृश्य निरूपित करना युक्तिसगत नहीं। 'मैला आँचल' *में मानवतावाद की जो स्थापना प्रेम और अहिंसा से करने की बात कही गयी है,* वह विशुद्ध गाँधीवादी भावना ही है। यही कारण है कि उपन्यास में जमींदार द्वारा किसानों में भूमि-वितरण के आदर्शवादी ढग से समस्या को हल करने का प्रयत्न किया गया है। यह भी हृदय-परिवर्तन का उदाहरण है, जिसे गाँधीवाद में प्रमुख स्थान प्राप्त है। 'मैला आँचल' म जमीदारो, उनके पुत्रो, अधिकारी वर्ग और अवसरवादियो पर व्यग्य में यथार्थवादियों की आलोचना के आक्रोश का अभाव भी इसी प्रवृत्ति का परिचायक है। जो जन-सघर्ष चित्रित हुआ है, उसकी सफलता पूँजीपति की प्रसन्नता पर निर्भर है, जो साम्यवाद के प्रतिकूल है, जिसके कारण उपन्यास में निराशा का घनीभूत कुहरा छाया हुआ है। मूल कथा की परिणति में लीन होने वाली इस उपकथा में तहसीलदार विश्वनाथ और सथालो के सघर्ष की कहानी कही गयी है। जन आन्दोलन के सघर्ष का फल हम उस समय देख पाते है, जब डॉ० प्रशान्त जेल से छूटते है और विश्वनाथ प्रसन्नता से विभोर हो सथालो को भूमि वितरण कर आन्दोलन को खत्म कर देते हैं।

अराष्ट्रीय तत्वो की झलक

राजनीतिक दृष्टिकोण से उपन्यास की एक प्रमुख दुर्बलता ऐसे प्रसगों का उल्लेख है जो राष्ट्रीय एकता के बाधक सिद्ध होते हैं। इसके अन्तर्गत हम साम्प्रदायिक जातिवाद की राष्ट्र विरोधी प्रवृत्ति के चित्रण को ले सकते हैं। मेरीगज की तीन पार्टी जातिगत आधार पर निर्मित है और उनकी जातिवाद का एक स्वरूप देखिए—

१ फणीश्वरनाथ 'रेणु', मैला आँचल, पृष्ठ ४२५

२ डॉ० सुषमा धवन हिन्दी उपन्यास, पृष्ठ ८६

"राजपूतों को ब्राह्मण टोली के पण्डितों ने समझाया—जब-जब धर्म की हानि हुई है, राजपूतों ने ही उसकी रक्षा की है। घोर कलिकाल उपस्थित है। राजपूत अपनी वीरता से धर्म बचा लें। लेकिन बात बढ़ी नहीं। न जाने कैसे वह धर्मयुद्ध रुक गया। ब्राह्मण टोली के बूढ़े ज्योतिषी जी आज भी कहते हैं—यह राजपूतों के चुप रहने का फल है कि आज चारों ओर हर जाति के लोग गले में जनेऊ लटकाये फिर रहे हैं। भूमिफोड़ क्षत्री तो कभी नहीं सुना था— — शिव हो ! शिव हो !"

"अब गाँव में तीन प्रमुख दल हैं—कायस्थ, राजपूत, यादव। ब्राह्मण लोग अभी भी तृतीय शक्ति हैं। गाँव के अन्य जाति के लोग सुविधानुसार इन्हीं तीनों में बँटे हुए हैं। ब्राह्मणों की संख्या कम है, इसलिए वे हमेशा तीसरी शक्ति का कर्तव्य पूरा करते हैं।"

उपर्युक्त कथन ब्राह्मणविरोधी विचारों को उभार सकते हैं और राष्ट्रीय भावनात्मक एकता के विघातक सिद्ध हो सकते हैं। गाँधीवादी बालदेव के मुख से भी कहलवाया गया है—'वह अपने गाँव में रहेगा, अपने समाज में, अपनी जाति में रहेगा। ...जाति बहुत बड़ी चीज है।. जाति की बात ऐसी है कि अब बड़े बड़े लीडर अपनी-अपनी जाति की पार्टी में हैं। यह तो राजनीति है।'[1] कायस्थों पर व्यंग्य करते हुए जोतखी जी कहते हैं—'अकेले यादवों की बात रहती तो कोई बात नहीं थी, इसमें कायस्थ समाया हुआ है। मरा हुआ कायस्थ भी बिसाता है।'

समझ में नहीं आता, 'रेणु' जी ने राष्ट्रीय एकता के विघातक तत्वों को आंचलिक परिवेश में (जो स्वयं खण्डित राष्ट्रीय एकता का प्रतीक है) किस उद्देश्य से स्थान दिया है।

इसी प्रकार मादक द्रव्यों के पक्ष में प्रचार भी गाँधी जी के कार्यक्रम के विरोध में चित्रित हुआ है। उपन्यास में यौन-सम्बन्धों की प्रधानता से जो अशिव तत्व प्रतिष्ठित हुए हैं, वह भी राजनीतिक पक्ष को कमजोर बनाता है। ऐसे कुरुचिपूर्ण तत्व किसी सुपरिणति के साथ सम्बद्ध भी नहीं।

परती : परिकथा

रेणु के दूसरे बहुचर्चित आंचलिक उपन्यास 'परती परिकथा' को हम स्थूल रूप से पुनर्निर्माण का उपन्यास भी कह सकते हैं। 'मैला आँचल' के समान ही प्रस्तुत उपन्यास में भी राजनीतिक स्वर आंचलिकता में ही खोकर रह गये हैं। इसमें परानपुर नामक गाँव को आधार बनाकर सन् १९५५ के आसपास के वर्षों में हो रहे विकास-

---

१. फणीश्वरनाथ 'रेणु' . मैला आँचल, पृष्ठ ३६६

कार्यों के यथार्थ परिवेश में सक्रमणयुगीन भारतीय ग्रामों और उनकी समस्याओं को देखने का प्रयास है। परानपुर तीन ओर से परती जमीन से घिरा है और राजनीतिक कुचक्रों से विक्षुब्ध जितेन गाँव लौटकर धूसर, वीरान, अन्तर को योजनाबद्ध ढग से बदलने का प्रयास करता है। इसी प्रसग मे लेखक विभिन्न ग्राम सुधार एव विकास-योजनाएँ, जमींदारी उन्मूलन, लैन्ड सर्वे आपरेशन, कोसी योजना आदि सामयिक घटनाओं से परिचित कराता चलता है।

जितेन के पिता जमींदार होने के कारण सामन्तवाद के आधार स्तम्भ थे और उनके समय की परिस्थिति का चित्रण कर सामन्तवादी अनाचार और अत्याचार का विस्तृत चित्रण किया गया है। जितेन जब गाँव वापस लौटता है तब जमींदारी उन्मूलन योजना कार्यान्वित होती है और उसके परिणामस्वरूप जमींदार और किसान सभी दूसरों की जमीन हड़पने का दौर-दौरा प्रारम्भ होता है, जिससे ग्राम का वातावरण अशान्त हो उठता है। इस अवसर का लाभ उठाने के ध्येय से राजनीतिक दल क्रियाशील हैं और अनेक ग्रामनेता विभिन्न स्वार्थों से प्रेरित हो जनता के नेतृत्व का दावा करते हैं।

इसके साथ ही योजनाओं के प्रति ग्रामीणों की उपेक्षा, किसानों और भूमिहीनों के पारस्परिक विरोध, राजनीतिक पार्टियों के दाँव-पेंच के अनेक रग विरगे चित्र लेखक की रिपोर्ताज शैली मे सजीव हो उठे है। ये राजनीतिक हलचलें आर्थिक, सामाजिक एव नैतिक समस्याओं के अश रूप में है, अन्त अपना विशिष्ट स्थान नही बना सकी है।

सच तो यह है कि 'परती परिकथा' मे कथा तथा नायक को विशेष महत्व मिला ही नही है। जितेन्द्र और ताजमनी उल्लेखनीय पात्र होने पर भी नायक और नायिका की कोटि मे नही रखे जा सकते। जितेन्द्र मे निर्माणकारी तत्व सक्रिय हैं और उसकी कल्पना का ग्राम 'पंचचक्र' मे देखा जा सकता है। नागरी तथा ग्रामीण जीवन को निकट से देखने पर वह इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि 'प्रतिबन्धन के खोये हुए सूत्र को खोज कर निकालना होगा। नही तो इस सार्वभौम रिक्तता से मुक्ति की कोई आशा नहीं।' इसीलिए वह गाँव से विषम परिस्थितियों के बीच वह भूले हुए सांस्कृतिक आयोजनों को पुनरुज्जीवित करने का प्रयास करता है और उसकी वास्तविक सिद्धि 'पचचक्र' मे निर्देशित है।

अन्तर्जातीय विवाह बनाम राजनीति

हरिजन शिक्षिका मलारी तथा भूमिहर सुवशलाल मे प्रणय-व्यापार सामाजिक विद्रोह का प्रतीक होते हुए भी समय की पुकार का एक अग है। इस स्वच्छन्द प्रेम को समयानुसार बनाने की दृष्टि से ही कांग्रेसी मन्त्री द्वारा घोषणा करायी गयी है कि हरिजन बाला से जो सवर्ण जातीय युवक वैवाहिक सम्बन्ध करेगा, उस मानवीय सद्‌प्रवृत्ति

प्रदान की जावेगी। वस्तुतः यह कांग्रेस के हरिजनोद्धार का ही एक सक्रिय एवं सामयिक उदाहरण है।

'रेणु' के उपन्यासों की विशिष्टताएँ

'रेणु' के आंचलिक उपन्यासों में ओघ प्रवाह शैली में ग्रामीण सामाजिक जीवन का जो यथार्थ एवं निरपेक्ष चित्रण मिलता है, वह हिन्दी उपन्यास साहित्य में अतुलनीय है। ग्रामविशेष के माध्यम से भारतीय ग्रामों का उनके निवासियों की सत् और असत् प्रवृत्तियों का ऐसा सूक्ष्म अंकन अन्य उपन्यास में अभी देखने को नहीं मिलता। यथार्थवादी ढंग से चित्रण होने पर भी इन उपन्यासों में आलोचक की कटुता का अभाव है। इस रूप में रेणु अन्य समाजवादी यथार्थवादी उपन्यासकारों से अलग प्रतीत होते हैं। उनके उपन्यासों में ध्वनित आशावाद और मानवतावाद जीवन के द्वन्द्वात्मक रूप के अनुकूल है, जो सामूहिक जीवन और उसकी शक्ति को प्रतिबिम्बित करती है। ये पाठकों में वैचारिक तनाव उत्पन्न करने में सक्षम हैं और इसका कारण उपन्यासकार का अपना विशिष्ट गुण है। उनकी औपन्यासिक कला में यथार्थता की अनुकृति का प्रयत्न है और हास्य-व्यंग्यगर्भित शैली में अनेक राजनीतिक प्रसंग एवं पात्र सजीव हो उठे हैं। किन्तु इस पर भी इस तथ्य से भी आँखें नहीं मूँदी जा सकती कि इन उपन्यासों में बहुत कुछ नया होते हुए भी क्रमबद्ध कथानक और अन्तर्बाह्य द्वन्द्वों से विकसित व्यक्तित्व का अभाव है और सम्भवतः इसका मूलकारण आंचलिकता के प्रति लेखक का पूर्वग्रह ही है।

हीरक जयन्ती

नागार्जुनकृत 'हीरक जयन्ती' में कांग्रेस प्रशासन और प्रशासकीय दल के नेताओं की दुर्बलताओं और व्याप्त भ्रष्टाचार के एक पहलू व्यक्तिपूजा और उसको साधन बनाकर अपनी स्वार्थसिद्धि की कहानी व्यंग्यात्मक ढंग से वर्णित है।

उपन्यास के विवरणात्मक कथानक में एक प्रदेश (सांकेतिक रूप से बिहार) के मुख्य मन्त्री बाबू नरसन नारायण सिंह की हीरक जयन्ती (जो ७५ वर्ष के स्थान पर ७१ वर्ष की आयु में ही मना ली जाती है) मनाने और उक्त अवसर पर उसको अभिनन्दन ग्रन्थ तथा इकहत्तर हजार रुपयों की थैली भेंट करने के आयोजन की तथा-कथा चित्रित है। इस मुख्य प्रसंग को केन्द्र बिन्दु बनाकर उपन्यासकार ने हीरक जयन्ती के आयोजन की तैयारियाँ तथा समारोह समिति के सदस्यों के जीवन का कच्चा चिट्ठा प्रस्तुत कर कथावस्तु का बाना है और कांग्रेसियों पर व्यंग्य कसे हैं।

कथानक के अनुसार केन्द्रीय सरकार के एक मिनिस्टर को अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट करने का आयोजन कलकत्ते के पूँजीपति करते हैं। उस समारोह से प्रेरणा ले मृगांक

जो अपने प्रदेश के मिनिस्टर बाबू नरपतनारायण सिंह की हीरक जयन्ती मनाने तथा अभिनन्दन ग्रन्थ प्रदान करने की योजना बनाते है। इसे मूर्त रूप देने के प्रयास के सन्दर्भ मे समारोह-समिति के गठन, समिति के पन्द्रह सदस्यों के कलुषित जीवन के उद्घाटन, समिति की बैठको और चन्दा एकत्र करने की कार्य-विधियो तथा समारोह के व्यंग्य-पूर्ण विवरणो का समावेश कर जयन्ती वाली रात्रि को मन्त्री महोदय की पुत्री मृदुला के अपने प्रेमी के साथ भाग जाने की घटना को कथा से उपन्यास की परिसमाप्ति होती है।

'हीरक जयन्ती' का कथानक विस्तार के अभाव मे विवरण मात्र बनकर रह गया है। कथानक मे 'रिपोर्टिंग' की छाप है और उपन्यास मर्म को छू सकने मे असमर्थ है। पात्रो का चरित्र कथा के स्वाभाविक घात-प्रतिघात से विकसित न होकर लेखक द्वारा वर्णित होने के कारण प्रभावहीन है। उपन्यास मे कथा स्वल्प है और जो है भी, वह संगठन तथा परस्पर सम्बद्धता के अभाव मे विवरणात्मक अंशो के बाहुल्य से बोझिल है।

एक समीक्षक ने ठीक ही लिखा है कि कोई स्थिति, कोई घटना, कोई व्यक्ति और व्यक्ति का कार्य समाज पर अपने व्यापक अच्छे बुरे प्रभाव के सन्दर्भ मे ही अच्छा बुरा होता है और *प्राणी पर उसकी वांछित सचेतन प्रतिक्रिया तभी होती है, जब प्राणी* पर पडने वाले प्रभावो के सन्दर्भ मे उन सबका चित्रण हो। इस सहज गुण का इस उपन्यास मे नितान्त अभाव है। यही कारण है कि नागार्जुन शासक वर्ग की यशोलिप्सा और उसकी आड मे होने वाले भ्रष्टाचार की विडम्बना के मर्म तथा उसके समाज एव प्रगति-विरोधी रूप का पर्दाफाश कर सकने मे असमर्थ नही हो सके हैं।[1] अस्तु, भविष्य मे इस सम्बन्ध मे उनसे एक स्वतन्त्र औपन्यासिक कृति की अपेक्षित माँग की जा सकती है।

अनबुझी प्यास

दुर्गाशंकर मेहता कृत बुंदेलखण्डी ग्रामीण जीवन पर आधारित 'अनबुझी प्यास' मे भी राजनीतिक संस्पर्श मिलता है। यद्यपि यह उपन्यास का मुख्य प्रतिपाद्य नहीं है। भूमिका-लेखक प० द्वारकाप्रसाद मिश्र के शब्दो मे सन् १९२०-२१ तथा १९३०-३१ के राष्ट्रीय आन्दोलन ने हमारे देहातो के स्थिर एव शांत जीवन मे भी प्रवाह और चेतना ला दी थी। उसकी झलक भी इस उपन्यास मे हमे अच्छी तरह दिखायी देती है। राष्ट्रीय संघर्षों का तथा ग्रामीण जीवन पर पडने वाली प्रतिक्रियाओं का चित्रण भी

---

१ आलोचना, अंक २८, अक्टूबर, १९६३

यथार्थ हुआ है, जो हमें हिन्दी उपन्यास-सम्राट् प्रेमचन्द जी का स्मरण दिलाता है।' 'अनबुझी प्यास' में राजनीतिक भाव गहरा नहीं है, तथापि किसानों के बीच फैलती चेतना का आभास अवश्य मिलता है। राष्ट्रीय आंदोलनों के परिणामस्वरूप किसानों में जो राजनीतिक चेतना आयी थी, उसका पता हमें पात्रों के कथोपकथन में मिलता है—

रामलाल—किसान अपनी किस्मत जरूर पलट सकता है। ३५ करोड़ में से वे २६ करोड़ हैं। बताओ तो सही, इन २६ करोड़ का आठवाँ भाग भी यदि सिर ऊँचा कर दे तो किसकी ताकत है कि उसे दबा सके? किसका सामर्थ्य है कि उसका सामना कर सके? यह लाचार जब तक सोता है तभी तक खैर समझो। जिस दिन वह जागेगा, इस देश की छोर से छोर तक हिला देगा। रूस के किसान और मजदूरों ने वहाँ का राज उलट दिया। ऐसा ही होगा। जैसा वहाँ आज उनका राज है, इस देश में भी एक दिन वैसा ही होगा। सारी दुनियाँ में किसानों और मजदूरों का राज हो कर रहेगा।'[1] और भवानी भी मानता है 'जो रूस में हुआ वह एक दिन यहाँ न हो सकेगा? लगभग उतना ही बड़ा देश है बल्कि आबादी में यह बड़ा है। किसानों की हालत भी वैसी ही खराब है। परन्तु यह बात नहीं है। इन्हें अपनी शक्ति का मान नहीं है। महात्मा जी ने कानों में मन्त्र तो फूँका है, पर वह अभी तक पूरी तरह ढँग नहीं है।'[2] सच्चे भारतीय समाजवादी दृष्टिकोण की परख हम लेखक में यहीं मिलती है।

राजनीतिक स्थिति और घटनाओं का चित्रण

'अनबुझी प्यास' में सन् १९२१ के असहयोग आन्दोलन के विभिन्न तथ्यों का संकेत भी मिलता है। राष्ट्रीय शालाएँ प्रारम्भ होने, कांग्रेस के मेम्बर बनाने के अभियान, कांग्रेसियों की गतिविधियों का अंकन इसी के अन्तर्गत हुआ है। कांग्रेसियों की स्थिति पर प्रकाश डालते हुए कहा गया है 'छोटे-छोटे गाँवों में सिर छिपाने की जगह नहीं मिलती, खासकर रैयतवारी मौजों में तो वहाँ का पटेल, जो अपने को एक तरह का सरकारी दर्जा मानता, कांग्रेस वालों को घर में पैर न रखने देता था। तब वे किसी गरीब किसान की गोशाला की निराकर आतिथ्य स्वीकार कर लिया करते। उनके पीछे पुलिस लगी रहती।'[3]

कांग्रेस की तत्कालीन गतिविधियों का उनकी सभाओं का विवरण भी मिलता है।[4] राजनीतिक चेतना का प्रसार बच्चों तक में हो गया था—कांग्रेसियों का देख एक

१ दुर्गाशंकर मेहता अनबुझी प्यास, पृष्ठ ६३
२ दुर्गाशंकर मेहता अनबुझी प्यास, पृष्ठ ६४
३ दुर्गाशंकर मेहता अनबुझी प्यास, पृष्ठ १२२
४ दुर्गाशंकर मेहता अनबुझी प्यास, पृष्ठ १२३

बच्चा पूछता है—'काय बऊ जे गादीबारे आयें।' तो दूसरा कहता है—'हट ! छुलाज वाले आयें।'[1]

कांग्रेसी वस्तुत गांधी टोपी और खद्दर के कपड़े से ही पहचान लिये जाते थे। वे इसीलिए 'सफेद कपड़े की नकली गांधी टोपी लगाते थे। उन दिनों खादी न मिलने के कारण किसी भी सफेद कपड़े की किश्तीनुमा टोपी को लोग गांधी टोपी कहने।'[2]

रमपुरा ग्राम की कहानी के माध्यम से नमक-सत्याग्रह का विवरण दिया गया है। मानेगांव मे जगल सत्याग्रह का जो चित्रण किया गया है, वह भी सजीव और प्रभावोत्पादक है।[3]

नौकरशाही की स्थिति

उपन्यास मे समसामयिक नौकरशाही की गतिविधियो का उल्लेख भी अनेक प्रसगो पर आया है। गांधी जी के सरकारी पद-त्याग का आह्वान करने पर जो स्थिति थी, उसके बारे मे कहा गया है 'छोटे नौकरों मे तो भी कुछ पैंदी रही आती है, पर बडो की तो घिसघिसाकर बिलकुल गोल हो जाती है। गांधी महात्मा की पुकार पर कितने कितने छोटे नौकरो ने नौकरियां छोड दी थीं ! स्कूल मास्टरो ने, पुलिस के सिपाहियो ने, दफ्तरो के बाबुओ ने सभी जात के छोटे नौकरो मे से बहुता ने छोड दी।'[4]

इतना होने पर भी नौकरशाही का अत्याचार कम न हुआ। पुलिस के अन्याय[5] और जेल-जीवन[6] की यातनाएं बढी और जिनका उपन्यास मे अकन किया गया है।

अवसरवादी कांग्रेसी

नौकरशाही की आलोचना के साथ-साथ लेखक और कांग्रेसी मत्री श्री दुर्गाशंकर मेहता ने अवसरवादी कांग्रेसियो की स्वार्थपरता का पर्दाफाश कर अपने निष्पक्ष, ईमानदार साहित्यिक व्यक्तित्व का परिचय दिया है।

---

१. दुर्गाशकर मेहता अनबुझी प्यास, पृष्ठ १२४
२ दुर्गाशकर मेहता अनबुझी प्यास, पृष्ठ १२४
३ दुर्गाशकर मेहता अनबुझी प्यास, पृष्ठ २३१-३५
४ दुर्गाशकर मेहता अनबुझी प्यास, पृष्ठ ८०
५ दुर्गाशकर मेहता अनबुझी प्यास, पृष्ठ ३६६-६७
६ दुर्गाशकर मेहता अनबुझी प्यास, पृष्ठ ३६२-६५

पुलिस कान्स्टेबिल तिवारी बाबा रिपुदमनसिंह से बतलाता है : 'जब से सौराज का हल्ला उठा है, वह भी (ऊपरी आमदनी) भी जाती रही, रसद बिगार सब एकदम बन्द हो गया . सो भी महराज हम गरीबों ही का—बड़े लोग अभी पाते चले जाते हैं—उनकी चाँदी जैसी की तैसी गलती रहती है—हम छुटभैयों को दबाते हैं—पर अफसरों का मजीजी वे ही लोग किये जाते हैं, जो बड़े-बड़े लेक्चर बघारते है। प्लेटफार्म पर खड़े हो, सो ऐसा बकते है, जानो एक फूंक म राज लौटा देंगे —पर घर में जाके दरोगा लोगों के सग हँसते बोलते है बैठते-उठते हैं—खूब छनती है—खुशामद-बरामद करते हैं—और तो और बाबा जी ! मैंने आँखों देखा है, गाँधी टोपी वाले खुद उनकी मुट्ठी गरम करते हैं—दलाली भी करते हैं।'[1]

उपन्यास का एक कांग्रेसी पात्र है 'देशसेवक', छापेखाने का मालिक नवल किशोर वर्मा। खद्दर पहनते हैं, एक बार जेल भी हो आये हैं। इतना होने पर भी वे 'किसानों का बिगुल' नामक परचा नहीं छापते। उनका कथन है . 'देश प्रेम के लिए आदमी जहल जा सकता है, जरूरत हो तो फाँसी के तख्ते पर चढ़ सकता है, पर खुद अपने हाथों अपने बाल बच्चों को जहर नहीं दे सकता—अपनी जायदाद नहीं लुटा सकता।'[2]

कांग्रेसी पात्र

गाँधी युग का उपन्यास होने के कारण 'अनबुझी प्यास' में कांग्रेसी पात्रों की उद्भावना स्वाभाविक है। सीताराम वकील, भवानी, ब्रजभूषण और धीरजसिंह जैसे पात्र कांग्रेस के नेतृत्व में हुए राष्ट्रीय आन्दोलनों की ही देन है। सीताराम वकील यद्यपि सक्रिय कांग्रेसी नहीं है, किन्तु उसके अनुयायी तो है ही। वे नेम से खादी पहनते, मेम्बर बनते और कांग्रेस कमेटी को अपनी आमदनी के एक निश्चित भाग को प्रतिमाह भेंट किया करते। उन्होंने कुछ वकीलों के सग मिलकर एक सभा बनायी, जो गरीबों को मुफ्त सलाह देती और सफाई सच्ची होने पर बिना फीस पैरवी करती।[3] वे पक्के सिद्धान्तवादी है।

ब्रजभूषण एक ऐसा पात्र है, जो सोचते थे 'वर्ष बीतते बीतते स्वराज्य मिल जायगा। गाँधी जी ने कह ही दिया है फिर क्या है, इस देश में सोना बरसने लग

---

१ दुर्गाशंकर मेहता . अनबुझी प्यास, पृष्ठ १६६-१६७

२ दुर्गाशंकर मेहता अनबुझी प्यास, पृष्ठ ४८२

३ दुर्गाशंकर मेहता अनबुझी प्यास, पृष्ठ ११७

जायेगा।'[1] गाँवों का स्वराज्य मिलने पर दो दिनों में ठीक कर लेंगे। पर बरस बीता, दूसरा बीतने आया। गया जी की कांग्रेसी देखो और रचनात्मक काम के बहाने गाँव सुधारने हेतु गाँव में बस गये। वे मानने लगे कि 'राष्ट्र-निर्माण तभी हो सकता है, जब बुनियाद पक्की डाली जाय। कच्ची नींव की इमारत चदरोजा हुआ करती है। हमें तो स्थायी और मजबूत काम करना है। देश की बुनियाद कहो अथवा उसका पाया कहो, उसके सात लाख गाँव हैं।'[2] इसी को आधार बनाकर वे भण्डा सत्याग्रह में भाग नहीं लेते और 'सहकारी खेती' को प्रोत्साहित करने के लिए 'भाई-बन्दी सभा' कायम करते हैं। ब्रजभूषण का चरित्र भी सीताराम वकील के सदृश ही अविकसित रह गया है।

भवानी का व्यक्तित्व भी कांग्रेसी पात्र के रूप में उभरा है। भवानी को कांग्रेस का चवन्नी सदस्य बनकर अनुभव होता है : 'मैं उस महासभा का मेम्बर हूँ, जिसकी धाक आज यह अंग्रेजी राज्य भी मानता है, जिसका मान देश-विदेश में फैला हुआ है, जिसकी सत्ता को लगभग सभी हिन्दू तो मानते ही हैं, बड़े-बड़े मुसलमान मुखिये और विख्यात मौलवी भी मानते हैं।'[3] अपने भाई की चिन्ता का वह व्यक्त करते हुए कहता है 'भाई कांग्रेस के नाम से डरता है, कि जो कांग्रेस में भरती होता है, अगर उसमें टिका रहे तो एक न एक दिन जहल गये बिना न रहेगा। उसका एक पाव जहल ही में रहा आता है।'[4] इतना होने पर भी भाई के प्रति पूर्ण श्रद्धा के साथ वह आन्दोलनों में सक्रिय भाग लेता है। वह किसानों को संगठित करता है और 'किसानों का बिगुल' नामक परचा बाँटते हुए पकड़ा जाता है। उसे डेढ़ साल की सजा होती है और वह खतरनाक माना जाने के कारण अलग गुनाहखाने में रखा जाता है।

धीरजसिंह का आंशिक राजनीतिक जीवन 'जङ्गल सत्याग्रह' के माध्यम से व्यक्त हुआ है। गोबिन्द के शब्दों में 'महात्मा जी ने यहाँ मिट्टी के पुतलों में भी जान फूंक दी है। देखने नहीं ये धीरज कितना सीधा था, बोलने में सकुचता था, उसी को आज देखो तो ताज्जुब होता है- कितना कर्मठ हो गया है।'[5] धीरज का उपन्यास में जितना व्यक्तित्व उभरा है, अच्छा बन पड़ा है।

गांधीवाद और लेखक

उपन्यासकार स्वयं गांधीवादी राजनीतिक रहे हैं, अतः उपन्यास में प्रसंगानुसार

---

१ दुर्गाशंकर मेहता : अनबुझी प्यास, पृष्ठ १२४
२ दुर्गाशंकर मेहता : अनबुझी प्यास, पृष्ठ १२६
३ दुर्गाशंकर मेहता : अनबुझी प्यास, पृष्ठ २७५
४ दुर्गाशंकर मेहता : अनबुझी प्यास, पृष्ठ २५७
५ दुर्गाशंकर मेहता : अनबुझी प्यास पृष्ठ २४८

गाँधीवादी तत्वों की विवेचना उन्होंने पात्रों के माध्यम से की है। अहिंसा, सत्याग्रह, साध्य के अनुरूप साधन की पवित्रता, सहकारी खेती आदि विषयों पर लेखक ने अपने विचार व्यक्त किये हैं।

भवानी और गोविन्द की वार्ता के द्वारा अहिंसा पर जो विचार व्यक्त किये गये हैं, वे वस्तुत गाँधी जी के ही कथन है। यथा–निश्शस्त्र देश सरकार की संगठित निरकुशता का सामना हिंसा से कभी नहीं कर सकता।' 'सच्ची अहिंसा बलवा नहीं की अहिंसा है–कायर कमजोर तो शक्तिहीनता के कारण भी अहिंसक बन सकता है–सच्ची अहिंसा वह है कि कमर में तलवार कसे हुए भी हम केवल इसलिए सिर झुका दें, क्योंकि हमारे मन में बदले की भावना मर चुकी है।'[1]

व्रजभूषण सत्याग्रह की महत्ता पर विचार व्यक्त करते हुए कहते हैं–'तोप तलवार के सहारे कितने दिन कोई राज चला सकता है अंग्रेजी राज की तह के नीचे भले ही पाशविक संहारकारिणी शक्ति जाग रही हो, परन्तु रोजमर्रा का राजकर्म तो चाँदी की चमकीली गोलियों और निरी पोली धाक के जरिये होता है। सत्याग्रह उसी धाक के नष्ट करने की दवा है।'[2]

व्रजभूषण साध्य के अनुरूप साधन की पवित्रता पर बल देते हुए गाँधी जी के कथन को उद्घृत करते हैं—'महात्मा गाँधी ने बारम्बार चेतावनी दी है, उन्होंने सैकड़ों बार कहा है कि अंग्रेजी कहावत है कि ध्येय की प्राप्ति के लिए कैसे भी उपायों का प्रयोग किया जा सकता है, सर्वथा मिथ्या है। होना यह चाहिए कि साधन के अनुरूप ही साधन भी पवित्र हो, शुद्ध उद्देश्य के उपकरण भी वैसे ही शुद्ध हों—मिथ्या साधनों के प्रयोगों के प्रयोग से साध्य के कलुषित हो जाने का भय है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि उपन्यासकार ने विविध प्रसंगों पर गाँधीवाद के सिद्धान्तों को पुष्ट करने का अवसर निकाल लिया है।

○○○

---

१ दुर्गाशंकर मेहता : अनबुझी प्यास, पृष्ठ २३८
२. दुर्गाशंकर मेहता : अनबुझी प्यास, पृष्ठ २७०

अध्याय ६

हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासों की प्रवृत्तियां एवं कला-पक्ष

> राजनीतिक उपन्यासों का शिल्प-वैशिष्ट्य

> कथानक में राजनीतिक संस्पर्श

- यथार्थता के प्रति आग्रह
- वर्ण्य विषय
- वाद निरपेक्ष
- वाद-सापेक्ष

> कथा-वस्तु के अभिव्यक्ति के ढंग

> वस्तु-विधान की विभिन्न पद्धतियाँ

- विवरण-शैली
- राजनीतिक यात्रा
- दृश्य विधान-शैली
- पनोरमिक उपन्यास
- गठन-शैथिल्य
- विषयाधिक्य एवं कारण

> चरित्र-चित्रण की दृष्टि से

- एकांगी व समतलीय पात्र
- शोषक और शोषित पात्र
- पात्रों के भेदोपभेद
- व्यंग्य-चरित्र
- पात्र-चयन, संख्या और परिधि
- पात्र ऐतिहासिक नहीं, कल्पित

> कथोपकथन की दृष्टि से

- कथोपकथन और कथानक का विस्तार
- पात्रों की व्याख्या
- उद्देश्य का स्पष्टीकरण
- वातावरण की सृष्टि

> वातावरण की दृष्टि से

मुख्य प्रभाव की अभिव्यक्ति

वातावरण और आंचलिकता

> उद्देश्य

> शैलीगत वैशिष्ट्य—भाषा, पात्रानुकूल भाषा, प्रादेशिक बोली और यथार्थ

राजनीतिक उपन्यासों का शिल्प-वैशिष्ट्य

हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासों के विवेचनोपरान्त उनके तत्व एवं रूप-विधान का अध्ययन तात्विक दृष्टि से आवश्यक है। ज्ञान और विज्ञान की प्रगति के परिणाम-स्वरूप समय समय पर अनेक महामनीषियों के सैद्धान्तिक विचारों से प्रभाव ग्रहण करते हुए औपन्यासिक तत्वों की स्थिति में भी दृष्टि-विस्तार होता रहा है। फ्रायड और मार्क्स के सिद्धान्तों ने जीवन की व्याख्या के नये दृष्टिकोण प्रस्तुत किये जिससे उद्देश्य को उपन्यास में निर्दिष्ट स्थान मिला। मार्क्स ने व्यक्ति के आन्तरिक यथार्थ की अपेक्षा सामाजिक यथार्थ जीवन-दृष्टि को महत्व दिया। राजनीतिक क्षेत्र में सामन्तवाद के पराभव एवं श्रमिक शक्ति के विकास से सामान्य व्यक्ति का महत्व बढ़ा और उपन्यास भी इस परिवर्तित स्थिति में साधारण जन-जीवन के 'एलबम' के रूप में सामने आया। इस नये रूप में वह परिवर्तित युग की नयी अभिव्यक्ति का वाहक बना। डॉ० सत्येन्द्र के शब्दों में, 'उपन्यास नये युग की नयी अभिव्यक्ति का नया रूप है। साहित्य के रूपों के उद्भव के सम्बन्ध में यह एक अखण्ड सत्य है कि वे व्यक्ति और युग के शाश्वत और सामयिक रसायन का परिणाम होते हैं।'[1]

जीवन को उसी रूप में जैसा कि वह है, चित्रित करने की प्रवृत्ति से यथार्थोन्मुखता उपन्यास की सामान्य विशेषता हुई। वस्तुतः यह राजनीतिक परिस्थितियों से उत्पन्न प्रतिक्रिया है, जिसने जीवन को नयी दृष्टि दी। जैसा कि पूर्व ही कहा जा चुका है, सामन्तवाद के पराभव से उत्पन्न राजनीतिक स्थिति ने मनुष्य और समाज के पारस्परिक सम्बन्ध को स्पष्ट किया और सामान्य जन महत्ता प्राप्त कर विचार एवं प्रेरणा का स्रोत बना। इसी राजनीतिक चेतना के कारण हिन्दी उपन्यास में आभिजात्य भाव का लोप हुआ और वर्ण्य वस्तु में राजनीतिक प्रभाव परिलक्षित हुआ। इस परिवर्तन को सामाजिक यथार्थवादी दृष्टिकोण का प्रतिफलन भी कहा जा सकता है।

वर्ण्य वस्तु में राजनीति-संस्पर्श

जहाँ तक कथावस्तु का प्रश्न है, राजनीतिक उपन्यास में उसके विन्यास का विशिष्ट महत्व है। इस कोटि के उपन्यास में लेखक राजनीतिक घटनाओं या राजनीतिक विचारधारा को आधार मानकर कथावस्तु की रचना करता है। इस प्रक्रिया में राजनीतिक परिपार्श्व की बड़ी अपेक्षा रहती है और सामाजिक, आर्थिक और वातावरण से

---

१ डा० सत्येन्द्र साहित्य सन्देश (मासिक), अंक जुलाई-अगस्त, १६५६, पृष्ठ ५६

निर्मित कथानक ही विस्तार पाता है। प्रेमचन्द से पूर्व तक हिन्दी उपन्यास में राजनीति की चर्चा उपेक्षित दृष्टि से देखी जाती रही। यह कहना अन्यथा न होगा कि तब तक उपन्यास मनोरंजन के अतिरिक्त समाज, व्यक्ति, राजनीति और जीवन की यथार्थता से दूर था। राष्ट्रीय आन्दोलनों से उत्पन्न राष्ट्रीय चेतना को प्रेमचन्द ने युग निर्धारक शक्ति के रूप में ग्रहण किया और हिन्दी उपन्यास को मानव-कल्याण की भूमिका पर प्रतिष्ठित किया। वे मानते थे कि राजनीति समय को गढ़ती है—युग का निर्धारण करती है। अत उपन्यास जब बाह्य परिस्थितियों से जूझते जीवन की व्याख्या करता है, तब वह राजनीति से अपने को पृथक् नहीं रख सकता, क्योंकि राजनीति सदैव से समाज के सुख दुःख का निर्धारण करने वाली शक्ति रही है। यही कारण है कि प्रेमचन्द के अधिकांश उपन्यास राजनीति प्रभावित समाज की यथार्थ समस्याओं के जीवन्त प्रतीक हैं। नागार्जुन और यशपाल के राजनीतिक उपन्यासों के बारे में भी यही कहा जा सकता है।

भारतीय राजनीति का विकास सामाजिक सुधारवाद के मार्ग से प्रशस्त होने के कारण साहित्य में भी वह उसी ढंग से आया है। हिन्दी उपन्यास में सामाजिक परिपार्श्व में ही राजनीति का प्रभाव परिलक्षित होता है। इसी कारण कहा गया है कि 'सामाजिक और राजनीतिक भावनाओं का परस्पर इस भाँति सम्मिश्रण हो गया कि जिस प्रकार शुद्ध सामाजिक उपन्यास नहीं है, उसी प्रकार शुद्ध राजनीतिक उपन्यास नहीं के बराबर है।'[1] वस्तुतः यह हिन्दी राजनीतिक उपन्यास की उपलब्धि है, जो भारतीय राजनीति के अनुकूल है। इस रूप में सामाजिक कथांश राजनीति का ही पूरक है।

यथार्थता के प्रति आग्रह

उपन्यास साहित्य के अध्ययन से यह तथ्य स्पष्ट रूप से सामने आता है कि उपन्यास की रचना में उपन्यास लेखक स्वतन्त्रता का आग्रह कर उसे मनमाना रूप देता आया है। प्राचीन लेखक मनोरंजनात्मक दृष्टिकोण से उपन्यासों को प्रायः अलौकिक, कल्पनात्मक वैचित्र्य की भूमि पर ही प्रतिष्ठित करता रहा है। किन्तु राजनीतिक उपन्यास में उपन्यासकार पूर्णतः स्वच्छन्द नहीं रह सकता। राजनीति और समाज तथा व्यक्ति और उनकी समस्याएँ यथार्थ वस्तुएँ हैं। फलतः इनको अपनाते हुए उपन्यास यथार्थ की भूमिका से पृथक् नहीं हो सकता। यथार्थ की अपनी सीमाएँ होती हैं और उन सीमाओं का वह अतिक्रमण नहीं कर सकता। यदि वह अपने प्रतिपाद्य के प्रति न्याय करने में असमर्थ रहा तो उसके हाथ केवल असफलता ही आयगी। वास्तविकता को वह उपन्यास से परे नहीं कर सकता। इसी वास्तविकता के साथ ही राजनीतिक उपन्यासों

---

१ श्रीनारायण अग्निहोत्री हिन्दी उपन्यास साहित्य का शास्त्रीय विवेचन, पृष्ठ २८६

में औपन्यासिक तत्व अपनी सत्ता निर्मित करते हैं। विशिष्ट दृष्टिकोण के कारण ही राजनीतिक उपन्यासों में कथावस्तु, चरित्र चित्रण, कथोपकथन, देश काल आदि सभी तत्व किंचित परिवर्तित रूप में मिलते हैं। वर्ण्य विषय के सैन्दर्भ में रहकर ही उसकी कला की सार्थकता है। हिन्दी के प्राय सभी राजनीतिक उपन्यासों में वर्ण्य वस्तु का चित्रण यथार्थता की भूमिका पर हुआ है। प्रेमचन्द के राजनीतिक उपन्यासों में भी आदर्श की गूंज होते हुए भी यथार्थ का समुचित निर्वाह हुआ है। उनके उपन्यासों में आदर्श की जो छाप अंकित है, वह भी गांधीवादी आदर्शवादिता का प्रतिफल है, जिसे समीक्षकों ने 'आदर्शोन्मुख यथार्थ' की संज्ञा दी है।

वर्ण्य विषय

हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासों में वर्ण्य वस्तु दो रूपों में आयी है—एक तो वाद निरपेक्ष और दूसरी वादसापेक्ष। यों कुछ उपन्यासों में इनका मिश्रित रूप भी मिलता है।

वादनिरपेक्ष उपन्यास

वादनिरपेक्ष उपन्यास समसामयिक प्रचलित राजनीतिक सिद्धान्तों से विशेष आबद्ध न होकर भी समाज की समसामयिक परिस्थितियों का आकलन करते हुए अपनी स्वतन्त्र स्थिति नहीं खोते तथापि वे उन अनेक सामाजिक घटनाओं को लेते हुए वाद-सापेक्ष उपन्यासों के क्रम में बहुत दूर नहीं होते। अतएव इतना तो अवश्य होता है कि वाद निरपेक्ष राजनीतिक उपन्यास राजनीतिक घटनाओं पर आधारित रहते हैं और घटनाप्रधान होते हैं। ये ऐतिहासिक उपन्यास के निकट होते हैं और युग की राजनीतिक घटनाओं और वातावरण को यथातथ्य रूप में प्रस्तुत करते हैं। इनके लिए आवश्यक है कि उपन्यासकार को सामयिक राजनीति और सम्पूर्ण वातावरण की जानकारी हो। वाद निरपेक्ष उपन्यास का ध्येय किसी राजनीतिक विचारधारा का प्रचार नहीं होता। वह तो मात्र राजनीतिक घटनाओं और उनसे प्रभावित क्षेत्रों का तटस्थ चित्रण करता है। अनन्तगोपाल शेवडे के 'ज्वालामुखी' और प्रतापनारायण श्रीवास्तव के 'बयालीस' में अगस्त-क्रान्ति का चित्रण इसी विधि से किया गया है। रांगेय राघव के 'विषाद मठ' और अमृतलाल नागर के 'महाकाल' को भी इसी कोटि में रखा जा सकता है। इस प्रकार के वादनिरपेक्ष उपन्यास का कथानक घटना प्रधान होगा, जो एक सूत्र में पिरोयी विभिन्न राजनीतिक घटनाओं की माला के रूप में होता है। यह ऐसा सामयिक आख्यान होता है, जिसमें एक ही कथानक के अन्तर्गत यथार्थ जीवन के निरूपण करने वाले पात्रों का सामयिक घटनाओं की भूमिका पर चित्रण होता है।

वाद सापेक्ष उपन्यास

वाद-सापेक्ष उपन्यास सोद्देश्य होते हैं और निश्चित आदर्शों को लेकर चलते हैं। इस प्रकार के उपन्यासों में लेखक उपन्यासकार के साथ-साथ राजनीतिक नेता के रूप में सम्मुख आता है। वह मान्य राजनीतिक आदर्शों का निर्देश करता है और उसका मुख्य ध्येय होता है समाज को विशिष्ट राजनीतिक दृष्टिकोण के अनुरूप बदलने की प्रेरणा देना। ऐसे उपन्यास प्राय लेखक की मान्यता की सीमा में ही होते हैं।

हिन्दी के वाद सापेक्ष राजनीतिक उपन्यासों को मुख्यत निम्नलिखित श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है —

(१) गाँधीवाद से अनुप्राणित उपन्यास —प्रेमचन्द के 'प्रेमाश्रम', 'कर्मभूमि' व 'रंगभूमि', अनन्तगोपाल शेवडे का 'ज्वालामुखी,' प्रतापनारायण श्रीवास्तव का 'बयालीस'।

(२) साम्यवाद समाजवाद से अनुप्राणित उपन्यास—यशपाल व नागार्जुन के प्राय समस्त उपन्यास, राजेन्द्र यादव का 'उखड़े हुए लोग,' नित्यानंद वात्स्यायन का 'केलाबाडी' अमरकांत का 'सूखा पत्ता,' अमृतराय व भैरवप्रसाद गुप्त के के प्राय सभी उपन्यास।

(३) सर्वोदयी भावना के उपन्यास अमृतलाल नागर का 'बूँद और समुद्र' और नागार्जुन का 'दुखमोचन।'

(४) सम्प्रदायवाद से प्रेरित उपन्यास—गुरुदत्त के प्राय सभी राजनीतिक उपन्यास सम्प्रदायवाद से बोभिल है।

हिन्दी के राजनीतिक उपन्यास —चाहे वे वादनिरपेक्ष हो या वाद-सापेक्ष अनुभवजन्य कथावस्तु को लेकर ही चले हैं। अधिकांशत इन उपन्यासों में कल्पना का उपयोग आकर्षण-वृद्धि के लिए किया गया है और अतिशयता से बचने का प्रयास है। ऐतिहासिक यथार्थता को ग्रहण करने के प्रति इन उपन्यासकारों का पूर्ण आग्रह रहा है। प्रेमचन्द, रेणु, नागार्जुन, मन्मथनाथ गुप्त गुरुदत्त और अचल, सभी ने अपने राजनीतिक उपन्यासों में वास्तविकता को कथावस्तु के माध्यम से ही उभारा है। यह युगविशेष का अध्ययन करके उसके किसी खण्ड के वास्तविक वातावरण की चित्रण की सफल कृति हैं। इनमें कथावस्तु के संयोजक तत्वों के सुमेल से वांछित राजनीतिक प्रभाव द्रष्टव्य है।

मिश्रित उपन्यास

हिन्दी में ऐसे राजनीतिक उपन्यासों की संख्या भी कम नहीं है, जिसमें राजनीतिक

विचारधारा और राजनीतिक घटनाओं का सम्मिश्रण है। किन्तु इन मिश्रित उपन्यासों में वर्णित घटनाएँ मुख्यतः विशिष्ट राजनीतिक विचारधारा को पुष्ट करने के उद्देश्य से ही सग्रथित की गयी हैं।

कथावस्तु के अभिव्यक्ति के ढंग

हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासों ने कथावस्तु की अभिव्यक्ति के लिए विभिन्न शैलियों का अनुसरण किया है। इनमें अधिकांशतः विवरणात्मक शैली में मिलते हैं। इनमें उपन्यासकार इतिहासज्ञ की भाँति पूरे विवरण प्रस्तुत करता चलता है तथा महाकाव्य के प्रणेता की भाँति पात्रों के नाटकीय कथोपकथन के माध्यम से घटनाओं को अग्रसर करने और स्वयं को उद्घाटित करने का अवसर देता है। प्रेमचन्द के समस्त राजनीतिक उपन्यास, देवेन्द्र सत्यार्थी का 'कठपुतली,' विष्णु प्रभाकर का 'निशिकान्त,' भगवतीचरण वर्मा का 'टेढ़े मेढ़े रास्ते,' अमृतराय का 'बीज,' भैरवप्रसाद गुप्त का 'सत्ती मैया का चौरा,' रांगेय राघव का 'सीधे-सादे रास्ते' इत्यादि उपन्यास इसी शैली में लिखे गये हैं।

जैनेन्द्र का 'सुखदा,' अज्ञेय का 'शेखर एक जीवनी,' नागार्जुन का 'बलचनमा' और रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' का 'उल्का' आत्मकथात्मक शैली में लिखे गये राजनीतिक उपन्यासों के उदाहरण हैं। इन उपन्यासों में पात्र आत्मकथा के माध्यम से घटना-विस्तार करते हैं। घटनाओं और पात्र को सजीव बनाने की दृष्टि से इन उपन्यासों में पूर्वदीप्ति पद्धति का प्रयोग भी मिलता है।

रेणु ने 'परती परिकथा' में चेतना-प्रवाह-पद्धति को अपनाकर चरित्रों के अन्तर्मन की थाह लेने की चेष्टा की है। इस रूप में उपन्यास इन्द्रियग्राह्य यथार्थ को अधिक गम्भीरता से ग्रहण करने को प्रेरित करता है।

हिन्दी उपन्यास-साहित्य में प्रणाली के रूप में छिन्नदलमल और कदलीपात विलोम शैली के उदाहरण भी मिलते हैं। छिन्नदल कमल के रूप में लेखक देश विदेश की असम्बद्ध घटनाओं को कथानक का ढाँचा देता है और उद्देश्य विभिन्न क्षेत्रीय व्यक्तियों के जीवन की साधारण घटनाओं को लेकर कतिपय जीवन-स्वरूप उपस्थित कर देता है। यशपाल का 'देशद्रोही' उपन्यास ही इस शैली का एकमात्र उदाहरण है।

कदलीपात विलोम के रूप में लेखक घटनाओं को ऐतिहासिक कालानुक्रम में प्रस्तुत न करके उन्हें नवी[illegible] कालानुक्रम दे देता है। जैनेन्द्र के अप्रका० राजनीतिक उपन्यास 'कल्याणी' में इ[illegible] मिलता है।

पत्रात्मक [illegible] न देने[illegible]नी पद्धति में हिन्दी का एक भी राजनीतिक उपन्यास नहीं लिखा गया।

राजनीतिक उपन्यास के विवरणात्मक स्वरूप के कारण महाकाव्यात्मक रूप ही अधिक उपयुक्त सिद्ध हुआ । आत्मकथात्मक रूप में भी इसे आंशिक सफलता मिली है और 'बलचनमा' इसका उदाहरण है ।

वस्तु-विधान की पद्धतियाँ

आधुनिक औद्योगिक युग की छाया में राजनीतिक वर्ण्य वस्तु के कारण आधुनिक हिन्दी उपन्यास में एक नया मोड़ आया । यह परिवर्तन केवल वस्तु में नहीं, अपितु वस्तु-विधान में हुआ । सच तो यह है कि आधुनिक राजनीति और समाज के यथार्थ से परे किसी उपन्यास का सर्जन ही असम्भव हो रहा है, वही आधुनिक उपन्यास की यथार्थ आधुनिकता है । यद्यपि उसकी अभिव्यजनात्मक पद्धतियों की अनेक श्रेणियाँ वर्गीकृत हुई हैं । राजनीतिक उपन्यासकार इस तथ्य से परिचित प्रतीत होते हैं कि केवल घटनाओं को एकत्र करने से ही कोई उपन्यास नहीं रचा जा सकता । पर्सी लब्बक का मत है कि *उपन्यास घटनाओं की शृङ्खला मात्र नहीं है । वह एक सम्पूर्ण चित्र या आलेख* है, जिसमें रूप, प्रवचन एवं समानुविधान भी आवश्यक होता है । राजनीतिक उपन्यास में वस्तु विधान का विशिष्ट महत्त्व है, क्योंकि उसकी कुशलता से ही घटनाओं, पात्रों और वातावरण का उद्देश्य की पूर्ति के लिए निर्वाह किया जा सकता है । राजनीतिक उद्देश्य को लेकर राजनीतिक उपन्यास की रचना करते समय लेखक नेता की तरह नाना विधि से पाठकों को प्रभावित करने की चेष्टा में रहता है । सम्भवतः यही कारण है कि राजनीतिक उपन्यासों में विभिन्न वस्तु विधान की पद्धतियाँ ग्रहण की गयी हैं । हिन्दी में पनोरमिक, सरितोपम एवं चेतना प्रवाह उपन्यासों की रचना का प्रयास राजनीतिक उपन्यासों की देन है । विवरण शैली में दृश्य-विधान भी राजनीतिक उपन्यासों में ही उभरा है ।

विवरण-शैली

विषय विकास की दृष्टि से अधिकांश उपन्यासकारों ने राजनीतिक उपन्यास की रचना में विवरण शैली को ग्रहण किया है । हिन्दी के प्रथम राजनीतिक उपन्यासकार प्रेमचन्द ने मुख्यतः विवरण शैली में उपन्यासों की रचना की है और आज भी अधिकांश राजनीतिक उपन्यास वस्तु विधान की इसी शैली में लिखे जा रहे हैं । राजनीतिक समस्याओं को लेकर चलने एवं उनके उद्घाटन की सफलता के लिए यह सर्वाधिक प्रचलित शैली हो गयी है । प्रतापनारायण श्रीवास्तव, राधिकारमण प्रसाद सिंह, रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' मन्मथनाथ गुप्त, गुरुदत्त, यज्ञदत्त इत्यादि अनेक उपन्यासकारों ने राजनीतिक उपन्यासों की रचना इसी पद्धति में की है । प्रेमचन्द ने विवरण शैली में दृश्य

विधान और चरित्र-चित्रण मे विश्लेषण-शैली की सयोजना कर कलात्मक वृद्धि की है। जैनेन्द्र के उपन्यास राजनीतिक वर्ण्य वस्तु की दृष्टि से शिथिल हैं, क्योकि वे दृश्यात्मक या व्याख्यात्मक शैली मे हैं। अज्ञेय और इलाचन्द्र जोशी के उपन्यास अशत राजनीतिक है। जोशी जी के 'सन्यासी' और 'निर्वासित' मे दृश्य-विधान अपनाया गया है, किन्तु राजनीतिक पात्रो के तार्किक स्वरूप के कारण वह असतुलित हो गया है। 'शेखर . एक जीवनी' मे विवरण की मनोभाव-व्यंजक शक्ति की एक झलक अवश्य मिलती है, किन्तु लेखक ने जिन प्रवृत्तियों का विवरण प्रस्तुत किया है, वे मनोग्रन्थियाँ निहित हैं और राजनीतिक पक्ष को स्पष्ट करने मे असमर्थ सिद्ध हुई है। अज्ञेय के 'शेखर' एव इलाचन्द्र जोशी के 'मुक्ति-पथ' मे वातावरण को धुँधला बनाकर पात्रो के अन्तर्जगत् को उभारने के प्रयास से राजनीतिक तत्व कुंठित हुए हैं। जैनेन्द्र, जोशी, अज्ञेय और मन्मथनाथ गुप्त के उपन्यासो मे राजनीतिक सस्पर्श फ्रायड के मनोविज्ञान के प्रभाव के कारण हल्का पड गया है। क्रातिकारी पात्रो की अवतारणा करने पर उनके उपन्यासो मे क्राति की लालिमा का अभाव है। इनके उपन्यासो मे व्यक्ति की कहानी प्रमुख होने के कारण क्रातिकारी पात्रो का चयन तो उपयुक्त हुआ, किन्तु उनको वैयक्तिकता यौन समस्या या वैयक्तिक कुठा तक सीमित रखने से राजनीतिक स्वरूप धूमिल हो गया। इन उपन्यासो के आधार पर भारतीय क्रातिकारियो की गणना कामुक व्यक्तियो मे ही की जा सकती है। अमर शहीद भगतसिंह, सुखदेव और आजाद की परम्परा के वे दावेदार कदापि नही कहे जा सकते। इस दृष्टि से इन राजनीतिक उपन्यासो ने हिन्दी के राजनीतिक उपन्यास का अहित ही किया है। या यो कहें कि देश और राष्ट्र-पूजा के मनवाले वीर युवको को लाछित करके उन्हे निम्न स्तर पर उतार कर क्राति की पवित्रता को लाछित किया है, जो देश की नैतिकता एव त्याग की भावना के सर्वथा विपरीत है।

विवरण-शैली का निखरा हुआ रूप आचार्य चतुरसेन के राजनीतिक उपन्यासो मे मिलता है। 'बगुले के पख' और 'उदयास्त' मे चरित्र और वातावरण को मूर्त रूप देने मे वे अत्यधिक सफल रहे है। राजनीतिक पात्रों के बाह्य रूपो, चेष्टाओ और कार्य-विधियो का वे सूक्ष्म विवरण देते हुए वातावरण के साथ साथ पात्रो को मुखरित करते हैं।

राजनीतिक उपन्यासो मे पात्र और दृश्य के सामजस्य का प्रयास भी किया गया है। नागार्जुन के 'रतिनाथ की चाची' व 'बाबा बटेसरनाथ,' देवेन्द्र सत्यार्थी के 'कठ-पुतली' और विष्णु प्रभाकर के 'निमिकांत' मे सूक्ष्म निरीक्षण के साथ विवरण द्वारा पात्रों और दृश्यो के साथ सामजस्य देखने को मिलता है। रांगेय राघव, यज्ञदत्त व नागार्जुन आदि ने मार्मिक प्रसगो को नाटकीय दृश्य के रूप मे प्रस्तुत कर कथानक को विवरण के द्वारा सम्बद्ध किया है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि राजनीतिक उपन्यासो म विवरण शैली के प्रति विशेष आग्रह के साथ उसे विविध पद्धतियों स परिमार्जित करने का प्रयत्न भी *किया गया है।*

पात्रो के आधार से

राजनीतिक धारणाओ और तदनुकूल जीवन-पद्धति के आधार पर भी वर्ण्य वस्तु म पात्रो का एक विशिष्ट रूप दिखलायी पडता है। इसके आधार पर पात्रो को निम्नानुसार वर्गीकृत किया जा सकता है--

१—गाँधीवादी
२—समाजवादी
३—साम्यवादी
४—हिन्दुत्ववादी
५—आतकवादी

गाधीवादी पात्र गाँधीय जीवन-दर्शन तथा समाजवादी पात्र मार्क्सीय जीवन-दर्शन के अनुरूप अपने व्यक्तित्व को मडित करते है या यह कहा जा सकता ह कि उनकी (राजनीतिक) गतिविधियाँ वाद विशष से सचालित होती हैं। हिन्दुत्वादी पात्र हिन्दू महासभा व जनसघ आदि दलो की मान्यताओ के प्रतिरूप होते है और राष्ट्रवादी भावना को व्यक्त करते है। समान विचारधारा के आधार पर व्यक्तित्व ग्रहण के कारण वे प्राय समान रूप होते हैं। इन पात्रों को उदाहरणस्वरूप देखा जा सकता है--

गाँधीवादी पात्र— निशिकान्त' का कुमार, अमरबेल' का डॉ० सनेही बया लीस' का दिवाकर, 'रगभूमि का सूरदास, 'रैन अँधेरी' के आनन्दकुमार आदि।

समाजवादी साम्यवादी पात्र—'सत्ती मैया का चौरा का मन्नी, केलाबाडी' का भरावा, 'बलचनमा' का बलचनमा, 'वरुण के बेटे' का मोहन माँझी 'गगा मैया' का मटरू, 'दादा कामरेड' का दादा व हरीश, टेढे मेढे रास्ते' का उमानाथ आदि।

साम्प्रदायवादी पात्र—'धर्मपुत्र' का दिलीप।

आतकवादी पात्र —

इस प्रकार राजनीतिक सिद्धातो के आधार पर वर्गीकृत करने पर भी ये स्थिर व विकसनशील पात्र के ही रूप हैं और वर्ण्य वस्तु के परिवेश म राजनीतिक मान्यताओ का मुखौटा लगाकर सामने आते है।

दृश्य-विधान शैली

विवरण शैली के अतिरिक्त दृश्य विधान शैली को भी राजनीतिक उपन्यासो म

स्थान मिला है। दृश्यात्मक उपन्यास में कथावस्तु के मार्मिक प्रसंगों को मूर्त दृश्य के रूप में प्रस्तुत कर भाव और रूप को संतुलित रखने का प्रयास किया जाता है।

विवरण शैली के सदृश दृश्य विधान-शैली का प्रयोग भी सर्वप्रथम प्रेमचन्द ने ही किया। हिन्दी के प्रथम राजनीतिक उपन्यास 'प्रेमाश्रम' में उन्होंने विवरणात्मक दृश्य दिये, जो बाद में 'रंगभूमि,' 'गबन' और 'गोदान' में अधिक कुशल संयोजना के साथ चित्रित हुए। दृश्य विधान शैली का उत्कृष्ट रूप रेणु के 'मैला आँचल' व 'परती : परिकथा' में दृश्य तत्कालीन सामाजिक-राजनीतिक धरातल का ज्ञान कराते हैं। 'शेखर एक जीवनी' (भाग १) व भगवतीचरण वर्मा के 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते' में भी दृश्य-पद्धति का उपयोग किया गया है।

यशपाल के 'दादा कामरेड' व 'मनुष्य के रूप,' जैनेन्द्र के 'सुखदा' व 'विवर्त,' प्रतापनारायण श्रीवास्तव के 'विनाश,' 'विसर्जन' व 'बयालीस' में दृश्यों और विवरण का संतुलित संयोग मिलता है। हिन्दी के अधिकांश राजनीतिक उपन्यास इसी पद्धति पर विकसित हुए हैं। राजनीतिक उपन्यासों में कथा-तत्व और राजनीतिक व्याख्या के महत्व की दृष्टिगत रख विवरण और दृश्य विधान-शैली का संतुलित संयोग ही उसे पुष्ट कर सकता है, यह कहना असंगत न होगा।

दृश्यात्मक शैली में घटनाएँ हैं। जिस प्रकार स्नायुमण्डल के बिना हम शरीर रचना की कल्पना नहीं कर सकते, उसी प्रकार घटनाओं के जाल के बिना उपन्यास के ताने-बाने की रचना नहीं हो सकती। राजनीतिक उपन्यासों में घटनाओं की गति में प्रवाह होता है और प्रवाह, दोनों का सम्यक् योग स्वाभाविकता प्रदान करता है। राजनीतिक उपन्यास में घटनाएँ स्मृति प्रधान होती हैं। स्मृति घटनाओं की अटूट शृङ्खला में विस्तार पाती है। घटनाएँ स्मृति में जन्म पाती हैं और स्मृति में लय हो जाती हैं। किन्तु *संयोजन क्रम में विस्मृति का महत्व स्मृति से कम नहीं। जैनेन्द्र के उपन्यास* इसके अच्छे उदाहरण हैं।

पनोरमिक उपन्यास

पहले ही कहा जा चुका है कि हिन्दी उपन्यास में राजनीतिक तत्वों के कारण वस्तु विधान की नूतन पद्धतियों को अपनाने को अपनाने का प्रयास किया गया है। राजनीतिक परिपार्श्व में समाज के विभिन्न रूपों का जब व्यापक चित्रण आवश्यक समझा जाने लगा और उसके विशद विवेचन का प्रश्न सम्मुख आया तो विस्तृत पटभूमि अनेक पात्रों की रंगस्थली बनी। वातावरण की विस्तृति में, कथानक के गठन में परिवर्तन आया और इस रूप में हिन्दी में पनोरमिक उपन्यास ने अपना मार्ग बनाया। 'प्रेमाश्रम,' 'रंगभूमि,' कायाकल्प' और 'कर्मभूमि' में प्रेमचन्द ने जो वातावरण चित्रित किया है, वह पनोरमिक जैसा है, किन्तु 'गोदान' में वह पनोरमिक ही हो गया। हिन्दी

के अधिकाश राजनीतिक उपन्यास इसी पनोरमिक प्रवृत्ति के कारण ही बृहदकाय है भन ही वे पनोरमिक उपन्यास की विशिष्टता को सम्यक् रूप से ग्रहण न कर सके हो। भगवतीचरण वर्मा का 'भूले बिसरे चित्र' और यशपाल का 'झूठा-सच' कथासहित पनोरमिक उपन्यास के उत्कृष्ट उदाहरण है। रेणु का 'मैला आँचल' कथा-रति पनोरमिक के अन्तर्गत रखा जा सकता है, जिसमे स्वतत्रता प्राप्ति के पूर्व और बाद के बिहार के जन जीवन का चित्रण विशाल चित्रपटी मे हुआ है। इसी भाँति उनके दूसरे उपन्यास 'परती परिकथा मे पुनर्निर्माण-काल की जीवन-गाथा सीमित क्षेत्र और विषय को लेकर वर्णित है। इसमे राजनीतिक चेतना का स्पष्ट विकास पनोरमिक शैली मे चित्रित है।

गठन वैशिष्ट्य

राजनीतिक उपन्यास म सामाजिक, राजनीतिक एव आर्थिक समस्याओं को बृहदाकार रूप मे चित्रित करने के कारण प्राय सुगठित कथा का अभाव परिलक्षित होता है। उदाहरणार्थ प्रेमचन्द के उपन्यासों मे अनेक स्वतन्त्र अस्तित्व रखने वाली कथाएँ एक ही म ग्रथित है और यह कहना कठिन हो जाता है कि मूल कथा कौन सी है। यह बात पृथक् है कि अनेक कथाएँ होने पर भी सम्बन्ध-सूत्र की स्थापना से विशृखलता दृष्टिगोचर नही होती। अधिकाश उपन्यासो म एक से अधिक कथानक प्रयुक्त हुए है, जो आधारमूलक कथासूत्र से आबद्ध हो गठन को दृढ बनाते है।

सच तो यह है कि उपन्यास की सफलता का एक उपादान है उसकी गठन। सुगठित उपन्यास म कथावस्तु क्रमश विस्तृत होती है। हिन्दी के अधिकाश राजनीतिक उपन्यासो के सम्बन्ध मे प्राय यह आरोप लगाया जाता है कि उनकी गठन में शैथिल्य रहता है। वस्तुत यह शैथिल्य विषय के विस्तार एव व्याख्यात्मक प्रवृत्ति के कारण होता है और ये राजनीतिक उपन्यास के विशेष गुण हैं। इस रूप म देखा जाय तो यह शैथिल्य बृहदाकार उपन्यासो की प्रवृत्ति ही है, दुर्बलता नही। लघुकाय उपन्यास मे विषय का विस्तार सीमित होने के कारण गठन की दृढता भी देखने को मिलती है।

गठन की दृढता के चार मुख्य उपादान माने जाते हैं—धारावाहिक कथानक, नायक का आधिपत्य, मूल समस्या और मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त का विवेचन। इनमे से अंतिम उपादान राजनीतिक उपन्यास म बाधक सिद्ध हुआ है। जैनेन्द्र, इलाचन्द्र जोशी और अज्ञेय के उपन्यासो का राजनीतिक स्वरूप इसी तत्व के आधिक्य से कुठित हुआ है।

धारावाहिक कथा—अधिकाश लघुकाय उपन्यासो मे कथानक ही गठन की दृढता का आधार है। नागार्जुन, प्रतापनारायण श्रीवास्तव, अनन्तगोपाल शेवडे, चतुरसेन आदि के राजनीतिक उपन्यास कथानक की गठन की दृढता के उदाहरण हैं।

जीवनीप्रधान—'सन्यासी,' 'निर्वासित,' 'शेखर - एक जीवनी,' 'कठपुतली' और 'बलचनमा' मे जीवनी के माध्यम से दृढता का समावेश हुआ है। जीवनीप्रधान राजनीतिक उपन्यासो मे वे उपन्यास ही अत्यधिक सफल कहे जायेंगे, जो राजनीतिक चेतना से उद्भूत जीवन का अकन करें। सामाजिक यथार्थ की आधारभूमि पर रचित नागार्जुन का 'बलचनमा' और अचल का 'उल्का' इस श्रेणी के सफल उपन्यास हैं। अन्य उपन्यास जीवनी की भूल भुलैयों में ही खो जाते है और प्रमुख पात्र की जीवनी मात्र 'ग्रोमिस'-सी रह जाती है। इस प्रसग मे 'शेखर' का उल्लेख करना असगत न होगा।

मूल समस्या—राजनीतिक समस्या से गठन मे दृढता राजनीतिक उपन्यासों की विशिष्टता है। किन्तु जहाँ मूल समस्या राजनीति की परिधि से दूर भागती है, वहाँ उपन्यास मे गठन की दृढता भले आ जाये, पर राजनीतिक पक्ष को पक्षाघात हुए बिना नही रहता। 'अचल' के 'बढती धूप' व 'उल्का' की समस्याएँ विशिष्ट राजनीतिक विचार धारा से पोषित होने के कारण गठन की दृढता और राजनीतिक मूल्य, दोनो की रक्षा करती है। इसके विपरीत जैनेन्द्र के 'सुखदा' की समस्या राजनीतिक परिधि से दूर होने के कारण उतनी प्रभावोत्पादक नही बन पडी।

शिथिल गठन

जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, राजनीतिक उपन्यासो मे गठन का शैथिल्य उसकी दुर्बलता नहीं, अपितु लेखक की क्षमता, आदर्श एव प्रवृत्तिविशेष का प्रतिफलन होता है। राजनीतिक उपन्यास मे विषय-विस्तार, व्याख्यात्मक प्रवृत्ति और वातावरण पर विशेष आग्रह उपन्यास की गठन को शिथिल बनाते है। रांगेय राघव के 'विषाद मठ' व 'घरौंदे' प्रतापनारायण श्रीवास्तव के 'बयालीस' और 'विनाश के बादल,' 'अश्क' के 'बडी-बडी आँखें' मे जो शैथिल्य है, वह वातावरण को प्रमुखता देने तथा व्याख्यात्मक प्रवृत्ति के कारण है। प्रेमचन्द के 'प्रेमाश्रम,' 'कर्मभूमि' और 'रंगभूमि' मे भी थोडा शैथिल्य आया है जिसका कारण विषय-विस्तार राजनीतिक व्याख्या का आग्रह है। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने ठीक ही लिखा है—"छोटी-छोटी घटनाओ को लेकर लम्बे लम्बे अध्याय लिखे गये हैं, जिससे कथावस्तु आवश्यकता से अधिक लम्बी हो गयी है। समस्त मुख्य घटनाओ को लेकर प्रस्तुत आकार से आधे में सारा उपन्यास लिखा जा सकता था।"[1] कहा जा सकता है कि राजनीतिक उपन्यास में राजनीतिक उद्देश्य की स्पष्टता के लिए यह विस्तार कभी-कभी अनिवार्य हो जाता है।

---

१. आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी : प्रेमचन्द : साहित्यिक विवेचन, पृष्ठ ७०

विषयाधिक्य और उसके कारण

पाठकों पर इच्छित प्रभाव डालना और उन्हें एक विशिष्ट ध्येय की ओर उन्मुख करना राजनीतिक उपन्यासकार की विषय-निविड़ता-संयोजन-कला पर निर्भर करता है। जब विशदीकरण की विस्तृति की तुलना में विषय सीमित हो तो विषयाल्पत्व और अभिव्यंजन कम हो तो विषयाधिक्य होता है। हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासों में विषयाधिक्य दुर्बलता नहीं, विषय विस्तार की उपलब्धि है। राजनीतिक उपन्यासों में उद्दिष्ट प्रभावहेतु घटनाओं पर अधिकाधिक ध्यान देने की विशेष प्रवृत्ति रहती है। इस प्रवृत्ति से विषय-बाहुल्य की स्थिति निर्मित होती है, जो सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक दशाओं को अभिव्यक्ति देती है। इस समस्त प्रक्रिया से विषयाधिक्य होता है। प्रेमचन्द के 'रंगभूमि,' 'कायाकल्प,' 'कर्मभूमि' में घटनाओं पर विशेष ध्यान देने के कारण विषयाधिक्य राजनीतिक स्पष्टीकरण में सहायक है। किन्तु इलाचन्द्र जोशी के 'सन्यासी' और 'निर्वासित' में जो विषयाधिक्य है, वह राजनीतिक पक्ष को दुर्बल बनाता है।

विषयैक्य की कमी से भी गठन शिथिल होता है और विषय के विविध अंशों की असंबद्धता स्पष्ट रूप से सामने आ जाती है। जोशी जी के 'निर्वासित' और विष्णु-प्रभाकर के 'निशिकान्त' में यह विषयैक्यहीनता देखी जा सकती है। विषयैक्यहीनता से पुनरुक्ति दोष भी आता है, पर पुनरुक्ति राजनीतिक पक्ष को सबल बनाती है। यशपाल के 'झूठा सच' में भी पुनरुक्ति इसी उद्देश्य के निमित्त आयी है।

इतना होने पर भी राजनीतिक उपन्यास विषय-निविड़ता की दृष्टि से संतुलित हैं। यशपाल, अंचल, अमृतराय, नागार्जुन, भगवतीचरण वर्मा इत्यादि उपन्यासकारों ने विषय के अनुसार ही विस्तार किया है। जैनेन्द्र इसके अपवाद हैं और उनके 'सुनीता', 'सुखदा' और 'विवर्त' में विषयाल्पत्व है।

चरित्र-चित्रण

जिस भाँति राजनीति का विषय मानव जीवन है, उसी भाँति उपन्यास का मुख्य विषय भी मानव-जीवन ही है। मानव-जीवन का अर्थ है मनुष्य का सामाजिक जीवन, जिसकी यथार्थ समस्याओं का अंकन किसी पात्रविशेष के माध्यम से सर्वसामान्य को परिचित कराना वर्तमान उपन्यास की अभिव्यक्तिविशेष है। हेनरी जेम्स ने सत्य ही लिखा है कि उपन्यास के अस्तित्व का एकमात्र कारण यह है कि वह जीवन के चित्रण का प्रयास करता है।[1] राजनीतिक उपन्यास में राजनीतिक वर्ण्य वस्तु के साथ-साथ भली प्रकार से चित्रित पात्रों का होना भी अनिवार्य है। ये पात्र राजनीतिक परिसार्य में

१. हेनरी जेम्स : दि आर्ट आफ फ़िक्शन, पृष्ठ ३६६

यथार्थ जीवन का प्रतिनिधित्व करने वाला होना चाहिए, क्योंकि उनके चरित्र-चित्रण के बिना उपन्यास राजनीतिक इतिहास भले ही हो, उपन्यास नहीं हो सकता। राजनीतिक उपन्यास में चरित्र चित्रण सामाजिक तथा वैयक्तिक अन्त:सत्ता की व्याख्या कर उसे सर्वसामान्य के लिए प्रभावोत्पादक बनाता है। चरित्र-चित्रण के इसी महत्त्व से प्रभावित होकर प्रेमचन्द ने लिखा है "भावी उपन्यास जीवन-चरित्र होगा, चाहे किसी बड़े आदमी का हो या छोटे आदमी का। उसकी छुटाई-बड़ाई का फैसला उन कठिनाइयों से किया जायगा, जिन पर उसने विजय पायी।"[१] अपूर्ण 'मंगल-सूत्र' में वे शायद इसी रूप को साकार करना चाहते थे। वेब्स्टर के शब्दों में कहें तो—"उपन्यास एक ऐसा कल्पित, विशालकाय तथा गद्यमय आख्यान है, जिसमें एक ही कथानक के अन्तर्गत यथार्थ जीवन के निरूपण का प्रयास करने वाले पात्रों और उनके क्रियाकलापों का चित्रण हो।"[२] वस्तुत उपन्यास अपने आपमें एक ऐसी इकाई है, जो कथानक और चरित्र-चित्रण के माध्यम से ही वांछित प्रभाव की सृष्टि करती है। पात्रों के चरित्र चित्रण का स्थान राजनीतिक उपन्यासों में समस्याओं के साथ संयुक्त रहता है। इसमें पात्र पूर्ण स्वतन्त्रता का उपभोग नहीं कर सकते, क्योंकि वे राजनीतिक घटनाओं या विचारधारा के अन्तर्गत अपना विकास करते हैं। इस प्रक्रिया में कभी-कभी वे इतने दब जाते हैं कि उनका अपना स्वतन्त्र अस्तित्व तक संकट में पड़ जाता है और वे उपन्यासकार के हाथ में कठपुतली से रह जाते हैं।

राजनीतिक उपन्यास में चरित्र चित्रण में लेखक से अत्यधिक सावधानी अपेक्षित है। उसे अपने विचारों के प्रचार के लिए पात्रों को अस्वाभाविक या कृत्रिम बनने से बचाने हेतु सचेष्ट रहना चाहिए। इसके लिए आवश्यक है कि उनके जीवन के आधार पर ही लेखक अपने राजनीतिक विचारों को स्थापित करे। जीवन की स्वाभाविक गति से ही विचारों, आदर्शों और मान्यताओं का जन्म होना चाहिए। पात्रों की सृष्टि सिद्धान्त के अनुसार करने पर अस्वाभाविकता आती है। इस दृष्टि से विचार करने पर हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासों में चरित्र चित्रण की उपलब्धि और अभाव दोनों मिलते हैं।

एकांगी व समतलीय पात्र

राजनीतिक उपन्यास में अधिकांश पात्र तथ्य के प्रतिपादन या सिद्धान्त की व्याख्या करने के कारण एकांगी या समतलीय पात्र की श्रेणी में आते हैं। हिन्दी के प्रारम्भिक सुधारवादी उपन्यासों में भी यही प्रवृत्ति देखने में आती है और उसी का

---

१ प्रेमचन्द : कुछ विचार (भाग १), पृष्ठ ५६

२ वैब्स्टर न्यू इण्टरनेशनल डिक्शनरी ऑफ इंग्लिश लैंग्वेज, पृष्ठ १६७०

विकसित रूप राजनीतिक उपन्यासो मे दिखलायी पडता है। निश्चित सिद्धान्तों के अनुरूप गढ जाने के कारण ये पात्र 'टाइप' अधिक हैं और उनकी गतिविधियाँ सीमाबद्ध हैं। समाज से निकट होने के कारण ये समाज चित्रक के उपकरण के रूप म समाज के यथार्थ स्वरूप को उद्घाटित करते है। प्रेमचन्द के पात्रो के सम्बन्ध मे कहा गया है कि वे 'वर्गगत' जातिगत या प्रतीकात्मक होते है। जमीदार, किसान आदि मे अपने वर्ग या साधारण विशेषताओ का आरोप रहता है। आधुनिक व्यक्ति—चित्रण—प्रणाली से वे दूर हैं।'[1] आचार्य वाजपेयी ने प्रेमचन्द के पात्रो की जिस अभावग्रस्त विशेषता की ओर इगित किया है, वह वस्तुत राजनीतिक उपन्यास की उपलब्धि है। प्रेमचन्द जानते थे कि जिस विशिष्ट उद्देश्य से उन्हे समाज का चित्रण करना है, उसकी प्राप्ति व्यक्ति-चित्रण प्रणाली से सम्भव नही। जैनेन्द्र, इलाचन्द्र जोशी और अज्ञेय के उपन्यास राजनीतिक दृष्टि से इसीलिए शिथिल हैं, क्योंकि उनके पात्र वैयक्तिक विशेषताओ एव मनोवृत्तियो से मण्डित हैं। 'मुक्तिपथ' का राजीव और 'शेखर एक जीवनी' का शेखर वैयक्तिक मनोवृत्तियो के कारण ही सबल राजनीतिक व्यक्तित्व नहीं बन सके जब कि प्रेमचन्द, यशपाल, नागार्जुन और अचल के पात्र एकागी और असाधारण होते हुए भी सबल और प्रभावशाली है। वे सामाजिक व्यक्तित्व के गुण स युक्त हैं और उनका बिम्बग्रहण अधिक सुसाध्य है। इसी सहजता के कारण पाठक का उनसे तादात्म्य शीघ्रता से हो जाता है। चरित्र चित्रण की यह पद्धति राजनीतिक उपन्यास की प्रवृत्ति है। मार्क्स तथा एगेल्स के शब्दों मे हिन्दी राजनीतिक उपन्यासकार भी यह दावा कर सकते हैं कि 'हम यथार्थ जीवित मनुष्यो से आरम्भ करते है, और उनके यथार्थ जीवन व्यापार के आधार पर ही उस जीवन-व्यापार के भावात्मक (आदर्शात्मक) प्रतिबिम्बो तथा प्रतिध्वनियो को सिद्ध करते है।'[2]

शोषक और शोषित पात्र

राजनीतिक वर्ण्य वस्तु के कारण उपन्यासो म सामाजिक और राजनीतिक जीवन की गतिविधियो के केन्द्रीकरण के कारण नायक का महत्व घटा और वह सामाजिक शक्तियो से सचालित हो गया और आभिजात्य वर्ग के स्थान मे सामान्य जन को नायक का स्थान मिला। 'दादा कामरेड' का दादा, 'निशिकात' का निशिकात और 'रतिनाथ की चाची' का रतिनाथ यद्यपि उपन्यास के नायक है, किन्तु कथा-सचालन मे इनका योगदान नगण्य है।

---

१. आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी : आधुनिक साहित्य, पृष्ठ १६४

२. मार्क्स एण्ड एगेल्स : लिटरेचर एण्ड आर्ट, पृष्ठ ११

राजनीतिक उपन्यासो ने नायको को सामाजिक व्यक्तित्व प्रदान किया और ये राजनीतिक परिस्थितियो के अनुरूप हो अपना व्यक्तित्व सँवारते हैं। यह सामाजिक यथार्थवाद का प्रतिफलन है। 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते,' 'सीधा-सादा रास्ता' और 'विपाद-मठ' आदि मे नायक के व्यक्तित्व का विकास नही दीख पडता। 'विपाद मठ' मे यदि जनता ही पात्र बनकर उपस्थित हुई है तो 'टेढे मेढे रास्ते' और सीधा सादा रास्ता' आदि घटनाओं के द्वारा राष्ट्रीय वातावरण को मुखरित करते है। फणीश्वरनाथ 'रेणु' के 'मैला आँचल' और 'परती परिकथा' मे भी नायको का व्यक्तित्व नही, अपितु जीवन ही जीवन्त हुआ है।

नायक का ह्रास होने के साथ राजनीतिक उपन्यासो की दूसरी विशेषता शोषक और शोषित का यथार्थपरक चित्रण है, जो हिन्दी के अधिकाश उपन्यासो मे मिलता है। इसका प्रारम्भ प्रेमचन्द के उपन्यासों से होता है। उनके 'प्रेमाश्रम,' 'रगभूमि,' 'गोदान' आदि मे शोषित किसानो और मजदूरो की कहानी के लिए मनोहर, बलराज, बिलासी, सूरदास, भैरो, होरी, गोबर जैसे अनेक पात्रो की अवतारणा की गयी है। नागार्जुन और भैरवप्रसाद गुप्त के उपन्यासों मे शोषित किसानो के अनेक कारुणिक दृश्य देखे जा सकते हैं। शोषित के चित्रण के साथ क्रूर शोषक के कुटिल कृत्यो और अत्याचारों का उद्घाटन भी किया गया है। शोषित और शोषक के इस चित्रण के उपरान्त ही समाजवादी उपन्यासो का मार्ग प्रशस्त हुआ, ऐसा कहना अनुपयुक्त न होगा। 'प्रेमाश्रम' मे शोषितो के प्रति सहानुभूति रखने वाला पात्र क्रमश धूमिल हो 'बलचनमा' व 'गगा मैया' मे नयी राजनीतिक चेतना से परिपुष्ट हो अपना बल कूतने लगता है।

शोषित पात्र के रूप मे भारतीय नारी का चित्रण राजनीतिक उपन्यास की महत्वपूर्ण उपलब्धि है। जब राजनीतिक अधिकारो की मांग ने सामाजिक व्यवस्था द्वारा उत्पन्न नारी को निरुपाय-असहाय स्थिति को निन्दनीय करार दिया और उन शोषकों की भर्त्सना कर विरोध किया' जो उसकी निरीहावस्था का अनुचित लाभ उठाते हैं। आधुनिक भारतीय नारी का जो सघर्षशील चित्रण हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासो में मिलता है, वह राजनीतिक आन्दोलनों की नारी की ही प्रतिच्छाया है। नारी का क्षेत्र परिवार से बढ कर राजनीतिक भूमिका तक विस्तृत हुआ और यशपाल, नागार्जुन, अमृतराय, अचल, राजेन्द्र यादव के नारी पात्र इसके उदाहरणस्वरूप लिये जा सकते हैं, जो समाजवादी चेतना से सचालित हैं। प्रेमचन्द के नारी पात्र समसामयिक राष्ट्रीय आन्दोलन की देन हैं और गाँधीवादी आदर्शवादिता से समन्वित हैं। देवबे के 'ज्वालामुखी' के नारी पात्र भी इसी श्रेणी के हैं।

पात्रों के भेदोपभेद

साधारणतः पात्रों को प्रधान और गौण पात्र में वर्गीकृत किया जाता है। प्रधान पात्र कथानक से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित रहता है और गौण पात्र साधन के रूप में प्रधान पात्रों के चरित्र को उरेहते हैं, कथानक को गति देते हैं और वातावरण के निर्माण या परिवर्तन में योग देते है। पात्रों की विशेषता के आधार पर उनके तीन प्रकार माने जा सकते हैं– स्थिर पात्र, विकसनशील पात्र और व्यंगचित्र।

स्थिर पात्र वे होते है, जो निकट के वातावरण से अप्रभावित रहते हैं और उनके चरित्र में कोई परिवर्तन नहीं होता। ये 'टाइप' होते हैं और किसी वर्ग के प्रतिनिधिक पात्र के रूप में चित्रित होते है, ये अपने वर्ग की प्रमुख विशेषताओं से युक्त रहते हैं, पर कथानक के साथ उनका विकास नहीं होता। इसके ठीक विपरीत हैं विकसनशील पात्र, जो अपने परिपार्श्व से प्रभावित हो अपने चारित्रिक विकास के साथ कथानक का विस्तार करते है। हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासों में दोनों प्रकार के पात्रों को समुचित स्थान मिला है।

समाजवादी—यथार्थ की भूमिका का निर्वाह करने वाले उपन्यासों में ऐसे चरित्रों की नियोजना मिलती है, जो एक साथ ही टाइप तथा व्यक्ति, दोनों हैं। चरित्र-चित्रण की यह प्रवृत्ति मार्क्स तथा एंगेल्स के सिद्धान्तों के ही अनुरूप है, जो मानते थे कि "किसी व्यक्तित्व की विशेषता केवल इसी बात से नहीं प्रकट होती कि वह क्या करता है, बल्कि इससे भी प्रकट होती है कि वह कार्य कैसे करता है।"[1] समाजवादी उपन्यासों में पात्रों का अपना व्यक्तित्व उनकी गतिविधियों से तो उभरता ही है, साथ ही उसकी गतिविधियाँ जिस लक्ष्य को प्राप्त करने का प्रयास करती है, उनके द्वारा वह उसके वर्ग के साथ समन्वित करती है। ऐसे उपन्यासों के नायक या चाहें तो कहें प्रमुख पात्र 'अति-मानव' न होकर जन-साधारण का या सर्वसामान्य का प्रतिनिधि होता है, जो नयी समाज रचना के लिए संघर्ष करते हुए आगे बढ़ता है। उसकी शक्ति और प्रेरणा जनसमुदाय में निहित है और जनता के लिए उठाये गये संघर्षों में इनकी जो चरित्रगत विशेषताएँ उभरती हैं, वे उसे 'पाज़िटिव हीरो' बना देती है। इसे समाजवादी यथार्थ का आधार-भूत तत्व भी माना जा सकता है।

नागार्जुन के 'रतिनाथ की चाची,' 'बलचनमा,' 'नई पौध' के पात्र अपने अपने वर्ग के प्रतिनिधि है, साथ ही उनके जो व्यक्तित्व हैं, प्रेमचन्द के पात्रों के व्यक्तित्वों के समान हैं। इन सबका सामाजिक अथवा वैयक्तिक रूप समस्याओं के विश्लेषण के आवश्यकतानुसार विकसित हुआ है।

---

१. राल्फ फाक्स, उपन्यास और लोक जीवन, (अनु० नागर), पृष्ठ १०४

व्यग-चरित्र

स्थिर पात्रो का ही एक भेद व्यग-चरित्र या 'कैरिकेचर' है, जो चरित्र को उसके अतिरंजित रूप मे प्रस्तुत कर व्यग्य की उद्भावना करता है। राजनीति मे व्यग का अपना एक महत्व है—दूसरे राजनीतिक दलो, व्यक्तित्वो और राजनीतिक सिद्धान्तों को निम्नस्तरीय निरूपित करने के लिए व्यग एक अचूक रामबाण है। राजनीतिक उपन्यासों मे व्यग-चरित्रो की उद्भावना इसी उद्देश्य से की गयी है। 'बगुले के पंख' में जुगनू और 'उखडे हुए लोग' मे देशबन्धु के 'कैरिकेचर' अपने ढग के है। 'भग्न मन्दिर' मे काग्रेसी मत्रियो के चित्र व्यग्यपूर्ण हैं।

पात्र-चयन, संख्या और परिधि

राजनीतिक उपन्यासो मे चित्रपटी की व्यापकता, विषय-विस्तार और अनुभूति की तीव्रता के कारण पात्रचयन की विशालता मिलती है। सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक धरातलो को स्पर्श करने की प्रवृत्ति के कारण राजनीतिक उपन्यास क्षेत्र-विस्तृति के कारण विभिन्न क्षेत्रो के व्यक्तियो की जीवन व्याख्या को प्रस्तुत करता है जिसके कारण पात्र बाहुल्य एक विशिष्टता हो जाती है। प्रेमचन्द, भगवतीचरण वर्मा, यशपाल, गैरवप्रसाद गुप्त, गुरुदत्त, रेणु के वृहदकाय उपन्यासो मे पात्र बाहुल्य का मूल कारण यही है। कलात्मक दृष्टि से पात्र बाहुल्य को उपन्यास का दोष माना जाता है क्योंकि इसके कारण पात्रों का सम्यक् विकास चित्रित करना सम्भव नही हो पाता। किन्तु राजनीतिक उपन्यासो मे पात्र-बाहुल्य एक विशेष गुण है। यह कहना भी उचित प्रतीत नही होता कि पात्र-बाहुल्य से चरित्र का अपेक्षित विकास नही दिखलाया जा सकता। उदाहरणार्थ यशपाल के (हिन्दी के सर्वाधिक पृष्ठवाले उपन्यास) 'झूठा सच' को लिया जा सकता है, जिसमे दर्जन से अधिक पात्रो का विकास सहज स्वाभाविक गति से हुआ है। वस्तुत यह लेखक के चरित्र-चित्रण-सामर्थ्य पर निर्भर करता है और यदि वह सतर्क रहे तो चुनाव-क्षेत्र की व्यापकता, पात्रो की विविधता और अनुभूति की विविधता और अनुभूति की गहनता की मणिमाला पिरोकर उपन्यास के कलात्मक सौष्ठव को बनाये रख सकता है।

पात्र ऐतिहासिक नही, कल्पित

हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासो के पात्र अधिकांशत ऐतिहासिक न होकर कल्पित हैं। उन्होंने वस्तु-जगत् के व्यक्तियो से केवल उतनी सामग्री ही ग्रहण की है, जितनी वह कल्पना के साथ सयोजित कर सके। वह किसी राजनीतिक व्यक्ति से उसका आकार लेता है, किसी से उसका प्रकार, किसी को क्रिया लेता है और किसी की प्रति-

लिया, किसी का भाव लेता है, किसी का विकार और सब मिलाकर एक विशिष्ट राजनीतिक 'टाइप' के रूप में प्रस्तुत होता है। ऐतिहासिक व्यक्तित्व को चित्रित न करने का एक कारण कानूनी बंधन से बचाव करना तो है ही साथ साथ रेखा प्रति रेखा यथातथ्य चित्रण से मुक्ति पाना भी है। पात्रों की गोपनीयता उपन्यास में सहज रूप से व्यक्त की जा सकती है, पर ऐतिहासिक पात्रों से गुप्त जीवन की गाथा बहुवर्णित होने पर भी उपन्यास का अंग नहीं बन सकती। औपन्यासिक पात्र के रूप में आकर ही ऐतिहासिक पात्र अज्ञेय नहीं रहते। साथ ही कल्पना के तत्व के साथ कथा (व पात्र अपने वास्तविक जीवन से) अधिक रोचक बन जाती है। यही कारण है कि राजनीतिक उपन्यासों में सामयिक पृष्ठभूमि के ऐतिहासिक पात्रों को कल्पित रूप में प्रस्तुत कर प्रायः वास्तविकता का भ्रम उत्पन्न करने की चेष्टा मिलती है। राजनीतिक उपन्यासकार विलियम बैरेट के ही अनुयायी है, जो यह मानता है कि 'श्रेष्ठ उपन्यास किसी कल्पित व्यक्ति की जीवनी होता है और जब जीवनी पूरी हो चुकती है वह व्यक्ति कल्पित नहीं रहता, बल्कि अपने स्रष्टा की भाँति यथार्थ बन जाता है।'[1] फोस्टर का भी मत है कि कृति का पात्र सत्य है, यदि उपन्यासकार उसका पूर्ण ज्ञाता है। यह आवश्यक नहीं है कि उपन्यासकार उन सभी बातों को बताये जो उसके बारे में जानता है। किन्तु उसे पात्र को अप्रकट रखकर भी पाठकों को अपनी जानकारी के संकेत से प्रतीति करा देना होगा, जिससे वे पात्र पहेली बन कर न रह जायँ।[2] राल्फ फाक्स तो मानते हैं कि 'यह जरूरी नहीं है कि प्रत्येक क्रान्तिकारी या मजदूर वर्ग के जीवन तक का चित्रण होना ही होगा फिर भी यह मानना पड़ेगा कि अन्ततोगत्वा इस तरह के उपन्यासों का भविष्य उनकी इस क्षमता पर निर्भर है कि वे एक प्रतिनिधि के रूप में और एक व्यक्तिगत मानव के रूप में क्रान्तिकारी का कलापूर्ण चित्र देने में सफल होते हैं या नहीं।'[3]

अन्य विशिष्टताएँ

राजनीतिक उपन्यासों के पात्रों के नामकरण, आकृति, वेश भूषा, नख शिख वर्णन और जीवन पद्धति में विशिष्टता दिखलायी देती है। राजनीतिक उपन्यासों में पात्रों के नामकरण से सम्पूर्ण चरित्र विकास या उनके मान्य राजनीतिक सिद्धान्तों के अनुसार संकेत देने का प्रयास किया गया है। उदाहरणार्थ—

---

१ विलियम ई० बैरेट, दि लिविंग कैरेक्टर, पृष्ठ १२०

२ फॉस्टर आस्पेक्ट्स ऑफ नावल पृष्ठ ६१

३ राल्फ फाक्स, उपन्यास और लोक जीवन (अनु० नागर), पृष्ठ १०९

गांधीवादी पात्र—'प्रेमाश्रम' का प्रेमशंकर, 'कर्मभूमि' का अमरकान्त, 'ज्वालामुखी' का अभयकुमार।

समाजवादी पात्र—'सुखदा' का लाल, 'चढ़ती धूप' की तारा, 'उखड़े हुए लोग' का सूरज, 'बलचनमा', 'सन्यासी' का बलदेव, 'टेढ़े मेढ़े रास्ते' का दयानाथ आदि।

सामन्तवादी पात्र—'अमरबेल' का देशराज व राजा बाघराज, 'रंगभूमि' के महेन्द्र कुमार सिंह, 'कायाकल्प' के ठाकुर विशालसिंह।

पूँजीवादी पात्र—'रूपाजीवा' का गोरेमल, 'उखड़े हुए लोग' का देशबन्धु, 'कर्मभूमि' का धनीराम।

विपरीत राजनीतिक आचरण का चित्रण करते समय व्यंग्यात्मक नामकरण भी किया गया है। यथा—'हीरक जयन्ती' का नरपत नारायण सिंह, 'झूठा सच' का विश्वनाथ सूद व 'उखड़े हुए लोग' का देशबन्धु। नामकरण के सदृश ही आकृति और वेश भूषा के आधार पर भी राजनीतिक व्यक्तित्व के गुणावगुण को सांकेतिक प्रणाली से व्यक्त कर उसके चरित्रांकन का प्रयास भी मिलता है। 'सन्यासी' को बलदेव। आदि पात्रों मे वेश भूषा के परिवर्तन से पात्र की मनोदशा मे होने वाले परिवर्तनों को दिखलाने की चेष्टा भी की गयी है।

कथोपकथन

राजनीतिक उपन्यासों मे लेखक और पात्रविशेष के उद्देश्यों का, सामयिक घटनाओं का मनोनीत उद्घाटन कथोपकथन के माध्यम से ही सम्भव है। कथोपकथन उपन्यास का एक महत्वपूर्ण तत्व है, जो कथा का विकास करता है तथा पात्रों के चरित्र चित्रण मे सहायक होता है। राजनीतिक उपन्यासों मे कथोपकथन का समावेश *निम्नलिखित उद्देश्यों को लेकर किया गया है—*

(क) कथानक का विस्तार करना।

(ख) पात्रों की व्याख्या करना।

(ग) उद्देश्य को स्पष्ट करना।

कथानक का विस्तार करना

राजनीतिक उपन्यासों मे वर्णित घटनाओं या दृश्यों मे सजीवता की दृष्टि से कथोपकथन का उपयोग प्राय सभी उपन्यासकारों ने किया है। इनके नियोजित संगठन से कथानक का विकास करना राजनीतिक उपन्यासकारों की एक सामान्य प्रवृत्ति रही है, 'ज्वालामुखी' मे अभय और विजया के विवाह सम्पन्न होने के उपरांत ठाकुर जी की अर्चना के समय नीराजन के गिरने और उसकी ज्योति बुझने के साधारण प्रसंग को

लेकर पारस्परिक सामयिक घटनाओं व राजनीतिक परिस्थितियों पर प्रकाश डालने हेतु कथोपकथन की मौलिक एवं स्वाभाविक उद्भावना की है। विजया नीराजन बुझने को अपशकुन मान भावी अनिष्ट की कल्पना करती है। इस पर अभय कहता है—'इस अपशकुन में नयी बात ही कौन सी है? आज तो सारे विश्व में ही अपशकुन की विभीषिका धधक उठी है। सारा संसार युद्ध की विकराल ज्वालाओं से ग्रस्त है, मनुष्य का संहार कर रहा है। सिंहासन उलट रहे है। वंश बदल रहे है। मानवता नष्ट हो रही है। ऐसे सर्वव्यापी भयंकर और महान अपशकुन के सामने और क्या अनिष्ट हो सकता है?'[1] यहीं से कहानी अपना वांछित मार्ग पकड़ लेती है और स्वाभाविक रूप से बयालीस की क्रान्ति की आधार-पीठिका पर आ जाती है। गुरुदत्त के तो अधिकांश उपन्यासों का प्रारम्भ ही कथोपकथन के नाटकीय ढंग से होता है। उनके कथोपकथन प्रत्यक्षतः कथानक के सूत्र संबंधित होते हैं और कथानक की पारम्परिक क्रमबद्धता को कायम रखते हुए विविध घटनाओं में असंगति नहीं आने देते। उनके 'भग्नाश' और 'दासता के नये रूप' का उदाहरणार्थ लिया जा सकता है। इन दोनों उपन्यासों के गठन में कथोपकथन का महत्वपूर्ण स्थान है और कथा-वस्तु और पात्रों के चरित्र-चित्रण के विकास के साथ राजनीतिक उद्देश्य की अभिव्यक्ति इस तत्व के कुशल संयोजन से की गयी है। आत्म-कथात्मक शैली में कथोपकथन का स्वरूप शैली की विशिष्टता के कारण किंचित् भिन्न हो जाता है। आत्मकथात्मक शैली में नायक के चरित्र-चित्रण की ही प्रमुखता मिलती है। अतः उपन्यासकार नायक, नायिका या अन्य किसी एक पात्र का स्थान ग्रहण कर प्रत्येक घटना का वर्णन करता चलता है। स्वयं कथा कहने के कारण इसमें कथोपकथन की विशेष गुंजाइश नहीं रहती। जो कथोपकथन आते भी है, वे भी स्मृति पर आधारित रहते हैं तथा वे प्रधान पात्र के व्यक्तित्व को ही अभिव्यंजित करते है। स्मृति के आधार पर बीते युग के कथोपकथन होने के कारण इनमें संक्षिप्तता होती है और ये रोचकता के साथ चरित्र नायक की परिस्थितियों से परिचित कराते हुए स्वाभाविक रूप से कथानक का विस्तार करते है। नागार्जुन के 'बलचनमा' और राहुल सांकृत्यायन के 'जीने के लिए' में इसके उदाहरण देखे जा सकते हैं। 'बलचनमा' प्रसंगानुसार उन व्यक्तियों और उनके कथनों का स्मरण करता चलता है, जो उसके जीवन में आकर उसे प्रभावित कर दिशा निर्देश देते है।

पात्रों की व्याख्या करना

कथोपकथन को कथानक और पात्र के बीच का सेतु कहा जा सकता है। कथोपकथन पात्रों की विचारधारा का प्रतिबिम्ब होता है। इसी माध्यम के द्वारा लेखक

१ अनन्त गोपाल शेवडे, ज्वालामुखी, पृष्ठ २२

चरित्रों की न केवल व्याख्या करता है, अपितु उनके विषय में विविध जटिल परिस्थितियों तथा अन्तर्द्वन्द्व सबधी प्रत्यक्ष बोध करता है। 'दासता के नये रूप' में चन्द्रकांत और प्रमिला के बीच वार्ता का एक प्रसग देखिए, देखो प्रमिला! जब सत्ताधारी पार्टी से असन्तुष्ट जनों की सख्या बहुत हो जायगी, तब वे क्रान्ति उत्पन्न कर सकते है।

'क्राति तो कभी भी हितकारक नही हो सकती। यह तो एक हथौड़े की चोट से पत्थर फोडने के समान है। जैसे हथौडे की चोट से कितने कितने बडे और किस-किस रूपरेखा के टुकडे होंगे, कहा नही जा सकता, उसी भाँति क्राति के प्रभाव से समाज का क्या कुछ बन जायेगा, कहना कठिन है। यह कुशल नीतिज्ञों का ढग नहीं। क्राति तो अनपढ, मूर्ख और अयोग्य लोगों का हथियार है। मै अपने देश मे तो इसका प्रयोग नहीं चाहती।'[1] स्पष्ट है कि जहाँ चन्द्रकात साम्यवाद पर अपनी आस्था व्यक्त करता है, वहीं प्रमिला मे उसके विरोध के बीज अकुरित रहे है।

नागार्जुन के दुखमोचन का मानवतावादी दृष्टिकोण उसके इस कथन मे साकार हो उठा है

'विपत्ति के इन क्षणों मे इस तरह की बातें करना बर्बर प्रतिहिंसा का सूचक है। वेणी माधव! निल्याबाबू की हरकतों से हमारा काफी नुकसान हुआ है और आगे भी हो सकता है, लेकिन इस वक्त तो हम बिना किसी भेद भाव के उनकी सहायता करेंगे। मैं महसूस करता हूँ कि अपने गाँव के एक-एक व्यक्ति की सुरक्षा का दायित्व हम पर है। अभी यह नहीं देखना है कि फलाँ दौलतमन्द है और फलाँ गरीब है, फलाँ हमे गालियाँ देता है और फलाँ हमारा नाम लेकर सुबह-शाम शख फूँकता है अभी एक व्यक्ति हमारा अपना आदमी है वेणीमाधव।'[2]

उद्देश्य का स्पष्टीकरण

राजनीतिक उपन्यासों की रचना एक निश्चित राजनीतिक उद्देश्य लेकर होती है। अतएव कथोपकथन इन उपन्यासों मे उद्देश्य के स्पष्टीकरण की दृष्टि से एक अनिवार्य तत्व के रूप मे उपस्थित होता है। राजनीतिक उपन्यासों मे लेखक अपना मन्तव्य प्रसगानुसार पात्रों के माध्यम से व्यक्त करता है। प्राय सभी राजनीतिक उपन्यास इस प्रवृत्ति से आक्रात रहे जा सकते हैं। इस रूप मे कथोपकथन अपने स्वाभाविक स्वरूप से हटकर राजनीतिक उद्बोधक का स्थान ग्रहण कर लेते हैं। राजनीतिक मन्तव्यों के स्पष्टीकरण के कारण वे दीर्घ, विचारप्रधान तथा व्याख्यात्मक हो

१ गुरुदत्त, दासता के नये रूप, पृष्ठ १७१

२. नागार्जुन, दुखमोचन, पृष्ठ १३२

जाते हैं। कभी कभी तो लेख या भाषण का रूप भी धारण कर लेते है। वस्तुत यह कलात्मक पक्ष के दौर्बल्य का सूचक कहा जायेगा।

'अहिंसा' की व्याख्या करते हुए 'बयालीस' का एक पात्र कहता है 'हम अहिंसक सेना के सेनानी हैं। सत्य हमारी ढाल है' अहिंसा हमारा अस्त्र है और जनता ही, हमारी शक्ति है। अस्त्र शस्त्रों से भी अधिक बल जनता में है, और जनता का बल विश्वास और लगन म है तथा विश्वास और लगन का बल केवल सत्य और अहिंसा म है। हमारा उद्देश्य सत्य है अतएव ईश्वर हमारी सहायता करेगा। अहिंसा मार्ग के सिपाहियों का, केवल सत्य का फल चाहिए, अहिंसा का अर्थ यह है कि हम दूसरे की वस्तु अपहरण नहीं करना चाहते, दूसरे के प्राप्य पर अपना अधिकार जमा कर उसे वंचित करना नहीं चाहते। सत्य और अहिंसा का पुजारी कभी किसी काल मे नहीं हारता। एक अहिंसक व्रती के शरीरपात से, वहाँ शत सहस्र की संख्या म वैसे ही दृढव्रती उसका रिक्त स्थान लेने के लिए आ जाते हैं। ससार के सम्मुख हम ईश्वरीय अस्त्र का प्रयोग कर रहे हैं।'[१] यह कथन वस्तुत गांधीवाद के अहिंसा, सत्य और सत्याग्रह की व्याख्या है और कथोपकथन के स्वाभाविक ढग से न आकर आरोपित ही कही जायेगी। जहाँ एक ओर साम्यवाद का लक्ष्य कामरेड असद के कथन म संयत रूप से आया है, वहाँ दूसरी ओर ब्रह्मदत्त उसे भाराक्रान्त बना देता है

'हम हक और इंसाफ चाहते हैं। इंसाफ हासिल करने के लिए जान देना एक बात है, बेइंसाफी से दबकर जान क्यों दी जाये? वीमस्ट एवर फाइट फार जस्टिस (हमें न्याय के लिए निरन्तर लडना होगा) इफ डेथ कम्स' लट इट बी इन फाइट फार जस्टिस' नाट इन सरेंडर टू इनजस्टिस (न्याय के लिए लडते हुए मृत्यु आनी है तो आय, अन्याय के सम्मुख पराजय मे नहीं।)[२] असद के इस कथोपकथन म सम्बद्धता और अनुकूलता है किन्तु ब्रह्मदत्त का कथोपकथन अनेक पृष्ठों म फैलकर बिखरा सा लगता है मैं वर्ग के अनुसार व्यक्ति को देखता हूँ। मैं भौतिकवादी कल्याण का ही सबसे बडा समझता हू। शोषक के हथियारों से न डरो। यही मार्क्स ने कहा था, लेनिन ने कहा था, यदि हो सके तो जैसे ही, अन्यथा शस्त्रों से शोषक को हटा दो। हर नये निर्माण के लिए एक ध्वंस की आवश्यकता है।'[३] कहना न होगा कि ऐसे कथोपकथन 'नारावाद' से अधिक महत्व नहीं रखते।

---

१ प्रतापनारायण श्रीवास्तव, बयालीस, पृष्ठ २००

२ यशपाल, झूठा सच (वतन और देश), पृष्ठ २३६

३ रांगेय राघव, सीधा सादा रास्ता, पृष्ठ २७५-२७७

उद्देश्यपरक कथोपकथन का एक अच्छा उदाहरण 'रंगभूमि' में देखा जा सकता है--"हम जायदाद के लिए अपनी आत्मिक स्वतन्त्रता की हत्या क्यों करें ? हम जायदाद के स्वामी बन कर रहेंगे, उसके दास बनकर नहीं। अगर सम्पत्ति से निवृत्ति न प्राप्त कर सकें तो इस तपस्या का प्रयोजन ही क्या ?"[१] यहां विनय के माध्यम से लेखक ने गाँधी-दर्शन के ट्रस्टीशिप की सफल व्यंजना की है।

कथोपकथन से वातावरण की सृष्टि

राजनीतिक उपन्यासकारों ने कथोपकथन को अपने इच्छित की सृष्टि का भी एक सफल माध्यम बनाया है। शेवडे जी का 'ज्वालामुखी' इस दृष्टि से एक महत्वपूर्ण उपन्यास है।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि राजनीतिक उपन्यासों में कथोपकथन के गुणों का निर्वाह कलात्मक ढंग से नहीं हो सका है। डॉ० प्रतापनारायण टंडन ने *कथोपकथन के निम्नलिखित गुण बताये हैं*

(क) उपयुक्तता
(ख) अनुकूलता
(ग) सम्बद्धता
(घ) स्वाभाविकता
(ङ) संक्षिप्तता
(च) उद्देश्यपूर्णता

राजनीतिक उपन्यासों में समग्र रूप से कथोपकथन का अध्ययन करने से यह कहा जा सकता है कि उनमें उपर्युक्त समस्त गुणों का समाहार नहीं हो सका है। संक्षिप्तता का अभाव तो इन उपन्यासों का एक सामान्य दोष है। राजनीतिक उपन्यास में धाराप्रवाह ढंग के भाषणों या लम्बे कथोपकथनों को देखा जा सकता है। 'बलचनमा' में स्वामी जी व शर्मा जी के समाजवादी चेतना से युक्त भाषण,[२] 'रैन अंधेरी' में श्यामा का दीर्घ कथन,[३] 'सती मैया का चौरा' में मन्नी का बयालीस की क्रांति में कम्युनिस्टों की भूमिका का स्पष्टीकरण[४] इत्यादि कथोपकथन-दीर्घता के कारण बोझिल और नीरस बन पड़े हैं। वस्तुतः यह प्रभाव भारतीय राजनीति का ही कहा जा सकता है, जो प्रवा

१. प्रेमचन्द, रंगभूमि, पृष्ठ ४३८
२. नागार्जुन, बलचनमा, पृष्ठ १७५-७८
३ मन्मथनाथ गुप्त, रैन अंधेरी, पृष्ठ ४१
४ भैरवप्रसाद गुप्त, सती मैया का चौरा, पृष्ठ ५२५-२८

त्मक भाषणबाजी को जनमानस पर प्रभाव डालने वाली संजीवनी समझती है। राजनीतिक मंच की यह उपदेशात्मक वृत्ति साहित्य में बाधक है, यह तथ्य हमारे राजनीतिक उपन्यास अभी तक नहीं समझ सके, यह एक दुखद स्थिति है। यही कारण है कि इनके उपन्यासों में व्यक्त विचार पात्रों के अपने विचार न होकर लेखक के विचार बन कर रह जाते हैं। डॉ० गणेशन का यह कथन ठीक ही है कि हिन्दी के कई उपन्यासकारों में न जाने कहाँ से यह धारणा आ गयी है कि क्रांतिकारी पात्रों को बोलना अधिक चाहिए, कभी-कभी भाषण भी देना चाहिए। परन्तु बात सचमुच इसकी बिल्कुल विरुद्ध है। पात्र जितना बोलता है, उतना उसमें आन्तरिक खोखलापन रहता है।'[1] राजनीतिक उपन्यासकार मनीषा वाचालता को उपन्यास का अंग न बनाये तो अधिक उपयुक्त होगा। समाजवादी यथार्थ के चितेरों को, कम से कम राल्फ फाक्स के विचारों को ही समझना चाहिए, जो यह मानता है 'सभाषण बेकार है, यदि हम जीवन की उन तमाम प्रक्रियाओं को नहीं समझवे, जो संभाषणों के पीछे छिपी है। निश्चय ही पात्रों के अपने राजनीतिक विचार हो सकते हैं, और होने चाहिए भी, किन्तु शर्त यह है कि वे पात्रों के अपने विचार हों, लेखक के विचार नहीं।'[2]

वातावरण

अपने प्राथमिक परिचय से लेकर आद्य त पाठक के मन को अभिभूत करते हुए अथकित रूप में अपने साथ समेटे रहना उपन्यास में वातावरण का ही गुण होता है। अतएव वातावरण का उपन्यास में विशिष्ट स्थान है। वातावरण से अभिप्राय देश और काल की उन उपाधियों से है, जिनके अन्तराल से उपन्यासकार कथा एवं पात्रों का निर्विशिष्ट रूप चित्रित करता है। इसके अन्तर्गत युग और देश की वेष-भूषा, रीति-रिवाज आदि के साथ घटनाओं और व्यक्तियों की स्थूल परिस्थितियाँ भी शामिल हैं, इन्हीं के सयोजन से वातावरण में यथातथ्यता आती है। संक्षेप में कहा जा सकता है, कि वातावरण दो रूप में हमारे सम्मुख आता है सामाजिक जीवन तथा भौतिक परिस्थितियाँ। इनमें सामाजिक वातावरण जहाँ कथावस्तु को सजीवता प्रदान करता है, वहाँ भौतिक वातावरण पात्रों के मानसिक परिवर्तन के लिए सयोज्य है। सामयिक होने के कारण राजनीतिक उपन्यासों में वातावरण का अपना एक विशेष महत्व होता है, क्योंकि सद्युगीन वातावरण से संलिप्त होने पर ही लेखक सम्पूर्ण परिवेश को विश्वसनीय बना सकता है। यह कहना अनुचित न होगा कि उपन्यासकार के समक्ष देश-काल

१. डॉ० गणेशन, हिन्दी उपन्यास-साहित्य का अध्ययन, पृष्ठ २४२

२ राल्फ फाक्स, उपन्यास और लोक-जीवन (अनु० नरोत्तम नागर), पृष्ठ १०६-१०७

का जो परिवेश रहता है, उपन्यास मे वह उसी का चित्रण कर युग के प्रत्यकन को सहज, सटीक एव सजीव कर सकता है।

हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासो मे वातावरण जीवन्त रूप मे प्रस्तुत हुआ है, क्योकि अधिकाश राजनीतिक गतिविधियों एव आन्दोलनो से निकट का सम्बन्ध रहा है। राजनीति के सक्रिय एक अग रहे है, जिनका चित्रण उन्होंने अपने उपन्यासो मे किया है। यशपाल, भैरवप्रसाद गुप्त, अमृतराय, सेठ गोविन्ददास, अज्ञेय, मन्मथनाथ गुप्त, जैनेन्द्र, गुरुदत्त, अनन्तगोपाल शेवडे, यज्ञदत्त इत्यादि उपन्यासकार राष्ट्रीय आन्दोलन से सम्बन्ध रहे हैं।

राजनीतिक उपन्यासो मे वातावरण को निम्न आशयो से ग्रहण करने का आग्रह है

१ मुख्य प्रभाव की अभीष्ट अभिव्यक्ति के लिए

२ मानसिक दृष्टिकोण के चयन के साथ मुख्य प्रभाव को प्रभावोत्पादक बनाने के लिए।

३ देशकाल, भाषण-प्रवाह तथा ससर्ग के क्रम मे विशिष्ट विवरणो के आकलन हेतु।

मुख्य प्रभाव की अभीष्ट अभिव्यक्ति के लिए

राजनीतिक उपन्यासो को हमने तीन वर्गों मे विभाजित किया है...वादनिरपेक्ष, वादसापेक्ष एव मिश्रित। वादनिरपेक्ष राजनीतिक उपन्यासो मे राष्ट्रीय आन्दोलनो का और उसके परिवेश मे बदलते हुए सामाजिक जीवन का अकन रहता है। इसमे राष्ट्रीय आन्दोलन व राजनीतिक घटनाओ को प्रमुखता मिलती है और व्यक्ति तथा समाज उसके सहयोगी के रूप मे रहते हैं। वस्तुत. इन सहयोगी तत्वो से वातावरण को सजीवता मिलती है। 'ज्वालामुखी' मे बयालीस की क्रांति का यथार्थ चित्रण इन्ही तत्वों के माध्यम से उभरा है। बयालीस की क्रांति मे हिसक और अहिसक, दोनो तत्व सक्रिय हो गये थे और वातावरण को घनीभूत बनाने के लिए लेखक दोनो प्रकार से दृश्यो की सृष्टि करता है। कथानक के प्रारम्भ होने ही लेखक नाटकीय ढग से नीरांजन की ज्योति बुझने से अनिष्ट कल्पना की भावना से राजनीतिक धरातल पर आ जाता है और द्वितीय महायुद्ध से उत्पन्न अनिष्टकारी परिस्थितियो का सकेत देते हुए भारतीय राजनीति के स्तर पर आकर बयालीस की भूमिका को स्पष्ट करता है। इसी वातावरण के परिप्रेक्ष मे काग्रेस के अधिवेशन और गाँधी जी के भाषण-सूत्र को पकड कर नायक के द्वारा सूचित करता है 'यह तो पर्व है, महापर्व। शिव का तांडव होने

जा रहा है। डमरू की डम-डम सुनायी दे रही है। धरा, भूमि, सब डोलने की तैयारी में हैं। यह तो आनन्द, महान आनन्द आ गया है। नाचो, नाचो इस रौद्र भैरव की नृत्य लीला के साथ समरस हो जाओ'[1] इस परिवर्तन के साथ कथानक, पात्र और कथोपकथन एक दूसरे के साथ समरस हो वातावरण को ही प्रभावोत्पादक बनाने में लग जाते हैं।

देश-काल की दृष्टि से हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासों को दो वर्ग में विभाजित किया जा सकता है

१—स्वाधीनता पूर्व युग (१८८५ से १९४७ ई० तक)

२—स्वातन्त्र्योत्तर काल (१९४७ ई० से आज तक) स्वाधीनता पूर्व युग की महत्वपूर्ण राजनीतिक घटनाएँ इस प्रकार है

१ कांग्रेस के नेतृत्व में हुए अहिंसक आंदोलन—इसके अन्तर्गत असहयोग आन्दोलन नमक-सत्याग्रह सविनय अवज्ञा आन्दोलन इत्यादि का समावेश किया जा सकता है।

२ क्रांतिकारी गतिविधियाँ – ये १९३२ ई० तक सक्रिय रहकर मुख्यतया आतंकवादी राष्ट्रभावों से अनुप्राणित रही।

३ स्वाधीनता पूर्व अन्य घटनाएँ—बंगाल का दुर्भिक्ष, बयालीस की क्रांति, आजाद हिन्द फौज का गठन, नाविक-विद्रोह, स्वाधीनता प्राप्ति एवं देश विभाजन आदि।

स्वातन्त्र्योत्तर-काल की घटनाएँ

१—सत्तारूढ़ कांग्रेस और व्याप्त भ्रष्टाचार

२—आम चुनाव

३—राजनीतिक दल और उनकी गतिविधियाँ

स्वाधीनता-पूर्व युग

स्वाधीनता पूर्व युग का चित्रण प्रेमचन्द के उपन्यासों के अतिरिक्त मन्मथनाथ गुप्त के स्वाधीनता आन्दोलन की पृष्ठभूमि पर आधारित 'उपन्यास-सप्तक' के उपन्यासों, गुरुदत्त के 'जमाना बदल गया,' भगवतीचरण वर्मा के 'टेढ़े मेढ़े रास्ते' और 'भूले बिसरे चित्र' में अपनी समग्रता के साथ अंकित हुआ है। प्रेमचन्द के प्रेमाश्रम, कर्मभूमि, रंग-भूमि एवं गोदान में सन् १९२० से १९३६ का राजनीतिक भारत चित्रित है। गुरुदत्त

---

१ सन्त गोपाल शेवड़े, ज्वालामुखी, पृष्ठ ९९

के 'जमाना बदल गया' में १८८५ से १९४७ तक की घटनाएं कथानक का आधार बनी हैं, जब कि भगवतीचरण वर्मा के बृहदाकार उपन्यासों में गाँधी युग की प्रवृत्तियों एवं घटनाओं को महत्वपूर्ण स्थान मिला है। मन्मथनाथ गुप्त के 'उपन्यास सप्तक' में सन् १९२१ से स्वाधीनता प्राप्ति तक की राजनीतिक गतिविधियों का अंकन किया गया है। यद्यपि उपर्युक्त सभी उपन्यासों में राष्ट्रीय जागरण से स्वाधीनता-प्राप्ति तक की समान घटनाओं को सग्रथित कर कथावस्तु का सगठन करने पर भी रचना-काल के भेद से वातावरण के निर्माण में शैलीगत अन्तर देखा जा सकता है। प्रेमचन्द ने जहाँ विवरणात्मक शैली अपनायी है और प्रत्यक्षीकरण पर बल दिया है, वहाँ स्वतन्त्र्योत्तर-काल के लेखकों ने कथावस्तु में विवरणात्मक शैली में नाटकीय एव पात्रों के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण की पद्धति का समावेश कर वातावरण को अभिव्यंजित किया है।

स्वाधीनता-पूर्व की प्रमुख राजनीतिक घटनाओं में बयालीस की क्रांति एव देश विभाजन ने उपन्यासकारों का ध्यान सर्वाधिक आकर्षित किया है। प्रतापनारायण श्रीवास्तव का 'बयालीस,' रामेश्वर शुक्ल 'अचल' का 'नयी इमारत' व अनन्तगोपाल शेवडे का 'ज्वालामुखी' सन् बयालीस की क्रांति की पृष्ठभूमि पर आधारित है। इसके अतिरिक्त कतिपय अन्य उपन्यासों में भी इस घटना को स्थान मिला है। वातावरण की दृष्टि से 'ज्वालामुखी' एक उत्कृष्ट उपन्यास है।

वातावरण और आंचलिकता

हिन्दी में आंचलिक उपन्यास की प्रवृत्ति यदि राजनीतिक कारणों से न भी मानी जाय तो भी इस मत से इन्कार नहीं किया जा सकता कि उसने सामयिक प्रदेशवाद को पोषित किया है। स्थानीय रंग के सदर्भ में मत देते हुए प० सीताराम चतुर्वेदी ने लिखा है कि आंचलिकता किसी कथा के मूल तत्व के रूप से नहीं, वरन् सजावट के रूप में उस कथा के लिए दृश्य, भाषा, वेश, आचार-विचार और व्यवहार का सटीक विस्तृत विवरण है।[1] वस्तुत किसी भी राष्ट्रीय या राजनीतिक आन्दोलन की प्रतिक्रिया सभी क्षेत्रों में समान नहीं होती। वह मूलत उस क्षेत्र के निवासियों की राजनीतिक चेतना पर निर्भर करती है। नागार्जुन, रेणु, भैरवप्रसाद गुप्त आदि उपन्यासकारों के जो आंचलिक उपन्यास लोकप्रिय हुए हैं, उनमें गहरा राजनीतिक सम्पर्क मिलता है और इन उपन्यासों का एक ध्येय राजनीतिक आंचलिक जागृति का भी है। राजनीतिक कथावस्तु के पृष्ठाधार पर स्थानीय वातावरण का निदर्शन स्थानगत भौगोलिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों की समष्टि के समन्वय को स्थानीय रंग दिया गया।

१ राल्फ फाक्स, उपन्यास और लोक-जीवन, पृष्ठ १३१

है। यशपाल के 'झूठा सच' में भी इसकी छाप मिलती है। इसमें राष्ट्र-विभाजन के राजनीतिक परिपार्श्व में पंजाबी जन-जीवन की सशक्त अभिव्यक्ति है। 'झूठा सच' में वर्णन का विश्लेषणात्मक विस्तार पात्रों या लेखक की टीका के रूप में प्रभावोत्पादक बन पड़ा है। रेणु के 'मैला आँचल' की बिखरी सी कथावस्तु वातावरण के कुशल संयोजन से ही सम्हल सकी है। लेखक जिस वातावरण को अंकित करना चाहता है, उसे शब्दों को रूप दे ही देता है और दृश्य हमारी आँखों के सामने साकार हो उठता है। अनन्त गोपाल शेवड़े के 'ज्वालामुखी' में बयालीस की क्रांति का सप्राण चित्रण है और हिन्दी रिव्यू' के सम्पादक के शब्दों में इस उपन्यास का नायक वास्तव में सन् १९४२ का उत्तप्त वातावरण है, जिसने उसमें जीवन भरा है। वातावरण की यथार्थता से पात्रों की मनोदशा, करुणा, आतंक और संघर्ष सजीव हो उठे हैं। गुरुदत्त के राजनीतिक उपन्यासों में भी वातावरण को प्रमुखता मिली है। उनके वर्णन का प्रत्येक अंश अपने आप में युक्तिसंगत होता है और विचार का सूत्र इन अंशों को एक दूसरे से जोड़ता है। उनके पात्रों का वातावरण से घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। नागार्जुन और भैरवप्रसाद गुप्त ने समाजवादी यथार्थवाद के अनुरूप विवरण की सचाई के अलावा प्रतिनिधि परिस्थितियों में प्रतिनिधि चरित्रों का भी सच्चा चित्र प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। किन्तु इतना होने पर भी हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासों को अभी इस दिशा में कई मंजिलें पार करना है। संतुलन के साथ दृश्यों और विवरणों का उपयोग जैसा चाहिए, वैसा नहीं है। वातावरण और पात्र के पारस्परिक सम्बन्ध को भी अभी गहराई से समझने की आवश्यकता प्रतीत होती है। राल्फ फाक्स ने सत्य ही कहा है कि 'वातावरण का प्रश्न पात्र और वातावरण के बीच का वह नाजुक सम्बन्ध है, जिसे मूर्त करना इतना कठिन है और जो यदि लेखक को अपने पात्रों की वास्तविकता को गहरा बनाना है, अपनी कृति के निर्णयात्मक क्षणों को घनीभूत बनाना है, लेखक के लिए आवश्यक है।

राजनीतिक उद्देश्य

राजनीतिक उपन्यास में उद्देश्य का उतना ही महत्व है, जितना वर्ण्य वस्तु का। उपन्यास जीवन की व्याख्या है और वर्तमान जीवन पग-पग पर राजनीति से उद्वेलित होता है। इस रूप में जीवन और राजनीति एक दूसरे के पर्यायवाची हो रहे हैं। आज के जीवन की व्याख्या करते समय राजनीतिक प्रभाव को उससे विलग नहीं किया जा सकता। यह व्याख्या दो प्रकार से की जा सकती है—व्यक्तिगत रूप से अथवा परिवर्तनशील चरित्र के गतिमान रूप में।

व्यक्तिगत व्याख्या में मनुष्य की आन्तरिक भावनाओं का विश्लेषण होता है। किन्तु वह पात्र अपने स्रष्टा के दृष्टिकोण के प्रतिकूल नहीं जा सकता। हडसन ने जीवन

को उपन्यासकार के विषय के रूप में माना है और उपन्यासकार के लिए यह उचित भी है कि वह युगानुरूप जीवन की प्रतिच्छाया प्रस्तुत करे।

जीवन की व्याख्या का दूसरा रूप गतिमान परिवर्तनशील जीवन के अंकन से व्यक्त होता है। इस पद्धति से अंकित जीवन व्याख्या पाठक की मनस्विता मे विस्तार पाती है और स्वय पाठक की व्याख्या हो जाती है।

राजनीतिक उपन्यास मे जीवन की व्याख्या किसी भी रूप मे क्यो न की जाय, उसमे लेखक की मान्यताएं आरोपित रहती ही है। यह सत्य ही है कि 'जब जीवन के ताने बाने से ही उपन्यासकार अपनी सृष्टि बुनता है, उसके रग मे ही उसे रँगता है तो यह कैसे सभव है कि उनमे जीवन के प्रति उपन्यासकार की अपनी भावनाओ की छाया न हो, सकेत न हो।[1]

सच तो यह है कि उद्देश्यविहीन उपन्यास की कल्पना ही असगत है। व्रजरत्नदास का कथन है 'मानव अपनी सचेतन अवस्था मे निरुद्देश्य रह नही सकता। साधारणत उपन्यास मनोरजन का साहित्य समझा जाता है, पर यह केवल इसका बाह्य रूप है। अच्छे उपन्यास जीवन सघर्ष के चित्रो द्वारा सिद्धातो का नैतिक महत्व समझाते है तथा मनोवेगो या प्रवृत्तियो द्वारा प्रेरित होने पर कार्य या अकार्य कर मनुष्य कैसे सफल अथवा विफल होते है, इनके सजीव चित्र उपस्थित कर उन पर प्रभाव डालते है।[2] गुलाबराय भी उद्देश्य को उपन्यासकार के दृष्टिकोण मे निहित मानते हुए कहते है विचार और भाव भी होते है।' लेखक का जीवन के प्रति एक विशेष दृष्टिकोण होता है, उसी दृष्टिकोण से वह जीवन की व्याख्या करता है और उसी के अनुरूप उसके विचार होते है।[3]

राजनीतिक उपन्यास अपने उद्देश्य मे इतने स्पष्ट है कि अधिकाश आलोचकों ने उसकी इस प्रवृत्ति पर आक्षेप किये है। इनमे से अनेक वर्तमान वैचारिक युग मे भी मनोरजन को ही उपन्यास का उद्देश्य निरूपित करने मे सकोच नही करते। व्रजरत्नदास के शब्दो मे 'उपन्यास का पाठक किसी आन्दोलन का समर्थन या खडन करने या उपदेश सुनने के लिए उपन्यास नहीं पढता। उसका उपन्यास का पढ़ना मनोरजन के लिए होता है।'[4] इसी को श्रीनारायण अग्निहोत्री ने अपने रेशमी शब्दो मे यो बयान किया है: 'तथ्य तो यह है कि कथा के द्वारा किसी मतवाद का पोषण कला की हत्या करना है।'

---

१ शिवनारायण श्रीवास्तव, हिन्दी उपन्यास, पृष्ठ २३-२४

२ व्रजरत्नदास, हिन्दी उपन्यास-साहित्य, पृष्ठ ४०-४१

३ गुलाबराय, काव्य के रूप, पृष्ठ १७५

४. व्रजरत्नदास, हिन्दी उपन्यास-साहित्य, पृष्ठ ४२

किन्तु आगे वही स्वीकार करते हैं कि 'यदि कला-निर्माण में कोई मतवाद हो सकता है तो वह है मानव हितवाद।'[1] प्रश्न सहज रूप से उठता है कि क्या राजनीतिक मानव हितवाद की विरोधिनी है? राजनीति की आधारभूमि ही मानव हित है, यह सर्वमान्य तथ्य है, समझ में नहीं आता कि फिर अग्निहोत्री जी का यह विरोधाभास क्या अर्थ रखता है।

स्पष्ट है कि बदलते हुए युग के अनुरूप यदि आलोचकगण अपनी मान्यताएँ नहीं बनायेंगे तो उनके दृष्टिकोण में इस प्रकार का विरोधाभास मिलना स्वाभाविक ही है। देवकीनन्दन खत्री के युग में उपन्यास यदि मात्र मनोरंजन के उद्देश्य से लिखे जाते थे और मनोरंजन को ही उनका मुख्य उद्देश्य स्वीकार लिया गया था तो उसी को आज भी मानते जाना युक्तिसंगत नहीं। उद्देश्य में भी परिस्थितियों के अनुसार युगानुकूल परिवर्तन होता रहा है, यह एक ऐतिहासिक तथ्य है।

जब विभिन्न तत्वों के आधार पर उपन्यास के वर्गीकरण की आतुरता प्रदर्शित की जाती है तो यह ध्यान रखना भी आवश्यक है कि यह वर्गीकरण और उसके मानदण्ड विशिष्ट गुणों के अनुरूप ही होगा और मूल्यांकन के समय इन गुणों की उपेक्षा नहीं की जा सकती। मूल्यांकन के समय 'सब धान बाइस पसेरी' का सिद्धांत यहाँ चरितार्थ न होगा। राजनीतिक उपन्यास में यदि उद्देश्य राजनीतिक न हो तो उसका मूल्य ही क्या! उसकी इच्छा-तृप्ति का स्रोत कहाँ? सिद्धान्त प्रचार और वर्ग-चेतना को प्रखर करना तो राजनीतिक उपन्यासों का एक मुख्य उद्देश्य है और उसका मूल्यांकन भी उसी आधार पर होना चाहिए।

राजनीतिक उपन्यासकार अपने उद्देश्य की स्पष्ट घोषणा कर सामने आये हैं। इसका एक प्रमुख कारण यह है कि राजनीतिक उपन्यास राष्ट्रीय आन्दोलनों से उद्भूत राजनीतिक चेतना की देन है। इसी की भूमिका से उपन्यास-रचना विधान के उद्देश्य में राजनीति को स्थान प्राप्त हुआ। कहा जा सकता है कि राजनीतिज्ञों द्वारा घोषित राजनीतिक मान्यताओं ने समाज के साथ-साथ साहित्य को भी संचालित किया। इसे मानने से कौन इन्कार करेगा कि सन् १९२० के उपरान्त विभिन्न राजनीतिक विचारधाराओं ने भारतीय मानस को तीव्र गति से आन्दोलित किया। इनमें से जो दो राजनीतिक वाद भारतीय राजनीति में अधिक सक्रिय हुए, वे गाँधीवाद और समाजवाद हैं। साहित्य में गाँधीवाद का पोषण और प्रचार का परचम प्रेमचन्द ने और समाजवाद-मार्क्सवाद का लाल झंडा यशपाल ने उठाया।

---

१ श्रीनारायण अग्निहोत्री, उपन्यास-तत्व एवं रूप-विधान, पृष्ठ १७१

गांधीवाद के भारतीय जीवन के अधिक निकट होने पर भी सन् १९३४ के निकट समाजवादी और मार्क्सवादी विचारधारा भारतीय राजनीति में अंकुरित हुई और इसका उपन्यास में निदर्शन कराया यशपाल ने। यह गांधीवाद के विरुद्ध प्रतिक्रिया के रूप में रूस की जनक्रान्ति की सफलता से वहाँ ग्रहण किया गया। स्वयं यशपाल इसे विरोध का साहित्य मानते हैं। उनके शब्दों में "मेरे विचार से विरोध का साहित्य सदा भविष्य की ओर जायगा और समर्थन का साहित्य सदा स्थिति का पोषण करेगा।" वे यह भी मानते हैं कि "लेखक से ऐसे विरोध की आशा इसलिए की जा सकती है, क्योंकि जनसमुदाय की अपेक्षा वह अधिक सचेत और भावुक होता है। वास्तव में उसका विरोध समाज की चेतना या विकास की इच्छा का ही प्रकट रूप होना है। विकास का ही भविष्य है। ऐसी चेतना या साहित्य सदा उग्रता लिये रहता है, क्योंकि वह बहुत समय तक दब घुटने के बाद फटता है।"[1] इतना ही नहीं, अपितु उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए वे कहते हैं कि 'साहित्यिकों को चाहिए कि वे अपनी लेखनी द्वारा आर्थिक क्षेत्र में जनवाद और सामूहिक हित के लक्ष्य को लाने का प्रयत्न करें।'[2]

उद्देश्य की अभिव्यक्ति की दो विधियाँ हैं—प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष। लेखक के विचार और मान्यताएँ प्रच्छन्न रूप में अधिक प्रभावी हो सकती हैं और कलात्मक सौष्ठव को भी बनाये रख सकती हैं। विषय के साथ विचारों का समावेश स्वाभाविक ढंग से होना चाहिए। प्रेमचन्द के गाँधीवादी पात्र सूरदास, प्रेमशंकर, चक्रधर, अमरकांत आदि लेखक की आदर्शवादी विचारधारा के अनुसार व्यक्तित्व पाते हैं और विचारों के साथ उनका दृढ़ सम्बन्ध है। यशपाल ने भी अपने विचारों को पात्रों के माध्यम से अत्यन्त कुशलता से व्यक्त किया है। उद्देश्य को अभिव्यक्ति देते समय लेखक को अपने विचारों के प्रचार के लिए पात्रों के जीवन को अस्वाभाविक रूप देना चाहिए। पात्रों के जीवन के आधार पर ही उन्हें अपने विचारों को रूप देना चाहिए, न कि सिद्धान्तों के लिए पात्रों की सृष्टि। अप्रत्यक्ष विधि में जीवन के मंथन द्वारा व्याख्या, सामग्री के चुनाव, संगठन, कथन पर आवश्यक बल, चरित्र-चित्रण एवं कथा-विकास के द्वारा ही उपन्यासकार जीवन के विषय में अपने विचारों का प्रकाशन कर सकता है। इस सन्दर्भ में वयोवृद्ध उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा का यह कथन राजनीतिक उपन्यासकारों का मार्गदर्शन कर सकता है—"उपन्यासकार का लक्ष्य ऊपर-ऊपर से पूर्ण मनोरंजन और भीतर से

---

१ मासिक 'आजकल,' जुलाई, १९६०, पृष्ठ ३३-३४, श्री विश्वनारायण सिंह को दिये एक इन्टरव्यू से।

२ मासिक 'आजकल,' जुलाई १९६०, पृष्ठ ३३-३४, श्री विश्वनारायण सिंह को दिये एक इन्टरव्यू से।

सत्य, शिव, सुन्दरम् की साधना होना चाहिए। अपनी संस्कृति के इस सूत्र का मैं कायल हूँ और यही मेरा आदर्श है। अंग्रेजी में उसको यों कह दूँ—'फोटोग्रेफिक रियलाइजेशन गुड बी ब्लैंडेड विद ए डोमिनन्ट नोट ऑफ आइडियलिज्म,' मैं इसी का निर्वाह करता हूँ। प्रत्यक्ष उपदेश के मैं बिलकुल विरुद्ध हूँ। इसका कोई एस्थटिक वैल्यू नहीं, चाहे उपन्यास का क्षेत्र आर्थिक हो, चाहे सामाजिक राजनीतिक या नैतिक।''[1]

किन्तु सच तो यह है कि हिंदी के अधिकांश राजनीतिक उपन्यासों में उद्देश्य प्रत्यक्ष विधि से होने के कारण आलोचकों की वक्र दृष्टि का कारण बना है। समाजवादी—यथार्थसमन्वित उपन्यासों में उद्देश्य पात्रों की नारेबाजी में पड़कर अपने कलात्मक पक्ष को क्षीण कर बैठा है। पात्रों के कथपकथन का मुख्य ध्येय ही उद्देश्य की अभिव्यक्ति करना मान लिया गया है। अन्य राजनीतिक उपन्यासों की स्थिति भी इससे कुछ अधिक भिन्न नहीं है। 'चढ़ती धूप' का मोहन कहता है 'समाज की भयंकर समस्या और नारकीय विषमता का निपटारा युद्ध में है शांतिमय संघर्ष या समझौते में नहीं, पूँजीवादी स्वार्थों के विनाश में है, पारस्परिक मेल में नहीं। क्रांति में है, परिवर्तन में नहीं, कोटि-कोटि शोषित श्रमिकों की हुकार में है, व्यक्तिवादी आत्माभिव्यक्ति में नहीं, हिंसा में है, अहिंसा में नहीं।'[2] इसी उद्देश्य को लेकर उपन्यास की कथावस्तु की रचना की गयी है। एक दूसरा उदाहरण 'विषाद-मठ' के एक गीत को देखिए—'राते के दिन सदा नहीं रहते। सिर धुन धुन कर पछताने वाले! तेरे दुःखों के ताप से चट्टानें पिघलने लगी हैं। स्वतन्त्रता, शांति और साम्य की दुंदुभी बजने वाली है। तूने अपना बागी सिर उठाया है, तेरे ऊपर खून से भीगा झण्डा है।'[3]

गांधीवादी उपन्यासों में राजनीतिक उद्देश्य की घोषणा प्रत्यक्ष रूप से की गयी है। 'ज्वालामुखी' का नायक अभय का यह कथन गाँधीवाद का ही पोषण करता है: 'गाँधी जी के दर्शन में पूरी आस्था है और मेरा यह सम्पूर्ण विश्वास है कि अहिंसा के मार्ग से ही भारत शीघ्र और पूर्णतया सफल हो सकता है। भारत की विशिष्ट जीवन प्रणाली, दार्शनिक परम्परा और आध्यात्मिक वृत्ति में अहिंसा जो चमत्कार दिखा सकती है, वह हिंसा के वश का नहीं। हिंसा की प्रतिक्रिया अधिकाधिक हिंसा और उसकी प्रतिक्रिया अधिकतम हिंसा—इस दुष्चक्र से मानव को मुक्ति नहीं। क्रोध का प्रतिकार अक्रोध से हो, द्वेष का प्रतिकार प्रेम से हो, और हिंसा का प्रतिकार अहिंसा से हो तो वह दुष्चक्र भंग हो जाता है और मानव इसमें से मुक्त हो जाता है। मानव के

१ शशिभूषण सिंहल उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा, पृष्ठ २८६
२ अचल . चढ़ती धूप, पृष्ठ १२५
३ रांगेय राघव विषाद-मठ, पृष्ठ १६३

प्रश्नों का हल निकालने में हिंसा बेकार और निकम्मी साबित हुई—अहिंसा पूर्णतः सफल और उपयोगी।'[1]

शैलीगत वैशिष्ट्य

अभिव्यञ्जना का कलात्मक ढंग ही शैली है, जो शॉपेनहावर के शब्दों में मस्तिष्क की बाह्य वृत्ति के द्वारा रूप की भंगिमा है। न्यूमैन के मत से भाषा के रूप में विचारों की अभिव्यक्ति शैली का प्रकट रूप है। स्टैण्डल मानते हैं कि 'किसी प्रस्तुत विचार में उस पूर्ण प्रभाव को उत्पन्न कर देने वाली सब परिस्थितियों के योग को शैली कहते हैं, जो उस विचार द्वारा प्रस्तुत होनी चाहिए।' उपर्युक्त परिभाषाओं से राजनीतिक उपन्यास में शैली के महत्त्व को समझा जा सकता है। राजनीतिक उपन्यास एक विशेष वर्ण्य वस्तु पर अपना ढाँचा निर्मित करता है और इस कथावस्तु की सार्थकता प्रयुक्त शैली-तत्त्व के उत्तम संयोजन पर निर्भर होती है।

राजनीतिक सिद्धान्तों के समावेश ने शैली के रूप को भी प्रभावित किया। मार्क्सवादियों के सिद्धान्तानुसार न तो बाह्याकार और न वर्ण्य विषय एक दूसरे से पृथक् करने योग्य और न एक दूसरे पर निष्क्रिय रूप से आश्रित रहने वाले सार पदार्थ हैं। बाह्याकार के अस्तित्व का उद्भव वर्ण्य विषय से होता है। और वह वर्ण्य विषय से एकाकार करता हुआ होता है और यद्यपि वर्ण्य वस्तु की प्राथमिकता रहती है, बाह्याकार की प्रतिक्रिया वर्ण्य विषय पर होती है और वह कभी निष्क्रिय नहीं रहता। बाह्याकार तो उसके जीवन की कसौटी होता है। वह उसे उस गहनतम ज्ञान को निर्दिष्ट करने एवं स्वरूप देने में सहायक होता है, जो भीतर से अभिव्यक्ति का प्रत्याशी होता है। मार्क्सवादियों के अनुसार वास्तविक संसार का आभास प्राप्त करने और उसका मर्म जानने का लेखक का ढंग हो सकता है।

कुछ भी हो, यह तो माना ही जा सकता है कि कलाकृति अपने रूप के माध्यम से ही रचना में निहित वास्तविकता को उद्घाटित करती है। शैली के तीन प्रकार हैं—कथात्मक, आत्मचरित्रात्मक और पत्रात्मक। राजनीतिक उपन्यास मुख्यतः कथात्मक शैली में ही लिखे हैं। जैनेन्द्र, अज्ञेय, इलाचन्द्र जोशी आदि ने कुछ उपन्यास आत्मचरित्रात्मक शैली में राजनीतिक उपन्यासों की रचना की है, किन्तु राजनीतिक तत्व की दृष्टि से वे सुगठित न होने के कारण असफल राजनीतिक बन कर रह गये। नागार्जुन का 'बलचनमा' और अंचल का 'उल्का' अवश्य ही आत्मचरित्रात्मक राजनीतिक उपन्यास के रूप में सफल रहे हैं। पत्रात्मक शैली का प्रयोग कुछ उपन्यासों में

---

१ अनन्तगोपाल शेवड़े ज्वालामुखी, पृष्ठ २४२

अवश्य मिलता है, परन्तु इस शैली मे सम्पूर्ण उपन्यास कोई नहीं है। उपन्यासो म व्यग्या त्मक शैली का भी प्रयोग बहुतायत से किया गया है। आचार्य चतुरसेन का 'बगुले के पख' और राजेन्द्र यादव के 'उखडे हुए लोग' म व्यग्यात्मक शैली विशेष रूप से व्यवहृत की गयी है।

जिन राजनीतिक उपन्यासो म राजनीतिक तत्त्व गौण हुआ है, उसम शैली की दृष्टि से अन्तर दिखलायी देता है। उदाहरणार्थ जैनेन्द्र, इलाचन्द्र जोशी और अज्ञेय की त्रयी' को लें। इनके उपन्यासो मे मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण का प्राधान्य मिलन से भाषा शैली प्रौढ साहित्यिक और काव्यात्मक गुण से युक्त है। भाषा मे प्रवाहात्मकता है, उपमाओं का अभिव्यजनापूर्ण प्रयोग किया गया है। इन्होने भावावेश स पूर्ण वक्तृता शैली को अपनाया है तथा भाषा शैली अनुचितन के कारण गम्भीर व तत्समबहुला है। इन्होने व्यक्ति के माध्यम स समाज की शाश्वत समस्याओ पर प्रकाश डालने का प्रयास किया है, किन्तु इस पद्धति को ग्रहण करने के कारण राजनीतिक तत्व नहीं उभर सके है। व्यक्ति का अध्ययन (भले ही वह राजनीतिक पात्र हो) उद्देश्य होने से कथानक स्वल्प मिलता है तथा घटनाओ की गौणता है। इसी कारण वर्णनात्मकता का अभाव है। शैली की दृष्टि से पूर्व दीप्ति चेतना प्रवाह व काल विपर्यय को अपनाने की चेष्टा की गयी है, पर उनका पूर्णत निर्वाह नही हो सका है।

समाजवादी यथार्थवादी उपन्यासो म पृष्ठभूमि की विवेचना आलोचक की नयी भूमिका है। वर्णन की शैली पृष्ठभूमि का महत्वपूर्ण परिष्कार है। इसके कारण ही पृष्ठभूमि को वातावरण का आधार और उत्पत्ति का क्षेत्र निरूपित किया जाने लगा। राजनीतिक उपन्यास म सामयिक प्रवृत्तियाँ तत्कालीन जीवन के अनुवाद के रूप म सम्मुख आयी और उनका उदात्तीकरण और अभिनयात्मक परिचय पाठको को प्रभावित करने म समर्थ हुआ। पृष्ठभूमि को महत्व प्राप्त होने से तथ्यात्मक शैली का आग्रह बढा और वर्णित घटना-काल को 'मूवी कैमरा' की-सी आँखो से देखने की प्रवृत्ति आयी।

भाषा

राजनीतिक उपन्यासो म चमत्कार की विशेष प्रवृत्ति नही मिलती। इनका आरम्भ इतिवृत्तात्मक कथानक से होता है। राजनीतिक उपन्यासो की भावव्यजना म काव्य-कल्पना का उल्लास नहीं, अपितु मृत्युलोक की व्यावहारिक सत्ता का चित्र मिलता है। भाषा साहित्य का बाह्य रूप है और वह उसकी आत्मा को अपने अन्दर सुरक्षित रखती है। वह मानव हृदय के भावो को मूर्त रूप देकर स्थायित्व प्रदान करती है। शैली भाषा से अलग वस्तु नहीं वह भाषा की चाल और गति ही है। शैली भाषा को भावानुकूल रूप प्रदान कर उसकी अभिव्यजक शक्ति को महत्ता प्रदान करती है। कहा जा सकता

है कि भाषा एक स्वाभाविक वस्तु है, लेकिन शैली कलाकार का रचना-चातुर्य। लेखक अपने भावों को अधिक मूर्तिमत्ता प्रदान करने के लिए भावानुकूल शब्दों का प्रयोग करता है।

राजनीतिक उपन्यास जनसाधारण की भावनाओं को व्यक्त करते हैं और विचारप्रधान होते हैं। अतएव उनकी भाषा जनता की बोलचाल की भाषा है। सरलता इसका रहस्य है और उपन्यास में विहित विचार को वह स्वाभाविक रूप से प्रकट करती है। राजनीतिक उपन्यासकार इस तथ्य से परिचित हैं कि भाषा विचारों का वाहन है। विचार ही सबसे महत्वपूर्ण है, भाषा का स्थान तो बाद में है। क्या बन्दर को ऐसे घोड़े पर बैठाना शोभा देता है, जिसकी साज सज्जा हीरों तथा मोतियों की हो?[1] यही कारण है कि उनकी भाषा में कला और उपयोगिता का सम्मिश्रण है। उसमें भाषा का व्यावहारिक चलतापन होता है, जिसे हम दैनिक सामाजिक जीवन में काम काज की भाषा कह सकते हैं जहाँ न व्याकरण के विशेष बन्धन हैं और न साहित्यिकता का विशेष आग्रह। नागार्जुन के 'रतिनाथ की चाची' का एक उदाहरण देखिए—'जमींदार चुनाव में हारकर अपने अन्धकारमय भविष्य की कल्पना करते हुए कछुए की भाँति दुबके पड़े थे। अन्दर ही अन्दर कुछ सोचकर अपने पैंतरे बदल डालने का उन्होंने निश्चय किया। परम्परा की दुहाई देकर कांग्रेसी मन्त्रियों को उन्होंने धमकी दी—'आपका खादी का कुर्ता पहले हम अपने खून से तर कर देंगे, उसके बाद जाकर जमींदारी प्रथा उठा दीजियेगा।'[2]

इन उपन्यासों में विचार को स्पष्ट बनाने के लिए 'जैसे,' 'मानो' आदि का प्रयोग कठिन विषय को अधिक बोधगम्य बनाने के लिए विशेष रूप से किया गया है। इसके कारण भाव व्यंजना कहीं-कहीं अधिक सुन्दर हो गयी है। किन्तु जहाँ इस आलंकारिक पद्धति का अनुसरण समुचित रूप से नहीं हो सका है, वहाँ वह अरुचिकर भी हो गई है। अचल के उपन्यासों में यह दुर्बलता विशेष रूप से उभरी है। "ठाकुर साहब धारा सभा के सदस्य पहले भी रह चुके थे। उनके लिए वहाँ अब कोई नवीनता न बची थी। उसके प्रति उनकी अब वैसी ही उदासीन, निरपेक्ष, ऊबी हुई दृष्टि थी जैसी किसी रसिक पुरुष की अपनी किसी अधेड़ रखैल के प्रति, जिसके भीतर अब नया कुछ ज्ञातव्य नहीं है, जिसका शरीर ढल चुका है और अन्दाज बासी पड़ चुके हैं, जो एक रोज के इस्तेमाल से घिस गये हैं।

---

१. विवेकानन्द के राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के सम्बन्ध में विचार, पृष्ठ २५

२ नागार्जुन : रतिनाथ की चाची, पृष्ठ ६४

'बिलकुल ऐसी ही ठाकुर साहब के लिए यह धारा-सभा थी।'[1]

कथोपकथन में भाषा की स्वाभाविकता आवश्यक है। कथोपकथन के क्रमिक विकास में आवश्यक है कि पात्र की वाक्य-योजना में वह स्वाभाविक भावभंगी हो, जो वस्तुतः नित्य के व्यवहार में प्राप्त होती है। वार्तालाप में प्रायः वाक्य का शुद्ध क्रम नहीं जाता। इसीलिए वास्तविकतावादी अधिकतर नाट्य प्रणाली का अनुसरण करते हैं। प्रेमचन्द में यह प्रवृत्ति नहीं मिलती, पर प्रेमचन्दोत्तर राजनीतिक उपन्यासों में इस प्रणाली का उपयोग किया गया है जिससे कथोपकथन की भाषा की शक्ति सामने आयी है। 'देखा भाई पुरी, है न आदमी में फरक! शाबाश है बुड्ढे को, असली सरदार है न! जवान बेटे मारे गये, बहुएँ, लड़की छिन गई, घर का सब मालमता लुट गया लेकिन यह पाव भर आटे के लिए हाथ नहीं पसारेगा।' और अब उन सरदार जी का कथन भी सुन लें, जिसकी ऊपर चर्चा है—'मैं क्या अपाहिज, मंगल हूँ, फकीर हूँ? मैं किसान आदमी हूँ। मेरे हाथ-पाँव अभी टूट नहीं गये हैं। मैंने उमर भर ब्राह्मण, नाई, कमीन और फकीर को चुटकी देकर दस आदमी को खिलाकर खाया है। मैं आटे के लिए किसी के आगे हाथ पसारूँ? तेरी आँख का पानी मर गया है तो तू जाकर माँग।'[2]

राजनीतिक उपन्यासों की भाषा को हम संक्षेप में शिक्षित मध्य वर्ग की भाषा कह सकते हैं। प्रेमचन्द गाँधी जी की हिन्दुस्तानी के कायल थे। वे भाषा के ऐसे रूप को पसन्द करते थे, जिसमें संस्कृत और फारसी के प्रचलित शब्द बिना रोक-टोक आ जावें। वे भाषा के उन प्रचलित रूपों को अपनाने के पक्ष में थे, जो जनता द्वारा अपनाया गया हो, उसके ऊपर लादा न गया हो। हिन्दुस्तानी तत्कालीन राजनीतिक स्थिति के अनुकूल थी, अतः प्रेमचन्द ने उसे ही ग्रहण किया। उनका कथन है कि 'जो लोग भारतीय राष्ट्रीयता का स्वप्न देखते हैं और जो इस सांस्कृतिक एकता को दृढ़ करना चाहते हैं, उनसे हमारी प्रार्थना है कि वे लोग हिन्दुस्तानी का निमन्त्रण स्वीकार करें, जो कोई नई भाषा नहीं है। बल्कि उर्दू और हिन्दी का राष्ट्रीय स्वरूप है।' प्रेमचन्द ने भाषा के इस रूप को ही अपनाया। उनके राजनीतिक उपन्यासों में हिन्दी, उर्दू और अंग्रेजी, तीनों के प्रचलित शब्दों का उपयोग किया गया है। दहाती और क्षेत्रीय भाषा को भी उन्होंने स्थान दिया है। हिन्दी के उन राजनीतिक उपन्यासों में, जिसमें ग्रामीण जीवन का चित्रण किया गया है, भाषा का यही रूप अपनाया गया है। 'कर्मभूमि' का एक उदाहरण देखिए—"तो फिर कौन रोजगार करोगे? कौन रोजगार है,

---

१ अमृतराय : हाथी के दाँत, पृष्ठ ४६

२ यशपाल : झूठा सच (वतन और देश), पृष्ठ ४८७

जिसमें तुम्हारी आत्मा की हत्या न हो, लेन-देन, सूद, बटा अनाज, कपड़ा, तेल, घी सभी रोजगारों में दाव-घात है। जो दाव घात समझता है, वह मजा उड़ाता है, जो नहीं समझता उसका दिवाला पिट जाता है। मुझे कोई ऐसा रोजगार बतला दो, जिसमें झूठ न बोलना पड़े, बेईमानी न करनी पड़े। इतने बड़े बड़े हकीम है, बताओ कौन घूस नहीं लेता ? एक सीधी सी नकल लेने जाओ, तो एक रुपया लग जाता है। बिना तहरीर किये थानेदार रपट नहीं लिखता। कौन वकील है, जो झूठे गवाह नहीं बनाता ? लीडरों में ही कौन है, जो चन्दे के रुपये में नोच खसोट न करता हो ? माया पर तो संसार की रचना हुई है, इससे कोई कैसे बच सकता है ?" नागार्जुन और भैरवप्रसाद गुप्त के उपन्यासों के अतिरिक्त 'बयालीस,' 'स्वतन्त्र भारत,' 'अनबुझी प्यास,' 'अमरबेल' इत्यादि उपन्यासों में भाषा का ऐसा ही रूप देखने को मिलता है। किन्तु जिन राजनीतिक उपन्यासों में नागरी जीवन चित्रित हुआ है या मध्यवर्ग की प्रमुखता मिली है, भाषा का स्वरूप बदल गया है। ऐसे उपन्यासों में भाषा का क्लिष्ट रूप भी देखने को मिलता है। जैनेन्द्र, अज्ञेय, इलाचन्द्र जोशी, राजेन्द्र यादव और मन्मथनाथ गुप्त के उपन्यासों से यह अन्तर सहज ही समझा जा सकता है। इनके उपन्यासों में भाषा के नये और क्लिष्ट शब्द गढ़ने की प्रवृत्ति देखने में आती है। अंग्रेजी के शब्दों और वाक्यों का प्रयोग भी अधिकायत से हुआ है। चिन्तन-भारान्वित शैली का एक उदाहरण 'विवर्त' से प्रस्तुत किया जा रहा है—'दुनिया में कई दुनियाँ हैं और आदमी में कई आदमी। असल में चेतना में पर्त पर पर्त है। इसलिए जो है, वह निश्चित नहीं है, वह एक रूप में नहीं है। क्या है, सो कहा नहीं जा सकता। जो है, अनिर्वचनीय है। है तो एक, पर दीखना है, प्रतीत होना है इसमें भिन्न। प्रतीति होने से ही जगत् है। प्रतीति है माया, इससे जगत् माया है। माया ममता होने की शर्त है। यही है होने का आनन्द, यही उसका छल। अपनी प्रतीतियों में सब बेर्नन करते हैं। इससे सदा नये नये प्रपंच पड़ते हैं। शायद होना और होते रहना छलना ही है।'

राजनीतिक उपन्यासों में पात्रानुकूल भाषा का ध्यान भी रखा गया है। इनका नागरिक नगर में व्यक्त भाषा का उपयोग करता है, लेकिन ग्रामीणों की भाषा देहाती स्तर की होती है। जाति, धर्म, व्यवसाय और शिक्षा की दृष्टि से भी पात्रों की भाषा एवं बोलचाल में अन्तर आ जाता है और राजनीतिक उपन्यासकारों ने इसे दृष्टिगत रख भाषा को पात्रानुकूल रखने का प्रयत्न किया है। राजनीतिक उपन्यासों में साम्प्रदायिक समस्या का चित्रण अधिक विस्तार से किया गया है। अतएव यह स्वाभाविक ही था कि समस्या का समाधान विभिन्न सम्प्रदाय के व्यक्तियों द्वारा उन्हीं की बोली बानी में यथार्थ के धरातल पर किया जाय। नौकरशाही के कर्मचारियों, धर्माचारियों, किसानों, मजदूरों की भाषा को भी इन उपन्यासकारों ने उसी प्रकार दिखलाया

जैसे कि ये लोग बोलते हैं। स्थानाभाव के कारण हम यहाँ इसकी विशद विवेचना न करके एक-एक उदाहरण प्रस्तुत कर रहे हैं—

धर्माचारियों की भाषा

मौलवी—'बेटो, बन्दे को अल्लाह की रजा पर इत्मीनान करना चाहिए। उस कादिर मुतलिक के रहम पर सब्र करना चाहिए। उसकी हर बात बन्दे की बहबूदी (हित) के लिए होती है। वह चाँद-सूरज और तमाम कायनात (सृष्टि) की खबर रखता है। पत्थर में बन्द कीड़े को भी नहीं भूलता।[1]

पंडित—'क्या मंगल है और क्या अमंगल है, यह हम अपनी अपनी दृष्टि से देखते हैं, भाई! जो हमारी दृष्टि से आज अमंगल दिखायी देता है, कल चल कर वही मंगल हो जाता है, क्योंकि प्रभु की दृष्टि में वही मंगल है और आज जिसे हम मंगल कहते हैं, वही कल अमंगल भी हो सकता है। मंगल और अमंगल का निर्णय तो वही कर सकता है, जो ज्ञानी है। पर मनुष्य अभी ज्ञान से कितनी दूर है।[2]

धर्मान्धता में पड़कर मौलवियों और पंडितों की भाषा भाव-परिवर्तन से किस तरह बदल जाती है, इसके उदाहरण भी देखिए—

'देश की हत्या' में एक मौलवी मुसलमानों से कहता है—

'खुदा परवर दिगार ने हजरत को एक नमूना बनाकर हमारे पास भेजा है। हमको उनकी बातों को अमल में लाना चाहिए। हजरत नबी ने काफिरों की हर शै को हलाल बनाया है। इसलिए आप लोगों को काफिरों की लूटी हुई धन दौलत और उनसे छीनी हुई औरतें हलाल हैं। आपको उनकी औरतें और धन-दौलत लेने पर कोई गुनाह नहीं लगता, बल्कि सबाब होगा।[3]

सरकारी कर्मचारी (सिपाही) की भाषा का नमूना देखिए—'कोतवाली को देरलैस कर दिया हुजूर! मिरजा जी अटेण्ड कर रहे थे हुजूर तौन उन्होंने मिसेज दिया कि अस्पताल की गाड़ी भिजवाते हैं हुजूर।' उपर्युक्त भाषा लखनऊ के पुलिसमैन की है, अत: उसमें अंग्रेजी-अवधी मिश्रित हिन्दुस्तानी की छटा स्वाभाविक ही है। थानेदार सुल्तानसिंह और हेड कान्स्टेबल के बीच की वार्ता का एक उदाहरण और देखिए—

'सुल्तानसिंह ने कहा—मेरा ख्याल है, मुलजिम इधर ही से भाग गया है।

---

१ यशपाल, झूठा सच (वतन और देश) पृष्ठ ४२४

२ अनन्त गोपाल शेवडे, ज्वालामुखी, पृष्ठ २६१

३ गुरुदत्त, देश की हत्या, पृष्ठ १७८

हेड ने कहा—पर हुजूर तो कहते थे कि उसे लकवा मार गया है और इलाज हो रहा है।

सुल्तानसिंह ने कहा—बताया तो यही गया था, बल्कि कई जरियों से इसकी तस्दीक हुई थी। पर इस जगने की बात किसी ने नहीं बतायी थी। नहीं तो उधर दो सिपाही तैनात करने में कठिनाई क्या थी।[1] अब ग्रामीण किसानों की भाषा का नमूना देखिए—

'काशी बोला—मजूरी मजूरी है, किसानी किसानी है। मजूरी लाख हो, तो मजूर ही कहलायेगा। सिर पर घास रखे जा रहे हो, कोई इधर से पुकारता है—ओ घास वाले। कोई उधर से। किसी की मेड़ पर घास धर लो, तो गालियाँ मिलें। किसानी से मरजाद है।' यह प्रेमचन्द के गाँव के लोगों की बोली है, जो उनके उपन्यासों के ग्राम्य वातावरण को मुखरित करने में सहयोग प्रदान करती है। यह कहा जा सकता है कि उपन्यासकार ने गाँव के अशिक्षित लोगों की बातचीत की शैली को अपना कर पात्रानुकूल भाषा का उपयोग किया है।

मुसलमान एवं अंग्रेज पात्रों की भाषा

राजनीतिक उपन्यासों में राष्ट्रीय आन्दोलनों एवं साम्प्रदायिक समस्या का अंकन होने के कारण उनमें मुसलमान एवं अंग्रेज पात्रों की प्रचुरता मिलती है। मुसलमान पात्रों की भाषा तो प्रायः वैसी ही मिलती है, जैसी कि अक्सर मुसलमान बोलते हैं, पर अंग्रेजों की भाषा पात्रानुकूल नहीं कही जा सकती। अंग्रेजों की भाषा को जहाँ अंग्रेजी-हिन्दुस्तानीमिश्रित रूप में प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है, वहाँ वह अस्वाभाविक ही अधिक हो गयी है।

मुसलमान पात्रों की भाषा का नमूना प्रेमचन्द के 'कर्मभूमि' का देखिए—'तुम्हारे खयालात तकरीरों में सुन चुका हूँ। ऐसे खयालात बहुत ऊँचे, बहुत पाकीजा, दुनियाँ में इन्कलाब पैदा करने वाले हैं और कितनों ही ने इन्हें जाहिर करके नामवरी हासिल की है, लेकिन इल्मी बहस दूसरी चीज है, उस पर अमल करना दूसरी चीज है।'[2]

अंग्रेजी पढ़े लिखे मुसलमान पात्रों की भाषा में अंग्रेजी का प्रयोग भी मिलता है—

'सुनो मेरी जान! असद द्रवित स्वर में बोला,' 'इस तरह दिल छोटा न करो। वक्त और मौके का तो ख्याल करना पड़ेगा। मैं तुम्हारा हूँ, तुम मेरी हो, लेकिन पार्टी की लायल्टी तो है।' या फिर 'तुम प्रद्युम्न और जुबेदा की बात जानती हो।' इस समय तो पार्टी इनको भी इजाजत नहीं दे रही। उन्हें ताकीद कर दी गयी है कि इस बारे में

१. मन्मथनाथ गुप्त, प्रतिक्रिया, पृष्ठ ४
२ प्रेमचन्द, कर्मभूमि, पृष्ठ ६५

किसी के सामने बात न करें। पार्टी की मंजूरी के बिना मैं कैसे कर सकता हूँ ? इट विल बी अगेंस्ट रूल्स एन्ड इन प्रेजेंट सिचुएशन अगेंस्ट कामन सेंस।'[1]

राजनीतिक पात्र और उनकी भाषा

पात्रानुकूल भाषा के अन्तर्गत राजनीतिक पात्रों को लेकर भी उनकी भाषा का अध्ययन किया जा सकता है। प्रायः समान राजनीतिक सिद्धांतों को अपनाने और तदनुसार आचरण के कारण पात्रों की भाषा एवं विचारों में समानता तथा दूसरे राजनीतिक दल के समर्थन से असमानता मिलती है। विचारों की सौम्यता से, नैतिक गुणों पर आस्था से गाँधीवादी पात्रों की भाषा में जहाँ सरलता और कोमलता दिखलायी पड़ती है, वहाँ हिंसात्मक वृत्ति पर विश्वास करने के कारण साम्यवादी पात्रों की भाषा में कठोरता, पक्षपात और स्वच्छन्दता का आग्रह रहता है। उनकी भाषा रोष और उत्तेजना से युक्त रहती है। इसी तरह साम्प्रदायिक पात्रों की भाषा में धार्मिकता का पुट और प्राचीन संस्कृति का आवेश मिलता है। यह विभेद निम्नलिखित उदाहरणों से सहज ही समझा जा सकता है

गाँधीवादी पात्र

तुम लोग यह ऊधम मचाकर मुझे क्यों कलंक लगा रहे हो ? आग लगाने से मेरे दिल की आग न बुझेगी, लहू बहाने से मेरा चित्त शान्त न होगा, आप लोगों की दुआ से यह आग और जलन मिटेगी। परमात्मा से कहिए, मेरा दुख मिटायें। भगवान से बिनती कीजिए, मेरा संकट हरें। जिन्होंने मुझ पर जुलुम किया है उनके दिल में दया धरम जागे बस मैं आप लोगों से और कुछ नहीं चाहता।'[2]

क्रान्तिकारियों की भाषा

क्रांतिकारियों की भाषा, देश प्रेम, त्याग और आत्म-बलिदान के भावों से प्रायः संयत, दृढ़ और भावनायुक्त रहती है।

'इसके विपरीत मैं यह समझता हूँ कि इसका हमारे देश के युवकों पर बहुत अनुप्रेरणादायक प्रभाव पड़ेगा। इस समय इसी की जरूरत है। कांग्रेस तथा अन्य दलों में जो प्रतिक्रियावादी प्रवृत्तियाँ पुष्ट होकर पनप रही हैं, उनका प्रतिकार इन्हीं फाँसियों से होगा। मैं तो कहता हूँ और भी त्याग होना चाहिए।

---

१ यशपाल झूठा सच (वतन और देश) पृष्ठ २३४

२ प्रेमचन्द रंगभूमि, भाग १ पृष्ठ ३४२

साम्यवादी पात्र

'आप अकेले नही है, करोडो की तादाद है आपकी ! आप जब उठ खडे होंगे और एक कठ होकर हुकार करेंगे तो जालिम जमीदारो का कलेजा दहलने लगेगा । वे है ही कितने, दाल मे नमक के बराबर ! किसान भाइयो, अब आप जग गये है । खान बहादुर, चाहे महाराज बहादुर कोई आपका हक नही छीन पायगा । आप अपनी ताकत को पहिचानिए ।'[1]

सम्प्रदायवादी पात्र

'वर्तमान सरकार मुसलमानो को जीवित रखने के लिए पूर्ण प्रयत्न करेगी, परतु यह हो नहीं सकेगा । भारत की मस्जिदें खुदापरस्ती की मस्जिदें नहीं हैं-। ये उस अत्याचार और पक्षपात का चिन्ह हैं, जो भारत के हिन्दुओं के साथ सात सौ वर्ष से होता आ रहा है ।'[2]

वस्तुत यह वर्गीकरण भी पात्रानुकूल भाषा का ही एक विशेष रूप है और इसी रूप मे अगीकार किया जा सकता है । इन पात्रो की भाषा भी अपनी जातीयता की छाप को स्पष्ट करती है । भाषा की सरलता एव स्वाभाविकता और विषय के साथ अनुरूपता भी राजनीतिक उपन्यासो मे मिलती है । राजनीतिक उपन्यासो मे उर्दू-हिन्दी का परिमार्जित समिश्रण तो मिलता ही है, अग्रेजी और क्षेत्रीय लोक बोलियो को भी पर्याप्त स्थान मिला है । कथोपकथन मे इस बात की सतर्कता भी रखी गयी है कि उसमे मुसलमान पात्र भाषा मे उर्दू की तत्समता और हिन्दू पात्र सस्कृत की तत्समता का उपयोग करें ।

प्रादेशिक बोली और यथार्थ

जिन आचलिक उपन्यासो मे राजनीतिक छाप है, उनमे प्रादेशिक बोलियो का प्रयोग पात्रो की यथार्थता की दृष्टि से किया गया है । 'टेढे मेढे रास्ते' मे (यद्यपि यह आंचलिक उपन्यास नहीं है) भगडू मिश्र अपनी ही बोली मे बोलते हैं । रेणु के उपन्यासों मे सम्भाषण के स्थान पर वर्णन मे प्रचलित प्रादेशिक बोली के शब्दो को प्रयुक्त किया गया है । 'मैला आचल' मे हिन्दी-अग्रेजी शब्दो का ग्रामीण रूप भी देखने को मिलता है— 'रौनहट टीशन मे जो होमापाथी डागडर थे,' 'बालदेव जी भाजरून 'जयहिन्द' करते हैं', 'परती-परिकथा' मे अग्रेजी के प्रचलित ग्रामीण रूप देखिए—मनाजा के बाद तरा-

---

१. नागार्जुन बलचनवा, पृष्ठ १७६
२ गुरुदत्त : देश की हत्या पृष्ठ २६७

दीक ! तमदीर करने के लिए कानूनगो स ज्यादा पावर वाल हाकिम साहब आये हैं। हर नया हाकिम नया एलान करता है—बाउण्ठी तमाजा हम नही जाने। समाजवादी यथार्थवादी उपन्यासा म शोषित किसाना के चित्रण के समय देहाती अथवा प्रान्तीय भाषा का भी प्रयाग मिलता है। कहीं कहीं यह देहाती बोली फूहड शब्दावली से भी अलकृत है।[1] सक्षेप म राजनीतिक उपन्यासा की शैली सीधी सादी यथार्थवादी शैली है और उनमे शब्द और विचार की अनुकूलता का समुचित निर्वाह मिलता है। रोमान्टिक प्रसगो के समावेश होने पर यह शैली परिवर्तित हो रोमाटिक भी हो जाती है और आलोचना के समय व्यग्यप्रधान भी।

कोई भी कृत बिना कलात्मक हुए न तो सफल हो सकती है और न प्रभाव पूर्ण। किन्तु राजनीतिक उपन्यास के मूल्याकन के समय इस तथ्य को विस्मृत नही करना चाहिए कि अपनी विशिष्टता के कारण उसम तथा कलात्मक उपन्यास म अ तर होता है। कला तो उसमे भी रहती है किन्तु विशुद्ध कलात्मक दृष्टि से उसकी विवेचना यायसगत न होगी। उसकी अपनी सीमाए और सम्भवनाएँ है। वह उद्देश्य की उप लब्धि के लिए कही-कहा सीमोल्लघन कर देता हैं पर उद्देश्य की सुदृढता ही इस असगति को ढँक लती है।

वैचारिकता उपन्यास होने के कारण उनके स्वतन्त्र म किचित अतर परिलक्षित होता है। किन्तु मान्य सिद्धात को आधार मान कर उद्देश्य की दृष्टि से राजनीतिक उपन्यास मानव चेतना और उसकी सजना शक्ति को क्रियात्मक रूप देत हैं। कथा के सहारे राजनीतिक विचारा का सीधा प्रभाव पडता है। स्पष्ट है कि कला कह सकते हैं। इन उपन्यासा की विशषता है कि इनम कला प्रधान पद पर आरूढ नहीकी जाती अपितु मात्र सहारे के रूप मे आकर राजनीतिक विचारा का अभिव्यक्ति देती है।

ooo

---

१ भैरवप्रसाद गुप्त सत्ती मैया का चौरा, पृष्ठ ५६१

अध्याय १०

समसामयिक राजनीतिज्ञों एवं विचारकों के मत एवं आदर्शों के साथ औपन्यासिक विचारों का तुलनात्मक अध्ययन

> भारतीय राजनीति के तीन चरण
> राष्ट्रीय भावना का विकास
> हिन्दी उपन्यास एवं राष्ट्रीयता
> उदारपंथी नेता एवं राजभक्ति
> प्राचीन गौरव, धार्मिक पहलू
> उग्र राष्ट्रीयता
> गांधीवाद
> गांधीय सिद्धांत
> गांधीवाद का चिन्तन पक्ष
> अहिंसा की भूमिका, सत्याग्रह
> हिन्दी उपन्यासों मे
गांधीवाद का सैद्धांतिक पक्ष
> सियारामशरण गुप्त के उपन्यासों मे
गांधीवाद का रूप
> जैनेन्द्र के उपन्यासों मे
गांधीय दर्शन
> गांधीवाद और प्रेमचन्द
> गांधीवाद का धर्मपक्ष
> धार्मिक विचारधारा
> सर्वोदयी भावना
> हिन्दी उपन्यासों मे
गांधीवाद का व्यवहारिक पक्ष
हृदय-परिवर्तन,

औद्योगिक सभ्यता का विरोध
हिन्दू-मुस्लिम एकता

>सर्वोदय, सर्वोदय के मूलभूत सिद्धान्त

>साम्यवाद एवं समाजवादी विचारधारा

>मार्क्स की प्रेरक शक्तियां,
मार्क्स के सिद्धान्त, द्वन्द्वात्मक
भौतिकवाद, इतिहास की भौतिक व्याख्या,
अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त,
सर्वहारा की क्रान्ति एवं अधिनायकत्व,
मार्क्सवाद एवं साहित्य,

>वर्ग संघर्ष का चित्रण, समाजवादी यथार्थवाद एवं प्रेम,

>जनतंत्र की आलोचना

>राजनीतिक सिद्धान्तों एवं साहित्यिक प्रक्रिया में भेद

भारतीय राजनीति के तीन चरण

भारतीय राजनीति के क्रमिक विकास के अनुरूप हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासो को घटना-काल के अनुसार तीन चरणो मे विभक्त किया जा सकता है

१— प्रथम चरण सन् १८८५ से १९२० ई० तक

२— द्वितीय चरण सन् १९२१ से १९४७ ई० तक

३—स्वातन्त्र्योत्तर काल या तृतीय चरण सन् १९४७ के उपरान्त

उपर्युक्त वर्गो को हम क्रमश राष्ट्रीय जागरण का युग, गांधी-युग और समाजवादी विचारधारा का युग भी कह सकते है। हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासो मे युगानुरूप राजनीति का कहाँ तक प्रभाव पड़ा है, यह उनके अध्ययन करते समय पहले ही निर्देशित किया जा चुका है। स्थूल रूप से कहा जा सकता है कि राष्ट्रीय जागरण-काल के उपन्यासो मे राष्ट्रीय कांग्रेस एव उसके वरिष्ठ नेताओ की राजभक्तिसमन्वित राष्ट्रभक्ति का स्वरूप देखने को मिलता है। इसी प्रकार गांधी युग मे रचित उपन्यासो मे गांधी दर्शन तथा स्वातन्त्र्योत्तर काल मे समाजवादी विचारधाराओ का प्राधान्य दिखायी पडता है। यो मार्क्सवाद का प्रभाव गांधी युग मे भी मिलता है, किन्तु राष्ट्रीय आन्दोलनो के कारण उसका स्वरूप स्पष्टत सम्मुख नही आ सका था। किन्तु इतना होने पर भी उसे राजनीतिक मान्यता प्राप्त हो गयी थी, इसमे सन्देह नहीं।

राष्ट्रीय भावना

हिन्दी के प्रारम्भिक उपन्यासो मे राजनीतिक तत्वो के अभाव का मूल कारण तात्कालिक राजनीतिक स्थिति थी। सन् १८८२ से गांधी जी के आविर्भाव तक राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हुई, जो वस्तुत क्रान्ति को रोकने के लिए एक 'सेफ्टी वल्व' के के समान थी। इसने वैधानिक विरोध के मार्ग को प्रशस्त किया, जिससे जनता के विभिन्न वर्गो के पारस्परिक अभाव मिलकर जन-आन्दोलन का रूप धारण न कर सके। राजनीतिक नेतृत्व मध्य वर्ग के हाथ म आ गया और उसके वैधानिक आन्दोलन के कार्यक्रम के कारण जनसाधारण से उसका निकट का सम्बन्ध स्थापित न हो सका। इस युग के नेता उदारवादी विचारो से प्रभावित थे और ब्रिटेन ही इस युग के राजनीतिज्ञो का मार्गदर्शक था। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, महादेव गोविन्द रानाडे, दादा भाई नौरोजी आदि सभी राजनीतिक नेता ब्रिटिश राज्य-व्यवस्था तथा न्याय पर विश्वास रखते थे। स्वय गांधी जी भी कई वर्षो तक इसी भ्राति के शिकार रहे। कांग्रेस का विश्वास था कि देश का हित ब्रिटिश सरकार के सहयोग करने मे है और राजनीतिक मुक्ति

का मार्ग क्रमिक सुधारवादी विकास से ही सम्भव है। दूसरे शब्दों में कांग्रेस का उद्देश्य कुछ वैधानिक सुधारों की प्राप्ति तक सीमित था और किसी भी क्रांतिकारी परिवर्तन का आकांक्षी नहीं था।

ऐसी स्थिति में भारतीय तथा ब्रिटिश स्वार्थों के बीच संघर्ष उत्पन्न हुआ। प्रारम्भ में यह संघर्ष तीव्र न था, किन्तु ज्यों ज्यों यह खाई बढ़ती गयी, भारतीय राष्ट्रीयता भी उग्र होती गयी। राष्ट्रीयता के इस मार्ग को संतुष्ट करने का श्रेय वस्तुतः तद्युगीन सामाजिक एवं सांस्कृतिक चेतना को है। इसी नींव पर आगे चलकर राजनीतिक प्रासाद निर्मित हो सका। युग की इन भावधाराओं के अनुरूप ही इस युग के उपन्यासों में उनका अंकन हुआ। जैसा कि पहले ही बताया जा चुका है, इस युग की सामाजिक विचारधारा मूलतः सुधारवादी थी। वैचारिक एवं सांस्कृतिक धरातल पर पाश्चात्य एवं भारतीय संस्कृति का संघर्ष इस युग की विशिष्टता थी। समाज-सुधारक बदलते हुए युग में नवीन परिस्थितियों एवं नवीन विचारों के अनुसार समाज में परिवर्तन चाहते थे। पाश्चात्य संस्कृति के बढ़ते हुए प्रभाव को रोकने की दृष्टि से रूढ़िवादी दल ने प्रतिरक्षात्मक नीति का अवलंब लिया और प्राचीनता के मोह में पड़कर प्रतिक्रियावादी हो गये। इस प्रतिक्रियावादी चिन्तन पद्धति का प्रभाव इस युग के उपन्यासों पर स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। भारतवर्ष में राष्ट्रीयता की भावना का समुचित विकास उन्नीसवीं शताब्दी में हुआ। राष्ट्रीयता के विकास में जिन दो तत्वों ने प्रमुख योग दिया, वे हैं ब्रिटिश शासन-व्यवस्था तथा धार्मिक आन्दोलन। धार्मिक आन्दोलनों ने नव जाग्रति का उल्लेखनीय प्रसार किया। राष्ट्रीयता के आवश्यक तत्वों में से वंशीय एकता, भौगोलिक एकता, समान संस्कृति और समान धर्म-भावना ने इस युग की राष्ट्रीय भावना को उद्दीप्त किया। निरंकुश शासन के अधीन दीर्घ काल तक समान रूप से पराधीन रहने और अत्याचार सहने, महान् ऐतिहासिक संघर्षों में सामान्य साझेदारी की गौरवानुभूति तथा समान उत्तराधिकार की चेतना से उत्पन्न समचित्तता से राष्ट्रीयता को अत्यधिक बल मिला।

फिर भी धार्मिक सामाजिक आन्दोलनों के परिणामस्वरूप इस युग के उपन्यासकारों की दृष्टि युगीन राजनीतिक गतिविधियों के प्रति उदासीन रही। सामाजिक प्रश्नों की ओर ही उनका ध्यान विशेष रूप से गया और उनका ही उपन्यासों में सम्यक् अंकन किया गया।

हिन्दी उपन्यास एवं राष्ट्रीयता

तद्युगीन राजनीतिक स्थिति के अनुरूप ही उपन्यासों में दो राजनीतिक तत्व इन उपन्यास में स्थान प्राप्त कर सके हैं। ये तत्व राजभक्ति और देश प्रेम की भावना से

सम्बन्धित हैं। राष्ट्रीयता का आधार जातीयता तथा अतीत-गौरव है। ये दोनो तत्व परस्पर विरोधी होते हुए भी सामयिक राजनीति की प्रतिच्छाया ही कहे जायँगे। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी का कथन इस दृष्टि से उद्धृत किया जा सकता है "अंग्रेजी सभ्यता संसार मे सर्वोच्च है, इग्लैण्ड और भारत की अखण्डता एकता का चिन्ह है। यह सभ्यता भारतवासियो के प्रति अपूर्व आशीर्वादो और प्रसादो से परिपूर्ण है और अंग्रेजो के सुनाम को अपूर्व ख्याति दिलानेवाली है।[1] इस कथन का साम्य 'आदर्श हिन्दू' (भाग १) के लेखक प० लज्जाराम मेहता की भूमिका मे देखा जा सकता है :

"परमेश्वर का लाख धन्यवाद है कि उसकी अपार दया से हम भारतवासियों को ब्रिटिश गवर्नमेन्ट की उदार छाया मे निवास करके हजारो वर्षों के अनन्तर सच्चे शांति सुख के अनुभव करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। इस असाधारण शान्ति और उदारता के जमाने मे सरकार से भारतवासियो को जो बोलने और लिखने की स्वतन्त्रता प्राप्त है, उसका सदुपयोग होना ही इस अकिंचन लेखक को इष्ट है।"[2]

उदारपंथी नेता एव राजभक्ति

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है कि राजनीतिक और उपन्यासकार, दोनो की दृष्टि मे राजभक्ति का स्वरूप एक समान राजभक्ति के इसी स्वरूप मे चित्रित किये गये हैं। उदारवादी राजनीतिज्ञो की विचारधारा 'आदर्श हिन्दू' (भाग ३) के पात्र प० प्रियनाथ के द्वारा मुखरित हुई है

"जिन बातो को देने का सरकार ने वादा कर लिया है अथवा आप जिन पर अपना स्वत्व समझते है, उन्हे सरकार से माँगें। जब माता पिता भी बेटे बेटी को रोने से रोटी देते हैं तब राजा से माँगने मे कोई बुराई नहीं है। तुम ज्यो-ज्यो माँगते जाते हो, त्यों-त्यो धीरे-धीरे वह देती भी जाती है। किन्तु काम वही करो, जिससे तुम्हारे 'नराणाम् च नराधिप'–इस भगवद्वाक्य मे बट्टा न लगे। जब राजा ईश्वर का स्वरूप है, तब उसकी गवर्नमेन्ट शरीर न होने पर भी उसका शरीर है। इसलिए नियमबद्ध आन्दोलन करना आवश्यक व अच्छा है, किन्तु जो मुटमर्दी करने वाले हैं, जो उपद्रव करके डराने वाले है, अथवा जो अपने मिथ्या स्वार्थ के लिए औरो के प्राण लेने पर उतारू होते हैं, उनके बराबर दुनिया मे कोई नीच नही। वे राजा के कट्टर दुश्मन हैं। सचमुच देशद्रोही हैं। वे स्वय अपनी नाक कटाकर औरों का अपशकुन करते हैं। उनसे अवश्य घृणा करनी चाहिए।"[3]

---

१. डॉ० बी० पट्टाभि सीतारामय्या सक्षिप्त कांग्रेस का इतिहास, पृष्ठ २५
२ लज्जाराम शर्मा मेहता . आदर्श हिन्दू, भाग १, भूमिका, पृष्ठ २
३. लज्जाराम शर्मा मेहता . आदर्श हिन्दू, भाग ३, पृष्ठ २४०

प्राचीन गौरव

इस युग के उपन्यासो मे राष्ट्रीयता का जो स्वरूप उभरा है, उसका प्रथम प्रेरणा स्रोत राष्ट्र का प्राचीन गौरव तथा सस्कृति है। प्राचीन गौरव की प्रतिष्ठित करने का श्रेय धार्मिक सामाजिक आदोलनो को है। इस युग मे अनेक मनीषियो ने अतीत की परम्परा पर जोर देकर उसके गौरव की ओर जनता का ध्यान आकर्षित कर सास्कृतिक परिवर्तन की भूमिका तैयार की। यह परिवर्तन ही धार्मिक आन्दोलनो मे अभिव्यक्त हुआ। हिन्दी के प्रारम्भिक उपन्यासो मे यह स्वरूप विविधता के साथ चित्रित हुआ है। सच तो यह है कि यह प्रवृत्ति राष्ट्रीयता की अपेक्षा जातीयता के अधिक निकट है तथा आर्य समाज तथा धार्मिक सस्थाओ द्वारा उठाये गये आन्दोलनो की देन है।

आर्थिक पहलू

राष्ट्रीयता की भावना का एक दूसरा पहलू राष्ट्र की आर्थिक समृद्धि को लेकर चला है, किन्तु वह अत्यन्त क्षीण है। कहा गया है कि इस युग की राष्ट्रीयता की भावना का दूसरा पक्ष देश की आर्थिक समृद्धि से सम्बन्धित है, वहाँ इन उपन्यासकारो ने अपनी भाँति-भाँति की योजनाएं प्रस्तुत की है। एक स्वर से देशी उद्योग धन्धो के विकास पर बल देने, विदेशो मे देश का धन न जाने देने, अग्रेजी शिक्षा-व्यवस्था की अव्यावहारिकता एव उसमे भारतीय परिस्थितियो के अनुरूप परिवर्तन करने तथा अन्य प्रकार की सुख समृद्धि के हेतु नये नये कदम उठाने का आग्रह किया है।"[1] कहना न होगा कि यह भावना काग्रेस और उसके नेताओ के विचारो की प्रतिच्छाया ही है। सन् १९०६ में प० मदनमोहन मालवीय ने कलकत्ता अधिवेशन मे कहा था कि हमारे देश का कच्चा माल देश से बाहर चला जाता है और विदेशो से तैयार होकर उसका माल हमारे पास आता है। अगर हम स्वतन्त्र होते तो ऐसा न होने देते। उस हालत मे हम भी उसी प्रकार अपने उद्योगो का सरक्षण करते, जिस प्रकार सब देश अपने उद्योगो की शैशवावस्था मे करते हैं। १८९८ मे प० मदनमोहन मालवीय ने प्रस्ताव रखा था कि सरकार को देशी उद्योग धन्धो एव कला-कौशल की उन्नति करना चाहिए। सन् १८९९ मे लाला लाजपतराय की प्रेरणा पर काग्रेस ने आधा दिन शिक्षा एव उद्योग-धन्धो के विचार मे लगाया और इसके लिए एक उपसमिति स्थापित की।[2] उद्योग-धन्धों के विकास पर बल देने की इस राष्ट्रीय भावना का एक चित्र 'अरण्य बाला' मे देखिए.

"कल-कांटे का जहाँ-तहाँ कारखाना खोलो। तुम्हे कपडा, लोहा, चमडा आदि

---

१. डॉ० चण्डीप्रसाद जोशी : हिन्दी उपन्यास : समाजशास्त्रीय विवेचन, पृष्ठ ७७
२ डॉ० बी० पट्टाभि सीतारामय्या सक्षिप्त काग्रेस का इतिहास, पृष्ठ ४७

सब पदार्थों का कारखाना खोलना होगा। ऐसा उपाय करना होगा कि अपने नित्य के व्यवहार के आवश्यक पदार्थों के लिए यहाँ के रहने वालों को दूसरों का मुँह न जोहना पड़े।"[1] तात्कालिक राजनीतिक परिस्थितियों से उद्भूत वातावरण का क्रियात्मक रूप 'हिन्दू गृहस्थ' में माचिस के कारखाने को सहकारी ढंग पर स्थापित करने के प्रयास के रूप में दिखाया है।

वस्तुत: यह युग कांग्रेस की उदारवादी नीति के चरम उत्कर्ष का था। प्रारम्भ में कांग्रेस का ध्येय ब्रिटिश साम्राज्यान्तगत रहकर औपनिवेशिक स्वराज्य प्राप्ति तक सीमित था। अधिकांश राजनीतिज्ञ ब्रिटिश न्याय पर पूर्ण आस्था रखते थे और वे ब्रिटिश शासन-व्यवस्था में परिवर्तन चाहते थे। गोखले जी ने मार्ले के सम्मुख साम्राज्यान्तर्गत औपनिवेशिक स्वराज्य की माँग को युगानुरूप मानकर प्रस्तुत किया था।

उग्र राष्ट्रीयता

इसी युग में उग्र राष्ट्रीयता की प्रवृत्ति का विकास भी होता है। उग्र राष्ट्रीयता के जो दो स्वरूप दिखायी देते हैं, उन्हें हम कांग्रेस की उग्र राष्ट्रीयता तथा हिंसात्मक दलों की उग्र राष्ट्रीयता कह सकते हैं। कांग्रेस की उग्र राष्ट्रीयता उदारवादियों की असफलता का परिणाम थी, जब कि गुप्त हिंसात्मक दलों का प्रेरणा-स्रोत मैजिनी के नेतृत्व में इटली में चल रही हिंसात्मक गतिविधियाँ थी। कांग्रेस की उग्र राष्ट्रीयता ने आगे चलकर स्वतन्त्रता को अपना जन्मसिद्ध अधिकार घोषित कर असहयोग और संघर्ष का रास्ता अपनाया। इतना होने पर भी हिंसात्मक क्रान्ति उनका लक्ष्य न था। उग्र राष्ट्रीयता की भावना ने भारतीय राजनीति को नूतन मार्ग दिखाया, इसमें सन्देह नहीं, किन्तु अपनी इस प्रक्रिया में वह हिन्दुत्व तथा धार्मिक आध्यात्मिक आश्रय में पहुँच गयी। कहा जाता है कि उदारपंथी नेताओं की अस्थिर नीतियों का कारण पाश्चात्य शिक्षा तथा संस्कृति-अनुराग था और जिसकी प्रतिक्रिया के रूप में उग्र राष्ट्रवादियों ने हिन्दुत्व को संघर्ष की आधार-पीठिका बनाया। इस तरह कांग्रेस की राजनीतिक गतिविधियाँ प्राचीन सामाजिक एवं सांस्कृतिक आन्दोलन की ही एक कड़ी बनकर रह गयी। लोकमान्य तिलक, अरविन्द और कुछ अंशों तक लाला लाजपत राय की राजनीतिक गतिविधियों में हिन्दुत्व की प्राचीन भारतीय संस्कृति की गहरी छाप है। तिलक ने शिवाजी, गणेशोत्सव, गीता को राष्ट्रीय सेवा का आधार निरूपित किया। अरविन्द ने राष्ट्रीयता को आध्यात्मिक शक्ति के समकक्ष बनाया और उसे धार्मिक स्वरूप की मान्यता दी। सन् १९०६ में अरविन्द ने कहा था . "अन्य व्यक्ति सचदेव का एक जड़

---

१ ब्रजनन्दन सहाय : अरण्य बाला, पृष्ठ ३२५

पदार्थ, युद्ध मैदान, खेत, वन, पर्वत, नदी भर जानते हैं, मैं स्वदेश को माँ मानता हूँ, उसकी भक्ति करता हूँ, पूजा करता हूँ। माँ की छाती पर बैठकर यदि कोई राक्षस रक्तपात करने के लिए उद्यत हो, तो भला लड़का क्या करता है ? निश्चिन्त होकर भोजन करने बैठता है स्त्री-पुत्र के साथ आमोद करने में लीन रहता है या माँ का त्राण करने के लिए दौड़ पड़ता है।' उग्र राष्ट्रीयता ने राजनीति को प्राणवान बनाया, किन्तु गाँधी-युग में गाँधी जी के नेतृत्व के कुछ वर्षों बाद ही वह अपनी तीव्रता को न बनाये रख सका। उग्र राष्ट्रीयता का एक उल्लेखनीय तथ्य यह है कि उसने राष्ट्रीय आन्दोलन को जनता तक पहुँचाया और कौंसिल के वाद विवाद की निस्सारता को व्यक्त किया। त्याग, सेवा और कर्म का मार्ग ही राष्ट्र सेवा का मार्ग बन गया।

प्रेमचन्द के 'सेवासदन' मे डॉ० श्यामचरण उदारवादी नेता के प्रतिनिधि पात्र हैं। कौंसिल चुनाव जीतने तक ही उनकी राष्ट्र-सेवा सीमित है, जो निष्क्रियता में परिणत हो जाती है। फलत वे सामाजिक सुधार की समस्याओं के समाधान के लिए कौंसिल की राय की अपेक्षा करते हैं। वे कहते हैं 'मैं उस विषय (वेश्या-समस्या) में कौंसिल में प्रश्न करने वाला हूँ, जब तक गवर्नमेन्ट उसका उत्तर न दे, मैं अपना कोई विचार नहीं कर सकता।'[1] शान्तिकुमार को भी सन्तोष है कि 'उत्तर मिले या न मिले, प्रश्न तो हो जायँगे। इसके सिवा हम कर ही क्या सकते हैं।'[2] प्रेमचन्द के गाँधीयुगीन उपन्यासों में उदारपंथी राजनीति की असफलता के अनेक चित्र मिलते हैं, जिनका प्रथम आभास 'सेवासदन' में मिलता है। इन उपन्यासों में उग्र राष्ट्रीयता के विभिन्न स्वरूप भी उन्होंने तन्मयता के साथ अंकित किये हैं, जिनकी चर्चा आगे की जायगी।

गाँधीवाद

राष्ट्रीयता की भावना राजनीति का अंग है, स्वयं में कोई राजनीतिक विचार दर्शन नहीं। इस भावना के प्रस्फुटित होने पर भारतीय राजनीति में जिन दो प्रमुख राजनीतिज्ञों की विचारधारा का राजनीतिक रंगमंच में प्रवेश होता है वे हैं—गाँधीवाद और समाजवाद। गाँधीवाद का ही विकसित स्वरूप सर्वोदय है, जो आचार्य विनोबा भावे के दिशा निर्देशन मे नयी दिशा का संकेत देता है।

गाँधीय सिद्धांत

भारतीय राजनीति में गाँधी-युग का प्रारम्भ सन् १९२० से माना जा सकता

१ प्रेमचन्द सेवासदन, पृष्ठ १७७

२ प्रेमचन्द सेवासदन, पृष्ठ १७८

है और स्वाधीनता पूर्व-युग के तीन दशक गाँधी जी के विचार-दर्शन से अत्यधिक प्रभावित रहे हैं। वर्तमान में भी गाँधीवाद बहुत अंशों में सत्ताधारी दल की नीति को परिचालित कर रहा है। गाँधी-विचारधारा पाश्चात्य एवं भारतीय दर्शन का सम्मिश्रण है। एक ओर जहाँ उन पर टालस्टाय, इमसर्न, रस्किन, थोरो आदि पाश्चात्य विचारकों का प्रभाव था, वहीं वे दूसरी ओर भारतीय दर्शन विशेषत जैन दर्शन से प्रेरित थे। गाँधी जी के राजनीतिक विचार अंग्रेज राजनीतिक ग्रीन से साम्य रखते हैं। अहिंसा गाँधी जी की (राजनीतिक मूल्यांकन की दृष्टि से) मौलिक देन है। यों यह भारतीय दर्शन का ही अंग है। सत्याग्रह की पद्धति भी नयी नहीं है और इसका उल्लेख १९ वीं शताब्दी के पाश्चात्य राजनीतिज्ञों के विचारों में देखा जा सकता है।

गाँधी-युग में जनतंत्र राजनीतिक व्यवस्था के आदर्श के रूप में प्रतिष्ठित हो चुका था। जनतंत्र की स्थापना में जनता की भूमिका ही प्रमुख होती है। पराधीन भारत में इस राज्य-व्यवस्था के लाने के लिए तीन मार्ग थे —

१ वैधानिक संस्थाओं में जनता के प्रतिनिधियों के माध्यम से परिवर्तन का प्रयत्न,

२ जनता के बहुमत को संगठित कर राज्य व्यवस्था में असहयोग द्वारा परिवर्तन, और

३ जनता द्वारा हिंसक क्रांति की स्थिति उत्पन्न कर क्रांति द्वारा सत्ता पर अधिकार।

गाँधी जी ने उपर्युक्त तरीकों में से जनता के असहयोग द्वारा राज्य-व्यवस्था में परिवर्तन का मार्ग चुना। यही सत्याग्रह का मार्ग है, जो हिंसक क्रांति के सदृश विध्वंसात्मक न होकर सर्जनात्मक है। गाँधी जी अहिंसक प्रयत्नों को प्रमुखता देते थे। उनका तो मत था कि जब सरकार तथा शत्रु कठिनाई में हो, तो सत्याग्रही को उसकी कमजोरी का भी लाभ नहीं उठाना चाहिए। गाँधी जी अहिंसा को सत्याग्रह से अधिक महत्व देते थे। इसीलिए कहा जाता है कि नि शस्त्र क्रांति दर्शन का पूर्ण विकास बिना अहिंसा के असम्भव है और यही गाँधी जी की मौलिक देन है। गाँधी दर्शन में सत्याग्रह और अहिंसा एक दूसरे के पूरक हैं।

गाँधी जी के जीवन दर्शन को ही गाँधीवाद कहा जाता है और इस रूप में उसे एक निश्चित विचारधारा की मान्यता प्राप्त हो गयी है। गाँधी जी का जीवन-दर्शन भारतीय धरातल पर राजनीति को धर्म तथा नीति सर्वमान्य नियमों से सम्बद्ध करता है। गाँधी जी मानते थे कि विभिन्न धर्म एक ही सत्य की प्राप्ति के अलग-अलग मार्ग हैं और वे इस रूप में धर्म के कार्य को विधेयात्मक मानते थे। धर्म और नैतिक जीवनादर्शों के कारण गाँधीवाद मूलत, आध्यात्मिक दर्शन है। उनकी विचारधारा उपनिषदों

के सर्वात्मवाद से प्रभावित है, जिसके अनुसार जीव ईश्वर रूप और ईश्वर अंश तथा ईश्वर विश्वरूप है। उनके अनुसार सेवा प्रेम और त्याग का मार्ग ही धर्म का मार्ग है। इसीलिए कहा गया है धर्म और नैतिकता उनके विचारों और आचरण की आधारशिला, उनका जीवन प्राण है।'[1] किन्तु धार्मिकता के साथ वे यह भी मानते थे कि 'अपने देश और उसके द्वारा समग्र मानवता की निरन्तर सेवा ही मेरे लिए मोक्ष का मार्ग है। मैं प्रत्येक जीवित वस्तु के साथ अपने का एकाकार कर देना चाहता हूँ।' इस कथ्य से उनके ऊपर गीता के अनासक्ति-योग की प्रतीति होती है।

गांधीवाद का चिन्तन-पक्ष

गांधीवाद के चिन्तन पक्ष के अन्तर्गत सत्य, अहिंसा, सत्याग्रह आदि सिद्धांतों का समावेश किया जाता है। सत्य 'गांधी जी के जीवन और दर्शन का ध्रुवतारा है।'[2] उनके सत्य की परिभाषा इतनी विस्तृत है कि 'परमेश्वर सत्य' है, यह कहने की अपेक्षा 'सत्य' ही परमेश्वर है यह कहना अधिक योग्य है।'[3] उनके अनुसार 'सत्य' शब्द सत् से बना है। सत् का अर्थ है अस्ति-सत्ता अर्थात् अस्तित्व। सत्य के बिना दूसरी किसी चीज की हस्ती ही नहीं है और अन्तिम विजय सत्य की ही होती है। उनके सत्य की प्रतीति का मार्ग कठिन है और उसकी प्राप्ति अहिंसा के मार्ग से ही सकती है।

अहिंसा की भूमिका

गांधी जी की अहिंसा एक भावात्मक प्रक्रिया और शक्ति है, जो प्राणिमात्र से प्रेम करने के लिए प्रेरित करती है। गांधी जी के शब्दों में 'अनेक धर्मों में जो 'ईश्वर प्रेमरूप है' यह कहा गया है, वह प्रेम और यह अहिंसा भिन्न नहीं है।' प्रेम का शुद्ध व्यापक स्वरूप अहिंसा है। पर जिस प्रेम में राग या मोह की गन्ध आती हो, वह अहिंसा नहीं हो सकता।'[4] इस तरह गांधी जी की अहिंसा निवृत्तिमूलक या निषेधात्मक शक्ति नहीं है। अहिंसक का विरोध भी इस स्थिति में अन्यायी के प्रति प्रेम का ही परिचायक होता है, घृणा का नहीं। उनकी अहिंसा कायरता का पर्यायवाची नहीं। वे मानते थे कि अहिंसा वीरों का धर्म है, कायरों का नहीं। अहिंसा के बारे में उनका दावा था कि "अहिंसा सामाजिक चीज है। केवल व्यक्तिगत चीज नहीं है। जो धर्म व्यक्ति के साथ खतम हो जाता है, वह मेरे काम का

---

१ गोपीनाथ धावन सर्वोदय तत्व-दर्शन, पृष्ठ २१
२ गोपीनाथ धावन सर्वोदय तत्व-दर्शन, पृष्ठ २१
३ गांधी-साहित्य, भाग ५ धर्मनीति, पृष्ठ ११८
४ गांधी विचार-दोहन, पृष्ठ १६

नहीं है। मेरा यह दावा है कि सारा समाज अहिंसा का आचरण कर सकता है और आज भी कर रहा है।" इसी को अधिक स्पष्ट करते हुए डॉ० पट्टाभि सीतारामय्या ने लिखा है "जैसे हम पागलों और अपराधियों को पुनर्शिक्षित करते हैं, उसी प्रकार हमें युद्धाधिपतियों, लोलुप राजाओं, बदला लेने वाले शासकों, क्रुद्ध भाई, प्रतिशोध की भावना से भरे पति और हठी बालकों को पुनर्शिक्षित करना है। गांधी जी ने इन सबको एक पृथक श्रेणी में रखा है और इन पर एक नये विज्ञान का, एक नये नियम का जो कि प्रेम का नियम है, एक नये दर्शन का जो कि अहिंसा का दर्शन है, प्रयोग किया जाता है।"[1]

अहिंसा का एक विधेयात्मक शक्ति का रूप देकर गांधीवाद सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक क्षेत्रों में एक नये अध्याय को खोलती है।

सत्याग्रह

सत्याग्रह गांधीवाद का कर्मपक्ष है। सत्य पर आग्रहपूर्वक आचरण तथा अधर्म का सत्यादि साधनों द्वारा आग्रहपूर्वक विरोध का सत्याग्रह है। गांधी जी मानते थे कि अहिंसक साधनों द्वारा सत्य के लिए साधना ही सत्याग्रह है। सत्याग्रह एक ऐसी कार्य-प्रणाली है, जिसमें अधर्म पर धर्म से, हिंसा पर अहिंसा से, असत्य पर सत्य से, द्वेष पर प्रेम से तथा पशु बल पर आत्म-बल से विजय प्राप्त करने और विरोधी मानवता को जाग्रत करने का प्रयास किया जाता है। सत्याग्रही का यह दृढ़ विश्वास होना है कि 'किसी को दबा देने की अपेक्षा उसका मन-परिवर्तन कर देना ज्यादा अच्छा है। गांधी जी साध्य के साथ साधनों की नैतिकता को अत्यावश्यक मानते थे। वे हिंसात्मक साधनों को अपनाने के विरुद्ध थे। उन्होंने उपवास, असहयोग, सविनय-अवज्ञा, कर-बन्दी धरना आदि को सत्याग्रह के प्रकार बताये।

हिन्दी उपन्यासों में गांधीवाद का सैद्धान्तिक पक्ष

गांधीवाद के उपर्युक्त सैद्धान्तिक पक्ष का चित्रण सियारामशरण गुप्त के उपन्यासों में मिलता है, यद्यपि हिन्दी में गांधीवाद का समावेश प्रेमचन्द के उपन्यासों से प्रारम्भ हो गया था। सियारामशरण गुप्त के 'गोद', 'अन्तिम आकांक्षा' और 'नारी' उपन्यासों में गांधी-दर्शन का सात्विक एवं व्यावहारिक पक्ष कलात्मक रूप से प्रस्फुटित हुए है। डॉ० देवराज का मत है कि 'सियारामशरण जी के कथा-साहित्य पर गांधीवाद के सत्य और अहिंसा का पूर्ण प्रभाव है और इस प्रभाव का दर्शन उनके आन्तरिक और बाह्य अर्थात् विषय निर्वाचन तथा उसके बाह्य कलेवर, दोनों में पाया जा सकता है।

१ पट्टाभि सीतारामय्या गांधी और गांधीवाद, भाग १, पृष्ठ ३६

प्रेमचन्द जी के उपन्यासो मे भी सत्य और अहिंसा के प्रति इतनी गहरी आस्था नही दिखलायी पडती।''[1]

सियारामशरण गुप्त के उपन्यासो मे गाँधीवाद का रूप

'गोद' सियारामशरण गुप्त का प्रथम उपन्यास है, जो गाँधीवाद के हृदय-परिवर्तन सिद्धान्त का दिग्दर्शन कराने वाला मीलचिन्ह है। मात्र सन्देह मे भारतीय नारी-समाज मे किस प्रकार लाछित हो उत्पीडित होती है, उपन्यास की किशोरी उसका एक दृष्टान्त है। प्रयाग संगम के मेले मे परिवार से बिछुडी किशोरी दूसरे दिन घर पहुँचने पर भी समाज के सन्देह का शिकार बनती है, यद्यपि वह निर्दोष है। इसी घटना को लेकर शोभाराम के साथ निश्चित उसका विवाह-सम्बन्ध टूट जाता है और जिसका आघात न सह सकने के कारण किशोरी की माँ रोग-ग्रस्त हो जाती है। लोकापवाद को आड मे धनीराम अपने भाई शोभाराम का विवाह एक सम्पन्न जमींदार की पुत्री के साथ निश्चित करता है। इधर किशोरी का विवाह भी ऐसी परिवर्तित परिस्थिति मे कुरूप एवं प्रौढ वर के साथ तय होता है। शोभाराम परिस्थितियों से परिचित हो किशोरी को एकान्त मे अपनाकर अपने आत्म-बल का परिचय देता है। वस्तुत इस कार्य मे शोभाराम की भाभी पार्वती की भूमिका ही महत्वपूर्ण रहती है। नयी स्थितियो मे किशोरी की पवित्रता सिद्ध होने पर दोनो का वैवाहिक सम्बन्ध सम्पन्न होता है।

इस कथानक को लेकर गाँधीवाद के हृदय-परिवर्तन के माध्यम से लोकापवाद की सामाजिक समस्या का समाधान प्रस्तुत किया गया है। गाँधी-दर्शन की एक विशिष्टता है कि वह पुरातन का विरोध नही करता। यही कारण है कि शोभाराम चाहकर भी किशोरी को एकान्त मे ही ग्रहण करता है। उसमें आत्म बल की कमी नहीं, किन्तु इतना होने पर भी समाज के प्रति विद्रोह कर सामाजिक जीवन को अस्त-व्यस्त नही करना चाहता।

प्राचीन संस्कारो के प्रति मोहासक्ति या श्रद्धा की भावना उनके उपन्यास 'नारी' मे भी ध्वनित है। 'नारी' त्याग, आत्म बलिदान, प्रेम जैसे मानवीय गुणो की सशक्त अभिव्यक्ति है, जो समग्रता मे मानवतावाद का संदेश देती है। जमना उपन्यास की नायिका है, जिसके जीवन की समस्या का समाधान परम्परावादी गाँधी-नीति से किया गया है। वह अपनी निजी आस्था का निर्वाह करते हुए सामाजिक दायित्व का पालन करने के पीछे नही है। सच तो यह है कि गुप्त जी के पात्र सामाजिक मर्यादाओ का पालन करने मे ही अपने जीवन का उत्थान मानते है। 'अंतिम आकांक्षा' मे एक सत्य-

---

१ स० डॉ० नगेन्द्र : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ १०६

निष्ठ सेवक की कहानी वर्णित है। सेवक का नाम है रामलाल, जिसे समाज ने एक डाकू की हत्या करने के कारण पापी समझ बहिष्कृत कर रखा है। स्वामी की पुत्री के विवाह के प्रसग पर बरात 'हत्यारे' सेवक के हाथ का जल ग्रहण को तैयार नही होती। रामलाल इस द्विविधापूर्ण स्थिति मे स्वामी की प्रतिष्ठा के लिए घर छोडकर जाने को उद्यत हो जाता है। स्वामी की पुत्री का विवाह अपनी आँखो से देखने की उसकी साध पूर्ण नही हो पाती। इसकी पूर्ति होती है, कन्या की विदाई के समय अर्जित पूँजी के दो रुपये भेंट कर।

गुप्त जी का गांधी दर्शन उनके प्रमुख पात्रो के चरित्र मे निहित है, जो मानवीय सवेदना के धनी हैं। भारतीय सस्कृति के उपासक के रूप मे वे आस्थामय जीवन को अभिव्यक्ति देते हैं। समाज की असगतियो को परखते हुए भी वे विद्रोह के स्थान पर अपने मनोविकारो से जूझते हुए मानवता का मार्ग प्रशस्त करते हैं। जीवन की कलुषता के स्थान पर जीवन की उज्वलता के उल्लास को वे व्यक्त करते है। हृदय-परिवर्तन पर उनकी प्रगाढ आस्था है और सत्य तथा अहिंसा के मार्ग से वे अपने व्यक्तित्व का विकास कर सामाजिक कुरीतियों का परिहार चाहते हैं।

विष्णु प्रभाकर का यह कथन सत्य के अत्यधिक निकट है कि 'गुप्त जी की रचनाओ मे शिव अथवा नैतिकता का चित्रण है। उनका साध्य विशुद्ध नैतिकता है और यही उनकी मानवता का मूलाधार है। उनकी विचारधारा पर गांधीवाद का गहरा प्रभाव है। वह स्वीकार करते हैं कि मनुष्य मूल मे बुरा नहीं है, परिस्थिति उसे भला-बुरा बनाती है।'[1] सत्य और अहिंसा से परिचालित उनके पात्र गांधी-दर्शन की नैतिकता का उद्घोष करते है।

जैनेन्द्र के उपन्यासो मे गांधीय दर्शन

जैनेन्द्र के उपन्यासो मे भी गांधीवाद का गहरा संस्पर्श है, किन्तु इस तथ्य को विस्मृत नहीं किया जा सकता कि उन्होने गांधीवाद को शुद्ध बौद्धिक माध्यम से ग्रहण किया है। उनमे सियारामशरण गुप्त जैसी तल्लीनता का अभाव है, अत वे गांधीवाद को समग्र दृष्टि से ग्रहण नही कर पाते। जैनेन्द्र स्वयं चिन्तक हैं और विभिन्न विचार-दर्शनो से प्रभावित हैं। उनका विचार-दर्शन गांधीवादी आत्म-पीडा, फ्रायड की काम पीडा और रहस्यवादी दृष्टिकोण से समन्वित है। फ्रायड के प्रभाव के कारण पात्रो की स्थिति मे चारित्रिक विकृति का उन्मेष दिखलायी पडता है, जो गांधीवादी नैतिकता के सर्वथा विपरीत कहा जा सकता है। डॉ० नगेन्द्र का मत है कि "हिन्दी मे मूलत दो लेखक

१. स० डॉ० नगेन्द्र : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ १२२

ऐसे हैं, जिन्होंने गांधी-दर्शन को गम्भीरतापूर्वक ग्रहण किया है', जैनेन्द्र और सियारामशरण। इनमें से जैनेन्द्र की स्वीकृति एकान्त बौद्धिक है, उनकी आत्मा गांधी-दर्शन के सात्विक प्रभाव को ग्रहण नहीं कर सकी है।" वस्तुत जैनेन्द्र व्यक्तिवादी और इस रूप में समाज और व्यक्ति, दोनों के महत्व को नगण्य मानकर चलते हैं। गांधी दर्शन का मूल ध्येय है जीव मात्र के साथ आध्यात्मिक एकता की एकसूत्रता, जो जैनेन्द्र के व्यक्तिवादी अहं के कारण कुंठित हो जाती है।

जैनेन्द्र के उपन्यासों में से 'सुखदा' और 'विवर्त' में राजनीति के स्थूल पक्ष की ओर ध्यान देकर क्रांतिकारी पात्रों की उद्भावना कर कथानक में अहिंसा के प्रतिष्ठापन का प्रयास किया गया है। हिंसात्मक क्रांति में विश्वास रखने वाले हरीश, लाल, प्रभात आदि पात्रों तथा उनके विचारों का चित्रण सामयिक आतंकवादी दल से साम्य रखता है। सच तो यह है कि हिन्दी उपन्यासों में क्रान्तिकारी पात्रों और उनकी विचारधारा के प्रति समुचित न्याय स्वयं क्रान्तिकारी उपन्यासकार भी नहीं कर सके हैं। वस्तुतः क्रान्तिकारियों की आराध्य उनकी मातृभूमि थी और उसके प्रति उनकी दृष्टि श्रद्धा और पूजा-भाव की थी। इसे क्रान्तिकारी भावुकता भी कहा जा सकता है। ब्रिटिश सत्ता का विरोध वे हिंसात्मक तरीके से करना चाहते थे, किन्तु सुनियोजित सामूहिक कार्यक्रम के अभाव में वे व्यक्तिगत वीरता को ही अपना लक्ष्य मानते थे। किन्तु मन्मथनाथ गुप्त, अज्ञेय, यशपाल आदि क्रान्तिकारी लेखकों ने क्रान्तिकारियों की यौन लिप्सा को ही क्यों प्रमुखता दी है, यह वही बता सकते हैं। किन्तु लेखक ने हिंसा के सूक्ष्म रूप अहम्मन्यता का सुखदा के व्याज से विवेचन करते हुए अहिंसा के स्थापनार्थ अहं को गांधीवादी आत्म पीड़ा में विगलित होते दिखलाया है। 'विवर्त' में भी हिंसावृत्ति का खण्डन करते हुए नायक जितेन के अपराधी व्यक्तित्व का, ग्रन्थि से उद्भूत उसके विभाव का परिष्कार अहिंसात्मक रीति से किया गया है।[1] जितेन का पुलिस को आत्म समर्पण करना गांधीवादी हृदय-परिवर्तन का ही उदाहरण है, जो आकस्मिक ढंग से होता है। वस्तुतः भुवनमोहिनी के प्रति प्रगाढ़ प्रेम की यह सारी लीला है। पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी के कथनानुसार 'विवर्त' में "प्रेम के इस मान और प्रेम के इसी अभिमान की कथा है। उसमें प्रेम की हिंसा है और प्रेम की ही प्रतिहिंसा है। जितेन ने आजादी के लिए विद्रोह का झंडा नहीं उठाया, अन्त में उसने फाँसी के दण्ड को स्वीकार कर कहा—"सब लोग तो यही जानते थे कि वह आजादी का, क्रांति का, विश्व की शान्ति का काम कर रहा है। मैंने उन्हें यह बताया था, लेकिन भीतर मैं यही खुद नहीं जानता था। इसी से शायद मैं नेता था। अब जेल के भीतर आया हूं, तब हल पा गया हूं। प्यार और कुछ

१. रघुनाथ सरन झालानी : जैनेन्द्र और उनके उपन्यास, पृष्ठ ६२

नहीं होता, घृणा और कुछ नहीं होती, सत्य ही एक चीज होती है ।" जैनेन्द्र के उपन्यास 'कल्याणी' में भी गाँधीवादी दर्शन को जो मान्यता दी गयी है, वह भी विकृति-पूर्ण है। कल्याणी सत्याग्रह, उपवास तथा आत्म पीड़ा का मार्ग ग्रहण कर अपने क्रूर पति के हृदय परिवर्तन का प्रयास करती है, किन्तु असफल रहती है। वस्तुतः यह गाँधीवाद का एकांगी स्वरूप है, जो जैनेन्द्र की बौद्धिकता के कारण समग्रता में प्रस्तुत नहीं होता। कल्याणी का कथन है "भीतर का दर्द मेरा इष्ट हो। धन मैल है, मन का दर्द पीयूष है। सत्य का निवास और कहीं नहीं है। उस दर्द की साभार स्वीकृति में से ज्ञान की और सत्य की ज्योति प्रकट होगी। अन्यथा सब ज्ञान ढकोसला है और सब सत्य की पुकार अहङ्कार।" भगवतीप्रसाद वाजपेयी के उपन्यासों में भी सत्य और अहिंसा का विशेष आग्रह है। 'पतवार' की भूमिका में उन्होंने स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है कि 'एक स्थायी विश्व-शांति और मनुष्य मात्र का कल्याण सत्य और अहिंसा द्वारा ही सम्भव है।" 'पतवार' का नायक दिलीप गाँधीवाद के कर्मयोग में आस्था रखता है और जनसेवा के उच्च नैतिक आदर्शों से अनुप्राणित पात्र है। वाजपेयी जी के 'गुप्तधन', 'चलते-चलते', 'मनुष्य और देवता' तथा 'भूदान' में गाँधीय सिद्धान्तों का स्पष्ट संकेत मिलता है। किन्तु अधिकांशतः यह तात्विक अभिव्यक्ति शिथिल तथा शब्दाडम्बर के रूप में ही है।

गाँधीवाद और प्रेमचन्द

प्रेमचन्द के उपन्यासों में गाँधीवाद का प्रभाव और गाँधी-युग की झलक का समन्वय है। अतः गाँधीवाद के सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्य में उन्हें केवल गाँधीवादी कहना *उपयुक्त प्रतीत नहीं होता। यह सच है कि अपने युग के अन्य साहित्यकारों के समान* प्रेमचन्द भी गाँधी जी के व्यक्तित्व से प्रभूत मात्रा में प्रभावित हुए थे। किन्तु इतना होने पर भी वे गाँधी-दर्शन के अन्धानुगामी नहीं थे। यही कारण है कि वे गाँधीवादी जीवन दर्शन की अपेक्षा गाँधीवाद के प्रगतिशील विचारों और कार्यक्रम से अधिक प्रभावित थे। फलतः उनके उपन्यासों, विशेषतः 'प्रेमाश्रम,' 'रंगभूमि' और 'कर्मभूमि' में गाँधी-वाद की जिन अनेक मान्यताओं को स्थान मिला है, वे सामयिक सामाजिक जीवन की पृष्ठभूमि में सजीव हो उठी हैं। उनके उपन्यासों में गाँधीय सिद्धांतों का चित्रण व्यापक धरातल पर हुआ है। सक्षेप में उन्होंने गाँधी-दर्शन के आधार पर पात्रों की उद्भावना कर नवीन नैतिक तथा आदर्श मूल्यों की स्थापना की है। 'रंगभूमि' का सूरदास, 'कायाकल्प' का चक्रधर तथा 'कर्मभूमि' का अमरकांत गाँधीवादी पात्रों के रूप में गाँधी जी की राजनीतिक मान्यताओं को प्रस्थापित करते हैं। इन पात्रों के उज्वल चरित्र को दिखाने की दृष्टि से अराजकतावादी प्रवृत्ति के चरित्र भी अवतरित होते हैं।

गांधीवादी पात्र इन पात्रो से संघर्षरत रहते हुए आदर्शों एवं नैतिक मूल्यो की स्थापना करने मे सफल होते हैं।

उपन्यास की समग्रता मे गांधीवाद को तात्विक रूप से ग्रहण न करने के कारण प्रेमचन्द के उपन्यासो म विभिन्नता के दर्शन होते है। प्रेमचन्द-युग मे राष्ट्रीय कांग्रेस गांधी जी के नेतृत्व म ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध संघर्षरत थे। स्वतन्त्रता-प्राप्ति ही उनका प्रथम और अन्तिम लक्ष्य था। लेकिन इस युग के उपन्यासकार और स्वय प्रेमचन्द किसानो की कठिनाइयाँ, शोषण और सामाजिक कुरीतियो का चित्रण करते है। इन राजनीतिक उपन्यासो मे किसान और किसान-मजदूर अपने कष्टपूर्ण जीवन से मुक्ति पाने के लिए सरकार से संघर्ष करते है। यह कहा जा सकता है कि अधिकतर नायक आर्थिक मार्गों को लेकर अहिंसक आन्दोलन का प्रारम्भ करते है, जो अतिम स्थिति म जाकर ब्रिटिश शासन के साथ टक्कर मे परिवर्तित हो जाता है। अधिकाशत उपन्यासो मे आर्थिक कारणो से निर्मित किसानो की दयनीय स्थिति का चित्रण मिलता है, जब कि सच तो यह है कि गांधी जी ने राष्ट्रीय एकता को दृष्टि से आर्थिक प्रश्नो को उतना महत्व नहीं दिया था। इस तरह विचार-दर्शनो मे साम्य होते हुए भी राजनीतिक उपन्यासो मे उपन्यास-लेखको की चिन्तन प्रक्रिया मे किंचित अन्तर देखा जा सकता है।

सच तो यह है कि हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासो मे तात्विक रूप से गांधी-दर्शन की स्पष्ट एव प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति अत्यन्त विरल है। अधिकाश उपन्यासो मे गांधी युग का प्रभाव मिलता है, जिसे गांधीवाद का प्रभाव मानना युक्तिसगत न होगा। यह बात अलग है कि दोनो एक दूसरे के पूरक होकर अपने मिश्रित रूप मे राजनीतिक उपन्यास का रूप धारण कर लेते हैं।

गांधीवाद का कर्मपक्ष

हिन्दी उपन्यासो मे गांधीवाद के चिन्तन पक्ष का प्रभाव देखने के उपरात उसके कर्म या व्यवहार पक्ष पर विचार करना उपयुक्त होगा। गांधीवाद का यह पक्ष अपनी विभिन्नता के साथ राजनीतिक उपन्यासो मे आग्रहपूर्वक अकित किया गया है। गांधीवाद के इस व्यावहारिक पक्ष के अन्तर्गत सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक आदि सभी मान्यताएँ स्वदेशी के सिद्धात से अनुप्राणित है। समाज-व्यवस्था मे आवश्यक परिवर्तन लाने के ध्येय से गांधी जी ने एक अट्ठारह-सूत्री रचनात्मक कार्यक्रम निर्धारित किया था। उनका रचनात्मक कार्यक्रम मूल रूप मे इस प्रकार है साम्प्रदायिक एकता, अस्पृश्यता निवारण, मद्यपान निषेध, खादी, ग्रामोद्योग, ग्राम स्वच्छता, बुनियादी तालीम, प्रौढ शिक्षा, स्त्रियो की उन्नति, स्वास्थ्य एव सफाई की

शिक्षा, मातृभाषा प्रेम, राष्ट्रभाषा प्रेम, आर्थिक समानता, किसान-संगठन, छात्र-संगठन, आदिवासियों की सेवा, कोढ़ियों की सेवा।

आर्थिक विचार-धारा

गांधी जी के आर्थिक विचार सत्य तथा अहिंसा पर आधारित है। वे सदैव नैतिक और मानवीय मूल्यों पर जोर देते थे और भौतिक कल्याण मात्र से सन्तुष्ट नहीं थे। वे भौतिक पूँजी की तुलना में मनुष्यरूपी पूँजी को अधिक महत्व देते थे। गाँधी जी न केवल रहन-सहन के स्तर को ही ऊँचा करना चाहते थे, बल्कि जीवन के स्तर को भी सोद्देश्य, सुन्दर, सार्थक तथा सारगर्भित बनाना चाहते थे।

संक्षिप्त रूप से गाँधीवादी अर्थ-व्यवस्था के निम्न अभिन्न अंग है - कल्याणकारी अर्थ व्यवस्था, सर्वोदय, विकेन्द्रीकरण, न्यासधारिता, आर्थिक स्वावलम्बन, उद्योगों का प्रादेशिक प्रसार, ग्रामों का पुनरुत्थान, अवसर की समानता तथा धन व आय का न्यायोचित वितरण। राजनीतिक क्षेत्र की तरह आर्थिक क्षेत्र में भी वे विकेन्द्रीकरण के पक्ष में थे। उनका यह विश्वास था कि यन्त्र-चालित अर्थ-व्यवस्था अन्ततोगत्वा हिंसा तथा पाशविक शक्ति पर आधारित होती है और केन्द्रीकृत अथवा सकेन्द्रित अर्थ-व्यवस्था में मनुष्य पूर्ण तथा सुखी जीवन व्यतीत करने की कल्पना नहीं कर सकता। वे चाहते थे कि उत्पादन विभिन्न स्थानों में गृहोद्योग के रूप में हो। उनके मत में ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था को पुनर्जीवित करने का एकमात्र साधन चरखा है। वे भारी मशीनों के इस्तेमाल के हक में थे, बशर्ते कि समुदाय की ओर से राज्य इनका मालिक हो।

गांधी जी वर्ग-भेद, वर्ग-संघर्ष, मानुषी शोषण तथा हिंसामयी स्वार्थ-सिद्धि को समाप्त करना चाहते थे। किन्तु इसके लिए वे साम्यवादियों द्वारा शक्ति-बल का उपयोग करने के पक्ष में नहीं थे। अतः पूँजीवाद, उद्योगवाद तथा साम्यवाद की आर्थिक बुराइयों का उन्मूलन करने के लिए उन्होंने न्यासधारिता का सिद्धांत प्रतिपादित किया। वे मानते थे कि समस्त राष्ट्रीय सम्पत्ति, प्राकृतिक साधन तथा उत्पादन न्यास के रूप में रखा जाना चाहिए, जो सर्वाधिक सामाजिक कल्याण के लिए प्रयुक्त हो। इस दृष्टि से उत्पादन के सामाजिक सम्बन्धों को स्वस्थ, उदार, कल्याणकारी तथा मैत्रीपूर्ण बनाने के लिए न्यासधारिता का सिद्धांत एक सर्वोत्तम विचार है।

सर्वोदयी भावना

गाँधी जी किसी वर्ग विशेष तथा अधिक लोगों की अधिक भौतिक भलाई ही नहीं, अपितु सभी लोगों की सर्वाधिक भौतिक, मानसिक तथा भौतिक भलाई चाहते थे और उनका ध्येय सर्वोदय था। उनके विचारानुसार सर्वोदय एक प्रजातन्त्र है, जिसमें

तन, मन और वाणी की शुद्धता होगी, जीवन का निर्धारक तत्व स्वदेशी होगा तथा सभी क्रियाकलापो के निर्देशक तत्व सत्य तथा अहिंसा होगे। जीवन की पवित्रता के लिए नशीले पेय तथा भौतिक विकास का निषेध अपरिहार्य है। वे चाहते थे कि गाँव आत्मभरित तथा स्वावलम्बी एकक होना चाहिए। सर्वोदय राज्य एक धर्मनिरपेक्ष राज्य होगा।

हिन्दी उपन्यासो में गाँधीवाद का व्यावहारिक पक्ष

गाँधीयुग की यह विशिष्टता है कि स्वातंत्र्य-सघर्ष-काल मे सामाजिक समस्याओ तथा राजनीतिक प्रश्नो को एक समन्वित रूप मिला। अहिंसा तथा सत्याग्रह सिद्धान्त को राजनीतिक स्वरूप मिलने से आत्म-बल की प्रतिष्ठा हुई और शक्ति का मानदण्ड आध्यात्मिक बन गया। 'रगभूमि' के सूरदास, 'ज्वालामुखी' के अभय और 'दुखमोचन' के दुखमोचन अपनी चारित्रिक विशिष्टताओ से युक्त गाँधीवादी पात्र है जो सत्य और अहिंसा से परिचालित हैं। सूरदास तो जैसे गाँधी जी की ही प्रतिमूर्ति है, जो आदर्श सत्याग्रही के रूप मे न्याय, सत्य और धर्म के लिए प्राणोत्सर्ग कर देता है। सत्य की साधना सूरदास का सम्बल है, जो आत्म-बल की प्रतिष्ठा करता है। सच्चे सत्याग्रही के समान ईश्वर पर उसकी आस्था है, क्योकि ईश्वर ही सत्य है। आदर्श सत्याग्रही के रूप मे सूरदास, अभय और दुखमोचन, सभी शत्रुओ के प्रति किसी प्रकार की दुर्भावना नही रखते। वे अहिंसा के अनन्य उपासक हैं। गाँधीवाद किसी भी व्यक्ति मे घृणा करने की अनुमति नहीं देता। 'प्रेमाश्रम' का प्रेमशकर मानव प्रेम का प्रतीक है। वह घायल होकर भी डॉ० प्राणनाथ की रक्षा करता है। प्रेमचन्द गाँधीयुगीन वर्ग सघर्ष के प्रति अभिरुचि रखते हुए भी उसका समाधान सघर्ष मे नही, प्रत्युत समझौते मे देखते है, जो गाँधी-दर्शन के अनुकूल है। 'प्रेमाश्रम' और 'कायाकल्प' मे किसान सघर्ष जनता के सघर्ष को वाणी अवश्य देते हैं, किन्तु वे सघर्ष को अन्तिम लक्ष्य नही मानते। 'प्रेमाश्रम' मे समाज व्यवस्था से शोषण का अन्त हृदय-परिवर्तन के सुधारात्मक ढग से प्रस्तुत किया गया। गाँधीवादी शब्दावली मे इसे अहिंसात्मक क्रांति कहा जा सकता है। 'कायाकल्प' मे मजदूरो, चमारो, किसानो का सयुक्त मोर्चा सामन्तवादी तथा साम्राज्यवादी ताकतो से सशक्त मुकाबले को तैयार होता है, पर गाँधीवादी चक्रधर उसे मनोनुकूल मोड दे देता है। 'कर्मभूमि' का लगानबन्दी आन्दोलन भी हिंसात्मक स्वरूप ग्रहण करने के पूर्व गाँधीवादी 'कमेटीवाद' के भँवर मे फँस जाता है। प्रेमचन्द के अन्तिम पूर्ण उपन्यास 'गोदान' को जनवादी प्रवृत्ति का वाहक कहा जाता है। किन्तु इसमे भी शक्कर मिल की हड़ताल गाँधीवाद के प्रभाव मे यथार्थ के धरातल पर चित्रित नहीं हो सकी है। यहाँ भी प्रेमचन्द ने मजदूर-आन्दोलन का नेतृत्व अवसरवादी नेताओ के हाथ मे सौंपकर वर्ग सघर्ष को ओट देने का चतुरतापूर्ण कदम उठाया है।

प्रेमचन्द ने अपने युग की समाजवादी चेतना को उपन्यासों में अंकुरित अवश्य किया है, पर गाँधीवाद का पाला उसे पुष्पित होने के पूर्व ही नष्ट कर देता है। इस रूप में समाजवादी चेतना गूँज की प्रतिध्वनि बनकर रह जाती है। 'गोदान' -शोषण पर आधारित वर्तमान वर्ग विभाजित समाज-व्यवस्था का कारुणिक चित्र होने पर भी वर्ग-संघर्ष नहीं, अपितु समझौतावादी विवशता का प्रतीक बनकर रह गया। वर्ग-संघर्ष पर विश्वास न रखते हुए भी अनेक लेखकों ने सत्याग्रह को समस्या का समाधान नहीं माना है। जैनेन्द्र के 'कल्याणी' का उल्लेख पहले किया जा चुका है। वृन्दावनलाल वर्मा के अप्रत राजनीतिक उपन्यास 'अचल मेरा कोई' में भी सुधारक के सत्याग्रह की असफलता इसी कोटि की है। सुधारक ने अपनी पत्नी कुन्ती को अपने मनोनुकूल मार्ग पर लाने हेतु सत्याग्रह का अवलम्बन लिया है, किन्तु कुन्ती का हृदय-परिवर्तन होना तो दूर रहा, प्रत्युत वह आत्महत्या कर लेती है। गाँधी जी का विश्वास था कि सत्याग्रह और अहिंसा वैयक्तिक एवं पारिवारिक धरातल पर अत्यधिक सफल सिद्ध हो सकते हैं। किन्तु वर्मा जी ने कुन्ती की आत्महत्या तथा जैनेन्द्र ने 'कल्याणी' की मृत्यु द्वारा उक्त विश्वास को धराशायी कर दिया।

हृदय-परिवर्तन

गाँधीवादी उपन्यासों में हिंसात्मक संघर्ष की निर्णायक स्थिति आने के पूर्व ही हृदय परिवर्तन का प्रसंग आ जाता है, जो क्रांति का मार्ग अस्वाभाविक रूप से अवरुद्ध कर देता है। प्रेमचन्द, जैनेन्द्र, अनन्त गोपाल शेवडे आदि के उपन्यासों में हृदय-परिवर्तन के पचीसों उदाहरण ढूँढे जा सकते हैं। 'प्रेमाश्रम' में प्रेमशंकर और मायाशंकर का, 'विवर्त' में जितने का, 'गबन' में जोहरा का, 'गोदान' में मातादीन का हृदय-परिवर्तन गाँधीवाद की स्वीकृति ही है। गाँधीवाद का यही एक ऐसा सिद्धान्त है, जिसे प्रेमचन्द ने पूर्ण निष्ठा के साथ आत्मसात् किया है, जिसका कहीं कोई विरोध नहीं है। स्वयं प्रेमचन्द का कथन है "मैं महात्मा जी के चेंज ऑफ हार्ट के सिद्धान्त में विश्वास रखता हूँ। इसलिए जमींदारी मिटेगी, यह मानता हूँ। जमीन किसानों की होगी। मैं गाँधीवादी नहीं हूँ, केवल गाँधी जी के चेंज ऑफ हार्ट में विश्वास करता हूँ।"[१] हृदय-परिवर्तन के द्वारा ही आर्थिक समानता की स्थिति लाने की कल्पना कर अहिंसक क्रांति का महत्व प्रतिपादित किया गया है। 'प्रेमाश्रम' में प्रेमचन्द क्रांतिकारी वीरपाल के अराजकतावादी कृत्यों का समर्थन न कर विनय को अपनी सहानुभूति देते हैं, जो अहिंसक क्रांति पर आस्थावान है। गाँधीवाद भी मानता है कि असमान धन-वितरण

१　राजेश्वर गुरु : प्रेमचन्द : एक अध्ययन, पृष्ठ १०१

का प्रश्न हिंसक साधनो स हल नहीं हो सकता। यह हृदय परिवर्तन के आध्यात्मिक साधन से सहज सभव है।

इसके लिए गांधी-दर्शन म ट्रस्टीशिप की व्यवस्था है। गांधी जी मानते थे "जब तक मनुष्य अपनी तात्कालिक आवश्यकताओं के अतिरिक्त अन्य सम्पत्ति के लिए तैयार नही है, उन्हे सम्पत्ति की ओर अपना रुख बदल देना चाहिए और सम्पत्ति के स्वामी की तरह नही, उसके सरक्षक (ट्रस्टी) की तरह आचरण करना चाहिए और सम्पत्ति का उपयोग समाज के हित के लिए करना चाहिए।"[1] मायाशकर का त्याग ट्रस्टशिप के सिद्धान्त को पुष्ट करता है।

औद्योगिक सभ्यता का विरोध

हिन्दी के गांधीवादी राजनीतिक उपन्यासो मे औद्योगिक सभ्यता का समर्थन नही किया गया। गांधीवाद अर्थशास्त्र के भौतिक विकास को आत्म शक्ति का विरोधी तत्व मानता है। उसका विचार है कि भौतिक उन्नति म केन्द्रीकृत उत्पादन होने से कृत्रिमता और अनैतिकता का विस्तार होता है जो जीवन की शुचिता को विषाक्त बना देता है। गांधी जी इसीलिए गांवो को औद्योगिक सभ्यता से परे रखना चाहते थे। 'रगभूमि' मे पाण्डुपुर म सिगरेट कारखाने की स्थापना का प्रतिकार उपर्युक्त कारण से ही प्रस्तुत किया गया है। 'गोदान' मे भी शक्कर मिल के माध्यम से औद्योगिक समस्या पर विचार किया गया है। औद्योगीकरण क पीछे मुनाफाखोरी की जो भावना होती है, उसे प्रेमचन्द ने गांधी जी के सदृश ही शोषण का सुनियोजित ढग बताया है। यही कारण है कि उन्होने पूँजीवादी वर्ग की शोषण-वृत्ति की कटुतम आलोचना की है। प्रभुसेवक के इस कथन मे व्यवसायियो का वीभत्स रूप प्रस्तुत किया गया है 'व्यवसाय कुछ नही है, अगर नर-हत्या नही है। आदि से अन्त तक मनुष्यो को पशु समझना और उनसे पशुवत् व्यवहार करना इसका मूल सिद्धान्त है। जो यह नहीं कर सकता, वह सफल व्यवसायी नही हो सकता।'[2] प्रेमचन्द ने 'रगभूमि' और 'गोदान,' दोनो उपन्यासो मे औद्योगिक समस्या का जो स्वरूप प्रस्तुत किया है, यह औद्योगिक अनैतिकता है, जिसका गांधी जी ने सदैव विरोध किया। प्रमचन्द के औद्योगीकरण के विरोध के पीछे उनकी चारित्रिक आदर्श की आस्था का भी भय है, जो गांधीवादी सिद्धात से साम्य रखती है। गांधी जी मानते थे कि औद्योगीकरण असामाजिक तत्वो को प्रोत्साहित करते है। प्रेमचन्द का सूरदास उन्ही तथ्यो का प्रत्यक्षीकरण करता है 'साहब, आप पुतलीघर के मजूरो के लिए घर क्या नही बनवा देते ? वे सारी बस्ती मे फैले हुए

१ गोपीनाथ धावन : सर्वोदय तत्व दर्शन, पृष्ठ ८५

२ प्रेमचन्द : रगभूमि, भाग २, पृष्ठ १८०

है, और रोज ऊधम मचाते हैं । हमारे मुहल्ले में किसी ने औरतों को नहीं छेड़ा था, न कभी इतनी चोरियाँ हुई थीं, न कभी इतने धड़ल्ले से जुआ हुआ, न शराबियों का ऐसा हुल्लड़ रहा । जब तक मजूर लोग यहाँ काम पर नहीं आते, औरतें घरों से पानी भरने नहीं निकलतीं । रात को इतना हुल्लड़ होता है कि नींद नहीं आती । किसी को समझाओ, तो लड़ने पर उतारू हो जाता है ।'[1]

औद्योगिक सभ्यता की असंगतियों को देखकर ही गांधी जी ग्रामोद्योग को अधिक प्रमुखता देते थे । प्रेमचन्द भी जैसे उनका अनुमोदन करते हुए कहते हैं :

'उन्हें घर से निर्वासित करके दुर्व्यसन के जाल में न फँसायें, उनके आत्माभिमान का सर्वनाश न करें और यह उसी दशा में हो सकता है, जब घरेलू शिल्प का प्रचार किया जाय और वह अपने गाँव में कुल और बिरादरी की तीव्र दृष्टि के सम्मुख अपना अपना काम करते रहें । (कुटीरोद्योग को प्रोत्साहित करने के लिए प्रेमचन्द सुझाव देते हैं) इसके लिए हमें विदेशी वस्तुओं पर कर लगाना पड़ेगा । यूरोप वाले दूसरे देशों से कच्चा माल ले जाते हैं, जहाज किराया देते हैं, उन्हें मजूरों को कड़ी मजूरी देनी पड़ती है, उस पर हिस्सेदारों को नफा भी खूब चाहिए । हमारा घरेलू शिल्प इन समस्त बाधाओं से मुक्त रहेगा ।'[2]

हिन्दू-मुस्लिम एकता

भारतीय राजनीति को साम्प्रदायिक राजनीतिक दृष्टिकोण प्रारम्भ से ही प्रभावित करता रहा है । अंग्रेजों ने कूटनीति का आश्रय ले साम्प्रदायिक भावना का विस्तार किया । ब्रिटिश सरकार ने राष्ट्रीय कांग्रेस को जन-जीवन को प्रभावित करने वाली राजनीतिक संस्था के रूप में विकासोन्मुख देखकर उसे हिन्दुओं की संस्था के रूप में प्रचारित किया । फलतः मुस्लिम लीग की स्थापना हुई और उसको प्रोत्साहित करने की दृष्टि से मार्ले मिन्टो रिफार्म बिल में साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व को मान्यता दी गयी । इससे साम्प्रदायिक कटुता में वृद्धि होने से राष्ट्रीय एकता में बाधाएँ उत्पन्न हुईं ।

गांधी जी ने इस समस्या का समाधान सामाजिक क्षेत्र में निकालने का प्रयास किया । गांधी-युग में सामाजिक समस्याएँ भी राजनीतिक प्रश्नों के साथ समन्वित होती हैं । यही कारण है कि हिन्दू-मुस्लिम एकता, अछूतोद्धार एवं खादी गांधी जी के स्वराज्य के मुख्य अंग बन गये थे ।

हिन्दू-मुस्लिम एकता की समस्या हिन्दी के अनेक राजनीतिक उपन्यासों में चित्रित

---

१ प्रेमचन्द : रंगभूमि, (भाग १), पृष्ठ १६७-६८

२ प्रेमचन्द : प्रेमाश्रम, पृष्ठ १२७-२८

हुई है। 'वागाकल्प' मे इस समस्या को महत्वपूर्ण स्थान मिला है। गो वध के प्रश्न को लेकर जिस साम्प्रदायिक दंगे की स्थिति का निर्माण होता है, वह गाँधीवादी ढग से निपटाया जाता है। चक्रधर की नैतिक एव अहिंसक वीरता से हृदय-परिवर्तन द्वारा इस समस्या का समाधान किया गया है। यह बतलाने की चेष्टा की गयी है कि यदि दोनो सम्प्रदाय एक दूसरे की भावनाओ का सम्यक् सम्मान करें तो साम्प्रदायिकता के विष-दन्त तोडे जा सकते है। 'प्रेमाश्रम' का कादिर हिन्दू मुस्लिम एकता का प्रतिनिधिक पात्र है, जो मुस्लिम होने पर बहुसख्यक हिन्दू किसानों के आन्दोलन का नेतृत्व करता है। यद्यपि कादिर गाँधीवादी पात्र है, फिर भी उसमे हिंसक भावना का सर्वथा लोप नही है। वह कहता है 'धरती के लिए छत्रधारियो के सिर गिर जाते है, हम भी अपना सिर गिरा देंगे।'[1]

गाँधी जी हिन्दू मुस्लिम एकता के लिए जीवनपर्यन्त प्रयत्नशील रहे और उनके प्रयत्नो का रचनात्मक साहित्यिक रूप हिन्दी ही नही, अपितु भारतीय उपन्यास-साहित्य मे सजीवता के साथ अकित हुआ है। हम तो यहाँ तक कह सकते है कि हिन्दू मुस्लिम एकता के सम्बन्ध मे हिन्दी के उपन्यासकार गाँधी जी के विचारो से भी आगे प्रतीत होते है। गाँधी जी परम्परागत मान्यताओ पर आस्था रखने के कारण हिन्दू मुस्लिम एकता के लिए वैवाहिक तथा खान-पान का सम्बन्ध स्थापित करना आवश्यक नही मानते थे। उनका मत था कि इस रीति का अनुकरण करने से दोनो धर्म तथा जातीय विशेषता की रक्षा न कर सकेंगे। वे इस विचार को मानते थे कि दोनों अपने धर्म की मर्यादा को सुरक्षित रखते हुए पारस्परिक एकता को दृढ बनायें। किन्तु प्रेमचन्द ने 'कर्मभूमि' मे लाला समरकान्त और सलीम के भोजन का दृश्य प्रस्तुत कर आपसी खान-पान की ओर सकेत किया है।[2] समाजवादी विचारो से अनुप्राणित किन्तु गाँधी-युगीन कृति 'नयी इमारत' मे अचल जी ने महमूद और भारती के प्रेम के माध्यम से इस समस्या का हल प्रस्तुत किया है।

हिन्दू मुस्लिम-साम्प्रदायिकता स्वाधीनता-आन्दोलन मे किस तरह बाधक थी, इसका दिग्दर्शन रघुवीरशरण मित्र ने 'बलिदान' मे किया है। हिन्दू-मुस्लिम-साम्प्रदायिकता अग्रेजो की कूटनीतिक चाल के कारण राजनीतिक बन गयी थी और इस रूप मे उन्होने हिन्दू-मुस्लिम के प्रश्न से स्वाधीनता को पीछे ढकेलना चाहा था। 'बलिदान' रहमान, यूसुफ और सत्येन्द्र के जननी-जन्मभूमि पर किये गये बलिदान की गाथा है। इसमे गाँधीवाद के मानवीय गुणो का प्रस्फुटन हुआ है।

---

१ प्रेमचन्द . प्रेमाश्रम, पृष्ठ १३४

२ प्रेमचन्द . कर्मभूमि, पृष्ठ ३५४-५५

इस तरह इन उपन्यासकारों ने यह बतलाने का प्रयास किया है कि हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य की समस्या पारस्परिक प्रेम एवं सहानुभूति से ही सुलझ सकती है। *दोनों सम्प्रदायों के मध्य आत्मीयता का सम्बन्ध सुदृढ़ करने के लिए अहिंसा एवं सहनशीलता का मार्ग प्रशस्त करना होगा।* किन्तु इस दृष्टि से प्रस्तुत 'रोटी बेटी' के आदर्श कहीं-कहीं अतिभावुक होकर अप्रायोगिकता की सीमा तक पहुँच गये हैं।

सर्वोदय

सर्वोदय-दर्शन को महात्मा गाँधी ने जन्म दिया, किन्तु उसे परिष्कृत कर विकसित करने का श्रेय आचार्य विनोबा भावे को है। यही कारण है कि सर्वोदय दर्शन के प्रणेता विनोबा ही माने जाने लगे हैं। भू दान, सम्पत्तिदान, साधन दान, बुद्धि दान, हृदय-परिवर्तन की प्रक्रियाएँ होने पर भी विनोबा की देन हैं। उन्होंने अधिकारों के विसर्जन का एक देशव्यापी आन्दोलन छेड़ दिया है, जो अहिंसक एवं सांस्कृतिक दोनों है। सर्वोदय ने जनता का तीव्रता से ध्यानाकर्षित किया है और हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासों ने भी सर्वोदय के बुनियादी तत्वों को ग्रहण किया है।

सर्वोदय के मूलभूत सिद्धान्त[1]

सर्वोदय का आदर्श है अद्वैत और उसकी नीति है समन्वय। मानवकृत विषमता का वह निराकरण करना चाहता है और प्राकृतिक विषमता को घटाना चाहता है। *सर्वोदय की दृष्टि में जीवन एक विद्या है, एक कला भी जीव मात्र के लिए, प्राणि-मात्र के लिए समादर, प्रत्येक के प्रति सहानुभूति ही सर्वोदय का मार्ग है।* सर्वोदय दूसरों को जिलाने के लिए जीने में विश्वास करता है। वह मानता है कि दूसरों को अपना बनाने के लिए प्रेम का विस्तार करना होगा, अहिंसा का विकास करना होगा और आज के सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन करना होगा। सर्वोदय समाजनिरपेक्ष, शाश्वत और व्यापक मूल्यों की स्थापना करता और बाधक मूल्यों का निराकरण करना चाहता है। वह ऐसे वर्गविहीन, जातिविहीन और शोषणविहीन समाज की स्थापना करना चाहता है, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति और समूह को अपने सर्वांगीण विकास के साधन मिलेंगे। यह क्रान्ति अहिंसा और सत्य द्वारा ही सम्भव है। सर्वोदय इसी का प्रतिपादन करता है।

सर्वोदय की पृष्ठभूमि आध्यात्मिक है। यह बात विज्ञान में नहीं है, क्योंकि वह जीवन का बाहरी नक्शा बदल सकता है, पर भीतरी नक्शा बदलना उसके वश की बात

---

१. धीरेन्द्रदत्त भट्ट - 'सर्वोदय दर्शन' की भूमिका पर आधारित।

नहीं। वह राजनीति के स्थान पर लोकनीति का पक्षपाती है। राजनीति में जहाँ शासन मुख्य है, वहाँ लोकनीति में अनुशासन। राजनीति में जहाँ सत्ता मुख्य है, वहाँ लोकनीति में स्वतन्त्रता। राजनीति में जहाँ नियंत्रण मुख्य है, वहाँ लोकनीति में संयम। राजनीति में जहाँ सत्ता की स्पर्धा, अधिकारों की स्पर्धा मुख्य है, वहाँ लोकनीति में कर्तव्यों का आचरण। सर्वोदय का क्रम यही है कि शासन से अनुशासन की ओर, सत्ता से स्वतंत्रता की ओर, नियन्त्रण से संयम की ओर अधिकारों की स्पर्धा की ओर से कर्तव्यों की आचरण की ओर बढ़ो।

सर्वोदय मानव की भौतिक उन्नति को ही पर्याप्त नहीं मानता। वह ऐसी क्रांति को निस्सार मानता है, जिसमें मानवता का नैतिक स्तर ऊँचा न उठे। उसकी दृष्टि में क्रांति की सार्थकता है दुश्मन को गले लगाने में, क्रांति है अत्याचारों को क्षमा करने में, क्रांति है गिरे हुए को ऊपर उठाने में। वह मानता है कि इस क्रांति का साधन है—हृदय-परिवर्तन, जीवन-शुद्धि, साधन-शुद्धि और प्रेम का अधिकतम विस्तार।

संक्षेप में सर्वोदय में से सत्य और अहिंसा, अस्तेय और अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य और अस्वाद, सर्वधर्म-समन्वय और श्रम की प्रतिष्ठा, अभय और स्वदेशी आदि व्रत स्वतः स्फूर्त होते हैं। इन मूल्यों को अधिकाधिक सामाजिक बनाने से ही सर्वोदय का मार्ग प्रशस्त होगा।

सर्वोदय के इन सिद्धांतों को हरिभाऊ उपाध्याय ने निम्नानुसार वर्गीकृत किया है :

(१) समाज में किसी एक व्यक्ति को स्वामित्व का अधिकार न रहे।
(२) व्यक्ति परस्पर अपने स्वार्थ को महत्व न दें—उनमें स्वार्थों की परस्पर होड न हो।
(३) मनुष्य के नाते सबको समान स्वतंत्रता और विकास की अनुभूति हो।
(४) स्वराष्ट्र, नीति और परराष्ट्र-नीति जैसी दो अलग-अलग नीतियाँ न हों—बल्कि एक विश्व-समाज हो और एक विश्व-नीति।
(५) उसका नारा 'जय राष्ट्र' की बजाय 'जयजगत' हो।
(६) जीविका-निर्वाह में शरीर शक्ति और बुद्धि शक्ति का भेद न रखा जाय—सामूहिकता तथा सहकार-नीतियों का पालन किया जाय।
(७) न ऐकान्तिक आर्थिक स्वावलम्बन हो, न ऐकान्तिक आर्थिक परावलम्बन, बल्कि परस्परावलम्बन हो।[1]

१ साप्ताहिक 'प्रहरी', जबलपुर, दिनांक १-१२-१९६३

गांधीवाद एवं सर्वोदय का राजनीतिक उपन्यासो मे चित्रण

यह दुःख की बात है कि ऊँचे शाश्वत ध्येय को मान्यता देने वाले सर्वोदय को इने-गिने उपन्यासकारो ने ही अभिव्यक्ति दी है। अमृतलाल नागर का 'बूंद और समुद्र,' नागार्जुन का 'दुखमोचन' और हरिदत्त दुबे का 'पुनर्जन्म' सर्वोदयी भावना से प्लावित उपन्यासो के उत्तम उदाहरण हैं।

'बूंद और समुद्र' मे व्यक्ति और समाज के समन्वय को सर्वोदयी विचारधारा के अनुसार अंकित करने का प्रयास है। उपन्यास का संदेश है : 'मनुष्य का आत्मविश्वास जागना चाहिए, उसके जीवन मे आस्था जागनी चाहिए। मनुष्य को दूसरे के सुख-दुख में अपना सुख दुख मानना चाहिए। विचारों में भेद हो सकता है, विचारो के भेद से स्वस्थ द्वन्द्व होना है और उससे उत्तरोत्तर उसका समन्वयात्मक विकास भी। पर शर्त यह है कि सुख-दुख मे व्यक्ति का व्यक्ति से अटूट सम्बन्ध बना रहे- जैसे बूंद से बूंद जुड़ी रहती है—लहरो से लहरें। लहरो से समुद्र बनता है—इस तरह बूंद मे समुद्र समाया है।'[१] सभी प्रकार के मतवादो से ऊपर उठकर समता और न्याय के राज्य की स्थापना की समस्या उपन्यास मे ध्वनित है और उसे मूर्त रूप देना चाहता है साहित्यकार महिपाल। किन्तु उसके आदर्श और व्यवहार में सर्वोदयी की यथार्थ भावना का अभाव है। आदर्शवादी होने पर भी वह सामाजिक व्यवस्था की विषमताओं में से अपना मार्ग निकाल सकने में असमर्थ है। वह पूँजीवादी व्यवस्था का शिकार हो अपनी आस्थाओं को क्षयी होते देखता है। इतना ही नहीं, अपितु वह आत्मघात कर लेता है। इसके विपरीत है सज्जन, जिसके जीवन में वैयक्तिक एवं सामाजिक जीवन का समन्वय चरितार्थ हुआ है। वह एक विकासशील पात्र है। बाबा राम जी के सम्पर्क में आकर उसके जीवन मे जो परिवर्तन होता है, वह सर्वोदय की सामूहिक चेतना और व्यक्तिवादी दृष्टिकोण के सर्वथा अनुकूल है। बाबा जी सेवा पर, कर्म की कुशलता पर और एकांत साधना पर जोर दे उसी पथ का अनुगामी बनाते हैं। वह सज्जन से आग्रह करते हैं कि विज्ञानी यदि नाश को सिद्ध करता है तो तुम निर्माण को सिद्ध करो। जिसकी चेतना विराट् होगी, उसकी विजय होगी। द्वन्द्व से चेतना का रहस्य खुलता है। बाबा जी विनोबा की ही प्रतिमूर्ति हैं, जो सज्जन कन्या को भूमिदान और सम्पत्तिदान का उपदेश दे, सामाजिक विषमताओं के निवारण का व्यक्तिवादी समाधान सुझाते हैं। लोक-कल्याण तथा व्यक्ति-मंगल को लेकर सज्जन के हृदय में संघर्ष होता है, किन्तु बाबा उसे इस सर्वोदयी तथ्य से परिचित कराते हैं कि सच्चा समाजवादी वही

---

१. अमृतलाल नागर - बूंद और समुद्र, पृष्ठ ६०६

है, जो दूसरो के लिए जिये, जिये और जोने दे। बाबा का सज्जन पर गहरा प्रभाव पड़ता है और वह अपने जीवन को समाज-कल्याण के लिए अर्पित करने का सकल्प लेता है। वह सर्वोदयी पात्र है और उसका दृढ विश्वास है कि अतत मनुष्य की सामाजिक चेतना जाग्रत होकर सारे वैषम्यो को दूर करेगी। बाबा राम जी के माध्यम से सर्वोदय सिद्धातो का प्रतिष्ठापन प्रस्तुत उपन्यास मे किया गया है, जिसकी चर्चा अन्यत्र की जा चुकी है।

नागार्जुन का दुखमोचन भी सर्वोदय के साम्य दर्शन से प्रभावित है और उसके जीवन को गतिविधियो और उसके व्यक्ति का विकास सर्वोदय दर्शन की आधार शिला पर हुआ है। सच्चे समाजवाद की उपलब्धि उन्होने सर्वोदय के अधिक निकट देखी है। नागार्जुन के उपन्यासो का विश्लेषण करते समय 'दुखमोचन' की इस विशिष्टता का विस्तृत उल्लेख किया जा चुका है।

हरिदत्त दुबे के उपन्यास 'पुनर्जन्म' म विनोबा भावे के भू दान आन्दोलन के मूल तत्व त्याग, सर्वोदय के नैतिक आधार और जीवन की पवित्रता का चित्रण है। आचार्य विनयमोहन शर्मा का कथन है कि हरिदत्त दुबे यद्यपि उपन्यास-जगत मे विख्यात नही हैं, फिर भी उनका यह उपन्यास प्रकाश मे आ जाने पर हिन्दी मे प्रेमचन्द की आदर्श उपन्यास परम्परा का अवश्य पुनरुद्धार करेगा। 'मैला आंचल' मे जहाँ ग्राम-जीवन की घिनौनी तस्वीर अकित है, वहाँ 'पुनर्जन्म' में मानव-सद्भावना के आधार पर आदर्श ग्राम निर्माण की विधायक योजना मिलती है। अपने विषय का यह एक ही उपन्यास है, जिसमे मनोवैज्ञानिक चरित्र चित्रण के साथ आधुनिक समस्याओ का आदर्श हल सुझाया गया है। लेखक की दृष्टि पवित्रतावादी है। इसलिए उपन्यास मे जहाँ मानव-जीवन का प्रकृत शैथिल्य भी चित्रित किया गया है, वहाँ भी अशोभन वृत्ति या व्यापार नही उभर पाया है।[1]

स्वातन्त्र्योत्तर उपन्यासो म गाधी विचारधारा का ह्रास स्पष्ट रूप से दिखलायी पड़ता है। इसके विपरीत समाजवादी यथार्थवादी विचारधारा से वेष्टित उपन्यासो मे आश्चर्यजनक वृद्धि परिलक्षित होती है। जिस महान् व्यक्ति के व्यक्तित्व ने सारे विश्व को चमत्कृत किया और चिन्तन के धरातल को बदल दिया, वह स्वाधीनतोपरान्त ही भारतीय चिन्तन और भारतीय आचार-व्यवहार के लिए अनाकर्षक कैसे बन गया, यह एक विचारणीय समस्या है। जहाँ तक मैं समझता हूँ, उसके निम्नाकित कारण हो सकते है :—

---

१. विशाल भारत, अक सितम्बर, १९५७

(१) गांधीवाद के अनुयायियों में सत्ता प्राप्ति के उपरान्त ऐश्वर्य की तीव्राभिलाषा और उसका उपभोग,

(२) सामान्य जन-जीवन में गांधीय विचार-धारा के उन्मुक्त प्रवाह के लिए राजनैतिक एवं प्रशासनिक कारणों से शुद्धता और सात्विकता का अभाव,

(३) नैतिक मूल्यों की अवहेलना कर बढती हुई भौतिक ऐश्वर्य की आकाक्षा के कारण गांधीवादी अध्यात्म, नैतिकता और राजनीति को 'आउट ऑफ डेट' समझने की प्रवृत्ति।

इसके कारण ही मार्क्स और फ्रायड की विचारधाराएँ हमारे चिन्तन को आप्लावित करती जा रही है। यह शुभ लक्षण नहीं है और उपन्यासकारों को चाहिए कि वे कर्तव्यच्युत न होकर ऐसे साहित्य का सर्जन करें, जो मानव सम्बन्धो के परिमार्जन मे योग देकर मानव-सम्बन्धो मे साम्यमयी स्थिति लाने का प्रयास करे। गांधी जी का साहित्य सम्बन्धी दृष्टिकोण सत्य के धरातल पर आधारित है। उसमे भारतीय संस्कृति के तप और त्याग का समर्थन और भोग पक्ष का तिरस्कार है। दूसरे शब्दो मे गांधीदर्शन साहित्य मे ऐसे सत्य और शिव का प्रतिष्ठापन चाहता है जो मानव गरिमा को बढाये। गाधी जी का कथन है 'सच्ची कला आत्मा की अभिव्यक्ति होती है। सच्ची कला को आत्मा की प्रतीति कराने मे सहायक होना चाहिए।' साहित्य के सम्बन्ध मे भी यही कहा जा सकता है और उपन्यासकारों के लिए इस दृष्टिकोण की उपेक्षा हितकर न होगी।

साम्यवाद एवं समाजवादी विचारधारा

भारतीय राजनीति को जिन प्रमुख राजनीतिक विचारधाराओ ने प्रभावित किया है, उनमे गांधीवाद के बाद मार्क्सवाद का स्थान है। कार्ल मार्क्स ने जिस सिद्धांत का प्रतिपादन किया था, उसे वैज्ञानिक समाजवाद, मार्क्सवाद और साम्यवाद जैसे विभिन्न नामों से पुकारा जाता है। इस समाजवादी विचारधारा का अन्वेषण मार्क्स, प्लेटो, टॉमस मूर, हेरिंग्टन, कैम्पानेल्ला, सेंट साइमन, राबर्ट ओवेन और चार्ल्स फूरिये जैसे अनेक विचारकों का ऋणी है, क्योंकि किसी न किसी रूप मे उसने इन विद्वानो के विचारो से प्रेरणा ग्रहण की है।

मार्क्स तथा एंगेल्स ने १९ वीं शताब्दी मे वैज्ञानिक समाजवाद का प्रतिपादन किया था। रूस की विजय से एशिया के परतन्त्र देशों का ध्यान इस समाजवादी दर्शन की ओर आकर्षित हुआ। इसी पृष्ठभूमि मे भारत मे भी प्रथम असहयोग आन्दोलन के बाद समाजवादी विचार का बीजारोपण तथा सन् १९२४ मे साम्यवादी दल की स्थापना होती है। तत्कालीन भारतीय राजनीतिक परिस्थितियो मे समाजवादी दर्शन के

दो राजनीतिक सिद्धांत विवेचनीय है। समाजवाद न केवल विदेशी पूंजीवाद या साम्राज्यवाद से लड़ना है, अपितु देशी पूंजीवाद से भी टक्कर लेना है। वह दो वर्गों को मानता है' एक शोषक और दूसरा शोषित। इन दोनों के अपने अपने वर्ग के स्वार्थ होने से वर्ग संघर्ष अनिवार्य है। वर्ग संघर्ष में यह क्रांति या हिंसा को अनैतिक नहीं मानता।

भारत में समाजवादीधारा दो रूपों में मिलती है। एक का उद्भव और विकास कांग्रेस के अन्तर्गत होता है और पं० जवाहरलाल नेहरू जैसे नेता का मार्ग-दर्शन मिलता है। कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की स्थापना और उसका विस्तार इसी 'स्कूल' की देन है। दूसरा रूप है भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी का। यह भी समाजवादी तथा साम्यवादी कहलाते है। दोनों के विचारों का स्रोत मार्क्सवाद होने पर भी दोनों के दृष्टिकोण में भिन्नता मिलती है। स्वाधीनता पूर्व-युग में व्यावहारिक रूप में समाजवादी दल की सम्पूर्ण शक्ति राष्ट्रीय आन्दोलन में लगी रही तथा साम्यवादी दल पूंजीवाद के विरुद्ध कार्यक्रमों को आयोजित करता रहा। साम्यवादी मानते थे कि कांग्रेस पूंजीपतियों के हाथों की कठपुतली है, क्योंकि उसका नेतृत्व पूंजीपति वर्ग करता है।

इस रूप में स्वभावतः पूंजीवाद का विरोध करते हुए यह दल कांग्रेस-विरोधी रूप में उभरता गया। कांग्रेस समाजवादी दल हिंसा को व्यावहारिक रूप से अनिवार्य तत्व नहीं मानता। अतः विचारों में विभिन्नता होते हुए भी वह अहिंसावादी नेतृत्व पर आस्था रखते हुए राष्ट्रीय आन्दोलनों में सहयोग प्रदान करता रहा। यह दल मध्य वर्ग को समाजवादी व्यवस्था के क्रान्तिकारी अंग के रूप में भी मान्यता देता है, जब कि साम्यवादी इस वर्ग के अस्तित्व को नहीं मानता। मार्क्सवादी दृष्टि से मध्य वर्ग एक प्रतिक्रियावादी शक्ति है और उसका विनष्ट होना चाहिए। इस रूप में भारतीय साम्यवादी अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति अर्थात् मार्क्सवाद को व्यवहार में लाने के समर्थक है। वे मार्क्सवाद को एक निश्चित, स्थिर दर्शन मानकर चलते हैं, फलतः उनके कार्यक्रमों मे भारतीय सामाजिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक मूल्यों की स्पष्ट अवहेलना दिखलायी पड़ती है। गुरुदत्त ने अपने मार्क्सवाद विरोधी उपन्यासों में इसका सजीव चित्रण किया है। मार्क्सवाद की समाजवादी व्यवस्था को समझने के लिए उसके सिद्धांतों को समझ लेना आवश्यक है।

मार्क्स की प्रेरक शक्तियां

मार्क्स पर तीन विचारधाराओं का प्रभाव द्रष्टव्य है (१) हीगल का द्वन्द्ववाद (२) ब्रिटेन का अर्थशास्त्र, (३) फ्रांस का काल्पनिक समाजवाद। इन विचारों से प्रभावित होने पर भी उसने इन्हें पूर्णतः अंगीकार न करके उन्हें अपने विचारों के अनुरूप

पूर्णता प्रदान की है। उसने हीगेल के द्वन्द्ववाद के काल्पनिक स्वरूप के स्थान पर भौतिक तत्व की प्रतिष्ठा की। इसी तरह उसने ब्रिटिश अर्थशास्त्र के सिद्धान्त का नवीनीकरण कर पूँजीवाद की आन्तरिक असंगतियों, पूँजीवादी संकटों तथा श्रमिक एवं पूँजीपति के पारस्परिक सम्बन्धों का विश्लेषण किया। फ्रांस के समाजवादियों से भी उसने क्रांति तथा वर्ग संघर्ष की भावना अंशतः ग्रहण कर वितरण-प्रणाली के स्थान पर उत्पादन-क्रिया को दोषी निरूपित किया।

मार्क्स के सिद्धान्त

मार्क्स ने जो सिद्धान्त प्रतिपादित किये, वे इस प्रकार हैं -

१—उत्पादन-प्रणाली के अनुरूप ही वर्गों की उत्पत्ति होती है,

२ - वर्गों में परस्पर संघर्ष होना अनिवार्य है और यह वर्ग-संघर्ष सर्वहारा की अधिनायकशाही का मार्ग प्रशस्त करता है, और

३—सर्वहारा का यह अधिनायकत्व संक्रमणकालीन होगा। इसमें केवल सर्वहारा का एक वर्ग होगा और अन्य वर्ग समाप्त हो जायेंगे। इस तरह एक राज्यविहीन समाज की सृष्टि होगी।

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद

मार्क्स के इस सिद्धांत को 'द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद' की संज्ञा दी गई है। 'द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद वह दर्शन-प्रणाली है, जो हमें उन आन्तरिक नियमों का ज्ञान कराती है, जिसके अनुसार इस भौतिक जगत् का विकास होता है, इस भौतिक जगत् के रहने वाले प्राणियों का विकास होता है और उनके विचारों में रूपान्तर होता है। द्वंद्वात्मक भौतिकवाद दृश्य-जगत् की गति के नियमों की व्याख्या करता है।'[1]

संक्षेप में मार्क्स के द्वंद्वात्मक भौतिकवाद की विशिष्टताएँ इस प्रकार हैं :

(१) द्वंद्वात्मक भौतिकवाद मानता है कि प्रकृति इस प्रकार के तत्वों का आकस्मिक संघटन नहीं है, जो एक दूसरे से असम्बद्ध, प्रभावहीन तथा पूर्णतः स्वतन्त्र हों। द्वन्द्ववाद के अनुसार प्रकृति उन समस्त वस्तुओं एवं दृश्यों से मिलकर निर्मित होती है जो परस्पर सम्बन्धित, निर्भर और प्रभावपूर्ण हैं। अतः किसी भी प्राकृतिक घटना को उसके चारों ओर के वातावरण से अलग करके देखा या समझा नहीं जा सकता।

(२) प्रकृति में अविराम गति, प्रतिक्षण नवोन्मेष, परिवर्तन और विकास है। एंगेल्स के शब्दों में 'लघु से लघु वस्तु से लेकर विशाल से विशाल वस्तु तक, लघुतम जीव-

---

१　आचार्य नरेन्द्र देव　राष्ट्रीय और समाजवाद,

कोश से लेकर मानव तक—समस्त प्रकृति निरन्तर गतिमान और परिवर्तनशील है, उसकी स्थिति रचना एवं ह्रास के सतत प्रवाह में है।' इस तरह द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद किसी वस्तु के स्थायी एवं स्थिर होने तथा उसके मूलभूत कारणों को दैवीय बनाने का विरोध करता है।

(३) द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के अनुसार प्रकृति का विकास क्रम सीधे-सीधे न होकर चक्करदार मार्ग से होता है। इस विकास क्रम में हम अदृश्य और अकिंचन परिणाम सम्बन्धी परिवर्तनों से स्पष्ट और मौलिक गुण सम्बन्धी परिवर्तनों तक पहुँच जाते हैं। इसी को कहा गया है कि पहले की गुणात्मक परिस्थिति से दूसरी गुणात्मक परिस्थिति तक सक्रमण का नाम विकास है। द्वन्द्वात्मक पद्धति की महत्ता है कि मात्रा-परिवर्तन से उस वस्तु के गुण में परिवर्तन हो जाता है।

(४) द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के अनुसार प्रकृति के समस्त बाह्य रूपों एवं पदार्थों में आन्तरिक असंगति (इनर कन्ट्राडिक्शन) भी मौजूद है। 'इन पदार्थों और रूपों के भाव पक्ष और अभाव-पक्ष दोनों हैं, उनका अतीत है तो अनागत भी, एक अश मरणशील है तो दूसरा विकासोन्मुख है। इन दो विरोधी अंशों का सघर्ष पुरातन और नवीन, मरणशील और विकासोन्मुख, निर्वाण और निर्माण का सघर्ष ही—विकास क्रम की आन्तरिक प्रक्रिया है। परिणाम भेद के गुण भेद में परिवर्तित होने की यही आन्तरिक प्रक्रिया है।'[1] असगतियाँ ही विकास की जन्मदात्री हैं। लेनिन के शब्दों में 'विरोधी तत्वों के सघर्ष का नाम ही विकास है।' क्रान्ति साधारण समाज से नवोन्नत समाज की ओर अग्रसर होने के लिए एक अनिवार्य सोपान है।

इतिहास की भौतिक व्याख्या

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के अनुसार ऐतिहासिक घटनाएँ भी भौतिक कारणों से निर्मित होती हैं। यह भौतिक तत्त्व वस्तुतः आर्थिक प्रभाव है, जो उत्पादन प्रणाली से सम्बन्धित है। मार्क्स ने इसे प्रगतिवादी परिप्रेक्ष्य में अपनी चिन्तनधारा की आधार पीठिका बनाया है। उसके अनुसार 'समाज में व्याप्त उत्पादन-व्यवस्था में लगे हुए मनुष्य निश्चयात्मक सम्बन्धों में प्रवेश करते हैं, जो कि निर्धारित रहते हैं—अर्थात् उनकी मानव आकांक्षा पर निर्भरता नहीं है—ऐसे उत्पादक सम्बन्ध जो कि उत्पादन की भौतिक शक्तियों के विकास के एक निश्चयात्मक सोपान के समानान्तर चलते हैं। इन्हीं उत्पादन-सम्बन्धों के योग से सामाजिक आर्थिक रूप तैयार होता है। यही वह वास्तविक आधार-पीठिका कही जा सकती है, जिस पर वैधानिक तथा आर्थिक ढाँचे खड़े होते हैं

१ जे० स्टालिन : द्वन्द्वात्मक और ऐतिहासिक भौतिकवाद।

और सामाजिक चैतन्य के निश्चयात्मक रूप बनते है। भौतिक जीवन मे उत्पादन की प्रणाली जीवन की सामाजिक, राजनीतिक और आध्यात्मिक प्रणालियों के सामान्य रूप को निश्चित करती है।

उपर्युक्त आधार पर उसने निम्न तथ्यो का प्रतिपादन किया है

(१) समाज के राजनीतिक और कानूनी ढाँचे की आधारशिला उसका तत्कालीन आर्थिक ढाँचा होता है,

(२ यह आर्थिक ढाँचा उत्पादन-सम्बन्धो के योग से निर्मित होता है, और

(३) उत्पादन-शक्तियों के विकास की स्थिति पर ही इन सम्बन्धो की निर्भरता है।

एंगेल्स के शब्दो मे 'समस्त सामाजिक परिवर्तनो तथा राजनीतिक क्रान्तियो के अन्तिम कारण न तो मनुष्यों के मस्तिष्क मे, और न उसके चरम सत्य और न्याय सम्बन्धी विशेष ज्ञान मे पाये जाते हैं, वरन् वे उत्पत्ति और विनिमय के ढगो मे ही मिल सकते हैं।' इस तरह सामाजिक या राजनीतिक क्रांतियो का मूल कारण उत्पादन या वितरण प्रणाली मे परिवर्तन होता है।

अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त

मार्क्स मानता है कि समस्त उपयोगी वस्तुओ मे श्रम पदार्थ का सम्मिश्रण है, जो कि सभी की साझेदारी है। समस्त उपयोगी वस्तुएँ सामाजिक श्रम का ही परिणाम हैं। वह यह भी कहता है कि उन समाजों का धन, जिनमे उत्पत्ति की पूँजीवादी पद्धति प्रचलित है, अनेक वस्तुओं के संग्रहीकरण से प्रकट होता है, और उसकी इकाई वस्तु है। इसका तात्पर्य यह है कि धन का संग्रहीकरण पूँजीवादी समाज की विशिष्ट प्रवृत्ति है। श्रम से उनका आशय व्यक्ति की समस्त शारीरिक एव मानसिक शक्तियों से था, जिनका प्रयोग वह भोग्य मूल्य के पैदा करने मे करता है। इसीलिए उन्होंने अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त निकाला। इसके अनुसार अतिरिक्त मूल्य वह श्रम है, जिसका पूँजीपति कोई मूल्य नहीं देता। पूँजीपति के इस लाभ मे श्रमिक की साझेदारी नहीं होती, जो शोषण है। वस्तुत पूँजीपति का लाभ श्रमिक की मेहनत का ही अग है, अत दोनों के स्वार्थ परस्पर टकराते हैं और वर्ग-सघर्ष की स्थिति का निर्माण होता है। अतिरिक्त मूल्य की यह उपलब्धि ही सर्वहारा वर्ग को जन्म देती है। मार्क्स मानता है कि सम्पत्ति के केन्द्रीकरण के कारण समस्त समाज पूँजीवाद और सर्वहारा—शोषक और शोषित-वर्गों मे विभाजित हो जायगा तथा मध्य वर्ग का लोप हो जायगा।

सर्वहारा क्रान्ति एव अधिनायकत्व

ऐसी स्थिति के बनने पर सर्वहारा पूँजीवाद का काल बनकर उसकी कब्र खोदना

है। सर्वहारा क्रान्ति से, वर्गों के उन्मूलन से वर्ग विहीन समाज स्थापित होगा। किन्तु इस परिवर्तन के लिए हिंसात्मक क्रान्ति एक आवश्यक तत्व होगा।

सर्वहारा का एकाधिपत्य होने पर सक्रमण-काल की स्थिति का निर्माण होगा। इस सन्दर्भ म एँगेल्स के अनुसार 'जो पार्टी क्रान्ति म विजयी होगी, उसके लिए यह नितान्त आवश्यक होगा कि वह अपने शासन को बनाये रखने के लिए प्रतिक्रियावादी शक्तियो को शस्त्र बल का भय दिखाकर उन्हे अपने नियन्त्रण म रखने के लिए विवश हो।' इसी का समर्थन मार्क्स ने यो किया है 'श्रमिक बुर्जुआ वर्ग के विरोध को समाप्त करने के लिए राज्य को एक क्रान्तिकारी तथा अस्थायी रूप म प्रतिष्ठित रखते है। फलत इस सक्रमणीय युग म राज्य दमनात्मक, स्वेच्छाचारी एव अजनतन्त्रीय रहेगा। सर्वहारा के इस अधिनायकत्व मे उत्पादन पर राज्य का जो एकाधिकार होगा, उसमे उत्पादन का आधार सामाजिक उपयोगिता होगी।'

पूँजीवादी सत्ता के उन्मूलन पर इस अधिनायकत्व का अन्त होगा और उस समय राज्य की उपयोगिता नही रहेगी। सघर्ष एव वर्गीय भावना का पूर्णत अन्त हो जायगा और उत्पादन के साधनो पर समाज का एकाधिकार होगा। इस तरह वर्गविहीन समाज का निर्माण होगा।

मार्क्सवाद एव साहित्य

भारत मे समाजवादी विचार-दर्शन का अध्ययन सन् १९२५ ३० ई० मे होने लगा था, किन्तु चिन्तन प्रक्रिया पर उसका प्रभाव एक दशक के उपरान्त परिलक्षित हुआ। रूस म समाजवादी व्यवस्था की स्थापना के परिणामस्वरूप सघर्षरत भारत का ध्यान उस ओर जाना स्वाभाविक ही था। मार्क्सवाद के रचनात्मक पक्ष म प्रभावित हो भारतीय उपन्यासकारो ने उसे अपने चिन्तन का विषय बनाया। हिन्दी उपन्यास-साहित्य म राहुल सांकृत्यायन, यशपाल और रामेश्वर शुक्ल 'अचल' इस नयी परम्परा के सूत्रधार बने।

मार्क्सवादी जीवन-दर्शन के अनुसार भौतिक जगत् का अस्तित्व मनुष्य के चिन्तन से स्वतन्त्र है। भौतिक शक्तियां मानव-चेतना को बदलती हैं और मानव-चेतना भौतिक शक्तियो को बदलती है। इस प्रकार भौतिक परिस्थितियो को बदलता हुआ मानव स्वय को बदलता है।[1] इस रूप म साहित्य कल्पना और आदर्श की नही, अपितु यथार्थ की वस्तु हो जाती है। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने इस तथ्य की विवेचना मे लिखा है 'मार्क्सवादी साहित्यकार मानते हैं कि उनके साहित्य का सम्बन्ध कल्पना और आदर्श

१ रेल्फ फाक्स नॉवल एण्ड दी पीपुल, पृष्ठ १०५

से नहीं है, ठोस और व्यावहारिक सत्य से है। उनका सिद्धान्त है कि साहित्य वास्तव मे वर्ग संघर्ष के ऐतिहासिक विकास क्रम में आये हुए विभिन्न युगो के अधिकारी वर्ग की प्रवृत्तियों का परिचायक है। ऐसी अवस्था मे साहित्य का सम्बन्ध ऐतिहासिक विकास से है, जो एक यथार्थ वस्तु है।[१] मार्क्स के द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी का मनुष्य के नैतिक, सास्कृतिक आध्यात्मिक, सामाजिक, आर्थिक एव राजनीतिक जीवन के क्षेत्र मे युगान्तरकारी प्रभाव पडा है। मार्क्सवाद ने बताया कि मनुष्य ही अपने भाग्य का विधाता है। वह उत्पादन के साधनों से परिचालित है और उक्त साधनो के अनुसार ही उसके सामाजिक सम्बन्ध बनते और बिगड़ते है। वह मानता है कि आर्थिक आधार मे सामाजिक सम्बन्धो मे और तदानुसार विचारो मे परिवर्तन आता है। आर्थिक स्थिति को मूलभूत आधार मानने के कारण ही मार्क्सवाद इस तथ्य को उद्घाटित करता है, राजनीतिक, दार्शनिक एव नैतिक मान्यताएँ भी समाजविशेष की आर्थिक स्थिति के अनुकूल स्वरूप ग्रहण करती है।

मार्क्सवाद का साहित्यिक संस्करण है समाजवादी यथार्थवाद, जो साहित्य का आधार आर्थिक तथा भौतिक मानता है। यह साहित्य की उपादेयता वर्गहीन समाज की स्थापना मे सहायक बनने मे मानता है। फलत पूँजीवाद के नाश के लिए शोषितों का वर्ग-संघर्ष के लिए प्रेरित करता है। इसके लिए वह शोषितो की समस्याओ और उनकी दयनीय सामाजिक आर्थिक स्थिति का चित्रण कर जीवन की विषमताओ को निर्देशित कर समाज की बाधक मान्यताओ के प्रति विद्रोह की भावना उत्पन्न करता है।

डॉ० शिवकुमार मिश्र ने समाजवादी यथार्थवाद के आधारभूत तत्वो को सूत्र रूप मे इस प्रकार बताया है

* *वस्तुगत यथार्थ का उसके क्रान्तिकारी विकास की भूमिका मे समाजवादी दृष्टि के आधार पर चित्रण।*
* समाज-विकास की द्वन्द्वमूलक प्रक्रिया की भूमिका मे प्रगतिशील तथा प्रतिगामी शक्तियो की परख।
* ऐतिहासिक विकास की मूलभूत अन्तर्धाराओ का ज्ञान, नये को समर्थन देकर जर्जर प्राचीन का बहिष्कार, ऐतिहासिक सत्य, जीवन के 'पाजिटिव' पक्ष पर अधिक बल।
* समाज मे व्याप्त वर्ग-संघर्ष तथा वर्गीय असंगतियो का गहरा और सूक्ष्म विश्लेषण तथा उद्घाटन।

---

१ यथार्थ नन्ददुलारे वाजपेयी 'नया साहित्य : नये प्रश्न, पृष्ठ १

* मनुष्य के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का अंकन, जीवित, सक्रिय तथा सामाजिक मनुष्य की प्रतिष्ठा, 'पाजिटिव हीरो' की सृष्टि ।
* भविष्य के एक क्रान्तिकारी, रचनात्मक तथा वैज्ञानिक दृष्टि से सम्पन्न तर्क सम्मन 'विज़न' का मूर्तीकरण ।[१]

इस तरह सक्षेप मे कहा जा सकता है कि समाजवादी यथार्थवाद का यथार्थ सामाजिक प्राणी का यथार्थ है। आचार्य वाजपेयी का मत है कि "इस यथार्थवाद मे दो तत्व हैं, जो वास्तव मे गत्यात्मक जीवन के दो पक्ष है। एक है वह असह्य और नग्न वास्तविकता, जो परिस्थिति बनकर हमे घेरे हुए है, और दूसरा है एक स्वप्न, जो साम्यवाद का साध्य है। यह एक वास्तविक-जीवन दृष्टि है, जिसम तात्कालिक यथार्थ और उसे गति और दिशा प्रदान करने वाला आकांक्षित भवितव्य दोनो का द्वन्द्वात्मक सयोग है। साथ ही इस दृष्टिकोण की भूमि भी पूर्ण तथा सामाजिक है। इस विशिष्ट वस्तुवादी धारणा मे मानवात्मा या चेतना को भौतिक द्रव्य का ही अग्रिम विकास बताने पर भी यह तथ्य बना रहता है कि मानवात्मा विकासशील है। एगेल्स ने इस आधार पर मानव-समाज की चरम परिणति इसमे देखी है कि सामाजिक सह-के आधार पर मनुष्य अपनी समस्त परिस्थितियो का पूर्णतया सचेतन नियन्त्रण करे, वह निसर्ग की दया पर निर्भर न रहे, या आकस्मिक सयोग और घटनाएँ ही उसका भाग्य निर्णय न करें किन्तु अपने भाग्य का नियन्ता केवल मनुष्य ही बने। और ऐसा वह व्यक्तिगत रूप से करने मे कभी समर्थ नहीं हो सकता। यह परिणति वर्गहीन समाज के सहयोग की भूमि पर ही सम्भव है। यह दृढ आशा का स्वर है। इसम मानवता की चिर विजयिनी आत्मा का पूर्ण विश्वास प्रदीप्त है।"[२]

हिन्दी उपन्यास साहित्य मे मार्क्सवाद का प्रभाव वर्तमान अर्थ व्यवस्था के वैषम्य से उद्बुद्ध सामाजिक तथा ऐतिहासिक चेतना के स्वाभाविक परिणाम के रूप मे अंकित हुआ है। विगत दो दशकों मे समाजवादी यथार्थवाद के आधार पर रचित उपन्यासो का अध्ययन पूर्व अध्यायो म किया जा चुका है, अत: सक्षेप मे ही उनका उल्लेख किया जा रहा है। राहुल सांकृत्यायन, यशपाल, अचल, रागेय राघव, अमृतराय, नागार्जुन, भैरवप्रसाद गुप्त इत्यादि समाजवादी यथार्थवाद के प्रमुख उपन्यासकार माने जाते हैं। यशपाल, रागेय राघव, भैरवप्रसाद गुप्त और अमृतराय की व्यक्तिगत सीमाएँ हैं। मार्क्सवाद के सिद्धान्तो को बौद्धिक स्तर पर ग्रहण करने पर भी वे मध्यवर्गीय सस्कारो से अपने को विरत नहीं कर सके हैं। 'गांधीवाद की शव-परीक्षा' करने वाले विचारक

१ आलोचना, अक २८, अक्टूबर, १९६३

२ आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी : नया साहित्य नये प्रश्न, पृष्ठ १४२-४३

उपन्यासकार यशपाल की बौद्धिकता पाश्चात्य दर्शनों का प्रतिफलन है। उनमें मार्क्स के अर्थवाद और फ्रायड के भोगवाद का समन्वय दिखलायी पड़ता है। गाँधीवाद के प्रति प्रतिक्रियावादी यशपाल मार्क्स पर आस्था रखते हुए फ्रायड के भोगवाद को स्वीकृति देते हुए जब दिखलायी पड़ते हैं तो आश्चर्य का उद्रेक स्वाभाविक है।

हिन्दी के समाजवादी वादसापेक्ष्य उपन्यास रूसी साम्यवादी उपन्यासों से प्रभावित कहे जाते हैं। अतः सोवियत उपन्यासों के आधारभूत सिद्धान्तों को समझ लेना उपयुक्त होगा। रूसी उपन्यास की आधार-पीठिका है वर्ग-संघर्ष, जो अन्ततः विजय में परिणत होगा। इस संघर्ष का स्वरूप विध्वंसात्मक ही नहीं, सर्जनात्मक भी है। वह प्रकृति की उन अवरोधक शक्तियों के प्रति विद्रोह करता है, जो मानव की मानसिक तथा सामाजिक प्रगति को कुंठित कर उसके प्रगति के मार्ग को अवरुद्ध करती हैं। डॉ० एस० मर्स्की ने आधुनिक सोवियत उपन्यास की विशेषताओं की ओर ध्यान दिलाते हुए लिखा है 'नये सोवियत उपन्यास की तीन मुख्य विशेताएँ हैं—उद्देश्यवादिता, सामाजिक समग्रता के साथ सगति और ज्ञान के प्रकार के रूप में कल्पनात्मक रचना की स्वीकृति। इनके सम्मिलन को सोवियत आलोचकों द्वारा सामाजिक यथार्थवाद कहा जाता है।"[1] हिन्दी के समाजवादी उपन्यासकारों की भी इस दिशा में निश्चित धारणाएँ हैं। यशपाल का मत है कि 'प्रगतिशील साहित्य का काम समाज के विकास के मार्ग में आनेवाली अन्धविश्वास, रूढ़िवाद की अड़चनों को दूर करना है। समाज को शोषण के बन्धनों से मुक्त करना है। कार्यक्रम में प्रगतिशील, क्रांतिकारी सर्वहारा श्रेणी का सबल साधन बनाना प्रगतिशील साहित्य का ध्येय है। काल्पनिक सुखों की अनुभूति के भ्रमजाल को दूर करके मानवता को भौतिक और मानसिक समृद्धि के रचनात्मक कार्य के लिए प्रेरणा देना, प्रगतिशील साहित्य का मार्ग है।"[2]

वर्ग संघर्ष का चित्रण

हिन्दी के समाजवादी यथार्थवाद उपन्यासों में मुख्यतः वर्ग-भेद के आधार पर सामाजिक विकासोन्मुख युग विशेष की वर्गीय स्थिति के चित्रण का प्रबल आग्रह है। आचार्य वाजपेयी के कथनानुसार 'नया मतवाद निम्न क्रान्तिकारी विचारों को सम्मुख रखता है समस्त साहित्य वर्गगत होता है, वर्गविशेष की संस्कृति का पोषण करता है और तत्कालीन सामाजिक यथार्थ का ही प्रतिबिम्ब हुआ करता है। (२) केवल वर्गहीन समाज का साहित्य ही सार्वजनिक होता है, शेष सम्पूर्ण साहित्य वर्गों की सीमा

---

१. डॉ० एस०मर्स्की . टेन्डेंसीज ऑफ द माडर्न नावेल,

२ देखिए—'बात बात में बात,' पृष्ठ २७

मे परिबद्ध रहता है। (३) राष्ट्रीय या मानवीय संस्कृति नाम की कोई वस्तु नहीं होती, केवल वर्गगत संस्कृतियाँ ही हुआ करती है।"[1]

सम्भवत यही कारण है कि हिन्दी के समाजवादी उपन्यासो में शोषितो और शोषको के विशिष्ट पहलुओं का चित्रण ही अधिकतर मिलता है। शोषितों के तीन प्रकार हिन्दी उपन्यासों मे मिलते है

(१) किसान या किसान मजदूर
(२) मजदूर
(३) नारी

नागार्जुन और भैरवप्रसाद गुप्त के अधिकाशत उपन्यासो का शोषित वर्ग किसान या किसान मजदूर है। सामाजिक रूढिग्रस्त नारी का शोषित चित्रण यशपाल, अचल, अमृतराय, नागार्जुन और भैरवप्रसाद गुप्त के उपन्यासो मे समाजवादी चेतना के परिवेश मे उभरा है। नागार्जुन और भैरवप्रसाद गुप्त के किसान जमींदार-संघर्ष पर आधारित उपन्यास जमींदारी उन्मूलन के बाद की कृतियाँ है, जिनका सामयिक राजनीतिक महत्व नगण्य ही कहा जा सकता है। किसान जमींदार-संघर्ष तो स्वतत्र भारत मे बीते युग की घटना बनकर रह गयी है। सैद्धान्तिक नारेबाजी से अधिक महत्व इनका नहीं माना जा सकता। राजा, महाराजा, जमींदार, ताल्लुकेदार के खोखले व्यक्तित्व, उनकी पतनोन्मुखता और हीन आकाक्षाओ से लेकर समाज द्वारा उपेक्षित पात्रो के विविध चित्र मिलते है। इनमे ब्रिटिश काल मे बुर्जुआ वर्ग की आपदाओं के बीच भी सामूहिक मानवीय चेतना के क्रमिक विकास का आभास अवश्य है। इस प्रगतिवादी दृष्टि ने शोषक वर्ग की वास्तविकता, उनके संघर्ष, स्वार्थ रक्षा के प्रयत्न, उनके अन्तर्विरोध को तथा निम्न वर्ग के जीवन चरित्र को अभिव्यक्ति दी।

नागार्जुन ने 'बलचनमा' और 'बाबा बटेसरनाथ' मे तथा भैरवप्रसाद गुप्त ने 'गङ्गा मैया' और सत्ती मैया का चौरा' आर्थिक वैषम्य के शिकार कृषक वर्ग की दयनीय दशा के करुण जीवन वृत्त के माध्यम से सर्वहारा वर्ग की वर्ग संघर्ष की भूमिका को रेखांकित किया है। वर्ग संघर्ष का चित्रण समाजवादी यथार्थवाद की एक सामान्य प्रवृत्ति है, जो अधिकाश उपन्यासो में मिलती है। भैरवप्रसाद गुप्त के 'मशाल,' अचल के 'चढती धूप,' राजेन्द्र यादव के 'उखडे हुए लोग' म मजदूर संघर्ष का अकन किया गया है। मजदूरो की आर्थिक विपन्नता, संघर्ष और संगठन के अनेक चित्र कुशलता के साथ उरेहे गए है। 'मशाल' के शकूर का विश्वास है कि रूस की राह ही जिन्दगी की राह है और इसके लिए पूँजीवाद के विरुद्ध श्रमिक संघर्ष अनिवार्य है।

---

१. आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी · नया साहित्य . नये प्रश्न, पृष्ठ ५५

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के शिकंजे में कसे वर्गबद्ध ये चरित्र स्वाभाविकता के अभाव में असंतुलित से हो गये हैं। मतवाद के पूर्वग्रह के कारण चरित्रों का सहज विकास नहीं हो सका है। प्रचारात्मक ध्येय को प्रमुखता प्रदान करने से कलात्मक पक्ष न्यून हो गया है। पात्र और घटनाएँ स्वाभाविक क्रम में न आकर वर्ग-संघर्ष के पूर्व निर्धारित क्रम में आती है और संस्कारगत जीवन को उच्छिन्न करने की चेष्टा करती हैं। कलात्मक दोष होने पर भी यह तो स्वीकार करना ही होगा कि यह सैद्धान्तिक रूप में मार्क्सवादी दलगत मान्यताओं का भली भाँति निर्वाह करता है। समाजवादी उपन्यासकारों का यान्त्रिक दृष्टिकोण उनके उद्देश्य की पूर्ति में कहाँ तक साधक है, यह एक विचारणीय प्रश्न है। प्रचार का प्रयोजन रसात्मकता का बाधक बनकर हृदय-स्पर्शी नहीं बन पाता। हिन्दी के ये उपन्यास समाजबोध तो कराते हैं, पर अपनी न्यूनताओं के कारण शाश्वत धरातल पर नहीं आ पाते। अतः राष्ट्रीय साहित्य की कोटि में परिगणित नहीं किये जा सकते।

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी का यह कथन सत्य ही है कि इतिहास को साहित्य ही राष्ट्रीय चेतना का अंग बनाता है। हमें अपेक्षा ऐसी रचना की है, जो तत्कालीन प्राणवत्ता को राष्ट्र की स्थायी निधि बना सके। यथार्थ बोध और वस्तुनिष्ठ दृष्टि प्रचार-कार्य कर सकती है, मानव गरिमा के विकास की सहायक नहीं बन सकती। कलाकृति सर्जना है, उत्पादन नहीं।[1] सच तो यह है कि हिन्दी के वाद-सापेक्ष राजनीतिक उपन्यासों में राजनीतिक सिद्धान्तों का उद्‌भावन सूक्ष्म प्रच्छन्न रूप से नहीं मिलता, जो उपन्यासकारों की कलाहीनता का ही सूचक है।

हिन्दी के समाजवादी यथार्थवाद उपन्यासों में सामाजिक चेतना के चित्रण सम्मुख व्यक्ति के वैयक्तिक चेतना को प्रायः विस्मृत कर दिया गया है। इस रूप में जिस साहित्य की सृष्टि होती है, उसमें समाज की आशा-आकांक्षाओं को ही अभिव्यक्ति मिल सकती है। किन्तु वस्तुतः यह मार्क्स की व्याख्या के प्रतिकूल जाता है। मार्क्स मानता था कि 'प्रत्येक मानव का एक दोहरा इतिहास होता है, क्योंकि वह एकबारगी एक ऐसा प्रतिनिधि भी है, जिसका एक सामाजिक इतिहास है तथा एक व्यक्ति भी, जिसका व्यक्तिगत इतिहास भी है। ये दोनों भी, चाहे उनमें कितना ही प्रत्यक्ष द्वन्द्व क्यों न दिखायी दे, एक इकाई है, क्योंकि सामाजिक इतिहास अन्ततः व्यक्तिगत इतिहास को प्रभावित करता है, किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि कला के क्षेत्र में भी सामाजिक स्वरूप व्यक्तिगत चरित्र पर हावी होता होगा।'[2] किन्तु हिन्दी के इन उपन्यासों में

१ आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी: आधुनिक काव्य-रचना और विचार

२ रेल्फ फाक्स : उपन्यास और लोक जीवन (अनु० नरोत्तम नागर), पृष्ठ १६

व्यक्ति का नहीं, अपितु उसकी वैयक्तिक कुंठाएँ ही महत्वपूर्ण मान ली गयी हैं। हम साहित्य और समाज के अविच्छेद्य सम्बन्ध को मान्यता देते हुए भी व्यक्ति की अपनी सत्ता का भी महत्व मानते हैं। अतः आनुपातिक रूप से व्यक्ति पक्ष एवं समाज पक्ष के संतुलन के औचित्य का समर्थन करते हैं। समाजवादी यथार्थवाद से अनुप्रेरित उपन्यासों में समाज निष्ठा के भावों के प्रचण्ड प्रवाह और कम्युनिस्ट सशक्त पात्रों के लघु व्यक्तित्व को देखकर आभास होता है कि साम्यवादी समाज में सर्वग्रासी सत्ता मनुष्य के व्यक्तित्व को शायद बचा ही न पायेगी। डा० भटनागर का भी कथन है 'समाजवादी यथार्थ चाहे समाज के चित्रण के लिए कितना उपयोगी हो चाहे उसमें नये सामाजिक नायकत्व की आदर्शवादी अतिरंजक कल्पना हो—वह मानवीय चारित्र्य की (उन) सूक्ष्म भंगिमाओं को उपस्थित नहीं कर सकता व्यक्तिगत जगत् के सूक्ष्म को इसी उपन्यासों में सामाजिक स्थूल पर बलि कर दिया गया है।'[1] महाभारत में भी महर्षि व्यास ने सारे गुह्यतर ज्ञान का सार 'न हि मनुष्यात् श्रेष्ठतरं हि किंचित्' (मनुष्य से बढ़ कर श्रेष्ठ और कुछ भी नहीं है।) बताया है।

समाजवादी यथार्थवाद एवं प्रेम

प्रेम के विविध सम्बन्ध एवं नारी समस्याएँ समाजवादी यथार्थवादी उपन्यासों में मुख्य वर्ण्य विषय के रूप में चित्रित हुई हैं। क्रान्तिकारी-साम्यवादी यशपाल का विचार दर्शन मार्क्सवाद निहलिस्ट-दर्शन और फ्रायड के समीकरण से निर्मित माना जाता है। मार्क्सवाद के सिद्धान्तों में आस्था होने पर भी उनके उपन्यासों में सैद्धान्तिक विरोधाभास भी मिलता है। जनक्रान्ति पर अडिग विश्वास होने पर भी वे मध्यवर्गीय पात्रों को अभिव्यक्ति देते हैं—सर्वहारा वर्ग को नहीं। निम्न मध्यवर्ग के पात्रों का उनके उपन्यासों में प्राय अभाव ही है। मार्क्सवाद मध्यवर्ग को मान्यता नहीं देता, किन्तु यशपाल और अमृतराय के पात्र मुख्यतया मध्यवर्ग के हैं। यशपाल के मध्यवर्गीय पात्रों के सम्बन्ध में यह ठीक कहा गया है कि 'ये पात्र सामन्ती एवं पूँजीवादी शोषण से मुक्ति एवं काम सम्बन्धों में निहलिस्ट दर्शन के दो सीमान्तों को जोड़ते हैं। इस परस्पर विरोध द्विमुखी दृष्टि के प्रतिपादन के लिए मध्यवर्गीय पात्रों का चुनाव किया गया है। उनके उपन्यासों में किसान पात्रों का अभाव है जो जन आन्दोलन का एक आवश्यक अंग है।'

मध्यवर्गीय पात्रों को लेकर फ्रायड के भोगवाद को अभिव्यक्त करने की प्रवृत्ति से यशपाल और अमृतराय में सामाजिक संघर्ष को स्थान की अपेक्षा यौन स्वच्छन्दता

---

१ डॉ० रामरतन भटनागर मूल्य और मूल्यांकन, पृष्ठ २२२-२३

का प्रसार अधिक है। फलत सैद्धान्तिक निष्कर्ष सहज स्वाभाविक न होकर आरोपित लगते हैं। इन उपन्यासो मे रोमास और साम्यवाद का समन्वय इस तरह हुआ है कि 'इस निष्कर्ष पर आना पडता है कि बिना प्रेम किये साम्यवाद की निष्णता नही प्राप्त हो सकती। साम्यवादी पात्रो को भ्रमर-वृत्ति का चित्रण स्वय साम्यवादियो ने किया है, अत उसे सत्य के निकट मानना अनुपयुक्त न होगा। यशपाल, जैनेन्द्र, अचल मन्मथ नाथ गुप्त अमृतराय के नारी पात्र आत्म-दान को, नारीत्व को समर्पित करने को सतत उत्सुक है। यदि यही साम्यवादी नारीमूर्ति है तो भारतीय सास्कृतिक धरातल पर उसे स्वीकार नहीं किया जा सकता। श्री मोतीसिंह के शब्दो मे 'इन्होने अपने उपन्यासो मे जिस जीवन और चरित्र का निरूपण किया उसकी एक उपलब्धि तो यह है कि वे पात्र किन्हीं विशेष परिस्थितियो मे पडकर कम्युनिस्ट सज्ञक प्राणी हो गये हैं और दूसरी उपलब्धि है कि यौनव्यापार का अवरोध और आकर्षण नये साहसिक कार्यों और कम्युनिस्ट पार्टी लक्ष्यो की प्राप्ति मे सहायक होता है। उनके उपन्यासो मे यौनवृत्ति का उभार अधिक है और समाजवादी यथार्थ कम।'[1]

जनतत्र की आलोचना

मार्क्स पूँजीवादी जनतत्रीय शासन-व्यवस्था को अनुपयुक्त मानता था और उसका कटु आलोचक था। उसका विश्वास था कि पूँजीवादी लोकतन्त्र मे जो निर्वाचन होता है, उसका अर्थ है कि श्रमिक अपने बुरे प्रतिनिधित्व के लिए किसी पूँजीवादी प्रत्याशी को, जिसे वह चाहता है, मत दे। दूसरे शब्दो मे पूंजीवादी जनतन्त्र एक आडम्बर और धोखा है। गांधी जी भी पूँजीवादी जनतन्त्र को सच्चा जनतन्त्र नहीं कहते थे। 'गोदान' मे मिर्जा खुर्शेद जैसे इसी को अभिव्यक्ति देते हैं

'मुझे अब इस डेमोक्रेसी मे भक्ति नही रही। जरा सा काम और महीनो की बहस। हॉ, जनता की आँख मे धूल झोकने के लिए अच्छा स्वाँग है। जिसे हम डेमोक्रेसी कहते है, वह व्यहार मे बडे बडे व्यापारियो और जमीदारो का राज्य है और कुछ नहीं। चुनाव मे वही बाजी ले जाता है, जिसके पास रुपये हैं। मेरा बस चले तो कौंसिलो मे आग लगा दूं।'

'उदयास्त' मे भी स्वातन्त्र्योत्तर स्थापित जनतत्र पर व्यग्य किया गया है : 'यह कैसा जनता का राज्य है ? यह कैसा जनतत्र है ? एक तरफ विश्व की जातियाँ नवोदित भारत को ओर उन्मुख हो रही हैं—दूसरी ओर भारत की एक आँख आँसू से तर है और दूसरी नशे मे लाल हो रही है। यह सब क्या है ?'

---

१ आलोचना, वर्ष ४, अक १, अक्टूबर १९५४ (लेख : साम्यवादी उपन्यास)

'हाथी के दाँत' के ठाकुर परदुमन सिंह, 'उखड़े हुए लोग' के देशबन्धु जैसे चुने हुए जन प्रतिनिधियों का चित्रण भी जनतन्त्र की असफलता को अभिव्यक्त करने के ध्येय से हुआ है। इसके विपरीत 'बगुले के पंख' का अपढ़, अछूत किन्तु तिकड़मबाज जुगनू है, जो किसी भी प्रकार की योग्यता न होने पर भी चुनाव जीत कर मंत्री बन जाता है। वस्तुतः यह दोष भी जनतन्त्र की शासन प्रणाली का है, जो दलीय स्थिति के आधार पर शासन का सूत्र अयोग्य हाथों में सौंप देता है। इसीलिए कहा गया है : 'गणतन्त्रों का एक भारी दोष यह है कि उनमें योग्यतम व्यक्ति को अधिकार नहीं मिलता। गुटा के प्रतिनिधि को अधिकार मिलता है। चाहे उसमें योग्यता हो या नहीं।'[1]

राजनीतिक सिद्धांत एवं साहित्यिक प्रक्रिया में भेद

हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासों के अनुशीलन से हम इस तथ्य पर पहुँचते हैं कि राजनीतिक सिद्धांत साहित्यिक प्रक्रिया में पड़कर कुछ भिन्न स्वरूप ग्रहण कर लेते हैं। मूलतः यह अन्तर राजनीतिक और साहित्यकार की स्वभावगत विशेषता है। इसका एक कारण तो शायद यह भी है कि राजनीतिक विशिष्ट सैद्धांतिक चिन्तन-प्रक्रिया से परिचालित होता है, जब कि साहित्यकार अनुभवगत जीवन का चित्रण करता है। इस दृष्टि से साहित्यकार जन-जीवन के अधिक निकट रहता है तथा उसका लक्ष्य अनुभूति से सिद्धान्तों का मूल्यांकन करना होता है। चिन्तन प्रक्रिया का यह मूल-भूत अन्तर है। राजनीतिक सिद्धान्त की उपादेयता राजनीतिक अधिकारों की प्राप्ति तक सीमित है, किन्तु साहित्यकार इन राजनीतिक अधिकारों के तल में निहित आर्थिक पहलुओं के आधार पर बनते बिगड़ते मानव रूपों की कल्पना यथार्थ के धरातल पर करने का प्रयास करता है। उदाहरणार्थ हम प्रेमचन्द के राजनीतिक उपन्यासों को लें। प्रेमचन्द-युगीन भारत में राष्ट्रीय चेतना अपने चरम उत्कर्ष पर थी। गाँधी जी के नेतृत्व में राष्ट्रीय कांग्रेस ब्रिटिश सत्ता से अहिंसक संघर्ष कर रही थी। प्रेमचन्द उपन्यास के माध्यम से इसी संघर्ष का चित्रण करना चाहते थे, किन्तु उनके उपन्यासों में कहीं भी यह संघर्ष प्रत्यक्ष रूप में अंकित नहीं हुआ, अपितु वे ब्रिटिश सत्ता के प्रतीक सामन्त-शाही नरेशों और जमींदारों, शासन व्यवस्था की प्रतीक पुलिस या म्युनिसिपैलिटि के विरुद्ध संघर्ष अंकित करते हैं। स्वातन्त्र्योत्तर-काल में भी नागार्जुन या भैरवप्रसाद गुप्त जमींदार और किसान का जो संघर्ष चित्रित करते हैं, उसे विद्रोह को अभिव्यक्त करने वाला प्रतीक ही मानना होगा, क्योंकि जमींदारी उन्मूलन अथवा रियासतों के विलयन

१. आचार्य चतुरसेन : बगुले के पंख, पृष्ठ २३६

के उपरांत संघर्ष की यह स्थिति इतिहास की वस्तु हो गयी है। वर्ग-संघर्ष की इस स्थिति के अभाव में ही शायद समाजवादी लेखक मध्यवर्गीय जीवन का संघर्ष चित्रित कर रहे हैं, यद्यपि मार्क्सवाद में इस वर्ग को मान्यता नहीं है। हम कह सकते हैं कि साहित्यकार क्रांतद्रष्टा होता है और भावी सम्भावनाओं के अनुरूप अपना मार्ग निश्चित करता है।

कुछ उपन्यासकारों ने विभिन्न विचारों को समन्वित कर एक नया दर्शन देने का प्रयास किया है। इनमें इलाचन्द्र जोशी और आचार्य चतुरसेन का उल्लेख विशेष रूप से किया जा सकता है। इलाचन्द्र जोशी ने व्यक्ति और समाज की समस्याओं का हल मनोविश्लेषणवादी ढंग से करने का प्रयत्न किया है। इस सन्दर्भ में डॉ० चण्डीप्रसाद जोशी का यह कथन उद्धृत करना ही पर्याप्त होगा

'इलाचन्द्र जोशी का विचार दर्शन आधुनिक युग की बौद्धिक अराजकता का परिणाम है। उन्होंने प्रतिज्ञा कर ली है कि वह भी दीनइलाही धर्म की स्थापना अवश्य करेंगे। अन्ततः 'जिप्सी' उपन्यास में वह 'जन संस्कृति-समन्वय केन्द्र' की स्थापना भी करते हैं। वह गांधीवाद, समाजवाद, सर्वोदयवाद, फ्रायडवाद, अध्यात्मवाद, व्यक्तिवाद आदि (यदि कोई 'वाद' और निकल आया तो उसे भी) सभी का समन्वय करके क्रांति करना चाहते हैं। उस क्रांति का नेतृत्व एकमात्र निम्न मध्य वर्ग की नारी कर सकती है, क्योंकि उसका सर्वाधिक शोषण होता है। अब देखिए कि जोशी जी ने शोषण का कौन सा सूत्र पकड़ा। वह निम्न मध्यवर्गीय नारी जमींदारी आदि शोषक वर्ग की यौन-वासना, यौन अनाचार से पीडित है। अन्ततः जोशी जी आकाशचारी की तरह गांधीवाद तथा समाजवाद से उतरकर काम वासना की गुफा में लौट आते हैं और उस गुफा से इलाचन्द्र जी क्रांति का संचालन करते हैं।'[1] कोई विचारधारा अपने में पूर्ण नहीं होती, अतः विभिन्न विचारधाराओं का समन्वय उचित धरातल पर होना हम अनुचित नहीं मानते हैं।

आचार्य चतुरसेन के 'उदयास्त' में और वृन्दावनलाल वर्मा के 'अमरबेल' में भी गांधीवाद एवं समाजवाद के समन्वय से सहश्रम-सहयोग का सिद्धांत प्रतिपादित किया गया।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि एक ओर जहाँ उपन्यास सामयिक राजनीतिक सिद्धांतों का मंडन या खंडन करते हैं, वहाँ नूतन मार्ग का संकेत देना भी नहीं भूलते।

●○○

---

१ डॉ० चण्डीप्रसाद जोशी हिन्दी उपन्यास समाजशास्त्रीय विवेचन, पृष्ठ ४५१

अध्याय ११

हिन्दी राजनीतिक उपन्यासों का वैचारिक एव साहित्यिक प्रदेय तथा सम्भावनाएं

> राजनीति का आग्रह
> मानव मूल्य की दृष्टि से
> नारी-समस्या
> काम समस्या
> राष्ट्रीय दृष्टि से
> अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से
> क्षेत्र विस्तृति
> जीवन की व्याख्या
> मानव मूल्य की नूतन मान्यताएँ
> आभिजात्य से सामान्य की ओर
> क्रान्ति की प्रेरणा
> व्यक्ति और समाज
> यथार्थ और स्वानुभूति-दर्शन
> पुनर्निर्माण सम्बन्धी दृष्टिकोण
> शैक्षणिक मूल्य
> लोकतन्त्रीय समाजवाद एव भावी सम्भावनाएं

राजनीतिक तत्वों का आग्रह

उपन्यास के जनतन्त्रीय साहित्यिक विधा होने के कारण उसमे जीवन का कोई अंग निषिद्ध नहीं है। उसकी क्षेत्र-विस्तृति अत्यन्त व्यापक है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का कथन सत्य ही है कि 'इस युग मे बड़ा भारी विचार-मंथन चल रहा है। विभिन्न विज्ञानों ने मनुष्य की अनेक पुरानी मान्यताओं और जीवन मूल्यों को नये रूप मे उपस्थित करने मे सहयोग दिया है। उपन्यास-साहित्य में यह विचारगत उथल पुथल सर्वाधिक क्रियाशील है।'[1] सच तो यह है कि जीवन की विशालता के अभिव्यंजन मे उपन्यास की सफलता असंदिग्ध है। 'घर की चहारदीवारी के अन्दर का रुदन हास्यमय सीमित पारिवारिक जीवन, तत्कालीन और तद्देशीय परिस्थितियों से संघर्ष करते हुए मनुष्य का सामाजिक जीवन, अतीत के अन्धकार मे विलुप्तप्राय देशीय जीवन, विचारों के विचित्र संसार मे जीनेवाले मनुष्य का संघर्षमय आन्तरिक जीवन, सबको उपन्यास मे अंगीकार मिल सकता है।'[2] मानवीय रुचियों के वैविध्य से उपन्यास भी विविधता-मय है। वर्जीनिया वुल्फ के शब्दों मे कहा जा सकता है कि —"The proper stuff of fiction does not exist, everything is the proper stuff of fiction" राजनीतिक विशेषता से युक्त राजनीतिक उपन्यास राजनीतिक घटनाओं एव सिद्धांतों से प्रभावित मानव-समाज की एव जीवन की व्याख्या करते हुए जीवन के विविध पक्षों के सत्य की रसात्मक अभिव्यक्ति करता है।

इस तरह राजनीतिक उपन्यास अपने कलेवर मे राजनीति, मानव, समाज, राष्ट्र और विश्व के क्षितिजों को एक विशिष्ट दृष्टिकोण से देखने का प्रयास करता है। वह सम सामयिक राजनीति के परिप्रेक्ष्य मे राष्ट्रीय जागरण का सहयोगी बनकर राष्ट्रीय राजनीतिक समस्याओं का ऐतिहासिक आर्थिक पृष्ठभूमि पर विश्लेषण कर निर्देश दे जनमत को प्रबुद्ध करता है। राजनीतिक परिपार्श्व मे बदलते हुए मानव मूल्यों का प्रतिस्थापन करता है और राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय भूमिका पर व्यापक राष्ट्रीय एकता, विश्व बन्धुत्व, मानवतावाद आदि का जयघोष करता है।

अपने सम्पूर्ण सामाजिक परिवेश मे मानव राजनीतिक उपन्यास का ऐसा उव-र्रक है, जो उसे पुष्ट बनाकर स्वयं पुष्ट होता है।

---

१ आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी : 'हिन्दी उपन्यास-साहित्य का अध्ययन'

२ डॉ० गणेशन : हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन पृष्ठ २६-२७

हिन्दी के राजनीतिक उपन्यास का जन्म भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन की देन है। सन् १९२१ में गाँधी जी के नेतृत्व में राष्ट्रीय आन्दोलन ने एक नया रूप लिया और उसके एक-दो वर्ष बाद ही हम प्रेमचन्द के 'प्रेमाश्रम' को राष्ट्रीय आन्दोलन के सहयोगी के रूप में पाते हैं। तब से आज तक राजनीतिक उपन्यास राष्ट्रीय जागरण में एक विशिष्ट भूमिका का निर्वाह कर रहे हैं। वे जनमत-निर्माण के वाहक के रूप में अपने दायित्व का पालन कर विभिन्न राजनीतिक समस्याओं का निर्देश देते आये हैं।

राजनीतिक दृष्टि से उनका महत्व सम-सामयिक ऐतिहासिक घटनाओं का आकलन भी रहा है, जो ऐतिहासिक नीरसता का परिमार्जन भी करता है। प्रेमचन्द के उपन्यासों में गाँधी-युग के राष्ट्रीय आन्दोलनों को यथायोग्य महत्व मिला है। प्रताप-नारायण श्रीवास्तव कृत 'बयालीस,' गुरुदत्त कृत 'स्वाधीनता के पथ पर,' अनन्त गोपाल शेवडे कृत 'ज्वालामुखी' में बयालीस की क्रांति की ओर यशपाल कृत 'झूठा सच' और देवेन्द्र सत्यार्थी कृत 'कठपुतली', देश विभाजन की सजीवता अतुलनीय है। उपर्युक्त उपन्यासों में सन् १९४२ के आसपास का राष्ट्रीय वातावरण लिपिबद्ध है। मन्मथनाथ गुप्त ने स्वाधीनता संग्राम की पृष्ठभूमि पर जिस उपन्यास-सप्तक की रचना की है, उसमें सन् १९२१ से १९४७ तक के राजनीतिक भारत की झाँकी प्रस्तुत की गयी है।

राजनीतिक घटनाओं और वातावरण ही नहीं, अपितु राजनीतिक सिद्धांतों के अनुसार भी राजनीतिक उपन्यासों की रचना कर पाठकों के राजनीतिक ज्ञान में अभि-वृद्धि की गयी है। इस दृष्टि से हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासों को उनकी राजनीतिक विचार-धारा के अनुसार निम्नलिखित श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है : समा-जवादी यथार्थवादी उपन्यास गाँधीवादी, उपन्यास, सर्वोदयी भावना से युक्त उपन्यास एवं सम्प्रदायवादी उपन्यास। इनकी चर्चा पिछले अध्याय में की जा चुकी है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि भारतीय स्वाधीनता-संग्राम से सम्बन्धित ब्रिटिश शासन और आन्दोलन के मध्य भारतीय स्वशासन का प्रगतिशील इतिहास भी इन उपन्यासों का एक विशिष्ट विषय रहा है। साथ ही भारतीय राजनीतिक दलों और उनकी गतिविधियों की स्पष्ट झलक भी इनमें दृष्टिगत होती है।

मानव-मूल्य की दृष्टि से

हिन्दी के राजनीतिक उपन्यास-साहित्य में अन्तरात्मा की खोज का अभाव है। राजनीतिक सिद्धांतों के आदर्शों के अनुकूल मानवीय मूल्यों का निर्धारण व्यापकता के अभाव में एकांगी हो जाता है। मानवीय मूल्यों में सर्वाधिक गौरवमयी अन्तरात्मा की खोज है। सार्वभौम मानवीय मूल्य ही कला का अभीष्ट होना है। उदारता, सहिष्णुता, न्याय, त्याग, तप, संयम, स्नेह आदि मनोभावों के सश्लिष्ट चित्रण कला को रागात्मि

व्तता वृत्ति प्रदान करते है। मानव मात्रकी अभ्युदय-कामना को लेकर चलने वाली कला में देश, काल और भाषा की भावना तिरोहित हो जाती है। उसमें प्रतिष्ठित समानता, स्वातन्त्र्य, विश्व-बन्धुत्व, जनक्रांति आदि के आदर्श युग-युग और देश-देश के हो जाते हैं। दूसरे शब्दों मे मानवीय सत्य ही कला को विश्वव्यापकता प्रदान करते हैं और मानवीय वास्तविकता ही कला का आधार है—भले ही वह वास्तविकता स्थूल हो या सूक्ष्म। मानवीय मूल्यों का आधार पाकर ही सौन्दर्य की भावना व्यापक होती है।

हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासों मे मतवाद विशेष के आधार पर मानव मूल्यों का प्रतिष्ठापन एकांगी ही कहा जा सकता है। सिद्धांतों के कारण उनका क्षेत्र सीमाबद्ध हो जाता है और वह अपनी विशालता को प्राप्त करने मे असमर्थ रहता है। कहा जा सकता है कि इन उपन्यासों मे स्वानुभूति—पूर्ण तात्विक दर्शन या मानव की मानवता का विश्लेषण करने वाली दृष्टि का अभाव है, जिससे जीवन की स्पष्टता और सजीवता का अंकन नहीं हो सका है।

सामाजिक दृष्टि से

हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासों में देशान्तर्गत अनेक सामाजिक समस्याओं की ओर भी ध्यान आकर्षित कराया गया है। ऐसी समस्याओं में नारी समस्या, काम-समस्या, आर्थिक एवं जातीय समानता, अछूतोद्धार आदि प्रमुख हैं, जो राजनीतिक के परिप्रेक्ष मे प्रस्तुत की गयी हैं।

नारी-समस्या

सभ्यता के विकास के साथ-साथ नारी के चेहरे भी बदलते रहे है और हिन्दी उपन्यासों मे नारी-चित्रण के चित्र बदलती हुई सामाजिक स्थिति के ही अनुरूप है। प्रेमचन्दोत्तर काल में बाल-विवाह, अशिक्षा, पर्दा-प्रथाएँ, दहेज, वैधव्य, वेश्यावृत्ति की समस्याएँ प्राचीन आदर्शों के आग्रह से सहज स्वाभाविक समाधान नहीं प्राप्त कर रही है। नारी उस युग मे सहानुभूति का पात्र थी और उसे समानाधिकार प्राप्त न था। यही कारण है कि उपन्यासकारों ने पृथक परिवार या स्वच्छन्द प्रेम का समर्थन अपने उपन्यासों मे नहीं किया। नारी-समस्याएँ पुरुष की दया पर आश्रित थीं। गाँधी युग में उनकी स्थिति म परिवर्तन हुआ और ऐसे आदर्श स्वीकृत हुए, जिनमें प्राचीन और नवीन का, पूर्व और पश्चिम दर्शन का एक विवेकपूर्ण समन्वय था। यही समन्वय देश के सामाजिक राजनीतिक जीवन का मेरुदण्ड बना। गाँधी जी ने बताया कि स्त्री-पुरुष एक-दूसरे के पूरक हैं। स्त्री-पुरुष की गुलाम नहीं—सहधर्मिणी, अर्द्धांगिनी और मित्र है। वे मानते थे कि

नारी-जीवन को अब भी सही दिशा न मिली तो समाज का आधा भाग प्रगति से वंचित रह जायगा। प्रेमचन्द-युग में नारी-समस्या संबंधी सुधार की प्रवृत्ति क्रांति से भिन्न होते हुए भी परिवर्तन को आवश्यक मानती थी और समाज-व्यवस्था में परिवर्तन से भी अधिक हृदय परिवर्तन में आस्था रखती थी। यही कारण है कि प्रेमचन्द ने अपने युग की नारी समस्याओं का समाधान गांधीवादी विचारधारा के अनुसार ही देने का प्रयास किया है। पर्दा प्रथा, अशिक्षा दहेज प्रथा, बाल विवाह, अनमेल विवाह और समानता और स्वतन्त्रता आदि नारी समस्याओं का चित्रण प्रेमचन्द के उपन्यासों में मिलता है जिन पर गाँधी जी के विचारों की गहरी छाप है। गाँधी जी के समान उन्होंने प्रेम को नारी की सबसे बड़ी शक्ति माना और उसकी महत्ता त्याग, सेवा और पवित्रता में प्रतिष्ठापित की। नारी की वैयक्तिक स्वतन्त्रता और आर्थिक स्वतन्त्रता और आर्थिक स्वतन्त्रता की समस्या पर विचार करते हुए उन्होंने पाश्चात्य जीवन का अंधानुकरण करने वाली उच्छृंखल नारी को हेय चित्रित किया है। राष्ट्रीय आन्दोलन से प्रभावित नारी-जागरण का सहानुभूतिक चित्रण भी उनके उपन्यासों की विशिष्टता है जो समाजिक संघर्ष एवं राजनीतिक आन्दोलनों में संलग्न नारियों के मनोहारी चित्र प्रस्तुत करते हैं।

प्रेमचन्दोत्तर काल में नारी-समस्याओं को नवीन दृष्टिकोण से विचार किया गया है। इस काल में एक ओर स्वराज्य की सामाजिक आर्थिक व्याख्या के माध्यम से समानता और स्वतन्त्रता के अधिकार सर्वमान्य हो चले थे तो दूसरी ओर मार्क्सवादी दर्शन के कारण समाज में आधारभूत परिवर्तन की भूमिका निर्मित होने लगी। इसी व्यापक धरातल पर नारी जीवन की सामाजिक आर्थिक समस्याओं पर विचार किया गया और नैतिकता के नये मूल्य प्रतिष्ठापित हुए। फ्रायड के प्रभाव के कारण नारी के यौन सम्बन्धों का विश्लेषणात्मक विवेचन भी किया जाने लगा। नारी का क्षेत्र परिवार से सामाजिक एवं राजनीतिक पीठिका तक विस्तृत हुआ।

प्रेमचन्दोत्तर काल के राजनीतिक उपन्यासों में समाजवादी प्रगतिवादी उपन्यासकारों ने आतंकवादी-साम्यवादी आन्दोलनों की पृष्ठभूमि में नारी के अधिकारों की घोषणा की और उसकी समाजिक आर्थिक, यहाँ तक कि यौनस्वतन्त्रता को अभिव्यक्ति दी। यशपाल ने नारी की नैतिकता पर मार्क्सवादी ढंग से विचार किया है। उनके मत में नैतिकता समाज व्यवस्था पर आधारित रहती है और समाज व्यवस्था में परिवर्तन के साथ नैतिक मूल्यों में परिवर्तन आवश्यक है। नागार्जुन के 'रतिनाथ की चाची,' 'नयी पौध' और 'उग्र तारा' अमृतराय के 'बीज' भैरवप्रसाद गुप्त के 'गंगा मैया' व 'सत्ती मैया का चौरा' और राजेन्द्र यादव के 'उखड़े हुए लोग' आदि उपन्यासों में नारी समस्याओं का निदान मार्क्सीय दृष्टिकोण से किया गया है।

यशपाल ने अपने सभी उपन्यासों में नारी समस्या का चित्रण किया है। उनके

उपन्यासों में नारी के दो रूप उभरे हैं—एक तो वह, जिसमें नवीन धारा से सचालित पात्र हैं और दूसरा वह, जो परम्परावादी विचारधारा को अपनाये हुए हैं। 'दादा कामरेड' की शैल, 'पार्टी-कामरेड' की गीता, 'देशद्रोही' की यमुना व चदा प्रगतिवादी नवीन धारा की प्रतिक हैं। परम्परावादी विचारधारा के अनुसार विकसित होने वाले पात्र है 'देशद्रोही' की राज, नर्गिस, गुलशन, और दादा कामरेड' की यशोदा। आर्थिक रूप से मनुष्य की आश्रित नारी के क्षण-क्षण बदलते रूप के चित्रण का प्रतीक हैं 'मनुष्य के रूप' की सीमा। यशपाल की नारी अत्यन्त दुर्बल, कामुक और वासना की मूर्ति के रूप मे चित्रित हुई है। इसके विपरीत नागार्जुन के नारी पात्रों में दृढ़ता का अकन हुआ है। उसकी उग्रतारा उर्फ उगनी एक अत्यन्त सशक्त नारी पात्र है।

काम-समस्या और उसका चित्रण

मार्क्स और फ्रायड के सिद्धान्तो ने काम-समस्या को नये ढग से समझने को बाध्य किया। यशपाल के शब्दों मे पूँजीवादी समाज मे नारी भोग विलास की वस्तु है, जिस पर पुरुष का पूरा आधिपत्य है। उसका अपना कोई अस्तित्व और गौरव नहीं है। उसका अस्तित्व किस की पुत्री, श्रीमती और माता बनने मे है।'[1] मार्क्सवाद मानता है कि जब तक नारी आर्थिक रूप से पुरुष के आधीन है और उस पर आश्रित है, उसकी स्थिति पुरुष के समान कभी नहीं हो सकती। समाज मे पुरुष के समान अधिकार पाने के लिए उसका आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होना आवश्यक है।[2]

इसी समाजवादी आधार पर भारतीय नारी परिवार और समाज के घेरे से पृथक् हो स्वच्छन्दता के मार्ग पर आरूढ़ हुई। नारी की स्वतन्त्रता और यौन सम्बन्धो को एक नयी भूमिका सामने आयी। नारी-समस्या को सामाजिक रूप मे देखने के अतिरिक्त मनोवैज्ञानिक आधार पर भी उसका विश्लेषण किया जाने लगा। यौन पक्ष एक शाश्वत समस्या है, जो व्यक्ति और समाज के ढाँचे को सदैव प्रभावित करती आयी है। फ्रायड के सिद्धांतों ने यौन पक्ष के विश्लेषण को गति दी और विगत दो दशकों मे हिन्दी उपन्यासो मे यौन आकर्षण से उत्पन्न वैयक्तिक और सामाजिक संघर्ष को नयी भावभूमि मिली। राजनीतिक उपन्यासों में यौन-पक्ष के चित्रण से सामाजिक मूल्य की व्याख्या तो कुछ अंशों तक समझ मे आती है, किन्तु पात्रों के यौन पक्ष का वैयक्तिक विश्लेषण वर्ण्य वस्तु मे विशेष सहायक प्रतीत नहीं होता। चरित्र के एकान्तिक स्वरूप के विश्लेषण मे उनका सामाजिक पक्ष दुर्बल हो उपन्यास के सामाजिक-राजनीतिक मूल्य को सदिग्ध बनाता है। यौन पक्ष के असतुलन के कारण कभी-कभी लगता है

१. यशपाल बात-बात में बात, पृष्ठ ५५
२ यशपाल : चक्कर क्लब, पृष्ठ ८६

कि प्रेम की उलझन और वासना के विस्फोट के अतिरिक्त इन उपन्यासो मे जीवन ही नहा है।

हिन्दी के राजनीतिक अथवा अर्धन राजनीतिक उपन्यासो म यौन पक्ष सर्व प्रथम जैनेन्द्र के उपन्यासो म मिलता है। उनके 'सुखदा' और 'विवर्त' के पात्रो का सामाजिक जीवन यौनाक्रात है। 'विवर्त' के जितेन के जीवन की गति उसकी काम अभुक्ति की प्रतिक्रिया है। दमित कामवृत्ति के वशीभूत हो वह क्रातिकारी जीवन अपना कर आत्म-तृप्ति का मार्ग ढूँढता है।

यथार्थ की भूमिका पर यौन पक्ष को लेकर व्यभिचार का चित्रण भी अनेक राजनीतिक उपन्यासो म मिलता है, वस्तुत जिसकी उपन्यास में कोई उपादेयता नहीं है। मन्मथनाथ गुप्त के राजनीतिक उपन्यासो म क्रातिकारियो की नग्नवादी विलास वृत्तियाँ इसी श्रेणी म अभिहित की जा सकती है। हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासो मे न जाने क्यो क्रातिकारियो को अत्यधिक कामुक व्यक्ति के ही रूप म चित्रित किया गया है। मन्मथनाथ गुप्त के अतिरिक्त जैनेन्द्र, अज्ञेय, इलाचन्द्र जोशी के उपन्यासो के क्रातिकारी पात्र व्यभिचार वृत्तियो के ही शिकार हैं और अश्लीलता की व्यजना करते हैं।

स्वातत्र्योत्तर राजनीतिक उपन्यासो मे तो जैसे यौन-वर्जनाओ को स्वच्छन्द रूप से उपन्यस्त करना शैली का अग बन गया है। यह सत्य है कि यौन सम्बन्ध अपने म अश्लील नहीं होते किन्तु यदि सत्य के उद्घाटन की मूल प्रेरणा न होकर केवल स्थूल तथ्यो के आधार पर विगर्हणाओ और निम्नताओ का ही वर्णन हो तो हम उसे अश्लील और त्याज्य मानने को विवश है। इसका कारण मात्र यह है कि अश्लीलता विषय म नही, अभिव्यजना म रहती है, ऐसा हम मानते हैं। इस भाति हम देखते है कि भारतीय नैतिकता का विघटन नये उपन्यासो का एक पक्ष है। भारतीय परिवार के स्वस्थ चित्रण का अभाव भी इन उपन्यासो मे दृष्टिगत होता है, जिसका प्रमुख कारण स्वच्छन्दता का आग्रह ही है। अच्छा होगा कि उपन्यासकार इस तथ्य को समझे कि वासना की स्वच्छन्दता से क्रांति का मार्गसकीर्ण ही होता है और उसमे शक्ति नही, दौर्बल्य भाव की अभिवृद्धि होती है।

यह सच है कि वर्तमान राजनीतिक उपन्यासो मे सामाजिक परिप्रेक्ष म समाज वादी विचारधारा की जमकर वकालत की जा रही है। किन्तु उनकी विचारधाराएँ यथार्थ के निकट होते हुए भी जनता को सदेश नही दे पातीं, क्योकि भारतीय मानस प्राचीन नैतिकता, धर्मान्धता, त्याग और तपस्या और पाप-पुण्य की भावना, प्रारब्ध-वादिता आदि के प्राचीन किन्तु दृढ सस्कारो को अपने से विलग नहीं कर सका है। कहा जाता है कि विगत अर्द्ध शताब्दी मे जो सामाजिक राजनीतिक क्रान्तियाँ हुई हैं,

उन्होंने यथार्थवाद को तो प्रतिष्ठित किया, किन्तु इस ओर ध्यान नहीं दिया है कि यथार्थ की वास्तविक सफलता किसी आदर्श के निर्माण में ही है। दूसरे शब्दों में समाज अभी तक अपनी उन्नति का यथार्थ मार्ग निश्चित नहीं कर सका है। स्थूल रूप से इन उपन्यासों में नवराष्ट्र के निर्माण तथा जीवन के सम्पूर्ण गौरव की प्रतिष्ठा अभी इन उपन्यासों में होनी शेष है।

राष्ट्रीय दृष्टि से

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के उपरान्त राष्ट्र में अनेक समस्याएँ उठ खड़ी हुई है और जो राष्ट्रीय विकास के मार्ग की बाधक है। प्रान्तीयता, साम्प्रदायिकता, भाषा तथा जात-पाँत के भेद भाव कुछ ऐसे महत्वपूर्ण प्रश्न हैं, जो राष्ट्रीय एकता के लिए घातक सिद्ध हो रहे हैं। राष्ट्रीय एकता देश की स्वाधीनता का अभिन्न अंग है। किसी भी प्रजातांत्रिक राष्ट्र में विभिन्न प्रश्नों पर राजनीतिक मतभेद हो सकते हैं और जिनका आपसी तौर पर निराकरण भी हो सकता है, किन्तु ऐसे प्रश्नों को दुराग्रह से राजनीतिक बाना पहनाना राष्ट्रीय स्वाधीनता के लिए खतरा उत्पन्न करता है।

हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासों का योगदान, इस दृष्टिकोण से सराहनीय रहा है। राष्ट्रीय एकता को छिन्न-भिन्न करने वाले तत्वों का उन्होंने कभी समर्थन नहीं किया। केवल गुरुदत्त के उपन्यासों में हिन्दुत्ववादी राष्ट्रीयता के समर्थन से धर्मनिरपेक्षता के सिद्धांत की अवहेलना आवश्यक मिलती है। उनके कतिपय उपन्यासों में सम्प्रदायवादी विचारों की गूँज राष्ट्रविरोधी ही कही जायगी।

एक विशाल राष्ट्र होने के कारण भारत अनेक जातियों, धर्मों, संस्कृतियों और भाषाओं का संगम है। इतना होने पर भी राष्ट्रीय इतिहास, सांस्कृतिक परम्परा और अर्थ व्यवस्था एक सूत्र में बंधी है और दृढ है। स्वाधीनता के बाद हमारा धर्म निरपेक्षता का सिद्धांत राष्ट्रीय एकता को सुदृढ बनाता है। वस्तुत वह हमारी राष्ट्रीयता का अङ्ग है। कुछ धर्मान्ध और संकुचित विचार के व्यक्ति राष्ट्रीय एकता को भङ्ग करने के लिए साम्प्रदायिक द्वेष-भावना को यदा-कदा भड़काने का प्रयत्न करते हैं। ब्रिटिश शासन-काल में साम्प्रदायिक भावना का बीजारोपण हुआ और उन्होंने इसकी जड़ें इतनी मजबूत कर दी थी कि परिणामत देश का विभाजन हुआ।

हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासों में साम्प्रदायिक एकता का विस्तृत चित्रण मिलता है। प्रेमचन्द ने इस दिशा में मार्गदर्शन का कार्य किया। प्रतापनारायण श्रीवास्तव के 'बयालीस,' 'विष्णुप्रभाकर के 'निशिकान्त,' देवेन्द्र सत्यार्थी के 'कठपुतली,' यशपाल के 'झूठा सच' आदि अनेक उपन्यासों में साम्प्रदायिक विद्वेष के कारणों और

परिणाम के चित्रण के माध्यम से साम्प्रदायिक एकता के प्रतिष्ठापन को महत्व दिया दिया है।

गांधीवादी उपन्यासों में तो इस समस्या को अत्यधिक महत्वपूर्ण ढंग से उठाया गया है। इन उपन्यासों के अध्ययन से यह तथ्य प्रकट होता है कि संकीर्ण विचारों से जो तनाव पैदा होता है, वह राष्ट्रीयता को धक्का पहुँचाता है। प्रत्येक क्षेत्र की अपनी समस्याएं और आकांक्षाएं हो सकती हैं, पर राष्ट्रीय हित सबके ऊपर है। फूट और विघटन की प्रवृत्तियाँ सामाजिक और सांस्कृतिक दासता की सूचक हैं और उन्हें प्रोत्साहित करना राष्ट्र हित में नहीं है।

इन राजनीतिक उपन्यासों में अलगाव की प्रवृत्ति, जात-पात, प्रान्तीयता और भाषावाद का उल्लेख भी प्रसंगानुसार आया है, किन्तु साम्प्रदायिक विद्वेष की तरह उपर्युक्त प्रवृत्तियों को राष्ट्रीय एकता के विघातक तत्वों के रूप में ही चित्रित किया गया है। इस दृष्टिकोण से उपन्यासकारों ने राष्ट्रीय समस्याओं से अवगत कराते हुए राष्ट्रीय हित को ही सर्वोपरि माना है।

मूलभूत भ्रष्टाचार की भावना का विस्तृत चित्रण भी राजनीतिक उपन्यासों में राष्ट्रीय समस्या के रूप में ही अंकित किया गया है। वस्तुतः आधुनिक युग में भ्रष्टाचार किसी भी देश के लिए अभिशाप है, जो राजनीतिक विचार न होने पर भी राष्ट्र की गम्भीरतम समस्या है। इधर प्रशासन ने भी इस ओर ध्यान देना शुरू किया है। हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासों में कांग्रेसी नेताओं, व्यापारी वर्ग और शासकीय कर्मचारियों के भ्रष्टाचारों की गाथाओं से पृष्ठ के पृष्ठ रँगे हुए हैं। चतुरसेन शास्त्री के 'बगुले के पंख,' अनन्तगोपाल शेवडे के 'भग्न मन्दिर,' यशपाल के 'झूठा सच' अश्क जी के 'बड़ी बड़ी आँखें' आदि उपन्यास सत्तादल और प्रशासन में फैले भ्रष्टाचार का पर्दाफाश करते हैं। सारांशतः आधुनिक उपन्यासों का राजनीतिक दृष्टिकोण सामन्तवाद, पूँजीवादी शोषण के साथ ही-साथ अवसरवादी नेता-वर्ग, व्यापारी वर्ग और कर्मचारी-वर्ग के भ्रष्टाचार के विरुद्ध अधिकांशतः जिहाद करता है और गरीब मजदूर जनता का नये उत्थान का संबल देकर नये समाज के नवोदय के स्वप्नों में व्यस्त है।

अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से

मानवता और विश्व शांति के प्रति साहित्यकार का सामान्य उत्तरदायित्व माना गया है। साहित्य मानव सम्बन्धों में साम्यमयी स्थिति का प्रतिष्ठापन करता है। इस अर्थ से ही वह मानव भावों की व्यवस्था करता है। वह प्रयास करता है कि मानव-मानव के पारस्परिक सम्बन्धों में सुधार हो, जिससे देश में और देश के बाहर भी

हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासो मे अन्तर्राष्ट्रीय धरातल अत्यन्त सतही है। इने-गिने उपन्यासो मे—राष्ट्रीय आन्दोलन, विशेषत बयालीस की क्रांति के प्रसग मे अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओ की अभिव्यक्ति अवश्य मिली है, किन्तु वह भी दाल मे नमक जैसी ही है। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की गूँज इन उपन्यासो मे सीमित रूप मे ही आ सकी है।

भावात्मक रूप से मानवतावाद की जो व्याख्या की गयी है, वह अवश्य ही *अन्तर्राष्ट्रीय क्षितिज के अनुरूप है। गाँधीवाद मे भारतीय दर्शन, निष्ठा और जीवन के* जिन ऊँचे शाश्वत ध्येय का समावेश है, वह वस्तुत जन-मानस के अभावो की पूर्ति का दर्शन है। इसका अन्तर्राष्ट्रीय विकास मानवता के विकास और सद्भावना मे निहित है, जो उपन्यासो मे अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति के परिपार्श्व मे उपन्यास का विषय बन सकता है। हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासकारो को जो अभी राष्ट्रीय धरातल से आगे नही बढ सके है, इस ओर ध्यान देना चाहिए।

क्षेत्र-विस्तृति

आधुनिक सभ्यता की देन के रूप मे उपन्यास बाह्य जीवन की आवश्यकता को समग्र रूप मे प्रस्तुत करने वाली विधा है। उसने मनुष्य के क्रिया-कलापो को चित्रित करते समय यह स्पष्ट रूप से बतलाने का प्रयास किया है कि किसी चरित्र के जीवन मे घटित होने वाले कार्य व्यापारो को गति देने वाला वह जीवनोद्देश्य है, जिसके लिए मानव जी रहा और मर रहा है।[1] उपन्यास राजनीति से प्रभावित युग की नयी अभि-*व्यक्ति का वह तूतन रूप है, जो साधारण जन-जीवन को सचालित शक्ति बनने की* दिशा मे अग्रसर है। विगत अर्द्ध शताब्दी मे विश्व के रगमच मे विस्मयजनक परिवर्तन हुए है। राजनीतिक क्षेत्र मे सामन्तवाद के पराभव और श्रमिक शक्ति के विकास से सामान्य व्यक्ति का महत्व बढा है। प्रजातत्र और समाजवाद के विस्तार से जीवन-दर्शन और विचारणा के क्षेत्र मे आमूल परिवर्तन हुए है और उपन्यास-साहित्य मे उनकी प्रतिष्ठापन करने की प्रवृत्ति को देखकर हम बर्नार्ड शॉ वोटो के शब्दो मे कह सकते है कि उपन्यास मानव के अनुभव की परिधि को बढाता है। इस कथन की सत्यता उपन्यास-साहित्य के क्रमिक विकास को देखकर सहज समझी जा सकती है। राजतत्र तथा सामन्त-युग मे जिस साहित्य की रचना हुई और जिसमे उपन्यास भी सम्मिलित है, वह जनता के हितो की उपेक्षा कर मात्र धनिक वर्ग के विलास की पूर्ति का साधन है। मध्यवर्गीय उत्थान के साथ-साथ समाज मे पूँजीवाद का उदय हुआ और स्वतत्रता की आड मे व्यक्तिगत पूँजी का विस्तार हुआ। साहित्य पर भी पूँजीवाद ने अपना प्रभाव अकित किया और स्वतंत्रता के नाम पर व्यष्टि-समष्टि, स्वान्त. सुखाय और लोक हिताय

---

1 विजयशकर मल्ल आलोचना, अक्टूबर १९५४, पृष्ठ ६४

कला कला के लिए या कला जीवन के लिए आदि प्रश्न उपस्थित हुए और साहित्य कल्पना के लोक का निर्माण करने लगा। पूँजीवाद म शोषण की शक्ति के विस्तार से सामूहिक चेतना को जाग्रति हुई और कार्ल मार्क्स और महात्मा गांधी के विचारो ने समाज को नयी दिशाएँ दी। इन विचारा के अनुरूप समाज के नये सिरे से निर्माण किये जाने की आवश्यकता पर जोर दिया जाने लगा।

प्रथम महायुद्ध के बाद रूस मे समाजवाद की स्थापना हुई और द्वितीय महायुद्ध के बाद इसका विस्तार ससार के आधे भाग मे हो गया। इसकी लहरें भारत के कूल से से भी टकरायी किन्तु गाधीय सिद्धान्तो के कारण अपना वचस्व न बना सकी। एक ओर समाजवाद और पूँजीवाद का सघष अभी चल रहा है और दूसरी ओर गाँधीवाद अपना मार्ग बना रहा है। इन राजनीतिक चक्रो मे फँसे मानव समाज की आशा आकाक्षाओ का चित्रण करने से हिन्दी उपन्यासो म क्षेत्र विस्तृति हुई है। राजनीतिक उपन्यासा मे राज नीतिक विचार धाराओ को ग्रहण कर सामूहिक चेतना को व्यापक राष्ट्रीयता के धरा तल पर अभिव्यक्ति देने का क्रम चला। व्यापक राष्ट्रीयता से हमारा तात्पर्य विश्व बन्धुत्व मे है। समाजवाद और गाँधीवाद दोनो व्यापक राष्ट्रीयता को अपना लक्ष्य मानते हैं और इस स्तर पर उपन्यास सास्कृतिक चेतना के उत्थान का वाहक बन उनका सम थक और कभी-कभी मार्गदर्शक भी बनता है। वह यथार्थ और आदर्श के समन्वय से मानव मन का परिष्कार का नयी दृष्टि देता है।

राजनीतिक मतवादो या सिद्धातो के उपन्यास मे समावेश किये जाने के कारण व्यष्टि और समष्टि-जीवन का चित्रण विविधता लिये हुए है और जिसने व्यावहारिक मानवीय धरातल पर मानव-तत्व की महत्ता का बोध कराया है। राजनीतिक प्रभावो से परिवर्तित राष्ट्रीय जीवन के नूतन क्षितिजा को उपन्यास-साहित्य ने स्पर्श किया और इसके कारण उसका भाव-क्षेत्र विशद हुआ है।

जीवन की व्याख्या

नवराष्ट्र निर्माण के साथ ही अनेक समाजिक, नैतिक और आर्थिक समस्याएँ उठ खडी हुई हैं और मानव-जीवन को आन्दोलित कर रही है। राजनीतिक स्वतत्रता के कारण अपने विशिष्ट राजनीतिक मतवाद क आधार पर नव आदर्श की प्रतिष्ठा के प्रयास चल रहे है। राजनीतिक उपन्यास इसी धरातल पर किसी न किसी ध्येय को लेकर राजनीति या समाज की समस्याओ के परिवेश म मानव-जीवन की व्याख्या प्रस्तुत करते हैं। इन्ही मतवादा के कारण समाज की व्यवस्था और जीवन के आदर्श के सम्बन्ध मे मत-वैभिन्य मिलता है। उपन्यास उपयोगिता की तुला पर इनके भार उठाने का प्रयत्न कर रहा है क्याकि यही एक ऐसा माध्यम है, जो मानव-चेतना,

सार्थकता अथवा नियति के विभिन्न सत्यों को अभिव्यक्ति दे सकता है। केटिल का यह कथन सत्य के अधिक निकट है कि उपन्यास का भविष्य स्वतन्त्र विषय नहीं है। वह जाति के सामाजिक एवं सांस्कृतिक विषयों के साथ संलग्न है। अतः भविष्य में भी अच्छे उपन्यासकार की कला की कसौटी यह रहेगी कि वह अपने अग्रगण्य कलाकारों की भांति अपने समय के गम्भीरतम प्रश्नों के प्रति कितनी ईमानदारी और सच्चाई से उलझ सका है।[1] सच तो यह है कि उपन्यास ही ऐसा साहित्यिक माध्यम है, जिसके द्वारा हम अपने सामाजिक-राजनीतिक जीवन में उठने वाली अधिकांश समस्याओं पर विचार कर सकते हैं। हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासों में यह प्रवृत्ति स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। जीवन की व्याख्या की प्रक्रिया में उपन्यासकार सत्य के अन्वेषण का प्रयत्न करता है। यह उचित भी है, क्योंकि आत्म तत्व की अनुभूति मानव की उच्चतम स्थिति है और इसकी उपलब्धि कराना उपन्यास के प्रधान दायित्वों में से एक है। राजनीतिक सिद्धान्तों के अनुरूप वर्ण्य विषय में अन्तर होने पर भी उपन्यासकार की आत्मानुभूति एवं तथ्यान्वेषण की वृत्ति सदैव एक सी रहती है। यही कारण है कि वह मतवाद के भीतर रहकर भी मानव व मानवीय सत्य के प्रसार, गति और गहराई की उपेक्षा नहीं कर सकता।

हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासों में जीवन की व्याख्या मुख्यतः गांधीवाद या समाजवाद के सिद्धान्तों—मानवीय मूल्यों के आधार पर मिलती है। इन राजनीतिक सिद्धान्तों के कारण उपन्यास का केन्द्र होने के बावजूद भी मानव अपने सम्पूर्ण यथार्थ स्वरूप में नहीं आ सका है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि उपन्यासों के पात्रों में निज का व्यक्तित्व प्रभावहीन है। श्रीनारायण अग्निहोत्री ने सम्भवतः इसीलिए कहा है कि 'अतीत में और अब भी हिन्दी उपन्यासों का केन्द्र मानव या तो स्वतः उपन्यासकार के रुग्ण अस्वस्थ मन का प्रक्षेपण मात्र बनकर रहा है, या उसकी दलगत राजनीति का इकतारी चित्र।'

इस सत्य से मुँह नहीं मोड़ा जा सकता कि राजनीतिक सिद्धान्तों के आग्रह ने उपन्यास को प्रचारक बना दिया। हम यह मानते हैं कि साहित्य का मानव-जीवन में समस्त क्रिया-कलापों तथा सम्बन्धित विचारों और सिद्धान्तों का समन्वय अवांछनीय नहीं है, किन्तु उनका स्थान आनुषंगिक ही होना चाहिए। उसका जीवन-दर्शन इतना व्यापक होना चाहिए कि उसमें मनुष्य का अन्तर्निहित सामर्थ्य, उसका जटिल परिवेश और जीवन प्रक्रिया आत्मोपलब्धि की दिशा में स्वाभाविक रूप से अग्रसर हो। इसी ओर उपन्यासकारों का ध्यानाकर्षित करते हुए बक्शी जी ने कहा है. 'उपन्यासकारों के

१ वी० एस० प्रिचेट · प्रिंसेस टु दि लिविंग नावेल, पृष्ठ १६६

लिए जो काम सबसे अधिक स्पृहणीय हो सकता है वह प्रचार का नहीं, निर्माण का ही हो सकता है। वे ऐसे चरित्रों का निर्माण करें, जिनमें पाठकों को चिरन्तन स्फूर्ति, आनन्द उत्साह और दीप्ति की प्रेरणा हो।[1]

हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासों की जीवन-व्याख्या अभी संतुलित नहीं कही जा सकती। सम्भवतः यह इसलिए कि उसमें प्रचार का प्रयोजन अभिव्यक्त हुआ है, मानव की गरिमा नहीं।

गांधी जी के नेतृत्व में राष्ट्रीय आन्दोलनों ने भारतीय जीवन में और प्रथम महायुद्ध के समय रूसी लाल क्रान्ति ने रूसी जीवन में विचारों की क्रान्ति की। इनके अपने स्वरूप थे—एक थी अहिंसक क्रान्ति और दूसरी हिंसात्मक। इनके कारण बौद्धिक चेतना का विस्तार मिला। ज्ञान के नये आयामों की उपलब्धि हुई और जीवन में नये मूल्य स्थापित हुए। इन राजनीतिक सिद्धान्तों की जिसकी विगत परिच्छेद में विस्तृत चर्चा की जा चुकी है, हिन्दी उपन्यास साहित्य को गांधीवाद और जनवादी मान्यताओं की अन्तश्चेतना से अनुप्राणित किया। किन्तु इस राजनीतिक साधना के यथार्थोन्मुख होने से मानवीय मूल्यों को जो स्थान मिला वह सीमित रहा। इस तथ्य की उपेक्षा हुई कि मानवीय वास्तविकता ही कला का आधार है, जिसका आधार पाकर सौन्दर्य की भावना व्यापक होती है।

मानव-मूल्य की मान्यता

सन् १९५६ में अमृतसर साहित्यकार परिषद् में साहित्यकार के दायित्वों पर विचार करते हुए आचार्य विनोबा भावे ने कहा था कि 'जीवन में जिन अवाछनीय मूल्यों की प्रतिष्ठा हो गयी है, जैसे सत्ता, धन आदि उनको वहाँ से हटाकर जीवन का जो सर्वश्रेष्ठ मूल्य-सत्य है—उसकी प्रस्थापना करना। उसी प्रकार न्याय, समता, मानवता आदि मूल्यों की भी प्रतिष्ठा बढ़नी चाहिए। यानी योग्य स्थान मिलना चाहिए।' सत्य तो यह है कि प्रस्थापित मानव मूल्य और जीवन-दर्शन ही किसी उपन्यास को कालजयी बनाते हैं। साहित्य की व्याख्या करते हुए उसे 'सहितानाम् भाव साहित्यम्' बनाया गया है। स्पष्ट है कि दोनों स्थितियों में उसका दायित्व मानवता का प्रसार करना है। हम यह मानते हैं कि साहित्य युगसापेक्ष होता है किन्तु संस्कारगत नैतिकता को भी उससे पृथक् नहीं किया जा सकता।

साहित्य का उद्देश्य मानवता का उन्नयन है। यह लक्ष्य युग-सापेक्ष नहीं है। उसका लक्ष्य तो मानव-मानव में सम्यक् रूप से विकास लाना होता है। वह मानव

१ पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी - हिन्दी कथा-साहित्य, पृष्ठ २४०

मूल्यों की आधारशिला पर मुक्त चिन्तन कर मानवीय एकता का प्रसार करता है। इसीलिए कहा गया है कि उपन्यासकार को चाहिए कि वह मानव-अस्तित्व की गहराई में उतर कर उसकी रक्त-शिराओं में चलने वाले भय और साहस के द्वन्द्व को पहचाने। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का भी कथन है कि 'समूची मनुष्यता जिससे लाभान्वित हो, एक जाति दूसरी जाति से घृणा न करके प्रेम करने का प्रयत्न करे, कोई किसी का आश्रित न हो, कोई किसी से वंचित न हो, इस महान् उद्देश्य से ही हमारा साहित्य प्राणोदित होना चाहिए।'[1]

हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासों में मानव-मूल्य विशिष्ट राजनीतिक सिद्धांतों को लेकर स्थापित हुए हैं। अतः उनमें व्यापकता का अभाव है। अखिल भारतीय मराठी साहित्य सम्मेलन के ३२ वें अधिवेशन (जून १९६४) में नारायण देसाई ने मार्क्सवादी दृष्टिकोण से मराठी उपन्यास की निर्मम शव-परीक्षा करते हुए कहा था कि सामाजिक सन्दर्भ, मानव-मूल्य तथा ऐतिहासिकता के बोध के अभाव में आज का उपन्यास घुटन, कुंठा, बौद्धिक विलास एवं प्रयोगों के चमत्कार का प्रदर्शन बन कर रह गया है।

वाद सापेक्ष हिन्दी राजनीतिक उपन्यासों में अधिकांश समाजवादी-यथार्थवाद से अनुप्राणित हैं। समाजवादी यथार्थवाद सामाजिक विषमताओं के मूल कारण को पहचान कर उन्हें विनष्ट करने का प्रतिक्रियात्मक हल प्रस्तुत करता है। वह ऐसे उपेक्षित निम्न श्रेणी के समाज का चित्र प्रस्तुत करता है, जो अपनी विषम सामाजिक परिस्थितियों से संघर्ष कर रहे हों। वस्तुतः समाजवादी यथार्थवाद की मूल वस्तु है वर्ग-संघर्ष। शोषित दीन-हीनों की वर्ग-चेतना का जागरण और शक्ति-संचय उस युग का स्वप्न है, जब कोई शोषक न रहेगा, सब समान हो जायेंगे, सब मिलकर परिश्रम करेंगे और सब मिलकर उपभोग करेंगे। इसमें सामाजिक धरातल पर व्यक्ति की उपेक्षा हो जाती है और गतिशीलता जीवन-योग से निःसृत न होकर केवल कुछ बने-बनाये सम्भवतः उपयोगी नियमों के अन्ध पवर्तन में भटक जाती हैं। इस प्रक्रिया से शाश्वत मानव-मूल्य भी अपना महत्व खो बैठते हैं।

राजनीतिक भाव-भूमि के परिप्रेक्ष में समाज के विभिन्न स्तरों व मानव को देखा गया। परिणामतः मानव-मूल्य राजनीतिक दृष्टि से निर्धारित हुए और उन्हें सर्वमान्य या शाश्वत नहीं कहा जा सकता। वाद की आवश्यकता तभी है जब हम मानव-जीवन के प्रति आस्थावान हों और संघर्ष सिद्धांतों, आदर्शों और जीवन-विधियों की टकराहट न्याय और औचित्य के हेतु हो। दृष्टि वस्तु-परक प्रयोजन तक सीमित न हो, अपितु

१ आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी : अशोक के फूल, पृष्ठ १२६

दृष्टि विस्तृत, अनुभूति गहरी और संकल्पशक्ति प्रखर हो। मानवत्व का विरोध न होकर उसके अतिचार का प्रतिरोध हो।

इस दृष्टि से कहा जा सकता है कि राजनीतिक उपन्यासो का क्षेत्र अभी संकुचित है। उनका कल्पना-जगत परिमित है और उनके पात्र जीवन की अत्यन्त क्षुद्र परिधि के भीतर समाविष्ट हो जाते हैं।

आभिजात्य से सामान्य की ओर

हिन्दी के आरम्भिक उपन्यास-साहित्य मे आभिजात्य का अत्यधिक प्रभाव परिलक्षित होता है, जो सम्भवत: तात्कालिक भारतीय राजनीति मे साम्राज्यवाद और सामन्तवाद की प्रधानता का प्रतिफलन है। राष्ट्रीय आन्दोलन के गतिशील होने पर सामन्तवादी प्रवृत्तियो पर आघात किये जाने लगे और इस प्रक्रिया मे सामान्य जनता को महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करने के कारण गौरव प्राप्त हुआ। सोवियत रूस मे लाल क्रान्ति होने और उसमे शोषितो की सफलता से उसका अन्तर्राष्ट्रीय प्रभाव पडा। भारत की खेतिहर जनता भी इस प्रभाव से अछूती न रही। इतना होने पर भी प्रेमचन्द-युगीन उपन्यासो मे, जिसमे प्रेमचन्द के उपन्यास भी सम्मिलित हैं, अभिजात पात्रो का अस्तित्व बना रहा। प्रेमचन्द के अभिजात पात्रो मे सहानुभूतिक दृष्टिकोण गांधीवादी नैतिक सुधारवाद के रूप म है। वे आभिजात्य प्रवृत्ति से 'गोदान' मे मुक्त हो सके और होरी के रूप मे सामान्य जन का प्रतिष्ठापन हुआ। इस परिवर्तन मे गाँधी जी के नेतृत्व में चलने वाले जनान्दोलन और हरिजनोद्धार का योगदान प्रमुख है। प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यास साहित्य मे आभिजात्य की उपेक्षा होने लगी। उपन्यास यथार्थ की भूमिका पर आया और उसका प्रेरणा स्रोत सामान्य व्यक्तित्व और उसकी समस्याएँ बनी। प्रगतिशील साहित्य की प्रेरक शक्ति के रूप मे समाजवादी यथार्थवादी प्रवृत्ति प्रोत्साहित हुई और आभिजात्य का रहा सहा मोह भी नष्ट हो गया। हिन्दी के उपन्यास, जो समाजवादी यथार्थवादी भूमिका पर विस्तरित हुए है, अभिजात पात्रो से दूर है। नागार्जुन, रांगेय राघव, भैरवप्रसाद गुप्त, अमृतराय आदि के प्राय समस्त उपन्यासो मे विशिष्ट राजनीतिक मतवाद के कारण आभि-जात्य वर्ग की भर्त्सना की गयी और सामान्य को गौरव दिया गया। ये उपन्यास मूलत. सामाजिक और समाजवादी हैं और इनके पात्र मतवाद से सचालित होने के कारण अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व का विकास नही कर पाते। सामाजिकता के अत्यधिक आग्रह के कारण पात्र उदात्त नहीं हैं और विशिष्ट राजनीतिक सिद्धान्त से सचालित है।

क्रांति की प्रेरणा

साहित्य का मूलाधार सर्जन मे है। इसी नाते सात्विक समन्वय की स्फूर्ति उसके

भीतर होती है। यही कारण है कि आधुनिक समाजवाद और कम्युनिज्म का आधार भले ही कार्ल मार्क्स के द्वारा निर्धारित किये गये सिद्धान्तों में पाया जाय, किन्तु अपनी प्रत्यक्ष वास्तविकता के लिए इसे सदा लेनिन, ट्राटस्की और गोर्की की लेखनी का ऋण मानना ही पड़ेगा। यह सब सही, लेकिन संसार की महाभयकर आँधियों के उठाने में हृदय को कँपा देने वाले तोड़फोड़ के साहित्य की भी एक प्रेरणा थी निर्माण। नव निर्माण की यह प्रेरणा ही क्रांति की प्रेरणा है, जो हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासों में सर्जन और निर्माण के अन्तश्चात से आन्तरिक समन्वय को बल देती है। राजनीतिक उपन्यास सामाजिक न्याय का बोध कराते हुए शासन और समाज की असंगतियों के विरुद्ध क्रांति की प्रेरणा देते हैं। सच तो यह है कि कोई भी उपन्यासकार देश और काल की सर्वथा उपेक्षा नहीं कर सकता और समाज की गति के अनुसार ही उसके साहित्य का रूप परिवर्तित होता रहता है। तदनुसार हो उपन्यास में आधुनिक युग का प्रभाव लक्षित होता है। इन उपन्यासों में क्रांति का जो स्वरूप अंकित हुआ है, उसका लक्ष्य मानवता ही है, भले ही वह किसी राजनीतिक सिद्धान्त से ही प्राप्त किया जा सकता हो।

हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासों में क्रांति की प्रेरणा मुख्यतया समाजवादी यथार्थवादी आधार-पीठिका पर है। भारतीय राजनीति में मार्क्सवाद अभी भी ऊपरी सतह पर ही है और भारतीय मानस को विशेष प्रभावित न कर सका है। सच तो यह है कि साम्यवाद के सिद्धान्त भारतीय संस्कृति से आपूर मानव-मन के भीतर अभी तक पैठ न सके है। यही कारण है कि समाजवादी यथार्थवादी उपन्यासों में जिन सामाजिक क्रांतियों का अंकन किया गया है, वह वास्तविक न होकर सैद्धान्तिक ही है, जो पाठकों पर अपेक्षित प्रभाव डालने में असमर्थ सिद्ध होता है। उदाहरणार्थ स्वातन्त्र्योत्तर राजनीतिक उपन्यासों में सामन्तवादी विचारधारा के विरोध हेतु किसान-जमींदार का वर्ग-संघर्ष जनतांत्रिक भारत में कोई मूल्य नहीं रखता। यह तो अब बीते युग की गाथा ही कही जा सकती है। इस दृष्टि से नागार्जुन का 'वरुण के बेटे' या 'उग्रतारा' अवश्य महत्वपूर्ण कहे जा सकते हैं, जो नयी दिशाओं की ओर मार्क्सवादी दृष्टि से इंगित करते हैं। गाँधीवादी प्रभाव से युक्त राजनीतिक उपन्यास मूलत भारतीय परिस्थितियों के अनुरूप होने के कारण अपेक्षाकृत अधिक स्वाभाविक हैं। इनमे हरिजनोद्धार, हिंदू-मुस्लिम एकता, राष्ट्रीय भाषा, प्रेम जैसे प्रश्नों को उठाकर जिस सामाजिक क्रांति का चित्रण किया गया है, वह यथार्थ के अधिक निकट है। कांग्रेस के नेतृत्व में राष्ट्रीय आन्दोलनों ने जन जीवन में जागरण के जिस स्वरूप को उपस्थित किया, उसने समस्त सामाजिक वातावरण को प्रभावित किया। उसकी महत्वपूर्ण उपलब्धि विचार-[illegible] की क्षमता है, जो सामाजिक असंगतियों को 'नीर क्षीर' विवेक से देखना चाहती है।

वर्तमान सामाजिक स्थिति और शासन-नीति के प्रति क्षुब्ध भाव भी क्रांति का मार्ग प्रशस्त करते है। शांतिप्रिय द्विवेदी के दिगम्बर' का एक उदाहरण देखिए—'मध्य युग को सामन्तवादी कहा जाता था, आधुनिक युग को साम्राज्यवादी और पूँजीवादी। तो क्या राष्ट्रीय आन्दोलन मे जो लोग गाँधी के पीछे पीछे चले, वे इस युग की शोषित पीडित जनता या दुख दैन्य से द्रवित होकर सार्वजनिक क्षेत्र म आय थे ? नहीं, वे तो गांधी को ढाल बनाकर जनता के सत्य के नाम पर प्रभुता से अपने अपने अधिकारो का सघष कर रहे थे। इस सघर्ष मे बलिदान गाँधी का ही हो गया, वरदान उन्हे मिल गया। अब स्वय सत्तारूढ होकर व उन्ही साम्राज्यवादी और पूँजीवादी सुविधाओ का उपभोग कर रहे है—जिनका वे भी विरोध कर रहे थे। स्पष्ट है कि लेखक वर्ग सघष को प्रोत्साहित न करते हुए जीवन के सत्य का प्रस्तुत कर क्रांति की प्रेरणा ही देता है। उन्होंने जो ने एक स्थल पर सत्य ही लिखा है कि जो कला जनता के जीवन म नव प्रेरणा नहीं द सकती, वह चिरन्तन सौन्दर्य की निष्प्राण प्रतिमा का तरह व्यर्थ रहती है।

व्यक्ति और समाज के परिवर्तित सम्बन्ध

व्यक्ति समाज की इकाई है और समाज राजनीति का घट है। उपन्यास जीवन की व्याख्या है और इस रूप म समाज का महाकाव्य। इस तरह राजनीति व्यक्ति और उपन्यास, दोनो का स्वतत्र रूप स बढने दने म बाधक है। स्वातन्त्र्योत्तर हिंदी उपन्यासो म राजनीतिक 'टच' का प्रमुख कारण राष्ट्रीय जीवन म राजनीति का प्राधान्य ही है। आचाय नन्ददुलारे वाजपेयी का यह कथन उचित ही है कि स्वराज्य मिलने के पश्चात् देश मे सहसा राजनीतिक शक्ति का इतना प्राधान्य हो गया कि उसने सामाजिक जीवन के अन्य उदीयमान पक्षो का स्वतत्र रीति से बढने नही दिया। सामाजिक जीवन की विविध दिशाओ म जो कुछ कार्य हो, वह राजनीति का 'स्टैम्प' लग कर ही हो इस सर्वग्रासिनी वृत्ति ने राष्ट्रीय जीवन को एकागी बना दिया है।'[1]

द्वितीय महायुद्ध से उत्पन्न सकटकालीन स्थिति म सामाजिक दुर्व्यवस्था अपनी चरम सीमा पर पहुँच गयी और सामान्य व्यक्ति अभावो की आँधी म उखड गया। उनके विद्रोह का साहित्यकारों ने वाणी दी और इसी सामाजिक आधार पर साहित्य राजनीति से आलिंगन करने लगा। मार्क्सवाद ने मार्ग प्रशस्त किया और अनेक उपन्यास लेखको ने व्यक्ति को सामाजिक और राष्ट्रीय स्तर की विविध समस्याओ क राजनीतिक परिप्रेक्ष म रखा।

---

१ आचाय नन्ददुलारे वाजपेयी आधुनिक काव्य-रचना और विचार, पृष्ठ ७

मार्क्सवाद ने बताया कि सामाजिक सहयोग के आधार पर मनुष्य अपनी समस्त परिस्थितियों का पूर्णतया सचेतन नियन्त्रण करे, वह निसर्ग की दया पर निर्भर न रहे, या आकस्मिक संयोग और घटनाएँ ही उसका भाग्यनिर्णय न करें, किन्तु अपने भाग्य का नियन्ता स्वयं मनुष्य ही बने। इस सिद्धांत के अनुसार यह परिणति वर्गहीन समाज के सहयोग की भूमि पर ही सम्भव है।

इन नव्य विचारधारा ने हिन्दी के उपन्यास-साहित्य को प्रभावित किया और संघर्ष की भूमिका निर्मित की। सामाजिक रीति-नीति-व्यवस्था को लेकर प्राचीन नैतिक व्यवस्था के विरोध में एक उग्र विरोध भावना सामने आयी। राजनीतिक क्षेत्र में यह विप्लव की संचालिका बनी। हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासों में यह विद्रोह-भावना समाज के प्रचलित नीति-व्यवस्था के प्रति है और शासन की व्यवस्था के प्रति भी।

यह ठीक ही कहा गया है कि आधुनिक युग में क्रांति की जो भावना फैल रही है, उसके मूल में आदर्शों का संघर्ष ही काम कर रहा है। भिन्न भिन्न युगों में नये-नये आदर्शों का निर्माण होता रहा है। उन्हीं आदर्शों के द्वारा जातीय जीवन के स्वच्छंद विकास में अवरोधों को दूर करने का प्रयास किया जाता है। आदर्शों में मनुष्यत्व का चरम उत्कर्ष प्रदर्शित होता है। ज्यों ही जाति के भीतर उत्कर्ष की यह भावना निश्चेष्ट हो जाती है, त्यों ही जनता में क्रांति की भावना उत्पन्न हो जाती है। जनता की वह क्रांति जनता की ही भाषा में प्रकट होती है।

समाजवादी यथार्थवादी हिन्दी उपन्यासों में जिस सामाजिक क्रांति का चित्रण मिलता है, वह पूर्णतया वास्तविक नहीं है। मतवाद के अनुकूल उपन्यास रचना के कारण वह आरोपित सा प्रतीत होता है। यह सच है कि जनसाधारण वर्तमान शासन-व्यवस्था से पूर्णतया संतुष्ट नहीं है, उसमें उसके प्रति विक्षोभ भी है, किन्तु वह इतना विस्फोटक नहीं है, जैसा कि चित्रित किया जाता है। इसका मूल कारण हमारी संस्कृति और लोकतन्त्रात्मक शासन है, जो परिस्थिति के अनुसार लोकतन्त्रात्मक समाजवाद की दिशा में अग्रसर हो रहा है।

आत्म कल्याण को प्रधानता देकर भारत ने जिस सामाजिक व्यवस्था की रचना की, उसके कारण वह एक दिशा में अग्रसर होता रहा। धर्म, अर्थ और काम, तीनों को पुरुषार्थ मानकर भी उसने मोक्ष को स्वीकार किया। जहाँ सभी बन्धनों का लोप हो जाता है, वहाँ व्यक्ति को सच्ची मुक्ति प्राप्त होती है। राजनीतिक के क्षेत्र में जनतन्त्र के द्वारा जो शासन-व्यवस्था निर्मित की जाती है, उसके मूल में भी यही भावना काम करती है कि सभी व्यक्तियों को अपने व्यक्तिगत विकास के लिए पूर्ण अवसर प्राप्त हो

और उसी के साथ व्यक्तिगत संघर्ष को दूर करने के लिए राष्ट्र की उन्नति में व्यक्ति की उन्नति का समावेश किया जाय।[1]

यथार्थ और स्वानुभूत दर्शन

कहा गया है कि रचना प्रक्रिया वस्तुत कलाकार का अभ्यंतर सत्य है वस्तु परक तथ्य नहीं। राज्य-सत्ता, समाज-व्यवस्था का प्रतीक होती है, पर वही आचरण में मतवाद, नीतिपरकता या अपनी अस्तित्व रक्षा के प्रयत्नों के कारण बनती है और उसका निर्देशन भी रचनाकार को प्राय स्वीकृत नहीं होता। शासन या राजनीतिक पार्टी के निर्देशन में वास्तविक साहित्य की रचना की ही नहीं जा सकती, क्योंकि रचनाकार की अपनी स्वतन्त्रता ही उस परिस्थिति में खत्म हो जाती है।'[2] उपर्युक्त कथन से यथार्थ और स्वानुभूत दर्शन का महत्व ही स्पष्ट हो जाता है। यथार्थवाद का विकास जनतंत्र के सिद्धान्तों के प्रचार के साथ हुआ है। इस नूतन दृष्टिकोण का ग्रहण कर, जीवन में जो यथार्थता है उसी के आधार पर सत्य की समीक्षा होने लगी। यथार्थ के इसी परिवेश में किसी भी युग में जो विचारधारा प्रवर्तित होती है, उसका प्रचार सामयिक साहित्य के द्वारा ही होता है। बेन्सन का कथन है कि सामयिक साहित्य में समकालीन लोगों की जीवन गाथाएँ विशेष महत्वपूर्ण होती हैं, क्योंकि उन्हीं से पाठकों को अपने युग की भिन्न भिन्न विचारधाराओं का ज्ञान हो जाता है। उपन्यास सही अर्थों में जनता का साहित्य है और जीवन की यथार्थता के साथ उपन्यासकार के स्वानुभूत दर्शन का क्रीड़ांगन भी।

हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासों में यथार्थ का आग्रह प्रबल है। यह बात पृथक् है कि यह यथार्थ लेखक की राजनीतिक दृष्टि से कभी-कभी एकपक्षीय हो जाय। यह सत्य ही कहा गया है कि समाज की जो स्थिति होती है और देश की जो समस्या होती है, उसके द्वारा किसी भी व्यक्ति के जीवन की गति एक सीमा तक अवश्य निर्दिष्ट होती है। कोई भी व्यक्ति अपने देश, समाज अथवा युग की उपेक्षा नहीं कर सकता।

हिन्दी के समाजवादी यथार्थवादी उपन्यासों में जिस यथार्थ का चित्रण मिलता है, वह विशिष्ट मतवाद को लेकर ही है। कभी-कभी तो यह केवल राजनीतिक यथार्थ के रूप में देश और काल की सीमा को लाँघ कर अयथार्थ सा हो जाता है। ऐसी स्थिति में लेखक मात्र द्वन्द्वशास्त्री बनकर अपने कर्तव्य की इतिश्री समझ लेता है।

---

१ पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी हिन्दी कथा साहित्य, पृष्ठ ८९

२ डॉ० कमलाकान्त पाठक 'नवभारत,' दीपावली विशेषांक, पृष्ठ ३६

पुनर्निर्माण सम्बन्धी दृष्टिकोण

साहित्यकार का प्राथमिक कर्तव्य देश के प्रति होता है। राष्ट्र और व्यक्ति का अंगागि सम्बन्ध है। राष्ट्रीय सुरक्षा, पुष्टि और समृद्धि मे व्यक्ति और पार्टी की सुरक्षा, पुष्टि और समृद्धि है। साहित्य मे सहित का भाव निहित है। सहित के दो अर्थ है—एकत्र होना और हित के साथ होना। इस अर्थ मे निर्माण और हित-साधन साहित्यकार का कर्तव्य हो जाता है। श्रीनारायण अग्निहोत्री के मतानुसार 'जिन दो प्रमुख माध्यमो के द्वारा साहित्य अपने को मानव-जीवन से सामान्य रूप से तथा युगविशेष के जीवन से विशिष्ट रूप से सम्बन्धित रखता है, वे हैं समाचारपत्र तथा उपन्यास। ....उपन्यास समाचारपत्र का रूपान्तर कर नवीन साहित्यिक सृष्टि के रूप मे प्रस्तुत करता है।'[1] अत. यह कहा जा सकता है कि उपन्यास बाह्य स्थितियो का विश्लेषण करते हुए निर्माण की भूमिका बनाता है। इसके लिए वह मानव-सम्बन्धो मे साम्यमयी स्थिति लाने का सहेतुक प्रयत्न करता है।

हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासो मे मतवाद विशेष के प्रतिपादन के कारण निर्माण की इस प्रक्रिया मे विभेद दिखलायी पड़ता है। समाजवादी यथार्थवादी उपन्यासो मे वर्ग-सघर्ष को प्रोत्साहित कर जिस भावी समाज के निर्माण की ओर इगित किया जाता है, वह वर्तमान के राष्ट्रीय निर्माण का बाधक बन जाता है। वर्ग सघर्ष की स्थिति का चित्रण उत्तेजना का कारण होता है और दो वर्गों मे कटुता को, दूसरे शब्दो मे हिंसात्मक प्रवृत्ति को जन्म देती है। देश मे आये दिन होने वाली हड़तालो से जो राष्ट्रीय अहित हो रहा है, वह किसी से छुपा हुआ नही है।

राजनीतिक उपन्यासो मे राष्ट्रीय नेताओ एव राजनीतिक दलो की कटु आलोचना करने की प्रवृत्ति भी मिलती है। समाजवादी यथार्थवादी उपन्यासो मे कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यों को उचित सिद्ध करने के लिए कांग्रेस और उसके नेताओ को अत्यन्त हेय दृष्टि से चित्रित किया गया, जो कभी-कभी ऐतिहासिक तथ्यो के विपरीत भी जाता है। गुरुदत्त के प्राय सभी उपन्यासो मे कांग्रेस के साथ कम्युनिस्टो की नीतियो पर कटु प्रहार किया गया है। गुरुदत्त के उपन्यासो का मूल स्वर हिन्दुत्ववादी है और प्राचीन भारतीय सस्कृति से आप्लावित है। उपन्यासो की यह प्रवृत्ति श्रेयस्कर नहीं, क्योकि यह राष्ट्रीय एकता के मार्ग को अवरुद्ध करती है।

हम आलोचना करने के विरोधी नही हैं। किन्तु यह अवश्य चाहते हैं कि आलोचना उस शालीनता के साथ हो, जो साहित्यकार का लक्षण है। गुलाब राय ने सत्य ही लिखा है : 'शालीनता साहित्यकार का मुख्य लक्षण है। वह आलोचना मे

---

१. श्रीनारायण अग्निहोत्री : उपन्यास तत्व एव रूप विधान, पृष्ठ २६५

कटुता और तिरस्कार की भावना को न आने दे। वह दूसरों की असफलताओं पर प्रसन्न न हो और न गर्वोल्लास का अनुभव करे। नहीं तो वह अशान्ति फैलाने के लिए स्वयं दोषी हो जायगा। देश उन्नायकों के प्रति घृणा या तिरस्कार की भावना पैदा करना अनुशासन हीनता उत्पन्न करना है। साहित्यकार को न्याय का पल्ला नहीं छोड़ना चाहिए। अभावों, न्यूनताओं और असफलताओं के साथ उपलब्धियों और मार्ग की कठिनाइयों का भी ध्यान रखना चाहिए। इनकी उपेक्षा करना अन्याय होगा।' वस्तुतः पुनर्निर्माण की भावना जाग्रत करने का यही मार्ग है।

स्वाधीनता-प्राप्ति के उपन्यास भारत-निर्माण-पथ पर बढ़ रहे हैं। विगत दो दशकों की अवधि को पुनर्निर्माण-काल कहा जा सकता है। रूसी साहित्य में पुनर्निर्माण सम्बन्धी उपन्यासों की रचना ने विश्व-साहित्य को एक नयी दिशा दी है। ग्लादकोव का 'शक्ति' वालन्तीन कतयेव का 'समय बढ़ो, समय !' पिलनियाक का वोल्गा कैस्पियन की ओर बहती है,' शोलोख़ोव का 'नयी जुती जमीन' ऐसे ही उपन्यास हैं, जिनमें रूस की पंचवर्षीय योजना और पुनर्निर्माण का ज्ञानवर्धक चित्रण है, यों इनकी आधार-भूमि द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद ही है।

हिन्दी में इस तरह के उपन्यासों का अभाव है। कुछ उपन्यासों में संक्षिप्त चर्चा अवश्य मिलती है, किन्तु उसमें राष्ट्रीय रूप सामने नहीं आ पाता। इस दृष्टि से रेणु का 'परती : परिकथा' अधिक सफल है।

शैक्षणिक मूल्य

साहित्य की अन्य विधाओं के सदृश्य राजनीतिक उपन्यासों का भी एक विशिष्ट मूल्य है। वह पाठकों के राजनीतिक ज्ञान में अभिवृद्धि करना है और राजनीतिक की असंगतियों का परिष्कार करता है। वाद निरपेक्ष राजनीतिक उपन्यास समसामयिक घटनाओं और उनके कारण बदलते हुए जीवन का कलात्मक इतिहास होता है। इतिहासकार की तथ्यसंकलन वृत्ति की नीरसता का उसमें अभाव रहता है। वाद सापेक्ष राजनीतिक उपन्यासों में राजनीतिक विचारधाराओं का प्रचारात्मक स्वरूप रहता है जो उपन्यास के माध्यम से जनमन को जाग्रत करने का कार्य करता है।

हिन्दी में वाद-सापेक्ष राजनीतिक उपन्यास मार्क्सवाद की देन हैं। वर्तमान रूसी उपन्यास साहित्य ही उनका आधारभूत आदर्श रहा है, जो शिक्षा, प्रचार या सैद्धान्तिक विवेचन को उपन्यास का अंग बनाकर विकसित हो रहा है। मार्क्सवाद से प्रभावित ये उपन्यास समाजवादी यथार्थवादी धरातल पर व्यक्ति या समाज के विश्लेषण के स्थान पर सामाजिक स्थितियों तथा सामान्य वैयक्तिक विशेषताओं तक ही सीमित हैं। रूसी उपन्यास-साहित्य के बारे में डॉ० गणेशन का कथन है कि 'भौतिकवाद से

प्रभावित समाजवादी यथार्थवादी उपन्यासो का विशेष गुण उनका शिक्षण-मूल्य है। अन्य किसी भी धारा के उपन्यासों मे तत्कालीन देशीय स्थितियों को, उसके व्यवसाय, विज्ञान, व्यापार, शिक्षा आदि मे होने वाली प्रगति को इतनी सफलता से नहीं दिखाया गया है जितनी सफलता से समाजवादी यथार्थवादी उपन्यासो मे।'[1] हिन्दी के समाजवादी यथार्थवादी उपन्यास अभी इस दृष्टि से प्रगति-पथ पर हैं और उन्हे कई मंजिलें पार करनी हैं। अभी तो उन्होने मार्क्सवाद के वर्ग-संघर्ष पर ही अपना ध्यान केन्द्रित कर अराजकता को ही प्रश्रय दिया है। स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासो मे अधिकांशत जमींदार किसान का संघर्ष चित्रित किया गया है, जो रजवाडो, जमीदारो के उन्मूलन के बाद विशेष शैक्षणिक महत्व नहीं रखता।

दूसरे शब्दों मे शैक्षणिक मूल्य की दृष्टि से ये उपन्यास शिथिल है।

सम्भावनाएँ

विगत तीन दशाब्दियो मे हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासो की प्रगति महत्वपूर्ण रही है और उसने विभिन्न सामयिक घटनाओ और राजनीतिक विचारधाराओ को ग्रहण कर अपना मार्ग प्रशस्त किया है और इस रूप मे उसका भविष्य आशामय होता जा रहा है। राजनीतिक उपन्यासो के अनुशीलन से इस तथ्य का ज्ञान होता है कि वे उपदेशात्मक औपन्यासिक परम्परा से शक्ति सचय कर सामाजिक वृत्ति और राजनीतिक उन्नयन की भावना से पुष्ट हो जन-साधारण को समय की बदलती हुई परिस्थिति से परिचित एव जाग्रत कराने की दिशा मे अग्रसर है। सिद्धान्त-प्रचार के उद्देश्य की प्रबलता से रसमयता के अभाव होने पर भी वे ज्ञान—विशेषत. राजनीतिक ज्ञान के नये आयामो से परिचित कराने मे समर्थ सिद्ध हुए है।

राजनीतिक उपन्यास का क्षेत्र व्यापक है और राल्फ फाक्स के शब्दो मे कहा जा सकता है कि 'क्रान्तिकारी उपन्यास का क्षेत्र इतना व्यापक है कि उसमे हर मानव-चरित्र, हर भाव, व्यक्तियो का प्रत्येक द्वन्द्व आ जाता है—कुछ भी उससे बाहर नहीं है।.. क्रांतिकारी के लिए अतीत की विरासत मे जो कुछ भी प्राणवान् और आशापूर्ण है, वह भी स्वीकार्य है, और भविष्य के निर्माण के लिए वर्तमान मे जो कुछ भी उपयोगी है, उसे भी वह अगीकार करता है।'[2]

यह सच है कि व्यक्ति ही वर्तमान समाज की सबसे बड़ी समस्या है और विश्व की प्रत्येक हलचल के मूल मे व्यक्ति की ही समस्या है। राजनीति का आधार भी

---

१. डॉ० गणेशन : हिन्दी उपन्यास-साहित्य का अध्ययन, पृष्ठ ४१६

२ राल्फ़ फाक्स . उपन्यास और लोक जीवन, पृष्ठ १०८

व्यक्ति ही है और स्वाधीनता, समता और सौहार्द्र ही उसके लिए व्यक्तित्व के विकास का आदर्श है। विज्ञान की प्रगति के कारण विश्व के प्रत्येक भाग के मानव की समस्याएँ एक सा स्वरूप ग्रहण कर रही हैं। इस सन्दर्भ में पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी का कथन भी विचारणीय है 'सचमुच ससार की सबसे बडी पहेली है एक व्यक्ति का व्यक्तित्व और ससार की सबसे बडी समस्या है व्यक्तित्व की समस्या। एक स्थान मे व्यक्ति सबसे पृथक् होकर अपने व्यक्तित्व की रक्षा के लिए सचेष्ट रहता है और दूसरे स्थान मे परिवार, समाज, जाति और राष्ट्र में सम्मिलित होकर सभी के साथ वह ऐसा सम्बद्ध हो जाता है कि किसी भी स्थिति मे वह अपने को पृथक् नही कर सकता।"[1] राजनीति की इसी अवैज्ञानिकता की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए, सन् १९५० मे नोबुल परस्कार सम्मान ग्रहण करते हुए विन्तक मनीषी बरट्रेण्ड रसैल ने कहा था कि 'वर्तमान राजनीति और राजनीति शास्त्र म मानव मन के तथ्यो और सत्यो का जितना चाहिए, उतना ध्यान नहीं रखा जाता। इसी का परिणाम ये सब कहीं आये दिन की निराशाएं हैं। राजनीति का रूप यदि वास्तव म वैज्ञानिक होना है, और राजनीतिक घटनाओ का भाव यदि ऐसा अपेक्षित है कि वे घटें और कही कोई चौंके नही, तो यह नितान्त आवश्यक है कि हमारा इस दिशा का सारा चिन्तन मनुष्य के आचरण-व्यवहार के मूल स्रोतो की गहराइयो तक पहुँचा हुआ हो।'

इस दृष्टिकोण से कहा जा सकता है कि मानव-कल्याण को प्रधानता देकर भारत ने जिस सामाजिक व्यवस्था की रचना की, उसके कारण वह एक दिशा में अग्रसर होता रहा।

स्वाधीनतोपरान्त भारत एक प्रजातान्त्रिक राष्ट्र से अब प्रजातान्त्रिक समाजवाद की श्रेणी पर पहुँच गया है। बीच की इस कालावधि मे राजनीतिक उपन्यासो ने महत्वपूर्ण भूमिका अभिनीत की है। वह प्रजातंत्र के अनुरूप रही है। प्रजातन्त्र की रीढ जनमत है और इसम प्रत्येक दल या नागरिक को यह अधिकार प्राप्त है कि वही शासकीय दल की नीतियो की न केवल निर्भीक आलोचना करे, अपितु चाहे तो जनमत को प्रभावित कर उसे बदल भी डाले। इसके लिए जो मत प्रचार होना है या मत-वैभिन्न प्रदर्शित किया जाता है, वह स्वस्थ्य प्रजातन्त्र का आवश्यक अग माना गया है। इस दृष्टि से प्रजातन्त्र समूहवाची न होकर मानववादी राज्य-व्यवस्था है जो व्यक्ति और उसकी वाणी के स्वातन्त्र्य का प्रतिष्ठापन करती है। इधर भुवनेश्वर कांग्रेस अधिवेशन में जिस लोकतान्त्रिक समाजवाद को लक्ष्य निर्धारित किया गया है, उससे भावी राजनीतिक उपन्यासो को जो दिशा मिलेगी, वह प्रेरणादायक होगी। लोकतान्त्रिक समाजवाद वस्तुत प्रजातन्त्र और साम्यवाद के अतिशयो के बीच से निकाला गया मध्य मार्ग

१ साप्ताहिक हिन्दुस्तान, नयी दिल्ली, अक २२ मार्च १९६४, पृष्ठ १६

है। भारतीय सांस्कृतिक परम्परा की पृष्ठभूमि में स्वीकृत प्रजातन्त्र सिद्धान्ततः समाजवादी यथार्थवादी साहित्य को स्वकृति नहीं दे सकता था। किन्तु लोकतान्त्रिक समाजवाद में दोनों की विशेषताओं का आकलन हो जाने से साहित्य में समाजवाद की व्यवहारिक उपयोगिता और प्रजातन्त्र की मानववादी प्रवृत्तियाँ एक स्तर पर आकर मिल सकेंगी। इस रूप में भावी राजनीतिक उपन्यास जनजीवन से स्फूर्ति ग्रहण कर मानवतावादी दृष्टिकोण को अभिव्यक्त करेगा। लोकतान्त्रिक समाजवाद में नैतिक आग्रह के आधार पर मानवीय समानता के विकास से सामाजिक एवं आर्थिक विषमताओं का उन्मूलन हो सकेगा। इसके लिए समाज में तदनुकूल वातावरण निर्मित करने में राजनीतिक उपन्यास एक महत्वपूर्ण उपकरण होगा, जो मानवीय अधिकारों की प्रेरणा जाग्रत कर समाजवाद की मूलभूत धारणा को परिपुष्ट बनायेगा। विजयेन्द्र स्नातक ने इस सम्बन्ध में ठीक ही लिखा है 'समाजवाद के आधार-स्तम्भ समान अवसर और समानाधिकार को मानकर चलने से हम साहित्यकार के लिए इसके (लोकतान्त्रिक समाजवाद) प्रसार-प्रचार में योग देने की अनेक सम्भावनाएँ पाते हैं। मानव-विकास की दिशा में सबसे बड़ा प्रयत्न साहित्यकार ही करता है। वह बौद्धिक धरातल पर जीवन-स्पृहा को स्पष्ट करता हुआ घृणा, क्रोध, हिंसा, द्वेष, वैषम्य, विरोध स्तेय, लोभ आदि प्रवृत्तियों पर शासन करना सिखाता है। यदि साहित्यकार अपने सर्जन में समाजवाद के मूल उद्देश्यों को समाविष्ट करता रहे, तो वह किसी भी राजनीतिक नेता से छोटा सिद्ध नहीं होगा। साहित्यकार की देन राजनीतिक नेता से कहीं बड़ी और फलप्रद सिद्ध होगी।'[1]

इस स्थिति में राजनीतिक उपन्यास व्यावहारिक मानवीय धरातल पर आकर सामयिक साहित्य की श्रेणी से ऊपर उठकर जीवन-योग से निःसृत होंगे। उसमें समाज-बोध और शाश्वत साहित्य दोनों का समाहार हो सकेगा।

●●●

---

१ पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी . हिन्दी कथा-साहित्य, पृष्ठ ८६

परिशिष्ट १

स्थापित—सन् १८८८ ई०

लहरी बुक डिपो,
प्रकाशक · बिक्रेता
सं० ८१

२५/१, रामकटोरा रोड,
काशी, ३-२-१९६१

श्री बृजभूषण सिंह 'आदर्श'
सागर।

मान्यवर महोदय,

कृपा कार्ड आपका ता० १-१-६१ का मिला, परन्तु उत्तर देने मे इस कारण विलम्ब हुआ कि श्री दुर्गाप्रसाद खत्री जी यहाँ थे नहीं, बाहर गये हुए थे। अब उनके आने पर उनसे पूछ के आपके प्रश्नो का उत्तर दे रहे हैं।

रक्तमण्डल उपन्यास का पहिला भाग का पहिला संस्करण सन् १९२८ मे हुआ था और उसका अन्तिम अर्थात् चौथा भाग १९३० मे छपा। सफेद शैतान के पहिले भाग का प्रथम सस्करण १९३४ में छपा और अंतिम अर्थात् चौथा १९३७ के लगभग छपा। यह उन उपन्यासो का प्रकाशन-काल है और रचना-काल भी वही मान लेना चाहिए, क्योकि श्री दुर्गाप्रसाद जी ने उपन्यासो को पूरा लिखकर नहीं छपवाया, बल्कि ज्यों ज्यो लिखते जाते थे, त्यो-त्यो उपन्यास छपते जाते थे। और जो कुछ हमारे योग्य सेवा हो लिखते रहे, कृपा बनाये रहे।

भवदीय,
हस्ताक्षर—अपाठ्य,
प्रबन्धक।

परिशिष्ट २

मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन के पाँचवें नागपुर अधिवेशन के लिए प्रेषित महात्मा गांधी का सन्देश :

साबरमती, २५-१-१९२२

महाशय,

आपका पत्र महात्मा जी को मिला। उनकी राय मे इस राज्य-क्रांति के समय साहित्य सम्बन्धी संस्थाओं का आगामी कर्तव्य (१) राजक्रांति मे मदद दें, ऐसी किताबों का हिन्दी मे लिखा जाना, अनुवाद करके फैलाना और (२) हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने का पूरा यत्न करना और उसके लिए द्रविड देश में हिन्दी शिक्षकों को भेजा जाना, होना चाहिए। मद्रास मे हिन्दी प्रचार का काम हो रहा है, पर इतना बस नही।

आपका,
सुरेन्द्र

प्रति,
श्री प्रयागदत्त शुक्ल,
मंत्री, म० प्र० हिन्दी साहित्य सम्मेलन,
सीताबर्डी, नागपुर।

परिशिष्ट ३

शोध-प्रबन्ध मे विवेचित राजनीतिक एव अंशतः राजनीतिक उपन्यास—

उपन्यासकार	उपन्यास
अज्ञेय	शेखर एक जीवनी भाग १ १९४०
	शेखर एक जीवनी भाग २ १९४४
अंचल	चढ़ती धूप १९४५
	नयी इमारत १९४७
	उल्का १९४७
अनन्तगोपाल शेवडे	ज्वालामुखी १९५६
	भग्न मन्दिर १९६०
अमृतराय	बीज १९५३
	हाथी के दांत
अमृतलाल नागर	महाकाल १९४७
	बूंद और समुद्र १९५६
अमरकान्त	सूखा पत्ता
अश्क	बड़ी-बड़ी आंखें १९५४
इलाचन्द्र जोशी	सन्यासी १९४१
	निर्वासित १९४६
	मुक्ति पथ १९५०
	जिप्सी १९५२
कमल शुक्ल	इन्सान जाग उठा
कृष्णचन्द्र भिक्खु	सक्रान्ति १९५१
	भंवरजाल १९५१
गुरुदत्त	स्वाधीनता के पथपर १९४२
	पथिक १९४३
	स्वाराज्यदान १९४८
	विश्वासघात १९५१
	देश की हत्या १९५३
	विलोमगति १९५४
	छलना १९५७
	बीती रात १९५९
	दासता के नये रूप १९५५
	भग्नाश
गोविन्ददास	इन्दुमती
चतुरसेन शास्त्री	धर्मपुत्र १९५४
	उदयास्त १९५८
	बगुले के पंख १९५८
जैनेन्द्र	सुनीता १९३५
	कल्याणी १९३९
	सुखदा १९५२
	विवर्त १९५३
	जयवर्धन १९५६
दयाशंकर मिश्र	बुझते दीप

लेखक	रचना	वर्ष
दुर्गाप्रसाद खत्री	रक्तमण्डल (चार भाग)	१९२८ से ३०
	सफेद शैतान (चार भाग)	१९३४ से ३७
दुर्गाशकर मेहता	अनबुझी प्यास	१९५०
देवेन्द्र सत्यार्थी	कठपुतली	१९५३
नागार्जुन	रतिनाथ की चाची	१९४८
	बलचनमा	१९५२
	नयी पौध	१९५३
	बाबा बटेसरनाथ	१९५४
	दुखमोचन	१९५७
	वरुण के बेटे	
	कुंभीपाक	
	हीरक जयन्ती	
	उग्रतारा	
नित्यानन्द वात्स्यायन	केलाबाडी	१९५२
प्रतापनारायण श्रीवास्तव	बयालीस	१९४८
प्रेमचन्द	प्रेमाश्रम	१९२२
	रंगभूमि	१९२४
	कायाकल्प	१९२८
	कर्मभूमि	१९३२
	गोदान	१९३६
	मंगलसूत्र (अपूर्ण)	१९३६
फणीश्वरनाथ 'रेणु'	मैला आंचल	१९५४
	परती-परिकथा	१९५७
भगवतीचरणवर्मा	टेढ़े-मेढ़े रास्ते	१९४६
	भूले-बिसरे चित्र	१९५९
मन्मथनाथ गुप्त	रैन अंधेरी	१९५९
	रंगमंच	१९६०
	अपराजित	१९६०
	प्रतिक्रिया	१९६१
	सागर-संगम	१९६२
	जागरण	१९६३
	जिच	१९४६
महेन्द्रनाथ	आदमी और सिक्के	१९५२
	रात अंधेरी है	१९५४
यज्ञदत्त शर्मा	दो पहलू	१९४०
	इन्सान	१९५१
	अन्तिम चरण	१९५२
	निर्माण-पथ	१९५३
	बदलती राहें	१९५४
यशपाल	दादा कामरेड	१९४१
	देशद्रोही	१९४३
यशपाल	पार्टी कामरेड	१९४६
	मनुष्य के रूप	१९४९
	झूठा सच (वतन और देश)	१९५८
	झूठा सच (देश का भविष्य)	१९६०

परिशिष्ट ४

सहायक ग्रन्थ एव पत्र-पत्रिकाओं का सूची

लेखक	ग्रन्थ
अमृतराय	नयी समीक्षा
इन्द्रनाथ मदान	प्रेमचन्द चिन्तन और कला
इलाचन्द्र जोशी	विवेचना साहित्य-चिन्तन
कृष्ण मेहता	काश्मीर पर हमला
कार्ल मार्क्स	
फ्रेडरिक एंगेल्स	कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणा पत्र
किशोरलाल घ० मशरूवाला	गाँधी विचार-दोहन
कोमल कोठारी विजयदान देथा	प्रेमचन्द के पात्र
कैलाश प्रसाद	प्रेमचन्द पूर्व हिन्दी उपन्यास
गणेशन	हिन्दी उपन्यास-साहित्य का अध्ययन
गंगाप्रसाद पाण्डे	हिन्दी कथा-साहित्य
गोपीनाथ धावन	सर्वोदय तत्व दर्शन
गुलाबराय	गाँधीय मार्ग
चन्द्रशेखर शास्त्री	मार्क्सवाद का इतिहास
चण्डीप्रसाद जोशी	हिन्दी उपन्यास समाज शास्त्रीय अध्ययन
जवाहरलाल नेहरू	हिन्दुस्तान की समस्याएँ
जे० बी० कृपलानी	गाँधी : एक राजनीतिक अध्ययन
जैनेंद्र कुमार	काम, प्रेम और परिवार
	साहित्य का श्रेय और प्रेम
	सोच विचार
ताराशंकर पाठक	हिन्दी के सामाजिक उपन्यास
दीनानाथ व्यास	अगस्त १९४२ का महान् विप्लव
देवराज उपाध्याय	कथा के तत्व
नन्ददुलारे वाजपेयी	आधुनिक साहित्य
	नया साहित्य नये प्रश्न
	प्रेमचन्द साहित्यिक विवेचन
	हिन्दी साहित्य बीसवी शताब्दी
नरेन्द्र देव	समाजवाद और राष्ट्रीय क्रान्ति
	समाजवाद : लक्ष्य और साधना

- नगेन्द्र — विचार और विवेचन
- विचार और अनुभूति
- और विश्लेषणविचार
- सियारामशरण गुप्त
- पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी — हिन्दी कथा साहित्य
- प्रतापनारायण टण्डन — हिन्दी उपन्यास म कथा शिल्प का विकास
- हिन्दी उपन्यास म वर्ग भावना(प्रेमचन्द युग)
- प्रभा अग्रवाल — हमारा स्वातन्त्र्य सघष
- प्रेमचन्द — कुछ विचार
- साहित्य का उद्देश्य
- पुरुषोत्तमलाल श्रीवास्तव — आदश और यथाथ
- बलभद्र जैन — अहिंसा दशन
- बलभद्र तिवारी — इलाचन्द्र जोशी के उपन्यास
- बी० पट्टाभि सीतारामय्या — गाधी और गाधीवाद (अनु० वेदराज वेदालकार)
- सक्षिप्त कांग्रेस का इतिहास
- ब्रजरत्नदास — हिन्दी उपन्यास साहित्य
- बेनीप्रसाद — हिन्दू-मुस्लिम समस्या
- भूपेन्द्रनाथ सान्याल — मार्क्स का दशन
- महात्मा गाधी — युद्ध और अहिंसा
- महेन्द्र चतुर्वेदी — हिन्दी उपन्यास एक सर्वेक्षण
- महेन्द्र भटनागर — समस्यामूलक उपन्यासकार प्रेमचन्द
- महेन्द्रचन्द्र राय — मार्क्सवाद और साहित्य
- यशपाल — गाधीवाद की शव परीक्षा
- मार्क्सवाद
- रगनाथ दिवाकर — सत्याग्रह मीमासा
- रामअवध द्विवेदी — हिन्दी साहित्य के विकास की रूपरेखा
- रामदीन गुप्त — प्रेमचन्द और गाधीवाद
- रामचन्द्र शुक्ल — हिन्दी साहित्य का इतिहास
- रामविलास शर्मा — प्रेमचन्द और उनका युग
- रघुनाथसरन झालानी — जनेन्द्र और उनके उपन्यास
- रामरतन भटनागर — कलाकार प्रेमचन्द
- जैनेन्द्र साहित्य और समीक्षा
- राजेश्वर गुरु — प्रेमचन्द एक अध्ययन
- रैल्फ फाक्स — उपन्यास और लोक-जीवन
- राधाकृष्णन — स्वतन्त्रता और सघष
- एल० नटराजन — भारत के किसान विद्रोह
- विनोबा भावे — साहित्यिकों से

विश्वनाथप्रसाद मिश्र — हिन्दी का सामयिक साहित्य
शशिभूषण सिंहल — उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा
शची रानी गुर्टू — प्रेमचन्द और गोर्की
शिवदानसिंह चौहान — साहित्य की समस्याएं
हिन्दी साहित्य के अस्सी वर्ष
शिवनारायण श्रीवास्तव — हिन्दी उपन्यास
शिवरानी देवी — प्रेमचन्द घर में
शांतिप्रिय द्विवेदी — युग और साहित्य
श्रीनारायण अग्निहोत्री — उपन्यास-तत्व एवं रूप विधान
सम्पूर्णानन्द — व्यक्ति और समाज
सीताराम चतुर्वेदी — साहित्य समीक्षा
कुल सम्पतिराय भंडारी — भारतवर्ष और उसका स्वातंत्र्य-संग्राम
सुरेशचन्द्र तिवारी — यशपाल और हिन्दी कथा साहित्य
सुषमा धवन — हिन्दी उपन्यास
हजारीप्रसाद द्विवेदी — आधुनिक हिन्दी साहित्य पर विचार
हिन्दी साहित्य
हंसराज रहबर — प्रेमचन्द : जीवन और कृतित्व
हरस्वरूप माथुर — प्रेमचन्द : उपन्यास और शिल्प
त्रिभुवन सिंह — हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद

अंग्रेजी के संदर्भ-ग्रन्थ

Andrus and Mukharji — Rise and Growth of Congress in India
Bose, Subhas Chandra — Indian Struggle
Caudwell, Cristopher — Illusion and Reality
Further studies in Dying Culture
Devid Daiches — Critical Approaches to literature
Desai, A R — Social Background of Indian Nationalism
Fast, Howard — literature and Reality
Forester, E M — Aspects of the Novel